तिलोयपण्णत्ती – द्वितीय खण्ड

(द्वितीय संस्करण)

श्री चन्द्रप्रभ स्तवन

चन्द्रप्रभं चन्द्रमरीचि गौरं चन्द्रं, द्वितीयम् जगतीव कान्तम्।
बन्देऽभिवन्द्यं महता मृषीन्द्रं, जिनं जितस्वान्त कषाय बन्धम्।।
स चन्द्रमा भव्य कुमुद्वतीनां, विपन्न दोषाभ्र कलंक लेपः।
व्याकोशवाङ् न्याय मयूख मालः, पूयात्पवित्रों भगवान मनो मे।।

प्रकाशक एवं प्राप्तिस्थान
श्री १००८ चन्द्रप्रभ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र
देहरा-तिजारा-३०१४११ (अलवर-राजस्थान)

श्रीयतिवृषभाचार्यविरचित

तिलोयपण्णत्ती – द्वितीय खण्ड
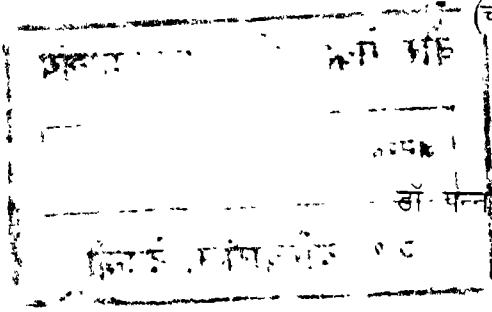
(चतुर्थ महाधिकार)

❐

पुरोवाक्

डॉ० पन्नालाल जैन साहित्याचार्य

❐

भाषाटीका

आर्यिका १०५ श्री विशुद्धमती माताजी

❐

सम्पादन

डॉ० चेतनप्रकाश पाटनी, जोधपुर (राज.)

❐

प्रकाशक एवं प्राप्तिस्थान

श्री १००८ चन्द्रप्रभ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र

देहरा-तिजारा-३०१४११ (अलवर-राजस्थान)

❐

मूल्य-१००/-

❐

तृतीय संस्करण

ई. सन २००८ | वीर निर्वाण संवत् २५३४ | वि.स. २०६५

❐

ऑफ्सैट मुद्रक

शकुन प्रिंटर्स, ३६२५, सुभाष मार्ग, नई दिल्ली–११०००२

फोन २३२७१८१८, २३२८०४०१

श्री १००८ भगवान चन्द्रप्रभ की पावन प्रतिमा दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र देहरा-तिजारा

चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागर जी
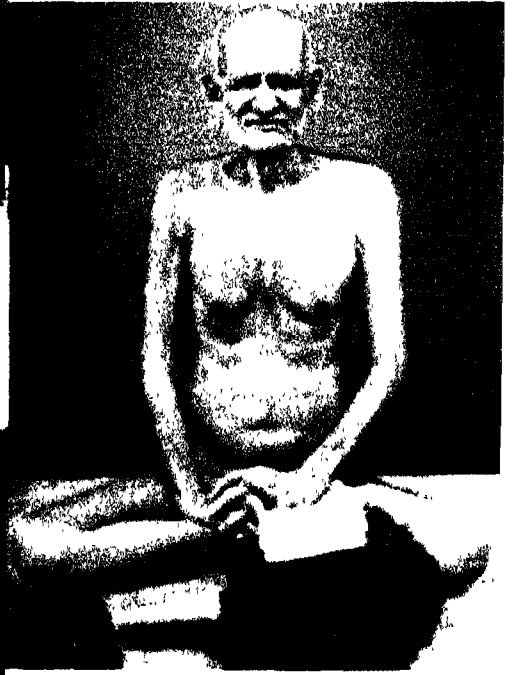
परमपूज्य आचार्य श्री वीरसागर जी

परमपूज्य आचार्य श्री शिवसागर जी

परमपूज्य आचार्य श्री धर्मसागर जी

परमपूज्य आचार्य श्री अजितसागर जी

परमपूज्य आचार्य श्री वर्द्धमानसागर जी

प्रकाशकीय

जैन धर्म और जैन वाङ्मय के इतिहास का समीचीन ज्ञान प्राप्त करने के लिए लोक विवरण सम्बंधी ग्रन्थ भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं जितने अन्य आगम। "तिलोयपण्णत्ती'' इस दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। पूज्य आचार्य यतिवृषभजी महाराज की यह अमर कृति है। पूज्य आर्यिका १०५ श्री विशुद्धमति माताजी की हिन्दी टीका ने इस ग्रन्थ की उपयोगिता को और बढ़ा दिया है। इस ग्रन्थ के तीनों खण्डों का प्रकाशन क्रमश: १९८४, १९८६ व १९८८ में श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा ने किया था।

ग्रन्थ का सम्पादन डा. चेतनप्रकाशजी पाटनी ने कुशलतापूर्वक किया है। गणित के प्रसिद्ध विद्वान् प्रो. लक्ष्मीचन्द्रजी ने गणित की विविध धाराओं को स्पष्ट किया है। डा. पन्नालालजी साहित्याचार्य ने इसका पुरोवाक् लिखा है। माताजी के संघस्थ ब्र. कजोड़ीमलजी कामदार ने प्रथम संस्करण के कार्य में पुष्कल सहयोग किया था।

हमारे पुण्योदय से श्री चन्द्रप्रभु दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र पर उपाध्याय मुनि श्री ज्ञानसागर जी महाराज का संघ सहित पदार्पण हुआ और उनके पावन सान्निध्य में क्षेत्र पर मान-स्तम्भ प्रतिष्ठा एवं श्री जिनेन्द्र पंचकल्याणक सम्पन्न हुआ। इसी अवसर पर उपाध्याय मुनिश्री १०८ ज्ञानसागर जी महाराज की प्रेरणा से प्रस्तुत संस्करण का प्रकाशन करना सम्भव हुआ। यह संस्करण शकुन प्रिन्टर्स नई दिल्ली में ऑफ्सैट विधि से मुद्रित हुआ ताकि पुन: कम्पोज की अशुद्धियों से बचा जा सके।

क्षेत्र कमेटी ग्रन्थ प्रकाशन की प्रक्रिया में संलग्न सभी त्यागीगण व विद्वानों का हृदय से आभारी है– विशेष रूप से हम पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञान सागर जी महाराज के ऋणी हैं जिनकी प्रेरणा से प्रस्तुत ग्रन्थ प्रकाशित हो सका है। हम भारतवर्षीय दिगम्बर जैन (धर्म संरक्षणी) महासभा के सम्मानित अध्यक्ष श्री निर्मलकुमार जी सेठी के आभारी हैं जिन्होंने ग्रन्थ का संस्करण कराने की अनुमति प्रदान की है। हम महासभा के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष श्री नीरजजी जैन के भी आभारी हैं जिन्होंने इस संस्करण की संयोजना से लेकर अनुमति दिलाने तक हमारा सहयोग किया। हमें पूर्ण आशा है कि ग्रन्थ के पुनर्प्रकाशन से जिज्ञासु महानुभाव इसका पूरा-पूरा लाभ उठा सकेंगे।

–तुलाराम जैन
अध्यक्ष, श्री चन्द्रप्रभ दिगम्बर
जैन अतिशय क्षेत्र
देहरा–तिजारा (अलवर)

प्रकाशकीय

जैन धर्म और जैन वाङ्मय के इतिहास का समीचीन ज्ञान प्राप्त करने के लिए लोक विवरण सम्बंधी ग्रन्थ भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं जितने अन्य आगम। "तिलोयपण्णत्ती" इस दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। पूज्य आचार्य यतिवृषभजी महाराज की यह अमर कृति है। पूज्य आर्यिका १०५ श्री विशुद्धमति माताजी की हिन्दी टीका ने इस ग्रन्थ की उपयोगिता को और बढा दिया है। इस ग्रन्थ के तीनों खण्डो का प्रकाशन क्रमश १९८४, १९८६ व १९८८ मे श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा ने किया था।

ग्रन्थ का सम्पादन डा. चेतनप्रकाशजी पाटनी ने कुशलतापूर्वक किया है। गणित के प्रसिद्ध विद्वान् प्रो लक्ष्मीचन्द्रजी ने गणित की विविध धाराओं को स्पष्ट किया है। डा पन्नालालजी साहित्याचार्य ने इसका पुरोवाक् लिखा है। माताजी के सघस्थ ब्र कजोडीमलजी कामदार ने प्रथम सस्करण के कार्य मे पुष्कल सहयोग किया था।

हमारे पुण्योदय से श्री चन्द्रप्रभु दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र पर उपाध्याय मुनि श्री ज्ञानसागर जी महाराज का सघ सहित पदार्पण हुआ और उनके पावन सान्निध्य में क्षेत्र पर मान स्तम्भ प्रतिष्ठा एव श्री जिनेन्द्र पचकल्याणक सम्पन्न हुआ। इसी अवसर पर उपाध्याय मुनिश्री १०८ ज्ञानसागर जी महाराज की प्रेरणा से प्रस्तुत सस्करण का प्रकाशन करना सम्भव हुआ। यह सस्करण शकुन प्रिन्टर्स नई दिल्ली मे ऑफसैट विधि से मुद्रित हुआ ताकि पुन कम्पोज की अशुद्धियों से बचा जा सके।

क्षेत्र कमेटी ग्रन्थ प्रकाशन की प्रक्रिया मे सलग्न सभी त्यागीगण व विद्वानो का हृदय से आभारी है– विशेष रूप से हम पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञान सागर जी महाराज के ऋणी है जिनकी प्रेरणा से प्रस्तुत ग्रन्थ प्रकाशित हो सका है। हम भारतवर्षीय दिगम्बर जैन (धर्म सरक्षणी) महासभा के सम्मानित अध्यक्ष श्री निर्मलकुमार जी सेठी के आभारी है जिन्होने ग्रन्थ का सस्करण कराने की अनुमति प्रदान की है। हम महासभा के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष श्री नीरजजी जैन के भी आभारी है जिन्होंने इस सस्करण की सयोजना से लेकर अनुमति दिलाने तक हमारा सहयोग किया। हमे पूर्ण आशा है कि ग्रन्थ के पुनर्प्रकाशन से जिज्ञासु महानुभाव इसका पूरा-पूरा लाभ उठा सकेंगे।

–**तुलाराम जैन**
अध्यक्ष, श्री चन्द्रप्रभ दिगम्बर
जैन अतिशय क्षेत्र
देहरा–तिजारा (अलवर)

श्री १००८ चन्द्रप्रभ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र देहरा-तिजारा

एक परिचय

चौबीस तीर्थंकरों में आठवें भगवान चन्द्रप्रभ का नाम चमत्कारों की दुनियाँ में अग्रणी रहा है। इसलिए सदैव ही विशेष रूप से वे जन-जन की आस्था का केन्द्र रहे हैं। राजस्थान में यूं तो अनेक जगह जिनबिम्ब भूमि से प्रकट हुए हैं, परन्तु अलवर जिले में तिजारा नाम अत्यन्त प्राचीन है जहॉं भगवान चन्द्रप्रभ की मूर्ति प्रगट हुई हैं तब से 'देहरा'' शब्द तिजारा के साथ लगने लगा है, और अब तो 'देहरा'' तिजारा का पर्याय ही बन गया है। 'देहरा'' शब्द का अर्थ सभी दृष्टियों से देव स्थान, देवहरा, देवरा या देवद्वार कोषकारों ने अंकित किया है। इनके अनुसार देहरा वह मन्दिर है जहाँ जैनों द्वारा मूर्तियाँ पूजी जाती हैं। (A Place where idols are worshipped by Jains.)

देहरे का उपलब्ध वृतान्त, जुड़ी हुई अनुश्रुतियाँ साथ ही जैन समुदाय का जिनालय विषयक विश्वास इस स्थान के प्रति निरंतर जिज्ञासु बनता जा रहा था। सौभाग्य से सन् १९४४ मे प्रज्ञाचक्षु श्री धर्मपाल जी जैन खेकड़ा (मेरठ) निवासी तिजारा पधारे। इस स्थान के प्रति उनकी भविष्यवाणी ने भी पूर्व में स्थापित संभावना को पुष्ट ही किया। इस स्थान पर अवशिष्ट खंडहरों में उन्हें जिनालय की संभावना दिखाई दी। किन्तु उनका मत था कि "वर्तमान अंग्रेजी शासन परिवर्तन के पश्चात् स्वयं ऐसे कारण बनेंगे, जिनसे कि इस खण्डहर से जिनेन्द्र भगवान की मूर्तियॉं प्रकट होंगी।''

देश की स्वंतत्रता के बाद तिजारा में स्थानीय निकाय के रूप में नगर पालिका का गठन हुआ। जुलाई १९५६ में नगर पालिका ने इस नगर की छोटी व संकरी सड़कों को चौड़ा कराने का कार्य प्रारम्भ किया। वर्तमान में, जहां देहरा मंदिर स्थित है, यह स्थान भी ऊबड़-खाबड़ था। हां निकट ही एक खण्डहर अवश्य था। इस खण्डहर के निकट टीले से जब मजदूर मिट्टी खोदकर सडक के किनारे डाल रहे थे, तो अचानक नीचे कुछ दीवारे नजर आईं। धीरे-धीरे खुदाई करने पर एक पुराना तहखाना दृष्टिगोचर हुआ। इसे देखते ही देहरे से जुडी हुई तमाम जनश्रुतियां, प्राचीन इतिहास और उस नेत्रहीन भविष्यवक्ता के शब्द क्रमश स्मरण हो आये। जैन समाज ने इस स्थान की खुदाई कराकर सदा से अनुत्तरित कुतूहल को शान्त करने का निर्णय किया।

जब प्रतिमाएं मिलीं

राज्य अधिकारियो की देख-रेख में यहां खुदाई का कार्य प्रारम्भ किया गया। स्थानीय नगर पालिका ने जन भावना को दृष्टि में रखते हुए आर्थिक व्यवस्था की, किन्तु दो-तीन दिन निरन्तर उत्खनन के बाद भी आशा की कोई किरण दिखाई नहीं दी। निराशा के अंधकार में सरकार की ओर से खुदाई बन्द होना स्वभाविक था किन्तु जैन समाज की आस्था अन्धकार के पीछे प्रकाश पुंज को देख रही थी, अत· उसी दिन दिनांक २०-७-१९५५ को स्थानीय जैन समाज ने द्रव्य की व्यवस्था कर खुदाई का कार्य जारी रखा। गर्भगृह को पहले ही खोदा जा चुका था। आस-पास खुदाई की गई; किन्तु निरन्तर असफलता ही हाथ लगी। पर आस्था भी अपनी परीक्षा देने को कटिबद्ध थी। इसी बीच निकट के कस्बा

नगीना जिला गुड़गांवा से दो श्रावक श्री झब्बूराम जी व मिश्रीलाल जी यहां पधारे। उन्होंने यहां जाप करवाये। मंत्र की शक्ति ने आस्था को और बल प्रदान किया। परिणामस्वरूप रात्रि को प्रतिमाओं के मिलने के स्थान का संकेत स्वप्न से प्रत्यक्ष हुआ। संकेत से उत्खनन को दिशा प्राप्त हुई। बिखरता हुआ कार्य सिमट कर केन्द्रीभूत हो गया। सांकेतिक स्थान पर खुदाई शुरु की गई। निरंतर खुदाई के बाद गहरे भूरे रंग का पाषाण उभरता सा प्रतीत हुआ। खुदाई की सावधानी में प्रस्तर मात्र प्रतीत होने वाला रूप क्रमशः आकार लेने लगा। आस्था और घनीभूत हो गई; पर जैसे स्वयं प्रभु वहां आस्था को परख रहे थे, प्रतिमा मिली अवश्य किन्तु स्वरूप खंडित था। आराधना की शक्ति एक निष्ठ नहीं हो पाई थी। मिति श्रावण शुक्ला ५ वि.सं. २०१३ तदानुसार दिनांक १२-८-५६ई. रविवार को तीन खण्डित मूर्तियां प्राप्त हुई थीं। जिन पर प्राचीन लिपि में कुछ अंकित है। जिन्हें अभी तक पढ़ा नहीं जा सका है। हां मूर्तियों के सूक्ष्म अध्ययन से इतना प्रतीत अवश्य होता है कि ये मौर्यकाल की हैं। इन मूर्तियों के केन्द्र में मुख्य प्रतिमा उत्कीर्ण कर पार्श्व में यक्ष यक्षणी उत्कीर्ण किये हुए हैं। तपस्या की परम्परागत मुद्रा केश राशि और आसन पर उत्कीर्ण चित्र इन्हें जैन मूर्तियाँ सिद्ध करते हैं। एक मूर्ति समूह के पार्श्व में दोनों ओर पद्मासन मुद्रा में मुख्य विम्ब की तुलना में छोटे बिम्ब हैं। लाली के श्यामल पत्थर से निर्मित इन मूर्ति समूहों का सूक्ष्म अध्ययन करने से क्षेत्र के ऐतिहासिक वैभव पर प्रकाश पड़ सकता है।

इन खण्डित मूर्तियों से एक चमत्कारिक घटना भी जुड़ी हुई है। जिस समय उक्त टीले पर खुदाई चल रही थी, स्थानीय कुम्हार टीले से निकली मिट्टी को दूर ले जाकर डाल रहे थे। कार्य की काल-गत दीर्घता में असावधानी सम्भव थी और इसी असावधानी में कुम्हार किसी प्रतिमा का शीर्ष भाग भी मिट्टी के साथ कूड़े में डाल आया था। असावधानी में हुई त्रुटि ने उसे रात्रि भर सोने नहीं दिया। उस अदृश्य शक्ति से स्वप्न में साक्षात्कार कर कुम्हार को बोध हुआ, और वह भी "मुँह अंधेरे" मिट्टी खोजने लगा। अन्ततः खोजकर वह प्रतिमा का शीर्ष भाग निश्चित हाथों में सौंपकर चैन पा सका।

स्वप्न साकार हुआ

आस्था के अनुरूप खण्डित मूर्तियों की प्राप्ति शीर्ष भाग का चमत्कार, मिट्टी में दबे भवन के अवशेष जैन समुदाय को और आशान्वित बना रहे थे। उत्साह के साथ खुदाई में तेजी आई किन्तु तीन दिन के कठिन परिश्रम के पश्चात् भी कुछ हाथ नहीं लगा। आशा की जो भीनी किरण पूर्व में दिखलाई दी थी वह पुनः अन्धकार में विलीन होने लगी। एक बार समाज की प्रतिष्ठा मानों दाव पर लग गई थी। भक्त मन आस्था के अदृश्य स्वर का आग्रह मानों सर्वत्र निराशा के बादलों को घना करता जा रहा था। समाज की ही एक महिला श्रीमती सरस्वती देवी धर्म पत्नी श्री बिहारी लाल जी वैद्य ने खंडित बिम्बों की प्राप्ति के बाद से ही अन्न जल का त्याग किया हुआ था। उनकी साधना ने जैसे असफलताओं को चुनौती दे रखी थी। आस्था खंडित से अखंडित का सन्धान कर रही थी। साधना और आस्था की परीक्षा थी। तीन दिन बीत चुके थे। श्रावण शुक्ला नवमी की रात्रि गाढ़ी होती जा रही थी। चन्द्र का उत्तरोत्तर

बढ़ता प्रकाश अंधकार को लीलने का प्रयास कर रहा था। मध्य रात्रि को उन्हें स्वप्न हुआ और भगवान की मूर्ति दबी होने के निश्चित स्थान व सीमा का संकेत मिला। संकेत पूर्व में अन्यान्य व्यक्तियों को मिले थे; किन्तु तीन दिन की मनसा, वाचा, कर्मणा साधनों ने संकेत की निश्चित्ता को दृढ़ता दी। रात्रि को लगभग एक बजे वह उठी और श्रद्धापूर्वक उसी स्थान को दीपक से प्रकाशित कर आई। अन्त: प्रकाशमान उस स्थल को बहिर्दीप्ति मिली। नये दिन यानी १६-८-५६ को निर्दिष्ट स्थान पर खुदाई शुरु की गई।

स्वप्न का संकेत एक बार फिर संजीवनी बन गया। श्री रामदत्ता मजदूर नई आशा व उल्लास से इस संधान में जुट गया। उपस्थित जन समुदाय रात्रि के स्वप्न के प्रति विश्वास पूर्वक वसुधा की गहनता और गम्भीरता के जैसे पल-पल दोलायमान चित्त से देख रहा था। मन इस बात के लिये क्रमश· तैयार हो रहा था कि यदि प्रतिमा न मिली तो संभवत: खुदाई बन्द करनी पड़े; किन्तु आस्था अक्षय कोष से निरंतर पाथेय जुटा रही थी जिसका परिणाम भी मिला। उसी दिन अर्थात् श्रावण शुक्ला दशमी गुरुवार सं. २०१३ दिनांक १६-८-१९५६ को मिट्टी की पवित्रता से श्वेत पाषाण की मूर्ति उभरने लगी। खुदाई में सावधानी आती गई। हर्षातिरेक में जन समूह भाव विह्वल हो गया। देवगण भी इस अद्‌भुत प्राप्ति को प्रमुदित मन मानों स्वयं दर्शन करने चले आये। मध्यान्ह के ११ बजकर ५५ मिनट हुए थे रिक्त आकश में मेघ माला उदित हुई। धारासार वर्षा से इन्द्र ने ही सर्वप्रथम प्रभु का अभिषेक किया। प्रतिमा प्राप्ति से जन समुदाय का मन तो पहिले ही भीग चुका था अब तन भी भीग गया। प्रतिमा पर अंकित लेख भी क्रमश: स्पष्ट होने लगा। जिसे पढ़कर स्पष्ट हुआ कि यह प्रतिमा सम्वत् १५५४ की है। जैनागम में निर्दिष्ट चन्द्र के चिन्ह से ज्ञात हुआ कि यह जिन बिम्ब जैन आम्नाय के अष्टम तीर्थंकर चन्द्रप्रभ स्वामी का है। लगभग एक फुट तीन इंच ऊँची श्वेत पाषाण की यह प्रतिमा पद्‌मासन मुद्रा मे थी। प्रभु की वीतरागी गंभीरता मानों जन जन को त्याग और संयम का उपदेश देने के लिये स्वयं प्रस्तुत हो गई थी। प्रतिमा पर अंकित लेख इस प्रकार है।

"सं. १५५४ वर्षे बैसाख सुदी ३ श्री काष्ठासंघ, पुष्करमठो भ. श्री मलय कीर्ति देवा, तत्पट्टे भ. श्री गुण भद्र देव तदाम्नाये गोयल गोत्रे सं. मंकणसी भार्या होलाही पुत्र तोला भा तरी पुत्र ३ गजाधरू जिनदत्त तिलोक चन्द एतेषां मध्ये सं. तोला तेन इदम् चन्द्रप्रभं प्रति वापितम।"

प्रतिमा की प्राप्ति ने नगर में मानो जान फूंक दी। भूगर्भ से जिन बिम्ब की प्राप्ति का उल्लास बिखर पड़ा। तत्काल टीन का अस्थायी सा मंडप बनाकर प्रभु को काष्ठ सिंहासन पर विराजमान किया गया। श्वेत उज्जवल रश्मि ने अंधकार में नया आलोक भर दिया।

मंदिर निर्माण की भावना

श्वेत पाषाण प्रतिमा जी के प्रकट होने के पश्चात् उनके पूजा स्थान के क्रम में विभिन्न विचार धारायें सामने आने लगी। नवीनता के समर्थक युवकों का विचार था कि प्रतिमा जी को कस्बे के पुराने जिन मंदिर में विराजमान कर दिया जावे; क्योंकि वर्तमान दौर में नवीन पूजा गृहों की निर्मिति कराने की अपेक्षा पारंपरित मंदिरों का संरक्षण अधिक आवश्यक है। उनका कहना था कि बदलती हुई परिस्थितियों

में नये सिरे से मंदिर के निर्माण की अपेक्षा शिक्षा, चिकित्सा आदि क्षेत्रों में प्रयास करने की अधिक आवश्यकता है। पूजा गृहों के निर्माण से पूर्व पूजकों में आस्था बनाये रखने के लिऐ जैन शिक्षण संस्थानों की स्थापना ज्यादा उपयोगी व युग सापेक्ष्य होगी। लेकिन कुछ भाइयों का विचार था कि इसी स्थान पर मंदिर बनवाया जावे जहां प्रतिमा प्रकट हुई है। दोनों प्रकार की विचार धारायें किसी भी निर्णय पर नहीं पहुंच पा रही थी। असमंजस की सी स्थिति थी कि प्रतिमा जी की रक्षक दैवी शक्तियों ने चमत्कार दिखाना आरम्भ कर दिया।

पुणयोदय से चमत्कार

प्रतिमा प्रकट होने के दो तीन दिन पश्चात् ही एक अजैन महिला ने भगवान के दरबार में सिर घुमाना शुरु कर दिया। बाल खोले, सिर घुमाती यह महिला निरंतर देहरे वाले बाबा की जय घोष कर रही थी। व्यंतर बाधा से पीड़ित यह महिला इससे पूर्व जिन बिम्ब के प्रति आस्था शील भी न रही थी; किन्तु धर्म की रेखा जाति आदि से न जुड़कर मानव मात्र के कल्याण से जुड़ी हुई है। जिसमें प्राणी मात्र का संकट दूर करने की भावना है। बाबा चन्द्रप्रभ स्वामी के दरबार में महिला के मानस को आक्रान्त करने वाली उस प्रेत छाया (व्यंतर) ने अपना पूरा परिचय दिया और बतलाया कि वह किस प्रकार उसके साथ लगी, और क्या क्या कष्ट दिये। अन्त में तीन दिन पश्चात् क्षेत्र के महातिशय के प्रभाव से व्यंतर ने सदा के लिये रोगी को अपने चंगुल से मुक्त किया, और स्वयं भी प्रभु के चरणों में शेष काल व्यतीत करने की प्रतिज्ञा की। भूत प्रेत से सम्बन्धित यह घटना मानसिक विक्षिप्तता कहकर संदेह की दृष्टि से देखी जा सकती थी; किन्तु ऐसे रोगियों का आना धीरे-धीरे बढ़ता गया, तो विक्षिप्तता न मानकर प्रेत शक्ति की स्थिति स्वीकारने को मस्तिष्क प्रस्तुत हो गया। वैसे भी जैनागम व्यंतर देवों की अवस्थिति स्वीकार करता है। वर्तमान मे विज्ञान भी मनुष्य मन को आक्रान्त करने वाली परा शक्तियों की स्थिति स्वीकार कर चुका है।

क्षेत्र पर रोगियों की बढ़ती संख्या और उनकी आस्था से निष्पन्न आध्यात्मिक चिकित्सा ने इसी स्थल पर मंदिर बनवाने की भावना को शक्ति दी। क्षेत्र की अतिशयता व्यंतर बाधाओं के निवारण के अतिरिक्त अन्य बाधाओ की फलदायिका भी बनी। श्रृद्धालु एवं अटूट विश्वास धारियों की विविध मनोकामनाएं पूर्ण होने लगीं। इन चमत्कारों ने जनता की नूतन मंदिर निर्माण की आकांक्षा को पुंजीभूत किया। फलत २६-८-१९५६ को तिजारा दिगम्बर जैन समाज की आम सभा में सर्व सम्मति से यह निर्णय हुआ कि इसी स्थान पर मंदिर का नव निर्माण कराया जावे। मंदिर निर्माण हेतु जैन समाज ने द्रव्य संग्रह किया और मंदिर के निर्माण का कार्य प्रारम्भ हुआ।

मंदिर निर्माण

वर्तमान में जहां दोहरा मंदिर स्थित है इस भूमि पर कस्टोडियन विभाग का अधिकार था। बिना भूमि की प्राप्ति के मंदिर निर्माण होना असम्भव था। समाज की इच्छा थी कि अन्यत्र नया मंदिर बनाने की बजाय प्रतिमा के प्रकट स्थान पर ही मंदिर निर्माण उचित होगा अत: इसकी प्राप्ति के लिये काफी

प्रयत्न किये गये। अन्तत: श्री हुकमचन्द जी लुहाडिया अजमेर वालों ने कस्टोडियन विभाग में अपेक्षित राशि जमा कराकर अपने सद् प्रयत्नों से १२००० वर्ग गज भूमि मंदिर के लिये प्रदान की।

भूमि की प्राप्ति के पश्चात् मंदिर भवन के शिलान्यास हेतु शुभ मुहुर्त निकलवाया गया। मंदिर शिलान्यास के उपलक्ष्य में त्रिदिवसीय रथयात्रा का विशाल आयोजन २३ से २५ नवम्बर १९६१ को किया गया था। भगवान चन्द्रप्रभ स्वामी की अतिशय चमत्कारी प्रतिमा की प्राप्ति के बाद यह पहला बड़ा आयोजन किया गया। दिनांक २४ नवम्बर १९६१ मध्यान्ह के समय शिलान्यास का कार्य पूज्य भट्टारक श्री देवेन्द्र कीर्ति जी गढ़ी नागौर के सान्निध्य में दिल्ली निवासी रायसाहब बाबू उल्फत राय जैन के द्वारा सम्पन्न हुआ।

मंदिर का उभरता स्वरूप

नव मंदिर शिलान्यास के साथ ही मंदिर निर्माण का कार्य शुरु हो गया। दानी महानुभावों के निरंतर सहयोग से सपाट जमीन प. मंदिर का स्वरूप उभरने लगा। मूल नायक चन्द्रप्रभ स्वामी की प्रतिमा को विराजित करने के लिए मुख्य वेदी के निर्माण के साथ दोनों पार्श्वों में दो अन्य कक्षों का निर्माण कराया गया। शनै शनै: निर्माण पूरा होने लगा। २२ वर्ष के दीर्घ अन्तराल में अनेक उतार चढ़ावों के बावजूद नव निर्मित मंदिर का कार्य पूर्णता पाने लगा। मुख्य वेदी पर ५२ फुट ऊचे शिखर का निर्माण किया गया। मंदिर के स्थापत्य को सवारने में शिल्पी धनजी भाई गुजरात वालों ने कहीं मेहरावदार दरवाजा बनाया तो कहीं प्राचीन स्थापत्य की रक्षा करते हुए वैदिक शैली का इस्तेमाल किया। शिखर में भी गुम्बद के स्थान पर अष्ट भुजी रूप को महत्ता दी। मंदिर की विशालता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि इसका निर्माण लगभग दो करोड रुपयों में सम्पन्न हो सका। मंदिर निर्माण में मुख्य रूप से श्वेत संगमरमर प्रयोग में लाया गया। साथ ही कांच की पच्चीकारी एवं स्वर्ण चित्रकारी से भी समृद्ध किया गया।

पंच कल्याणक एवं वेदी प्रतिष्ठा

मन्दिर निर्माण का कार्य परिपूर्ण हो जाने के उपरान्त वेदियो में भगवान को प्रतिष्ठित करने की उत्सुकता जागृत होना स्वाभाविक था। संकल्प ने मूर्त्तरूप लिया। १६ से २० मार्च १९८३ तक पॉच दिन का पंचकल्याणक महोत्सव करा भगवान को वेदियों में विराजमान करा दिया गया। इस महोत्सव में भारत के महामहिम राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह जी भी सम्मिलित हुए। उन्होंने क्षेत्र के विविध आयामी कार्यक्रमों का अवलोकन किया और अपने सम्बोधन में जैन समाज के प्रयासों की सराहना की। आचार्य शान्ति सागर जी महाराज के सान्निध्य में यह उत्सव सानन्द सम्पन्न हुआ।

मान-स्तम्भ में इस अवसर पर मूर्तियों की प्रतिष्ठा टाल दी गई थी; क्योंकि उसका निर्माण क्षेत्र की गरिमा और लोगों की आकांक्षाओं के अनुरुप नहीं हो पाया था। अत: उसका पुनर्निर्माण कराया गया। क्षेत्र का सितारा निरन्तर उत्कर्ष पर रहा। अब यह सम्भव ही नहीं था कि मूर्ति प्रतिष्ठा साधारण रूप से कराई जावे। अत: १६ से २० फरवरी ९७ को पंचकल्याणक प्रतिष्ठा का विशाल आयोजन करने का समाज द्वारा निर्णय किया गया। यह महोत्सव शाकाहार प्रचारक उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज

के (ससंघ) सान्निध्य में हुआ। अत: सप्ताहान्त तक सभा और सम्मेलनों की रात दिन झड़ी लगी रही। एक ओर विद्वत् परिषद सम्मेलन चल रहा था तो दूसरी ओर साहू अशोक कुमार जैन की अध्यक्षता में श्रावक और तीर्थ क्षेत्र कमेटी की सभाओं में विचार विमर्श चल रहा था। कभी व्यसन मुक्ति आन्दोलन को हवा दी जा रही है तो कभी शाकाहार सम्मेलन में भारतीय स्तर के बुद्धिजीवी और प्रखर वक्ता उसके महत्व को जनमानस में ठोक कर बिठाने में लगे थे। इस तरह हर्षोल्लास से २०-२-९७ को मान-स्तम्भ में मूर्तियों की स्थापना के साथ समाज ने अपने एक लक्ष्य को प्राप्त कर लिया। भगवान चन्द्रप्रभ और 'देहरे वाले बाबा' की जयघोष के साथ उत्सव सम्पन्न हुआ। तीर्थ क्षेत्र कमेटी इस क्षेत्र की सर्वांगीण प्रगति के लिए निरन्तर प्रयासरत है।

–तुलाराम जैन
अध्यक्ष, श्री चन्द्रप्रभ दिगम्बर
जैन अतिशय क्षेत्र
देहरा–तिजारा (अलवर)

#卐 अपनी बात 卐

जीवन में परिस्थितिजन्य अनुकूलता-प्रतिकूलता तो चलती ही रहती है परन्तु प्रतिकूल परिस्थितियों में भी उनका अधिकाधिक सदुपयोग कर लेना विशिष्ट प्रतिभाओं की ही विशेषता है। 'तिलोयपण्णत्ती' के प्रस्तुत संस्करण को अपने वर्तमान रूप में प्रस्तुत करने वाली विदुषी आर्यिका पूज्य १०५ श्री विशुद्धमती माताजी भी उन्हीं प्रतिभाओं में से एक हैं। जून १९८१ में सीढ़ियों से गिर जाने के कारण आपको उदयपुर में ठहरना पड़ा और तभी ति० प० की टीका का काम प्रारम्भ हुआ। काम सहज नहीं था परन्तु बुद्धि और श्रम मिलकर क्या नहीं कर सकते। साधन और सहयोग सकेत मिलते ही जुटने लगे। अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ तथा उनकी फोटोस्टेट कॉपियाँ मंगवाने की व्यवस्था की गई। कन्नड़ की प्राचीन प्रतियों को भी पाठभेद व लिप्यन्तरण के माध्यम से प्राप्त किया गया। 'सेठी ट्रस्ट, गुवाहाटी' से आर्थिक सहयोग प्राप्त हुआ और महासभा ने इसके प्रकाशन का उत्तरदायित्व वहन किया। डॉ० चेतनप्रकाश जी पाटनी ने सम्पादन का गुरुतर भार संभाला और अनेक रूपों में उनका सक्रिय सहयोग प्राप्त हुआ। यह सब पूज्य माताजी के पुरुषार्थ का ही सुपरिणाम है। पूज्य माताजी 'यथा नाम तथा गुण' के अनुसार विशुद्ध मति को धारण करने वाली है तभी तो गणित के इस जटिल ग्रंथ का प्रस्तुत सरल रूप हमें प्राप्त हो सका है।

पाँवों में चोट लगने के बाद से पूज्य माताजी प्रायः स्वस्थ नहीं रहती तथापि अभीक्ष्ण-ज्ञानोपयोग प्रवृत्ति से कभी विरत नहीं होती। सतत परिश्रम करते रहना आपकी अनुपम विशेषता है। आज से १५ वर्ष पूर्व मैं माताजी के सम्पर्क में आया था और यह मेरा सौभाग्य है कि तबसे मुझे पूज्य माताजी का अनवरत सान्निध्य प्राप्त रहा है। माताजी की श्रमशीलता का अनुमान मुझ जैसा कोई उनके निकट रहने वाला व्यक्ति ही कर सकता है। आज उपलब्ध सभी साधनो के बावजूद माताजी सम्पूर्ण लेखनकार्य स्वय अपने हाथ से ही करती हैं—न कभी एक अक्षर टाइप करवाती हैं और न किसी से लिखवाती है। सम्पूर्ण संशोधन-परिष्कारो को भी फिर हाथ से ही लिखकर संयुक्त करती है। मैं प्रायः सोचा करता हूँ कि धन्य हैं ये, जो (आहार में) इतना अल्प लेकर भी कितना अधिक दे रही हैं। इनकी यह देन चिरकाल तक समाज को समुपलब्ध रहेगी।

मै एक अल्पज्ञ श्रावक हूँ। अधिक पढ़ा-लिखा भी नहीं हूँ किन्तु पूर्व पुण्योदय से जो मुझे यह पवित्र समागम प्राप्त हुआ है. इसे मैं साक्षात् सरस्वती का ही समागम समझता हूँ। जिन ग्रन्थों के नाम भी मैंने कभी नही सुने थे उनकी सेवा का सुअवसर मुझे पूज्य माताजी के माध्यम से प्राप्त हो रहा है, यह मेरे महान् पुण्य का फल तो है ही किन्तु इसमें आपका अनुग्रहपूर्ण वात्सल्य भी कम नही।

जैसे काष्ठ मे लगी लोहे की कील स्वयं भी तर जाती है और दूसरों को भी तरने में सहायक होती है, उसी प्रकार सतत ज्ञानाराधना मे सलग्न पूज्य माताजी भी मेरी दृष्टि में तरण-तारण है। आपके सान्निध्य से मैं भी ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय का सामर्थ्य प्राप्त करूँ, यही भावना है।

मैं पूज्य माताजी के स्वस्थ एवं दीर्घजीवन की कामना करता हूँ।

विनीत :

ब्र० कजोड़ीमल कामदार, संघस्थ

पुरोवाक्

पूज्य आर्यिका श्री १०५ विशुद्धमती माताजी द्वारा अनूदित एवं प्रो० श्री चेतनप्रकाशजी पाटनी जोधपुर द्वारा सम्पादित 'तिलोय पण्णत्ती' का यह द्वितीय भाग जिज्ञासु–स्वाध्याय प्रेमी-पाठकों के समीप पहुंच रहा है। आचार्य प्रवर श्री यतिवृषभाचार्य द्वारा विरचित यह ग्रन्थ बीच-बीच में आये गणित के अनेक दुरूह प्रकरणों से युक्त होने के कारण साधारण श्रोताओं के लिये ही नहीं विद्वानों के लिये भी कठिन माना जाता है। टीकाकर्त्री विदुषी-माताजी ने अपनी प्रतिभा तथा गणितज्ञ विद्वानों के सहयोग से उन दुरूह प्रकरणों को सुगम बना दिया है तथा प्राकृत भाषा की चली आरही अशुद्धियों का परिमार्जन भी किया है।

माताजी ने अस्वस्थ दशा में भी अपनी साध्वी चर्या का पालन करते हुए इस ग्रन्थ की टीका की है, इससे उनकी आन्तरिक प्रेरणा और साहित्यिक अभिरुचि सहज ही अभिव्यक्त होती है। आशा है, इसका तीसरा भाग भी शीघ्र ही पाठकों के पास पहुंचेगा।

भारतवर्षीय दि० जैन महासभा का प्रकाशन विभाग इस आर्ष ग्रन्थ रत्न के प्रकाशन से गौरवान्वित हुआ है।

दि० २६-१-१९८६

विनीत :

पन्नालाल साहित्याचार्य

सागर

✡
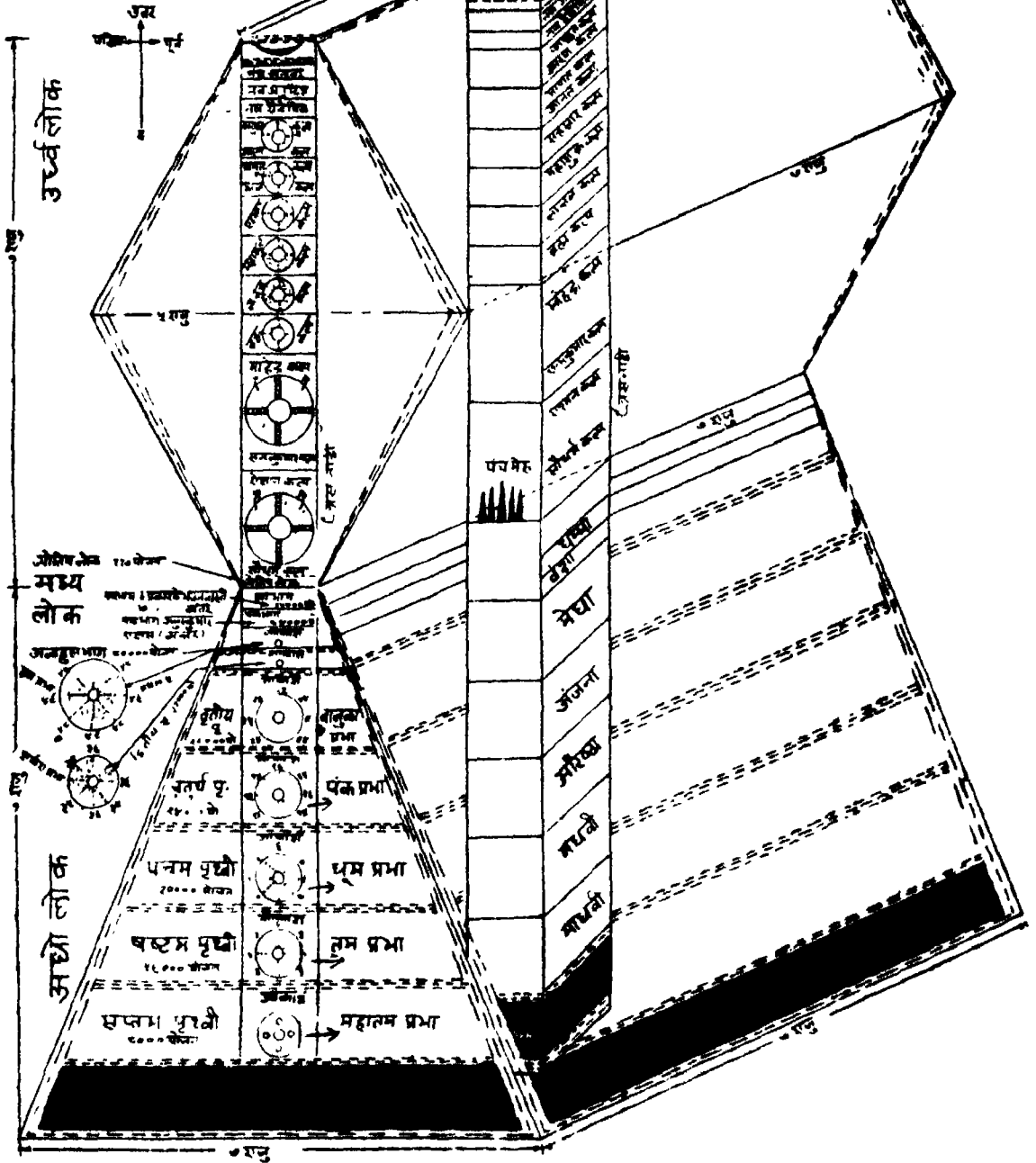
स म र्प ण

जिन्होंने असंयमरूपी कर्दम में फँसी हुई मेरी आत्मा को अपनी उदार
एवं वात्सल्यवृत्तिरूपी डोर से बाहर निकाल कर विशुद्ध किया तथा
रत्नत्रय का बीजारोपण कर मोक्षमार्ग पर चलने की
अपूर्व शक्ति प्रदान की, उन्हीं परमोपकारी
दीक्षा गुरु, परम श्रद्धेय, प्रातः स्मरणीय, शतेन्द्रवन्द्य
चारित्र चूडामणि दिगम्बर जैनाचार्य श्री १०८ स्व०
शिवसागरजी महाराज
की सत्तरहवीं पुण्यतिथि के
अवसर पर आपके ही पट्टाधीशाचार्य परम तपस्वी
जगद्वन्द्य, चारित्र शिरोमणि,
परम पूज्य धर्म दिवाकर प्रशममूर्ति
आचार्य श्री १०८ धर्मसागरजी महाराज
के पुनीत कर-कमलों में अनन्यश्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक
सादर समर्पित

—आर्यिका विशुद्धमती

टीकाकर्त्री आर्यिका श्री विशुद्धमती माताजी के विद्यागुरु प० पू० अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी आचार्यरत्न १०८ श्री अजितसागरजी महाराज का उन्हीं की हस्त-लिपि में

मंगल आशीर्वाद

तिलोयपण्णत्ति ग्रन्थ यतिवृषभाचार्य द्वारा रचित अतिप्राचीन कृति है। यह ग्रन्थ यथा नाम तथा गुणानुसार तीनलोक का अति विस्तृत एवं गहन वर्णन करता है। ऊर्ध्वलोक के वर्णन में कल्पवासी तथा कल्पातीत देवों का विस्तृत विवेचन है। मध्यलोक के कथन में ज्योतिषी देवों का एवं असंख्यात द्वीप समुद्रों का अति विशद निरूपण है, तथा अधोलोक के विवेचन में भवनवासी, व्यन्तरदेवों का कथन करते हुए नरकादि का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। अतः इस ग्रन्थ के अध्ययन अध्यापन से भव्यप्राणी भवभीरु बन सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर अपने सम्यग्ज्ञान की वृद्धि करते हुए यथाशक्ति अणुव्रत महाव्रत को धारण कर सुचारुरीत्या पालन कर स्वर्गमोक्ष के सुख को प्राप्त करें। विशुद्धमति करणानुयोग की मर्मज्ञा, व्याख्यान कला में अति निपुणा, विषम परिस्थिति को सम करने में तत्परा एवं अपने सान्निध्य में समागत विद्वानों से विवादास्पद विषयों पर निर्भयतापूर्वक न्यायोचित एवं आगमसम्मत चर्चा कर ठोस निर्णय करती है। अतिनिकृष्ट इस भौतिक युग में ऐसी विदुषी आर्यिका की नितान्त आवश्यकता है। यतः पण्डितवर्ग श्रेष्ठिवृन्द तथा त्यागिगणों के द्वारा किये गये आगमविरुद्ध प्रचार प्रसार को निःसंकोच भाव से निरोध कर सकें। ऐसी विदुषी आर्यिका विशुद्धमति ने पुरातन प्रतियों से मिलान कर अतिपरिश्रम पूर्वक इस ग्रन्थ की सरल सुबोध हिन्दी टीका की है, अतः पाठक गण इसका पठन पाठन चिन्तन एवं मनन कर अपने सम्यग्ज्ञान की वृद्धि करें तथा जैनशासन के प्रचार प्रसार में सहायक बन दुर्लभता से प्राप्त नरजन्म को सफल करें। हिन्दी टीका कर्त्री नीरोग रहकर शेष सम्पूर्ण जीवन को धर्मध्यान से व्यतीत करते हुए अपने लक्ष्य की सिद्धि में सतत संलग्न रहें ऐसी मेरी मङ्गल कामना है।

तथा मेरा यही शुभाशीर्वाद है कि विशेष उपयोगी अनुपलब्ध ग्रन्थों का अनुवाद कर श्रुताराधना करती रहें और धार्मिकजनों की ज्ञानवृद्धि में सहायिका बनें।

आद्यमिताक्षर

वर्तमान तीर्थाधिराज वीतराग, सर्वज्ञ और हितोपदेशी १००८ श्रीमद्देवाधिदेव **महावीर जिनेन्द्र** की दिव्य देशना, मनःपर्ययज्ञान और सप्त ऋद्धियों से युक्त **गणधरदेव** ने सुनी। पश्चात् तीर्थ-प्रवर्तन और भव्य जीवों के हितार्थ उन्होंने द्वादशांग रूप जिनवाणी की रचना की। **द्वादशाङ्ग** में **दृष्टिवाद** नाम का बारहवां **अङ्ग** अनेक शाखाओं-उपशाखाओं से समन्वित है। इसकी उपशाखाओं में दीप सागर प्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, सूर्य और चन्द्र प्रज्ञप्ति हैं। इन ग्रन्थों की विषयवस्तु से सम्बन्धित वर्णन ही इस **तिलोयपण्णत्ती ग्रन्थ** में है। स्वयं **आचार्य यतिवृषभ** ने इस बात का उल्लेख ग्रन्थ में किया है। **इयं दिट्ठं दिट्ठिवादम्हि (१/९९), वास उवयं भणामो णिस्संदं दिट्ठिवादादो (१/१४८)**; इत्यादि

तिलोयपण्णत्ती करणानुयोग का महान् ग्रन्थ है। लोक का विवेचन करते हुए आचार्य श्री ने इसमें खगोल और भूगोल के साथ-साथ शलाकापुरुषों का एवं इतिहास आदि का भी विस्तृत वर्णन किया है। ग्रन्थ नौ अधिकारों में विभक्त है। ग्रन्थकर्त्ता ने इसमें ८००० गाथाएँ कहने की सूचना दी है। जीवराज जैन ग्रन्थमाला, सोलापुर से प्रकाशित तिलोयपण्णत्ती के नौ अधिकारों की कुल (पद्य) गाथाएँ ५६७७ हैं। विद्वानों का कहना है कि इसमें १०,००० गाथाएँ हैं क्योंकि इसमें गद्य भाग भी है। यथार्थ प्रमाण प्रस्तुत करने के लिए गद्य भाग के अक्षर गिनकर गाथा बनाने का प्रयास किया है। ऐसा करते समय गद्य भाग के तो सम्पूर्ण अक्षर गिने ही गए हैं, साथ ही शीर्षक व समापन सूचक पदों के अक्षर भी गिने गये हैं। अनेक स्थानों पर संदृष्टियाँ बहुत बड़ी-बड़ी हैं अतः उन्हें छोड़ दिया गया है।

प्राचीन कानड़ी प्रतियों के आधार पर सम्पादित संस्करण के **प्रथम खण्ड** में प्रथम तीन महाधिकार— लोक का सामान्य विवेचन, नारकलोक दिग्दर्शन और भवनवासी लोक निरूपण संगृहीत हैं। श्री अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महा सभा द्वारा इसका प्रकाशन जुलाई १९८४ में हो चुका है। प्रथम खण्ड का विमोचन समारोह संवत् २०४१ आषाढ़ शुक्ला ३ दिनाङ्क १-७-८४ को रवि-पुष्य योग में तपस्वी सम्राट् **आचार्य १०८ श्री सन्मतिसागरजी महाराज** के पुण्य सान्निध्य में **भिण्डर** में सम्पन्न हुआ था। इस खण्ड में गद्य भाग केवल प्रथम अधिकार में है, जिसकी गणना करने पर ९१ गाथाएँ बनती हैं। इसप्रकार इन तीनों अधिकारों में कुल गाथाएँ (२८६+३७१+२५४+९१=)१००२ हैं।

प्रस्तुत द्वितीय खण्ड : मनुष्यलोक का दिग्दर्शन कराने वाला चतुर्थाधिकार तिलोयपण्णत्ती का सबसे बृहत्काय अधिकार है। इस द्वितीय खण्ड में मात्र चतुर्थाधिकार ही संगृहीत है। इसकी प्रेस कापी १-१०-८४ को प्रेस में भेजी गई थी। सोलापुर से प्रकाशित संस्करण में यह चौथा अधिकार प्रथम खण्ड में ही है। उसमें इस महाधिकार के अन्तर्गत २९६१ गाथाओं द्वारा १६ अन्तराधिकार कहे गये हैं किन्तु मुद्रित प्रति के पृष्ठ ४४८ पर गाथा २४१५ के बाद गाथा संख्या २४२६ लिखी गई है और टिप्पणी में १० गाथाएँ छूटने का उल्लेख किया गया है। अतः इस संस्करण में इस अधिकार में २९६१ गाथाएँ न होकर कुल २९५१ गाथाएँ ही हैं। जैनबद्री के कर्मनिष्ठ, सौम्यस्वभावी कर्मयोगी **भट्टारक श्री चारुकीर्तिजी** के सौजन्य से **पं० देवकुमारजी शास्त्री** के द्वारा किया

हुआ सं० १२६६ की प्राचीन कन्नड़ प्रति का जो लिप्यन्तरण प्राप्त हुआ उसमें ५५ गाथाएँ विशेष मिलीं जो सोलापुर से मुद्रित प्रति में नहीं हैं। इसप्रकार इस संस्करण में २६५१+५५=३००६ गाथाएँ हैं। शीर्षक एवं समापन सूचक पदों के अक्षरों की एवं गद्य भाग के अक्षरों की गणना करने पर १०७ गाथाएँ बनती हैं; इन्हें जोड़ कर कुल (३००६+१०७=)३११३ गाथाएँ होती हैं।

कन्नड़ प्रति से प्राप्त नवीन गाथाओं का सामान्य परिचय--सोलापुर से प्रकाशित प्रति में गाथा २५ के नीचे जो पाठान्तर छपा है, वह गलत है क्योंकि यह गाथा मूल विषय का उल्लेख करती है। इसके बाद एक गाथा मिली है जो पाठान्तर स्वरूप है। प्रस्तुत द्वितीय खण्ड में यह **२६वीं गाथा** है।

सोलापुर की प्रति में गाथा ५८ में जम्बूद्वीप का क्षेत्रफल निकाला गया है। इसके आगे गाथा ५६ से ६४ पर्यन्त उस क्षेत्रफल के कोस, धनुष और किष्कू आदि से लेकर परमाणु पर्यन्त भेद दर्शाये गये हैं किन्तु इसके बीच में *उत्तम भोगभूमि के बालाग्र, रथरेणु, त्रसरेणु और त्रटरेणु का माप दर्शाने वाली गाथा छूटी हुई थी, सो प्राप्त हुई है। यहां उसकी संख्या ६३ है।*

अन्य नवीन गाथाओं की गाथा संख्या और विषय इसप्रकार है—**गाथा १२०** विद्याधरनगरियो की अवस्थिति दर्शाती है। **गाथा २९७** पर्वांग और पर्व का प्रमाण बताती है। **गाथा ४१६, ४१७ और ४१८** भोगभूमिज जीवों के गुणस्थानों का निदर्शन कराती हैं। **गाथा ६८८** श्री सम्भवनाथ जिनेन्द्र की केवलज्ञान तिथि दर्शाती है। **गाथा ८३८** में कल्पवृक्षों से प्राप्त होने वाले पदार्थों का उल्लेख है। **गाथा संख्या १०६१ और १०६२** मे अवस्थित उग्र तप ऋद्धि का वर्णन है। **गाथा १३८८** चक्रवर्ती के सात जीवरत्नों को दर्शाती है। कल्की के विवेचन के अन्तर्गत दुःषम काल में होने वाले नाना उपसर्गों आदि को बताने वाली नौ गाथाएँ मिली हैं **१५३० से १५३८ तक। गाथा १६२२** में मध्यम भोगभूमि की आयु आदि बताई गई है। **गाथा १७०२** पद्मद्रह पर स्थित मध्यम परिषद् मे अवस्थित देव-प्रासादों का प्रमाण बताती है। पाण्डुक वन के तोरणद्वार पर युगल कपाटों को प्रदर्शित करने वाली **गाथा १८३५ है। गाथा १९९३** सौमनस वन के जिनभवनों के व्यासादि को व्यक्त करती है। शाल्मली वृक्ष की प्रथम भूमि में उपवन खण्डों को बतानेवाली नवीन **गाथा २१९४ है। गाथा २३०३** क्षेमानगरी के जिनभवनों के उत्सेध आदि का कथन करती है।

हिमवान पर्वत, हैमवत क्षेत्र और हरिवर्ष क्षेत्रों का सूक्ष्म क्षेत्रफल दर्शानेवाली गाथाएँ हैं–२४०३, २४०४ **और २४०५**। इनके बीच में महाहिमवान का सूक्ष्म क्षेत्रफल दर्शाने वाली गाथा कीड़ों द्वारा खाई जा चुकी है। जघन्य पातालों का प्रमाण आदि, ज्येष्ठ और मध्यम पातालों का अन्तराल, लवण समुद्र की मध्यम परिधि, ज्येष्ठ पातालों का अन्तराल और मध्यम पातालों का अन्तराल बताने वाली छह गाथायें हैं— **२४४६ से २४५१ तक। गाथा** २४७७ लवणसमुद्र की बाह्यवेदी से ७०० योजन ऊपर जाकर समुद्र पर ७२००० नगरियों की अवस्थिति दर्शाती है। **गाथा २५०० से २५१२** तक यानी १३ गाथाओं में आठ द्वीपों की स्थिति, आकार, व्यास और उनके अधिपति देव तथा चन्द्रद्वीप, रविद्वीप, मागध, वरतनु और प्रभास द्वीपों का आकार, व्यास एव उनके अधिपति देवों आदि का वर्णन किया गया है। गाथा सं० २६५४, २६५५ **और** २६५६ में धातकी खण्ड स्थित देवारण्यवन, भद्रशाल वन और मेरु के विस्तार आदि का विवेचन है। **गाथा** २६७४ कच्छा एवं गन्धमालिनी देश की परिधिरूप से आदिम लम्बाई को अभिव्यक्ति देती है और गाथा २८२८ पुष्करार्ध में इष्वाकार पर्वतों की स्थिति दर्शाती है।

कतिपय महत्त्वपूर्ण पाठ भेद—

सोलापुर से प्रकाशित प्रति में अनेक स्थलों पर जहाँ अर्थ आदि की यथार्थ संगति नहीं बन पाई थी वहाँ कन्नड़ प्रति से प्राप्त पाठ भेदों से अर्थ आदि शुद्ध हुए हैं। इनमें से कुछ स्थल इसप्रकार हैं—

१. **ववपवस्संसस्स पुढं** ······ ।।५७।। सोलापुर प्रति
ववपवसंसस्स पुढं ······ ।।६४।। सोलापुर प्रति में जो खत है, यह गा० ५६ और ६३ की मूल संदृष्टि का था। जो इन गाथाओं का अंश बन गया है अतः अर्थ की संगति नहीं बैठी। इसका शुद्ध रूप और अर्थ (विशेषार्थ सहित) गाथा ५७–५८ और ६५–६६ में दृष्टव्य है।

२. ······ **जिणिदपडिमाय सासदड्ढीए** ······ ।।१६१।। सोलापुर प्रति
··············· **सासदरिद्धीओ** ······ ।।२२९।। सोलापुर प्रति, इन दोनों गाथाओं के उपर्युक्त अंशों का अर्थ है कि वे जिनेन्द्र प्रतिमाएँ शाश्वत ऋद्धि को प्राप्त हैं। इनका पाठ भेद प्राप्त हुआ है **'सासद-ठिदीओ'** अर्थात् शाश्वत रूप से स्थित वे जिनेन्द्र प्रतिमाएँ ······। देखें गाथा १६४ और २३२।

३. ······ **हरिदा** ······ **सणील-वण्णाओ** ।।५८८।। सोलापुर प्रति, इस गाथा में सुपार्श्व और पार्श्वनाथ का हरित वर्ण तथा मुनिसुव्रतनाथ और नेमिनाथ का नील वर्ण कहा गया है। इनका पाठ भेद भी प्राप्त हुआ है ······ **णीला** ······ **सणीर छणवण्णा** ।। देखें गाथा ५९५।

४. ······ **अभिधाणा** ।।१३७५।। सोलापुर प्रति। अभिधाणा के स्थान पर 'तणुरक्खा' पाठ प्राप्त हुआ है जो "चक्रवर्ती के गणबद्ध नामक ३२००० देव अंगरक्षक हैं" इसका द्योतक है। देखें गाथा १३८६।

५. **तणुता य** ······ ।।१३७६।। सोलापुर प्रति। इसके स्थान पर 'तणुवेज्ज' पाठ प्राप्त हुआ है, जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। कारण कि अद्यावधि किसी भी ग्रन्थ में चक्रवर्ती के परिकर मे वैद्यो की संख्या देखने मे नहीं आई। देखें गाथा १३८७।

६. **तत्तो कक्की जुत्तो, इंदसुवो** ······ ।।१५०९।। सोलापुर प्रति। यहाँ **इंदसुदो**के स्थान पर **'इंदपुरे'** पाठ प्राप्त हुआ है। जो विशेष महत्त्व पूर्ण है, इससे कल्की के उत्पत्ति स्थान इन्द्रपुरी (दिल्ली) का द्योतन होता है। देखें गाथा १५२१ ।।

७. **तत्तो दोवे** ······ ।।१५१५।। सोलापुर प्रति। इसका अर्थ है कि दो वर्ष तक लोगो मे समीचीन धर्म की प्रवृत्ति रहती है। यहाँ **दोवे** के स्थान पर **थोवे** पाठ प्राप्त हुआ है। अर्थात् कुछ वर्षों पर्यन्त लोगों मे समीचीन धर्म की प्रवृत्ति रहती है। देखे गा० १५२७।

८. ······ **वसण-ठाणं विलवंति** ······ ।।१५४६।। सोलापुर प्रति। इसका अर्थ है कि छठे काल के अन्त मे जब प्रलय पड़ता है तब मनुष्य वस्त्र और स्थान की अभिलाषा करते हुए विलाप करते हैं। इसके पूर्व नवीन संस्करण की गा० १५५८ मे आचार्य स्वयं कह चुके हैं कि छठे काल के प्रारम्भ में मनुष्य वस्त्र और मकान आदि से रहित होते है तब कुछ कम २१००० वर्ष बीत जाने पर वस्त्र और मकान की अभिलाषा करना कैसे सम्भव हो सकता है ?

यहाँ 'वसरण' के स्थान पर 'सरण' पाठ प्राप्त हुआ है। जो महत्त्व पूर्ण ही नहीं अपितु सिद्धान्त की रक्षा करने वाला है। इसका अर्थ है कि प्रलय की वायु चलने पर मनुष्य शरण योग्य स्थान की अभिलाषा करते हैं। देखें गा० १५६७।

९. अट्ठुत्तरसय धणुप्पमाणाओ ।।१६३८।। सोलापुर प्रति। इस पद का अर्थ होता है कि वहाँ जिन प्रतिमायें १०८ धनुष ऊँची थीं। जो सिद्धान्त से मेल नहीं खाती। कन्नड़ प्रति में 'धणु' पद नहीं है। अर्थ यह हुआ कि वहाँ १०८ प्रतिमाएँ विराजमान हैं। इससे छन्द की मात्राएँ भी ठीक बैठ जाती हैं। देखें गाथा १६६०।

१०. ……… सत्त वरिसंति वासारत्तेसुं ………।।२२४८।। सोलापुर प्रति। यहाँ रत्तेसुं के स्थान पर गत्तेसुं पाठ प्राप्त हुआ है जिससे अर्थ में परिवर्तन हो गया है। सोलापुर प्रति में इस गाथा के अर्थ में विसंगति थी वह अब ठीक होगई है। देखें–गाथा २२७४।

ऐसे अन्य भी अनेक स्थल हैं किन्तु विस्तार-भय से यहाँ नहीं लिखे जा रहे हैं।

तिलोयपण्णत्ती के प्रस्तुत संस्करण की मूलाधार कन्नड़ की ही प्रति है अतः प्रायः उसी प्रति के पाठ ग्रहण कर मूल को अधिकाधिक शुद्ध बनाने का प्रयास किया गया है तथापि बुद्धि की मन्दता और ग्रन्थ की जटिलता के कारण कहीं स्खलन आगया हो तो गुरुजन एवं विद्वज्जन संशोधित करके ही स्वाध्याय करें।

विचारणीय स्थल : इस अधिकार के कतिपय स्थलों का समाधान बुद्धिगत नहीं हुआ। निम्नलिखित स्थल गुरुजनों एवं विद्वानों द्वारा विचारणीय हैं—

* ग्रन्थ के प्रथम अधिकार की गाथा ११० में मनुष्यों आदि के शरीर एवं उनके निवास स्थानों का प्रमाण उत्सेधांगुल से कहा गया है तथा गाथा १११ में द्वीप, समुद्र आदि का प्रमाण प्रमाणांगुल से कहा गया है। किन्तु चतुर्थाधिकार की गाथा ५१ से ५६ पर्यन्त जम्बूद्वीप की सूक्ष्म परिधि का प्रमाण निकालते हुए योजनों से कोस बनाने के लिए ४ कोस का गुणा किया गया है तथा समवसरण, तत्रस्थित सोपानों, वीथियों और वेदियों आदि का विशद वर्णन गाथा ७२४ से ७४० तक किया है, वहाँ भी योजनों से कोस बनाने के लिए ४ कोस का ही गुणा किया गया है अर्थात् जम्बूद्वीप आदि और समवसरणादि दोनों का माप उत्सेधांगुल ही ग्रहण किया गया है, ऐसा क्यों ?

* गाथा १७६ में अंत और अंतु दोनों पाठ प्राप्त हुए हैं; यहाँ कौनसा पाठ प्रयोजनीय रहेगा ?

* गाथा ४५९ में प्रतिश्रुति आदि पाँच कुलकरों ने 'हा' दण्ड विधान की व्यवस्था की। गाथा ४८१ में आगे के ५ कुलकरों ने 'हा' 'मा' दण्ड-व्यवस्था बनाई। इसके आगे शेष कुलकरों द्वारा दण्ड-व्यवस्था का वर्णन नहीं आया। क्यों ?

* गाथा ६११, ६१२–राज्यावस्था के विवेचन के तुरन्त बाद तीर्थंकरों के चिह्नों का वर्णन क्यों किया गया है ? क्या ये चिह्न राज्यकालीन ध्वजा के हैं ?

* गाथा ६५१–भगवान आदिनाथ ने चैत्र कृष्णा ९ को दीक्षा ग्रहण की और प्रथम पारणा एक वर्ष (गाथा ६७८) में किया। वैशाख शुक्ला तृतीया (अक्षय तृतीया) तक तो एक वर्ष, एक माह, ८ दिन होते हैं। यह कैसे ?

* गाथा ६५१–'उववासे छट्ठमिम' का अर्थ दो उपवास लेना है। तब क्या ऋषभदेव ने वेला उपवास के साथ दीक्षा ग्रहण की थी किन्तु (गाथा ६७८ में) पारणा एक वर्ष बाद करने का उल्लेख है तब दो उपवास की संगति कैसे बैठेगी ?

* गाथा ८८२–जिन पीठों पर चढ़ कर गणधर देव स्तुति पूजनादि करते हैं उन्हीं पर आर्यिका प्रमुख और देवियाँ (स्त्री पर्याय वाली) प्रमुख कैसे चढ़ सकती हैं ?

* गाथा ९०८ से ९१५ में केवलज्ञान के ११ अतिशय और गाथा ९१६ से ९२३ में देवकृत १३ अतिशय कहे गये हैं।

* गाथा ९३२ में दिव्यध्वनि को प्रातिहार्य न बता कर 'भक्तियुक्त गणों द्वारा वेष्टित' होने को प्रातिहार्य कहा गया है।

* गाथा ९४१ मिथ्यादृष्टि और अभव्य जीवों का समवसरण मे प्रवेश निषिद्ध करती है।

* गाथा ९७८ में गणधरदेव की ऋद्धियों मे केवलज्ञान भी बताया गया है। गणधर को प्रारम्भ में तो केवलज्ञान होता नहीं; फिर केवलज्ञान हो जाने पर शेष ऋद्धियों की आवश्यकता ही क्या रही ? गणधर को केवल-ऋद्धि कैसे ?

* गाथा ११६९–ऋषभदेव माघ कृष्णा चतुर्दशी के पूर्वाह्न में मोक्ष पधारे। गाथा १२५० में कहा है कि ऋषभजिनेन्द्र तृतीय काल में ३ वर्ष ८½ माह शेष रहने पर मोक्ष गए। गाथा १२८७ में ऋषभजिनेन्द्र के मोक्षगमन के पश्चात् ३ वर्ष ८½ माह व्यतीत होने पर चतुर्थकाल का प्रवेश हुआ कहा गया है। माघ कृष्णा चतुर्दशी से आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा पर्यन्त ५½ माह ही होते हैं, ८½ माह नहीं क्योंकि युग का प्रारम्भ श्रावण कृष्णा प्रतिपदा से ही होता है। जैसे–गाथा १२१९ में वीर जिनेन्द्र कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी के प्रत्यूष काल (चतुर्दशी के अन्तिम प्रहर अर्थात् अमावस्या का उषा काल) में मोक्ष गए, ऐसा कहा है। गाथा १२५० मे कहा है कि वीर जिनेन्द्र चतुर्थकाल के ३ वर्ष ८½ माह शेष रहने पर मोक्ष गये। यहाँ कार्तिक कृष्णा अमावस्या से आषाढ़ी पूर्णिमा पर्यन्त ८½ माह हो जाते हैं। गाथा ५६० में कहा गया है कि तृतीय काल के चौरासी लाख पूर्व और ३ वर्ष ८½ माह शेष थे तब ऋषभदेव का जन्म हुआ। गाथा ५८६ में ऋषभजिनेन्द्र की आयु ८४ लाख पूर्व की कही गई है तब यदि मोक्ष तिथि माघ कृष्णा चतुर्दशी ही मानी जाय तो ऋषभजिनेन्द्र ८४ लाख पूर्व और ३ माह पर्यन्त इस भव में रहे, ऐसा सम्भव नहीं है। इन प्रमाणों से ऋषभजिनेन्द्र की मोक्ष कल्याणक तिथि पर विचार अपेक्षित है।

* गाथा १२४४–१२४८ में सौधर्म स्वर्ग से ऊर्ध्वग्रैवेयक पर्यन्त उत्पन्न होने वाले ऋषभादि चौबीस तीर्थंकरों के शिष्यों की संख्या कही गई है और गाथा १२२६–१२२८ में अनुत्तरोत्पन्न शिष्यों की संख्या कही गई है; तो क्या किसी भी तीर्थंकर का कोई भी शिष्य अनुदिशों मे उत्पन्न नहीं हुआ ?

* गाथा १२४०–वीर जिनेन्द्र के ४४०० शिष्य मोक्ष गये है। गाथा १२४१–१२४२ के अनुसार वीर-जिनेन्द्र को केवलज्ञान होने के ६ वर्ष पश्चात् से उनके शिष्यों को मोक्ष होना प्रारम्भ हो गया था। गाथा १२१९ में कहा है कि वीर एकाकी सिद्ध हुए हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि अन्य तीर्थंकरों के साथ दी हुई मुनि संख्या (एक साथ) मुक्त संख्या न होकर सह-संख्या होगी।

* गाथा १३१७ और १३१९ में चतुरंग बल (सेना), गाथा १३३१ में पंचाङ्ग सेना और गाथा १३३८, १३५३, १३७३ और १३७५ में षडङ्ग सेना शब्द आये हैं। इनका भाव स्पष्ट नहीं हुआ।

* गाथा १४५४ में चौबीस कामदेवों के नाम नहीं दर्शाये गये हैं।

* गाथा १४८५ मे १६९ महापुरुष न कह कर १६० ही कहे गये है। ९ प्रतिनारायणों का उल्लेख नहीं हुआ।

* गाथा १५५६ से १५७१ पर्यन्त तीक्ष्णपवन, शीतल एवं क्षार जल, विष, धूम, धूलि, वज्र और अग्नि इन सात कुवृष्टियों का कथन किया है किन्तु गाथा १५७९ से १५८२ पर्यन्त जल, दूध, अमृत और रस इन चार का ही सात-सात दिन तक वृष्टि करने का कथन आया है, तब ये ४९ दिन कैसे होंगे ?

* गाथा १६४२ : सातवें, तेईसवे और अन्तिम तीर्थंकर पर उपसर्ग। सुपार्श्वनाथ जिनेन्द्र पर क्या उपसर्ग हुए ?

* गाथा १८५३ सौधर्म और ईशान इन्द्र पाण्डुकशिला पर बाल भगवान का जन्माभिषेक बैठ कर करते हैं।

* गाथा २६२८ में धातकीखण्ड स्थित भद्रशाल वन की पूर्वा पर लम्बाई कही गई है। गाथा २६२९ मे इसी वन के उत्तर-दक्षिण विस्तार की उपलब्धि का निषेध किया है किन्तु गाथा २६३० मे वही विस्तार दर्शाया गया है; ऐसा क्यों ?

* गाथा २८६६ में पुष्करार्ध स्थित भद्रसाल की पूर्वापर लम्बाई २१५७५८ योजन कही गई है और इससे चार गाथा आगे गाथा २८७० में पुनः यही प्रमाण दर्शाया है। क्यों ?

* गाथा ३००३ में आठ समयों में उत्कृष्ट रूप से सिद्ध होने वालों की संख्या (३२+४८+६०+७२+८४+९६+१०८+१०८=६०८ कही गई है। गाथा ३००४ में मध्यम प्रतिपत्ति से सब समयों में (६०८÷८=) ७६ जीव न कह कर (५९२÷८=) ७४ जीव कहे गये हैं। इसके आगे भी गाथा ३००५ में अतीत काल के सर्व समयों को ६०८ से गुणित न करके ५९२ से गुणा कर सर्व मुक्त जीवों का प्रमाण निकाला गया है। क्यों?

समानार्थक गाथाएँ—जम्बू आदि अढ़ाई द्वीप का और लवण समुद्र व कालोदधि का वर्णन प्रायः एक जैसा ही है अतः ग्रन्थ में प्रायः समान अर्थ को दर्शाने वाली अनेक गाथायें हैं। जैसे–गाथा ५२४, ५२५ और ५२६ में गाथा १४२३, १४२४ एवं १४२५ की समानता है। इसी प्रकार गाथा ५२७ और १४५१ में, ५२८ और १४५२ में, १६६१ एवं १९०५ में, २०२७ एवं २०३५–३६ में; २५६० और २८३८ में, २५६१ में और २८३९; २५६२

और २८४० में; २५६३ और २८४१ में; २५९४ और २८४२ में; २६३५ और २८६३ में; २६५०, २६५१ और २८७४–७५ में; २६५८ और २८७६ में, २७०७ और २९२२ में, २७०८ और २९२३ में और २८६६ तथा २८७० में भाव साम्य है।

कार्यक्षेत्र—उदयपुर नगर के मध्य मण्डी की नाल में स्थित १००८ **श्री पार्श्वनाथ दि० जैन खण्डेलवाल मन्दिर में** रह कर ही इस अधिकार का कार्य पूर्ण किया गया है।

सम्बल—इस भव्य जिनालय मे स्थित भूगर्भ प्राप्त, श्यामवर्ण, खड्गासन लगभग ३' उत्तुंग, अतिशयवान अतिमनोज्ञ १००८ श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ जिनेन्द्र की चरण-रज एव हृदय स्थित आपकी अनुपम भक्ति, आगम-निष्ठा और परम पूज्य श्रद्धेय साधु परमेष्ठियों का शुभाशीर्वाद रूप वरद हस्त ही मेरा सम्बल रहा है। क्योंकि जैसे लकड़ी के आधार बिना अन्धा व्यक्ति चल नही सकता वैसे ही देव, शास्त्र और गुरु की भक्ति बिना मैं भी यह महान् कार्य नहीं कर सकती थी। ऐसे तारण–तरण देव, शास्त्र, गुरु को मेरा कोटिशः त्रिकाल नमोऽस्तु! नमोऽस्तु!! नमोऽस्तु!!!

आधार—प्रो० आदिनाथ उपाध्याय एवं प्रो० हीरालालजी द्वारा सम्पादित, पं० बालचन्द्र सिद्धान्त-शास्त्री द्वारा हिन्दी भाषानुवादित एवं **जीवराज ग्रन्थमाला, सोलापुर से प्रकाशित तिलोयपण्णत्ती और जैनबद्री स्थित जैन मठ की कन्नड़ प्रति से** की हुई देवनागरी लिपि ही इस खण्ड की आधार शिला है।

सहयोग—सम्पादक **श्री चेतनप्रकाशजी पाटनी** सौम्य मुद्रा, सरल हृदय, संयमित जीवन और समीचीन ज्ञान भण्डार के धनी है। आधि और व्याधि के सदृश उपाधिरूपी रोग से आप अहर्निश अपना बचाव करते रहते हैं। निर्लोभवृत्ति आपके जीवन की सबसे महान् विशेषता है।

हिन्दी भाषा पर आपका विशिष्ट अधिकार है। आपके द्वारा किये हुए यथोचित संशोधन, परिवर्धन एवं परिवर्तनों से ग्रन्थ को विशेष सौष्ठवता प्राप्त हुई है।

सूक्ष्मातिसूक्ष्म अर्थ आदि को पकड़ने की तत्परता आपको पूर्व–पुण्य योग मे सहज ही उपलब्ध है।

सम्पादन कार्य के अतिरिक्त समय–समय पर आपका बहुत सहयोग प्राप्त होता रहा है।

प्रो० श्री लक्ष्मीचन्द्रजी जैन जबलपुर ने गणित की दृष्टि से ग्रन्थ का अवलोकन कर, हिमवान आदि पर्वत एवं हरिवर्ष आदि क्षेत्रों का सूक्ष्म क्षेत्रफल निकालकर तथा इस अधिकार की गणित सम्बन्धी प्रस्तावना लिख कर सराहनीय सहयोग दिया है।

प्रतियों के मिलान एवं पाठों के चयन आदि में **डा० उदयचन्दजी जैन उदयपुर** का पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ है।

पूर्व अवस्था के विद्यागुरु, सरस्वती की सेवा में अनवरत सलग्न, सरल प्रकृति और सौम्याकृति विद्वच्छिरोमणि **श्री पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य** सागर वृद्धावस्था में प्रवास की कठिनाइयोंको नगण्य मानते हुए सन् १९८४ के वर्षायोग में ग्रन्थावलोकनार्थ भिण्डर पधारे थे। आपकी सत्प्रेरणा ही यह महान् कार्य कराने में सक्षम हुई है।

श्री उदार चेता, दानशील श्री निर्मलकुमारजी सेठी इस ज्ञानयज्ञ के प्रमुख यजमान हैं। आपने सेठी ट्रस्ट के विशेष अनुदान से प्रथम खण्ड और यह द्वितीय खण्ड भव्यजनों के हाथ में पहुँचाया है और पहुँचा रहे हैं। आपका यह अनुपम सहयोग अवश्य ही विशुद्धज्ञान में सहयोगी होगा।

संघस्थ ब्रह्मचारी एवं ब्रह्मचारिणीजी, प्रेस मालिक श्री पांचूलालजी, श्री विमलप्रकाशजी ड्राफ्ट्समेन अजमेर श्री रमेशकुमार मेहता उदयपुर एवं श्री दि० जैन समाज उदयपुर का सहयोग प्राप्त होने से ही आज यह द्वितीय खण्ड नवीन परिधान में प्रकाशित हो पाया है।

आशीर्वाद : इस सम्यग्ज्ञान रूपी महायज्ञ में तन, मन एवं धन आदि से जिन जिन भव्य जीवों ने किञ्चित् भी सहयोग दिया है वे सब परम्पराय शीघ्र ही विशुद्धज्ञान को प्राप्त करें। यही मेरा आशीर्वाद है।

मुझे प्राकृत भाषा का किञ्चित् भी ज्ञान नहीं है। बुद्धि अल्प होने से विषयज्ञान भी न्यूनतम है। स्मरण शक्ति और शारीरिक शक्ति क्षीण होती जा रही है। इस कारण स्वर, व्यंजन, पद, अर्थ एवं गणित आदि की भूल हो जाना स्वाभाविक है क्योंकि—'को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे' अत: परम पूज्य गुरुजनों से इसके लिये क्षमाप्रार्थी हूँ। विद्वज्जन ग्रन्थ को शुद्ध करके ही अर्थ ग्रहण करें।

इत्यलम्! भद्रं भूयात्!

सं० २०४२
बसन्त पंचमी

आर्यिका विशुद्धमती
दिनांक १३-२-१९८६

✡

आद्यमिताक्षर

वीतराग, सर्वज्ञ और हितोपदेशी भगवान जिनेन्द्र के मुखारविन्द से निर्गत जिनागम चार अनुयोगों में सम्विभक्त है। प्रथमानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग की अपेक्षा गणित प्रधान होने से करणानुयोग का विषय जटिलताओं से युक्त होता है।

सिद्धान्त चक्रवर्ती श्री नेमिचन्द्राचार्य विरचित त्रिलोकसार वासना सिद्धि प्रकरणों के कारण दुरूह है। करणानुयोग मर्मज्ञ श्री रतनचन्द्र जी मुख्तार सहारनपुर वालों की प्रेरणा और सहयोग से इस ग्रन्थ की टीका हुई। इसका प्रकाशन सन् १९७५ में हुआ था, इसके पूर्व पं टोडरमल जी की हिन्दी टीका के अतिरिक्त इस ग्रन्थ की अन्य कोई हिन्दी टीका उपलब्ध नहीं हुई थी।

श्री सकलकीर्त्याचार्य विरचित सिद्धान्तसार दीपक त्रिलोकसार जैसा कठिन नहीं था, किन्तु यह ग्रन्थ अप्रकाशित था। हस्तलिखित में भी इस ग्रन्थ की कोई टीका उपलब्ध नहीं हुई। हस्तलिखित प्रतियों से टीका करने में कठिनाई का अनुभव हुआ। इस ग्रन्थ का प्रकाशन सन् १९८१ में हो चुका था।

तिलोयपण्णत्ती में त्रिलोकसार सदृश वासना सिद्धि नहीं है फिर भी ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय सरल नहीं है। इस ग्रन्थ के (प्रथम और पंचम) ये दो अधिकार अत्यधिक कठिन है। सन् १९७५ में श्री रतनचन्द्र जी मुख्तार से प्रथमाधिकार की कठिन-कठिन ८३ गाथाएँ समझ कर आकृतियों सहित नोट कर ली थीं। मन बार-बार कह रहा था कि इन गाथाओं का यह सरलार्थ यदि प्रकाशित हो जाय तो स्वाध्याय संलग्न भव्यों को विशेष लाभ प्राप्त हो सकता है, इसी भावना से सन् १९७७ में जीवराज ग्रन्थमाला को लिखाया कि यदि तिलोयपण्णत्ती का दूसरा संस्करण छप रहा हो तो सूचित करें, उसमें कुछ गाथाओं का गणित स्पष्ट करके छापना है, किन्तु संस्था से दूसरा संस्करण निकला ही नहीं। इसी कारण टीका के भाव बने और २२।११।१९८१ को टीका प्रारम्भ की तथा १६।२।८२ को दूसरा अधिकार पूर्ण कर प्रेस में भेज दिया। पूर्व सम्पादकों का श्रम यथावत् बना रहे इस उद्देश्य से गाथार्थ यथावत् रखकर मात्र गणित की जटिलताएँ सरल कीं। इनमें भी पॉच-सात गाथाओं की संदृष्टियों का अर्थ बुद्धिगत नहीं हुआ फिर भी कार्य सतत् चलता रहा और २०।३।८२ तृतीयाधिकार भी पूर्ण हो गया, किन्तु इसकी भी तीन चार गाथाएँ स्पष्ट नहीं हुई। चतुर्थाधिकार की ५६ गाथा से आगे तो लेखनी चली ही नहीं, अत: कार्य बन्द करना पड़ा।

समस्या के समाधान हेतु स्वस्ति श्री भट्टारक जी मूड़विद्री से सम्पर्क साधा। वहाँ से कुछ पाठ भेद आये उससे भी समाधान नहीं हुआ। अनायास स्वस्ति श्री कर्मयोगी भट्टारक चारुकीर्ति जी जैनविद्री का सम्पर्क हुआ, वहाँ से पूरे ग्रन्थ की लिप्यन्तर प्रति प्राप्त हुई जिसमें अनेक बहुमूल्य पाठभेद और

छूटी हुई ११५ गाथाएँ प्राप्त हुई जो इस प्रकार हैं–

अधिकार –	प्राप्त गाथाएँ	
प्रथम –	३	इन तीन अधिकारों का प्रथम खण्ड है। इस खण्ड में ४५ चित्र और १९ तालिकाएँ हैं।
द्वितीय –	४	
तृतीय –	१९	
चतुर्थ –	५५	चतुर्थ अधिकार का दूसरा खण्ड है, इसमें ३० चित्र और ४६ तालिकाएँ हैं।
पंचम–	२	इन पाँच अधिकारों का तृतीय खण्ड है। इस खण्ड में १५ चित्र और ३३ तालिकाएँ हैं।
षष्ठ –	०	
सप्तम–	५	
अष्टम–	२३	
नवम–	४	

इस पूरे ग्रन्थ में नवीन प्राप्त गाथाएँ ११५, चित्र ९० और तालिकाएँ ९५ है। पाठ भेद अनेक हैं। पूरे ग्रन्थ में अनुमानतः ५२-५३ विचारणीय स्थल हैं, जो दूसरे एवं तीसरे खण्ड के प्रारम्भ में दिये गये हैं। ग्रन्थ प्रकाशित हुए लगभग नौ वर्ष हो चुके हैं किन्तु इन विचारणीय स्थलों का एक भी समाधान प्राप्त नहीं हुआ।

बुद्धिपूर्वक सावधानी बरतते हुए भी **'को न विमुह्यति शास्त्र समुद्रे'** नीत्यानुसार अशुद्धियाँ रहना स्वाभाविक है।

इस द्वितीय संस्करण के प्रकाशन के प्रेरणा सूत्र परमपूज्य १०८ श्री उपाध्याय ज्ञान सागर जी के चरणों में सविनम्र नमोऽस्तु करते हुए मैं आपका आभार मानती हूँ।

इस संस्करण को श्री १००८ चन्द्रप्रभ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र देहरा-तिजारा की कार्यकारिणी ने अपनी ओर से प्रकाशित कराया है। सभी कार्यकर्त्ताओं को मेरा शुभाशीर्वाद।

आर्यिका विशुद्धमति

दि २७ ६ १९९७

अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी, आर्षमार्गपोषक

परम पू० १०५ आर्यिका श्री विशुद्धमती माताजी

[संक्षिप्त जीवन-वृत्त]

गेहुँआ वर्ण, मझोला कद, अनतिस्थूल शरीर, चौड़ा ललाट, भीतर तक झाँकती सी ऐनक धारण की हुई आँखे, हित-मित-प्रिय स्पष्ट बोल, संयमित सधी चाल और सौम्य मुखमुद्रा—बस, यही है उनका **अंगन्यास**।

नंगे पाँव, लुञ्चितसिर, धवल शाटिका, मयूरपिच्छिका—बस, यही है उनका **वेष-विन्यास**।

विषयाशाविरक्त, ज्ञानध्यान-तप-जप में सदा निरत, करुणासागर, परदुःख-कातर, प्रवचनपटु, निःस्पृह, समता-विनय-धैर्य और सहिष्णुता की साकारमूर्ति, भद्रपरिणामी, साहित्य-सृजनरत, साधना में वज्र से भी कठोर, वात्सल्य में नवनीत से भी मृदु, आगमनिष्ठ, गुरुभक्तिपरायण, प्रभावनाप्रिय— बस, यही है उनका **अन्तर आभास**।

जूली और जया, जानकी और जेबुन्निसा सबके जन्मों का लेखा-जोखा नगरपालिकायें रखती है पर कुछ ऐसी भी हैं जिनके जन्म का लेखा-जोखा राष्ट्र, समाज और जातियों के इतिहास स्नेह और श्रद्धा से अपने अंक में सुरक्षित रखते हैं। वि० सं० १९८६ की चैत्र शुक्ला तृतीया को रीठी (जबलपुर, म० प्र०) में जन्मी वह बाला सुमित्रा भी ऐसी ही रही है—जो आज है आर्यिका विशुद्धमती माताजी ।

इस शताब्दी के प्रसिद्ध सन्त पूज्य श्री गणेशप्रसाद जी वर्णी के निकट सम्पर्क मे संस्कारित धार्मिक गोलापूर्व परिवार में सद्गृहस्थ पिताश्री लक्ष्मणलाल जी सिंघई एवं माता सौ० मथुराबाई की पाँचवीं सन्तान के रूप में सुमित्राजी का पालन-पोषण हुआ। घूँटी में ही दयाधर्म और सदाचार के संस्कार मिले। फिर थोड़ी पाठशाला की शिक्षा, बस; सब कुछ सामान्य, विलक्षणता का कहीं कोई चिह्न नहीं। आयु के पन्द्रह वर्ष बीतते-बीतते पास के ही गाँव बाकल में एक घर की वधू बनकर सुमित्राजी ने पिता का घर छोड़ा। इतने सामान्य जीवन को लखकर तब कैसे कोई अनुमान कर लेता कि यह बालिका एक दिन ठोस आगमज्ञान प्राप्त करके स्व-पर-कल्याण के पथ पर आरूढ हो स्त्री-पर्याय का उत्कृष्ट पद प्राप्त कर लेगी।

सच है, कर्मों की गति बड़ी विचित्र होती है। चन्द्रमा एवं सूर्य का राहु और केतु नामक ग्रह-विशेष से पीड़ा, सर्प तथा हाथी को भी मनुष्यों के द्वारा बन्धन और विद्वद्जन की दरिद्रता देखकर अनुमान लगाया जाता है कि नियति बलवान है और फिर काल ! काल तो महाक्रूर है ! 'अपने मन कछु और है विधना के कछु और'। दैव दुर्विपाक से सुमित्राजी के विवाह के कुछ ही समय बाद उन्हें सदा के लिए मातृ-पितृ-वियोग हुआ और विवाह के डेढ़ वर्ष के भीतर ही कन्या-जीवन के लिए अभिशापस्वरूप वैधव्य ने आपको आ घेरा।

अब तो सुमित्राजी के सम्मुख समस्याओं से घिरा सुदीर्घ जीवन था। इष्ट (पति और माता-पिता) के वियोग से उत्पन्न हुई असहाय स्थिति बड़ी दारुण थी। किसके सहारे जीवन-यात्रा व्यतीत होगी ? किस प्रकार निश्चित जीवन मिल सकेगा ? अवशिष्ट दीर्घजीवन का निर्वाह किस विधि होगा ? इत्यादि नाना प्रकार की विकल्प-लहरियाँ मानस को मथने लगीं। भविष्य प्रकाशविहीन प्रतीत होने लगा। संसार में शीलवती स्त्रियाँ धैर्यशालिनी होती हैं, नाना प्रकार की विपत्तियों को वे हँसते-हँसते सहन करती हैं। निर्धनता उन्हें डरा नहीं सकती, रोगशोकादि से वे विचलित नहीं होतीं परन्तु पतिवियोगसदृश दारुण दुःख का वे प्रतिकार नहीं कर सकती हैं। यह दुःख उन्हें असह्य हो जाता है। ऐसी दुःखपूर्ण स्थिति में उनके लिए कल्याण का मार्ग दर्शाने वाले विरल ही होते हैं और सम्भवतया ऐसी ही स्थिति के कारण उन्हें 'अबला' भी पुकारा जाता है। परन्तु सुमित्राजी में आत्मबल प्रगट हुआ, उनके अन्तरंग में स्फुरणा हुई कि इस जीव का एक मात्र सहायक या अवलम्बन धर्म ही है। **'धर्मो रक्षति रक्षितः'**। अपने विवेक से उन्होंने सारी स्थिति का विश्लेषण किया और 'शिक्षार्जन' कर स्वावलम्बी (अपने पाँवों पर खड़े) होने का संकल्प लिया। भाइयों— श्री नीरज जी और श्री निर्मल जी, सतना—के सहयोग से केवल दो माह पढ़ कर प्राइमरी की परीक्षा उत्तीर्ण की। मिडिल का त्रिवर्षीय पाठ्यक्रम दो वर्ष में पूरा किया और शिक्षकीय प्रशिक्षण प्राप्त कर अध्यापन की अर्हता अर्जित की और अनन्तर सागर के उसी महिलाश्रम में जिसमें उनकी शिक्षा का श्रीगणेश हुआ था—अध्यापिका बनकर सुमित्राजी ने स्व + अवलम्बन के अपने संकल्प का एक चरण पूर्ण किया।

सुमित्राजी ने महिलाश्रम (विधवाश्रम) का सुचारु रीत्या संचालन करते हुए करीब बारह वर्ष पर्यन्त प्रधानाध्यापिका का गुरुतर उत्तरदायित्व भी सँभाला। आपके सद्प्रयत्नों से आश्रम में श्री पार्श्वनाथ चैत्यालय की स्थापना हुई। भाषा और व्याकरण का विशेष अध्ययन कर आपने भी 'साहित्यरत्न' और 'विद्यालंकार' की उपाधियाँ अर्जित कीं। विद्वद्शिरोमणि डॉ० पं० पन्नालाल जी साहित्याचार्य का विनीत शिष्यत्व स्वीकार कर आपने 'जैन सिद्धान्त' में प्रवेश किया और धर्म विषय में 'शास्त्री' की परीक्षा उत्तीर्ण की। अध्यापन और शिक्षार्जन की इस संलग्नता ने सुमित्रा जी के जीवनविकास के नये क्षितिजों का उद्घाटन किया। शनैः शनैः उनमें 'ज्ञान का फल' अंकुरित होने लगा। एक सुखद संयोग ही समझिये कि सन् १९६२ में परमपूज्य परमश्रद्धेय (स्व०)

आचार्यश्री धर्मसागर जी महाराज का वर्षायोग सागर में स्थापित हुआ। आपकी परम निरपेक्षवृत्ति और शान्त सौम्य स्वभाव से सुमित्राजी प्रभिभूत हुई। संघस्थ प्रवरवक्ता पूज्य १०८ (स्व०) श्री सन्मतिसागर जी महाराज के मार्मिक उद्बोधनों से आपको असीम बल मिला और आपने स्व + अवलम्बन के अपने संकल्प के अगले चरण की पूर्ति के रूप में चरित्र का मार्ग अंगीकार कर सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये।

विक्रम संवत् २०२१, श्रावण शुक्ला सप्तमी, दि० १४ अगस्त, १९६४ के दिन परम पूज्य तपस्वी, अध्यात्मवेत्ता, चारित्रशिरोमणि, दिगम्बराचार्य १०८ श्री शिवसागरजी महाराज के पुनीत कर-कमलों से ब्रह्मचारिणी सुमित्राजी की आर्यिका दीक्षा अतिशयक्षेत्र पपौराजी (म० प्र०) में सम्पन्न हुई। अब से सुमित्राजी 'विशुद्धमती' बनीं। बुन्देलखण्ड में यह दीक्षा काफी वर्षों के अन्तराल से हुई थी अत: महती धर्मप्रभावना का कारण बनी।

आचार्यश्री के संघ में ध्यान और अध्ययन की विशिष्ट परम्पराओं के अनुरूप नवदीक्षित आर्यिकाश्री के नियमित शास्त्राध्ययन का श्रीगणेश हुआ। संघस्थ परम पूज्य आचार्यकल्प श्रुतसागर जी महाराज ने द्रव्यानुयोग और करणानुयोग के ग्रन्थों में आर्यिकाश्री का प्रवेश कराया। अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी पूज्य अजितसागरजी महाराज ने न्याय, साहित्य, धर्म और व्याकरण के ग्रन्थों का अध्ययन कराया। जैन गणित के अभ्यास में और षट्खण्डागम सिद्धान्त के स्वाध्याय में ब्र० पं० रतनचन्दजी मुख्तार आपके सहायक बने। सतत परिश्रम, अनवरत अभ्यास और सच्ची लगन के बल पर पूज्य माताजी ने विशिष्ट ज्ञानार्जन कर लिया। यहाँ इस बात का उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा कि दीक्षा के प्रारम्भिक वर्षों में आहार में निरन्तर अन्तराय आने के कारण आपका शरीर अत्यन्त अशक्त और शिथिल हो चला था पर शरीर में बलवती आत्मा का निवास था। श्रावकों—वृद्धों की ही नहीं अच्छी आँखों वाले युवकों की लाख सावधानियों के बावजूद भी अन्तराय आहार में बाधा पहुँचाते रहे। आर्यिकाश्री की कड़ी परीक्षा होती रही। असाता के शमन के लिए अनेक लोगों ने अनेक उपाय करने के सुझाव दिये, आचार्यश्री ने कर्मोपशमन के लिए वृहत्शांतिमंत्र का जाप करने का संकेत किया पर आर्यिकाश्री का विश्वास रहा है कि समताभाव से कर्मों का फल भोगकर उन्हें निर्जीर्ण करना ही मनुष्यपर्याय की सार्थकता है, ज्ञान की सार्थकता है। आपकी आत्मा उस विषम परिस्थिति में भी विचलित नहीं हुई, कालान्तर में वह उपद्रव कारण पाकर शमित हो गया। पर इस अवधि में भी उनका अध्ययन सतत जारी रहा। आर्यिकाश्री द्वारा की गई **'त्रिलोकसार'** की टीका के प्रकाशन के अवसर पर परम पूज्य १०८ श्री अजितसागर जी महाराज ने आशीर्वाद देते हुए लिखा—

"सागर महिलाश्रम की अध्ययनशीला प्रधानाध्यापिका सुमित्राबाई ने अतिशयक्षेत्र पपौरा में आर्यिका दीक्षा धारण की थी। तत्पश्चात् कई वर्षों तक अन्तरायों के बाहुल्य के कारण शरीर से

अस्वस्थ रहते हुए भी वे धर्मग्रन्थों के पठन में प्रवृत्त रहीं। आपने चारों ही अनुयोगों के निम्नलिखित ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया है। **करणानुयोग**—सिद्धान्तशास्त्र धवल (१६ खण्ड), महाधवल, (दो खण्डों का अध्ययन हो चुका है, तीसरा खण्ड चालू है।) **द्रव्यानुयोग**—समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय, इष्टोपदेश, समाधिशतक, आत्मानुशासन, वृहद्‌द्रव्यसंग्रह। **न्यायशास्त्रों** में न्यायदीपिका, परीक्षामुख, प्रमेयरत्नमाला। **व्याकरण** में कातन्त्र रूप माला, कलापव्याकरण जैनेन्द्र लघुवृत्ति, शब्दार्णवचन्द्रिका। **चरणानुयोग**—रत्नकरण्ड श्रावकाचार, अनगार धर्मामृत, मूलाराधना, आचारसार, उपासकाध्ययन। **प्रथमानुयोग**—सम्यक्त्व कौमुदी, क्षत्रचूडामणि, गद्य चिन्तामणि, जीवन्धरचम्पू, उत्तरपुराण, हरिवंशपुराण, पद्मपुराण आदि।"

(त्रिलोकसार: पृ० ६)

इस प्रकार पूज्य माताजी ने इस अगाध आगम-वारिधि का अवगाहन कर अपने ज्ञान को प्रौढ बनाया है और उसका फल अब हमें साहित्यसृजन के रूप में उनसे अनवरत प्राप्त हो रहा है। आज तो जैसे 'जिनवाणी की सेवा' ही उनका व्रत हो गया है। उन्होंने आचार्यों द्वारा प्रणीत करणानुयोग के विशालकाय प्राकृत-संस्कृत ग्रन्थों की सचित्र सरल सुबोध भाषाटीकायें लिखी है, साथ ही सामान्यजनोपयोगी अनेक छोटी-बड़ी रचनाओं का भी प्रकाशन किया है। उनके द्वारा प्रणीत साहित्य की सूची इसप्रकार है—

भाषा टीकाएँ—१. सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्राचार्य विरचित **त्रिलोकसार** की हिन्दी टीका।
२. भट्टारक सकलकीर्ति विरचित **सिद्धान्तसार दीपक** की हिन्दी टीका।
३. परम पूज्य यतिवृषभाचार्य विरचित **तिलोयपण्णत्ती** की सचित्र हिन्दी टीका (तीन खण्डो में)

मौलिक रचनाएँ—१. श्रुतनिकुञ्ज के किंचित् प्रसून (व्यवहार रत्नत्रय की उपयोगिता)
२. गुरु गौरव ३. श्रावक सोपान और बारह भावना
४. धर्मप्रवेशिका प्रश्नोत्तरमाला ५. धर्मोद्योत प्रश्नोत्तरमाला
६. आनन्द की पद्धति: अहिंसा ७. निर्माल्यग्रहण पाप है
८. आचार्य महावीरकीर्ति स्मृति ग्रन्थ : एक अनुशीलन

संकलन—१. शिवसागर स्मारिका २. आत्मप्रसून ३. वास्तुविज्ञानपरिचय

सम्पादन—१. समाधिदीपक २. श्रमणचर्या ३. दीपावली पूजनविधि
४. श्रावक सुमनसंचय ५. स्तोत्रसंग्रह ६. श्रावकसोपान
७. आर्यिका आर्यिका है, श्राविका नहीं ८. संस्कार ज्योति ९. छहढाला
१०. क्षपणासार (हिन्दी टीका) ११. पाक्षिक श्रावक प्रतिक्रमण सामायिक विधि १२. वृहद् सामायिक पाठ एवं व्रती श्रावक प्रतिक्रमण,
१३. जैनाचार्य शान्तिसागर जी महाराज का संक्षिप्त जीवनवृत्त।
१४. आचार्य शान्तिसागर चरित्र
१५. ऐसे थे चारित्र चक्रवर्ती

१६. शान्तिधर्मप्रदीप अपरनाम दान विचार
१७. नारी ! बनो सदाचारी
१८. वत्थुविज्जा (गृहनिर्माण कला)

अब तक आपने पपौरा, श्रीमहावीरजी, कोटा, उदयपुर, प्रतापगढ़, टोडारायसिंह, भीण्डर, अजमेर, निवाई, किशनगढ़ रेनवाल, सवाईमाधोपुर, सीकर, कूण, भीलवाड़ा, अणिन्दा, फलासिया आदि स्थानो पर वर्षायोग सम्पन्न किये हैं। टोडारायसिंह, उदयपुर, रेनवाल, निवाई में आपके क्रमशः दो, पांच, दो और तीन बार चातुर्मास हो चुके हैं। सर्वत्र आपने महती धर्मप्रभावना की है और श्रावकों को सन्मार्ग में प्रवृत्त किया है। श्री शान्तिवीर गुरुकुल, जोबनेर को स्थायित्व प्रदान करने के लिए आपकी प्रेरणा से श्री दि० जैन महावीर चैत्यालय का नवीन निर्माण हुआ है और वेदीप्रतिष्ठा भी हुई है। जनधन एवं आवागमन आदि अन्य साधनविहीन अलयादी ग्राम स्थित जिनमन्दिर का जीर्णोद्धार, नवीन जिनबिम्ब की रचना, नवीन वेदी का निर्माण एवं वेदी प्रतिष्ठा आपके ही सद्प्रयत्नों का फल है। श्री दि० जैन धर्मशाला, टोडारायसिंह का नवीनीकरण एवं अशोकनगर, उदयपुर में श्री शिवसागर सरस्वती भवन का निर्माण आपके मार्गदर्शन का ही सुपरिणाम है।

श्री ब्र० सूरजबाई मु० ड्योढ़ी (जयपुर) की क्षुल्लिका दीक्षा, ब्र० मनफूलबाई (टोडारायसिंह) को आठवीं प्रतिमा एवं श्री कजोड़ीमल जी कामदार (जोबनेर) को दूसरी प्रतिमा के व्रत आपके करकमलों से प्रदान किये गये हैं।

शास्त्रसमुद्र का आलोड़न करने वाली पूज्य माताजी की आगम में अटूट आस्था है। क्षुद्र भौतिक स्वार्थों के लिए सिद्धान्तों को अपने अनुकूल तोड़मोड़ कर प्रस्तुत करने वाले आपकी दृष्टि मे अक्षम्य है। सज्जातित्व मे आपकी पूर्ण निष्ठा है। विधवाविवाह और विजातीय विवाह आपकी दृष्टि में कथमपि शास्त्रसम्मत नहीं है। **आचार्य सोमदेव** की इस उक्ति का आप पूर्ण समर्थन करती हैं—

स्वकीयाः परकीयाः वा मर्यादालोपिनो नराः ।
नहि माननीयं तेषां तपो वा श्रुतमेव च ॥

अर्थात् स्वजन से या परजन से, तपस्वी हो या विद्वान् हो किन्तु यदि वह मर्यादाओं का लोप करने वाला है तो उसका कहना भी नहीं मानना चाहिए। (**धर्मोद्योत प्रश्नोत्तर माला** तृतीय संस्करण पृ० ६६ से उद्धृत)

पूज्य माताजी स्पष्ट और निर्भीक धर्मोपदेशिका हैं। जनानुरजन की क्षुद्रवृत्ति को आप अपने पास फटकने भी नहीं देती। अपनी चर्या में '**वज्रादपि कठोराणि**' है तो दूसरों को धर्ममार्ग में लगाने के लिए '**मृदुनि कुसुमादपि**'। ज्ञानपिपासु माताजी सतत ज्ञानाराधना मे संलग्न रहती है और तदनुसार आत्म-परिष्कार में आपकी प्रवृत्ति चलती है। '**सिद्धान्तसार दीपक**' की प्रस्तावना में परमादरणीय **पं. पन्नालालजी साहित्याचार्य** ने लिखा है—"माताजी की अभीक्षण ज्ञानाराधना और उसके फलस्वरूप प्रकट हुए क्षयोपशम के विषय में क्या लिखूँ ? अल्पवय में प्राप्त वैधव्य का अपार

दुःख सहन करते हुए भी इन्होंने जो वैदुष्य प्राप्त किया है, वह साधारण महिला के साहस की बात नहीं है। ...... ये सागर के महिलाश्रम में पढ़ती थीं। मैं धर्मशास्त्र और संस्कृत का अध्ययन कराने प्रातः काल ५ बजे जाता था। एक दिन गृहप्रबन्धिका ने मुझसे कहा कि रात में निश्चित समय के बाद आश्रम की ओर से मिलने वाली लाइट की सुविधा जब बन्द हो जाती है तब ये खाने के घृत का दीपक जलाकर चुपचाप पढ़ती रहती हैं और भोजन घृतहीन कर लेती हैं। गृहप्रबन्धिका के मुख से इनकी अध्ययनशीलता की प्रशंसा सुन जहाँ प्रसन्नता हुई, वहाँ अपार वेदना भी हुई। प्रस्तावना की ये पंक्तियाँ लिखते समय वह प्रकरण स्मृति में आ गया और नेत्र सजल हो गये। लगा कि जिसकी इतनी अभिरुचि है अध्ययन में, वह अवश्य ही होनहार है।............त्रिलोकसार की टीका लिखकर प्रस्तावना-लेख के लिए जब मेरे पास मुद्रित फर्मे भेजे गये तब मुझे लगा कि यह इनके तपश्चरण का ही प्रभाव है कि इनके ज्ञान में आश्चर्यजनक वृद्धि हो रही है। वस्तुतः परमार्थ भी यही है कि द्वादशांग का जितना विस्तार हम सुनते हैं वह सब गुरुमुख से नहीं पढ़ा जा सकता। तपश्चर्या के प्रभाव से स्वयं ही ज्ञानावरण का ऐसा विशाल क्षयोपशम हो जाता है कि जिससे अंग-पूर्व का भी विस्तृत ज्ञान अपने आप प्रकट हो जाता है। श्रुतकेवली बनने के लिए निर्ग्रन्थ मुद्रा के साथ विशिष्ट तपश्चरण का होना भी आवश्यक रहता है।"

दृढ़ संयमी, आर्ष मार्ग की कट्टर पोषक, निःस्पृह, परम विदुषी, अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी, निर्भीक उपदेशक, आगम मर्मस्पर्शी, मोक्षमार्ग की पथिक, स्व पर-उपकारी पूज्य माताजी के चरणों में शत-शत नमोस्तु निवेदन करता हूँ और उनके दीर्घ, स्वस्थ जीवन की कामना करता हूँ ताकि उनकी स्याद्वादमयी लेखनी से जिनवाणी का हार्द हमें इसी प्रकार प्राप्त होता रहे और इस विषम काल में हम भ्रान्त जीवों को सच्चा मार्गदर्शन मिलता रहे।

पूज्य माताजी के पुनीत चरणों में शत-शत वन्दन। इति शुभम्।

—डॉ. चेतनप्रकाश पाटनी

सम्पादकीय

तिलोयपण्णत्ती : द्वितीयखण्ड

(चतुर्थ महाधिकार)

प्राचीन कन्नड़ प्रतियों के आधार पर सम्पादित **तिलोयपण्णत्ती का यह दूसरा खण्ड** जिसमें केवल **चतुर्थ अधिकार का गद्य-पद्य भाग है**—अपने पाठकों को सौंपते हुए हमें हार्दिक प्रसन्नता है। यतिवृषभाचार्य रचित तिलोयपण्णत्ती लोकविषयक साहित्य की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कृति है जिसमें प्रसंगवश धर्म, संस्कृति व इतिहास पुराण से सम्बन्धित अनेक विषय सम्मिलित हो गये हैं इस ग्रन्थ का दो खण्डों में प्रथम प्रकाशन १९४३ व १९५१ में हुआ था। इसके सम्पादक **थे प्रो० हीरालाल जैन व प्रो० ए० एन० उपाध्ये। पं० बालचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री** ने प्राकृत गाथाओं का मूलानुगामी हिन्दी अनुवाद किया था। सम्पादक द्वय ने उस समय ज्ञात प्राचीन प्रतियों के आधार पर इसका सुन्दर सम्पादन अपनी तीक्ष्ण मेधाशक्ति के बल पर परिश्रमपूर्वक किया था। वे कोटि-कोटि बधाई के पात्र है।

प्रस्तुत संस्करण **की आधार प्रति जैनबद्री से प्राप्त** लिप्यन्तरित (कन्नड़ से देवनागरी) प्रति है। अन्य सभी प्रतियों के पाठभेद टिप्पण में दिये गये हैं। प्रतियों का परिचय पहले खण्ड की प्रस्तावना में आचुका है।

परम पूज्य १०५ **आर्यिका श्री विशुद्धमती माताजी के** पुरुषार्थ का ही यह मधुर परिपाक है। गत पाँच वर्षों से पूज्य माताजी इस दुरूह ग्रन्थ को सरल बनाने हेतु प्रयत्नशील रही हैं। आपने विस्तृत हिन्दी टीका की है, विषय को चित्रों के माध्यम से स्पष्ट किया है और अनेकानेक तालिकाओं के माध्यम से विषय को एकत्र किया है। प्रस्तुत संस्करण में कुछ गद्य भाग सहित कुल ३००६ गाथाएँ हैं (सोलापुर-संस्करण में कुल गाथाएँ २९५१ हैं) ३० चित्र हैं और ४५ तालिकाएँ भी।

सम्पादन की वही **विधि** अपनाई गई है जो पहले खण्ड में अपनाई गई थी अर्थात् अर्थ की सगति को देखते हुए शुद्ध पाठ रखना ही ध्येय रहा है फिर भी यह दृढ़ता पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि व्यवस्थित पाठ ही ग्रन्थ का शुद्ध और अन्तिम रूप है।

चतुर्थ अधिकार—तिलोयपण्णत्ती ग्रन्थ का सबसे बड़ा अधिकार है जिसमें **मनुष्यलोक** का विस्तृत वर्णन है। इसमे **१६ अन्तराधिकार हैं और कुल ३००६ गाथाएँ** व थोड़ा गद्य भी। गाथा छन्द के अतिरिक्त आचार्य श्री ने इन्द्रवज्रा, दोधक, वसन्ततिलका और शार्दूल विक्रीडित छन्द मे भी रचना की है पर इनकी संख्या नगण्य है। अधिकार के प्रारम्भ में पद्मप्रभ भगवान को नमस्कार किया है और अन्त मे सुपार्श्वनाथ भगवान को।

सोलह अन्तराधिकार इस प्रकार हैं—मनुष्य लोक का निर्देश, जम्बूद्वीप, लवणसमुद्र, धातकी खण्ड, कालोदक समुद्र, पुष्करार्ध द्वीप—इन अढाई द्वीप-समुद्रों मे स्थित मनुष्यों के भेद, संख्या, अल्पबहुत्व, गुणस्थानादि, आयुबन्धक परिणाम, योनि, सुख-दुःख सम्यक्त्वग्रहण के कारण और मोक्ष जाने वाले जीवों का प्रमाण। २, ४, और ६ अन्तराधिकारों के अन्तर्गत अपने अपने १६-१६ अन्तराधिकार और भी हैं। जम्बूद्वीप का वर्णन १६ अन्तराधिकारों मे, विस्तार से किया गया है लगभग २४२५ गाथाओं में यह वर्णन आया है। समानता के कारण धातकी खण्ड और पुष्करार्ध द्वीप के वर्णन को विस्तृत नहीं किया गया है। चौबीस तीर्थंकरो का वर्णन बहुत विस्तार से (५२६ गाथा से १२९० गाथाओं में) हुआ है। अन्तिम दस अन्तराधिकारों (७ से १६ तक) का वर्णन केवल

३६ गाथाओं में ही आ गया है। विषय को विस्तृत करने और उसे संक्षिप्त करने की रचयिता आचार्य श्री की कला प्रशंसनीय है।

प्रस्तुत खण्ड के करणसूत्र, पाठान्तर, चित्र और तालिका आदि की सूची इसप्रकार है—

करण सूत्र

आदिम मज्झिम बाहिर	२६०२	दुगुणिच्छिय सूजीए	२५६१
इसुपादगुणिद जीवा	२४०१	बाहिरसूई वग्गो	२५६५
इसुवग्गं चउगुणिदं	२६३५	भूमीअ मुहं सोहिय	२४३३
,, ,,	२८६३	रुंदद्धं इसुहीणं	१८३
जीवाकदितुरिमसा	१८५	लवणादीणं रुंदं	२६०१
जीवाविक्खंभाणं	२६३७	बाणजुदरुंदवग्गे	१८४
जेट्ठम्मि चावपट्ठे	१९२	वासकदी दस गुणिदा	९
जेट्ठाए जीवाए	१९०	विक्खंभद्धकदीओ	७२
दुगुणाए सूचीए	२८०७	सूचीएकदिए कदि	२८०५

प्रस्तुत संस्करण में प्रयुक्त महत्त्वपूर्ण संकेत

– = श्रेणी	प = पल्योपम	अं = अंगुल
= = प्रतर	सा = सागरोपम	ध = धनुष
≡ = लोक	सू = सूच्यंगुल	सेढ़ी = श्रेणीबद्ध
१६ = सम्पूर्ण जीवराशि	प्र = प्रतरांगुल	प्र॰ = प्रकीर्णक
१६ ख = सम्पूर्ण पुद्गल की परमाणु राशि	घ = घनांगुल	मु = मुहूर्त
	ज = जगच्छ्रेणी	दि = दिन
१६ ख ख = सम्पूर्ण काल की समय राशि	लोय प = लोकप्रतर	मा = माह
	भू = भूमि	ख ख = अनन्तानन्त
१६ ख ख ख = सम्पूर्ण आकाश की प्रदेश राशि	को = कोस	(गाथा ५७)
	दं = दंड	
७ = सख्यात	से = शेष	
रि = असंख्यात	ह = हस्त	
जो = योजन		
̮ = रज्जु		

पाठान्तर

क्रम सं०	गाथा	गाथा सं०	पृष्ठ सं०
१	वेलंधरदेवाणं	२६	८
२	दारोवरिमधराणं	७६	२५
३	पणुवीसजोयणाइं	२२०	६५
४	वासट्ठि जोयणाइं	२२२	६५

क्रम सं०	गाथा	गाथा सं०	पृष्ठ सं०
५	कइय कडिसुत्त	३६७	११२
६	अंगद धुरिया खग्गा	३६८	११२
७	पलिदोवमदसमसो	५०६	१४५
८	कुमुद-कुमुदंग णउदा	५१०	१४५
९	इह केई आइरिया	७२७	२०६
१०	एक्केक्काणं दो द्दो	७३१	२०९
११	जोयण अहियं उदय	७८६	२३१
१२	चेत्तप्पासाद खिदि	८०६	२३८
१३	जह जह जोग्गट्ठाणे	१३९४	४००
१४	कालप्पमुहा णाणा	१३९७	४०१
१५	अहवा वीरे सिद्धे	१५०९	४३७
१६	चोद्दस सहस्स सग सय	१५१०	४३७
१७	णिव्वाणे वीरजिणे	१५११	४३७
१८	दोण्णि सया पणवण्णा	१५१६	४३९
१९	अहवा दो द्दो कोसा	१६९२	४८०
२०	कूडागार महारिह भवणो	१६९३	४८०
२१	एक्क सहस्स पणसय	१७२९	४८८
२२	चउजोयण उच्छेहं	१८४५	५१६
२३	सोलस कोसुच्छेहं	१८९०	५२५
२४	वासो पण धण कोसा	२०००	५४८
२५	एस बलभद्द कूडो	२००५	५४९
२६	सोमणसस्स य वासं	२००६	५४९
२७	दसविदे भू वासो	२००७	५४९
२८	ताणं च मेरु पासे पच	२०५३	५५९
२९	सिरिभद्दसाल बेदी	२०५४	५५९
३०	मेरुगिरि पुव्वदक्खिण	२१६१	५८२
३१	ताणं उवदेसेण य	२१६२	५८२
३२	रत्ता रत्तोदाओ सीदा	२३३१	६२१
३३	एक्करस सहस्साणि	२४७१	६६०
३४	तस्सोवरि सिदपक्खे	२४७२	६६१
३५	जलसिहरे विक्खंभो	२४७४	६६१
३६	वण्णिद सुराण णयरी	२४८३	६६३
३७	मोत्तूणं मेरुगिरि	२५८७	६८९
३८	मेरुतलस्स य रुदं	२६२१	७०२
३९	णइरिदि पवण दिसाओ	२८२७	७५८
४०	मुक्का मेरुगिरिदं	२८३६	७६०

चित्र विवरण

तालिका विवरण

क्रम सं०	विषय	पृष्ठ सं०	गाथा सं०
१	जम्बूद्वीप की जगती तथा उस पर स्थित वेदी एवं वेदी के पार्श्व भागों में स्थित बावड़ियों का प्रमाण	७	१५-१७, १६-२१, २३-२४
२	लघु-ज्येष्ठ एवं मध्यम प्रासादों तथा उनके द्वारों का प्रमाण	११	२९-३४
३	जम्बूद्वीप की परिधि, क्षेत्रफल तथा द्वारों के अन्तरका प्रमाण	२४	५१-७४
४	क्षेत्र कुलाचलों के विस्तार आदि का विवरण	३३	९७, १०४-१०८
५	भरतक्षेत्र और विजयार्ध के व्यास, जीवा, धनुष, चूलिका तथा पार्श्वभुजा का प्रमाण	४६	१६६
६	गंगा-सिन्धु नदियों से सम्बन्धित प्रणाली, कुण्ड एवं द्वीप का विस्तार	६८	२१७-२२६
७	आवलि से लक्ष पर्यन्त व्यवहार काल की परिभाषाएँ	८४	२८७-२९५
८	संख्या प्रमाण	९९	गद्य भाग
९	भोगभूमिज जीवों का संक्षिप्त वैभव	११३	३२४-३८१
१०	सुषमा-सुषमा आदि तीन कालों में आयु आहारादि की वृद्धि हानि का प्रदर्शन	१२६	३२४-४२७
११	कुलकरोंके उत्सेध, आयु एवं अन्तरकाल आदिका विवरण	१४६	४२८-५१०
१२	चौबीस तीर्थङ्करो की आगति, जन्म विवरण एवं वंशादि का निरूपण	१५८-१५९	५१६-५५७
१३	चौवीस तीर्थंकरो के जन्मान्तर, आयु, कुमारकाल, उत्सेध वर्ण राज्यकाल एवं चिह्न निर्देश	१७४-१७५	५६०-६१२
१४	२४ तीर्थंकरों के वैराग्य का कारण और दीक्षा का सम्पूर्ण विवरण	१९०-१९१	६१४-६१८ ६५०-६७६
१५	२४ तीर्थंकरों का छद्मस्थकाल, केवलज्ञान उत्पत्ति के मास पक्ष आदि तथा केवलज्ञानोत्पत्ति का अन्तरकाल	२०२-२०३	६८२-७११
१६	समवसरणों, सोपानों, वीथियों और वेदियों का प्रमाण	२१२-२१३	७२४-७४०
१७	धूलिसाल प्रासाद—प्रथम पृथिवी एवं नाट्यशालाओंका प्रमाण	२२३	७५४-७६५
१८	पीठों का विस्तार आदि एवं सीढ़ियों का प्रमाण	२२९	७७७-७८२
१९	मानस्तम्भों का बाहल्य एवं ऊँचाई	२३२	७८३-७८६
२०	खातिका आदि क्षेत्रों का प्रमाण	२४०	८०२-८०५
२१	वेदी, बल्लीभूमि, कोट, चैत्यवृक्ष, प्रासाद एवं उपवनभूमि का प्रमाण	२४७	८०७-८२२
२२	स्तम्भों, ध्वजदण्डों एवं ध्वजभूमियों का तथा तृतीय कोट का प्रमाण	२५३	८२९-८३६
२३	कल्पवृक्षों, नाटयशालाओ, स्तूपों, कोठों आदि का प्रमाण	२६१	८४६-८६३

आभार

तिलोयपण्णत्ती ग्रन्थ की प्रकाशन योजना मे हमे अनेक महानुभावोंका पुष्कल सहयोग और प्रोत्साहन संप्राप्त है। मैं उन सभी का हृदय से आभारी हूँ।

प० पू० आचार्य १०८ श्री धर्मसागरजी महाराज एवं आचार्य कल्प श्री श्रुतसागरजी महाराज के आशीर्वचन इस ग्रन्थ के प्रकाशन अनुष्ठान मे हमारे प्रेरक रहे हैं। मैं आपके चरणो मे सविनय सादर नमन करता हुआ आपके दीर्घ नीरोग जीवन की कामना करता हूँ।

टीकाकर्त्री **पूज्य माताजी विशुद्धमतीजी** का मैं अतिशय कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मुझ पर अनुग्रह कर सम्पादन का गुरुतर उत्तरदायित्व मुझे सौंपा। जो कुछ बन पड़ा है वह सब पूज्य माताजी के ज्ञान और श्रम का ही मधुर फल है। निकट रहने वाला ही जान सकता है कि माताजी ग्रन्थ लेखन में कितना परिश्रम करती हैं, यद्यपि स्वास्थ्य अनुकूल नहीं रहता और दोनों हाथों की अंगुलियों में चर्म रोग भी प्रकट हो गया है तथापि अपने लक्ष्य से विरत नहीं होती और अनवरत कार्य में जुटी रहती हैं। तिलोयपण्णत्ती जैसे महान् विशालकाय ग्रन्थ की टीका आपकी साधना, कष्ट सहिष्णुता, धैर्य, त्याग-तप और निष्ठा का ही परिणाम है। मैं यही कामना करता हूँ कि पूज्य माताजी का रत्नत्रय कुशल रहे और स्वास्थ्य भी अनुकूल बने ताकि आप जिनवाणी की इसी प्रकार सम्यगाराधना कर सकें। मैं पूज्य माताजी के चरणों में शतशः वन्दामि निवेदन करता हूँ।

श्रद्धेय **डॉ० पन्नालालजी साहित्याचार्य सागर** और **प्रोफेसर लक्ष्मीचन्द्रजी जैन, जबलपुर** का भी आभारी हूँ जिन्होंने प्रथम खण्ड की भाँति इस खण्ड के लिए भी क्रमशः पुरोवाक् और गणित विषयक लेख लिखा है।

प्रस्तुत खण्ड में मुद्रित चित्रों की रचना के लिये **श्री विमलप्रकाशजी, अजमेर** और **श्री रमेशचन्द्र मेहता, उदयपुर** धन्यवाद के पात्र हैं। इस ग्रन्थ के पृ० ११० पर मुद्रित कल्पवृक्ष का चित्र, पृ० २६४ का समवसरण का चित्र, पृ० २८४ का अष्ट प्रातिहार्य का चित्र और पृ० ५२८ पर मुद्रित अष्ट मंगल द्रव्य का चित्र आचार्य १०८ श्री देशभूषणजी महाराज द्वारा सम्पादित 'णमोकार मंत्र' ग्रंथ से लिये गये है। समवसरण विषयक कुछ अन्य चित्र (पृ० २१४, २१६, २२४, २३६, २४४) जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश से लिये गये हैं। एतदर्थ हम इनके आभारी है। पृष्ठ २८४ के चित्र में गाथा के अभिप्राय से भिन्नता है। गाथा में हाथ जोड़े हुए भक्तगण एक प्रातिहार्य है किन्तु चित्र में उसके स्थान पर जय-जयकार ध्वनि है। इसी तरह पृ० ५२८ पर अष्ट मंगल द्रव्यों के चित्र में घण्टा चित्रित है जबकि गाथा में 'कलश' का उल्लेख हुआ है।

पूज्य माताजी के संघस्थ **ब्र० चंचलबाईजी, ब्र० पंकजजी और ब्र० कजोड़ीमलजी कामदार** ने ग्रन्थ लेखन सम्पादन और प्रकाशन हेतु सारी व्यवस्थाएँ जुटा कर उदारता पूर्वक सहयोग दिया है एतदर्थ मैं आपका अत्यन्त अनुगृहीत हूँ।

अखिल भारतवर्षीय दि० जैन महासभा ग्रन्थ की प्रकाशक है और **सेठी ट्रस्ट लखनऊ** इसके प्रकाशन का भार वहन कर रहा है, मैं सेठी ट्रस्ट के नियामक और महासभा के अध्यक्ष **श्री निर्मलकुमारजी सेठी** का हार्दिक अभिनन्दन करता हूं और इस श्रुतसेवा के लिए उन्हे साधुवाद देता हूँ।

ग्रन्थ के सुन्दर और शुद्ध मुद्रण के लिए मैं अनुभवी मुद्रक **कमल प्रिन्टर्स, मदनगंज-किशनगढ़** के कुशल कर्मचारियों को धन्यवाद देता हूँ। प्रेस मालिक **श्रीयुत् पाँचूलालजी** ने विशेष रुचि और तत्परता से इसे मुद्रित किया है, मैं उनका आभारी हूँ।

पुनः इन सभी श्रमशील पुण्यात्माओं के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ और सम्पादन प्रकाशन में रही भूलों के लिये सविनय क्षमा चाहता हूँ।

वसन्त पंचमी वि० सं० २०१२
श्री पार्श्वनाथ जैन मन्दिर
शास्त्री नगर, जोधपुर

१३-२-८६

विनीत
चेतनप्रकाश पाटनी
सम्पादक

तिलोयपण्णत्ती के चतुर्थाधिकार का गणित

लेखक—प्रो० लक्ष्मीचन्द्र जैन सूर्या एम्पोरियम, ६७७ सराफा जबलपुर (म० प्र०)

गाथा ४/६

व्यास से परिधि निकालने हेतु π का मान अथवा $\frac{\text{परिधि}}{\text{व्यास}}$ का मान $\sqrt{१०}$ लिया गया है और सूत्र है—

$$\text{परिधि} = \sqrt{(\text{व्यास})^2 \times १०} \qquad \text{पुनः}$$

$$\text{वृत्त का क्षेत्रफल} = \text{परिधि} \times \frac{\text{व्यास}}{४}$$

घनफल के लिए विंदफलं शब्द का उपयोग हुआ है। इसीप्रकार, लम्ब वर्तुल रम्भ का घनफल=आधार का क्षेत्रफल × (उत्सेध या बाहुल्य)

गाथा ४/५५-५६

जम्बूद्वीप के विष्कम्भ से उसकी परिधि निकालने हेतु π का मान $\sqrt{१०}$ लेकर विशेष आगे तक परिधि की गणना की गई है। यहाँ $\sqrt{१०}$ का मान $\sqrt{(३)^2+१} = ३ + (\frac{१}{६})$ लिया गया है।

अर्थात् $\sqrt{N} \equiv \sqrt{(a^2+x)} = a + \frac{x}{२a}$ माना गया है। यहाँ N अवर्ग धनात्मक पूर्णांक है, a और x धनात्मक पूर्णांक हैं। अथवा $\sqrt{N} \equiv \sqrt{(b^2 - y)} = b - (y/२b)$।

इस विधि से अंततः अवसन्नासन्न भिन्न शेष=$\frac{२३२१३}{१०५४०१}$ प्राप्त होता है। यह गणना डा० आर० सी० गुप्ता ने की है। * यहाँ इसे "ख ख पदस्संसस्स पुढं" का गुणाकार बतलाया गया है। इसका अर्थ विचारणीय है।

गाथा ४/५९-६४

इस गाथा में उपरोक्त विधि से क्षेत्रफल की अंत्य महत्ता प्ररूपित करने हेतु $\frac{४८४५७}{१०५४०१}$ उवसन्नासन्न में परमाणुओं की संख्या ग्रन्थकार ने $\frac{४८४५७}{१०५४०१}$ ख ख द्वारा निरूपित की है।

---

* R. C. Gupta, Circumference of the Jambudvipa in Jaina Cosmography, 2 J H. S., vol. 10, No. 1, 1975, 38–46.

गाथा ४/७०

वृत्त में विष्कम्भ (व्यास) को d मानकर, परिधि को c मानकर, त्रिज्या को r मानकर, द्वीप की चतुर्थांश परिधि रूप धनुष की जीवा का सूत्र—

(वृत्त की चतुर्थांश धनुष की जीवा $)^2 = (\frac{d}{२})^2 \times २ = २r^2$

अथवा—

(चतुर्थांश परिधि की जीवा $)^2 \times \frac{५}{४} =$ (चतुर्थांश परिधि $)^2$

$= [२ \times \frac{d^2}{४}] \times \frac{५}{४} = \frac{५d^2}{८} = \frac{१०r^2}{४}$

अथवा चतुर्थांश परिधि $= \sqrt{१०} \cdot \frac{r}{२}$

आजकल के प्रतीकों में यह $\pi \frac{r}{२}$ है।

गाथा ४/१८०

बाण और विष्कम्भ दिया जाने पर जीवा निकालने हेतु सूत्र-बाण को h मानकर, विष्कम्भ को d मानकर, जीवा निकालने का सूत्र निम्नलिखित है—

जीवा $= \sqrt{४ [(\frac{d}{२})^2 - (\frac{d}{२} - h)^2]}$

$= ४\sqrt{[(r)^2 - (r - h)^2]}$ यहाँ पिथेगोरस के साध्य का उपयोग है।

गाथा ४/१८१

बाण और विष्कम्भ दिया जाने पर धनुष का प्रमाण निकालने हेतु सूत्र :

धनुष $= \sqrt{२ [(d + h)^2 - (d)^2}$

यदि h=r हो तो धनुष $= \sqrt{१०}$ r के बराबर होता है।

गाथा ४/१८२ ।

जब जीवा और विष्कम्भ (विस्तार) दिया गया हो तो बाण निकालने के लिए सूत्र :

$h = \frac{d}{२} - [\frac{d^2}{४} - \frac{(\text{जीवा})^2}{४}]^{१/२}$

$= r - [r^2 - (\frac{\text{जीवा}}{२})^2]^{१/२}$

उपर्युक्त सूत्रों से निम्न सम्बन्ध प्राप्त होता है।

(धनुष)^2=६ h^2+(जीवा)^2 जहाँ h वाण है।

पुनः

४ h^2+४ ($\frac{\text{जीवा}}{2}$)^2 को ४ (अर्द्ध धनुष की जीवा)^2 लिखने पर हमें निम्नलिखित सम्बन्ध प्राप्त होता है।

(धनुष)^2=२h^2+४ (अर्द्ध धनुष की जीवा)^2

गाथा ४/२८५–२८६ :

समय, आवलि, उच्छ्वास, प्राण और स्तोक को व्यवहारकाल निर्दिष्ट किया है। पुद्गल-परमाणु का निकट में स्थित आकाशप्रदेश के अतिक्रमण प्रमाण जो अविभागीकाल है वही 'समय' नाम से प्रसिद्ध है। इकाइयों के बीच निम्नलिखित सम्बन्ध है।

असंख्यात समय	=	१ आवली	[जघन्य युक्त असंख्यात का प्रतीक २ है जो मूल में संदृष्टि रूप आया प्रतीत होता है।]
संख्यात आवली	=	१ उच्छ्वास	[यहां क्या संख्यात के लिए ६ आया है ? यह स्पष्ट संदृष्टि से
	=	१ प्राण	नहीं है क्योंकि सांख्येय की संदृष्टि ? होना चाहिये। ६
७ उच्छ्वास	=	१ स्तोक	संदृष्टि घनांगुल का प्रतीक है जो राशि हो सकता है संख्यात यहाँ निर्दशित करती हो ?]
७ स्तोक	=	१ लव	
३८½ लव	=	१ नाली	
२ नाली	=	१ मुहूर्त	[समय कम एक मुहूर्त को भिन्न मुहूर्त कहते हैं।]
३० मुहूर्त	=	१ दिन	
१५ दिन	=	१ पक्ष	
२ पक्ष	=	१ मास	
२ मास	=	१ ऋतु	
३ ऋतु	=	१ अयन	
२ अयन	=	१ वर्ष	
५ वर्ष	=	१ युग	

इसप्रकार अचलात्म का मान (८४)^{31} × (१०)^{90} वर्षों के बराबर होता है। आगे उत्कृष्ट संख्यात तक ले जाने का संकेत है।

गाथा ४/३१०–३१२ :

इन गाथाओं में संख्या प्रमाण का विस्तार से वर्णन है। संख्येय, असंख्येय और अनन्त की सीमाएँ निर्धारित की गई हैं। इनमें कुछ औपचारिक असंख्येय और अनन्त संख्याएं हैं। यथा उत्कृष्ट

संख्येय तक श्रुत केवली का विषय होने के कारण, तदनुगामी संख्याएँ असंख्येय कही गई हैं जो उपचार है। असंख्यात लोक प्रमाण स्थिति बन्धाध्यवसायस्थान प्रमाण संख्या का आशय स्थिति-बन्ध के लिए कारणभूत आत्मा के परिणामों की संख्या है। इसीप्रकार इससे भी असंख्येय लोक गुणे प्रमाण अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान प्रमाण संख्या का आशय अनुभाग बन्ध के लिए कारणभूत आत्मा के परिणामों की संख्या है। इससे भी असंख्येय लोक प्रमाण गुणे, मन, वचन, काय योगों के अविभाग प्रतिच्छेदों (कर्मों के फल देने की शक्ति के अविभागी अंशों) की संख्या का प्रमाण होता है। वीरसेनाचार्य ने षट्खण्डागम (पु० ४, पृ० ३३८, ३३९) में अर्द्ध पुद्गल परिवर्तन काल के अनन्तत्व के व्यवहार को उपचार निबन्धक बतलाया है।

इसीप्रकार यद्यपि उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात और जघन्य परीतानन्त में केवल १ का अंतर हो जाने से ही "अनन्त" संज्ञा का उपचार हो जाता है। यहाँ अवधिज्ञानी का विषय उत्कृष्ट असंख्यात तक का होता है, इसके पश्चात् का विषय केवलज्ञानी की सीमा में आजाने के कारण 'अनन्त' का उपचार हो जाता है। जब जघन्य अनन्तानन्त की तीन बार वर्गित संवर्गित राशि में अनन्तात्मक राशियाँ निक्षिप्त होती हैं तभी उनकी अनन्त संज्ञा सार्थक होती है, जैसी कि असंख्यात्मक राशि निक्षिप्त करने पर संख्येय राशि को असंख्येयता की सार्थकता प्राप्त होती है। वास्तव में व्यय के होते रहने पर भी (सदा ?) अक्षय रहने वाली भव्य जीव राशि समान और भी राशियाँ हैं—जो क्षय होने वाली पुद्गल परिवर्तन काल जैसी सभी राशियों के प्रतिपक्ष के समान पाई जाती हैं।

ग्रन्थ में इस संबंध में वर्गित संवर्गित, शलाका कुंडादि की प्रक्रियाएँ पूर्ण रूप से वर्णित हैं।

वर्गित संवर्गित की तिलोयपण्णत्ती की प्रक्रिया धवला टीका में दी गयी प्रक्रिया से भिन्न है। अनन्त तथा केवलज्ञान राशि के सम्बन्ध में विवरण महत्वपूर्ण है, "इसप्रकार वर्ग करके उत्पन्न सब वर्ग राशियों का पुञ्ज केवलज्ञान-केवलदर्शन के अनन्तवें भाग है, इस कारण वह भाजन है द्रव्य नहीं है।"

गाथा ४/१७८० आदि

समान गोल शरीर-वाला मेरु पर्वत, "समवट्टतणुस्स मेरुस्स" में रंभों और शंकु समच्छिन्नकों द्वारा निर्मित किया गया है। इन गाथाओं में मेरु पर्वत के विभिन्न स्थानों पर परिवर्तनशील मान, ऊँचाईयों पर व्यास, बतलाए गये हैं। "सूर्य पथ की तिर्यकता की धारणा को मानो मेरु पर्वत की आकृति में लाया गया है" यह आशय लिश्क एवं शर्मा ने अपने शोध लेख में दिया है। ❀

❀ S. S. Lishk and S. D Sharma, "Notion of Obliquity of Ecliptic" Implied in the Concept of Mount Meru in Jambudvipa prajzapti." Jain Journal, Calcutta, 1978, pp. 79.

गाथा ४/१७६३ :

शंकु के समच्छिन्नक की पार्श्व रेखा का मान निकालने हेतु जिस सूत्र का उपयोग हुआ है वह यह है ।❋

$$\text{पार्श्व भुजा} = \sqrt{\left(\frac{D \quad d}{२}\right)^२ + (H)^२}$$

जहाँ भूमि D, मुख d, ऊँचाई H दी गयी है ।

गाथा ४/१७६७ :

समलम्ब चतुर्भुज की आकृति त्रिभुज संक्षेत्र के समच्छिन्नक के अनीक रूप में होती है । उसीप्रकार शंकु के समच्छिन्नक को उदग्रसमतल द्वारा केन्द्रीय अक्ष में से होता हुआ काटा जावे तो छेद से प्राप्त आकृति भी समलम्ब चतुर्भुज होती है ।

यदि चूलिका के शिखर से h योजन नीचे विष्कम्भ x प्राप्त करना हो तो सूत्र यह है :

$$x = h \div \left[\frac{D-d}{H}\right] + b$$

अथवा $$x = D - \left[(H-h) \div \left(\frac{D-b}{H}\right)\right]$$

गाथा ४/२०२५ :

इस गाथा में जीवा C और बाण h दिया जाने पर विष्कम्भ D निकालने का सूत्र दिया गया है—

$$D = \frac{c^२}{४h} + h$$

गाथा ४/२३७४ :

इस गाथा में धनुष के आकार के क्षेत्र का सूक्ष्म क्षेत्रफल निकालने का सूत्र दिया है—

$$\text{धनुषाकार क्षेत्र का क्षेत्रफल} = \sqrt{\left(\frac{h}{४} \quad C\right)^२ \times १०} = \frac{h\,c}{४}\sqrt{१०}$$

इससूत्र का उल्लेख महावीराचार्य ने "गणित सार संग्रह" में किया है ।✪

गाथा ४/२५२५ :

इस गाथा से प्रतीत होता है कि ग्रन्थकार को ज्ञात था कि दो वृत्तों के क्षेत्रफलों का अनुपात उनके विष्कम्भों के वर्गके अनुपात के तुल्य होता है ।❖ मान लो छोटे प्रथम वृत्त का विष्कम्भ $D_१$ तथा क्षेत्रफल $A_१$ हो और बड़े द्वितीय वृत्त का विष्कम्भ $D_२$ तथा क्षेत्रफल $A_२$ हो तो

$$\frac{D_२^२ - D_१^२}{D_१^२} = \left(\frac{A_२ - A_१}{A_१}\right) \text{ अथवा } \frac{D_२^२}{D_१^२} = \frac{A_२}{A_१}$$

❋ देखिये, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, ४/३१ ।

✪ देखिये "गणितसार संग्रह" सोलापुर, १९६३, गा० ७/७०३ ।

❖ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, १०/८७, वृत्त के सम्बन्ध में समानुपात नियम २/११-२० में दिये गये हैं ।

गाथा ४/२७६१ :

इस गाथा में वृत्त का क्षेत्रफल निकालने के लिए सूत्र है—

वृत्त या समान गोल का क्षेत्रफल= $\sqrt{\frac{(D^{२})^{२} \times १०}{४}} = (\frac{D}{२})^{२}\sqrt{१०}$

जिसे आज हम πr^{2} के रूप में उपयोग में लाते हैं। यहाँ D विष्कम्भ है।

गाथा ४/२७६३ :

वलयाकृति वृत्त या वलय के आकार की आकृति का क्षेत्रफल निकालने का सूत्र—

मानलो प्रथम वृत्त का विस्तार $D_{१}$ और दूसरे का $D_{२}$ हो तो वलयाकार क्षेत्र का क्षेत्रफल—

$$= \sqrt{[२ D_{२} - (D_{२} - D_{१})]^{२} \times (\frac{D_{२} - D_{१}}{४})^{२} \times १०}$$

$= \sqrt{१०} \; [\frac{D_{२}^{२}}{४} - \frac{D_{१}^{२}}{४}]$ जिसे $\pi(r_{२}^{२} - r_{१}^{२})$ लिखते हैं।

गाथा ४/२९२६ :

जगश्रेणी में सूच्यंगुल के प्रथम और तृतीय वर्गमूल का भाग देने पर जो लब्ध आये उसमें से १ कम करने पर सामान्य मनुष्य राशि का प्रमाण—

$\frac{\text{जगश्रेणी}}{(\text{सूच्यंगुल})^{५/८}} - १$ आता है। यह महत्वपूर्ण शैली है, क्योंकि इसमें राशि सिद्धान्त का आधार निहित है।

विशेष टिप्पण :

तिलोयपण्णत्ती चतुर्थ अधिकार में भरत क्षेत्र, हिमवान् पर्वत, हैमवत क्षेत्र, महाहिमवान् पर्वत, हरिवर्ष क्षेत्र, निषध क्षेत्र और विदेह क्षेत्र के सम्बन्ध में विभिन्न माप दिये गये हैं। इनके क्षेत्रफल सम्बन्धी मापों में दिये हुए सूत्र के अनुसार भरत क्षेत्र, निषध क्षेत्र एवं विदेह क्षेत्र का क्षेत्रफल गाथा २३७५, २३७६, २३७७ में दिये गये प्रमाणों के समान प्राप्त हो जाता है। किन्तु हिमवान् पर्वत, हैमवत क्षेत्र, महा हिमवान् पर्वत एवं हरिवर्ष क्षेत्र के क्षेत्रफल तिलोयपण्णत्ती (भाग १, १९४३ में नहीं दिये गये हैं। यहाँ प्रकृत में सूक्ष्म क्षेत्रफल से अभिप्राय है।

तथापि पूज्य विशुद्धमती आर्यिका माताजी के प्रयासों से हिमवान् पर्वत, हैमवत क्षेत्र, महा-हिमवान् पर्वत (त्रुटिपूर्ण) एवं हरिवर्ष क्षेत्र के सूक्ष्म क्षेत्रफल उल्लिखित करने वाली गाथाएँ कन्नड़ प्रति से प्राप्त हुई हैं। इनमें से कथित सूत्रानुसार हरिवर्ष, निषध एवं विदेह के क्षेत्रफलों के प्रमाण गणनानुसार पूर्णतः अथवा लगभग मिल जाते हैं किन्तु हिमवान् पर्वत एवं हैमवत क्षेत्र, के क्षेत्रफलों के मान नहीं मिल सके हैं।

इन सभी क्षेत्रों और पर्वतों के क्षेत्रफलों की गणना हेतु मूलभूत सूत्र गाथा २३७४, चतुर्थ अधिकार में इसप्रकार दिया गया है : "बाण के चतुर्थ भाग से गुणित जीवा का जो वर्ग हो उसको दश से गुणित कर प्राप्त गुणनफल का वर्गमूल निकालने पर धनुष के आकार वाले क्षेत्र का सूक्ष्म क्षेत्रफल जाना जाता है।"

अर्थात्, धनुषाकार क्षेत्र का क्षेत्रफल $= \sqrt{(\text{बाण} \times \frac{१}{४} \times \text{जीवा})^{२} \times १०}$

I इस सूत्रानुसार सर्वप्रथम हिमवान् पर्वत का क्षेत्रफल निकालने के लिए दो धनुषाकार क्षेत्रफल निकालते हैं जिनका अन्तर उक्त क्षेत्रफल होता है। इसप्रकार—

हिमवान पर्वत का क्षेत्रफल = (हिमवान् पर्वत का क्षेत्रफल + भरत क्षेत्र का क्षेत्रफल) — (भरत का क्षेत्रफल) होता है जो धनुष के रूप में उपलब्ध होते हैं।
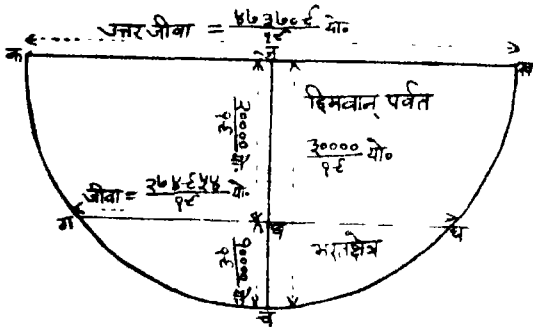
यहाँ हिमवान् पर्वत क ग घ ख है, भरत क्षेत्र ग च घ है।

हिमवान् पर्वत के क्षेत्रफल को प्राप्त करने हेतु पूर्ण धनुषाकार क्षेत्र क ग च घ ख पर विचार करते हैं जिसका बाण $\frac{२००००}{१९} + \frac{१००००}{१९} = \frac{३००००}{१९}$ योजन प्राप्त होता है। इसमें भरत क्षेत्र का विस्तार और हिमवान् क्षेत्र का विस्तार सम्मिलित किया गया है।

इसप्रकार हिमवान् पर्वत का क्षेत्रफल—

$$= \sqrt{\left(\frac{३००००}{१९} \times \frac{१}{४} \times \frac{४७३७०९}{१९}\right)^{२} \times १०}$$

$$- \sqrt{\left(\frac{१००००}{१८} \times \frac{१}{४} \times \frac{२७४९५४}{१९}\right)^{२} \times १०}$$

दसांक गणक मशीन द्वारा उक्त की गणना करने पर, जबकि $\sqrt{१०} = ३.१६२२७७६६$ लिया गया है तब —

$$\text{क्षेत्रफल} = \frac{११२३४९९५४१०}{३६१} - \frac{२१७३७०२२२९}{३६१}$$

$= \frac{\text{१०६१२९३१८१}}{\text{३६१}} =$ २५१००५३५.१२ वर्ग योजन प्राप्त हुआ है। किन्तु गाथा में यह मान २५१००४६९ $\frac{\text{१७५}}{\text{३६१}}$ प्राप्त किया गया बतलाया गया है। दूसरे प्रकार से यह मान $\sqrt{\frac{(\text{२८६५४३२५००})^2 \times \text{१०}}{(\text{३६१})^2}}$ होता है। हल करने पर उपरोक्त गणना में वर्गमूल निकालने पर बचे शेष को छोड़ देने पर क्षेत्रफल २५१००५३५ $\frac{\text{४१}}{\text{३६१}}$ प्राप्त होता है।

II हैमवत क्षेत्र का क्षेत्रफल—

$$= \sqrt{\left(\frac{\text{७००००}}{\text{१९}} \times \frac{\text{१}}{\text{४}} \times \text{३७६७४}\tfrac{\text{११}}{\text{१९}}\right)^2 \times \text{१०}}$$

$$- \sqrt{\left(\frac{\text{३००००}}{\text{१९}} \times \frac{\text{१}}{\text{४}} \times \frac{\text{४७३७०९}}{\text{१९}}\right)^2 \times \text{१०}}$$

$$= \frac{\text{३९१३४८८५८०}}{\text{३६१}} - \frac{\text{११२३४९९५४१०}}{\text{३६१}}$$

$$= \frac{\text{२८३७८४९३१७०}}{\text{३६१}} = \text{७८६१०७८४.४० वर्ग योजन।}$$

उपरोक्त की गणना दूसरे प्रकार से निम्न रूप में प्राप्त होती है :

$$\text{क्षेत्रफल} = \frac{\text{१}}{\text{३६१} \times \text{४}} \sqrt{(\text{१२८८५४२१९९९१२९}) \times (\text{१०})^{\text{९}}}$$

=७८६१०७८४ $\frac{\text{३१३}}{\text{३६१}}$ वर्ग योजन, जहाँ गणना में वर्गमूल निकालने के पश्चात् बचे शेष को छोड़ दिया गया है। गाथा में इसका प्रमाण ७६१०६९६ $\frac{\text{३९६}}{\text{३६१}}$ वर्ग योजन दिया गया है।

III महाहिमवान पर्वत का क्षेत्रफल—

$$= \sqrt{\left(\frac{\text{१५००००}}{\text{१९}} \times \frac{\text{१}}{\text{४}} \times \text{५३९३१}\tfrac{\text{६}}{\text{१९}}\right)^2 \times \text{१०}}$$

$$- \sqrt{\left(\frac{\text{७००००}}{\text{१९}} \times \frac{\text{१}}{\text{४}} \times \text{३७६७४}\tfrac{\text{११}}{\text{१९}}\right)^2 \times \text{१०}}$$

$$= \frac{\text{३८४२१०१३५००}}{\text{३६१}} \sqrt{\text{१०}} - \frac{\text{३१११३४९९५८०}}{\text{३६१}}$$

=२२६८७०८८७.५० वर्ग योजन

दूसरे प्रकार से हल करने पर—

२२६८७०८९१$\frac{३००९}{३६१}$ वर्ग योजन प्राप्त होता है। कन्नड़ गाथा त्रुटिपूर्ण होने से यहां कथन नहीं दिया गया है।

IV हरिवर्ष का क्षेत्रफल—

$$= \sqrt{\left(\frac{३१०००००}{१९} \times \frac{१}{२} \times ७३९०१\frac{१०}{१९}\right)^२ \times १०}$$

$$- \sqrt{\left(\frac{१५०००००}{१९} \times \frac{१}{२} \times ५३९३१\frac{६}{१९}\right)^२ \times १०}$$

$$= \left(\frac{१०८८२०५४०००००}{३६१} - \frac{३८४३१०३३५००}{३६१}\right) \times \sqrt{१०}$$

= ६१६६३९५६६.७१ वर्ग योजन प्राप्त होता है।

दूसरे प्रकार से हल करने पर ६१६६३९५६६$\frac{२०१०५}{३६१}$ वर्ग योजन प्राप्त होता है।

V इसीप्रकार,

निषध पर्वत का क्षेत्रफल—

$$= \sqrt{\left(\frac{१३०००००}{१९} \times \frac{१}{२} \times ९४१५६\frac{२}{१९}\right)^२ \times १०}$$

$$- \sqrt{\left(\frac{३१०००००}{१९} \times \frac{१}{२} \times ७३९०१\frac{१०}{१९}\right)^२ \times १०}$$

$$= \frac{(१०)^४}{३६१ \times ४}\sqrt{१०}\,[\,११२७०४८५८ - ४३५२८२१६\,]$$

अथवा दूसरे प्रकार से,

$$\text{क्षेत्रफल} = \frac{१}{३६१ \times ४}\sqrt{४७८५४०७७९८३९६१६४०००००००००}$$

$= १५१४९२९०१\frac{३३}{३६१}$ वर्ग योजन प्राप्त होता है।

VI पुनः, इसीप्रकार

विदेह क्षेत्र का क्षेत्रफल—

$$= \sqrt{\left(\frac{१५०००००}{१९} \times \frac{१}{२} \times १०००००\right)^२ \times १०}$$

$$- \sqrt{\left(\frac{१३०००००}{१९} \times \frac{१}{२} \times ९४१५६\frac{२}{१९}\right)^२ \times १०}$$

$$= \frac{(१०)^४ \sqrt{१०}\,[\,१८०५०००००० - ११२७०४८५८\,]}{३६१ \times ४}$$

$= \frac{(१०)^४}{३६१ \times ४}\sqrt{१०} - [\,६७७९५१४२\,]$ वर्ग योजन होता है।

अथवा, दूसरे प्रकार से

क्षेत्रफल $= \frac{(१०)^४ \sqrt{१०}}{५४४४} \sqrt{४५१९६१८१२७८८००१९४}$ वर्ग योजन प्राप्त होता है, जिसमें कोई त्रुटि संभव है, क्योंकि उपर्युक्त को हल करने पर २९६९३४९९०३$\frac{३०१}{३६६}$ वर्ग योजन प्राप्त हुआ है जिसमें कुछ त्रुटि हो सकती है, क्योंकि गाथानुसार यह मान २९६९३४९९०२$\frac{३०९}{३६९}$ प्राप्त होना चाहिये। इसे पाठकगण हल कर संशोधित फल निकालने का प्रयास करेंगे, ऐसी आशा है। उपर्युक्त गणना में श्री जम्बूकुमारजी दोशी, उदयपुर ने सहयोग दिया है जिनके हम आभारी हैं।

उपर्युक्त क्षेत्रफलों के गणना फलों से गाथाओं में दिये गये मानों के सम्बन्ध में मिलान विषयक संवाद प्रो० डॉ० आर० सी० गुप्ता, यूनेस्को के भारतीय गणित इतिहास के प्रतिनिधि, मेसरा (रांची) से भी किया गया। उनके पत्रानुसार जो ३० जनवरी १९८५ को प्राप्त हुआ था, उन्हें कोई प्राचीन विधि प्राप्त हुई है जिससे वे हिमवान् का क्षेत्रफल २५१००४५९$\frac{२१९}{३१६}$ वर्गयोजन निकालने में समर्थ हो सके हैं। वे इस समस्या को सुलझाने का अभी भी प्रयास कर रहे हैं। स्मरण रहे कि इन क्षेत्रफलों में $\sqrt{१०} = \frac{१९}{६}$ लेने पर भी क्षेत्रफल सम्बन्धी उक्त गाथाओं में दिये गये मान प्राप्त नहीं होते हैं। उपर्युक्त गणनाओं से तिलोयपण्णत्ती भाग १, १९४३ की गाथाएं चतुर्थ अधिकार, मुख्यतः १६२४, १६२६, १६९८, १६९९, १७१८, १७१९, १७३८, १७४०, १७५१, १७५२, २३७६, १७७५, १७७३ तथा २३७७ एवं कन्नड़ प्रति से प्राप्त कुछ गाथाएँ हैं।

मंगलाचरण

ॐ नमः सिद्धेभ्यः ! ॐ नमः सिद्धेभ्यः !! ॐ नमः सिद्धेभ्यः !!!

ॐकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ।
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नमः ।।
अविरलशब्दघनौघप्रक्षालितसकलभूतलकलङ्का ।
मुनिभिरुपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितम् ।।
अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः ।।

श्री परमगुरवे नमः, परम्पराचार्यगुरुभ्यो नमः । सकलकलुषविध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्द्धकं, धर्मसम्बन्धकं, भव्यजीवमनःप्रतिबोधकारकमिदं शास्त्रं 'श्रीतिलोयपण्णत्ती' नामधेयं, अस्य मूलग्रन्थकर्त्तारः श्री सर्वज्ञदेवास्तदुत्तरग्रन्थ-कर्त्तारः श्रीगणधरदेवाः प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचोऽनुसारमासाद्य पूज्य-यतिवृषभाचार्येण विरचितं इदं शास्त्रं । वक्तारः श्रोतारश्च सावधानतया शृण्वन्तु ।

मङ्गलं भगवान् वीरो, मङ्गलं गौतमो गणी ।
मङ्गलं कुन्दकुन्दाद्यो, जैनधर्मोऽस्तु मङ्गलम् ।।
सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं, सर्वकल्याणकारकं ।
प्रधानं सर्वधर्माणां, जैनं जयतु शासनम् ।।

卐

विषयानुक्रम

चउत्थो – महाहियारो

(गाथा १—३००६)

तिलोय-पण्णत्ती द्वितीय खंड (द्वितीय संस्करण) १९९७ ई०

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ संख्या	पंक्ति संख्या	अशुद्ध	शुद्ध
समर्पण	९	पट्टाधीशाचार्य पद	निकालना है।
१३	४	छट्टुम्भि	छट्टमाम्मी
३	२	१६००९०३०१२५००० योजन	१६००९०३०१२५००० वर्ग योजन
३	११	=१४२३०२४९ वर्ग योजन	१४२३०२४९ योजन
३	१२		और जो के आगे $\frac{१३३९७९९९}{२८४६०४८९}$ अंश
५	१२	जगती की गहराई	जगती की
५	१२		दो कोस के आगे बढ़ाना है। —मोटी (जाड़ी या चौड़ी) और इतनी (दो कोस) ही गहरी है।। ९६।।
११	तालिका नं. २ कालम ३ ज्येष्ट प्रसादों की ऊचाई	२०० धनुष	२२५धनुष
१७	१४	$\frac{१२१११७७५०००}{६३२४५४}$ योजन	$\frac{१२१११७७५०००}{६३२४५४}$ वर्ग योजन
१७	१५	$\frac{२८०९००}{६३२४५४}$ योजन	$\frac{२८०९००}{६३२४५४}$ वर्ग योजन
१७	१६	७९०५६९४१५० योजन	७९५६९४१५० वर्ग योजन
१८	१५	७९०५६९४१५० योजन	७९०५६९४१५० वर्ग योजन
२०	१०	३ योजन अवशेष	३/४ योजन अवशेष
२०	१०	अवशेष ३ कोस	३/४ कोस
२१	२	१ हाथ० वि०	१ हाथ, ० वितस्ति
२२	११	$\sqrt{५०००००००००}$	$\sqrt{५००००००००}$
२२	११	$\sqrt{५०००००००००}$	$\sqrt{५००००००००}$
२२	११	$\sqrt{६२५०००००००}$	$\sqrt{६२५००००००}$
२२	११	$\sqrt{६२५०००००००}$	$\sqrt{६२५००००००}$
३३	तालिका ४	क्रमांक २ स्वर्ण	स्वर्ण सदृश
३३	तालिका ४	क्रमांक ४ चाँदी	चाँदी सदृश
३३	तालिका ४	क्रमांक ६ तपनीय	तपनीय स्वर्णसदृश
३३	तालिका ४	क्रमांक ८ वैडूर्य	वैडूर्य सदृश

३३	तालिका ४	क्रमांक १२	रजत	रजत सदृश
३३	तालिका ४	क्रमांक १०	स्वर्ण	स्वर्ण सदृश
३५	विशेषार्थ	१ पंक्ति	पूर्व-पश्चिम लम्बा है	पूर्व-पश्चिम ९७४८ $\frac{\text{१२}}{\text{१६}}$ योजन लम्बा है।
३८	गाथा १२८	के नीचे	६०१	२।६०।
४२	गाथा १४६	अर्थ प्रथम पंक्ति	वाहन देव-व्यन्तर होते हैं।	वाहन जाति के। व्यंतरदेव रहते हैं जो
५२	विशेषार्थ की	प्रथम पंक्ति	और भरत क्षेत्र	और दक्षिण भरत क्षेत्र का
५२	विशेषार्थ की	सातवीं अंतिम	इसमें १६७३२४ अवशेष	इसमें $\frac{\text{१६७३२४}}{\text{३७०४४४}}$ अवशेष
५३		१ पंक्ति	$=\frac{(\text{१७२१५४७५६२५})}{\text{३६१}} \times \text{२}^{\frac{\text{१}}{\text{२}}}$	$\left\{\frac{(\text{१७२१५४७५६२५})}{\text{३६१}} \times \text{२}\right\}^{\frac{\text{१}}{\text{२}}}$
५५		१५ पंक्ति	या ४८५ $\frac{\text{३०}}{\text{३८}}$	या ४८५ $\frac{\text{३७}}{\text{३८}}$
५९	तालिका ५ क्र० १		१८७५ $\frac{\text{१३}}{\text{१६}}$ योजन	१८७५ $\frac{\text{१३}}{\text{३८}}$ योजन
८२	गाथा सं. २८९ के नीचे यह पढ़ा जाना है			सं दृष्टि का स्पष्टीकरण १ = १ आवलि रि = अंसख्यात समयों की होती है १ = १ उच्छवास ७ = संख्यात आवलियों १ = १ प्राण नामा समय १ = १ उच्छवास बराबर है।
९७		१६	जहाँ-जहा	जहाँ-जहाँ
१२३	८		जघन्य से अर्थात अपर्याप्त अवस्था में मिथ्यात्व	जघन्य से मिथ्यात्व
१२३	९		उत्कृष्टता से अर्थात् पर्याप्त अवस्था में मिथ्या दृष्टि	उत्कृष्टता से मिथ्यादृष्टि

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२९	५ अर्थ	प्रतिश्रृति	प्रथम प्रतिश्रुति
१३१	१	सनमतिनामक	द्वितीय सन्मति नामक
१३२	४ अर्थ	उस कुलकर था	उस तृतीय कुलकरका
१३३	६ अर्थ	इस कुलकर के	इस चतुर्थ कुलकर के
१३४	१३ अर्थ	इस (सीमंकर)	(इस पंचम सीमंकर)
१३५	१३ अर्थ	सीमंधर मनु के	पष्ट सीमंधर मनु के
१३५	१७ लाइन	१ / दंड ७०० । १०००००००	प १ / दंड ७०० । १०००००००
१३६	६	१ / । प ८०००००००	प १ / । ८०००००००
१३६	१२	१ / । दं० ६७५ । प १००००००००	प १ / । दं० ६७५ । १०००००००
१३७	८	१ / । प ८००००००००	प १ / । ८००००००००
१३७	१४	१ / ।दं० ६५० । प १०००००००००	प १ / ।दं० ६५० । १०००००००००
१३८	६	१ / ।प ८००००००००० ।	प१ / ।८००००००००० ।
१३८	१२	१ / । दं० ६२५ । प१००००००००००	प १ / ।दं० ६२५ । १०००००००००
१३९	१५	१ / । प ८०००००००००० ।	प १ / । ८०००००००००० ।
१३९	अर्थ १ पंक्ति	अभिचन्द्र	दसम अभिचन्द्र
१४०	१	१ / । दं० ६०० । प १०००००००००००	प१ / । दं० ६०० १०००००००००००
१४१	४	१ / । प८०००००००००००० ।	प१ / । ८०००००००००००० ।
१४१	५ अर्थ	चन्द्राभ कुलकर के	(ग्यारहवें) चन्द्राभ कुलकर के
१४१	१९	१ / । दं० ५७५ । प १०००००००००००० ।	प १ / । दं ५७५ । १०००००००००००
१४२	१४	१ / । प ८०००००००००००० ।	प १ / । ८००००००००००००
१४२	१५ अर्थ	उस मनु के	उस (तिरहवें) मनु के
१४८	तालिका ११	में जहां शब्द क० है	वहाँ करोड़ पढ़े।
१६०	४	।। पुव्व व ८४ ल.।	।पुव्व ८४ ल.।

१६०	९	।। सा ५० को ल ।पुव्व घण१२ ल	।। सा ५० को ल। व पुव्व १२ ल।।
१६०	१३ लाख	। सा ३० को ल। घण	।। सा ३० को ल। व घण
१६१	१	(सा ९ को ल। घण पुव्व व १० ल।	। सा ९ को ल। घण + पुव्व १० ल।
१६१	१७	अर्थ नौ सौ सागरोपमोके	नौ सौ करोड़ सागरोपमोके
१६२	१	। सा ९० को। घण पुव्व व ८ ल	। सा ९० को। घण पुव ८ ल।
१६२	१३	। सा को १। पुव्व व १ ल।	। सा को १। पुव्व १ ल।
१६२	१९	। सा ५४ वस्स १२ ल।	। सा ५४ घण वस्स १२ ल।
१६३	३	। सा ३० वस्स १२ ल।	। सा ३० घण०वस्स० १२ ल।
१६३	८	।सा ९ वस्स ३० ल।	। सा ९ घण वस्स ३० ल)
१६३	१३	। सा ४ वस्स २० ल।	। सा ४ घण वस्स २० ल।
१६४	९	ग्यारह हजार कम एक हजार करोड़	ग्यारह हजार वर्ष कम एक हजार करोड
१६४	१४	उन्तीस हजार अधिक	उन्तीस हजार वर्ष अधिक
१६६	५	तीर्थंकरों के अन्तराल काल का	तीर्थंकरो के जन्मान्तर काल का
१७०	१८	।पुव्व ६३ ल। अजि ५३ ल।	। पुव्व ६३ ल। अजि पुव्व ५३ ल।
१७१	११	उन्तीस लाख वर्ष पूर्व	उन्तीस लाख पूर्व
१७३	६	चतुर्थांश प्रमाण	चर्तुथांश २५००० वर्ष प्रमाण
२१०	अन्तिम से पहली	अढाइसौ अढाइसौ कम	अढाई सो अढाई सौ धनुष कम
२१८	१	२४ आदि संख्याओं से पहले १४४	। को २४ आदि पढ़े। १४४
२२०	१०-११	२६४ आदि के पहिले ५७६	जोयण शब्द पढे।
२२७	१९	पढमं पीढाणं	पढमं -पीढाणं सोवाणं
२३२	तालिका १९ कालम २	मानस्तम्भो का वाहल्य	मानस्तम्भों का बाहल्य गा ७८३-७८४
२३७	१२-१३	संख्या २४ आदि के पहले १४४	को पढे।
२३८	११-१२	संख्या २६४ आदि को पहले ५७६	जोयण, शब्द पढ़े।
२३८	१५-१८	संख्या ५५	को । ५५
२४०	तालिका २० पंक्ति ३ कालम अंतिम	२८८ ३$\frac{९३}{२६}$	२८८ ३$\frac{९३}{३६}$
२४०	तलिका २० पंक्ति ८ कलम ६	१०८$\frac{९}{९८}$	११८$\frac{९}{९८}$
२४०	तालिका २० पंक्ति १३ कालम २	१६६$\frac{२}{६}$	१६६$\frac{२}{३}$

२४१	५-७	के पहिले	को २४ आदि पढ़े। ७२
२४२	६-७	के पहिले	को शब्द पढ़े।
२४६	८-९	के पहिले	जोयण शब्द पढे।
२४७	तालिका २१ क्र. ३ कालम २ में	३ १३/२६	३ १३/३६
२४७	तालिका २१ क्र. २३ में कालम १ में	६९ १/३६	६९ ४/६
२४७	तालिका २१ क्र० २३ में कालम ३ में	६९ १/३६	६९ ४/६
२५१	पंक्ति ४-५ के पहिले	एवं १५-१६ के पहिले	जोयण शब्द पढ़े
२५२	पंक्ति ४-५ के पहिले	एवं १५-१६ के पहिले	जोयण शब्द पढ़े।
२५७	३-४	के पहिले	जोयण शब्द पढे।
२५७	९	ग्यारह से गुणित अपनी प्रथम वेदी विस्तार सदृश है	ग्यारह से गुणित अपनी प्रथम वेदी के विस्तार सदृश है।
२५९	१-२	के पहिले	को शब्द पढ़े।
२५९	९-१०	के पहिले	धनुष शब्द पढ़े।
२६०	१०-११	के पहिले	को शब्द पढ़े।
२६०	१४-१५	२५ | १२५० २८८ | ९	धनुष २५ | १२५० २८८ | ९
२६२	८	सर्पिरास्त्रव	सर्पिस्त्रव
२६४	४-५	के पहिले	को शब्द पढ़े।
२६५	९	अपने मानस्तभदि की ऊँचाई सदृश है।	अपने मानस्तम्भों की प्रथम पीठ की ऊँचाई सदृश है।
२६७	७-८	| १२५/८ |	| १२५/२ |
२६९	तालिका २४	पीठ की मेखला का विस्तार गाथा ८८०	पीठ की मेखला का विस्तार गाथा ८८०-८८१
२७८	१३	१ खेद रहितता	१ स्वेद रहितता
३३५	१९	कवली सात हजार	केवली सात हजार
३३७	७	ओ ४८००। के ५५०० । वि ९०००	ओ ४८०० । के । ५५०० वे ९०००
३४६	५	ऋषभनाथ जिनेन्द्र के तीर्थ में	ऋषभनाथ जिनेन्द्र के समय में

३४६	१०	सम्भवनाथ के तीर्थ में	सम्भवनाथ के तीर्थ समय में
३४६	१५	सुमति जिनेन्द्र के तीर्थ में	सुमति जिनेन्द्र के समय में
३४६	२०	सुपार्श्व जिनेन्द्र के तीर्थ में	सुपार्श्व जिनेन्द्र के समय में
३४७	४-९-१४१९	सुवधि और शीतल वासु पूज्य स्वामी अनन्तनाथ स्वामी शान्तिनाथ के तीर्थ की बजाय	समय पढ़े।
३४८	१-६-११	अरहनाथ, मुनिसुब्रतनथ नेमिनाथ तीर्थ के बजाय	समय में पढ़े।
३४९	१३	क्रमश: ऋषभआदि के तीर्थ में	क्रमश: ऋषभदिक के समय में
३४९	१८	। ८। ३००००० । २०००००	। ८। ३००००० । ८। २०००००
३५०	१	प्रत्येक के तीर्थ में	प्रत्येक के तीर्थ समय में
३५०	९	प्रतयेक के तीर्थ में	प्रत्येक के तीर्थ समय में
३५०	१२	प्रत्येक के तीर्थ में देव देवियों	प्रत्येक तीर्थकर के समव शरण में
३५७	अन्तिम लाइन	वर्धमान	वर्धमान[२]
३५७	टिप्पण में		२–देखें गाथा १४८८-१४८९
३६४	६	छह माह के समय में	छह माह के उपरान्त समय में
३६४	१४	के पश्चात् नोट :	इन दोनों गाथाओं का अर्थ विद्वज्जनों के द्वारा चिन्तनीय है।
३६७	९	ऋषियों की यह संख्या	ऋषियों की संख्या
३७४	८	सा १ कोरिण सा १००। प $\frac{1}{2}$।	सा १ को रिण। सा १०० । प $\frac{1}{2}$
३८३	९	६००००।	६०००।
३८४	९	५००००।	५०००।
३९५	१४	चक्कीण चलण कमले	चक्कीण चरण कमले
३९७	९	अड छप्पण चउतिसया	अड छच्चउ पणति सया
४२३	१०	४० ल। व २० ल। व १० ल। ६९	व ४० ल। व २० ल। व १० ल व ६९
व १० ल। ६९		व १० ल। व ६९।	
४४६	अन्तिम	जीवन भर के लिये छोड़कर	जीवन भर के लिये भक्ति पूर्वक छोड़कर
४५१	९	लोकान्त पर्यन्त	लोकान्त (मध्य लोक के अन्त) पर्यन्त
४५७	१७	आयु और तीर्थकर प्रकृति वंध के	आयु और जो जीव तीर्थकर होने वाले हैं उनके नाम

४६२	२४	पूर्व कोटि प्रमाण	पूर्व कोटि वर्ष प्रमाण
५४५	अन्त में	नोट लगाना है।	यह सौ धर्मेन्द्र की सभा का चित्र त्रिलोकसार से दे दिया गया है। अतः गाथा १९७४ में कही हुई लम्बाई के विलोप से इसका विरोध है।
५६४	१३	यह अन्तराल प्रमाण तीन हजार	यह अन्तराल तीन हजार
५७५	९	यह वेदी विपुल मार्गों एवं अट्टालयों।	यह वेदी विपुल मार्गों एवं अट्टालिकाओ
५९९	नक्शे में	ऊपर दोनों तरफ नीचे दोनों तरफ	भूतारण्य भूतारण्य पढ़े। देवारण्य देवारण्य
६०१	६	देवारण्य और भद्रशाल	देवारण्य और भद्रशाल वन
६०३	८	+ २२००० x २	+ (२२००० x २
६०४	३	विशेषार्थ–(२२१२$\frac{७}{८}$ x १६)	[(२२१२$\frac{७}{८}$ x १६–)] =९०००० योजन
६०९	८	शुद्र	शूद्र
६१०	१३	पूर्व कोटि (१००००००००) है।	पूर्व कोटि (७०५६०००००००००० x १००००००००) वर्ष है।
६१२	५	तोरण द्वार से गंगा नदी	तोरण द्वार से गंगा नदी
६१३	१०	अट्टालयों से	अट्टालिकाओं से
६२१	१६	उत्तर पव्वं	उत्तर पुव्वं
६४१	३	के पश्चात् नोट	इस संदृष्टिका अर्थ तालिका में निहित है।
६५५	९	(१०००)	(१०००) योजन
६६५	८	अट्टालयो	अट्टालिकाओं
६६७	१५	अट्टालयो	अट्टालिकाओं में
६९१	४	(पर्वतों के)	(पर्वत आदि के)
६९३	१९	= ५ लाख	=५ लाख योजन
६९३	२०	= ९ लाख	= ९ लाख योजन
६९३	२१	= १३ लाख	= १३ लाख योजन
६९७	१०	(६६१४$\frac{१२६}{२१२}$)	(६६१४$\frac{१२६}{२१२}$ योजन)
७१०	८	उत्पन्न हुई संख्या को	उत्पन्न हुई ३९८५०० संख्या को।

७१४	१८	—४७७ $\frac{६०}{२१२}$ योजन व० वृद्धि प्रमाण	४७७ $\frac{६०}{२१२}$ योजन वक्षार का वृद्धि प्रमाण
७२४	९	एक शैल चन्द्रनग नामक वक्षार पर्वत की	एक शैल और चन्द्रनग नामक वक्षार नाम वक्षार पर्वतों की
७२६	२२	(इच्छित क्षेत्रों) उनकी	उन इच्छित क्षेत्रों की
७२६	४	मध्य सूची में से	मध्यम सूची में से
७३८	१५	लाइन के पश्चार्त यह लाईन बढ़ेगी।	२१६७४६ $\frac{४०}{२१२}$ − २७८९ $\frac{९२}{२१२}$ ==२१३९५६ $\frac{१६०}{२१२}$
७३९	१०	हिमवान पर्वत का क्षेत्रफल —४०००००— २१०५ $\frac{५}{१९}$ =८४२१०५२६३ $\frac{३}{१९}$ योजन	हिमवान पर्वत का क्षेत्रफल —४००००० योजन x २१०५ $\frac{५}{१९}$ योजन = ८४२१०५६३ $\frac{३}{१९}$ योजन
७३९	२३	८४२१०५२६३ $\frac{३}{१९}$	८४२१०५२६३ $\frac{१०}{१९}$ योजन
७४३	२१	अडतालीस दीप	अडतालीस कुमानुषे द्वीप
७४५	३	वत्स्य मुख	मत्स्य मुख
७४६	८	काल समुद्र	कालोदक समुद्र
७४९	६	काल समुद्र	कालोदक समुद्र
७५३	१०	जो संख्या उत्पन्न हो	जो (१४२३०२४९) संख्या उत्पन्न हो।
७५३	१२	१३३९७९९९ वर्ग योजन	१३३९७९९९ योजन
७७०	१६	जो संख्या उत्पन्न हो	जो ३८४५७४८ $\frac{११२}{२१२}$ संख्या उत्पन्न हो
७७९	अन्तिम	२०२२०८४ $\frac{६४}{१८४}$	२०२२०८४ $\frac{६४}{२१२}$
७८०	२	तहेव चुलसी दी	तहेव अडवीसा
७८७	अन्तिम	१४६१०१३ $\frac{२८}{२१२}$ + २३८ $\frac{१३६}{२१२}$	१४६१०१३ $\frac{२८}{२१२}$ − २३८ $\frac{१३६}{२१२}$
७९६	२०	योजन।	योजन १४ पर्वतों से अवरूद्ध क्षेत्रफल।

तिलोय पण्णत्ती ग्रन्थराज की टीका कर्त्री

आर्यिका विशुद्धमती माताजी

नीरज जैन

विदुषी आर्यिका पूज्य १०५श्री विशुद्धमती माताजी गृहस्थावस्था की हमारी छोटी बहिन थीं। गुरुवर १०५श्री गणेशप्रसादजी वर्णी का हमारे परिवार पर वात्सल्यपूर्ण स्नेह रहा है। वे रीठी पधारते तब हमारे घर ही ठहरते थे इस कारण घर का वातावरण ऐसा रहा जिसमें हमें बचपन से धार्मिक संस्कार मिलते रहे हैं। पूर्व जबलपुर (अब कटनी) जिले के अंतर्गत कटनी से केवल तीस किलोमीटर पर रीठी एक छोटा सा गाँव है। इसी गाँव में हमारे पिता श्री लक्ष्मणलाल सिंघई व्यापार करके अपने परिवार का पोषण करते थे। वे जैन दर्शन के स्वाध्यायी विद्वान और पं. दौलतरामजी की छहढाला के मर्मज्ञ थे। उन्होने बचपन में ही हमें छहढाला कण्ठस्थ करा दी थी। वे कुशल वैद्य थे, जीवन भर स्वयं घर में बनवाकर औषधियों का नि:शुल्क वितरण करते रहे। पिताजी गाँधीवादी विचार धारा के पोषक थे। सरकारी आतंक के उस युग में भी कॉंग्रेस के प्रचारकों के लिये हमारे घर का द्वार सदा खुला रहता था। इसके लिये हमारे परिवार को कई बार मुश्किलों का सामना करना पडा और हानि भी उठानी पडी। १९४२ में हमें भी कुछ दिनों जेल की हवा खाना पडी।

इसी छोटे से गॉंव मे १२ अप्रेल १९२९ को हमारी अनुजा सुमित्रा का जन्म हुआ। उस समय किसी को अनुमान नही था कि एक दिन यह बालिका अपने पुरुषार्थ से सारे देश में गाँव का नाम रौशन करेगी। १९४२ में नन्ना का वियोग हुआ जिससे घर की हालत खराब हो गई। खाने वाले आठ थे, कमाने वाला चला गया था। तब मै नीरज और अनुज निर्मल, दोनों भाइयों तथा सुमित्रा सहित चार बहिनों का भार हमारी विधवा मॉं ने सम्हाला। माँ को हम काकी कहते थे। सुमित्रा पर उनका बडा प्रेम था। साढ़े चौदह वर्ष की आयु में काकी ने पडोस के गॉंव बाकल में सुमित्रा का व्याह कर दिया। फिर साल भर के भीतर हठ करके हमारे सिर पर मौर बँधाकर बहू का मुँह देखने की लालसा भी उन्होने जल्दी पूरी कर ली। हमारे व्याह के केवल एक माह बाद, १९४४ की फरवरी में दो दिन की बीमारी के आघात से काकी हम सब को बिलखता छोड़कर चली गईं।

काकी ने विपत्ति के उन दिनों में कठोर परिश्रम करके हम सबको माँ की ममता और पिता का संरक्षण दिया। उन्होने कठिनाइयों के बीच साहस नहीं छोडा, दुर्भाग्य के समय में भी धर्म पर अपनी श्रद्धा डिगने नहीं दी और गरीबी भोगते भी अपने भीतर दीनता नहीं आने दी, अपने आत्म-गौरव को ठेस नहीं लगने दी। यही उनकी शक्ति थी जिसके बल पर वे भँवर के बीच से गृहस्थी की नाव को आखिरी साँस तक खेती रहीं। प्रतिकूल परिस्थितियों का साहस पूर्वक सामना करते चलना यही वह सम्पदा थी जो वे हम भाई-बहिनों को सोंप कर गईं। मॉं के जाते ही हमने रीठी छोड दी और सागर जाकर नौकरी कर ली।

सुमित्रा का व्याह तो हुआ परन्तु उस के भाग्य में कुछ और ही लिखा था। सोलह वर्ष की सुकुमार आयु में उसे वैधव्य का दारुण दुख झेलना पड़ा। तब रीठी में सिर्फ प्रायमरी स्कूल ही था अत: हम सभी भाई बहिन केवल चार कक्षा तक पढ़ पाये थे। बहुत चाहते हुए भी हम निर्मल को पढ़ाने का दायित्व पूरा नहीं कर पाये यह कसक सदा हमारे मन में टीसती रही है। उन दिनों घर में विधवा स्त्री की दशा ऐसी दयनीय होती थी जिसकी कल्पना करके हम पति-पत्नी रोते रहते थे। हमने अपनी निस्संतान विधवा बहिन को नार्मल ट्रेनिंग पास कराकर स्वावलम्बी बनाने का संकल्प किया। उसे अपने पास सागर लाकर 'माता चिरोंजाबाई जैन महिलाश्रम' में प्रवेश दिलाया जहाँ रह कर सुमित्रा ने मिडिल पास किया। सागर में नार्मल ट्रेनिंग स्कूल नहीं था इसलिये, आगे पढ़ाने के लिये हमने सागर छोड़ कर जबलपुर में आजीविका तलाश ली। वहाँ साथ रख कर बहिन को वह परीक्षा पास कराई। परीक्षा में उत्तीर्ण होते ही देहात के सरकारी स्कूल में अध्यापिका पद पर सुमित्रा की नियुक्ति हो गई। नौकरी पर भेजने के पहले हम उसे वर्णीजी का आशीर्वाद दिलाने ईसरी ले गये। हमारी आस्था थी कि बाबाजी भक्तों का भविष्य बताते भर नहीं हैं, बनाते भी हैं। बाबाजी ने सरकारी नौकरी के लिये मना कर दिया। परिग्रह परिमाण व्रत दिया और आदेश दिया कि -'जिस मातृ संस्था में तुमने शिक्षा प्राप्त की है, उसी महिलाश्रम की सेवा तुम्हें करना है, वह संस्था छोड कर अन्यत्र कहीं मत जाना।'

सुमित्रा ने गुरु आज्ञा के सामने मस्तक झुकाकर पहले एक वर्ष तक बम्बई के तारदेव महिलाश्रम में सह-व्यवस्थापिक के पद पर संस्था प्रबंधन का अभ्यास किया, फिर चौदह वर्ष तक अध्यापिका पद पर महिलाश्रम को अपनी सेवाएं प्रदान कीं। इस बीच वे प्रतिवर्ष पर्युषण में बाहर जाकर आश्रम के लिये सहयोग राशि लाती रहीं। इस कार्य के लिये सहाध्यापिका राजमती बाई को साथ लेकर सुमित्रा ने इन्दौर, खण्डवा, राँची तथा आसाम तक की यात्राएं कीं। उनकी दीक्षा के उपरान्त राजमती बाई ने भी आर्यिका दीक्षा लेकर उनका अनुसरण किया। आश्रम में उन्होंने अनेक विधवा बहिनों को साहस दिलाकर अपने हाथों अपना भाग्य बनाने का मार्ग दर्शन देकर आगे बढ़ाया। महिलाश्रम के भवन में जिनालय स्थापित कराने में भी सुमित्रा का सराहनीय योगदान रहा।

वर्णी बाबाके चरणों में हमारी बहिन की अटल आस्था थी। हम साल में कम से कम एक बार, वर्णी जयन्ती पर बाबाजी के दर्शनार्थ उन्हें ईसरी ले जाते रहे। बाबाजी की समाधि के समय भी वे हम दोनों भाइयों के साथ ईसरी में थीं। उन्हीं कृपालु गुरु से प्राप्त संस्कारों के बल पर सुमित्रा के मन में धर्म का अध्ययन करने की रुचि जगी। हमारे निकट संबंधी पण्डित पन्नालालजी साहित्याचार्य ने उनकी प्रतिभा और लगन को परख कर उन्हें धर्म तथा सिद्धान्त की शिक्षा देने की महती कृपा की। वर्षों तक वात्सल्य और परिश्रम पूर्वक उन्हें अनेक धर्म ग्रन्थों का अभ्यास कराया। गर्मी हो, सर्दी हो या बरसात, पण्डित जी कटरा से पैदल चलकर सुबह चार बजे सुमित्रा को पढ़ाने महिलाश्रम पहुँच जाते थे। शीघ्र ही वे धर्म और दर्शन की विदुषी बन गईं। जब सतना आतीं तब नियम से हमारे साथ स्वाध्याय में बैठतीं और हर बार पण्डितजी की प्रशंसा करती थीं।

साहित्याचार्यजी की रोपी हुई विद्या की बेल में ही सुमित्रा ने स्व-पुरुषार्थ से ज्ञान और संयम के पुष्प खिलाये। उसी बेल के फलस्वरूप उनके चित्त में अनासक्ति की भावना पनपने लगी थी।

हम लोगों की आस्था के केन्द्र पूज्य गणेश प्रसादजी वर्णी, १९६१ में चौंतीस दिन की सल्लेखना के साथ सद्गति-गमन कर चुके थे। वर्णी बाबा हम भाई-बहिनों के लिये पिता के समान थे। वे ही हमारे लिये सत्प्रेरणा के सहज उपलब्ध एकमात्र आयतन थे। उनके जाने से हमारी धर्म-साधना की धारा में एक रिक्तता सी आ गई थी। दैव योग से उन्हीं दिनों चारित्र-चक्रवर्ती पूज्य आचार्य शान्तिसागरजी के द्वितीय पट्टाचार्य, पूज्य आचार्य शिवसागरजी के संघ के परम तपस्वी महामुनि धर्मसागरजी सहित तीन महामुनियों के संघ का खुरई और सागर की ओर आगमन हुआ। इस मुनिसंघ के निमित्त से हमारा संत-समागम का टूटा हुआ क्रम पुनर्स्थापित हो गया।

धर्मसागर महाराज के साथ मुनिश्री सन्मतिसागरजी थे। गृहस्थावस्था में वे सामान्य श्रावक थे और 'टोडारायसिंह वाले कन्हैयालाल' के नाम से जाने जाते थे। उनके बारे में सुना था कि वे शिवसागर जी के सामने क्षुल्लक दीक्षा की प्रार्थना लेकर गये थे तब महाराज ने कहा था-'तुम्हारा पुत्र अभी छोटा है उसे सहारा चाहिये, वह बडा हो जाये तब गृहत्याग का विचार करना, तब तक घर में रह कर साधना करो।' कुछ समय बाद एक दिन उनकी पत्नी जलाशय पर कपड़े धो रही थी, वहाँ खेलते-खेलते किशोर पुत्र पानी में फिसल गया, उसे बचाने माँ पानी में उतरी और दोनों डूब मरे। इस दुर्घटना के एक माह बाद संकल्पित-श्रावक कन्हैयालालजी गुरु-चरणों में उपस्थित हो गये - 'महाराज, मेरे दो ही बंधन थे, होनहार के एक ही झटके में दोनों कट गये। अब घर ही नहीं रहा, तब छोड़ना क्या है ? अब शरण में लेकर मेरा उद्धार कीजिये।' दयालु आचार्य पूज्य शिवसागरजी ने उन्हें पिच्छी प्रदान करके मोक्ष मार्ग का पथिक बना दिया। उन दृढ़ विरागी सन्मतिसागर महाराज का सदुपदेश और सत्परामर्श हमारी मुमुक्ष बहिन सुमित्रा को जीवन यात्रा की दिशा निर्धारित करने में प्रेरक निमित्त बनकर सहायक हुआ।

पण्डिता सुमित्राबाई ने मुनिश्री धर्मसागरजी के चरणों में सातवीं प्रतिमा के व्रत ग्रहण कर लिये। सकल-संयम अंगीकार करने की लालसा उनके मनमें बलवती होती जा रही थी पर साहस नहीं हो रहा था। सामने आर्यिका जीवन का कोई जीवन्त उदाहरण नहीं था। बुन्देलखण्ड में कोई आर्यिका दीक्षा सुनने में नहीं आई थी। क्या होगा, कैसे होगा, का द्वन्द्व मन को मथ रहा था। इरादे बाँधती थीं, सोचती थीं, छोड़ देती थीं, कहीं ऐसा न हो जाये, कहीं वैसा न हो जाये। यही उनके मन की दशा हो रही थी। मुनिश्री सन्मतिसागरजी ने साहस दिलाकर सुमित्रा की उलझन को सुलझाया। कुछ समय बाद दृढ़-संकल्पित ब्रह्मचारिणी सुमित्रा दीदी ने आर्यिका दीक्षा का श्रीफल चढा दिया। महाराज का उत्तर मिला-'आर्यिका को अकेले रहने की आगम की आज्ञा नहीं है, हमारे साथ कोई आर्यिका नहीं है, तुम्हें आचार्य शिवसागरजी के पास जाकर प्रार्थना करना चाहिये, दीक्षा आचार्य ही देंगे। वहाँ संघ मे चार आर्यिकाएं हैं, उनके सहारे तुम्हारी नि:शल्य साधना हो सकेगी।'

शिवसागर महाराज अपने चार मुनियों और चार आर्यिका माताओं के संघ सहित बुन्देलखण्ड में ही विहार कर रहे थे। उनका चौमासा श्रीक्षेत्र पपौरा के लिये निश्चित हो गया था। ब्र. सुमित्राजी ने संघ में जाकर आचार्यश्री के सामने अपनी प्रार्थना रखी। मुनिश्री धर्मसागरजी तथा सन्मतिसागरजी की अनुमोदना थी अत: प्रार्थना तत्काल स्वीकृत हो गई। चौदह अगस्त १९६४ की श्रावण शुक्ला सप्तमी को, पार्श्व-प्रभु के निर्वाण दिवस पर श्री अतिशय क्षेत्र पपौरा की पवित्र भूमि पर, हमारी सहोदरा ब्रह्मचारिणी सुमित्रा, आर्यिका दीक्षा पाकर 'विशुद्धमती माताजी' बन गईं। जब भी उस दिन की स्मृति करता हूँ तब एक टीस पुन: मुझे पीड़ित करती है। ठीक उसी दिन हमारी आजीविका से संबंधित एक आवश्यक कार्य था जिसके लिये हम दोनों भाइयों में से किसी एक को शहडोल के जिलाध्यक्ष कार्यालय पहुँचना अनिवार्य था। सदा की तरह हमने अग्रज होने का लाभ उठाया। हम पपौरा में रहे और निर्मल भाई उस दीक्षा समारोह के साक्षी नहीं बन पाये।

तीन वर्ष पहले वर्णीजी के जाने के बाद हमारा संतसमागम का टूटा हुआ तार, बहिन के आर्यिका बनकर संघ में प्रवेश के बाद पुन: जुड़ गया। हमें देव-गुरु-शास्त्र की एक साथ आराधना का नया आधार मिल गया। वर्ष में हमारे परिवार के दो-तीन महीने संघ के सान्निध्य और सेवा मे व्यतीत होने लगे। पूज्य आचार्य शिवसागरजी परम प्रभावक आचार्य थे। उनकी क्षीण काया में अक्षीण तेज झलकता था। उन्हे पंच नमस्कार महामंत्र का इष्ट था, सदा उसकी आवृत्ति करते रहते थे। विद्वानों का जैसा समागम और आगमिक चर्चाओ का जितना अवसर उस मुनि-संघ में मिला, हमारे लिये वैसा अवसर उन दिनों अन्यत्र उपलब्ध नहीं था। आचार्य महाराज के साक्षात्-सान्निध्य में मुनिवर श्री श्रुतसागरजी के स्वाध्याय की निष्पत्तियाँ, उन पर अभीक्ष्ण-ज्ञानोपयोगी मुनिश्री अजितसागरजी के सटीक उद्धरण तथा अनेक विद्वानों के समीक्षात्मक मंथन, विदुषी आर्यिका माताओं का योगदान और उपस्थित जिज्ञासु जनों की सार्थक जिज्ञासाए उन तत्त्व-चर्चाओ को ऐसा सुगम, ग्राह्य और उपयोगी बनाकर चित्त मे उतार देती थीं कि आज आधी शताब्दी बीत जाने पर भी हम जब इच्छा करते हैं, उनकी मिठास का अनुभव कर लेते है।

सघ में सबसे वरिष्ट मुनि आचार्यकल्प श्रुतसागरजी थे। वीरसागर महाराज से दीक्षित थे अत: वे आचार्य शिवसागरजी के गुरु भाई थे। दोनों मे अनुपम वात्सल्य था। उनसे माताजी ने बहुत सीखा। वे हमे भी 'बेटा' कहकर पुकारते थे। जन्मत: श्वेताम्बर थे, छोगालाल उनका नाम था। गुरुवर गणेश वर्णीजी से प्रभावित होकर उन्होंने दिगम्बरत्व स्वीकार किया था। भय-आशा-स्नेह और लोभादि मानसिक प्रदूषणों से प्राय: मुक्त, उदासीन श्रावक की चर्या पालते थे। उनके अभिन्न मित्र बाबू सुरेन्द्रनाथजी सुनाया करते थे - एक बार सम्मेद शिखर में पारसनाथ टोंक पर साथियों ने उन्हें वरदान माँगने के लिये बलात् मन्दिर के भीतर धकेल कर भेजा। ऐसी मान्यता है कि वहाँ जो भी कामना की जाये वह अवश्य पूरी होती है। वे बेमन से पुन: मन्दिर में गये। पाँच मिनट में लौटे तब मित्रों ने पूछा - 'छोगालालजी आपने क्या माँगा भगवान से ?'

छोगालालजी ने मुश्किल से बताया - 'बड़ी भीड़ थी, कहीं हमारी याचना खो न जाये इस डर से हम भगवान की वेदी पर पेंसिल से लिख आये हैं, जानना चाहते हैं तो जाकर पढ़ लीजिये।'

वेदी पर लिखी कामना पढ़ कर दोनों साथी कपाल ठोंक कर रह गये, छोगालाल ने वहाँ लिखा था- 'हे पारस प्रभु, मेरा सर्वनाश हो जाये।' एक साथी ने कहा - 'अरे मूर्ख, यह क्या किया ? यहाँ जैसा माँगा जाये वैसा हो ही जाता है। अब यदि यह कामना पूरी हो गई तो तेरा क्या होगा ?' विलक्षण बुद्धि के धारक छोगालाल जी का उत्तर भी विलक्षण था - 'मुझे जो इष्ट था वही मैंने माँग लिया है, जब मिलेगा तभी मेरा कल्याण होगा। संसार में मेरे तीन इष्ट हैं, राग-द्वेष और मोह। यही मेरे अनादि के सँगाती हैं, यही मेरे सर्वस्व हैं। इनके अलावा कौन है जिसे मैंने अपना माना हो ? एक बार इनका सर्वनाश हो जाये फिर मुझे और क्या चाहिये ?' यही निर्मोही श्वेताम्बर श्रावक छोगालालजी कालान्तर में आचार्य वीरसागरजीसे दिगम्बरी दीक्षा लेकर मुनि श्रुतसागर बने थे। उनका अध्ययन तलस्पर्शी और व्यवहार वात्सल्य की चासनी में पगा हुआ होता था। माताजी पर उनकी अपार कृपा रही।

इस प्रकार परमपूज्य आचार्यश्री शिवसागरजी की पवित्र पिच्छी के पावन स्पर्श से संस्कारित पूज्य आर्यिका विशुद्धमती माताजी का भाग्य भी बड़ा प्रबल था। दीक्षा से सल्लेखना तक उन्हें आगम की आन मानने वाले प्रकाश-पुरुष, आचार्यकल्प महामुनि श्रुतसागरजी, मासोपवासी महामुनि सुपार्श्वसागरजी और अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी महामुनि आचार्यश्री अजितसागरजी जैसे तपस्वी मुनिराजों के चरणों का सहारा मिलता रहा। प्रारम्भ में संघ की वरिष्ठ आर्यिका, सोलापुर श्राविकाश्रम की वर्तमान अधिष्ठात्री बहिन विद्युल्लता की जन्मदात्री, पूज्य चन्द्रमती माताजी के प्रेमपूर्ण संरक्षण से लेकर अंत समय में वरिष्ठ आर्यिका पूज्य सुपार्श्वमती माताजी जैसी ममतामयी आर्यिका माताओं के सम्बोधन तक का समागम और सहयोग माताजी को प्राप्त रहा। सदा विनयपूर्ण निस्पृही विद्वानों का समागम मिलता रहा। इस प्रकार माताजी ने अनेक वर्षों तक ज्ञान-ध्यान-तप और श्रुतसेवा की आराधना की। 'ग्रन्थराज तिलोय पण्णत्ती की टीका' के स्व-निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति हेतु अत्यंत श्रमसाध्य कालजयी कार्य सम्पन्न करके उन्होंने अपनी पर्याय सार्थक कर ली। उनकी स्मृतियों को शतश : प्रणाम।

तिलोय पण्णत्ती की भाषा-टीका

'छठवीं शताब्दी का पूर्वार्ध इस महान ग्रन्थ 'तिलोय पण्णत्ती' का रचना काल सिद्ध है। हम जानते हैं कि उसके बाद के तीन-चार सौ वर्षों का समय, दक्षिण भारत में जैन संस्कृति के लिये विपत्ति का काल रहा है। एक ओर सनातन शक्तियाँ परस्पर धार्मिक संघर्षों में उलझ कर एक दूसरे को हर प्रकार से हानि पहुँचाने के प्रयास कर रही थीं और दूसरी ओर वही शक्तियाँ अपने अपने स्तर पर जैनों के मूलोच्छेदन में समान रूप से जुटी दिखाई देती थीं। उस कालखण्ड में जैन विद्याओं का पठन-पाठन सर्वथा विश्रृंखलित हो रहा था, हमारे देव-शास्त्र और गुरु, तीनों को मिटाने के अभियान चले। सैकड़ों

नहीं, शायद हजारों श्रमणों और मुनियों को कोल्हू में पेलकर, हिंसक अनुष्ठान सार्वजनिक रूप से आयोजित किये गये। बड़ी मात्रा में मन्दिरों और मूर्तियों का विनाश हुआ और शास्त्र-भण्डारो को जला कर महीनों तक उनके उत्सव मनाये गये। तमिल देश में वैष्णव संत रामानुजाचार्य को जिस प्रकार अपमानित और प्रताड़ित होकर कर्नाटक में राजा बिट्टिदेव का आश्रय प्राप्त करना पड़ा वह घटना उस विपत्ति काल में प्रवृत्त धार्मिक उन्माद का एक उदाहरण है। उन दिनों जैनों को भाषा-व्याकरण-गणित आदि विद्याएं पढ़ने और पढ़ाने के लिये जान हथेली पर रख कर, अपनी अस्मिता छिपाते हुए भटकना पडा और भेद खुल जाने पर अपना बलिदान तक देना पड़ा। अकलंक और निकलंक सहोदर विद्यार्थियों के जीवन की आत्मोत्सर्गी घटना उन परिस्थितियों का वास्तविक चित्र उपस्थित करती है।

पूर्व-मध्यकाल की ऐसी विकट परिस्थितियों में, आचार्य कुन्दकुन्द, आचार्य समन्तभद्र और उमास्वामी जैसे दिग्गज सरस्वती पुत्रों द्वारा प्रणीत शास्त्र तथा षटखण्ड आगम आदि ग्रन्थ जो सूत्रों और गाथाओं की जो सम्पदा श्रुत परम्परा के माध्यम से गुरु-शिष्यों के पास पीढ़ी दर पीढ़ी कण्ठगत चली आ रही थीं वही बच पाईं। विस्तार से रचे गये 'गंधहस्ति महाभाष्य' जैसे अनेक श्रुत-रत्न शायद उस ईर्षानल में भस्म हो गये। यह हमारा भाग्य है कि 'तिलोय पण्णत्ती' जैसे कुछ महान ग्रन्थ, पुरुषार्थी निर्ग्रन्थ मुनियो के प्रयत्नो से, और बाद की शताब्दियों में भट्टारकों के कौशलपूर्ण संरक्षण से, विनाश की भयावनी भँवर से निकल कर, येन-केन-प्रकारेण हमारे हाथों तक पहुँच पाये।'

पूज्य यतिवृषभाचार्य महामुनि के द्वारा गुम्फित ग्रन्थ 'तिलोय पण्णत्ती' एक ऐसा ही सुरक्षित बच गया ग्रन्थराज है। यह जिनवाणी माता के कण्ठ हार में एक ऐसे 'पुष्प-गुच्छक' के समान सुशोभित है जिसमें स्याद्वाद के पुष्पो की सतरंगी छटा और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों की मनहर सुगंधि व्याप्त है। यत्र-तत्र जैन इतिहास की बेलें और पत्तियाँ उस गुच्छक को बाँधने और गूँथने का प्रयास करती दिखाई देती हैं।

जैन आगम के ऐसे अति-महत्वपूर्ण, आठ हजार गाथा प्रमाण विस्तार वाले इस ग्रन्थ 'तिलोय पण्णत्ती' की रचना छठवीं शताब्दी ईस्वी मे आगम के पारगामी विद्वान यतिवृषभाचार्य महामुनि ने की थी। बीसवीं शताब्दी के अंतिम चरण में प्रो. ए. एन. उपाध्ये और डाऐ. हीरालालजी के सम्पादन में प. बालचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री कृत हिन्दी अनुवाद सहित पहली बार जीवराज ग्रन्थमाला सोलापुर से इसका प्रकाशन हुआ। उस संस्करण में मात्र ५६६६ गाथाएं सामने आई थीं। ग्रन्थ की प्राचीन ताडपत्रीय पाण्डु लिपियों तथा हल्ले-कन्नड़ (प्राचीन कन्नड़) के जानकार विद्वानों का वाँछित योग नही मिल पाने के कारण ऐसा हुआ था। प्रथम प्रति की इस कमी को पूरा करने के उपाय ध्यान में रख कर गुरु आज्ञा से विशुद्धमती माताजी ने इसकी टीका लिखने का दुरूह कार्य हाथ में लिया।

श्रवणबेलगोला जैन मठ के भट्टारक स्वस्तिश्री कर्मयोगी चारुकीर्ति स्वामीजी तथा मूडबिद्री जैन मठ के भट्टारक स्वस्तिश्री चारुकीर्ति ज्ञानयोगी स्वामीजी ने उदारता पूर्वक ग्रन्थ की मूल कन्नड़ प्रतियाँ अवलोकन के लिये उपलब्ध कराईं। श्रवणबेलगोल के चारुकीर्ति स्वामीजी ने कुछ महाधिकारों का नागरी लिप्यान्तर उपलब्ध कराया जिससे टीका को विस्वस्त आधार मिला। स्वामीजी ने कन्नड़ विद्वान श्री देवकुमारजी शास्त्री को माताजी के पास कई महीनों के लिये उदयपुर भेज दिया। इस प्रकार इन दोनों सदाशय मठाधिपतियों के सहयोग से ग्रन्थ सम्पादन के नियमों के अनुसार टीका का कार्य सम्भव हो सका। श्री देवकुमारजी शास्त्री के अलावा माताजी को इस कार्य में जिन अन्य विद्वानों का सहयोग मिला उन में जैन गणित के विशेष ज्ञाता ब्र. रतनचन्द्रजी मुख्तार ईसरी, डॉ. प्रो. लक्ष्मीचन्द्रजी जैन जबलपुर, माताजी के विद्यागुरु पं. पन्नालालजी साहित्याचार्य सागर, पं. जवाहरलालजी भिण्डर (उदयपुर), और डॉ. प्रो. चेतनप्रकाश पाटनी जोधपुर के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ग्रन्थ के पिछले संस्करण में भी इन सभी मनीषियों के प्रति कृतज्ञता और आभार प्रदर्शित किया गया है।

इस विशाल टीका ग्रन्थ का प्रथम संस्करण भारत वर्षीय दिगम्बर जैन महासभा के अध्यक्ष, दानशील श्रावक श्री निर्मलकुमारजी सेठी तथा कतिपय अन्य दातारों के द्रव्य से महासभा द्वारा सन १९८८ में हुआ था। उसके नौ वर्ष बाद सन १९९७ में पूज्य उपाध्यायश्री ज्ञानसागरजी महाराज के सदुपदेश से १००८श्री चन्द्रप्रभ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र 'देहरा-तिजारा' की प्रबंध समिति के द्रव्य-सहयोग से हुआ। नौ साल और बीत गये हैं, प्रतियाँ अब उपलब्ध नही हैं और साधु-सघों तथा विद्वानो की ओर से ग्रन्थ की माँग बराबर आ रही है। जब इस ओर उपाध्यायश्री का ध्यान दिलाया गया तब उन्होने पुन: 'देहरा-तिजारा' अतिशय क्षेत्र की प्रबंध समिति को प्रेरणा देकर श्रीक्षेत्र की ओर से ही यह तीसरा संस्करण भी सुनिश्चित करा दिया है, फलस्वरूप ग्रन्थ पुन: सुगमता से समाज को उपलब्ध हो रहा है। तीर्थक्षेत्रों और मन्दिरों की आय का उपयोग श्रुत के संरक्षण और प्रसार में हो यह उस धन का सम्यक् उपयोग है। इस कृपा के लिये पूज्य उपाध्यायश्री ज्ञानसागरजी के प्रति कृतज्ञता-पूर्वक नमन करते है। 'नहिं कृतमुपकार साधवा विस्मरन्ति।' विद्वत्समाज प्रकाशन की उदारता के लिये श्रीक्षेत्र 'देहरा-तिजारा' की प्रबंध समिति का आभार मानती है।

ग्रन्थ में नौ महाधिकार हैं जिनमें सोलापुर से निकले पूर्व संस्करण में कुल ५६६६ गाथाएं प्रकाशित हो पाई थीं। इस बार कन्नड़ प्रति से मिलान करके उसके अनुसार १०९ छूटी हुई गाथाएं जोड़ी गई। गद्य के अक्षरो को गाथा प्रमाण में गिनने पर भी प्रसिद्ध गाथा संख्या ८००० से ११९८ गाथाओं की कमी रहती है। हाँ, यदि अक संदृष्टियों के अंकों को अक्षर रूप में शामिल कर लिया जाये तो गाथाओ की कुल सख्या आठ हजार हो जायेगी। माताजी के सामने विद्वानों द्वारा मान्य यह विकल्प स्वीकार करने के अलावा कोई उपाय नहीं था, वह मान लिया गया, परन्तु माताजी इससे पूरी तरह संतुष्ट नहीं थीं। वे कहा करती थीं कि अन्य प्राचीन प्रतियों में

कुछ गाथाएं और मिलने की सम्भावना को नकारा नहीं जाना चाहिये, विद्वानों को यथा अवसर इसके लिये शोध-खोज का प्रयत्न करते रहना चाहिये। जो भी हो, इस गणना को समझ लेने पर ग्रन्थ की वर्तमान गाथाओं में 'कुछ गाथाएं प्रक्षिप्त हैं" ऐसी टिप्पणी करने वाले विद्वानों की प्रक्षिप्त गाथाओं संबंधी सारी कपोल-कल्पित धारणाएं अपने आप निर्मूल हो जाती हैं।

ध्यातव्य है कि टीका प्रारम्भ करने के पूर्व विशुद्धमती माताजी ने जैन सिद्धान्त ग्रन्थों के आलोढ़न के लिये, कन्नड भाषा और प्राचीन कन्नड़ लिपि का कुछ अभ्यास कर लिया था। जैन ज्योतिष और जैन गणित पर भी उन्हें अधिकार प्राप्त हो गया था। माताजी ने 'त्रिलोकसार' और 'सिद्धान्तसार संग्रह' आदि ग्रन्थों की सरल हिन्दी टीकाएं रच कर उन ग्रन्थों को हिन्दी पाठकों के लिये सुगम बना दिया था। तिलोय पण्णत्ती के अनुवाद के साथ तथा उसके बाद भी माताजी का अन्य लेखन चलता रहा है। लगभग तीस मौलिक पुस्तके लिखकर विशुद्धमती माताजी ने समाज का दिग्दर्शन किया है। वास्तुशास्त्र पर, विशेष कर मन्दिर वास्तु के विषय में, उनकी पुस्तकें बहुत उपयोगी सिद्ध हुई हैं। परन्तु माताजी की समस्त श्रुत-साधना में 'तिलोय पण्णत्ती' ग्रन्थराज की टीका उनकी विशेष उपलब्धि है। यह उनका अनुपम और उल्लेखनीय अवदान है जो आने वाली पीढियों तक अध्येताओं का मार्ग दर्शन करता रहेगा। विद्वत् जगत में उनके इस पुरुषार्थ की हर जगह सराहना हुई है। इस दिव्य अवदान के रूप में माताजी ने जो उपकार किया है, उसके लिये दिगम्बर जैन समाज सदा उनका कृतज्ञ और ऋणी रहेगा।

साधना के शिखर पर समाधि का कलशारोहण -

सन १९८८ में तिलोय पण्णत्ती महाग्रन्थ के तीनों खण्ड प्रकाशित होकर सामने आये तब माताजी बहुत प्रसन्न और संतुष्ट थीं। इसके दो साल के भीतर, सत्रह जनवरी १९९० को, अपनी बहत्तर वर्ष की आयु में, पूरी तरह स्वस्थ्य, सबल और सक्रिय स्थिति में, विशुद्धमती माताजी ने आचार्य अजितसागरजी महाराज से बारह साल का उत्कृष्ट सल्लेखना व्रत ग्रहण कर लिया था। तब से पग-पग पर पूरी सावधानी के साथ कषाय और काया को कृष करते हुए उन्होने तन और मन को साधते हुए, समता पूर्वक समाधि-साधना मे अपना काल यापन किया।

विशुद्धमती माताजी की बारह वर्षीय सल्लेखना की साधना में अंतिम समय तक उनकी समर्पित, आज्ञाकारिणी परम प्रिय शिष्याओं ने अकथ सेवा की है। दोनों बहिनें प्रशान्तमती माताजी और उनकी सहोदरा वर्धितमती माताजी छाया की तरह विशुद्धमती माताजी के साथ रहीं। उन्होंने भक्ति पूर्वक माताजी की सम्हाल करते हुए, ज्ञानार्जन और संयम-साधना में निष्ठा पूर्वक उनका अनुसरण भी किया है। माताजी ने भी अपने कठोर किन्तु ममतामय अनुशासन में, जन्मदात्री माता की तरह उनके पालन-पोषण की चिन्ता करते हुए, उन्हें जैन विद्याओं का गहन अध्ययन कराया।

प्रशान्तमती जी सुशिक्षित बालिका के रूप में फरबरी १९८२ में माताजी के सम्पर्क में आई थीं। २३ अप्रेल १९८६ को पूज्य दयासागरजी मुनिराज से उन्हें आर्यिका दीक्षा प्राप्त हुई। वर्धितमती जी ने अपनी बहिन की दीक्षा के समय ही पहली बार माताजी का दर्शन किया और १५ फरवरी १९९७ को पूज्य आचार्यश्री वर्धमानसागरजी महाराज से दीक्षित होकर वे आर्यिका बनीं। माताजी ने क्रमश: दोनों बहिनो को तन और मन से संयम धारण के योग्य बनाया था परन्तु उन्हें स्वयं दीक्षा नहीं दी। यश-लाभ की कामना मन में जाग जाती तो माताजी आसानी से ऐसा कर सकती थीं, परन्तु आर्यिका विशुद्धमती का आत्म-अनुशासन बहुत कठोर था। वे आर्यिका के द्वारा महाव्रतों की दीक्षा देने की प्रथा को आगम और परम्परा के अनुकूल नहीं मानती थीं। गुरु-परम्परा का सम्मान करते हुए उन्होने दिगम्बर गुरु से ही दोनों बहिनों को आर्यिका दीक्षा दिलाई और उन्हें भविष्य में इस मर्यादा का सम्मान बनाये रखने का निर्देश दिया। माताजी की समाधि के थोड़े समय बाद अकस्मात वर्धितमतीजी का समाधि मरण हो गया। प्रशान्तमती माताजी एकान्त निष्ठा के साथ, अपनी परम उपकारिणी धर्ममाता के पदचिह्नों पर चल रही हैं। हम उन्हें विशुद्धमती माताजी की मानस पुत्री के रूप में देखते हैं और उनके लिये स्वस्थ्य एवं यशस्वी संयमी जीवन की कामना करते है।

विशुद्धमती माताजी ने प्रशंसा और कीर्तिलाभ की पिपासा को जीत लिया था। अपने किसी ग्रन्थ में उन्होंने कभी अपना चित्र नही छपने दिया और किसी संस्था के साथ अपना नाम जोडने की अनुमति नहीं दी। कई नगरों की समाज ने, उनके परिचित विद्वानों के माध्यम से, माताजी के लिये बड़ी-बड़ी उपाधियों का प्रस्ताव किया परन्तु माताजी ने हर बार उपाधि को व्याधि मानकर स्वीकार करने से मना कर दिया। उन्होंने दीक्षा के उपरान्त अड़तीस वर्ष के तपस्या काल में कभी अपने व्रतों का उल्लंघन नहीं होने दिया। अनेक बार अनेक तरह की शारीरिक व्याधियाँ सहते भी एक पग के लिये कहीं डोली या व्हील चेयर आदि का उपयोग नहीं किया। अस्वस्थ अवस्था में ग्रीष्म परीषह सहते भी, कही पंखा कूलर, रूम-हीटर और टेलिविजन तथा टेलीफोन आदि आधुनिक उपकरणों का उपयोग नहीं किया। संक्षेप में कहें तो उन्होने कभी आर्यिका के अधिकारों की सीमा के बाहर कोई कदम नहीं उठाया। उनकी स्पष्ट वर्जना के कारण कही उनका कोई स्मारक या उनके नाम पर कोई आयतन या धाम नहीं बनाया गया। यह आत्मानुशासन और ऐसी निस्पृहता विशुद्धमती माताजी की संयम-निष्ठा का प्रभामण्डल बनकर उनकी आभा बढ़ाती रहेगी।

सल्लेखना व्रत की अवधि पूरी होने आ रही थी, माताजी क्रमश: आहार और पानक की सीमा सकुचित करती हुईं यम-सल्लेखना की ओर बढ रही थीं। सोलह जनवरी २००२ को उनके व्रत की बारह वर्ष की अवधि पूरी हुई। उसी दिन मध्यम बेला में माताजी ने अनासक्त भाव से 'धर्माय तन विमोचनम्' का आदर्श प्रस्तुत करते हुए, पूज्य आचार्य वर्द्धमानसागरजी के पावन सान्निध्य में, चतुर्विध संघ को साक्षी बनाकर आजीवन जल-ग्रहण का त्याग कर दिया। उस दिन भी उनके शरीर में इतनी शक्ति थी कि अपनी उसी खनकती आवाज में

माताजी ने बाईस मिनट के वक्तव्य में चतुर्विध संघसे क्षमायाचना करते हुए अपना अंतिम उपदेश दिया। संघ की वरिष्ठ आर्यिका पूज्य सुपार्श्वमती माताजी लम्बी पदयात्रा के बाद उनके पास पहुँच गई थीं। वे अपनी मानस पुत्री ब्र डॉ. प्रमिला जी को साथ लेकर, आठों प्रहर सन्नद्ध होकर विशुद्धमतीजी की अंतिम साँस तक उनकी यथोचित सार-सम्हाल में सहायक बनीं। उस समय दोनों विदुषी आर्यिकाओं का परस्पर अनुराग दर्शनीय था, प्रेरक था, बारम्बार प्रणम्य था और चिरस्मरणीय है।

जल-त्याग के उपरान्त समाधि-साधना के छह दिन, दिगम्बर परम्परा में समस्त आशा-प्रत्याशाओं से रहित, सल्लेखना-अनुष्ठान की प्रायोगिक परीक्षा के दिन थे। छह दिन की अहोरात्रि अनवरत, कठोर साधना के उपरान्त, बाईस जनवरी २००२ की रात्रि के पिछले पहर उस महान अनुष्ठान की पूर्णाहुति का समय आ गया जिस मुहूर्त के स्वागत की तैयारी माताजी बारह वर्षों से कर रही थीं। वह प्रतीक्षित घड़ी जैन संतों की सल्लेखना की परीक्षा की घड़ी होती है। उस घड़ी जिसने भयभीत होकर शरण पाने के लिये इधर-उधर दीनता की दृष्टि उठाई वह परीक्षा में विफल हो गया और जिसने मौत से आँख मिलाकर, उसे उलाहना देकर कह दिया -'बिलम्ब तुम्हीं ने किया है, हम तो कब से तैयार बैठे हैं, चलो' बस, वही धीर-वीर-निर्मोही साधक इस परीक्षा में उत्तीर्ण होता है। विशुद्धमती माताजी ने उस घडी यही किया था। साक्षी संत-समुदाय ने इस महापरीक्षा में उनकी दृढता की सराहना की, उनकी सन्नद्धता को नमन किया।

भगवान अर्हंत की पावन-प्रतिमा के समक्ष, चतुर्विध संघ के सान्निध्य में, उत्तम सहकारी निमित्तों के बीच, आचार्यश्री वर्द्धमानसागरजी और मुनिश्री पुण्यसागरजी आदि संतों से प्रभु नाम सुनते-सुनते माताजी ने निर्भय होकर जीवन का गौरव-पूर्ण समापन किया। समता पूर्वक मृत्यु का सोल्लास स्वागत करके उन्होंने सिद्ध कर दिया कि अंत समय में भी 'समाधि-दीपक' की ज्योति उनके यात्रा-पथ को प्रकाशित कर रही थी, उनकी 'तिलोय पण्णत्ती' की प्रज्ञा-निधि उनके पास सुरक्षित थी और उनकी 'मरण-कण्डिका' के तात्पर्यामृत से उनका अपार चेतना-समुद्र हर्ष से उमड़ रहा था। विशुद्धमती माताजी का मरण-महोत्सव उत्कृष्ट पद्धति से सम्पन्न समाधि-साधना का आदर्श उदाहरण था।

गुरु चरणानुरागी,

शान्ति सदन, सतना
बसंत पंचमी २००८

पूज्य १०५श्री उपाध्याय ज्ञानसागरजी महाराज का

मंगल आशीर्वाद

चौदह सौ वर्ष पूर्व पूज्यश्री यतिवृषभाचार्य द्वारा रचित ग्रन्थराज 'तिलोय पण्णत्ती' जैन आगम का विशाल और अर्थपूर्ण ग्रन्थ है । इस ग्रन्थ में चारों अनुयोगों की पुष्कल सामग्री का प्रामाणिक संकलन उपलब्ध होता है परन्तु लोक-विभाग और करणानुयोग सम्बंधी गणितीय विवेचना के लिये इसकी प्रसिद्धि अधिक रही है । परवर्ती अनेक आचार्य भगवन्तों ने अपने लेखन में इस ग्रन्थराज की सामग्री का उपयोग किया है और इसके रचयिता पूज्य यतिवृषभाचार्य स्वामी की सराहना की है । यह ग्रन्थ जिनवाणी माता के मणिमय मुकुट में एक ऐसे बहुमूल्य चमकदार महारत्न की तरह सुशोभित है जिसकी आभा मात्र से मिथ्यात्व का निविड़ अंधकार नष्ट हो जाता है और एकान्त के शूल स्याद्वाद का रस पाकर सुगंधित फूल बन जाते हैं।

'तिलोय पण्णत्ती' का वर्ण्य-विषय व्यापक है । ऐसा लगता है कि ग्रन्थ के विस्तार और गाथाओं के अर्थ-गाम्भीर्य की गहराई के कारण पूर्वकाल में इस ग्रन्थ की टीका के या तो प्रयास ही नहीं हुए, या फिर वे टीका ग्रन्थ हमें उपलब्ध नहीं हो पाये । मूलग्रन्थ की ताड़ पत्रीय प्रतियाँ भट्टारकों के ग्रन्थागारों में सुरक्षित रहीं और उनके सहयोग से यह ग्रन्थ पहली बार सोलापुर से प्रकाशित हुआ । उसके अनेक वर्षो बाद चारित्र-चक्रवर्ती आचार्यश्री शान्तिसागर महाराज के द्वितीय पट्टाधीश पूज्य आचार्यश्री शिवसागरजी का ध्यान इस ग्रन्थ की ओर गया । उन्होंने इसकी भाषा टीका की आवश्यक्ता को महसूस किया और अपनी विदुषी शिष्या आर्यिकाश्री विशुद्धमती माताजी को इस कार्य में समर्थ मानकर प्रोत्साहित किया। माताजी के वर्षो के कठोर परिश्रम से इस टीका का प्रणयन सम्भव हुआ।

श्री नीरजजी समाज के सुपरिचित विद्वान हैं । वे अिध्येताओं की आवश्यक्ताओं को आँकते हैं और यथाशक्ति उसकी पूर्ति के लिये प्रयत्न भी करते हैं । डॉ. नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य की कालजयी रचना 'तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा' का पुनर्प्रकाशन पं. दरबारीलालजी कोठिया की भावना के अनुरूप, नीरजजी के सुझाव और मार्ग दर्शन में ही श्रुत संवर्द्धन संस्थान द्वारा १९९२ मे हुआ था । दस वर्ष पूर्व १९९६ में उन्होंने 'तिलोय पण्णत्ती टीका' की प्रतियाँ उपलब्ध नही होने की बात श्रीक्षेत्र 'देहरा-तिजारा' में हमारे सामने रखी । उस समय श्रीक्षेत्र के उत्साही पदाधिकारी सामने थे अत: हमने उनसे संकेत कर दियाऔर तत्काल प्रबंध समिति ने ग्रन्थराज के द्वितीय संस्करण के प्रकाशन का व्यय-वहन करने की स्वीकृति घोषित कर दी । वह संस्करण प्रकाशित हुआ और दस वर्ष में उसकी प्रतियाँ लगभग समाप्त हो गईं । गत दिनों तृतीय संस्करण की आवश्यक्ता सामने आने पर हमने 'देहरा-तिजारा' श्रीक्षेत्र की प्रबंध समिति को पुन: यह गौरव प्राप्त करने का संकेत किया । हमें हर्ष है कि समिति ने तीसरे संस्करण के लिये अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी । जिनवाणी के प्रचार-प्रसार में श्रीक्षेत्र के द्रव्य का सदुपयोग करके समिति ने पुण्यार्जन किया है, उन्हें हमारे आशीर्वाद । # वर्द्धतां जिनशासनम् । #

नव निर्मित श्री चन्दगिरी वाटिका :

तिजारा नगर में 200 वर्ष से अधिक प्राचीन अत्यन्त भव्य जिनालय 1008 श्री दिगम्बर जैन पार्श्वनाथ मंदिर के नाम से विद्यमान है।

16 अगस्त सन् 1956 को स्वप्न देकर भूगर्भ से देवाधिदेव 1008 चन्द्रप्रभ भगवान की मूर्ति प्रकट होने के पश्चात श्री 1008 चन्द्रप्रभ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र देहरा का निर्माण हुआ। भगवान चन्द्रप्रभ की मूर्ति प्रकट होने के पश्चात यहाँ स्वयं ही अलोकिक अतिशयों के कारण जम-मानस का आवागमन निरन्तर वृद्धि पर है। क्षेत्र पर आने वाले दर्शनार्थियों का समय-समय पर सुझाव आता रहा कि यहाँ कोई धार्मिक रचना और बनाई जाये, जिससे कि उनका अधिकतम समय धार्मिक क्रियाओं में व्यतीत हो सके, यद्यपि देवादिदेव चन्द्रप्रभ स्वामी की मूर्ति में ही इतना आकर्षण है कि आने वालों का वहां से उठने का मन ही नहीं करता।

अन्ततः, तत्कालीन प्रबन्धकारिणी समिति ने क्षेत्र की पूर्व दिशा में उपलब्ध 11 बीघा 7 बिस्वा भूमि पर एक जिनालय का निर्माण किए जाने का निर्णय लिया। इसके अनुसार ग्रेनाइट पाषाण की श्री चन्द्रप्रभ भगवान की 15-16 फिट की पद्मासन् मूर्ति विराजमान किए जाने पर विचार किया गया। निर्णयानुसार प्रबन्धकारिणी के प्रमुख पदाधिकारीगण दक्षिण में कार्कल जी पाषाण की प्राप्ति हेतु गए। सौभाग्य से एक बड़ा पाषाण हल्लिदेवी मल्लि नामक खान से प्राप्त हुआ। पाषाण इतना बड़ा था कि उसे यहां लाना सम्भव नहीं था। इस पर समीप ही विराजमान् परम श्रद्धेव श्री वीरेन्द्र जी हेगडे से विचार-विमर्श कर कारकिल जी में इस समय के संभवतया सबसे कुशल शिल्पी श्री श्यामाचार्य को श्रद्धेव हेगडे जी के निर्देशानुसार मूर्ति निर्माण का कार्य दे दिया गया।

मूर्ति निर्माण में लगभग 12 वर्ष का समय लगा। इस बीच ऊपर उल्लिखित भूखण्ड में आवश्यक निर्माण कार्य प्रारम्भ किया गया। इस जिनालय तथा इसके सम्मुख आकर्षक बगीचे, विद्युत चलित फव्वारों का नक्शा नई दिल्ली निवासी कुशल आर्किटेक्ट श्री विजय बहल द्वारा तिजारा नगर के ही धर्मप्रिय श्रावक श्री सुभाषचन्द जैन, सेवानिवृत्त मुख्य अभियन्ता सार्वजनिक निर्माण विभाग राजस्थान के मार्गदर्शन में तैयार किया गया। स्ट्रेक्चर डिजाइन श्री पी.एल. गोयल नई दिल्ली ने किया।

इस निर्माण में मुख्य भवन आर.सी.सी. के पायों पर लगभग 50,000 वर्ग फीट फर्श क्षेत्रफल में दो मंजिला बनाया गया है। इसकी जमीन तल से छत की ऊँचाई 30 फिट है। मूर्ति के सम्मुख बैठने के लिए 20,000 वर्ग फिट खुला स्थान है, जिसमें लगभग 8 से 10 हजार तक की संख्या में दर्शनार्थी बैठ सकते हैं। छत पर 1½ फीट ऊँचे प्लेटफार्म पर 4 फीट ऊँचा ग्रेनाइट का 30 टन भार का कमल है। इस कमल पर भगवान चन्द्रप्रभ स्वामी की 15'-4" अतुंङ्ग खडगासन प्रतिमा जी विराजमान की गई है। इसकी चौड़ाई 13'-6" तथा मोटाई 6'-6" तथा भार लगभग 45 टन है। यह मूर्ति श्री कारकिल जी से वाटिका (तिजारा) तक ट्रोले में कटारिया ट्रांसपोर्ट के मालिक श्रीरामचंद जी कटारिया द्वारा निःशुल्क लाई गई।

जमीन तल से प्रतिमा जी के स्थल तक पहुँचने के लिये काफी चौड़ी-चौड़ी चार सीढियां बनाई गई है। इसके मध्य में दो पानी के झरने व दो पौधों की क्यारियां बनाई गई हैं। झरनों का पानी 9-9 बक्सों से कूदता हुआ रंग-बिरंगे प्रकाश में चलता है, जो रमणीय दृश्य उपस्थित करता है। बच्चों तथा वृद्धों के लिए ऊपर पहुंचने के लिए रैम्प बनाया गया है।

प्रतिमाजी के तथा इन झरनों के सम्मुख जमीन तल पर एक बडा फव्वारा बनाया गया है, जिसकी मुख्य धारा लगभग 45 फीट ऊँची जाती है। विभिन्न रंगों में होने के कारण यह अत्यन्त मनमोहक दृश्य उपस्थित करते हैं। इसके सम्मुख एक छोटा बौल फाउन्टेन लगाया गया है। बांई ओर एक कैफेटएरिया, विश्राम गृह आदि बनाए गए हैं। यह सब निर्माण सिविल इन्जिनियर अलवर श्री राजदीप जी की पूर्ण देखरेख मे किया गया है, जिसे उन्होंने अथक परिश्रम कर लगभग 2 ½ वर्ष की अवधि में पूर्ण किया। इस निर्माण में क्षेत्र के तत्कालीन अध्यक्ष नरेन्द्र कुमार जैन तथा संरक्षक बनारसीदास ने भी अथक परिश्रम किया।

इस जिनालय का भूमि पूजन कार्य 10 अगस्त 2002 को तथा शिलान्यास कार्य 15 अगस्त 2002 को क्षेत्र पर वर्षायोग कर रहे परम पूज्य आचार्य 108 श्री शांति सागर जी (णमोंकार मन्त्र वालों) के सान्निध्य में सम्पन्न हुए।

इस भव्य नव निर्मित जिनालय की पंच कल्याणक प्रतिष्ठा कार्य परम पूज्य सराकोद्धारक, भक्तों के प्रिय उपाध्याय रतन श्री ज्ञानसागर जी महाराज ससंघ के पावन सानिध्य में 13 फरवरी से 19

फरवरी 2005 तक की अवधि में प्रतिष्ठाचार्य श्री सुधीर कुमार जी मार्तण्ड, केसरिया जी ने पूर्ण विधि विधान से कराया। मूर्ति निर्माण व्यय भार शालू सिल्क साड़ी सूरत वाले श्री ओम प्रकाश जी जैन की ओर से उठाया गया।

वर्ष 2007 में, क्षेत्र पर वर्षायोग में ससंघ विराजमान परमपूज्य भक्त वत्सल उपाध्याय 108 श्री निर्णय सागर जी की पावन प्रेरणा से इस वाटिका में भगवान चन्द्रप्रभ स्वामी के तीनों ओर वर्तमान चौबीसी बनाने का निर्णय लिया गया, जिसका निर्माण कार्य भी समापन की ओर अग्रसर है तथा इसी वर्ष (2008) में इसकी पंच कल्याणक प्रतिष्ठा होने की पूर्ण आशा है। इसके पश्चात इस जिनालय की शोभा में चार चांद लग जायेंगे तथा दर्शनार्थियों को धर्म साधन का अधिक समय व्यतीत करने का साधन मिल पायेगा।

1-4-2008

श्री चन्द्रप्रभ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र
देहरा-तिजारा

उपाध्यायश्री का तिजारा चातुर्मास : विभिन्न आयोजन

परम पूज्य उपाध्यायरतन श्री 108 ज्ञानसागर जी महाराज के चन्द्रप्रभु दिगंबर जैन अतिशय क्षेत्र देहरा तिजारा में 1998 के चातुर्मास में विभिन्न आयोजनों ने अभूतपूर्व धार्मिक प्रभावना कर जैन संस्कृति के इतिहास में नूतन इतिहास की संरचना की। पूज्य उपाध्यायश्री के सान्निध्य में चातुर्मास के दौरान निम्न प्रमुख आयोजन हुए–

1. जिला स्तरीय शाकाहार सम्बन्धी निबंध लेखन एवं प्रतियोगितायें। इसके लिए शिक्षा मंत्री राजस्थान द्वारा शिक्षाधिकारी अलवर को कार्यक्रमानुसार अवश्यक व्यवस्था हेतु आदेश प्रसारित किए गए। इस आधार पर शिक्षाधिकारी अलवर ने सभी शिक्षा निरीक्षकों तथा स्कूलों के प्रधानाध्यापकों को आदेश प्रसारित किए।

इन प्रतियोगिताओं को तीन स्तरों पर आयोजित किया गया।

(1) विद्यालय स्तर

(2) क्षेत्रीय स्तर

(3) माध्यमिक स्तर।

2. 30-31 अक्टूबर को पं. जुगलकिशोर मुख्यतार पर वृहद विद्वत् संगोष्ठी का आयोजन।

3. 1 नवम्बर को डॉ. कस्तूरचंद जी कासलीवाल अभिनंदन ग्रंथ समर्पण समारोह।

4. 7 व 8 नवम्बर को भारतभर के डॉ. चिकित्सकों का जैनधर्म की वैज्ञानिकता पर अखिल भारतीय सम्मेलन।

5. 9 नवमबर को बिहार के तत्कालीन राज्यपाल महामहिम श्री सुंदर सिंह जी भण्डारी की गरिमामय उपस्थिति में आचार्य श्री 108 शांतिसागर जी छाणी समृतिग्रंथ का विमोचन समारोह।

6. पांच श्रुत संवर्द्धन एवं सराक पुरस्कार का समर्पण समारोह।

7. सराक शिक्षण व प्रशिक्षण शिविर।

– सुनील जैन संचय

श्रुत संवर्द्धन संस्थान

मेरठ-(उ.प्र.)

ॐ

जदिवसह-आइरिय-विरइदा

तिलोयपण्णत्ती

चउत्थो महाहियारो

मङ्गलाचरण एवं प्रतिज्ञा—

इदं उवरि माणुस-लोय-सरूवं वण्णयामि—

लोयालोय-पयासं, पउमप्पह-जिणवरं णमंसित्ता[1] ।
माणुस-जग-पण्णत्तिं, वोच्छामो आणुपुव्वीए ।। १ ।।

इससे आगे मनुष्यलोकके स्वरूपका वर्णन करता हूँ—

अर्थ :—लोकालोकको प्रकाशित करनेवाले पद्मप्रभ जिनेन्द्रको नमस्कार कर अनुक्रमसे मनुष्यलोक-प्रज्ञप्ति कहता हूँ ।। १ ।।

सोलह अधिकारोंके नाम—

णिद्देसस्स सरूवं, जंबूदीवोत्ति लवणजलही य ।
धादइसंडो दीओ, कालोद-समुद्द-पोक्खरद्धाइं ।। २ ।।

तेसु-ट्ठिद-मणुवाणं, भेदा संखा य थोव-बहुअत्तं ।
[2]गुणठाण-प्पहुदीणं, संकमणं विविह-भेय-जुदं ।। ३ ।।

आऊ-बंधण-भावं, जोणि-पमाणं सुहं च दुक्खं च ।
सम्मत्त-गहण-हेदू, णिव्वुदि-गमणाण परिमाणं ।। ४ ।।

एवं सोलस संखे, अहियारे एत्थ [3]वत्तइस्सामो ।
जिण-मुह-कमल-विणिग्गय-णर-जग-पण्णत्ति-णामाए ।।५।।

---

१. द. णमस्सित्ता, ब क. णमस्सित्तो । २. द. गुणट्ठाण । ३. ब. वत्तयंस्सामो, क. वत्तइंस्सामो ।

अर्थ :—निर्देशका स्वरूप, जम्बूद्वीप, लवणसमुद्र, धातकी खण्डद्वीप, कालोदसमुद्र, पुष्करार्ध-द्वीप, इन द्वीपोंमें स्थित मनुष्योंके भेद, संख्या, अल्पबहुत्व, गुणस्थानादिकका विविध भेदोंसे युक्त संक्रमण, आयु-बन्धनके निमित्तभूत परिणाम, योनि-प्रमाण, सुख, दुःख, सम्यक्त्व-ग्रहणके कारण और मोक्ष जानेवालोंका प्रमाण। इसप्रकार जिनेन्द्र भगवान्‌के मुखरूपी कमलसे निकले हुए नर-जग-प्रज्ञप्ति नामक इस चतुर्थ महाधिकारमें इन सोलह अधिकारों का वर्णन करूँगा ॥ २–५ ॥

मनुष्यलोककी स्थिति एवं प्रमाण—

तस-णाली-बहुमज्झे, चित्ताअ खिदीअ उवरिमे भागे ।
अइवट्टो मणुव-जगो, [1]जोयण-पणदाल-लक्ख-[2]विक्खंभो ॥६॥

। जो ४५ ल ।

अर्थ :—चित्रा पृथिवीके ऊपर त्रसनालीके बहुमध्यभागमे पंतालीस लाख (४५०००००) योजन प्रमाण विस्तारवाला अतिगोल मनुष्यलोक है ॥ ६ ॥

मध्यलोकका बाहल्य एवं परिधि—

जग-मज्झादो उवरिं, तब्बहलं जोयणाणि इगि-लक्खं ।
णव चदु-दुग-ख-त्तिय-दुग-चउरेक्केक्क-कमेण तप्परिही ॥७॥

। १ ल । १४२३०२४९ ।

अर्थ :—लोकके मध्यभागसे ऊपर उस मनुष्यलोकका बाहल्य एक लाख (१०००००) योजन और परिधि क्रमशः नौ, चार, दो, शून्य, तीन, दो, चार और एक अंक (१४२३०२४९ योजन) प्रमाण है ॥ ७ ॥

नोट :– परिधि निकालनेका नियम इसी अध्याय की गाथा ९ में दिया गया है।

मनुष्यलोकका क्षेत्रफल—

सुण्ण-णभ-गयण-पण-दुग-एक्क-ख-तिय-सुण्ण-णव-णहा-सुण्णं ।
छक्केक्क-जोयणा [3]चिय, अंक-कमे मणुव-लोय-खेत्तफलं ॥८॥

। १६००९०३०१२५००० ।

---

1. ब. जोयणाण । 2. द. ब. क. विक्खंभा । 3. क. ठ. विउ ।

अर्थ :—शून्य, शून्य, शून्य, पाँच, दो, एक, शून्य, तीन, शून्य, नौ, शून्य, शून्य, छह और एक अंक प्रमाण अर्थात् १६००९०३०१२५००० योजन मनुष्यलोकका क्षेत्रफल है ॥ ८ ॥

गोलक्षेत्रकी परिधि एवं क्षेत्रफल निकालनेका विधान—

वासकदी दस-गुणिदा, करणी परिही [1]य मंडले खेत्ते ।
[2]विक्खंभ-चउभाग-प्पहदा सा होदि खेत्तफलं ॥ ९ ॥

अर्थ :—व्यासके वर्गको दससे गुणा करनेपर जो गुणनफल प्राप्त हो उसके वर्गमूल प्रमाण गोलक्षेत्रकी परिधि होती है। इस परिधिको व्यासके चतुर्थांशसे गुणा करने पर प्राप्त गुणनफल प्रमाण उसका क्षेत्रफल होता है ॥ ९ ॥

विशेषार्थ :—मनुष्यलोक वृत्ताकार है; जिसका व्यास ४५ लाख योजन है। इसका वर्ग (४५ लाख × ४५ लाख) × १० = २०२५०००००००००००० वर्ग योजन होता है। इसका वर्गमूल अर्थात् परिधिका प्रमाण $\sqrt{२०२५००००००००००००}$ = १४२३०२४९ वर्ग योजन है और जो अवशेष रहे वे छोड़ दिये गये हैं। परिधि $\frac{१४२३०२४९}{१}$ × $\frac{४५०००००}{४}$ व्यासका चतुर्थांश = १६००९०३०-१२५००० वर्ग योजन मनुष्यलोकका क्षेत्रफल प्राप्त होता है।

मनुष्यलोकका घनफल—

अट्ठट्ठाणे सुण्णं, पंच-दु-इगि-गयण-ति-णह-णव-सुण्णा ।
अंबर-छक्केक्काइं[3], अंक-कमे तस्स विंदफलं ॥१०॥

१६००९०३०१२५००००००००

णिद्देसो गदो[4] ॥ १ ॥

अर्थ :—आठ स्थानोंमें शून्य, पाँच, दो, एक, शून्य, तीन, शून्य, नौ, शून्य, शून्य, छह और एक अंक क्रमशः रखनेपर जो राशि (१६००९०३०१२५०००००००० घन योजन) उत्पन्न हो वह उस (मनुष्यलोक) का घनफल है ॥ १० ॥

विशेषार्थ :—(मनुष्यलोकका वर्ग योजन क्षेत्रफल १६००९०३०१२५०००) × १००००० योजन बाहल्य = १६००९०३०१२५०००००००० घन योजन घनफल प्राप्त हुआ।

निर्देश समाप्त हुआ ॥ १ ॥

---

१. क. प्रति, ब। २. ब. क. उ. विक्खंभय। ३. क. उ. छक्केक्कोहिं। ४. द. ब. क. गदा।

जम्बूद्वीपकी अवस्थिति एवं प्रमाण—

माणुस-जग-बहुमज्झे, विक्खादो होदि जंबुदीओ त्ति ।
एक्क-ज्जोयण-लक्खं, विक्खंभ-जुदो सरिस-वट्टो ॥ ११ ॥

अर्थ :—मनुष्यक्षेत्रके बहुमध्यभागमें एक लाख योजन विस्तारसे युक्त, वृत्तके सदृश और विख्यात जम्बूद्वीप है ॥ ११ ॥

जम्बूद्वीपके वर्णनमें सोलह अन्तराधिकारोंका निर्देश--

जगदी-विण्णासाइं, भरह-खिदी तम्मि कालभेदं च ।
हिमगिरि-हेमवदा[1] महहिमवं हरि-वरिस-णिसहद्दी ॥१२॥
विजओ विदेह-णामो[2],णीलगिरी रम्म-वरिस-रुम्मिगिरी ।
हेरण्णवदो विजओ, सिहरी एरावदो त्ति वरिसो य ॥१३॥
एवं सोलस-भेदा[3], जंबूदीवम्मि अंतरहियारा[4] ।
एण्हि[5] ताण सरूवं, वोच्छामो आणुपुव्वीए ॥१४॥

अर्थ :—जम्बूद्वीपके वर्णनमें जगती (वेदिका), विन्यास, भरतक्षेत्र, उस (भरत) क्षेत्रमें होनेवाला कालभेद, हिमवान् पर्वत, हैमवतक्षेत्र, महाहिमवान् पर्वत, हरिक्षेत्र, निषधपर्वत, विदेहक्षेत्र, नीलपर्वत, रम्यकक्षेत्र, रुक्मिपर्वत, हैरण्यवतक्षेत्र, शिखरीपर्वत और ऐरावतक्षेत्र इसप्रकार सोलह अन्तराधिकार हैं । अब उनका स्वरूप अनुक्रमसे कहता हूँ ॥ १२-१४ ॥

जगतीकी ऊंचाई एवं उसका आकार—

वेढेदि[6] तस्स जगदी, अट्ठं चिय जोयणाणि उत्तुंगा ।
दीवं[7] तम्हि णियंतं, सरिसं होदूण वलय-णिहा ॥ १५ ॥

जो ८ ।

अर्थ :—उसकी जगती आठ योजन ऊँची है; जो मणिबन्धके समान उस द्वीपको, वलय अर्थात् कड़ेके सदृश होकर वेष्टित करती है ॥ १५ ॥

---

१. द. ब. हिमवदा । २. द. णामे । ३. द. ब. क. भेदो । ४. द. ब. क. अतरहियारो । ५. द वण्णं, ब. क. वण्हं । ६. द. ब. वेढेवि, क. उ. वेटे पि । ७. द. दीवंतंमिणियत्तं, ब. क. दीव तं मणियत्त ।

जगतीका विस्तार—

मूले बारस-मज्झे, अट्ठ च्चिय जोयणाणि णिद्दिट्ठा ।
सिहरे चत्तारि फुडं, जगदी-रुंदस्स[1] परिमाणं ।।१६।।

१२ । ८ । ४ ।

अर्थ :—जगतीके विस्तारका प्रमाण स्पष्टरूपसे मूलमें बारह, मध्यमें आठ और शिखरपर चार योजन कहा गया है ।। १६ ।।

जगतीकी नींव—

दो कोसा अवगाढा, तेत्तियमेत्ता हवेदि वज्जमयी[2] ।
मज्झे बहुरयणमयी[3], सिहरे वेरुलिय-परिपुण्णा ।।१७।।

कोस २ ।

अर्थ :—मध्यमे बहुरत्नोंसे निर्मित और शिखरपर वैडूर्यमणियोंसे परिपूर्ण, वज्रमय जगतीकी गहराई (नींव) दो कोस है ।। १७ ।।

जगतीके मूलमे स्थित गुफाओंका वर्णन—

तीए मूल-पएसे, पुव्वावरदो य सत्त-सत्त गुहा ।
वर-[4]तोरणाहिरामा, अणादि-णिहणा विचित्तयरा ।।१८।।

अर्थ :—जगतीके मूल प्रदेशमे पूर्व-पश्चिमकी ओर जो सात-सात गुफाएँ हैं, वे उत्कृष्ट तोरणोंसे रमणीक, अनादि-निधन एवं अत्यन्त अद्भुत है ।।१८।।

जम्बूद्वीपकी जगती पर स्थित वेदिकाका विस्तार—

जगदी-उवरिम-भागे, बहु-मज्झे कणय-वेदिया दिव्वा ।
बे कोसा उत्तुंगा, वित्थिण्णा पंच-सय-दंडा ।।१९।।

को २ । दंड ५०० ।

अर्थ :—जगतीके उपरिम भागके ठीक मध्यमें दिव्य स्वर्णमय वेदिका है । यह दो कोस ऊँची और पाँचसौ (५००) धनुष प्रमाण चौड़ी है ।।१९।।

---

१. मवस्स । २. द. ब. क. ज. वज्जमयं । ३. द. ब. क. उ. ज. बहुरयणमयो । ४. द. क. तोरणाइ, ब. तोरणाव, ज तोरणाइं ।

जगतीका अभ्यन्तर एवं बाह्यादि विस्तार—

जगदी-उवरिम-रुंदे[1], वेदी-रुंदं खु सोधि-अद्ध-कदो ।
जं लद्धमेक्क-पासे, तं विक्खंभस्स परिमाणं ।।२०।।

अर्थ :—जगतीके उपरिम विस्तारमेंसे वेदीके विस्तारको घटाकर शेषको आधा करनेपर जो प्राप्त होता है वह वेदीके एक पार्श्वभागमें जगतीके विस्तारका प्रमाण है ।।२०।।

विशेषार्थ :—गाथा १६ में जगतीका उपरिम विस्तार ४ योजन (३२००० धनुष) कहा गया है । इसमेंसे वेदीका विस्तार (५०० धनुष) घटाकर शेषको आधा करनेपर ($\frac{३२०००}{२} - \frac{५००}{२}$)= १५७५० धनुष वेदीके एक पार्श्वभागमें जगतीका विस्तार है ।

पण्णरस-सहस्साणि, सत्त-सयाइं [2]धणूणि पण्णासा ।
अब्भंतर-विक्खंभो, बाहिर-वासो वि तम्मेत्तो[3] ।।२१।।

दंड १५७५० ।

अर्थ :—जगतीका अभ्यन्तर विस्तार पन्द्रह हजार सातसौ पचास (१५७५०) धनुष है और उसका बाह्य विस्तार भी इतना ही है ।।२१।।

वेदीके दोनों पार्श्वभागोंमें स्थित वन-वापियोंका विस्तारादि—

वेदी-दो-पासेसुं, उववण-संडा[4] हवंति रमणिज्जा ।
वर-वावीहिं जुत्ता, विचित्त-मणि[5]-णियर-परिपुण्णा ।।२२।।

अर्थ :—वेदीके दोनों पार्श्वभागोंमें श्रेष्ठ वापियोंसे युक्त और अद्भुत मणियोंके खजानोंसे परिपूर्ण रमणीक उपवन खण्ड हैं ।।२२।।

जेट्ठा दो-सय-दंडा[6], विक्खंभ-जुदा हवेदि मज्झिमया ।
पण्णासब्भहिय-सयं, [7]जहण्ण-वावी वि सयमेक्कं ।।२३।।

दं २०० । १५० । १०० ।

---

१ द. ब. क. ज रुंदो । २. द. ब. क. ज. उ. दंडधणूणि । ३. द. ब. ज. वासोधितंमेत्ता । ४. द. संदो, ब. सुंदो, ज. संडो । ५. द. ब. क. ज. उ. मुणिणिअर । ६. द. ब. क. ज. उ. दंडो । ७. ज. जघण्ण ।

तालिका : १

जम्बूद्वीपकी जगती तथा उसपर स्थित वेदी एवं वेदी के पार्श्वभागोंमें स्थित बावड़ियोंका प्रमाण

गाथा : १५-१७, १९-२१ एवं २३-२४

जगतीका विस्तार आदि								वेदीकी		उत्कृष्ट बावड़ियों का		मध्यम बावड़ियोंका		जघन्य बावड़ियोंका	
ऊँचाई	नींव	मूल विस्तार	मध्य विस्तार	शिखर विस्तार	वेदी के एक पार्श्व-भागमें जगतीका विस्तार	अभ्यन्तर विस्तार	बाह्य विस्तार	ऊँचाई	चौड़ाई	विस्तार	गहराई	विस्तार	गहराई	विस्तार	गहराई
८ योजन	२ कोस	१२ योजन	८ योजन	४ योजन	१५७५० धनुष या ७ कोस, १७५० धनुष	१५७५० धनुष या ७$\frac{7}{8}$ कोस	१५७५० धनुष या ७$\frac{7}{8}$ कोस	२ कोस	५०० धनुष	२०० धनुष	२० धनुष	१५० धनुष	१५ धनुष	१०० धनुष	१० धनुष

अर्थ :—उत्कृष्ट बावड़ियोंका दो सौ (२००) धनुष, मध्यमका एकसौ पचास (१५०) धनुष और जघन्यका एकसौ (१००) धनुष प्रमाण विस्तार है ।।२३।।

तिविहाओ[1] [2]वावीओ, णिय-रुंद-दसंस-मेत्तमवगाढा ।
कल्हार-कमल-कुवलय-[3]कुमुदामोदेहिं परिपुण्णा ।।२४।।

२० । १५[4] । १० ।

अर्थ :—कैरव (सफेद कमल), कमल, नीलकमल एवं कुमुदोंकी सुगन्धसे परिपूर्ण ये तीनों प्रकारकी बावड़ियाँ अपने-अपने विस्तारके दसवें भाग (२० धनुष, १५ धनुष और १० धनुष) प्रमाण गहरी हैं ।।२४।।

वनोंमें स्थित व्यन्तर देवोंके नगर—

पायार-[5]परिउताइं, वर-गोउर-दार-तोरणाइं पि ।
अब्भंतरम्मि भागे, वेंतर-णयराणि-रम्माणि ।।२५।।

अर्थ :—वेदीके अभ्यन्तर भागमें प्राकारसे वेष्टित एवं उत्तम गोपुरद्वारों तथा तोरणोंसे संयुक्त व्यन्तरदेवोंके रमणीक नगर हैं ।। २५ ।।

वेलंधर-देवाणं, तम्मि णयराणि होंति रम्माणि ।
अब्भंतरम्मि भागे, महोरगाणं च वेंति परे ।।२६।।
पाठान्तरम् ।

अर्थ :—वेदीके अभ्यन्तर भागमें वेलन्धर देवोंके और उससे आगे महोरग देवोके रमणीक नगर हैं ।। २६ ।। पाठान्तर ।

व्यन्तर-नगरोंमें स्थित प्रासाद—

णयरेसुं रमणिज्जा, पासादा होंति विविह-विण्णासा ।
अब्भंतर[6]-चेत्तरया, णाणा[7]-वर-रयण-णियरमया ।।२७।।
दिप्पंत-रयण-दीवा, समंतदो विविह-धूव-घड-जुत्ता ।
वज्जमय-वर-कवाडा, वेदी-गोउर-दुवार-संजुत्ता ।।२८।।

अर्थ :—नगरोंमें अभ्यन्तर भागमें चैत्यवृक्षों सहित, अनेक उत्तमोत्तम रत्नसमूहोंसे निर्मित, चारों ओर प्रदीप्त रत्नदीपकोंवाले, विविध धूपघटोंसे युक्त, वज्रमय श्रेष्ठ कपाटोंवाले, वेदी एवं गोपुर-द्वारों सहित विविध रचनाओंवाले रमणीक प्रासाद हैं ।। २७-२८ ।।

---

१. क. उ. तिविहाउ । २. क. उ, वावीउ । ३. क. ज. उ. कुमुदो । ४. ब. २५ । ५. द. ब. क. ज. परिमदाइं । ६. द. ब. क. अब्भत, ज. अब्भंतर । ७. द. ब. क. ज. णमा ।

लघु प्रासादोंका विस्तारादि—

पणहत्तरि चावाणि[1], उत्तुंगा सय-धणूणि दीह-जुदा ।
पण्णास-दंड-रुंदा, होंति जहण्णम्मि पासादा ॥२९॥

। दंड ७५ । १०० । ५० ।

अर्थ :—ये प्रासाद लघु रूपसे पचहत्तर (७५) धनुष ऊँचे, सौ (१००) धनुष लम्बे और पचास (५०) धनुष प्रमाण विस्तारवाले हैं ॥ २९ ॥

इन प्रासादोंके द्वारोंका विस्तारादिक—

पासाद-दुवारेसुं, बारस चावाणि होंति उच्छेहो ।
पत्तेक्कं छव्वासो, अवगाढं तम्हि चत्तारि ॥३०॥

दंड १२ । ६ । ४ ।

अर्थ :—इन प्रासादोंके द्वारोंमें प्रत्येककी ऊँचाई बारह (१२) धनुष, विस्तार छह (६) धनुष और अवगाढ़ (मोटाई) चार (४) धनुष प्रमाण है ॥ ३० ॥

पणवीसं दोण्णि सया, उच्छेहो होदि जेट्ठ-पासादे ।
दीहं ति-सय-धणूणिं[2], दिहस्स सद्धं च [3]विक्खंभं ॥३१॥

दंड २२५ । ३०० । १५० ।

अर्थ :—ज्येष्ठ प्रासादोंमें प्रत्येककी ऊँचाई दो सौ पच्चीस (२२५) धनुष, लम्बाई तीन सौ (३००) धनुष और विस्तार लम्बाईसे आधा अर्थात् एक सौ पचास (१५०) धनुष प्रमाण है ॥३१॥

ज्येष्ठ प्रासादोंके द्वारोंका विस्तारादि—

ताण दुवारुच्छेहो[4], दंडा छत्तीस[5] होदि पत्तेक्कं ।
अट्ठारस विक्खंभो, बारस णियमेण अवगाढं ॥३२॥

दं ३६ । १८ । १२ ।

अर्थ :—ज्येष्ठ प्रासादोंके द्वारोंमें प्रत्येक द्वारकी ऊँचाई नियमसे छत्तीस (३६) धनुष, विष्कम्भ अठारह (१८) धनुष और अवगाढ़ बारह (१२) धनुष प्रमाण है ॥ ३२ ॥

---

१. ब. चावालगिं । २. ब. धणूणं । ३. द. सब्ब-विक्खंभो । ४. ब. दुवारच्छेहो । ५. ब. बत्तीस ।

मध्यम प्रासादोंका विस्तारादि—

मज्झिम-पासादाणं, हवेदि उदओ दिवड्ढ-सय-दंडा।
दोण्णि सया दीहत्तं, पत्तेक्कं एक्क-सय-रुंदं ॥३३॥

दंड १५० । २०० । १०० ।

अर्थ :—मध्यम प्रासादोंमें प्रत्येककी ऊँचाई डेढ़सौ (१५०) धनुष, लम्बाई दोसौ (२००) धनुष और चौड़ाई एक सौ (१००) धनुष प्रमाण है ॥ ३३ ॥

मध्यम प्रासादोंके द्वारोंका विस्तारादि—

चउवीसं चावाणि, ताण दुवारेसु होदि उच्छेहो।
बारस अट्ठ कमेणं, दंडा वित्थार-अवगाढा ॥३४॥

दंड २४ । १२ । ८ ।

अर्थ :—इन प्रासादोंमें प्रत्येक द्वारकी ऊँचाई चौबीस धनुष, विस्तार बारह धनुष और अवगाढ़ आठ धनुष प्रमाण है ॥ ३४ ॥

व्यन्तर नगरोंका विशेष वर्णन—

सामण्ण-चेत्त-कदली,-गब्भ-लदा-णाड-आसण-गिहाओ।
गेहा होंति विचित्ता, वेंतर-णयरेसु रम्मयरा ॥३५॥

अर्थ :—व्यन्तरनगरोंमें सामान्यगृह, चैत्यगृह, कदलीगृह, गर्भगृह, लतागृह, नाटकगृह और आसनगृह, ये नानाप्रकारके रम्य गृह होते हैं ॥ ३५ ॥

मेहुण-[1]मंडण-ओलग-वंदण-अभिसेय-णच्चणाणं पि।
णाणाविह-सालाओ वर-रयण-विणिम्मिदा होंति ॥३६॥

अर्थ :—(उन नगरोंमें) उत्तम रत्नोंसे निर्मित मैथुनशाला, मण्डनशाला, ओलगशाला, वन्दनशाला, अभिषेकशाला और नृत्यशाला, इसप्रकार नानाप्रकारकी शालाएँ होती हैं ॥ ३६ ॥

---

१. द. मंडल ओलंग, ब. मंडण उलग, क. उ. मंडल उलग ।

तालिका : २

लघु–ज्येष्ठ एवं मध्यम प्रासादों तथा उनके द्वारों का प्रमाण

(गाथा २९ से ३४)

लघु प्रासादों की			उनके द्वारों की			ज्येष्ठ प्रासादों की			उनके द्वारों की			मध्यम प्रासादों की			उनके द्वारों की		
ऊँचाई	लम्बाई	चौड़ाई	ऊँचाई	लम्बाई	अवगाढ	ऊँचाई	लम्बाई	चौड़ाई	ऊँचाई	लम्बाई	अवगाढ	ऊँचाई	लम्बाई	चौड़ाई	ऊँचाई	लम्बाई	अवगाढ
७५ धनुष	१०० धनुष	५० धनुष	१२ धनुष	६ धनुष	४ धनुष	२०० धनुष	३०० धनुष	१५० धनुष	३६ धनुष	१८ धनुष	१२ धनुष	१५० धनुष	२०० धनुष	१०० धनुष	२४ धनुष	१२ धनुष	८ धनुष

प्रासादोंमें अवस्थित आसन—

करि-हरि-सुक-मोराणं, मयर-वालाणं गरुड-हंसाणं ।
सारिच्छाइं तेसुं, रम्मेसुं आसणाणि चेट्ठंते ॥३७॥

अर्थ:—उन रमणीय प्रासादोंमें हाथी, सिंह, शुक, मयूर, मगर, व्याल, गरुड़ और हंसके सदृश (आकारवाले) आसन रखे हुए हैं ॥ ३७ ॥

प्रासाद स्थित शय्याएँ—

वर-रयण-विरइदाणि, विचित्त-सयणाणि मउव-पासाइं ।
रेहंति मंदिरेसुं, वोपास-ठिदोवधाणाणि ॥३८॥

अर्थ:—महलोंमें उत्तम रत्नोंसे निर्मित, मृदुल स्पर्शवाली और दोनों पार्श्वभागोंमें तकियोंसे युक्त विचित्र शय्याएँ शोभायमान हैं ॥ ३८ ॥

व्यन्तर देवोंका स्वरूप—

कणय व्व [1]णिरुवलेवा, णिम्मल-कंती सुगंधि-णिस्सासा ।
वर-विविह-भूसणधरा, रवि-मंडल-सरिस-[2]मउड-सिरा ॥३९॥
रोग-जरा-परिहीणा, पत्तेक्कं दस-धणूणि उत्तुंगा ।
वेंतर-देवा तेसुं, सुहेण कीडंति सच्छंदा ॥४०॥

अर्थ:—स्वर्ण सदृश निर्लेप, निर्मल कान्तिके धारक, सुगन्धमय निश्वाससे युक्त, उत्तमोत्तम विविध आभूषणोंको धारण करनेवाले, सूर्यमण्डलके समान श्रेष्ठ मुकुट धारण करनेवाले, रोग एवं जरासे रहित और प्रत्येक दस धनुष ऊँचे व्यन्तर देव उन नगरोंमें सुखपूर्वक स्वच्छन्द क्रीड़ा करते हैं ॥ ३९-४० ॥

व्यन्तर नगर अकृत्रिम हैं—

[3]जिणमंदिर-जुत्ताइं, विचित्त-विण्णास-भवण-पुण्णाइं ।
सददं अकट्टिमाइं, वेंतर-णयराणि रेहंति ॥४१॥

अर्थ:—जिनमन्दिरोंसे संयुक्त और विचित्र रचनावाले भवनोसे परिपूर्ण वे अकृत्रिम व्यन्तर-नगर सदैव शोभायमान रहते हैं ॥ ४१ ॥

---

१. द. ब. क. ज. णिरुवलेहो, उ. णिरुवलेहों । २. द. ब. क. मंडसिरा, ज. मंडलसिरा ।
३. द. ब. क. जीमंदर, ज. जीमंदम ।

जम्बूद्वीपके विजयादिक चार द्वारोंका निरूपण—

विजयंत-वेजयंतं, [1]जयंत-अपराजियं च णामेहिं ।
चत्तारि दुवाराइं, जंबूदीवे चउ-दिसासुं ॥४२॥

अर्थ :—जम्बूद्वीपकी चारों दिशाओंमें विजयन्त (विजय), वैजयन्त, जयन्त और अपराजित नामवाले चार द्वार हैं ॥ ४२ ॥

पुव्व-दिसाए विजयं, दक्खिण-आसाए वइजयंतम्मि ।
अवर-दिसाए जयंतं अवराजिदमुत्तरासाए ॥४३॥

अर्थ :—विजयद्वार पूर्व दिशामें, वैजयन्त दक्षिण दिशामे, जयन्त पश्चिम दिशामें और अपराजित द्वार उत्तर दिशामें है ॥ ४३ ॥

एदाणं दाराणं, पत्तेक्कं अट्ठ जोयणा उदओ ।
[2]उच्छेहद्धं रुंदं, होदि पवेसो वि वास-समो ॥४४॥

८ । ४ । ४ ।

अर्थ :—इन द्वारोंमेंसे प्रत्येक द्वारकी ऊँचाई आठ योजन, विस्तार ऊँचाईसे आधा (चार योजन) और प्रवेश भी विस्तारके सदृश चार योजन प्रमाण है ॥ ४४ ॥

वर-वज्ज-कवाड-जुदा, णाणाविह-रयण-दाम-रमणिज्जा ।
[3]णिच्चं रक्खिज्जंते, वेंतर-देवेहिं चउदारा ॥४५॥

अर्थ : वज्रमय उत्तम कपाटोंसे संयुक्त और नानाप्रकारके रत्नोंकी मालाओंसे रमणीय ये चारों द्वार व्यन्तर देवोंसे सदा रक्षित रहते हैं ॥ ४५ ॥

द्वारों पर स्थित प्रासादोंका निरूपण—

दारोवरिमपएसे, पत्तेक्कं होंति दार-पासादा ।
सत्तारह-भूमि-जुदा, [4]णाणावरमत्तवारणया ॥४६॥
दिप्पंत-रयण-दीवा, विचित्त-वर-सालभंजि-[5]अत्थंभा ।
[6]धुव्वंत-धय-वडाया, विविहालेक्खेहिं[7] रमणिज्जा ॥४७॥

---

१. द. ज. जयं च अपराजय च, क. उ. जयंत च अपराजय च । २. द. ब. उच्छेहमट्ठ, क. ज. उ. उच्छेहमद्ध । ३ उ. णिच्च । ४. द. वरचत्त, ब. वरबत्त । ५. द. क. ज. य. अद्धंभा, ब. उ. अद्धंहा । ६. द. ब. क. ज. उ. दुब्भत । ७. य. ज. भेदेहि ।

[1]लंबंत-रयण-माणा, समंतदोविविह-धूव-घड-जुत्ता ।
[2]देवच्छराहि [3]भरिदा, पट्टंसुय-पहुदि-कय-सोहा ॥४८॥

अर्थ:—प्रत्येक द्वारके उपरिम भागमें सत्तरह भूमियोंसे संयुक्त, अनेकानेक उत्तम बरामदोंसे सुशोभित, प्रदीप्त रत्नदीपकोंसे युक्त, नानाप्रकारकी उत्तम पुत्तलिकाओंसे अंकित स्तम्भों-वाले लहलहाती ध्वजा-पताकाओंसे समन्वित, विविध आलेखोंसे रमणीय, लटकती हुई रत्नमालाओंसे संयुक्त, सब ओर विविध धूप घटोंसे युक्त, देवों एवं अप्सराओं से परिपूर्ण और पट्टांशुक (रेशमी-वस्त्र) आदिसे शोभायमान द्वार प्रासाद हैं ॥ ४६-४८ ॥

उच्छेह-[4]वास-पहुदिसु, दारब्भवणाण जेत्तिया संखा ।
तप्परिमाण-परूवण-उवएसो संपहि पणट्ठो ॥४९॥

अर्थ:—द्वार-भवनोंकी ऊँचाई तथा विस्तार आदिका जितना प्रमाण है, उस प्रमाणके प्ररूपणका उपदेश इस समय नष्ट हो चुका है ॥ ४९ ॥

गोपुरद्वारों पर जिनबिम्ब—

सीहासण-छत्तत्तय-भामंडल-चामरादि-रमणिज्जा ।
रयणमया जिण-पडिमा, गोउर-दारेसु रेहंति ॥५०॥

अर्थ:—गोपुर-द्वारोंपर सिंहासन, तीन छत्र, भामण्डल और चामरादिसे रमणीय रत्नमय जिन प्रतिमाएँ शोभायमान हैं ॥ ५० ॥

जम्बूद्वीपकी सूक्ष्म परिधिका प्रमाण—

तस्सि दीवे परिही, लक्खाणि तिण्णि सोलस-सहस्सा ।
जोयण-सयाणि दोण्णि य, सत्तावीसादि-रित्ताणि ॥५१॥

जो ३१६२२७ ।

पादूणं जोयणयं, अट्ठावीसुत्तरं सयं दंडा ।
किक्कू-हत्थो [5]णत्थि हु, हवेदि एक्का विहत्थी य ॥५२॥

जो $\frac{3}{4}$ । दं १२८ । ० । ० । १ ।

---

१. द. अब्भंतरयणमाणुसमंतादो, ब. क. ज. अब्भंतरयणसाणुसमंतादो, य अब्भतरयासाणू समंतादो विविहरुवपुढजुत्तो । २. द. ब. क. ज. य. दोवच्छाराहि । ३. द. ब. क. ज. भविदा । ४. द. य. ओस, ब. क. उस । ५. द. णत्ति हुवेदीयं कोविहंदीहं । क. ब. णत्थि हवेदी एको विहंदीहं । ज. णत्थि हवेदी एको विहर्दाहं ।

पादट्ठाणे सुण्णं, अंगुलमेक्कं तहा जवा पंच ।
एक्को जूवो [1]एक्का लिक्खं कम्मक्खिदीण छव्वालं ॥५३॥

पा० । अं १ । ज ५ । जू १ । लि. १ । [2]क वा ६

सुण्णं जहण्ण-भोगक्खिदिए मज्झिल्ल-भोगभूमीए ।
सत्त च्चिय वालग्गा, पंचुत्तम-भोग-खोणीए ॥५४॥

० । ७ । ५ ।

एक्को तह रहरेणू, तसरेणू तिण्णि णत्थि तुडरेणू ।
दो[3]वि य सण्णासण्णा, ओसण्णासण्णिया[4] वि तिण्णि पुढं ॥५५॥

१ । ३ । ० । २ । ३ ।

परमाणू य [5]अणंताणंता संखा हवेदि णियमेण ।
वोच्छामि तप्पमाणं, [6]णिस्संददि दिट्ठिवावादो ॥५६॥

अर्थ :—जम्बूद्वीपकी (सूक्ष्म) परिधि तीनलाख, सोलह हजार दोसौ सत्ताईस योजन, पादून एक योजन (तीन कोस), एकसौ अट्ठाईस धनुष, किष्कू और हाथके स्थानमें शून्य, एक वितस्ति, पादके स्थानमें शून्य, एक अंगुल, पांच जौ, एक यूक, एक लीख, कर्मभूमिके छह बाल, जघन्य भोगभूमिके बालोंके स्थानमें शून्य, मध्यम भोगभूमिके सात बालाग्र, उत्तम भोगभूमिके पाँच बालाग्र, एक रथरेणु, तीन त्रसरेणु, त्रुटरेणुके स्थानमें शून्य, दो सन्नासन्न, तीन अवसन्नासन्न और अनन्तानन्त परमाणु प्रमाण है। दृष्टिवाद अङ्गसे उसका जितना प्रमाण निकलता है, वह अब कहता हूँ ॥ ५१-५६ ॥

विशेषार्थ :—जम्बूद्वीपका व्यास एक लाख योजन है। इसी अधिकारकी गाथा ९ के नियमानुसार $\sqrt{१ \text{ लाख} \times १ \text{ लाख} \times १०}$ = परिधि। अर्थात् $\sqrt{१००००० \times १००००० \times १०}$ = $\sqrt{१०००००००००००}$=परिधि। इसका वर्गमूल निकालनेपर ३१६२२७ योजन प्राप्त हुए और $\frac{४८४४७१}{६३२४५४}$ यो० अवशेष रहे। इनके कोस एवं धनुष आदि बनानेके लिए अंशमें क्रमशः कोस तथा धनुष आदिका गुणा कर हरका भाग देते जाना चाहिए। यथा— $\sqrt{१०००००००००००}$ =

---

१. क. ज. य. उ. एक्को। २. द. ब. कहा। ३. द. ब. क. ज. य. तिय। ४. क. ज. य. उ. सण्णिय। ५. क. ज. उ. अणंता। ६. ब. क. ज. णिस्संसिद।

३१६२२७ योजन। $\frac{\text{४८४४७१} \times (\text{४ कोस})}{\text{६३२४५४}}$ = ३ कोस। $\frac{\text{४०५२२} \times (\text{२००० ध०})}{\text{६३२४५४}}$ = १२८ धनुष

.... $\frac{\text{१८९९३६} \times (\text{८ स०})}{\text{६३२४५४}}$ = २ सन्नसन्न और $\frac{\text{२५४५८०} \times (\text{८ अव०})}{\text{६३२४५४}}$ = ३ अवसन्नासन्न

अर्थात्

३१६२२७ योजन	१ अंगुल	१ रथरेणु
३ कोस	५ लौ	३ त्रसरेणु
१२८ धनुष	१ जूं	० त्रुटरेणु
० किष्कू	१ लीख	२ सन्नासन्न
० हाथ	६ कर्मभूमि के बाल	२ अवसन्नासन्न
१ वितस्ति	० जघन्य भोगभूमि के बाल	३ अवसन्नासन्न और २३२१३/१०५४०९ शेष प्रमाण है। यह शेष अंश अनन्तानन्त परमाणुओं के स्थानीय है।
० पाद	७ मध्यम " " " "	
	५ उत्तम " " " "	

तेवीस सहस्साणिं, बेणिण[1] सयाणिं च तेरसं अंसा।
हारो एक्कं लक्खं, पंच सहस्साणि चउ सयाणि णवं।।५७।।

$\frac{\text{२३२१३}}{\text{१०५४०९}}$ । ख ख

अर्थ : तेईस हजार दौसो तेरह अंश और एक लाख पाँच हजार चारसौ नौ हार है।। ५७।।

नोट : संदृष्टिका ख ख अनन्तानन्तका सूचक है।

उपर्युक्त अंशका गुणकार–

एदस्सं पुढं, गुणगारो होदि तस्स परिमाणं।
जाण अणंताणंतं, परिभास-कमेण उप्पण्णं।। ५८।।

अर्थ : इस अंशका पृथक् गुणकार होता है। उसका परिमाण परिभाषा क्रम से उत्पन्न अनन्तानन्त (संख्या प्रमाण) जानो।। ५८।।

विशेषार्थ : जम्बूद्वीप की सूक्ष्मपरिधिका प्रमाण योजन, कोस, धनुष आदि में निकाल लेने के बाद (गाथा ५७ के अनुसार) $\frac{\text{२३२१३}}{\text{१०५४०९}}$ अंश अवशेष बचते हैं। इनका गुणकार अनन्तानन्त है। अर्थात् इस $\frac{\text{२३२१३}}{\text{१०५४०९}}$ अवशिष्ट अंश में अनन्तानन्त परमाणुओं का गुणा करके पश्चात् परिभाषा क्रम के अनुसार योजन, कोस, धनुष, रिक्कू एवं हाथ आदि से लेकर अवसन्नासन्न पर्यन्त प्रमाण निकाल

---

१ ब विण्णि।

लेने के बाद अवशिष्ट ($\frac{२}{५}\frac{३}{०}\frac{२}{८}\frac{१}{१}\frac{३}{०}\frac{}{६}$) राशि अनन्तानन्त परमाणुओं के स्थानीय मानी गई है। यदि मूल राशि अनन्तानन्त परमाणु स्वरूप न मानी जाय तो अवशिष्ट अश को अनन्तानन्त स्वरूप नहीं कहा जा सकता। इसीलिए गाथा में "एदस्ससस्स पुह गुणगारा .... अणताणत" . कहा गया है।

जम्बूद्वीपके क्षेत्रफलका प्रमाण—

अंबर-पंचेक्क-चऊ, णव-छप्पण-सुण्ण-णवय-सत्तो व।
अंक-कमे जोयणया, जंबूदीवस्स खेत्तफलं ॥५९॥

। ७९०५६९४१५० ।

अर्थ :—शून्य, पांच, एक, चार, नौ, छह, पाँच, शून्य, नौ और मात, अंकोंको क्रमसे रखनेपर जितनी सख्या हो उतने योजन प्रमाण जम्बूद्वीपका क्षेत्रफल निकलता है ॥५९॥

विशेषार्थ :— "विक्खभ-चउब्भागप्पहदा सा होदि खेत्तफल" गा० ९ अधिकार ४। अर्थात् परिधिको व्यासके चतुर्थांशसे गुणा करने पर वृत्तक्षेत्रका क्षेत्रफल निकल आता है।

जम्बूद्वीपका व्यास १ लाख योजन और परिधि ३१६२२७$\frac{४}{६}\frac{६}{३}\frac{५}{२}\frac{४}{४}\frac{१}{५}\frac{१}{४}$ योजन प्रमाण है। अत: गाथा ९ के अनुसार ३१६२२७$\frac{४}{६}\frac{६}{३}\frac{५}{२}\frac{४}{४}\frac{१}{५}\frac{१}{४}$ × $\frac{१०००००}{४}$ = ७९०५६७५०००$\frac{१२}{}\frac{१}{६}\frac{१}{३}\frac{१}{२}\frac{१}{४}\frac{००५०००}{८४}$ योजन अर्थात् ७९०५६९४१५०$\frac{२}{६}\frac{६}{३}\frac{०}{२}\frac{१}{४}\frac{०}{५}\frac{०}{४}$ योजन जम्बूद्वीपका क्षेत्रफल हुआ। इस गाथामे केवल ७९०५६९४१५० योजन दर्शाये गये है शेष योजनों के कोस एव धनुष आदि आगे दर्शाये जा रहे हैं।

एक्को कोसो दंडा, सहस्समेक्कं हवेदि पंच-सया।
तेवण्णाए सहिदा, किक्‌-हत्थेसु[1] सुण्णाइं ॥६०॥

को १। द० १५५३। ०। ०।

एक्का होदि विहत्थी, सुण्णं[2] पादम्मि अंगुलं एक्कं।
जव-छक्क-त्तिय जूवा, लिक्खाओ तिण्णि णादव्वा ॥६१॥

१। ०। १। ६। ३। ३ ॥

---

१. ब. हत्थेस। क. हत्थेसु। उ. हत्थेए। २. द. ब. क. ज. उ. य. सोदंमि।

कम्मं खोणीअ दुवे, वालग्गा अवर-भोगभूमीए ।
सत्त हवंते[1] मज्झिम-भोगखिदीए वि तिण्णि पुढं ।।६२।।

२ । ७ । ३ ।

उत्तम भोग-महीए, वालग्गा सत्त होंति चत्तारो ।
रहरेणू तसरेणू, दोण्णि तहा तिण्णि तुडरेणू ।।६३।।

७ । ४ । २ । ३ ।

सत्त य सण्णासण्णा, ओसण्णासण्णया तहा एक्को ।
परमाणूण [2]अणंताणंता संखा इमा होदि ।।६४।।

७ । १ ।

अर्थ :—एक कोस, एक हजार पाँचसौ तिरेपन धनुष, किष्कू और हाथके स्थानमें शून्य, एक वितस्ति, पादके स्थानमें शून्य, एक अंगुल, छह जौ, तीन यूक, ३ लीख, कर्मभूमिके दो बालाग्र, जघन्य भोगभूमिके सात बालाग्र, मध्यम भोगभूमिके तीन बालाग्र, उत्तम भोगभूमिके सात बालाग्र, चार रथरेणु, दो त्रसरेणु, तीन त्रुटरेणु, सात सन्नासन्न, एक अवसन्नासन्न एवं अनन्तानन्त परमाणु प्रमाण, इस जम्बूद्वीपका क्षेत्रफल है ।।६०–६४।।

विशेषार्थ :—गाथा ५९ के विशेषार्थमें ७९०५६९४१५० योजन पूर्ण और २८०१००/१०५४०९ योजन अवशिष्ट, जम्बूद्वीपका क्षेत्रफल बतलाया गया है । इस अवशिष्ट राशिके कोस आदि बनाने पर (२८०१००×४/१०५४०९)=१ कोस, (४१११४१×२०००/१०५४०९)=१५५३ धनुष, इसीप्रकार किष्कु ०, हाथ ०, वितस्ति १, पाद ०, अंगुल १, जौ ६, जूँ ३, लीख ३, कर्मभूमिके बाल २, ज० भोग० के बाल ७, मध्यम भोग० के ३ बाल, उत्तम भोग० के ७ बाल, रथरेणु ४, त्रसरेणु २, त्रुटरेणु ३, सन्नासन्न ७ और अवसन्नासन्न १ प्राप्त हुए तथा ४८४५५/१०५४०९ अंश शेष रहे जो अनन्तानन्त परमाणुओंके स्थानीय हैं ।

अट्ठताल[3]-सहस्सा, पणवण्णुत्तर-चउस्सया अंसा ।
हारो एक्कं लक्खं, पंच सहस्साणि चउ सया णवयं ।।६५।।

४८४५५/१०५४०९ । ख ख

१. ब. हुवंति । २. क. ब. उ. अणंतोणंता । ३. क. ब. उ. अठताल ।

अर्थ :—अड़तालीस हजार चार सौ पचपन अंश और एक लाख पांच हजार चारसौ नो हार है ।।६५।।

विशेषार्थ :—जम्बूद्वीपकी परिधिको $\frac{\text{व्यास}}{४}$ से गुणित कर योजन, कोस, धनुष .... सन्नासन्न और अवसन्नासन्न पर्यन्त क्षेत्रफल निकाल लेनेके बाद $\frac{४८४५५}{१०५४०९}$ राशि अवशेष रहती है जो अनन्तानन्त परमाणुओंके स्थानीय है ।

उपर्युक्त अंशका गुणकार—

एदस्संसस्स पुढं, गुणगारो होदि तस्स परिमाणं ।
एत्थ अणंताणंतं, परिभास-कमेण उप्पण्णं ।।६६।।

अर्थ :—इस अंशका पृथक् गुणकार होता है । उसका परिमाण परिभाषा क्रमसे उत्पन्न यह अनन्तानन्त प्रमाण है ।।६६।।

विशेषार्थ :—जम्बूद्वीपके सूक्ष्म क्षेत्रफलका प्रमाण योजन, कोस, धनुष आदि में निकाल लेने के बाद (गा० ६४ के अनुसार) $\frac{४८४५५}{१०५४०९}$ अंश अवशिष्ट रहते हैं । इनका गुणकार अनन्तानन्त है । (शेष विशेषार्थ गाथा ५८ के विशेषार्थ सदृश ही है ।)

विजयादिक द्वारोंका अन्तर प्रमाण—

सोलस-जोयण-होणे, जंबूदीवस्स परिहि-मज्झम्मि ।
दारंतर-परिमाणं, चउ-भजिदे होदि जं लद्धं ।।६७।।

अर्थ :—जम्बूद्वीपकी परिधिके प्रमाणमेंसे सोलह योजन कम करके शेषमें चारका भाग देनेपर जो लब्ध आवे वह द्वारोंके अन्तरालका प्रमाण है ।।६७।।

जगदी-बाहिर-भागे[1], दाराणं होदि अंतर-पमाणं ।
उणसीदि-सहस्साणि, बावण्णा जोयणाणि अदिरेगा[2] ।।६८।।

७९०५२ ।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. भागो । २. य. अधिरोगा ।

सत्त सहस्साणि धणू, पंच-सयाणि च होंति बत्तीसं ।
तिण्णि-च्चिय [1]पव्वाणि, तिण्णि जवा किंचिददिरित्ता [2] ॥६९॥

ध ७५३२ । अं ३ । जो ३ ।

अर्थ :—जगतीके बाह्य-भागमें द्वारोंके अन्तरालका प्रमाण उन्यासी हज़ार बावन (७९०५२) योजनसे अधिक है । (इस अधिकका प्रमाण) सात हज़ार पाँचसौ बत्तीस (७५३२) धनुष, तीन अंगुल और कुछ अधिक तीन जौ है ॥६८-६९॥

विशेषार्थ :—(गाथा ५१ से ५६ पर्यन्त) जम्बूद्वीपकी परिधि ३१६२२७ योजन, ३ कोस, १२८ धनुष आदि कही गई है । इसमेंसे १६ योजन [जगतीमें चार द्वार हैं और प्रत्येक द्वार चार योजन चौड़ा है (गा० ४४), अतः १६ यो०] घटाकर चारका भाग देने पर जगतीके बाह्य भागमें द्वारोंके अन्तरालका प्रमाण प्राप्त होता है । यथा—$\frac{३१६२२७-१६}{४}=\frac{३१६२११}{४}$ =७९०५२ योजन, ३ योजन अवशेष । $\frac{३ \text{ यो}० \times (४ \text{ को}०)+३}{४}$ = ३ कोस, अवशेष ३ कोस । $\frac{(३ \times २००० \text{ ध}०)+१२८}{४}$ = १५३२ धनुष अर्थात् ३ कोस १५३२ धनुष या ७५३२ धनुष, ० रिक्कू, ० हाथ, ० वितस्ति, ० पाद, ३ अंगुल, ३ जौ, २ जूँ, २ लीक, ३ कर्मभूमिके बाल, ४ ज० भो० के बाल, १ म० भो० का बाल, ७ उ० भो० के बाल, २ रथरेणु, २ त्रस०, ६ त्रुटरेणु, ० सन्नासन्न एवं ४$\frac{१}{२}$ अवसन्नासन्न आदि द्वारोंके अन्तरालमें अधिकका प्रमाण है ।

जगतीके अभ्यन्तरभागमें जम्बूद्वीपकी परिधि—

जगदी-अब्भंतरए, परिही लक्खाणि तिण्णि जोयणया ।
सोलस [3]-सहस्स-इगि [4]-सय-बावण्णा होंति किंचूणा ॥७०॥

३१६१५२ ।

अर्थ :—जगतीके अभ्यन्तर भागमें जम्बूद्वीपकी परिधि तीन लाख सोलह हज़ार एकसौ बावन (३१६१५२) योजनसे कुछ कम है ॥७०॥

विशेषार्थ :—गाथा १६ में जगतीका मूल विस्तार १२ योजन कहा गया है । जो दोनों ओरका (१२ × २=) २४ योजन हुआ । इन्हें एक लाख व्यासमेंसे घटा देनेपर ९९९७६ यो० प्राप्त हुए ।

---

१. द. पंचाणि । २. क. ज अधिरित्तो, ब. अधिरित्ते, य. अधिरित्ता । ३. क. सोल, ज. सोलह ।
४. ब. इगिस्सय ।

अर्थात् यह जगती का अभ्यन्तर व्यास हुआ। इसकी सूक्ष्म परिधि निकालने पर—३१६१५१ योजन, ३ कोस, ९७० धनुष, १ रिक्कू, १ हाथ, ० वि०, १ पाद और २ [illegible] अंगुल प्राप्त होते हैं, इसीलिए गाथामें परिधिका प्रमाण कुछ कम ३१६१५२ योजन कहा गया है।

अभ्यन्तर भागमें द्वारोंके अन्तरालका प्रमाण—

जगदी-अब्भंतरए, दाराणं होदि अंतर-पमाणं।
उणसीदि-सहस्साणि, चउतीसं जोयणाणि किंचूणं ॥७१॥

७९०३४।

अर्थ :—जगतीके अभ्यन्तरभागमें द्वारोंके अन्तरालका प्रमाण उन्यासी हजार चौंतीस (७९०३४) योजनसे कुछ कम है ॥७१॥

विशेषार्थ :—जम्बूद्वीपकी जगतीके अभ्यन्तर भागमें परिधिका प्रमाण कुछ कम ३१६१५२ योजन अर्थात् ३१६१५१ योजन, ३ कोस, ९७० ध०, १ रिक्कू, १ हाथ, ० वि०, १ पाद और २ [illegible] अंगुल कहा गया है। द्वारोंका विस्तार ४-४ योजन है, अतः अभ्यन्तर परिधिके प्रमाणमेंसे १६ यो० घटाकर चारका भाग देने पर कुछ कम ७९०३४ योजन अर्थात् ७९०३३ यो०, ३ कोस, १७४२ धनुष, १ रिक्कू, ० हाथ, १ वि०, ० पाद और ५ [illegible] अंगुल प्रत्येक द्वारके अन्तरालका प्रमाण है।

जीवाके वर्ग एवं धनुषके वर्गका प्रमाण—

विक्खंभद्ध-कदीओ, बिगुणा वट्टे दिसंतरे दीवे।
जीवा-वग्गो पण-गुण-चउ-भजिदे होदि [1]धणु-करणी ॥७२॥

अर्थ :—विष्कम्भके आधेके वर्गका दुगना, वृत्ताकार द्वीपकी चतुर्थांश परिधिरूप धनुषकी जीवाका वर्ग होता है। इस वर्गको पाँचसे गुणाकर चारका भाग देनेपर धनुषका वर्ग होता है ॥७२॥

विशेषार्थ :—जम्बूद्वीपकी जगतीकी चारों दिशाओंमें एक-एक द्वार है। एक द्वारसे दूसरे द्वार तकका क्षेत्र धनुषाकार है, क्योंकि पूर्व या पश्चिम द्वारसे दक्षिण एवं उत्तर द्वार पर्यन्त जगतीका जो आकार है वह धनुष सदृश है और अभ्यन्तर भागमें एक द्वारसे दूसरे द्वार पर्यन्तके क्षेत्रका आकार धनुषकी डोरी अर्थात् जीवा सदृश है।

---

१. ब य धणुक्करणी।

जम्बूद्वीपका विष्कम्भ १००००० योजन प्रमाण है, इसके अर्धभागके वर्गका दुगुना करने पर जो लब्ध प्राप्त होता है, वही द्वीपकी चतुर्थांश परिधिरूप जीवाके वर्गका प्रमाण है तथा इस वर्गका वर्गमूल जीवाका प्रमाण है। जीवाके वर्गको पाँचसे गुणितकर चारका भाग देनेपर धनुषका वर्ग और इसका वर्गमूल धनुषका प्रमाण है।

जीवा और धनुषका यह प्रमाण ही द्वारोंके अन्तरालका प्रमाण है जो गाथा ७३–७४ में दर्शाया जाएगा।

जीवाके वर्गका एवं जीवाका प्रमाण—

$(\frac{१०००००}{२} = ५००००)^२ \times २ = ५०००००००००$ जीवा का वर्ग। $\sqrt{५०००००००००} =$ ७०७१० योजन, २ कोस, १४२४ धनुष, १ रिक्कू, १ हाथ, १ वि०, १ पाद और ३$\frac{४४१३}{७०७१}$ अंगुल जीवा का प्रमाण है।

धनुषका वर्ग और धनुषका प्रमाण—

$\frac{५०००००००००\times५}{४} = ६२५००००००००$ धनुषके वर्गका प्रमाण। $\sqrt{६२५००००००००} =$ ७९०५६ यो०, ३ कोस एव १५३२$\frac{३८८}{४१४}$ धनुष अथवा ७९०५६ योजन और ७५३२$\frac{३८८}{४१४}$ धनुष, धनुषका प्रमाण है।

नोट :—गाथा ७४ का विशेषार्थ द्रष्टव्य है।

विजयादिक द्वारोंके सीधे अन्तरालका प्रमाण—

सत्तरि-सहस्स-जोयण, सत्त-सया दस-जुदो य अदिरित्तो।
जगदी-अब्भंतरए, दाराणं रिजु-सरूव-विच्चालं[1] ॥७३॥

जो ७०७१०।

अर्थ :—जगतीके अभ्यन्तरभागमें द्वारोंका ऋजु स्वरूप अर्थात् सीधा अन्तराल सत्तर हजार, सातसौ दस योजनोंसे कुछ अधिक है ॥७३॥

विशेषार्थ :—यहाँ ७०७१० योजनसे कुछ अधिकका प्रमाण २ कोस, १४२४ धनुष, १ रिक्कू, १ हाथ, १ वि०, १ पाद और ३$\frac{४४१३}{७०७१}$ अंगुल है।

---

१. ज. दिच्चालं।

उणसीदि-सहस्साणि, छप्पण्णा जोयणाणि दंडाइं ।
सत्त-सहस्सा पण-सय-बत्तीसा होंति किंचूणा[1] ॥७४॥

जो ७९०५६ । दं ७५३२ ।

अर्थ :—विजयादि द्वारोंका अन्तराल उन्यासी हज़ार, छप्पन योजन और सात हज़ार पाँचसो बत्तीस धनुष है जो कुछ कम है ॥७४॥

विशेषार्थ :—जम्बूद्वीपकी परिधिके $\frac{१}{४}$ भागका प्रमाण ही द्वारोंके अन्तरालका प्रमाण है। जो ७९०५६ योजन, ३ कोस $१५३२\frac{३६८}{४४१}$ धनुष है। अर्थात् द्वारोंका अन्तराल ७९०५६ योजन, ७५३२ धनुष, रिक्कू ०, हाथ ०, वि० ०, पाद १, अंगुल १ और जौ $४\frac{३५३}{४४१}$ प्रमाण प्राप्त हो रहा है। किन्तु गाथामें 'किंचूणा' पद दिया है जबकि अन्तरालका प्रमाण ७९०५६ यो० ७५३२ धनुषसे कुछ अधिक प्राप्त हो रहा है। अतएव "किंचूणा" शब्दसे यह बोध लिया जाये कि गाथा में दिया हुआ माप यथार्थ मापसे कुछ कम है।

[तालिका अगले पृष्ठ पर देखिये]

---

१. ब. किंचूणं ।

तालिका : ३

जम्बूद्वीपकी परिधि, क्षेत्रफल तथा द्वारोंके अन्तरका प्रमाण

क्र०	प्रमाण (माप)	जम्बूद्वीपकी सूक्ष्म परिधि गा० ५१-५६	जम्बूद्वीपका सूक्ष्म क्षेत्रफल गा० ५९-६४	बाह्यभागमें विजयादि द्वारोंका अंतर गा० ६८-६९	जगतीके अभ्यन्तर भागमें जम्बूद्वीपकी परिधि गा० ७०	अभ्यन्तर भागमें द्वारोंका अन्तराल गा० ७१	जीवाका प्रमाण अथवा द्वारोंका सीधा अंतर गा. ७२-७३	धनुषका प्रमाण अथवा द्वारोंका अन्तराल गा. ७२-७४
१	योजन	३१६२२७	७९०५६९४-१५०	७९०५२	३१६१५१	७९०३३	७०७१०	७९०५६
२	कोस	३	१	३	३	३	२	३
३	धनुष	१२८	१५५३	१५३२	६७०	१७४२	१४२४	१५३२
४	रिक्कू	०	०	०	१	१	१	०
५	हाथ	०	०	०	१	०	१	०
६	वितस्त	१	१	०	०	१	१	०
७	पाद	०	०	०	१	०	१	१
८	अंगुल	१	१	३	२	५	३	१
९	जौ	५	६	३	०	०	४	४
१०	जूं	१	१	२	१	०	७	२
११	लीख	१	३	२	३	२	७	३
१२	कर्मभू-के बालाग्र	६	२	३	६	७	४	५
१३	ज० भोगभूमि के बालाग्र	०	७	४	४	५	२	७
१४	म० भोगभूमि के बालाग्र	७	३	१	८	१	३	२
१५	उ० भोगभूमि के बालाग्र	५	७	७	७	१	५	७
१६	रथरेणु	१	४	२	५	७	२	४
१७	त्रसरेणु	३	२	२	६	३	१	५
१८	त्रुटरेणु	०	३	६	४	५	२	४
१९	सन्नासन्न	२	७	०	०	०	६	४
२०	अवसन्ना०	३	१	४ $\frac{3}{4}$	२	०	३	७
२१	शेष	$\frac{२३२१३}{१०५४०९}$	$\frac{४८४५५}{१०५४०९}$	×	$\frac{१३१०२१}{३१६२२७}$	$\frac{११२८३२}{३१६२२७}$	$\frac{१५२१}{[illegible]}$	$\frac{२३}{[illegible]}$

मतान्तरसे विजयादि द्वारोंका प्रमाण—

विजयादि दुवाराणं, पंच-सया जोयणाणि वित्थारो ।
पत्तेक्कं उच्छेहो, सत्त सयाणि च पण्णासा ॥७५॥

जो ५०० । ७५० ।

अर्थ :—विजयादिक द्वारोंमेंसे प्रत्येकका विस्तार पाँचसौ (५००) योजन और ऊँचाई सातसौ पचास (७५०) योजन प्रमाण है ॥७५॥

नोट :—इसी अधिकारकी गाथा ४४ में विजयादिक द्वारोंमेंसे प्रत्येकका विस्तार चार योजन प्रमाण और ऊँचाई ८ योजन प्रमाण कही गयी है ।

मतान्तरसे द्वारोंपर स्थित प्रासादोंका प्रमाण—

दारोवरिम-घराणं, रुंदो दो जोयणाणि पत्तेक्कं ।
उच्छेहो चत्तारि, केई एवं [1]परूवेंति ॥७६॥

जो २ । ४ ।

पाठान्तरम् ।

अर्थ :—द्वारोंपर स्थित प्रासादों (घरों) में से प्रत्येकका विस्तार दो योजन और ऊँचाई चार योजन प्रमाण है, ऐसा भी कितने ही आचार्य प्ररूपण करते हैं ॥७६॥

पाठान्तर ।

नोट :—इसी अधिकारकी गा० २९ से ३४ पर्यन्त प्रासादोंके विस्तार आदिका प्रमाण इससे भिन्न कहा गया है ।

द्वारोंके अधिपति देवोंका निरूपण—

एदेसिं दाराणं, अहिवइ-देवा[2] हवंति [3]वेंतरया ।
जं णामा ते दारा, तं णामा ते वि [4]विक्खादा ॥७७॥

अर्थ :—इन द्वारोंके अधिपति देव व्यन्तर होते हैं । जिन नामोंके वे द्वार हैं उनके अधिपति व्यन्तरदेव भी उन्हीं नामोंसे प्रसिद्ध होते हैं ॥७७॥

---

१. क. उ. प्पख्वंति, ज. पख्वंति, य. पख्वंति । २. द. ब. क. ज. य. उ. देवो । ३. द. ब. क. ज. य. उ. वितरया । ४. द. रिक्खादे, ब. उ. रक्खादे, क. ज. रक्खादो ।

द्वाराधिपति देवोंकी आयु आदिका निर्देश—

एक्क-पलिदोवमाऊ, दस-दंड-समाण-तुंग-वर[1]-देहा ।
दिव्वामल-मउड-धरा, सहिदा [2]देवी - सहस्सेहिं ।।७८।।

अर्थ :—ये देव एक पल्योपम आयुवाले; दस-धनुष प्रमाण उन्नत, उत्तम शरीरवाले; दिव्य निर्मल मुकुटके धारण करने वाले और हजारों देवियों सहित होते हैं ।।७८।।

विजयदेवके नगरका वर्णन—

दारस्स उवरि-देसे, विजयस्स पुरं हवेदि [3]गयणम्हि ।
[4]बारस - सहस्स - जोयण - दीहं तस्सद्ध - विक्खंभं ।।७९।।

१२००० । ६००० ।

अर्थ :—द्वारके उपरिम भागपर आकाशमें बारह हजार (१२०००) योजन लम्बा और इससे आधे (६००० योजन) विस्तार वाला विजयदेवका नगर है ।।७९।।

तटवेदीका निरूपण —

चउ-गोउर-संजुत्ता, [5]तड-वेदी तम्मि होदि कणयमई ।
[6]चरियट्टालय-चारू, दारोवरि जिण-घरेहिं [7]रम्मयरा ।।८०।।

अर्थ :—उस विजयपुरमें चार गोपुरोंसे संयुक्त सुवर्णमयी तटवेदी है जो मार्गों एवं अट्टालिकाओंसे सुन्दर है और द्वारोंपर स्थित जिन भवनोंसे रमणीय है ।।८०।।

विजयपुरम्मि विचित्ता, पासादा विविह-रयण-कणयमया ।
समचउरस्सा दीहा, अणेय - संठाण - सोहिल्ला ।।८१।।

अर्थ :—विजयपुरमें अनेक प्रकारके रत्नों और स्वर्णसे निर्मित, समचौरस, विशाल तथा अनेक आकारोंमें सुशोभित अद्‌भुत प्रासाद हैं ।।८१।।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. घरदेहा । २. द. क. ज. उ. देवि । ३. द. ब. उ. रयणम्मि, ज. णयरम्मि । ४. द. ब. उ. बार सहस्स । ५. द. क. ज. य. उ. तद । ६. द. चरिमट्टालय, क. उ. चरियट्टालय । ७. द. क. ज. उ. रमयारो ।

कुंदेंदु-संख-धवला, मरगय-वण्णा सुवण्ण-संकासा ।
वर-पउमराय-सरिसा, विविह-वण्णंतरा पउरा ॥८२॥

[1]ओलग्ग - मंत - भूसण - अभिसेउप्पत्ति[2]- मेहुणादीणं ।
सालाओ विसालाओ, रयण-मईओ विराजंति ॥८३॥

अर्थ :— वे प्रासाद कुन्दपुष्प, चन्द्रमा एवं शंख सदृश धवल, मरकतमणि जैसे (हरित) वर्णवाले, स्वर्णके सदृश (पीले), उत्तम पद्मराग मणियोंके सदृश (लाल) एवं बहुतसे अन्य विचित्र वर्णों वाले हैं। उनमें ओलगशाला, मन्त्रशाला, आभूषणशाला, अभिषेकशाला, उत्पत्तिशाला एवं मैथुनशाला आदिक रत्नमयी विशाल शालाएँ शोभायमान हैं ॥८२-८३॥

ते पासादा सव्वे, विचित्त-वणसंड-मंडणा रम्मा ।
दिप्पंत-रयण-दीवा, वर-धूव-घडेहि संजुत्ता ॥८४॥

सत्तट्ठ-णव-दसादिय-विचित्त-भूमीहि-भूसिदा विउला ।
[3]धुव्वंत-धय-वडाया, अकट्टिमा सुट्ठु सोहंति ॥८५॥

अर्थ :—वे सब अकृत्रिम भवन विचित्र वन-खण्डोंसे सुशोभित, रमणीय प्रदीप्त रत्नदीपोंसे युक्त, श्रेष्ठ धूपघटोंसे संयुक्त; सात, आठ, नौ और दस इत्यादि विचित्र भूमियोंसे विभूषित; विशाल फहराती हुई ध्वजा-पताकाओं सहित विशिष्टतासे शोभायमान हैं ॥८४-८५॥

पास-रस-वण्ण-वर-झणि-गंधेहिं [4]बहुविहेहि कद-सरिसा ।
उज्जल-विचित्त-बहुविह[5]- सयणासण - णिवह - संपुण्णा ॥८६॥

अर्थ:—अनेक प्रकारके स्पर्श, रस, वर्ण, उत्तमध्वनि एवं गन्धने जिनको समान कर दिया है। अर्थात् इनकी अपेक्षा जो समान हैं ऐसे वे भवन नाना प्रकारकी उज्ज्वल एवं अद्भुत शय्याओं एवं आसनोंके समूहसे परिपूर्ण हैं ॥८६॥

---

१. द. ओगलं, क. ज. य. उ. ओलंग, ब. पुउलंग। २. ब. उप्पच्छि। ३. द. जुलंतर परदाया। उ. ब. वुच्छंतर परदाया, क. ज. विसंतरयरदाया, य. दिसंतरयरदीया। ४. क. बिदेहि, ज. बिहेंदि, य. बिहेहि, उ. बिदेहिं। ५. क. विध, ज. य. उ. विद।

[1]एदस्सि णयरवरे, बहुविह-परिवार-[2]परिगदो णिच्चं ।
देवी-जुत्तो भुंजदि, उवभोग-सुहाइ विजयसुरो[3] ।।८७।।

अर्थ :—इस श्रेष्ठ नगरमे अपने अनेक प्रकारके परिवारसे घिरा हुआ विजयदेव अपनी देवियों सहित सदा उपभोग सुखोको भोगता है ।।८७।।

विशेषार्थ :—भोग और उपभोगके भेदसे भोग दो प्रकारके होते हैं। जो पदार्थ एक बार भोगनेमें आते हैं उन्हें भोग कहते हैं, जैसे भोज्य-पदार्थ और जो बार-बार भोगनेमें आते हैं उन्हें उपभोग कहते हैं, जैसे शय्या आदि। देव पर्यायमें उपभोग ही होते हैं क्योंकि उनके कवलाहार आदि नहीं होता ।

अन्य देवोंके नगर :–

एवं अवसेसाणं, देवाणं पुरवराणि रम्माणि ।
दारोवरिम-पदेसे[4], णहम्मि जिणभवण-जुत्ताणि ।।८८।।

अर्थ :—इसीप्रकार अन्य द्वारोंके ऊपरके प्रदेशमें अर्थात् ऊपर आकाशमें जिनभवनोंसे युक्त अवशिष्ट देवोंके रमणीय उत्तम नगर है ।।८८।।

जगतीके अभ्यन्तर-भागमें स्थित वनखण्डोंका वर्णन—

जगदीए अब्भंतरभागे[5] बे-कोस-वास-संजुत्ता ।
भूमितले वणसंडा[6], वर-[7]तरु-णियरा विराजंति ।।८९।।

अर्थ :—जगतीके अभ्यन्तरभागमें पृथिवीतलपर दो कोस विस्तारसे युक्त और उत्तम वृक्षोंके समूहोंसे परिपूर्ण वनसमूह शोभायमान हैं ।।८९।।

तं उज्जाणं सीयल-छायं वर-सुरहि-कुसुम-परिपुण्णं[8] ।
दिव्वामोद-सुगंधं, सुर-खेयर-मिहुण-मण-हरणं ।।९०।।

अर्थ :—शीतल छायासे युक्त, उत्तम सुगन्धित पुष्पोंसे परिपूर्ण और दिव्य सुगन्धसे सुगन्धित वह उद्यान देवों और विद्याधर-युगलोंके मनोंको हरण करने वाला है ।।९०।।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. एदेसिं । २. ब. परिगदा । ३. ब. क. ज. य. उ. विजयपुरी । ४. द. ब. क. ज. उ. पवेसे । य. पवेसो । ५. द. ब. क. ज. य. उ. भागो । ६. द. ब. क. ज. उ. संडो । ७. द. तुणु, ब. तणु । ८. द. क. ज उ. परिपुण्णा, य. परिपुण्णां ।

वन-वेदिकाका प्रमाण—

बे कोसा उव्विद्धा, उज्जाण-वणस्स वेदिया दिव्वा ।
पंच-सय-चाव-रुंदा, कंचण-वर-रयण-णियरमई ।।६१।।

।। जगदी समत्ता ।।

अर्थ :—स्वर्ण एवं उत्तमोत्तम रत्नोंके समूहसे निर्मित उद्यान वनकी दिव्य वेदिका दो कोस ऊँची और पाँचसौ धनुष प्रमाण चौड़ी है ।।६१।।

जगतीका वर्णन समाप्त हुआ ।

जम्बूद्वीपस्थ सात क्षेत्रोंका निरूपण—

तस्सि जंबूदीवे, सत्त-च्चिय होंति जणपदा पवरा ।
[1]एदाणं विच्चाले, छक्कुल-सेला विरायंते ।।६२।।

अर्थ :—उस जम्बूद्वीपमें सात प्रकारके श्रेष्ठ जनपद हैं और इन जनपदोंके अन्तरालमें छह कुलाचल शोभायमान हैं ।।६२।।

दक्खिण-दिसाए भरहो, हेमवदो हरि-विदेह-रम्माणि ।
हेरण्णवदेरावद - वरिसा कुल - पव्वदंतरिदा ।।६३।।

अर्थ :—दक्षिण दिशासे लेकर भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत क्षेत्र कुलपर्वतोंसे विभक्त हैं ।।६३।।

कप्पतरु-धवल-छत्ता, वर-उववण-चामरेहि [2]चारुतरा ।
वर-कुंड-कुंडलेहिं, विचित्त-रूवेहि रमणिज्जा ।।६४।।

वर-वेदी-कडिसुत्ता, बहुरयणुज्जल-गिरिंद मउड-धरा ।
सरि-जल-पवाह-हारा, खेत्त-णरिंदा विरायंति ।।६५।।

अर्थ :—कल्पवृक्ष रूपी धवल छत्र एवं उत्तम उपवनरूपी चँवरोंसे अत्यन्त मनोहर, अद्भुत सुन्दरतावाले श्रेष्ठ कुण्डरूपी कुण्डलोंसे रमणीय, अनेक प्रकारके रत्नोंसे उज्ज्वल कुलपर्वतरूपी मुकुट,

---

१. ब. क. उ. एदाणि । २. द. क ज. उ. धरो, ब. धरा ।

उत्तम वेदीरूपी कटिसूत्र तथा नदियोंके जलप्रवाहरूपी हारको धारण करनेवाले भरतक्षेत्रादि राजा सुशोभित हैं ।।९४-९५।।

जम्बूद्वीपस्थ कुलाचलोंका निरूपण—

हिमवंत-महाहिमवंत - णिसह-णीलद्दि[1]-रुम्मि-सिहरि-गिरी ।
मूलोवरि-समवासा, पुव्वावर-जलहि[2] संलग्गा ।।९६।।

एदे हेमज्जुण-तवणिज्जय - वेरुलिय - रजद-हेममया ।
एक्क-दु-चउ-चउ-दुग-इगि-जोयण-सय-उदय-संजुदा कमसो ।।९७।।

१०० । २०० । ४०० । ४०० । २०० । १०० ।

अर्थ:—हिमवान्, महाहिमवान्, निषध, नील, रुक्मी और शिखरी कुलपर्वत मूलमें एवं ऊपर समान विस्तारसे युक्त हैं तथा पूर्वापर समुद्रोंसे संलग्न हैं। ये छहों कुल पर्वत क्रमशः सुवर्ण, चाँदी, तपनीय, वैडूर्यमणि, रजत और स्वर्णके सदृश वर्णवाले तथा एकसौ, दोसौ, चारसौ, चारसौ, दोसौ और एकसौ योजन प्रमाण ऊँचाई वाले हैं ।।९६-९७।।

कुलाचलरूपी राजाके विशेषण—

[3]वर-दह-सिदादवत्ता, [4]सरि-चामर-विज्जमाणया परिदो ।
कप्पतरु-चारु[5] - चिंधा, वसुमइ[6] - सिंहासणारूढा ।।९८।।

वर-वेदी-कडिसुत्ता, विविहुज्जल-रयण-कूड-मउडधरा ।
लंबिद - णिज्झरहारा, चंचल - तरु - कुंडलाभरणा ।।९९।।

गोउर - तिरीट - रम्मा, पायार - सुगंध-कुसुम-दामग्गा ।
सुरपुर-कण्ठाभरणा, [7]वण-राजि-विचित्त-वत्थ-कयसोहा ।।१००।।

[8]तोरण-कंकण - जुत्ता, [9]वज्ज-पणाली-फुरंत[10]-केऊरा ।
जिणवर - मंदिर - तिलया, भूधर - राया विरायंति ।।१०१।।

---

१. द. ब. णीलद्दि । २. ब. उ. जलदेहि । ३. द. ब. उ. वरधा हुसिवा रत्ता । य. ज. क. वरदा हरिदा रत्ता । ४. द. ब. क. ज. उ. सवि । ५. द. ब. क. य. उ. चार्शविदा, ज. चार्रविदा । ६. द. ब. क. ज. ब. उ. वसुहमही । ७. ब. उ. वरराजि । ८. द. ब. क. ज. य. उ. तारिण । ९. द. वज्जफणाली, य. वज्जप्पणाला । १०. द. क. ज. य. उ. पुरंत ।

अर्थ:—उत्तम द्रहरूपी सफेद छत्रसे विभूषित; चारों ओर नदीरूपी चामरोंसे वीज्यमान, कल्पवृक्षरूपी सुन्दर चिह्नों सहित, पृथिवीरूपी सिंहासनपर विराजमान, उत्तम वेदीरूपी कटिसूत्रसे युक्त, विविध प्रकारके उज्ज्वल रत्नोंके कूटरूपी मुकुटको धारण करने वाले निर्झररूपी लटकते हुए हारसे शोभायमान, चंचल वृक्षरूपी कुण्डलोंसे भूषित, गोपुररूप किरीटसे सुन्दर, कोटरूपी सुगन्धित फूलोंकी मालासे अग्रभागमें सुशोभित, सुरपुररूपी कण्ठाभरणसे अभिराम, वनपंक्तिरूप विचित्र वस्त्रोंसे शोभायमान, तोरणरूपी कंकणसे युक्त, वज्र-प्रणालीरूपी स्फुरायमान केयूरों सहित और जिनालयरूप तिलकसे मनोहर, कुलाचलरूपी राजा अत्यन्त सुशोभित हैं ॥९८-१०१॥

क्षेत्रोंका स्वरूप—

पुव्वावरदो दीहा, सत्त वि खेत्ता अणादि-विण्णासा ।
कुलगिरि-कय-मज्जादा[1], वित्थिण्णा दक्खिणुत्तरदो ॥१०२॥

अर्थ:—(भरतादि) सातों ही क्षेत्र पूर्व-पश्चिम लम्बे, अनादि-रचना युक्त (अनादि-निधन), कुलाचलोंसे सीमित और दक्षिण-उत्तरमें विस्तीर्ण है ॥१०२॥

भरतक्षेत्रका विस्तार—

णउदी-जुद-सद-भजिदे, जंबूदीवस्स वास-परिमाणे ।
जं लद्धं तं रुंदं, भरहक्खेत्तम्मि णादव्वं ॥१०३॥

अर्थ:—जम्बूद्वीपके विस्तार प्रमाणमें एकसौ नव्वैका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतना भरतक्षेत्रका विस्तार समझना चाहिए ॥१०३॥

क्षेत्र एवं कुलाचलोंकी शलाकाओंका प्रमाण—

भरहम्मि होदि [2]एक्का, तत्तो दुगुणा य खुल्ल-हिमवंते[3] ।
एवं दुगुणा[4] दुगुणा, होदि [5]सलाया विदेहंतं ॥१०४॥

। १ । २ । ४ । ८ । १६ । ३२ । ६४ ।

---

१. क. ब. य. उ. मज्जादो । २. य एक्को । ३. द. ब. क. ज. उ. हिमवंतो । ४. ब. दुगुण-दुगुणा, उ. दुगु दुगुणा । ५. क. उ. सलायं, ज. सलोयं, य. सलोल ।

अद्धं तु विदेहादो, [1]णीले णीला दु रम्मगो[2] होदि ।
एवं अद्धद्धाओ, एरावद - खेत्त - परियंतं ॥१०५॥

। ३२ । १६ । ८ । ४ । २ । १ ।

अर्थ :—भरतक्षेत्रमें एक शलाका है, क्षुद्रहिमवान्‌की इससे दूनी हैं, इसीप्रकार विदेह क्षेत्र पर्यन्त दूनी-दूनी शलाकाएँ हैं। विदेह से अर्धशलाकाएँ नील पर्वतमें और नीलसे अर्धशलाकाएँ रम्यक क्षेत्रमें हैं। इसीप्रकार ऐरावत क्षेत्र पर्यन्त उत्तरोत्तर अर्ध-अर्ध शलाकाएँ होती गई हैं ॥१०४-१०५॥

वरिसादीण [3]सलाया, मिलिदे णउदीए अहियमेक्क-सयं ।
एसा जुत्ती[4] हारस्स भासिदा[5] आणुपुव्वीए ॥१०६॥

अर्थ :—क्षेत्रादिकोंकी शलाकाएँ मिलाकर कुल (१, २, ४, ८, १६, ३२, ६४, ३२, १६, ८, ४, २, १ =) एकसौ नब्बे होती हैं। इसप्रकार अनुक्रमसे यह हार (भाजक) की युक्ति बतलाई गई है ॥१०६॥

क्षेत्र एवं कुलाचलोंका विस्तार—

भाग-भजिदम्हि लद्धं, पण-सय-छव्वीस-जोयणाणि[6] पि ।
[7]छच्चिय कलाओ कहिदो, भरहक्खेत्तम्मि विक्खंभो ॥१०७॥

| ५२६ ६/१९ |

[8]वरिसादु दुगुण वड्ढी, अद्दीदो दुगुणिदो परो वरिसो ।
जाव विदेहं होदि हु, तत्तो अद्धद्ध-हाणीए ॥१०८॥

| १०५२ १२/१९ | २१०५ ५/१९ | ४२१० १०/१९ | ८४२१ १/१९ | १६८४२ २/१९ | ३३६८४ ४/१९ |

| १६८४२ २/१९ | ८४२१ १/१९ | ४२१० १०/१९ | २१०५ ५/१९ | १०५२ १२/१९ | ५२६ ६/१९ |

॥ एवं विण्णासो समत्तो ॥

---

१. क. ब. उ. णीलो। २. क. ब. य. उ. रम्मको। ३. ब. उ. सलाया, क. य. सिलाया। ४. ब. जुत्ता। ५. क. ज य. उ. भासिदो। ६. द. जोयणाणं। ७. द. ब. क. ज. उ. छच्चिह। ८. द. ब. ज. य. उ. वरिसादु दुगुणवड्ढी आदीदो। क. वरिसादु दुगुणावड्ढी आदीदो।

अर्थ :—जम्बूद्वीपके विस्तार (१००००० यो०) में एकसौ नब्बेका भाग देनेपर पाँचसौ छब्बीस योजन और छह कला (५२६ $\frac{६}{१९}$ यो०) प्रमाण भरतक्षेत्रका विस्तार कहा गया है। वर्ष (क्षेत्र) से दूना पर्वत और पर्वतसे दूना आगेका वर्ष (क्षेत्र)। इसप्रकार विदेहक्षेत्र पर्यन्त क्रमशः दूनी-दूनी वृद्धि होती गई है। इसके पश्चात् क्रमशः क्षेत्रसे पर्वत और पर्वतसे आगेके क्षेत्रका विस्तार आधा-आधा होता गया है ।।१०७-१०८।।

तालिका : ४ ।। इसप्रकार विन्यास समाप्त हुआ ।।

क्षेत्र–कुलाचलोंके विस्तार आदिका विवरण
(गा० ९७ और १०४-१०८)

क्रमांक	नाम	क्षेत्र/पर्वत	१९० शलाकाएँ	वर्ण	ऊँचाई		विस्तार	
					योजनों में	मीलों में	योजनों में	मीलों में
१	भरत	क्षेत्र	१	×	×	×	५२६ $\frac{६}{१९}$	२१०५२६३ $\frac{३}{१९}$
२	हिमवान्	पर्वत	२	स्वर्ण	१००	४०००००	१०५२ $\frac{१२}{१९}$	४२१०५२६ $\frac{६}{१९}$
३	हैमवत	क्षेत्र	४	×	×	×	२१०५ $\frac{५}{१९}$	८४२१०५२ $\frac{१२}{१९}$
४	महाहिमवान्	पर्वत	८	चाँदी	२००	८०००००	४२१० $\frac{१०}{१९}$	१६८४२१०५ $\frac{५}{१९}$
५	हरि	क्षेत्र	१६	×	×	×	८४२१ $\frac{१}{१९}$	३३६८४२१० $\frac{१०}{१९}$
६	निषध	पर्वत	३२	तपनीय	४००	१६०००००	१६८४२ $\frac{२}{१९}$	६७३६८४२१ $\frac{१}{१९}$
७	विदेह	क्षेत्र	६४	×	×	×	३३६८४ $\frac{४}{१९}$	१३४७३६८४२ $\frac{२}{१९}$
८	नील	पर्वत	३२	वैडूर्य	४००	१६०००००	१६८४२ $\frac{२}{१९}$	६७३६८४२१ $\frac{१}{१९}$
९	रम्यक	क्षेत्र	१६	×	×	×	८४२१ $\frac{१}{१९}$	३३६८४२१० $\frac{१०}{१९}$
१०	रुक्मि	पर्वत	८	रजत	२००	८०००००	४२१० $\frac{१०}{१९}$	१६८४२१०५ $\frac{५}{१९}$
११	हैरण्यवत	क्षेत्र	४	×	×	×	२१०५ $\frac{५}{१९}$	८४२१०५२ $\frac{१२}{१९}$
१२	शिखरी	पर्वत	२	स्वर्ण	१००	४०००००	१०५२ $\frac{१२}{१९}$	४२१०५२६ $\frac{६}{१९}$
१३	ऐरावत	क्षेत्र	१	×	×	×	५२६ $\frac{६}{१९}$	२१०५२६३ $\frac{३}{१९}$

भरतक्षेत्रस्थ विजयार्धपर्वतकी अवस्थिति एवं प्रमाण—

भरहक्खिदि-बहुमज्झे, विजयड्ढो णाम भूधरो तुंगो ।
रजदमओ [1]चेट्ठेदि हु, णाणावर-रयण-रमणिज्जो ।।१०६।।

पणुवीस-जोयणुदओ, [2]वुत्तो तद्दुगुण-मूल-विक्खंभो ।
उदय-तुरिमंस-गाढो, जलणिहि-पुट्ठो ति-सेढि-गम्रो ।।११०।।

२५ । ५० । २५/४ ।

अर्थ :—भरतक्षेत्रके बहुमध्यभागमें नानाप्रकारके उत्तम रत्नोंसे रमणीय रजतमय विजयार्ध नामक उन्नत पर्वत विद्यमान है । यह पर्वत पच्चीस (२५) योजन ऊँचा, इससे दूने अर्थात् पचास (५०) योजन प्रमाण मूलमें विस्तार युक्त, ऊँचाईके चतुर्थ भाग प्रमाण (६¼ यो०) नीव सहित, पूर्वापर समुद्रको स्पर्श करने वाला और तीन श्रेणियोंमें विभक्त कहा गया है ।।१०६-११०।।

विजयार्धका अवशिष्ट वर्णन—

दस-जोयणाणि उवरिं, गंतूणं तस्स दोसु पासेसुं ।
विज्जाहराण सेढी, एक्केक्का जोयणाणि दस रुंदा ।।१११।।

१० ।

अर्थ :—दस योजन ऊपर जाकर उस पर्वतके दोनों पार्श्वभागोंमें दस योजन विस्तार वाली विद्याधरोंकी एक-एक श्रेणी है ।।१११।।

विजयड्ढायामेणं, हवंति विज्जाहराण सेढीओ ।
एक्केक्का [3]तडवेदी, णाणाविह-तोरणेहि कयसोहा ।।११२।।

अर्थ :—विजयार्धके आयाम-प्रमाण विद्याधरोंकी श्रेणियाँ हैं तथा वहाँ नानाप्रकारके तोरणोंसे शोभायमान एक-एक तट वेदिका है ।।११२।।

---

१. क. उ. चेट्ठेदि । २. द. ब. क. ज. य. उ. जुत्ता । ३. क. ज. य. उ. तद ।

दक्खिण-दिस-सेढीए, पण्णास पुराणि पुव्ववर-दिसम्मि[1] ।
उत्तर - सेढीए तह, [2]णयराणि सट्ठि चेट्ठंति ।।११३।।

द ५० । उ ६० ।

अर्थ :—पूर्वसे पश्चिम दिशाकी ओर दक्षिण दिशाकी श्रेणीमें पचास नगर और उत्तर दिशाकी श्रेणीमें साठ नगर स्थित हैं ।।११३।।
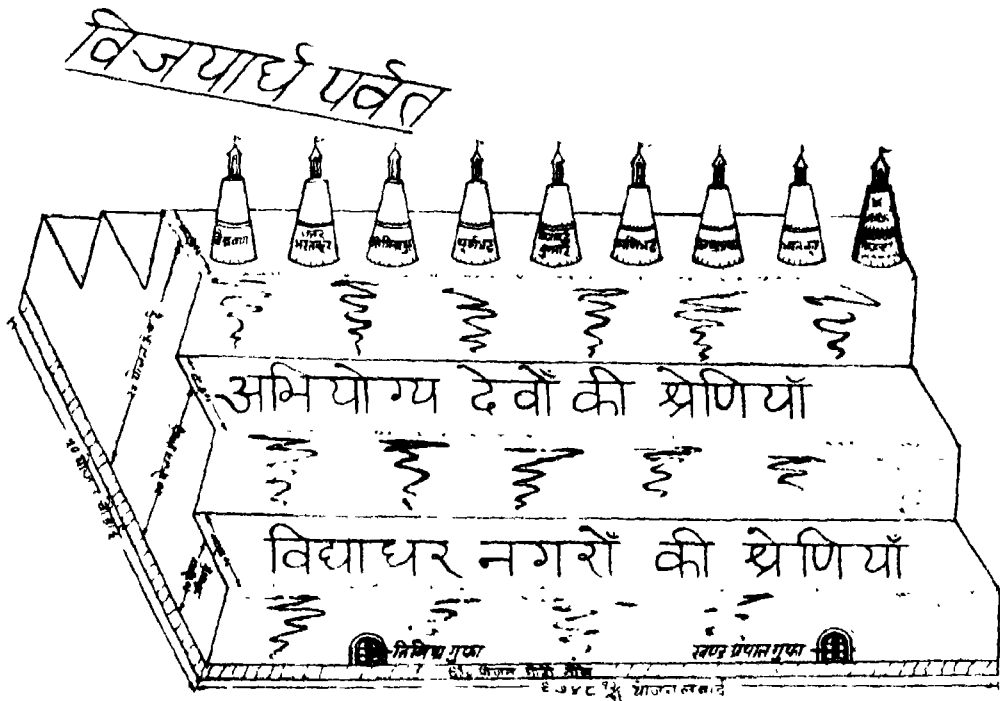
विशेषार्थ :—यह विजयार्ध पर्वत पूर्व-पश्चिम लम्बा है । इसकी कुल ऊँचाई २५ योजन है । इसके दक्षिण दिशा स्थित तट पर विद्याधरोंके ५० नगर और उत्तर दिशागत तट पर ६० नगर स्थित हैं ।

---

१. द. बहुदम्मि, ब. क. ज. य. उ. बहुदिम्मि । २. ब. ज. णयराणं ।

विजयार्धकी दक्षिण श्रेणी स्थित नगरियोंके नाम—

तण्णामा किणामिद, किणरगीदाइ तह य णरगीदं ।
बहुकेदु - पुंडरीया, सीहद्धय सेदकेदूइं ॥११४॥

७

गरुडद्धयं सिरिप्पह - सिरिधर - लोहग्गला[1] अरिंजयकं ।
[2]वइरग्गल-वइरड्ढा, विमोचिया जयपुरी य सगडमुही ॥११५॥

१०

[3]चदुमुह-बहुमुह-अरजक्खयाणि विरजक्ख-णाम-विक्खादं ।
तत्तो रहणूउर - मेहलग्ग - खेमंपुरावराजिदया ॥११६॥

८

णामेण कामपुप्फं, गयणचरी विजयचरिय-सुक्कपुरी ।
तह संजयंत-णयरी, जयंत-विजय[4]-वइजयंतं च ॥११७॥

८

खेमंकर - चंदाभा, सूराभ - पुरुत्तमापुराइं[5] पि ।
चित्त - महाकूडाइं, सुवण्णकूडो तिकूडो य ॥११८॥

८

वइचित्त -[6]मेहकूडा, तत्तो वइसवणकूड - सूरपुरा ।
चंदं णिच्चुज्जोयं, विमुही तह णिच्चवाहिणी सुमुही ॥११९॥

। ६ । ५० ।

अर्थ :—उन नगरियोंके नाम—[1]किनामित, [2]किन्नरगीत, [3]नरगीत, [4]बहुकेतु, [5]पुण्डरीक, [6]सिंहध्वज, [7]श्वेतकेतु, [8]गरुड़ध्वज, [9]श्रीप्रभ, [10]श्रीधर, [11]लोहार्गल, [12]अरिञ्जय, [13]वज्रार्गल,

---

१. द. ब. क. ज य. उ. लोयग्गला । २. द ब. ज. उ. वइरग्गल बइरंदा, क. वइरग्गाल । ३. द. ब. उ. चदुमुह, क. चंदमह, ज. य. चंदुमह । ४. क. ज. य. उ. विजाइ । ५. द. ब. क. ज. य. उ. पुवाइं । ६. द. ब. क. ज. य. उ. हेमकूडा ।

[14]वज्राढय, [15]विमोचिता, [16]जयपुरी, [17]शकटमुखी, [18]चतुर्मुख, [19]बहुमुख, [20]अरजस्का, [21]विरजस्का, [22]रथनूपुर, [23]मेखलापुर, [24]क्षेमपुर, [25]अपराजित, [26]कामपुष्प, [27]गगनचरी, [28]विजयचरी, [29]शुक्रपुरी, [30]संजयंत नगरी, [31]जयंत, [32]विजय, [33]वैजयंत, [34]क्षेमङ्कर, [35]चन्द्राभ, [36]सूर्याभ, [37]पुरोत्तम, [38]चित्रकूट, [39]महाकूट, [40]सुवर्णकूट, [41]त्रिकूट, [42]विचित्रकूट, [43]मेघकूट, [44]वैश्रवणकूट, [45]सूर्यपुर, [46]चन्द्र, [47]नित्योद्योत, [48]विमुखी, [49]नित्यवाहिनी और [50]सुमुखी, ये पचास नगरियाँ दक्षिण श्रेणी में हैं ॥११४-११६॥

एदाओ णयरीओ, पण्णासा दक्खिणा य सेढीए।
विजयड्ढायामेणं, विरचिद पंतीए णिवसंति ॥१२०॥

अर्थ :—दक्षिण श्रेणी में ये (उपर्युक्त) पचास नगरियाँ हैं, जो विजयार्ध की लम्बाई में पंक्तिबद्ध स्थित हैं ॥१२०॥

विजयार्धकी उत्तरश्रेणीगत नगरियोंके नाम--

[1]अज्जुण-अरुणी-कइलास[2]-वारुणीओ य विज्जुपह-णामा।
किलकिल-चूडामणियं, ससिपह-वंसाल-पुप्फचूलाइं ॥१२१॥

१०

[illegible] हृमगर्भं, बलाहक-सिवंकराइ सिरिसउधं[3]।
चमर [illegible]वर्मंदिर-वसुमक्खा-वसुमई त्ति णामा च ॥१२२॥

८

सिद्धत्थपुरं सत्तुंजयं च णामेण केदुमालो त्ति।
सुरवइकंतं तह [4]गगणणंदणं पुरमसोगं च ॥१२३॥

६

तत्तो विसोकयं वीदसोक - अलकाइ-तिलक - णामं च।
अंबरतिलकं मंदर-कुमुदा कुंदं च गयणवल्लभयं ॥१२४॥

९

---

१. द. ब क. उ. अंजुल, ज. य. अजुल। २. ब. क. ज. य. उ. कइलासे। ३ द. क. ज. उ. सउदं। ४. क. उ. गगणं।

दिव्वतिलयं च भूमी, तिलयं गंधव्वपुर वरं तत्तो।
मुत्ताहर - णइमिस - णामं [1]तहग्गिजाल - महजाला ॥१२५॥

७

णामेण सिरिणिकेदं, जयावहं सिरिणिवास-मणिवज्जा।
[2]भद्दस्सव्व - धणंजय - माहिंदा विजय - णयरं च ॥१२६॥

८

तह य सुगंधिणि-[3]वेरद्धदरा-गोक्खीरफेणमक्खोभा।
गिरिसिहर-धरणि-धारिणि-दुग्गाइं दुद्धरं सुदंसणयं ॥१२७॥

१०

रयणायर-रयणपुरा, उत्तर-सेढीअ सट्ठि णयरीओ।
विजयड्ढायामेणं, विरचिद - पंतीए णिवसंति ॥१२८॥

६०।

अर्थ:—[1]अर्जुनी, [2]अरुणी, [3]कैलास, [4]वारुणी, [5]विद्युत्प्रभ, [6]किलकिल, [7]चूडामणि, [8]शशिप्रभ, [9]वंशाल, [10]पुष्पचूल, [11]हंसगर्भ, [12]बलाहक, [13]शिवंकर, [14]श्रीसौध, [15]चमर, [16]शिवमन्दिर, [17]वसुमत्का, [18]वसुमती, [19]सिद्धार्थपुर, [20]शत्रुञ्जय, [21]केतुमाल, [22]सुरपतिकान्त, [23]गगननन्दन, [24]अशोक, [25]विशोक, [26]वीतशोक, [27]अलका, [28]तिलक, [29]अम्बरतिलक, [30]मन्दर, [31]कुमुद, [32]कुन्द, [33]गगनवल्लभ, [34]दिव्यतिलक, [35]भूमितिलक, [36]गन्धर्वपुर, [37]मुक्ताहर, [38]नैमिष, [39]अग्निज्वाल, [40]महाज्वाल, [41]श्रीनिकेतन, [42]जयावह, [43]श्रीनिवास, [44]मणिवज्र, [45]भद्राश्व, [46]धनञ्जय, [47]माहेन्द्र, [48]विजयनगर, [49]सुगन्धिनी, [50]वज्रार्द्धतर, [51]गोक्षीरफेन,

---

१. द. ब. क. ज य. उ. तह अग्गि। २. क. ज. उ भद्द।

३. द ब. वेरंतदराणं..........

ज. य. ,, ,, खीरफेणमखोभा।

उ. ,, ,, ,, ,, संखोभा।

क. ,, ,, ,, ,, संखाभा।

[५२]अक्षोभ, [५३]गिरिशिखर, [५४]धरणी, [५५]धारिणी, [५६]दुर्ग, [५७]दुर्द्धर, [५८]सुदर्शन, [५९]रत्नाकर और [६०]रत्नपुर ये साठ नगरियाँ उत्तरश्रेणीमें हैं, जो विजयार्द्धकी लम्बाईमें पंक्तिबद्ध स्थित हैं ।।१२१-१२८।।

विद्याधर नगरोंका विस्तृत वर्णन—

विज्जाहर-णयरवरा, अणाइ-णिहणा सहावणिप्पण्णा ।
णाणाविह-रयणमया, गोउर-पायार-तोरणादि-जुदा ।।१२६।।

अर्थ :—अनेक प्रकारके रत्नोंसे निर्मित गोपुर, प्राकार (परकोटा) और तोरणादिसे युक्त विद्याधरोंके वे श्रेष्ठ नगर अनादिनिधन और स्वभाव सिद्ध हैं ।।१२६।।

उज्जाण-वण-समिद्धा, पोक्खरणी-कूव-दिग्घिया-सहिदा ।
धुव्वंत[१]-धय-वडाया, पासादा ते च रयणमया ।।१३०।।

अर्थ :—रत्नमय प्रासाद वाले वे नगर उद्यान-वनोंसे संयुक्त हैं और पुष्करिणी, कूप एवं दीर्घिकाओं तथा फहराती हुई ध्वजा-पताकाओंसे सुशोभित हैं ।।१३०।।

णाणाविह-जिणगेहा, विज्जाहर-पुर वरेसु रमणिज्जा ।
वर - रयण - कंचणमया, [२]ठाण - ट्ठाणेसु सोहंति ।।१३१।।

अर्थ :—उन श्रेष्ठ विद्याधर नगरोंमें स्थान-स्थान पर रमणीय, उत्तमरत्नमय और स्वर्णमय नानाप्रकारके जिनमन्दिर शोभायमान हैं ।।१३१।।

वणसंड-वत्थ-सोहा, [३]वेदी-कडिसुत्तएहि कंतिल्ला ।
तोरण-कंकण[४]-जुत्ता, विज्जाहर-राय-भवण-मउडधरा[५] ।।१३२।।

मणिगिह-कंठाभरणा, चलंत-हिंडोल - कुंडलेहि जुदा ।
जिणवर - मंदिर - तिलया, णयर-णरिंदा विरायंति ।।१३३।।

---

१. द. ब. क. उ. धुव्वंतरयवदाया, ज. ब. पुव्वतवयवदाया । २. द. ब. क. उ. ताण । ३. द. वेदी वहि । ४. द. कंचण । ५. द. ब. क. ज. य. उ. मौहधरा ।

अर्थ :—वन-खण्डरूपी वस्त्रसे सुशोभित, वेदिकारूप कटिसूत्रसे कान्तिमान्, तोरणरूपी कंकणसे युक्त, विद्याधरोंके राजभवन रूप मुकुटोंको धारण करने वाले, मणिगृहरूप कंठाभरणसे विभूषित, चचल हिंडोलेरूप कुण्डलोंसे युक्त और जिनेन्द्रमन्दिररूपी तिलकसे संयुक्त विद्याधरनगररूपी राजा अत्यन्त शोभायमान हैं ।।१३२-१३३।।

[1]फुल्लिद-कमल-वणेहिं, वावी-णिचएहि मंडिया विउला ।
पुर-बाहिर - भूभागा, उज्जाण - वणेहिं रेहंति ।।१३४।।

अर्थ :—नगरके बाहरी विशाल प्रदेश प्रफुल्लित कमल वनों, वापी-समूहों तथा उद्यान-वनोंसे मंडित होते हुए शोभायमान हैं ।।१३४।।

कल्हार-कमल-कुवलय-कुमुदुज्जल-जलपवाह-पडहत्था[2] ।
दिव्व-तडाया विउला, तेसु पुरेसु विरायंति[3] ।।१३५।।

अर्थ :—उन नगरोंमें कल्हार, कमल, कुवलय और कुमुदोंसे उज्ज्वल, जलप्रवाहसे परिपूर्ण अनेक दिव्य तालाब शोभायमान हैं ।।१३५।।

सालि-जमणाल-तुवरी-तिल-जव-गोधुम्म-मास-पहुदीहिं ।
सस्सेहिं [4]भरिदाहिं, पुराइ सोहंति भूमीहिं ।।१३६।।

अर्थ :—शालि, यवनाल (जुवार), तूवर, तिल, जौ, गेहूँ और उड़द इत्यादिक समस्त उत्तम धान्योंसे परिपूर्ण भूमियों द्वारा वे नगर शोभाको प्राप्त होते है ।।१३६।।

बहुदिव्व-गाम-सहिदा, दिव्व - महापट्टणेहि रमणिज्जा ।
कव्वड - दोणमुहेहिं, संवाह - मडंबएहि परिपुण्णा ।।१३७।।

रयणाण [5]आयरेहिं, [6]विहूसिया [7]पउमराय - पहुदीणं ।
दिव्व-णयरेहि[8] पुण्णा, धण - धण्ण - समिद्धि - रम्मेहिं ।।१३८।।

अर्थ :—वे विद्याधरपुर बहुतसे दिव्य ग्रामों सहित, दिव्य महापट्टनोंसे रमणीय; कर्वट, द्रोणमुख, संवाह, मटंब और नगरोंसे परिपूर्ण; पद्मरागादिक रत्नोंकी खानोंसे विभूषित तथा धन-धान्यकी समृद्धिसे रमणीय हैं ।।१३७-१३८।।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. पुप्फिद । २. क. ज. य. उ. पवहत्था । ३ य. विराजंते । ४. द. य. सुभणेहिं । ५. ब क. ब. य. उ. अयायारहिं । ६. क. ज. य. उ. विभूसिदो । ७. द. ब. क. ब. य. उ. पंचमराय । ८. द. ब. क. ज. य. उ. णयरेहिं ।

विद्याधरोंका वर्णन—

[1]देवकुमार-सरिच्छा, बहुविह-विज्जाहि संजुदा पवरा ।
विज्जाहरा मणुस्सा, छक्कम्म-जुदा हवंति सदा ।।१३९।।

अर्थ :—उन नगरोमें रहनेवाले उत्तम विद्याधर मनुष्य देवकुमारोंके सदृश अनेक प्रकारकी विद्याओंसे संयुक्त होते हैं और सदा छह कर्मोंसे सहित हैं ।।१३९।।

विशेषार्थ :— वे विद्याधर मनुष्य देवपूजा, गुरु-उपासना, स्वाध्याय, संयम तप और दान इन छह कर्मोंसे युक्त होते हैं तथा अनेक विद्याओंके अधिपति होकर अपनी विद्याधर संज्ञाको सार्थक करते हैं ।

अच्छर-सरिच्छ-रूवा, अहिणव-लावण्ण-दीत्ति रमणिज्जा ।
विज्जाहर - वणिताओ, बहुविह - विज्जा - समिद्धाओ ।। १४० ।।

अर्थ :—विद्याधरोंकी वनिताएँ अप्सराओंके सदृश रूपवती, नवीन लावण्य युक्त, दीप्तिसे रमणीय और अनेक प्रकारकी विद्याओंसे समृद्ध होती हैं ।।१४०।।

कुल-जाई-विज्जाओ, साहिय - विज्जा अणेय-भेयाओ ।
विज्जाहर-पुरिस - पुरंधियाण[2] वर-सोक्ख - जणणीओ ।।१४१।।

अर्थ :— अनेक प्रकारकी कुल-विद्याएँ, जाति-विद्याएँ और साधित-विद्याएँ विद्याधर पुरुषों एवं पुरंध्रियों (विद्याधरियों) को उत्तम सुख देनेवाली होती हैं ।।१४१।।

विद्याधरकी श्रेणियोंका एवं उनपर निवास करनेवाले देवोंका वर्णन—

रम्मुज्जाणेहि जुदा, होंति हु विज्जाहराण सेढीओ ।
जिणभवण - भूसिदाओ, को सक्कइ वण्णिदुं सयलं ।।१४२।।

अर्थ :—विद्याधरोंकी श्रेणियाँ रमणीय उद्यानोंसे युक्त हैं और जिनभवनोंसे भूषित हैं । इनका सम्पूर्ण वर्णन करनेमें कौन समर्थ हो सकता है ? ।।१४२।।

---

१ द. ब. क. ज. य. उ. जंबकुमार सरिच्छो । २. द. ब. क. ज. उ. पुरंधियाण । य. पुरं धियार ।

दस-जोयणाणि तत्तो, उवरिं गंतूण दोसु पासेसुं ।
अभियोगामर - सेढी, दस - जोयण - वित्थरा[1] होदि ।।१४३।।

अर्थ :—विद्याधर श्रेणियोंसे आगे दस योजन ऊपर जाकर विजयार्धके दोनों पार्श्वभागोंमें दस योजन विस्तार वाली आभियोग्य देवोंकी श्रेणी है ।।१४३।।

वरकप्प-रुक्ख-रम्मा, फलिदेहिं उववणेहिं परिपुण्णा ।
वावी - तडाग - पउरा, वर-अच्छरि-कीडणेहिं जुदा ।।१४४।।

कंचण-वेदी-सहिदा, चउ-गोउर-सुंदरा य बहुचित्ता ।
मणिमय - मंदिर - बहुला, परिखा-पायार-परियरिया ।।१४५।।

अर्थ :—यह श्रेणी उत्कृष्ट कल्पवृक्षोंसे रमणीय, फलित उपवनोंसे परिपूर्ण, अनेक वापियों एवं तालाबों सहित, उत्तम अप्सराओंकी क्रीड़ाओंसे युक्त, स्वर्णमय वेदी सहित, चार गोपुरोंसे सुन्दर, बहुत चित्रोंसे अलंकृत और अनेक मणिमय भवनोंसे युक्त है तथा परिखा एवं प्राकारसे वेष्टित है ।।१४४-१४५।।

सोहम्म-सुरिंदस्स य, वाहण-देवा हवंति [2]वेंतरया ।
दक्खिण - उत्तर - पासेसु तिए वर-दिव्व-रूवधरा ।।१४६।।

अर्थ :—इस श्रेणीके दक्षिण-उत्तर पार्श्वभागमें सौधर्मेन्द्रके वाहनदेव-व्यन्तर होते हैं, जो उत्तम दिव्यरूपके धारक होते हैं ।।१४६।।

विजयार्धके शिखरका वर्णन —

अभिजोग-पुराहिंतो, गंतूणं पंच-जोयणाणि तदो ।
दस-जोयण-विच्छिण्णं, वेयड्ढगिरिस्स वर - सिहरं ।।१४७।।

तिवसिवखाव-सरिसं, विसाल-वर-वेदियाहि परियरियं ।
बहुतोरणदार-जुदा, विचित्त-रयणेहिं[3] रमणिज्जा ।।१४८।।

---

१. द. वित्थदो । २. द. ब क. य. उ. वित्तरया, ज. वित्तरया । ३. द. क. ज. य. उ. रयणम्मि ।

अर्थ :—अभियोगपुरोंसे पाँच योजन ऊपर जाकर दस योजन विस्तारवाला वैताढ्यपर्वतका उत्तम शिखर है जो त्रिदशेन्द्रचाप अर्थात् इन्द्रधनुषके सदृश है, विशाल एवं उत्तम वेदिकाओंसे वेष्टित है, अनेक तोरणद्वारोंसे संयुक्त है और विचित्र रत्नोंसे रमणीय है ॥१४७-१४८॥

शिखरके ऊपर स्थित नव-कूटोंका वर्णन—

तत्थ-समभूमि-भागे, [1]फुरंत-वर-रयण-किरण-णियरम्मि ।
चेट्ठंते णव कूडा, कंचण - मणि - मंडिया दिव्वा ॥१४६॥

अर्थ :—वहाँ पर स्फुरायमान उत्तम रत्नोंके किरण-समूहोंसे युक्त समभूमि भागमें स्वर्ण एवं मोतियोंसे मण्डित दिव्य नौ कूट स्थित हैं ॥१४६॥

णामेण सिद्धकूडो, पुव्व - दिसंतो तदो भरह-कूडो ।
[2]खंडप्पवाद - णामो, तुरिमो तह माणिभद्दो त्ति ॥१५०॥

विजयड्ढकुमारो पुण्णभद्द-[3]तिमिस्स-गुहा-विहाणा[4] य ।
उत्तर - भरहो कूडो, पच्छिम - अंतम्हि वेसमणा ॥१५१॥

अर्थ :—पूर्व दिशाके अन्तमें सिद्धकूट, इसके पश्चात् भरतकूट, खण्डप्रपात, (चतुर्थ) माणिभद्र, विजयार्धकुमार, पूर्णभद्र, तिमिस्रगुह, उत्तर भरतकूट और पश्चिम दिशाके अन्तमें वैश्रवण, नामक ये नौ कूट हैं ॥१५०-१५१॥

कूटोंके विस्तार आदिका वर्णन—

कूडाणं उच्छेहो, पुह पुह छज्जोयणाणि इगि-कोसं ।
तेत्तियमेत्तं णियमा, हवेदि मूलम्हि [5]विक्खंभो ॥१५२॥

जो ६ को १ । जो ६ को १[6] ।

अर्थ :—इन कूटोंकी ऊँचाई पृथक्-पृथक् छह योजन और एक कोस है तथा नियमसे इतना ही मूलमें विस्तार भी है ॥१५२॥

---

१. द. ब. य. पुरत्त, ब. क. उ. पुरंत । २ द. क. ज. य. उ. खंदप्प । ३. द. क. ज. य. उ. तिमिस्सं । ४. द. ब. क. ज. य. उ. विधाणो । ५. क. ज. य. उ. विक्खंभा । ६ द. क. ज. य. उ. । जो ४ । को $\frac{1}{2}$ । जो ३ । को $\frac{1}{2}$ ।

विशेषार्थ :—प्रत्येक कूटकी ऊँचाई ६ योजन १ कोस और मूल विस्तार भी ६ योजन एक कोस प्रमाण है।

> **तस्सद्धं वित्थारो, पत्तेक्कं होदि कूड-सिहरम्हि[1]।**
> **मूल-सिहराण रुंदं, मेलिय दलिदम्हि मज्झस्स ॥१५३॥**

जो ३ । को $\frac{१}{२}$ । जो ४ । को $\frac{११}{४}$ ।

अर्थ :—प्रत्येक कूटका विस्तार शिखर पर इससे आधा अर्थात् तीन योजन और आधा कोस है। मूल और शिखरके विस्तारको मिलाकर आधा करने पर जो प्रमाण प्राप्त हो उतना उक्त प्रत्येक कूटके मध्यका विस्तार है ॥१५३॥

विशेषार्थ :—प्रत्येक कूटकी ऊँचाई ६$\frac{१}{४}$ योजन और विस्तार भी ६$\frac{१}{४}$ योजन है। शिखरके ऊपर विस्तार ३$\frac{१}{८}$ योजन है। कूटका मध्य विस्तार (६$\frac{१}{४}$ + ३$\frac{१}{८}$) ÷ २ अर्थात् $\frac{\frac{२५}{४} + \frac{२५}{८}}{२}$ = ४$\frac{११}{१६}$ योजन अथवा ४ यो० और २$\frac{३}{४}$ या $\frac{११}{४}$ कोस है।

कूटस्थित जिनभवनका वर्णन—

> **आदिम-कूडे[2] चेट्ठदि, [3]जिणिंद-भवणं विचित्त - धयमालं।**
> **वर - कंचण - रयणमयं[4], तोरण - जुत्तं विमाणं च ॥१५४॥**

अर्थ :—प्रथम कूटपर विचित्र ध्वजा-समूहोंसे शोभायमान जिनेन्द्रभवन तथा उत्तम स्वर्ण और रत्नोंसे निर्मित तोरणोंसे युक्त विमान स्थित हैं ॥१५४॥

> **[5]दीहत्तमेक्क-कोसो, विक्खंभो होदि कोस-दल-मेत्तं[6]।**
> **गाउद-ति-चरणभागो, उच्छेहो जिण - णिकेदस्स ॥१५५॥**

को १ । $\frac{१}{२}$ । $\frac{३}{४}$ ।

अर्थ :—जिनभवनकी लम्बाई एक कोस, चौड़ाई आधा कोस और ऊँचाई गव्यूतिके तीन चौथाई भाग ($\frac{३}{४}$ कोस) प्रमाण है ॥१५५॥

---

१. द. ब. क. ज. य. उ सिहराणि। २. द. कूडो। ३. द. जिणंद। ४. द. ब. क. ज. उ. मया। य. मयां। ५. क. ज. य. उ. दीहत्थ। ६. द. उ. समेत्तं।

कंचण - पायारत्तय - परियरिओ गोउरेहि [1]संजुत्तो ।
वर-वज्ज-णील - विद्दुम[2]-मरगय - वेरुलिय - परिणामो ।।१५६।।

[3]लंबंत - रयण - दामो, णाणा-कुसुमोपहार-कयसोहो ।
गोसीस - मलयचंदण - कालागरु[4] - धूव - गंधड्ढो ।।१५७।।

वर-वज्ज-कवाड-जुदो, बहुविह-दारेहि सोहिदो विउलो ।
वर - माणथंभ - सहिदो, जिणिंद - गेहो णिरुवमाणो ।।१५८।।

अर्थ :– स्वर्णमय तीन प्राकारोंसे वेष्टित, गोपुरोंसे संयुक्त; उत्तम वज्र, नील, विद्रुम, मरकत और वैडूर्य-मणिओंसे निर्मित, लटकती हुई रत्नमालाओंसे युक्त, नाना प्रकारके फूलोंके उपहारसे शोभायमान, गोशीर्ष, मलयचन्दन, कालागरु और धूपकी गन्धसे व्याप्त; उत्कृष्ट वज्रकपाटोंसे संयुक्त बहुतप्रकारके द्वारोंसे सुशोभित, विशाल और उत्तम मानस्तम्भों सहित वह जिनेन्द्रभवन अनुपम है ।।१५६–१५८।।

भिंगार - कलस - दप्पण - चामर - घंटादवत्त - पहुदीहिं ।
पूजा - दव्वेहि तदो, विचित्त - वर - वत्थ[5]- सोहिल्लो ।।१५९।।

पुण्णाय - णाय - चंपय - असोय-बउलादि-रुक्ख-पुण्णेहिं ।
उज्जाणेहि सोहदि, विविहेहि जिणिंद - पासादो ।।१६०।।

अर्थ :– वह जिनेन्द्र-प्रासाद भारी, कलश, दर्पण, चामर, घंटा और आतपत्र (छत्र) इत्यादिसे, पूजाद्रव्योंसे, विचित्र एवं उत्तम वस्त्रोंसे सुशोभित तथा पुन्नाग, नाग, चम्पक, अशोक और बकुलादिक वृक्षोंसे परिपूर्ण विविध उद्यानोंसे शोभायमान है ।।१५९-१६०।।

सच्छ - जल - पूरिदेहिं, [6]कमलुप्पलसंड - मंडणधराहिं[7] ।
पोक्खरणीहिं रम्मो, मणिमय - सोवाण[8] -[9]मालाहिं ।।१६१।।

---

१. द. सजुत्ता । २. द. क. ज. य. उ. विज्जुम । ३. क. उ. लंबत । ४. ज. य. कालागुरु । ५. द. ब. क. ज. य. वत्थमोहि, उ. वत्थसेहि । ६. क उ कमलप्पल । ७. द. क. ज. य. उ. मंडण घराइं । ८. द. ब. क ज. य. उ. सोहाण । ९ द क. ज. य उ मालाइं ।

अर्थ :—वह जिनभवन स्वच्छ जलसे परिपूर्ण, कमल और नीलकमलोंके समूहसे अलंकृत भूमिभागोंसे युक्त और मणिमय सोपान पंक्तियोंसे शोभायमान पुष्करिणियोंसे रमणीय है ।।१६१।।

तस्सि जिणिंद - पडिमा, अट्ठ - महामंगलेहि संपुण्णा ।
सिहासणादि-सहिदा, चामर-कर-णाग-जक्ख-मिहुण-जुदा ।।१६२।।

अर्थ :—उस जिनेन्द्र मन्दिरमें अष्टमहामंगलद्रव्योंसे परिपूर्ण, सिंहासनादिक सहित और हाथमें चामरोंको लिए हुए नाग यक्षोंके युगलसे संयुक्त जिनेन्द्र प्रतिमा विराजमान है ।।१६२।।

भिंगार - कलस-दप्पण - वीयण-धय-छत्त-चमर-सुपइट्ठा ।
इय अट्ठ - मंगलाहि, पत्तेक्कं अट्ठ - अहियसयं ।।१६३।।

अर्थ :—झारी, कलश, दर्पण, व्यजन (पंखा), ध्वजा, छत्र, चमर और सुप्रतिष्ठ (ठौना), इन आठ मंगलद्रव्योंमेंसे प्रत्येक वहाँ एकसौ आठ-एकसौ आठ हैं ।।१६३।।

कित्तीए वण्णिज्जइ, जिणिंद - पडिमाए [1]सासद-ठिदीए ।
[2]जा हरइ सयल - दुरियं, सुमरण - मेत्तेण भव्वाणं ।।१६४।।

अर्थ :—जो स्मरण मात्रसे ही भव्य जीवोंके सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करती है, ऐसी शाश्वत रूपमे स्थित उस जिनेन्द्र प्रतिमाका कितना वर्णन किया जाय ? ।।१६४।।

वृत्तं (इन्द्रवज्रा) :—

एवं हि रूवं पडिमं जिणस्स, तत्थ ट्ठिदं [3]भत्ति-पसत्थ-चित्ता ।
झायंति केई विविणट्ठ-कम्मा, ते मोक्ख-माणंदकरं[4] लहंते ।।१६५।।

अर्थ :—उस जिन-मन्दिरमें स्थित जिनेन्द्र भगवान्की इसप्रकारकी सुन्दर मूर्तिका जो भी कोई (भव्य जीव) प्रशस्त चित्त होकर भक्तिपूर्वक ध्यान करते हैं, वे कर्मोंको नष्ट कर आनन्दकारी मोक्षको प्राप्त करते हैं ।।१६५।।

---

१. द. क. ज. य. उ. सासदरिद्धीए । २. ब. क. ज. य. उ. जो । ३. द. क. ज. भत्ति-पसत्थ-चित्तो, ब. उ. भत्तिए सच्छ-चित्तो । ४. द. ब. क. ज य. उ. माणं ।

एसा जिणिंदप्पडिमा जणाणं, झाणं कुणंताण-बहुप्पयारं ।
भावाणुसारेण अणंत-सोक्खं, णिस्सेयसं अब्भुदयं च देदि[1] ॥१६६॥

अर्थ :—यह जिनेन्द्र प्रतिमा अनेक प्रकारसे उसका ध्यान करनेवाले भव्य जीवोंको उनके भावोंके अनुसार अभ्युदय एवं अनन्तसुख स्वरूप मोक्ष प्रदान करती है ॥१६६॥

कूटोंपर स्थित व्यन्तरदेवोंके प्रासादोंका वर्णन—

भरहादिसु कूडेसुं, अट्ठसु वेंतर-सुराण पासादा ।
वर - रयण - कंचणमया, वेदी-गोउर-दुवार-कय-सोहा ॥१६७॥

उज्जाणेहिं जुत्ता, मणिमय - सयणासणेहिं परिपुण्णा ।
णच्चंत - धय - वडाया, बहुविह - वण्णा विरायंति ॥१६८॥

अर्थ :—भरतादिक आठ कूटोंपर व्यन्तरदेवोंके उत्तम रत्नों और स्वर्णसे निर्मित, वेदी तथा गोपुरद्वारोंसे शोभायमान, उद्यानोंसे युक्त, मणिमय शय्याओं और आसनोंसे परिपूर्ण एवं नाचती हुई ध्वजा-पताकाओंसे सुशोभित अनेक वर्णवाले प्रासाद विराजमान हैं ॥१६७-१६८॥

बहुदेव - देवि - सहिदा, वेंतर - देवाण होंति पासादा ।
जिणवर - भवण - पवण्णिद - पासाद-सरिच्छ-रुंदादी ॥१६६॥

को १ । को $\frac{1}{2}$ । को $\frac{3}{4}$ ।

अर्थ :—व्यन्तरदेवोंके ये प्रासाद बहुतसे देव-देवियों सहित हैं। जिन-भवनोंके वर्णनमें प्रासादोंके विस्तारादिका जो प्रमाण बतलाया जा चुका है, उसीके सदृश इनका भी विस्तारादिक जानना चाहिए। अर्थात् ये प्रासाद एक कोस लम्बे, आधा कोस चौड़े और पौन ($\frac{3}{4}$) कोस ऊँचे हैं ॥१६६॥

---

१. ब उ. देहि ।

कूटोंके अधिपति देवोंके नाम, उनकी ऊँचाई एवं आयु—

भरहे कूडे भरहो, [1]खंडपवादम्मि णट्टमाल - सुरो[2] ।
[3]कूडम्मि माणिभद्दे, अहिवइ-देवो अ माणभद्दो त्ति ॥१७०॥

वेयड्ढकुमार - सुरो, वेयड्ढकुमार - णाम - कूडम्मि ।
चेट्ठेदि पुण्णभद्दो, [4]अहिणाहो पुण्णभद्दम्मि ॥१७१॥

तिमिसगुहम्मि य कूडे, देवो णामेण वसदि कदमालो ।
उत्तरभरहे कूडे, अहिवइ - देवो भरह-णामो ॥१७२॥

कूडम्मि य वेसमणे, वेसमणो णाम अहिवई देवो ।
दस - धणु - देहुच्छेहा[5], सव्वे ते एक्क - पल्लाऊ ॥१७३॥

अर्थ :—भरतकूटपर भरत नामक देव, खण्डप्रपात कूटपर नृत्यमाल देव और माणिभद्र कूटपर माणिभद्र नामक अधिपति देव है। वैताढ्यकुमार नामक कूटपर वैताढ्यकुमार देव और पूर्णभद्र कूटपर पूर्णभद्र नामक अधिपति देव स्थित है। तिमिस्रगुह कूटपर कृतमाल नामक देव और उत्तरभरत कूटपर भरत नामक अधिपति देव रहता है। वैश्रवण कूटपर वैश्रवण नामक अधिनायक देव है। ये सब देव दस धनुष ऊँचे शरीरके धारक हैं और एक पल्योपम आयुवाले हैं ॥१७०-१७३॥

विजयार्ध स्थित वनखण्ड, वन-वेदी एवं व्यन्तर देवोंके नगरोंका वर्णन—

बे-गाउद वित्थिण्णा, दोसु वि पासेसु गिरि-समायामा ।
वेयड्ढम्मि गिरिंदे, वणसंडा होंति भूमितले[6] ॥१७४॥

अर्थ :- वैताढ्य पर्वतके भूमितलपर दोनों पार्श्वभागोंमें दो गव्यूति (दो कोस) विस्तीर्ण और पर्वतके बराबर लम्बे वनखण्ड हैं ॥१७४॥

१. द. ब. क. ज. य. उ. विदप। २. द. ब. क. ज. य. उ. सुरा। ३. द. कूटम्मि। ४. द. ब. क. ज. य. उ. अहिणामो। ५. द. ब. क. ज. य. उ. देहुच्छेहो। ६. द. ब. ज. उ. तलि, क. तलं।

दो-कोसं[1] उच्छेहो, पण - सय - [2]चावप्पमाण - रुंदो हु ।
वण - वेदी - आयारो[3], तोरण - दारेहिं संजुत्ता ॥१७५॥

अर्थ :—तोरण द्वारोंसे संयुक्त वन-वेदीका आकार दो कोस ऊँचा तथा पाँचसो धनुष प्रमाण विस्तारवाला है ॥१७५॥

चरियट्टालय - चारू, णाणाविह - जंत - लक्ख-संछण्णा ।
विविह-वर-रयण-खचिदा, णिरुवम - सोहाओ वेदीओ ॥१७६॥

अर्थ :—विशाल भवनों और मार्गोंसे सुन्दर, अनेक प्रकारके लाखों यंत्रोंसे व्याप्त, विविध-रत्नोंसे खचित उन वेदियोंकी शोभा अनुपम है ॥१७६॥

सव्वेसु उववणेसुं, वेंतर - देवाण होंति वर-णयरा ।
पायार - गोउर - जुदा, जिण-भवण विभूसिया विउला ॥१७७॥

अर्थ :—इन सब उपवनोंमें प्राकार और गोपुरों युक्त तथा जिनभवनोंसे विभूषित व्यन्तर-देवोंके विशाल उत्कृष्ट नगर हैं ॥१७७॥

विजयार्धकी गुफाओंका वर्णन—

रजद-णगे दोण्हि गुहा, पण्णासा जोयणाणि दीहाओ ।
अट्ठ उव्विद्धाओ, बारस - विक्खंभ - संजुत्ता ॥१७८॥

५० । ८ । १२ ।

अर्थ :—रजत पर्वत अर्थात् विजयार्धमें पचास योजन लम्बी, आठ योजन ऊँची और बारह योजन विस्तारसे युक्त दो गुफाएँ हैं ॥१७८॥

---

१. द. दो कोसुं विस्थाम्रो । ब. ज. उ. दोकोसुं विस्थारो । क. दो कोसुवि उच्छेहो । य. दो कोसो विस्थारो । २. द. ब. उ. चावा पमाणरुंदो उ । क. ज. य. चावा पमाण रुंदाम्रो । ३. द. ब. क. ज. उ. भायारो होंति हु ।

अवराए[1] तिमिसगुहा, [2]खंडपवादा दिसाए पुव्वाए ।
वर-वज्ज-कवाड[3]-जुदा, अणादि - णिहणाओ[4] सोहंति ।।१७९।।

अर्थ :—पश्चिम दिशामें तिमिस्रगुफा और पूर्व दिशामें खण्डप्रपात गुफा है। उत्तम वज्रमय कपाटोंसे युक्त ये दोनों अनादि-निधन गुफाएँ शोभायमान हैं ।।१७९।।

जमल-कवाडा दिव्वा, होंति हु छज्जोयणाणि वित्थिण्णा ।
अट्ठुच्छेहा[5] दोसु वि, गुहासु दाराण[6] पत्तेक्कं ।।१८०।।

६ । ८ ।

अर्थ :—दोनों ही गुफाओंमे द्वारोंके दिव्य युगल कपाटोंमेसे प्रत्येक कपाट छह योजन विस्तीर्ण और आठ योजन ऊँचा है ।।१८०।।

दक्षिण और उत्तर भरतका विस्तार—

पण्णास - जोयणाणिं, वेयड्ढ - णगस्स मूल - वित्थारो ।
तं भरहादो [7]सोधिय, सेसद्धं दक्खिणद्धं तु ।।१८१।।

दुसया अट्ठत्तीसं, तिण्णि कलाओ य दक्खिणद्धम्मि ।
तस्स सरिच्छ - पमाणो, उत्तर - भरहो हि[8] णियमेण ।।१८२।।

२३८ । $\frac{3}{19}$ ।

अर्थ :—विजयार्ध पर्वतका विस्तार मूलमे पचास योजन है। इसे भरतक्षेत्रके विस्तारमेंसे कम करके शेषका आधा करनेपर दक्षिण (अर्ध) भरतका विस्तार निकल जाता है। वह दक्षिण भरतका विस्तार दोसौ अड़तीस योजन और एक योजनके उन्नीस भागोंमेंसे तीन भाग प्रमाण है। नियमसे इसीके सदृश विस्तारवाला उत्तर भरत भी है ।।१८१-१८२।।

---

१. द. ब. क. ज. उ. अवरधरा, य अवधारा । २. द. ब. क. ज. उ. खंदपवाला, य. खंद पादाला । ३. द. ब. क. ज. उ. कवाडाहि, य. कवाडादि । ४. ज. य. उ णिहणादि । ५. द. अट्ठेवय सिद्धाओ । ब. अट्ठवेय सद्धाओ । क. अट्ठेवयउ विद्धाउ । ज. अट्ठेवय विट्ठाओ । उ. अट्ठेवय सद्धाओ । य. अट्ठेवय विद्धाओ । ६, द. ब. क. ज. य. उ. दाराणि । ७. द. ब. क. ज. य. उ. सोधय । ८. क. ज. उ. दि ।

विशेषार्थ :—भरतक्षेत्रका विस्तार ५२६$\frac{६}{१९}$ यो० है और विजयार्धका मूलमें विस्तार ५० योजन है, अतः (५२६$\frac{६}{१९}$ — ५०) ÷ २ = २३८$\frac{३}{१९}$ योजन दक्षिण भरतका और २३८$\frac{३}{१९}$ योजन ही उत्तर भरतका विस्तार है।

धनुषाकार क्षेत्रमें जीवाका प्रमाण निकालनेका विधान—

रुंदद्धं इसु-हीणं, वग्गिय अवणिज्ज रुंद-दल-वग्गे ।
सेसं चउगुण - मूलं, जीवाए होदि परिमाणं ॥१८३॥

अर्थ :—बाणसे रहित अर्ध-विस्तारका वर्ग करके उसे विस्तारके अर्ध भागके वर्गमेंसे घटा देनेपर अवशिष्ट राशिको चारसे गुणा करके प्राप्त राशिका वर्गमूल निकालने पर जीवाका प्रमाण प्राप्त होता है ॥१८३॥

धनुषका प्रमाण निकालनेका विधान—

बाण-जुद-रुंद-वग्गे[1], रुंद-कदी सोधिदूण दुगुण कदे ।
जं लद्धं तं होदि हु, करणी चावस्स परिमाणं ॥१८४॥

अर्थ :—बाणसे युक्त व्यासके वर्गमेंसे व्यासके वर्गको घटाकर शेषको दुगुना करनेपर जो राशि प्राप्त हो वह धनुषका वर्ग होता है और उसका वर्गमूल धनुषका प्रमाण होता है ॥१८४॥

बाणका प्रमाण निकालनेका विधान—

जीव-कदी-तुरिमंसा, [2]वासद्ध - कदीए सोहिदूण पदं ।
रुंदद्धम्मि विहीणे, [3]लद्धं बाणस्स परिमाणं ॥१८५॥

अर्थ :—जीवाके वर्गके चतुर्थ भागको अर्ध विस्तारके वर्गमेंसे घटाकर शेषका वर्गमूल निकालने पर जो प्राप्त हो उसे विस्तारके अर्ध भागमेंसे कम कर देनेपर अवशिष्ट रही राशि प्रमाण ही बाणका प्रमाण होता है ॥१८५॥

विशेषार्थ :—**यथा**—जम्बूद्वीपका व्यास एक लाख योजन और विजयार्धकी दक्षिण जीवा $\frac{१८५२२४}{१९}$ या ९७४८$\frac{१२}{१९}$ योजन है।

---

१. ब. क. उ. वग्गो। २. द. ब. क. ज. ठ. वासद्ध। ३. द. ब. क. ज. ठ. पद्धं।

$$\frac{१०००००}{२} - \sqrt{\left(\frac{१०००००}{२}\right)^{२} - \left\{\left(\frac{१८५२२४}{१९}\right)२ \times \frac{१}{४}\right\}}$$

$$= ५०००० - \sqrt{\left(\frac{२५००००००००}{१} - \frac{८५७६९८२५४४}{३६१}\right)}$$

$= ५०००० - \frac{९४५४७५}{१९}$ या $४९७६१\frac{१६}{१९} = २३८\frac{३}{१९}$ योजन दक्षिण-भरतका बाण ।

विजयार्धकी दक्षिण जीवाका प्रमाण

जोयण-णव य [1]सहस्सा, सत्त - सया अट्ठताल-संजुत्ता ।
बारस कलाओ अहिआ, रजदाचल - दक्खिणे[2] जीवा ॥१८६॥

$९७४८\frac{१२}{१९}$ ।

अर्थ :—विजयार्धके दक्षिणमें जीवा नौ हजार सातसौ अड़तालीस योजन और एक योजनके उन्नीस भागोंमेंसे बारह भाग ($९७४८\frac{१२}{१९}$ यो०) प्रमाण है ॥१८६॥

विशेषार्थ :—जम्बूद्वीपका व्यास एक लाख योजन और भरतक्षेत्रका बाण $२३८\frac{३}{१९}$ या $\frac{४५२५}{१९}$ योजन प्रमाण है। गाथा १८३ के नियमानुसार—$\left(\frac{१०००००}{२} - \frac{४५२५}{१९}\right)^{२} = \frac{८९३९२२९७५६२५}{३६१}$ को विस्तारके अर्धभागके वर्ग $\left[\left(\frac{१०००००}{२}\right)^{२} = २५००००००००\right]$ मेंसे घटा देनेपर $\left(\frac{२५००००००००}{१} - \frac{८९३९२२९७५६२५}{३६१}\right) = \frac{८५७७०२४३७५}{३६१}$ अवशेष रहे । इस अवशिष्ट राशिको ४ से गुणित करने पर $\frac{८५७७०२४३७५ \times ४}{३६१} = \frac{३४३०८०९७५००}{३६१}$ योजन हुए । इसका वर्गमूल निकालने पर $\frac{१८५२२४}{१९}$ अर्थात् $९७४८\frac{१२}{१९}$ योजन दक्षिण विजयार्धकी जीवा का प्रमाण प्राप्त हुआ । इसमें १६७३२४ अवशेष रहे जो छोड़ दिये गये हैं ।

---

१. द. सहस्सं, ब. क. य. उ. सहस्स । २. द. ज. दक्खिणो दीओ, ब. क. उ. दक्खिणो जीओ ।

दक्षिण जीवाके धनुषका प्रमाण—

तज्जीवाए[1] चावं, णव य सहस्साणि जोयणा होंति ।
सत्त - सया छासट्ठी, एक्क - कला किंचि [2]अहिरेक्का ।।१८७।।

। ९७६६ $\frac{१}{१९}$ ।

अर्थ :—उसी जीवाका धनुष नौ हजार सातसौ छ्यासठ योजन और एक योजनके उन्नीस भागोंमेंसे कुछ अधिक एक भाग (९७६६ $\frac{१}{१९}$ योजन) है ।।१८७।।

विशेषार्थ :—गाथा १८४ के नियमानुसार—

$$\text{धनुषका प्रमाण} = [\{ (१००००० + २३८\tfrac{३}{१९})^{२} - (१०००००)^{२} \} \times २]^{\frac{१}{२}}$$

$$= [\{ (१००२३८\tfrac{३}{१९})^{२} - (१०००००)^{२} \} \times २]^{\frac{१}{२}}$$

$$= [\{ (\frac{३६२७२१५४७५६२५}{३६१}) - (\frac{१००००००००००}{१}) \} \times २]^{\frac{१}{२}}$$

$$= (\frac{१७२१५४७५६२५}{३६१}) \times २]^{\frac{१}{२}}$$

$$= [\frac{३४४३०९५११२५०}{३६१}]^{\frac{१}{२}} = \frac{१८५५५५}{१९}$$ या ९७६६ $\frac{१}{१९}$ योजन विजयार्धके दक्षिण धनुषका प्रमाण है । संदृष्टिमें विजयार्धके दक्षिण धनुषका प्रमाण ९७६६ $\frac{१}{१९}$ यो० दर्शाया गया है, किन्तु गाथा में कुछ अधिक $\frac{१}{१९}$ कहा गया है । क्योंकि वर्गमूल निकाल लेनेके बाद $\frac{५६१४५}{[illegible]}$ योजन अवशेष बचते हैं । इनके कोस आदि बनाने पर अधिकका प्रमाण ३ कोस और ३२१ $\frac{३१११}{[illegible]}$ धनुष प्राप्त होता है ।

विजयार्धकी उत्तर जीवाका प्रमाण—

वीसुत्तर-सत्त-सया, दस य सहस्साणि जोयणा होंति ।
एक्कारस - कल - अहिया, रजदाचल - उत्तरे जीवा ।।१८८।।

१०७२० । $\frac{११}{१९}$ [3] ।

---

१. क. ज. य. उ. तं । २. द. अधिवेको, ब. क. य. ज. अधिरेक्को । ३. द. ब. १०७२० $\frac{११}{१९}$ । क. ज. १०२० $\frac{१}{१९}$ । उ. १०७२ $\frac{११}{१९}$ ।

अर्थ:—विजयार्धके उत्तरमें जीवाका प्रमाण दस हजार सातसौ बीस योजन और एक योजनके उन्नीस भागोंमेंसे ग्यारह भाग है ॥१८८॥

विशेषार्थ:—विजयार्धके बाणका प्रमाण ($२३८\frac{३}{१९}+५०$)$=२८८\frac{३}{१९}$ या $\frac{५४७५}{१९}$ योजन है। इसे जम्बूद्वीपके वृत्त-विष्कम्भ मेंसे घटा देनेपर $\frac{१८९४५२५}{१९}$ योजन अवशेष रहे। इसको बाणके चौगुने प्रमाण ($\frac{५४७५}{१९}\times\frac{४}{१}$) से गुणित करने पर—$\frac{४१४९००९७५००}{३६१}$ योजन प्राप्त होते हैं। यह विजयार्धकी जीवाकृति का प्रमाण है। इसके वर्गमूल ($\frac{२०३६९१}{१९}$) को अपने ही भागहारका भाग देनेसे $१०७२०\frac{११}{१९}$ योजन विजयार्धकी उत्तर जीवाका प्रमाण प्राप्त होता है।

उत्तर-जीवाके धनुषका प्रमाण—

एदाए जीवाए, धणुपुट्ठं दस - सहस्स - सत्त - सया।
तेदाल - जोयणाइं, पण्णरस - कलाओ [1]अहिरेओ ॥१८९॥

१०७४३। $\frac{१५}{१९}$।

अर्थ:—इस जीवाका धनुःपृष्ठ दस हजार सातसौ तेंतालीस योजन और एक योजनके उन्नीस भागोंमेंसे पन्द्रह भाग अधिक है ॥१८९॥

विशेषार्थ:—व्यास १ लाख यो० और बाण $२८८\frac{३}{१९}$ या $\frac{५४७५}{१९}$ यो०।

$$\text{धनुःपृष्ठ}=\left[२\left\{\left(१००००० + २८८\frac{३}{१९}\right)^{२}-(१०००००)^{२}\right\}\right]^{\frac{१}{२}}$$

$$=\left[२\left\{\left(१००२८८\frac{३}{१९}\right)^{२}-१००००००००००\right\}\right]^{\frac{१}{२}}$$

$$=\left[२\left\{\frac{३६३०८३४९७५६२५}{३६१}-\frac{१००००००००००}{१}\right\}\right]^{\frac{१}{२}}$$

$$=\left[२\times\frac{२०८३४९७५६२५}{३६१}\right]^{\frac{१}{२}}$$

$$=\sqrt{\frac{४१६६९९५१२५०}{३६१}}$$

$=\frac{२०४१३२}{१९}$ अर्थात् $१०७४३\frac{१५}{१९}$ योजन उत्तर जीवाके अर्थात् विजयार्धके उत्तर धनुषका प्रमाण प्राप्त हुआ।

---

१. द. अधिवेओ।

चूलिकाका प्रमाण ज्ञात करनेकी विधि—

जेट्ठाए जीवाए, मज्झे सोहसु जहण्ण - जीवं च ।
सेस - दलं चूलीओ, हवेदि [1]वस्से य सेले [2]य ।।१९०।।

अर्थ :—उत्कृष्ट जीवामेंसे जघन्य जीवाको घटाकर शेषका अर्ध करने पर क्षेत्र और पर्वतमें चूलिकाका प्रमाण आता है ।।१९०।।

विजयार्धकी चूलिकाका प्रमाण—

चत्तारि सयाणि तहा, पणुसीदी - जोयणेहि जुत्ताणि ।
सत्तत्तीसद्ध - कला, परिमाणं [3]चूलियाए इमं ।।१९१।।

४८५ । $\frac{३७}{३८}$ ।

अर्थ :—उस विजयार्धकी चूलिकाका प्रमाण चारसौ पचासी योजन और एक योजनके उन्नीस भागोंमेंसे सैंतीसके आधे अर्थात् साढे अठारह भाग (४८५$\frac{३७}{३८}$ योजन) है ।।१९१।।

विशेषार्थ :—गाथा १९० के नियमानुसार—

विजयार्धकी उत्तर (उत्कृष्ट) जीवाका प्रमाण १०७२०$\frac{११}{१९}$ अर्थात् $\frac{२०३६९१}{१९}$ योजन और दक्षिण (जघन्य) जीवाका प्रमाण ९७४८$\frac{१२}{१९}$ या $\frac{१८५२२४}{१९}$ योजन है । अतः—

$[(\frac{२०३६९१}{१९} - \frac{१८५२२४}{१९}) \times \frac{१}{२}] = \frac{१८४६७}{१९} \times \frac{१}{२} = \frac{१८४६७}{३८}$ या ४८५$\frac{३७}{३८}$ योजन विजयार्धकी चूलिकाका प्रमाण है ।

पार्श्वभुजाका प्रमाण ज्ञात करनेकी विधि—

जेट्ठम्मि चावपुट्ठे, सोहेज्ज कणिट्ठ-चावपुट्ठं पि ।
[5]सेस - दलं पस्स - भुजा, हवेदि वरिसम्मि सेले य ।।१९२।।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. वंसे । २. द. ब. उ. उ । क. य. यो । ३. द. ब. क. ज. य. उ. चूलियाहरिमं । ४. द. $\frac{३७}{३८}$ । ५. द. ब. क. उ. सेसद्दलपयस भुजा । ज. य. सेसद्दलपयस भुजा ।

अर्थ :—उत्कृष्ट चाप-पृष्ठमेंसे लघु चाप-पृष्ठ घटाकर शेषको आधा करने पर क्षेत्र और पर्वतमें पार्श्वभुजाका प्रमाण निकलता है ।।१९२।।

विजयार्धकी पार्श्व-भुजाका प्रमाण—

चत्तारि सयाणि तहा, अडसीदी - जोयणेहि जुत्ताणि ।
तेत्तीसद्ध - कलाओ, गिरिस्स पुव्वावरम्मि पस्स-भुजा ।।१९३।।

४८८ । $\frac{३३}{३८}$ ।

।। वेयड्ढा समत्ता ।।

अर्थ : – विजयार्धके पूर्व-पश्चिममें पार्श्वभुजाका प्रमाण चारसौ अठासी योजन और एक योजनके उन्नीस भागोंमेंसे तेंतीसके आधे अर्थात् साढ़े सोलह भाग है ।।१९३।।

विशेषार्थ :— विजयार्धके उत्तरका चाप १०७४३ $\frac{१५}{१९}$ अर्थात् $\frac{२०४१३२}{१९}$ योजन और विजयार्धके दक्षिणका चाप ९७६६ $\frac{१}{१९}$ अर्थात् $\frac{१८५५५५}{१९}$ योजन है । इन्हें परस्पर घटाकर अर्ध करनेपर $\left(\frac{२०४१३२}{१९} - \frac{१८५५५५}{१९} = \frac{१८५७७}{१९}\right) \times \frac{१}{२} = \frac{१८५७७}{३८}$ अर्थात् ४८८-$\frac{३३}{३८}$ योजन विजयार्धके पूर्व-पश्चिममें पार्श्व भुजाका प्रमाण है ।

।। विजयार्धका वर्णन समाप्त हुआ ।।

भरतक्षेत्रकी उत्तर-जीवाका प्रमाण—

चोद्दस - सहस्स - जोयण - चउस्सया एक्कसत्तरी-जुत्ता ।
[1]पंच - कलाओ एसा, जीवा भरहस्स उत्तरे[2] भागे ।।१९४।।

। १४४७१ । $\frac{५}{१९}$ ।

अर्थ :—भरतक्षेत्रके उत्तर-भागमें यह जीवा चौदह हजार चार सौ इकहत्तर योजन और एक योजनके उन्नीस भागोंमेंसे पाँच भाग प्रमाण है ।।१९४।।

विशेषार्थ :—जम्बूद्वीपका विस्तार १ लाख यो० । बाण ५२६ $\frac{६}{१९}$ योजन है ।

---

१. द. ब. क. ज. ब. उ. पंचकलासा ठेसे ।　　२. द. उत्तर भाए ।

$$\text{जीवा} = [४\{(\frac{१०००००}{२})^२ - (\frac{१०००००}{२} - \frac{१००००}{१९})^२\}]^{\frac{१}{२}}$$

$$= [४(\frac{५००००}{१})^२ - (\frac{९४००००}{१९})^२]^{\frac{१}{२}}$$

$$= [४(\frac{२५०००००००००}{१} - \frac{८८३६०००००००००}{३६१})]^{\frac{१}{२}}$$

$$= [४ \times \frac{१८९०००००००००}{३६१}]^{\frac{१}{२}}$$

$$= \sqrt{\frac{७५६००००००००००}{३६१}} = \frac{२७४९५४}{१९}$$ अर्थात् $१४४७१\frac{५}{१९}$ योजन भरतक्षेत्रकी उत्तर-जीवाका प्रमाण है ।

भरत क्षेत्रके धनुपका प्रमाण—

भरहस्स चावपुट्ठं, पंच-सयब्भहिय-चउदस-सहस्सा ।
अडवीस जोयणाइं, हवंति एक्कारस कलाओ ॥१९५॥

$१४५२८ \mid \frac{११}{१९} \mid$

अर्थ :—भरतक्षेत्रका धनुपृष्ठ चौदह हजार पाँच सौ अट्ठाईस योजन और एक योजनके उन्नीस भागोंमेंसे ग्यारह भाग प्रमाण है ॥१९५॥

विशेषार्थ :—व्यास १ लाख यो० । बाण $५२६\frac{६}{१९}$ योजन ।

$$\text{धनु पृष्ठ} = [२\{(\frac{१०००००}{१} + ५२६\frac{६}{१९})^२ - (१०००००)^२\}]^{\frac{१}{२}}$$

$$= [२\{(१००५२६\frac{६}{१९})^२ - (१०००००)^२\}]^{\frac{१}{२}}$$

$$= [२\{(\frac{१९१००००}{१९})^२ - (१०००००)^२\}]^{\frac{१}{२}}$$

$$= [\{२(\frac{३६४८१०००००००००}{३६१} - \frac{३६१००००००००००}{१})]^{\frac{१}{२}}$$

$$= [२ \times \frac{३८१००००००००}{३६१}]^{\frac{१}{२}}$$

$= \sqrt{\frac{७६२००००००००}{३६१}} = \frac{२७६०४३}{१९}$ अर्थात् १४५२८ $\frac{११}{१९}$ योजन भरतक्षेत्रके धनुपृष्ठ का प्रमाण है।

भरतक्षेत्रकी चूलिकाका प्रमाण—

जोयण - सहस्समेक्कं, अट्ठ - सया पंचहत्तरी - जुत्ता ।
तेरस - अद्ध - कलाओ, भरह - खिदी - चूलिया एसा ।।१९६।।

१८७५ । $\frac{१३}{३८}$ ।

अर्थ:—यह भरतक्षेत्रकी चूलिका एक हजार आठ सौ पचहत्तर योजन और एक योजनके उन्नीस भागोंमेंसे तेरहके आधे अर्थात् साढ़े छह भाग प्रमाण (१८७५ $\frac{१३}{३८}$ यो०) है ।।१९६।।

विशेषार्थ:—[(भरतक्षेत्रकी उत्कृष्ट जीवा $\frac{२७४९५४}{१९}$ — $\frac{२०३६९१}{१९}$ लघु जीवा) × $\frac{१}{२}$] = $\frac{७१२६३}{१९}$ × $\frac{१}{२}$ = १८७५ $\frac{१३}{३८}$ योजन भरतक्षेत्रकी चूलिकाका प्रमाण है।

भरतक्षेत्रकी पार्श्वभुजाका प्रमाण—

एक्क - सहस्सट्ठ - सया, बाणउदी जोयणाणि भागा वि ।
पण्णरसद्धं एसा, भरहक्खेत्तस्स पस्स - भुजा ।।१९७।।

१८९२ । $\frac{१५}{३८}$ [१] ।

अर्थ:—भरतक्षेत्रकी पार्श्वभुजा एक हजार आठसौ बानवै योजन और एक योजनके उन्नीस भागोंमेंसे पन्द्रहके आधे अर्थात् साढ़े सात भाग (१८९२ $\frac{१५}{३८}$ यो०) प्रमाण है ।।१९७।।

विशेषार्थ:—(भरतक्षेत्रका उत्कृष्ट धनुष $\frac{२७६०४३}{१९}$ — $\frac{२०४१३२}{१९}$ लघु ध०) × $\frac{१}{२}$ = $\frac{७१९११}{१९}$ × $\frac{१}{२}$ = १८९२ $\frac{१५}{३८}$ योजन भरतक्षेत्रकी पार्श्वभुजाका प्रमाण है।

[तालिका नं० ५ अगले पृष्ठ पर देखिये]

---

१. द. ज. य. $\frac{१५}{१९}$ ।

तालिका ५

भरतक्षेत्र और विजयार्ध के व्यास, जीवा, धनुष, चूलिका तथा पार्श्वभुजाका प्रमाण

क्र०	नाम	व्यास	उत्तर-जीवा	दक्षिण-जीवा	उत्तर धनुष	दक्षिण धनुष	चूलिका	पार्श्वभाग
१	भरतक्षेत्र	५२६ ६/१९ यो०	(गा० १९४) १४४७१ ५/१९ यो०	१०७२० ११/१९ यो०	(गा० १९५) १४५२८ ११/१९ यो०	१०७४३ १५/१९ यो०	(गाथा १९६) १८७५ १३/१९ यो०	(गा. १९७) १८९२ १५/३८ यो०
२	विजयार्ध	(गा० १८१) ५० यो०	(गा० १८८) १०७२० ११/१९ यो०	(गा० १८६) ९७४८ १२/१९ यो०	(गा० १८९) १०७४३ १५/१९ यो०	(गा० १८७) ९७६६ १/१९ यो०	(गा० १९१) ४८५ ३७/३८ यो०	(गा० १९३) ४८८ ३३/३८ यो०

पद्म-द्रहका विस्तार—

हिमवंताचल - मज्झे, पउम-द्दहो पुव्व - पच्छिमायामो ।
पण - सय - जोयण - रुंदो, तद्दुगुणायाम - संपुण्णो ।।१६८।।

५०० । १००० ।

अर्थ :—हिमवान् पर्वतके मध्यमें पूर्व-पश्चिम लम्बा पद्मसरोवर है। जो पांच सौ योजन विस्तार और इससे दुगुने आयामसे सम्पन्न है। अर्थात् ५०० योजन चौड़ा और १००० योजन लम्बा है ।।१६८।।

दस - जोयणावगाहो, चउ - तोरण-वेदियाहि संजुत्तो ।
तस्सि पुव्व - दिसाए, णिग्गच्छदि णिम्मगा गंगा ।।१६९।।

अर्थ :—यह द्रह दस योजन गहरा और चार तोरण एवं वेदिकाओंसे संयुक्त है। इसकी पूर्व दिशासे गंगा नदी निकलती है ।।१६९।।

उद्गम स्थानमें गंगाका विस्तार—

छज्जोयणेक्क-कोसा, णिग्गद-ठाणम्मि होदि [1]वित्थारो ।
गंगा - [2]तरंगिणीए, [3]उच्छेहो कोस - दल - मेत्तो ।।२००।।

जो ६ । को १ । को $\frac{1}{2}$ ।

अर्थ :—उद्गम स्थानमें गंगानदीका विस्तार छह योजन, एक कोस ($6\frac{1}{4}$ यो०) और ऊँचाई आधा ($\frac{1}{2}$) कोस प्रमाण है ।।२००।।

तोरणका विस्तार—

गंगा - णईए णिग्गम, ठाणे चिट्ठेदि तोरणो दिव्वो ।
णव - जोयणाणि तुंगो, दिवड्ढ - कोसादिरित्तो य ।।२०१।।

९ । $\frac{3}{2}$ ।

---

१. क. ज. य. उ. वित्थारा । २. द. क. ज. य. उ. तरंगणीए । ३. द. क. ज. य. उ. उच्छेदो ब. उच्चेदो ।

अर्थ :—गंगा नदीके निर्गम स्थानमें नौ योजन और डेढ़ कोस अर्थात् ९$\frac{3}{8}$ योजन ऊँचा दिव्य तोरण है ।।२०१।।

तोरण-स्थित जिनप्रतिमाएँ—

चामर - घंटा - किंकिणि-वंदण-मालासएहिं[1] कयसोहा ।
भिगार - कलस - दप्पण - पूजण - दव्वेहिं रमणिज्जा ।।२०२।।

रयणमय-थंभ-जोजिद-विचित्त-वर-सालभंजिया[2]- रम्मा ।
वज्जिदणील - मरगय - कक्केयण - पउमराय - जुदा ।।२०३।।

ससिकंत - सूरकंत - प्पमुह -[3]मयूखेहिं णासिय-तमोघा ।
लंबंत[4]- कणयदामा[5], अणादि - णिहणा [6]अणुवमाणा ।।२०४।।

छत्त-त्तयादि-सहिदा, वर रयणमईओ फुरिद-किरणोघा ।
सुर-खेयर-महिदाओ, जिण-पडिमा तोरणुवरि णिवसंति ।।२०५।।

अर्थ :—इस तोरणपर चामर, घण्टा, किंकिणी (क्षुद्र घण्टिका) और सैकड़ों वन्दन-मालाओंसे शोभायमान; भारी, कलश, दर्पण तथा पूजा-द्रव्योंसे रमणीय; रत्नमय स्तम्भोंपर नियोजित विचित्र और उत्तम पुत्तलिकाओंसे सुन्दर; वज्र, इन्द्रनील, मरकत, कर्केतन एवं पद्मराग मणियोंसे युक्त; चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त प्रमुख मणियोंकी किरणोंसे अंधकार समूहको नष्ट करनेवाली; लटकती हुई स्वर्णमालाओंसे सुशोभित, अनादि-निधन, अनुपम, छत्र-त्रयादि सहित, उत्तम रत्नमय, प्रकाशमान किरणोंके समूहसे युक्त और देवों एवं विद्याधरोंसे पूजित जिनप्रतिमाएं विराजमान हैं ।।२०२–२०५।।

प्रासाद एवं दिक्कन्या देवियाँ—

तम्हि सम-भूमि-भागे, पासादा विविह-रयण-कणयमया ।
वज्ज - कवाडेहिं जुदा, चउ - तोरण - वेदिया - जुत्ता ।।२०६।।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. मालासहेइ । २. द. ब. क. उ. सालभद्दियारम्मो । ३. द. ब. क. ज. य. उ. मईखेहिं । ४. द. ब. क. ज. उ. लंबद । ५. क. ज. य. उ. कणयदामो । ६. क. ज. य. उ. अणुवमाणो ।

अर्थ:—वहाँ समभूमिभागमें विविधरत्नों एवं स्वर्णसे निर्मित वज्रमय कपाटों तथा चार तोरण एवं वेदिकासे युक्त प्रासाद हैं ॥२०६॥

एदेसु मंदिरेसुं, होंति दिसा - कण्णयाओ देवीओ ।
बहु - परिवाराणुगदा[1], णिरुवम - लावण्ण - रूवाओ ॥२०७॥

अर्थ :—इन प्रासादोंमें बहुत परिवारसे युक्त और अनुपम लावण्य-रूपको प्राप्त दिक्कन्या देवियाँ (रहतीं) हैं ॥२०७॥

कमलाकार कूट आदिका वर्णन—

पउम - दहादु दिसाए, पुव्वाए थोव - भूमिमेत्तम्मि ।
गंगा - णईण मज्झे, उब्भासदि पउम - णिहो कूडो ॥२०८॥

अर्थ :—पद्मद्रहसे पूर्व दिशामें थोड़ीसी भूमिपर गंगा नदीके बीचमें कमलके सदृश कूट प्रकाशमान है ॥२०८॥

वियसिय - कमलायारो, रम्मो वेरुलिय-णाल-संजुत्तो ।
तस्स दला [2]अइरत्ता, पत्तेक्कं कोस - दलमेत्तं ॥२०९॥

अर्थ :— खिले हुए कमलके आकारवाला वह रमणीय कूट वैडूर्य (मणि) की नालसे संयुक्त है। उसके पत्ते अत्यन्त लाल हैं। उनमेंसे प्रत्येकका विस्तार अर्ध ($\frac{1}{2}$) कोस प्रमाण है ॥२०९॥

सलिला दु उवरि उदओ, एक्कं कोसं हुवेदि एदस्स ।
दो कोसा वित्थारो, चामीयर - केसरेहि संजुत्तो ॥२१०॥

अर्थ :—पानीसे ऊपर इसकी ऊँचाई एक कोस तथा विस्तार दो कोस है। यह कमल स्वर्णमय परागसे संयुक्त है ॥२१०॥

इगि - कोसोदय - रुंदो, रयणमई तस्स कण्णिया होदि ।
तीए उवरिं चेट्ठदि, पासादो मणिमओ दिव्वो[3] ॥२११॥

---

१. ब. मदा। २. द. ब. क. ज. य. उ. अहिरत्तो। ३. द. ज. उ. दिव्वा।

अर्थ :—उस कमलाकार कूटकी रत्नमय-कर्णिका एक कोस ऊँची और इतने ही (एक कोस) विस्तारसे युक्त है। उसके ऊपर मणिमय दिव्य भवन स्थित है ।।२११।।

तप्पासादे[1] णिवसदि, वेंतरदेवी बलेत्ति विक्खादा[2] ।
[3]एक्क - पलिदोवमाऊ, बहु - परिवारेहि संजुत्ता ।।२१२।।

अर्थ :—उस भवनमें बला (इस) नामसे प्रसिद्ध, एक पल्योपम आयुवाली और बहुत परिवारसे युक्त व्यन्तर देवी निवास करती है ।।२१२।।

गंगा नदीका वर्णन—

एवं पउम - दहादो, पंच - सया जोयणाणि गंतूणं ।
गंगा-कूडमपत्ता[4], जोयण - अद्धेण दक्खिणावलिया ।।२१३।।

अर्थ :—इस प्रकार गङ्गा नदी पद्मद्रहसे पाँचसौ योजन आगे जाकर और गंगाकूट तक न पहुंचकर उससे अर्ध योजन पहिले ही दक्षिण की ओर मुड़ जाती है ।।२१३।।

चुल्ल - हिमवंत - रुंदे, णदि-रुंदं[5] सोधिदूण अद्धकदे ।
दक्खिण - भागे पव्वद - उवरिम्मि हवेदि णइ - दीहं ।।२१४।।

अर्थ :—क्षुद्र हिमवान्‌के विस्तारमेंसे नदीके विस्तारको घटाकर अवशिष्टको आधा करने पर दक्षिण भागमें पर्वतके ऊपर नदीकी लम्बाईका प्रमाण प्राप्त होता है ।।२१४।।

विशेषार्थ :—हिमवान् पर्वतका विस्तार $१०५२\frac{१२}{१९}$ योजन है और नदीका विस्तार $६\frac{१}{४}$ योजन है। पर्वतके विस्तारमेंसे नदीका विस्तार घटाने पर ($\frac{२००००}{१९} - \frac{२५}{४}$) $= \frac{७९५२५}{७६}$ योजन अवशेष रहे। इनको आधा करनेपर ($\frac{७९५२५}{७६ \times २}$) $= ५२३\frac{२९}{१५२}$ योजन हिमवान् पर्वतके ऊपर दक्षिण-भागमें गंगा नदीकी लम्बाईका प्रमाण प्राप्त होता है।

पंच - सया तेवीसं, अट्ठहदा[6] ऊणतीस - भागा य ।
दक्खिणदो आगच्छिय, गंगा गिरि - जिब्भियं पत्ता ।।२१५।।

। ५२३ । $\frac{२९}{१९}$ । ८ ।[7]

---

१ द. ब. क, ज. उ. तप्पासादा। २. द. ब. क. ज. उ. विक्खादो। ३. ब. एक्का। ४. द. ब. क. ज. उ. मपत्तो। ५. द. रुंदस्सोधिदूण। ६. द. अट्ठहिदा, ब. क. ज. य. उ. अट्ठाहिदा। ७. ब. $\frac{२१}{१९}$ ।

अर्थ :—पांचसौ तेईस योजन और आठसे गुणित (उन्नीस) अर्थात् एकसौ बावनमेंसे उनतीस भाग $\left(\frac{१०५२\frac{१२}{१९} - ६\frac{१}{४}}{२} = ५२३\frac{२९}{१५२}\right.$ योजन) प्रमाण दक्षिणसे आकर गङ्गा नदी पर्वतके तटपर स्थित जिह्विकाको प्राप्त होती है ॥२१५॥

हिमवंत-अंत-मणिमय-वर-कूड-मुहम्मि वसह - रूवम्मि ।
पविसिय णिवडइ [1]धारा, दस-जोयण-वित्थरा य ससि-धवला ॥२१६॥

अर्थ :—हिमवान् पर्वतके अन्तमें वृषभाकार मणिमय उत्तम कूटके मुखमें प्रवेशकर गंगाकी चन्द्रमाके समान धवल और दस योजन विस्तारवाली धारा नीचे गिरती है ॥२१६॥

छज्जोयणेक्क - कोसा, पणालियाए हवेदि विक्खंभो[2] ।
[3]आयामो बे कोसा, तेत्तियमेत्तं[4] च बहलत्तं ॥२१७॥

॥ ६ । को १ । को २ । को २ ॥

अर्थ :– उस प्रणालीका विस्तार छह योजन और एक कोस ($६\frac{१}{४}$ योजन), लम्बाई दो कोस और बाहुल्य भी इतना (दो कोस) ही है ॥२१७॥

[5]सिंग-मुह-कण्ण-जीहा-लोयण-भूवादिएहि[6] गो-सरिसो ।
वसहो त्ति तेण भण्णइ, रयणमई जीहिया तत्थ ॥२१८॥

अर्थ:—वह प्रणाली सींग, मुख, कान, जिह्वा, लोचन (नेत्र) और भृकुटि आदिकसे गौके सदृश है, इसीलिए उस रत्नमय जृम्भिकाको "वृषभ" कहते हैं ॥२१८॥

पणुवीस[7] जोयणाणि, हिमवंते तत्थ [8]अंतरेदूणं ।
दस - जोयण - वित्थारे, गंगा -[9]कुंडम्मि णिवडदे गंगा ॥२१९॥

अर्थ :—वहाँ पर गंगा नदी हिमवान् पर्वतको पच्चीस योजन छोड़कर दस योजन विस्तार वाले गङ्गाकुण्डमें गिरती है ॥२१९॥

---

१. क. अ. द. य. उ. दारा । २. क. अ. य. उ. विक्खंभा । ३. क. ब. य. उ. आयामा । ४. ब. क. उ. तत्तियमेत्तं । ५. अ. य. सिंह । ६ द. ब. क. ज. य. उ. भूदाओएहि वासरिसो । ७. द. पण- वीस । ८. क. ज. य. उ. अंतरेदूण । ९. द. ब, क. ज. य. उ. कूडम्मि ।

पणुवीस - जोयणाइं, धाराए[1] मुहम्मि होदि [2]विक्खंभो ।
[3]सग्गायणि - कत्तारो, एवं णियमा परूवेदि ॥२२०॥

। २५ ।

पाठान्तरं ।

अर्थ :—धाराके मुखमें गंगा नदी का विस्तार पच्चीस योजन है । सग्गायणीके कर्ता इस (प्रकार) नियमसे निरूपण करते हैं ॥२२०॥

पाठान्तर ।

गंगाकुण्डका विस्तार आदि—

जोयण - सट्ठी - रुंदं, समवट्टं अत्थि तत्थ वर-कुंडं ।
दस - जोयण - उच्छेहं[4], मणिमय - सोवाण-सोहिल्लं ॥२२१॥

। ६० । १० ।

अर्थ :—वहाँ पर साठ योजन विस्तार वाला, समवृत्त (गोल), दस-योजन गहरा और मणिमय सीढ़ियोंसे शोभायमान उत्तम कुण्ड है ॥२२१॥

बासट्ठि जोयणाइं, दो कोसा होदि कुंड - वित्थारो ।
सग्गायणि - कत्तारो, एवं णियमा णिरूवेदि ॥२२२॥

। ६२ । को २ ।

पाठान्तरं ।

अर्थ :—उस कुण्डका विस्तार बासठ योजन और दो कोस (६२½ यो०) है, सग्गायणीके कर्ता इस (प्रकार) नियमसे निरूपण करते हैं ॥२२२॥

पाठान्तर ।

---

१. क. दाराए, ध. ब. उ. दाराप । २. क. ज. य. उ. विक्खंभा । ३. द. सम्माणि कत्ताणय-वण्णिव मा । य. संगामाणे कत्तारो । ब. क. ज. उ. सम्माणिकत्ताणय । ४. द. क. ब. य. उ. उच्छेहं ।

द्वीप वर्णन —

चउ-तोरण-वेदि-जुदो, सो कुंडो तस्स होदि बहुमज्झे ।
दीवो रयण-विचित्तो, चउ-तोरण-वेदियाहि कयसोहो[1] ।।२२३।।

अर्थ :— वह कुण्ड चार तोरण और वेदिकासे युक्त है। उसके बहुमध्यभागमें रत्नोंसे विचित्र और चार तोरण एवं वेदिकासे शोभायमान एक द्वीप है ।।२२३।।

दस-जोयण-उच्छेहो, सो जल-मज्झम्मि अट्ठ-वित्थारो[2] ।
जल-उवरिं दो कोसो, तम्मज्झे होदि वज्जमय-सेलो[3] ।।२२४।।

। १० । ८ । को २ ।

अर्थ :—वह द्वीप जलके मध्यमें दस योजन ऊँचा और आठ योजन विस्तार वाला तथा जलके ऊपर दो कोस (ऊँचा) है। इसके बीचमें एक वज्रमय शैल स्थित है ।।२२४।।

शैल एवं उसके ऊपर स्थित प्रासादका वर्णन—

मूले मज्झे उवरिं, चउ-दुग-एक्का कमेण वित्थिण्णो[4] ।
दस-जोयण-उच्छेहो, चउ-तोरण-वेदियाहि कयसोहो[5] ।।२२५।।

। ४ । २ । १ । १० ।

अर्थ :—उस (शैल) का विस्तार मूलमें चार योजन, मध्यमें दो योजन और ऊपर एक योजन है। वह दस योजन ऊँचा और चार तोरण एवं वेदिकासे शोभायमान है ।।२२५।।

तप्पव्वदस्स उवरिं, बहुमज्झे होदि दिव्व - पासादो[6] ।
वर - रयण - कंचणमओ, गंगाकुंडोत्ति णामेण ।।२२६।।

अर्थ :—उस पर्वतके ऊपर बहुमध्यभागमें उत्तम रत्नों एवं स्वर्णसे निर्मित और गंगाकूट नामसे प्रसिद्ध एक दिव्य प्रासाद है ।।२२६।।

चउ - तोरणेहि जुत्तो, वर-वेदी-परिगदो[7] विचित्तयरो ।
बहुविह - जंत[8] - सहस्सो, सो पासादो णिरुवमाणो ।।२२७।।

---

१. क. ज. उ. सोहा। २. क. ज. य. उ. वित्थारा। ३. क. ज. य. उ. सेला। ४. क. ब. य. उ. वित्थिण्णा। ५. क. ज. उ. सोहा। ६ क. ज. ब. उ. पासादा। ७ द. ब क ज. य. उ. परिगदो। ८. क. ज. य. उ. जत्त।

अर्थ :—वह प्रासाद चार तोरणोंसे युक्त, उत्तम वेदीसे वेष्टित, अतिविचित्र, बहुत प्रकारके हजारों यंत्रों सहित और अनुपम है ।।२२७।।

मूले मज्झे उवरिं, ति-दु-[1]-एक्क-सहस्स-दंड-वित्थारो ।
दोण्णि - सहस्सोत्तुंगो, सो दीसदि कूड - संकासो ।।२२८।।

। ३००० । २००० । १००० । २००० ।

अर्थ:—वह प्रासाद मूलमें तीन (३०००) हजार, मध्यमें दो (२०००) हजार और ऊपर एक (१०००) हजार धनुष प्रमाण विस्तार युक्त है तथा दो (२०००) हजार धनुष प्रमाण ऊँचा होता हुआ कूट सदृश दिखता है ।।२२८।।

तस्सब्भंतर - रुंदो[2], पण्णासब्भहिय - सत्त - सय-दंडा ।
चालीस - चाव - वासं, असीदि - उदयं च तद्दारं ।।२२९।।

७५० । ४० । ८० ।

अर्थ :—उसका अभ्यन्तर विस्तार सातसौ पचास (७५०) धनुष है तथा द्वार चालीस धनुष विस्तारवाला एवं अस्सी धनुष ऊँचा है ।।२२९।।

[तालिका ६ अगले पृष्ठ पर देखिये]

---

१ द. ब क. ज. य. उ. दुमेक्क । २. ब. ब. रुंदो ।

तालिका : ६

गंङ्गा-सिन्धु नदियोंसे सम्बन्धित प्रणाली, कुण्ड एवं द्वीप आदिके विस्तार आदि की तालिका—

गा० २१७-२२६

प्रणालिका का			पर्वतों के मूल में स्थित कुण्डों की		कुण्डों के मध्य स्थित द्वीपों की			द्वीपोंके मध्य स्थित पर्वतों की				पर्वतोंके ऊपर स्थित प्रासादों की					प्रासाद द्वारों की	
									व्यास				व्यास					
विस्तार	लम्बाई	बाहल्य	चौड़ाई	ऊँचाई	जलके मध्यमें ऊँचाई	विस्तार	जलके ऊपर ऊँचाई	ऊँचाई	मूलमें	मध्यमें	ऊपर	ऊँचाई	मूलमें	मध्य में	ऊपर	अभ्यन्तर में	ऊँचाई	विस्तार
६¼ योजन	½ योजन	½ योजन	६० योजन	१० योजन	१० योजन	८ योजन	½ योजन	१० योजन	४ योजन	२ योजन	१ योजन	२००० धनुष	३००० धनुष	२००० धनुष	१००० धनुष	७५० धनुष	८० धनुष	४० धनुष

मणि-तोरण-रमणिज्जं, वर-वज्ज-कवाड-जुगल-सोहिल्लं ।
णाणाविह - रयणपहा - णिच्चुज्जोयं विराजदे दारं ।।२३०।।

अर्थ :—उसका द्वार मणिमय तोरणोंसे रमणीय, उत्तम वज्रमय दो कपाटोंसे शोभायमान और अनेक प्रकारके रत्नोंकी प्रभासे नित्य प्रकाशमान होता हुआ सुशोभित है ।।२३०।।

वर-वेदि-परिक्खित्ते, चउ-गोउर-[1]मंडितम्मि पासादे ।
रम्मुज्जाणे[2] तस्सि[3], गंगादेवी सयं वसइ ।।२३१।।

अर्थ :-उत्तम वेदीसे वेष्टित, चार गोपुरोंसे सुशोभित तथा रमणीय उद्यानसे युक्त उस भवनमें स्वयं गङ्गादेवी रहती है ।।२३१।।

गंगाकूट पर स्थित जिनेन्द्र प्रतिमाका स्वरूप—

भवणोवरि कूडम्मि य, जिणिंद-पडिमाओ[4] सासद-ठिदीओ[5] ।
चेट्ठंति किरण - मंडल - उज्जोइद - सयल - आसाओ[6] ।।२३२।।

अर्थ :—उस भवनके ऊपर कूटपर किरण-समूहसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करनेवाली और शाश्वत स्थितिवाली अर्थात् अकृत्रिम जिनेन्द्र प्रतिमाएँ स्थित हैं ।।२३२।।

आदि-जिणप्पडिमाओ, ताओ जडा-मउड-सेहरिल्लाओ[7] ।
पडिमोवरिम्मि गंगा, [8]अभिसित्तु - मणा व सा पडदि ।।२३३।।

अर्थ :—आदि जिनेन्द्रकी वे प्रतिमाएँ जटा-मुकुटरूप शेखर सहित हैं। इन प्रतिमाओंपर वह गंगानदी मानो मनमें अभिषेककी भावना रखती हुई (ही) गिरती है ।।२३३।।

[चित्र अगले पृष्ठ पर देखिये]

---

१ द. मदरम्मि । २ क. ज. य. उ. रम्मुज्जाण । ३. क. ज. य. उ. तासे । ४. द. ब. क. उ. पडिमादि । ५. द. क. ज. रिदीओ, ब. उ. रदीउ । ६. द. यसओ, क. ब. ज. उ. दिसओ । ७. द. तोओजद मउड पासेह रिल्लाओ । ब. क. य. ज. उ. तोउज्जद मउड पासेह रिल्लाओ । ८. द. क. ज. य. अभिसित्तुमणप्पसा, ब. उ अभिसत्तूमणप्पमा ।

[1]पुप्फिद-पंकज-पीढा[2], कमलोवर-सरिस-वण्ण-वर-देहा ।
पढम-जिणप्पडिमाओ, [3]भजंति जे ताण देंति णिव्वाणं ।।२३४।।

---

१ द. ब. क. अ. य. उ. पुव्विद । २. ज. य. उ. पीढा । ३. द. क. ज. य. सरंति ।
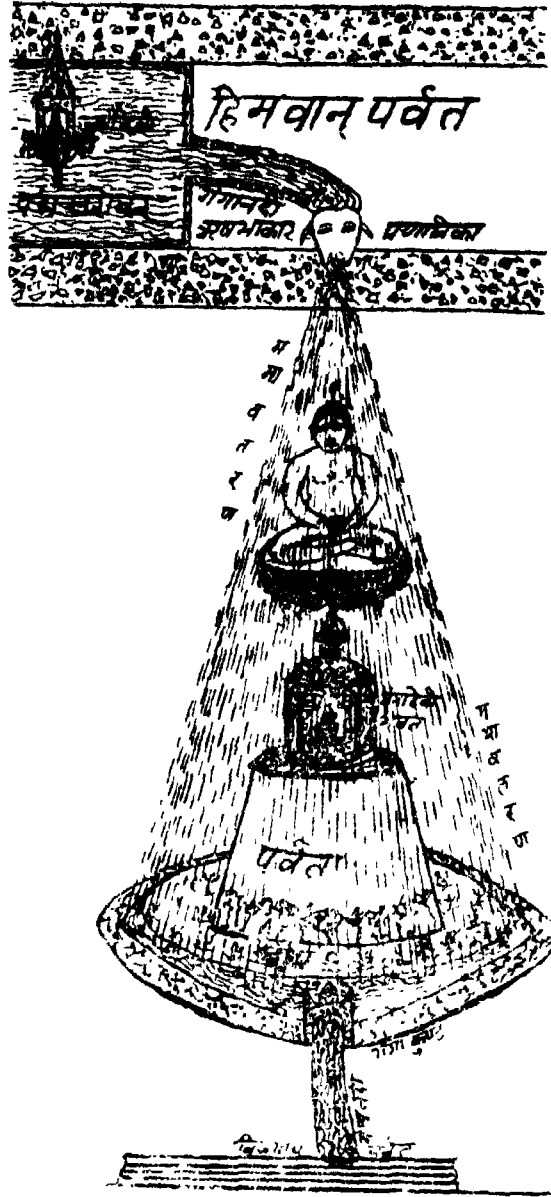
अर्थ :—आदि जिनेन्द्रकी वे प्रतिमाएँ खिले हुए कमलासनपर विराजमान हैं और कमलके उदर (मध्यभाग) सदृश वर्णवाले उत्तम शरीरसे युक्त हैं। जो (भव्य जीव) इनकी उपासना करते हैं उन्हें ये निर्वाण प्रदान करती है ॥२३४॥

गङ्गानदीका अवशेष वर्णन –

कुंडस्स दक्खिणेणं, तोरण - दारेण [1]णिग्गदा गंगा।
भूमि - विभागे [2]वक्का, होदूण गदा य रजदगिरिं ॥२३५॥

अर्थ :—गंगानदी इस (गंगा) कुण्डके दक्षिण तोरणद्वारसे निकलती हुई और भूमि-प्रदेशमें मुड़ती हुई रजतगिरि (विजयार्ध) को प्राप्त हुई है ॥२३५॥

रम्माआरा[3] गंगा, संकुलिदूणं पि दूरदो[4] एसा।
विजयड्ढगिरि-गुहाए, [5]पविसदि [6]खिदी - बिले भुजंगी ॥२३६॥

अर्थ :—यह रम्याकार गङ्गानदी दूरसे ही संकुचित होती हुई विजयार्ध पर्वतकी गुफामे इसप्रकार प्रवेश करती है जैसे भुजंगी (सर्पिणी) क्षितिबिल (बांवी) में (प्रवेश करती है) ॥२३६॥

गंगा - तरंगिणीए, [7]उभयत्तड - वेदियाण वण - संडा।
अत्तुट्ट - सरूवेणं, [8]संपत्ता रजद - सेलंतं ॥२३७॥

अर्थ :—गङ्गानदीकी दोनों ही तट-वेदियों पर स्थित वन-खण्ड अखण्डरूपसे रजत (विजयार्ध) पर्वत तक चले गये हैं ॥२३७॥

वर - वज्ज - कवाडाणं, संवरण - पवेसणाइ मोत्तूण।
सेस - गुहब्भंतरये, गंगा - तड - वेदि - वण - संडा ॥२३८॥

अर्थ :—उत्तम वज्रमय कपाटोंके संवरण और प्रवेशभागको छोड़कर गङ्गातटवेदी सम्बन्धी शेष वन खण्ड गुफाके भीतर हैं ॥२३८॥

---

१ य. णिग्गता। २ क. ज. य. उ. वक्को। ३. ब. उ. रम्मायाए, क. ज. य. रम्मायारा। ४. क. ज. य उ. दूरिदो। ५. द ब. क ज. उ. परिसदि। ६. द. ब. क. ज. य. उ. भेदाभिलेभुजगिद्दं। ७. द क. ज. य. उ उभयतर। ८ द. ब. क. ज. उ. सपत्तं, य समत्त।

रूप्पगिरिस्स[1] गुहाए, गमण - पवेसम्मि होदि वित्थारो ।
गंगातरंगिणीए, अट्ठं चिय जोयणाणि पुढं ।।२३९।।

अर्थ :—रूप्याचल (विजयार्ध) की गुफामें प्रवेश करनेके स्थानपर गङ्गानदीका विस्तार आठ योजन प्रमाण हो जाता है ।।२३९।।

उन्मग्ना-निमग्ना नदियोंका स्वरूप—

विजयड्ढगिरि - गुहाए[2], संगंतूणं जोयणाणि पणुवीसं[3] ।
पुव्वावरायदाओ[4], उम्मग्ग - णिमग्ग - [5]सरिआओ ।।२४०।।

अर्थ :—विजयार्ध पर्वतकी गुफामें पच्चीस योजन जाने पर उन्मग्ना और निमग्ना ये दो नदियाँ पूर्व-पश्चिमसे आई हुई हैं ।।२४०।।

णिय-जलपवाह-पडिदं, दव्वं [6]गरुवं पि णेदि उवरितडं ।
जम्हा तम्हा भण्णइ, उम्मग्गा वाहिणी एसा ।।२४१।।

अर्थ:— क्योंकि यह नदी अपने जलप्रवाहमें गिरे हुए भारीसे भारी द्रव्यको भी ऊपरी तटपर ले आती है, इसलिए यह नदी 'उन्मग्ना' कही जाती है ।।२४१।।

णिय-जल-भर-उवरि[7]-गदं, दव्वं लहुगं पि णेदि हेट्ठम्मि ।
जेणं तेणं भण्णइ, एसा सरिया णिमग्ग त्ति ।।२४२।।

अर्थ :— क्योंकि यह अपने जलप्रवाहके ऊपर आई हुई हलकीसे हलकी वस्तुको भी नीचे ले जाती है, इसीलिए यह नदी 'निमग्ना' कही जाती है ।।२४२।।

---

१. ज. य. गिरि । २. द. क. ज. य. गुहासु गंतूणं । ३. ज. क. य. पणवीस, उ. पुणुवीस । ४. ब. पुव्वावरा एादाओ, क. पुव्वावराण वाओ । ५. य. ब. सरियाओ । ६. क. गरुवं पि णोइ उवरिंमि । ज. गरुवं मि णेदि उवरिंमि । य. गुरुवम्मि णेदि उवरम्मि । उ. गरुवं पिणो उवरिंमि । ७. ज. य. पवाह-पडिद ।

सेल - गुहा - कुंडाणं, मणि - तोरणदार णिस्सरंतीओ ।
वड्ढइ[1]-रयण-विणिम्मिय-संकम-पहुदीअ [2]विरियण्णा ॥२४३॥

वण - वेदी - परिखित्ता, पत्तेक्कं दोण्णि जोयणायामा ।
वर - रयणमया गंगा - णईए पवहम्मि पविसंति ॥२४४॥

अर्थ :—(ये दोनों नदियाँ) पर्वतीय गुफा-कुण्डोंके मणिमय तोरण द्वारोंसे निकलती हुई बढ़ई (स्थपति) रत्नसे निर्मित संक्रम (एक प्रकारके पुल) आदिसे विभक्त, वन-वेदीसे वेष्टित, प्रत्येक (नदी) दो योजन प्रमाण आयाम सहित और उत्कृष्ट रत्नोंसे युक्त होती हुई गंगानदीके प्रवाहमें प्रवेश करती है ॥२४३-२४४॥

गंगाका विजयार्धसे निकलकर समुद्रप्रवेश आदि—

पण्णास - जोयणाइं, अहियं गंतूण पव्वय - गुहाए ।
दक्खिण - दिस - दारेणं, [3]खुभिदा भोगीव - णिग्गदा गंगा ॥२४५॥

अर्थ :—गङ्गानदी पचास योजन अधिक जाकर पर्वतकी गुफाके दक्षिण दिशाके द्वारसे क्रोधित हुए सर्पके सदृश निकलती है ॥२४५॥

णिस्सरिदूणं [4]एसा, दक्खिण-भरहम्मि [5]रुप्प-सेलादो ।
उणवीसब्भहिय - सयं, आगच्छदि जोयणा अहिया ॥२४६॥

। ११९ । $\frac{३}{३८}$ ।

अर्थ :—यह नदी विजयार्ध पर्वतसे निकलकर एकसौ उन्नीस योजनोंसे कुछ अधिक दक्षिण-भरतमें आती है ॥२४६॥

विशेषार्थ :—भरतक्षेत्रका प्रमाण ५२६ $\frac{६}{१९}$ योजन है। इसमेंसे ५० योजन विजयार्धका व्यास घटा देनेपर (५२६ $\frac{६}{१९}$ — ५०)=४७६ $\frac{६}{१९}$ योजन अवशेष रहे। इसको आधा करनेपर (४७६ $\frac{६}{१९}$ ÷ २)=२३८ $\frac{३}{१९}$ योजन दक्षिण भरतक्षेत्रका प्रमाण प्राप्त होता है। गङ्गानदी विजयार्धकी गुफासे निकलकर दक्षिण भरतके अर्धभाग पर्यन्त आई है अतः (२३८ $\frac{३}{१९}$ ÷ २) = ११९ $\frac{३}{३८}$ योजन आकर ही पूर्व दिशामें मुड़ जाती है।

---

१. द. वत्थ (च्च) इ, क ज. ठ. वट्टइ। २. क. ज. य. उ. विच्छिण्णा। ३. य. खुसिदा। ४. द. क. ज. य. एसो। ५. द. ब. क. ज. य उ. रुंद।

आगंतूण [1]णियंते, पुव्व[2] - मुहे [3]मागहम्मि तित्थयरे ।
चोद्दस - सहस्स - सरिया - परिवारा पविसदे [4]उवहि ॥२४७॥

अर्थ :—इस प्रकार गङ्गानदी दक्षिण भरतमें आकर और पूर्वकी ओर मुड़कर चौदह हजार प्रमाण परिवार नदियोंसे युक्त होती हुई अन्ततः मागध तीर्थपर समुद्रमें प्रवेश करती है ॥२४७॥

गंगा - महाणदीए, अड्ढाइज्जेसु मेच्छ - खंडेसु ।
कुंडज-सरि[5]-परिवारा, हुवंति ण हु [6]अज्ज-खंडम्मि ॥२४८॥

अर्थ :—कुण्डोंसे उत्पन्न हुई गङ्गा महानदीकी (ये) परिवार नदियाँ ढाई म्लेच्छखण्डोंमें ही हैं, आर्यखण्डमें नहीं हैं ॥२४८॥

बासट्ठि जोयणाइं, दोण्णि य कोसाणि वित्थरा गंगा ।
पण कोसा [7]गाढत्तं, उवहि - पवेसप्पदेसम्मि ॥२४९॥

अर्थ :—समुद्र-प्रवेशके प्रदेशमें गङ्गाका विस्तार बासठ-योजन दो-कोस (६२½ यो०) और गहराई पांच कोस हो जाती है ॥२४९॥

तोरणोंका सविस्तार वर्णन—

दीव-जगदीअ पासे, णइ-बिल[8]-वदणम्मि तोरणं दिव्वं ।
विविह-वर-रयण-खचिदं, खंभट्ठिय-सालभंजिया-णिवहं ॥२५०॥

अर्थ :—द्वीपकी वेदीके पास नदीबिलके मुखपर अनेक प्रकारके उत्तमोत्तम रत्नोंसे खचित और खम्भोंपर स्थित पुत्तलिकासमूहसे युक्त दिव्य तोरण है ॥२५०॥

थंभाणं उच्छेहो, तेणउदी जोयणाणि तिय कोसा ।
एदाण अंतरालं, बासट्ठी जोयणा [9]दुवे कोसा ॥२५१॥

। यो ९३ । को ३ । ६२ । को २ ।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. णियंतो । २. द. ब. क. ज. य. पुव्वमही । ३. य. ज. मागधम्मि । ४. द. उवरि । ५. य. ज. सरिस । ६. क. ज. य. उ. वज्ज । ७. द. आगाढत्तं । ८. ब. उ. णइ-बिदवदणम्मि । य. णइ-बिलवणणम्मि । ९. द. दुरे कोसो । क. दुरे कोसा, ज. य. दुरे कोसे, ब. पुरे कोसो, उ. पुरे कोसा ।

अर्थ :—स्तम्भोंकी ऊँचाई तेरानबै योजन और तीन कोस (९३ $\frac{३}{४}$ यो०) तथा इनका अन्तराल बासठ योजन और दो कोस (६२ $\frac{२}{४}$ यो०) है ॥२५१॥

छत्तत्तयादि-सहिदा[1], जिणिंद-पडिमाओ [2]तोरणुवरिम्मि ।
चेट्ठंति [3]सासदाओ, सुमरण - मेत्तेण दुरिद - हरा ॥२५२॥

अर्थ :—तोरण पर तीन छत्रादि (छत्र, भामण्डल और सिंहासन आदि) सहित तथा स्मरण मात्रसे ही पापोंका हरण करनेवाली जिनेन्द्र प्रतिमाएँ शाश्वतरूपमें स्थित हैं ॥२५२॥

वर-तोरणस्स उवरिं, पासादा होंति रयण-कणयमया ।
[4]चउ - तोरण - वेदि - जुदा, वज्ज-कवाडुज्जल-दवारा ॥२५३॥

अर्थ :—उत्कृष्ट तोरणके ऊपर चार तोरणों एवं वेदीसे युक्त तथा वज्रमय कपाटोंसे उज्ज्वल द्वार वाले रत्नमय और स्वर्णमय भवन हैं ॥२५३॥

एदेसु मंदिरेसुं, देवीओ दिक्कुमारि - णामाओ ।
णाणाविह - परिवारा, वेंतरियाओ [5]विरायंति ॥२५४॥

अर्थ :—इन भवनोंमें नानाप्रकारके परिवारसे युक्त दिक्कुमारी नामक व्यन्तरदेवियाँ विराजमान हैं ॥२५४॥

सिन्धु नदीका वर्णन—

पउम - [6]दहादो पच्छिम-दारेणं णिस्सरेदि सिंधु-णदी ।
तट्ठाण-वास-[7]गाढो, तोरण-पहुदीसु[8] सुरणइ-सरिच्छा ॥२५५॥

अर्थ :—सिन्धु नदी पद्मद्रहके पश्चिम द्वारसे निकलती है, इसके स्थानके विस्तार एवं अवगाह (गहराई) तथा तोरण आदिका कथन गङ्गानदीके सदृश है ॥२५५॥

---

१. द. क. ज. य. उ. सहिदो । २. य. उ. तोरणुवरिम्मि । ३. द. ब. क. ज. य. उ. सासभाओ । ४. द. ब. उ. चोतोरण । ५. ज. य. विराजंति । ६. द. ज. दहादु, य. दहाओ । ७. द. ब. रादी, क. ज. य. उ. रादो । ८. द. ब. पहुदीसुरणदि - सरिच्छा, क. ज. य. उ. पहुदी - सुरणदि - सारिच्छा ।

गंतूण थोवभूमिं[1], सिंधू - मज्झम्मि होदि वर - कूडो ।
विलसिय - कमलायारो, रम्मो वेरुलिय - णाल - जुदो ॥२५६॥

अर्थ :—थोड़ी दूर चलकर सिन्धु नदीके मध्यमें विकसित कमलके आकाररूप, रमणीय और वैडूर्यमणिमय नालसे युक्त एक उत्तम कूट (कमल) है ॥२५६॥

तस्स दला[2] अइरत्ता[3], दीह-जुदा[4] होंति कोस-दल-मेत्तं ।
[5]उच्छेहो सलिलादो, उवरि - पएसम्मि इगि-कोसो[6] ॥२५७॥

अर्थ :—जलके उपरिम भागमें इस कूटकी ऊँचाई एक कोस है । इसके पत्ते अत्यन्त लाल हैं एवं प्रत्येक पत्ता अर्ध कोस प्रमाण लम्बाईसे युक्त है ॥२५७॥

बे कोसा [7]वित्थिण्णो, [8]तेत्तिय-मेत्तोदएण संपुण्णो ।
वियसंत - पउम - कुसुमोवमाण - संठाण-सोहिल्लो[9] ॥२५८॥

अर्थ :—(उपर्युक्त) कमलाकार कूट दो कोस विस्तीर्ण है एवं इतनी ही (दो कोस) ऊँचाईसे परिपूर्ण यह कूट विकसित कमल-पुष्प सदृश आकारसे शोभायमान है ॥२५८॥

इगि-कोसोदय[10]-रुंदा, रयणमई [11]कण्णिया य अदिरम्मा ।
तीए उवरि विचित्तो, पासादो होदि रमणिज्जो ॥२५९॥

अर्थ :—उस कूटकी कर्णिका एक कोस ऊँची, एक कोस चौड़ी तथा रमणीय एवं रत्नमयी है । उसके ऊपर अद्भुत एवं अति रमणीय प्रासाद है ॥२५९॥

वर-रयण-कंचणमओ, फुरंत-किरणोघ-णासिय[12]तमोघो ।
सो उत्तुंगत्तोरण - दुवार-सुंदेर[13] - सुट्ठु - सोहिल्लो ॥२६०॥

---

१. य. भूमी । २. द. ब. क. ज. य. उ. तला । ३. ब. ज. क य. उ. अइरित्ता । ४. क. ज. य. उ. जुदो । ५. द. क. ज. य. उ. उच्छेहा । ६. द. क. उ. कोसा । य. ज. कोसं । ७. क. ज. य. उ. विच्छिण्णो । ८. ब. क. ज. उ. तत्तिय, य. तत्थिय । ९. ज. य. सोहिल्ला । १०. द. ब. कोसं बे, ज. य. उ. कोसंदय । ११. द. ब. क. उ. कण्णिया य धीरम्मा, ज. कण्णयाय धीरंमा, य. कणयमया कण्णिया य धीरम्मा । १२. द. पुंणासिअंतं, ब क. ज. उ. पणासिअंतमो, य. पुणासिअंतं । १३. द. ब. य. सुंदार, क. उ. संदर, ज. सुदरा ।

अर्थ :—उत्तम रत्नों एवं स्वर्णसे निर्मित, प्रकाशमान किरणोंसे युक्त तथा अंधकार समूहको नष्ट करने वाला यह प्रासाद उन्नत तोरणद्वारोंके सौन्दर्यसे भले प्रकार शोभायमान है ॥२६०॥

तस्सि णिलए णिवसइ, लवणा णामेण [1]वेंतरा - देवी ।
एक्क - पलिदोवमाऊ[2], णिरुवम - लावण्ण - परिपुण्णा ॥२६१॥

अर्थ :—उस भवनमें एक पल्योपम आयुवाली और अनुपम लावण्यसे परिपूर्ण लवणा नामकी व्यन्तरदेवी रहती है ॥२६१॥

पउम - दहादो पणुसय - मेत्ताइं जोयणाइ गंतूणं ।
सिधू - कूडमपत्ता[3], दु - कोसमेत्तेण दक्खिणावलिदा[4] ॥२६२॥
उभय-तड-वेदि-सहिदा, उववण-संडेहि सुट्ठु सोहिल्ला ।
गंग व्व पडइ सिंधू, जिब्भादो सिंधु - कूड-उवरिम्मि ॥२६३॥

अर्थ :—पद्मद्रहसे पाँचसौ योजन प्रमाण आगे जाकर, सिन्धुकूटको प्राप्त न होती हुई और उससे दो कोस पहिले ही दक्षिणकी ओर मुड़ती हुई, दोनों तटोंपर स्थित वेदिका सहित तथा उपवन खण्डोंसे भले प्रकार शोभायमान सिन्धु नदी गङ्गा नदीके समान जिह्विकासे सिन्धुकूटके ऊपर गिरती है ॥२६२-२६३॥

कुंडं [5]दीवो [6]सेलो, भवणं भवणस्स उवरिमं कूडं ।
तस्सि जिणपडिमाओ, सव्वं पुव्वं व वत्तव्वं ॥२६४॥

अर्थ :—कुण्ड, द्वीप, पर्वत, भवन, भवनके ऊपर कूट और उसके ऊपर जिनप्रतिमाएँ इन सबका कथन पहिलेके समान ही करना चाहिए ॥२६४॥

णवरि विसेसो एसो, सिंधूकूडम्मि सिंधुदेवि त्ति ।
बहुपरिवारेहि जुदा, उवभुंजदि विविह-सोक्खाणि[7] ॥२६५॥

अर्थ :—विशेषता केवल यह है कि सिन्धुकूटपर बहुत परिवार सहित सिन्धुदेवी विविध सुखोंका उपभोग करती है ॥२६५॥

गंगाणई व सिंधू, विजयड्ढ - गुहाअ उत्तर - दुवारे ।
पविसिय वेदी - जुत्ता, दक्खिण - दारेण णिस्सरदि ॥२६६॥

---

१. ब.ज. वितरा । २. क. ज. य. उ. पलिदोवमाओ । ३. द. क. ज. य. उ. मपत्तो । ४. क.उ. वलिदो । ५. क. उ. दीवा । ६. क. य. उ. सेला । ७. द. ब. क. ज. य. उ. सोक्खाएं ।

अर्थ :—गङ्गा नदीके सदृश सिन्धु नदी भी विजयार्धकी गुफाके उत्तर द्वारसे प्रवेशकर वेदी सहित दक्षिण द्वारसे निकलती है ।।२६६।।

दक्खिण-भरहस्सद्धं, पाविय पच्छिम-पभास-तित्थम्मि ।
चोद्दस - सहस्स - सरिया, परिवारा पविसए उवहिं ।।२६७।।

अर्थ :—पश्चात् दक्षिण भरतके अर्धभागको प्राप्त कर चौदह हजार परिवार-नदियों सहित पश्चिम (दिशा स्थित) प्रभास तीर्थपर समुद्र में प्रवेश करती है ।।२६७।।

तोरण - उच्छेहादी[1], गंगाए वण्णिदा जहा पुव्वं ।
[2]तस्सव्वा सिंधूए, वत्तव्वा णिउण - बुद्धीहिं ।।२६८।।

अर्थ :—जिस प्रकार पहले गङ्गानदीके वर्णनमें तोरणोंकी ऊँचाई आदिका विवेचन किया जा चुका है, उसीप्रकार बुद्धिमानोंको उन सबका कथन यहाँ भी कर लेना चाहिए ।।२६८।।

भरतक्षेत्रके खण्ड विभाग—

गंगा - सिंधु - णईहिं[3], वेयड्ढ - णगेण[4] भरहखेत्तम्मि ।
छक्खंडं संजादं, ताण विभागं परूवेमो ।।२६९।।

अर्थ :—गंगा एवं सिन्धु नदी और विजयार्ध पर्वतसे भरतक्षेत्रके जो छह खण्ड हुए हैं, अब उनके विभागोंका प्र ़पण करता हूँ ।।२६९।।

उत्तर-दक्खिण-भरहे[5], [6]खंडाणि तिण्णि होंति पत्तेक्कं ।
दक्खिण-तिय-खंडेसुं, अज्जा - खंडो त्ति [7]मज्झिल्लो ।।२७०।।

अर्थ :—उत्तर और दक्षिण भरतक्षेत्रमें प्रत्येक क्षेत्रके तीन-तीन खण्ड हैं । दक्षिण-भरतके तीन-खण्डोंमें मध्यवर्ती खण्ड आर्यखण्ड है ।।२७०।।

---

१. द. ज. य. उस्सेहादी । २. द. ब. सस्सव्वं, क. ज. य. उ. सस्सव्वं । ३. द. ब. क. ज. य. उ. णईएं । ४. द. णगे । ५. द. ब. क. ज. य. उ. भरहो । ६. य. ब. खंडाणं । ७. द. ब. क. ज. उ. मज्झिमया ।

सेसा वि पंच खंडा, णामेणं होंति [1]मेच्छखंड त्ति ।
उत्तर - तिय - खंडेसुं, मज्झिम - खंडस्स बहु-मज्झे ।।२७१।।
चक्कीण माण-मथणो, णाणा-चक्कहर-णाम-संछण्णो[2] ।
मूलोवरि - मज्झेसुं, रयणमओ होदि वसहगिरी ।।२७२।।

अर्थ :—शेष पाँचोंही खण्ड म्लेच्छखण्ड नामसे प्रसिद्ध हैं । उत्तर-भरतके तीन खण्डोंमें मध्यवर्ती खण्डके बहुमध्यभागमें चक्रवर्तियोंके मानका मर्दन करनेवाला, नाना चक्रवर्तियोंके नामोंसे अंकित (आच्छादित), मूल, मध्य एवं शिखरमें सर्वत्र रत्नमय वृषभगिरि है ।।२७१-२७२।।

वृषभगिरिका वर्णन--

जोयण - सय - मुव्विद्धो, पणुवीसं जोयणाणि अवगाढो ।
एक्क[3]- सय - मूल-रुंदो[4], पण्णत्तरि मज्झ - वित्थारो ।।२७३।।

। १०० । २५ । १०० । ७५ ।

अर्थ :– यह पर्वत सौ (१००) योजन ऊँचा, पच्चीस (२५) योजन प्रमाण नींववाला, मूलमें सौ (१००) योजन और मध्यमें पचहत्तर (७५) योजन विस्तारवाला है ।।२७३।।

पण्णास - जोयणाइं, [5]वित्थारो होदि तस्स सिहरम्मि ।
मूलोवरि - मज्झेसुं, चेट्ठंते वेदि - वण - संडा ।।२७४।।

अर्थ :—वृषभगिरिका विस्तार शिखरपर पचास योजन प्रमाण है । इसके मूलमें, मध्यमें और ऊपर वेदियाँ एवं वनखण्ड स्थित हैं ।।२७४।।

चउ-तोरणेहिं [6]जुत्ता, [7]पोक्खरिणी-वावि-कूव-परिपुण्णा ।
वज्जिदणील - मरगय - कक्केयण - पउमरायमया ।।२७५।।
होंति हु वर - पासादा, विचित्त-विण्णास-मणहरायारा ।
विप्फुरंत - रयण - दीवा, वसह - गिरिंदस्स सिहरम्मि ।।२७६।।
वर-रयण-कंचणमया, जिणभवणा विविह-सुंदरायारा ।
चेट्ठंति वण्णणाओ, पुव्वं पिव होंति सव्वाओ ।।२७७।।

---

१. द. मेच्छखंडम्मि । २. द. ज. संछण्णा । ३. द. एक्कस्सय । ४. क. ब. ज. रुंदा । ५. ज. वित्थारा । ६. द. ब. क. ज. य. उ. जुत्तो । ७. द. क. ज. य. उ. पोक्खरणी ।

अर्थ :—वृषभगिरीन्द्रके शिखर पर चार तोरणों सहित, पुष्करिणियों, बावड़ियों कूपोंसे परिपूर्ण; वज्र, इन्द्रनील, मरकत, कर्केतन और पद्मराग मणिविशेषोंसे निर्मित; विवि रचनाओंसे मनोहर आकृतिको धारण करने वाले और देदीप्यमान रत्न-दीपकोंसे युक्त उत्तम भवन तथा उत्तम रत्नों एवं स्वर्णसे निर्मित विविध सुन्दर आकारोंवाले जिनभवन स्थित हैं। इनका (अन्य सब वर्णन पूर्व वर्णित प्रासादों एवं जिनभवनोंके सदृश है ।।२७५-२७७।।

गिरि - उवरिम - पासादे, वसहो णामेण वेंतरो देवो ।
विविह-परिवार-सहिदो, उवभुंजदि विविह-सोक्खाइं ।।२७८।।

अर्थ :—वृषभनामका व्यन्तरदेव इस पर्वतके उपरिम भवनमें अपने विविध परिवार स अनेक प्रकारके सुखोंका उपभोग करता है ।।२७८।।

एक्क - पलिदोवमाऊ, दस-चाव-पमाण-देह-उच्छेहो ।
पिथुवच्छो[1] [2]दीहभुजो, एसो सव्वंग - सोहिल्लो ।।२७९।।

। छक्खंडं गदं ।

अर्थ :—यह देव एक पल्योपम आयु सहित, दस धनुष प्रमाण शरीर की ऊँचाई वाला विस्तृत-वक्षःस्थल और लम्बी भुजाओंवाला यह देव सर्वाङ्ग सुन्दर है ।।२७९।।

। छह खण्डोंका वर्णन समाप्त हुआ ।

कालका स्वरूप एवं उसके भेद

तस्सि अज्जा - खंडे, णाणा - भेदेहिं संजुदो कालो ।
वट्टइ तस्स सरूवं, वोच्छामो आणुपुव्वीए ।।२८०।।

अर्थ :—उस आर्यखण्डमें नाना भेदोंसे संयुक्त कालका प्रवर्तन होता है, उसके स्वरूप अनुक्रमसे कहता हूँ ।।२८०।।

फास-रस-गंध-वण्णेहिं[3] विरहिदो अगुरुलहु-गुण-जुत्तो ।
वट्टण - लक्खण - कलियं, काल - सरूवं इमं होदि ।।२८१।।

---

१. द. बधुवंछो, ब. क. उ. बहुवंछो, ज. य. बुधुवंछो । २. द. ब. क. ज. य. उ. दिहभुंज
३. द. ब. क. ज. य. उ. वण्णोवदि ।

अर्थ:—स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण रहित, अगुरुलघुगुण सहित और वर्तनालक्षण युक्त ऐसा कालका स्वरूप है ॥२८१॥

कालस्स दो वियप्पा, मुक्खामुक्खा हवंति एदेसु ।
मुक्खाधार - बलेणं, अमुक्ख - कालो पवट्टेदि ॥२८२॥

अर्थ:—कालके मुख्य (निश्चय) और अमुख्य (व्यवहार) इस प्रकार दो भेद हैं। इनमेंसे मुख्य कालके आश्रयसे अमुख्य (व्यवहार) कालकी प्रवृत्ति होती है ॥२८२॥

जीवाण पुग्गलाणं, हवंति परियट्टणाइ विविहाइं ।
एदाणं पज्जाया, वट्टंते मुक्ख - काल - आधारे ॥२८३॥

अर्थ:—जीवों और पुद्गलोंमें विविध परिवर्तन हुआ करते हैं। इनकी पर्यायें मुख्य-कालके आश्रयसे प्रवर्तती हैं ॥२८३॥

सव्वाण पयत्थाणं, णियमा परिणाम - पहुदि-वित्तीओ ।
बहिरंतरंग - हेदू[1] हि, सव्वब्भेदेसु वट्टंति ॥२८४॥

अर्थ:—सर्व पदार्थोंके समस्त भेदोंमें नियमसे बाह्य और अभ्यन्तर निमित्तोंके द्वारा परिणामादिक (परिणाम, क्रिया, परत्वापरत्व) वृत्तियाँ प्रवर्तती हैं ॥२८४॥

बाहिर-हेदू [2]कहिदो, णिच्छय-कालो त्ति सव्वदरिसीहिं ।
अब्भंतरं णिमित्तं, णिय णिय दव्वेसु चेट्ठेदि ॥२८५॥

अर्थ :—सर्वज्ञदेवने निश्चय कालको सर्व पदार्थोंके प्रवर्तनेका बाह्य निमित्त कहा है। अभ्यन्तर निमित्त (स्वयं) अपने-अपने द्रव्योंमें स्थित है ॥२८५॥

कालस्साणू-भिण्णा, [3]अण्णोण्ण - पवेसणेण परिहीणा ।
पुह पुह लोयायासे, चेट्ठंते [4]संचएण विणा ॥२८६॥

अर्थ:—अन्योन्य-प्रवेशसे रहित कालके भिन्न-भिन्न अणु संचयके विना लोकाकाशमें पृथक्-पृथक् स्थित हैं ॥२८६॥

---

१. क. ज. य. उ. हेदूहिं। २. क. ज. य. उ. कहिदा। ३. क. उ. अणूण, ज. अणूणा, य. अण्णूणा। ४. ज. य. पच्चएण।

व्यवहारकालके भेद एवं उनका स्वरूप—

समयावलि - उस्सासा, पाणा थोवा य आविया [1]भेदा ।
ववहार - काल - णामा, णिद्दिट्ठा वीयराएहिं ॥२८७॥

अर्थ :—समय, आवलि, उच्छ्वास, प्राण एवं स्तोक इत्यादिक भेद वीतराग भगवानके द्वारा व्यवहार कालके नामसे निर्दिष्ट किये गये हैं ॥२८७॥

परमाणुस्स णियट्ठिद-गयण-पदेसस्सविक्कमण[2]-मेत्तो ।
जो कालो अविभागी, होदि पुढं समय - णामो सो ॥२८८॥

अर्थ :—पुद्गल-परमाणुका निकटमें स्थित आकाश-प्रदेशके अतिक्रमण-प्रमाण जो अविभागी काल है, वही 'समय' नामसे प्रसिद्ध है ॥२८८॥

होंति हु असंख-समया, आवलि-णामो[3] तहेव उस्सासो ।
संखेज्जावलि-णिवहो, सो च्चिय[4] पाणो त्ति विक्खादो ॥२८९॥

| १/रि | १/७ | १/१ |

अर्थ :—असंख्यात समयोंकी आवली और संख्यात आवलियोंके समूहरूप उच्छ्वास होता है । यही उच्छ्वास काल 'प्राण' नामसे प्रसिद्ध है ॥२८९॥

सत्तुस्सासो थोवो, सत्तत्थोवा[5] लवित्ति णादव्वो ।
सत्तत्तरि - दलिद - लवा[6], णाली बे णालिया मुहुत्तं च ॥२९०॥

| १/७ | १/७ | ७७/२ | १/२ | १ |[7]

अर्थ :—सात उच्छ्वासोंका एक स्तोक एवं सात स्तोकोंका एक लव जानना चाहिए । सतत्तरके आधे (३८½) लवोंकी एक नाली और दो नालियोंका एक मुहूर्त होता है ॥२९०॥

७ उच्छ्० = १ स्तोक । ७ स्तोक = १ लव । ३८½ लव = १ नाली । २ नाली = १ मुहूर्त ।

१. द. ब. क. ज. य उ. भेदो । २. द. ब. विक्कमेणंतो, क. ज. य. उ. दिक्कमेणत्तो । ३. ज. य. णाहो । ४. द. ब. क. ज. उ. चिय-पंणो त्ति, य. बियणणोत्ति । ५. द. सत्तत्थोवायआवलित्ति, ब. सत्तत्थो-वायलित्ति, क. सत्तत्थोवोलवो त्ति, उ. सत्तत्थोवायलत्तिणा दव्वो । ज. य. सत्तत्थोवा लवोत्ति णादव्वा । ६. द. ब. क. ज. य. उ. लया । ७. द. ब. क. उ. । १/७ । १/७ । ७७/२ । १ ॥ ज. य. १/७ । १/७ । १/७ । ७ । ७७/२ ॥

समऊणेक्क - मुहुत्तं, भिण्णमुहुत्तं मुहुत्तया तीसं ।
दिवसो पण्णरसेहिं, दिवसेहिं एक्क - पक्खो[1] हु ।।२६१।।

अर्थ :—समय कम एक मुहूर्तको भिन्नमुहूर्त कहते हैं । तीस मुहूर्तका एक दिन और पन्द्रह दिनोंका एक पक्ष होता है ।।२६१।।

दो पक्खेहिं मासो, मास - दुगेणं उडू उडुत्तिदयं ।
अयणं अयण - दुगेणं, वरिसो पंच - वच्छरेहि जुगं ।।२६२।।

अर्थ :—दो पक्षोंका एक मास, दो मासोंकी एक ऋतु, तीन ऋतुओंका एक अयन, दो अयनोंका एक वर्ष और पाँच वर्षोंका एक युग होता है ।।२६२।।

माघादी[2] होंति उडू, सिसिर-वसंता णिदाघ-पाउसया ।
सरओ हेमंता वि य, णामाइं ताण जाणिज्जं ।।२६३।।

अर्थ :—माघ माससे प्रारम्भ कर जो ऋतुएँ होती हैं उनके नाम शिशिर, वसन्त, निदाघ (ग्रीष्म), प्रावृष (वर्षा), शरद् और हेमन्त, इस प्रकार जानने चाहिए ।।२६३।।

[3]बेण्णि जुगा दस वरिसा, ते दस-गुणिदा हवेदि वास-सदं ।
[4]एदस्सिं दस - गुणिदे, वास - सहस्सं वियाणेहि ।।२६४।।

अर्थ :—दो युगोंके दस वर्ष होते हैं; इन दस वर्षोंको दससे गुणा करने पर शत (सौ) वर्ष और शतवर्षको दससे गुणा करने पर सहस्र (हजार) वर्ष जानना चाहिए ।।२६४।।

दस वास-सहस्साणि, वास - सहस्सम्मि दस-हदे[5] होंति ।
[6]तेहिं दस - गुणिदेहिं, लक्खं णामेण णादव्वं ।।२६५।।

अर्थ :—सहस्र वर्षको दससे गुणा करनेपर दस-सहस्रवर्ष और इनको भी दससे गुणा करने पर लक्ष (लाख) वर्ष जानने चाहिए ।।२६५।।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. पक्खा । २. क. उ. मायादी । ३. क. वेण्णि, ज. य. दोण्णि, उ. वेण्णि । ४. ब. एदेस्सि, क. य. एदस्सि । ५. ज. य. हद । ६. ज. य. तिहिं ।

तालिका : ७

आवलीसे लक्ष पर्यन्त व्यवहार कालकी परिभाषाएँ

१. असंख्यात समय = १ आवली ।

२. संख्यात आवली (या $\frac{२८८०}{३७७३}$ सेकेण्ड) = १ उच्छ्वास ।

३. ७ उच्छ्वास (या ५$\frac{१२९५}{३७७३}$ सेकेण्ड) = १ स्तोक ।

४. ७ स्तोक (या ३७$\frac{३१}{७७}$ सेकेण्ड) = १ लव ।

५. ३८½ लव (या २४ मिनिट) = १ नाली ।

६. २ नाली (या ४८ मिनिट) = १ मुहूर्त ।

७. [१ मुहूर्त — १ समय = भिन्नमुहूर्त]

८. ३० मुहूर्त (या २४ घण्टा) = १ दिनरात ।

९. १५ दिन = १ पक्ष ।

१०. २ पक्ष = १ मास ।

११. २ मास = १ ऋतु ।

१२. ३ ऋतु = १ अयन (६ मास) ।

१३. २ अयन = १ वर्ष ।

१४. ५ वर्ष = १ युग ।

१५. २ युग = दस वर्ष ।

१६. १० × १० वर्ष = शत वर्ष

१७. शत × १० = सहस्र वर्ष

१८. सहस्र × १० = दस सहस्र वर्ष ।

१९. १० सहस्र × १० = लक्ष वर्ष ।

पूर्वाङ्गसे अचलात्म पर्यन्त कालांशोंका प्रमाण –

चुलसीदि - हदं लक्खं, पुव्वंगं तस्स वग्ग परिमाणं ।
पुव्वं सत्तरि कोडी, लक्खा छप्पण्ण तह सहस्साणि ।।२९६।।

७०५६०००००००००० ।

अर्थ :—एक लाख वर्षको चौरासीसे गुणा करनेपर एक 'पूर्वाङ्ग' और इसका वर्ग करनेपर प्राप्त हुए ७०५६०००००००००० को 'पूर्वका' प्रमाण जानना चाहिए ।।२९६।।

विशेषार्थ :—(१) १००००० वर्ष × ८४=८४००००० वर्षका एक पूर्वाङ्ग । (२) ८४ ला० × ८४ लाख=७०५६०००००००००० वर्षका एक पूर्व ।

पुब्वं चउसीदि - हदं, पव्वंगं होदि तं पि गुणिदव्वं ।
चउसीदी - लक्खेहिं, णादव्वा पव्व परिमाणं ।।२९७।।

अर्थ :—पूर्वको चौरासीसे गुणा करनेपर एक 'पर्वाङ्ग' होता है और इस पर्वाङ्गको चौरासी लाखसे गुणा करनेपर एक 'पर्वका' प्रमाण कहा गया है ।।२९७।।

(३) एक पूर्व × ८४=५९२७०४ × १० शून्य प्रमाण वर्षका एक पर्वाङ्ग ।
(४) एक पर्वाङ्ग × ८४ लाख=४९७८७१३६ × १५ शून्य प्रमाण वर्षका एक पर्व ।

पव्वं चउसीदि - हदं, णउदंगं होदि तं पि गुणिदव्वं ।
चउसीदी - लक्खेहिं, णउदस्स[1] पमाणमुद्दिट्ठं ।।२९८।।

अर्थ:—पर्वको चौरासीसे गुणा करनेपर एक 'नयुताङ्ग' होता है और इसको चौरासी लाखसे गुणा करनेपर एक 'नयुत' का प्रमाण कहा गया है ।।२९८।।

विशेषार्थ :—(५) एक पर्व × ८४=४१८२११९४२४ × १५ शून्य प्रमाण वर्ष का एक नयुताङ्ग । (६) एक नयुताङ्ग × ८४ लाख=३५१२९८०३१६१६ × २० शून्य प्रमाण वर्षका एक नयुत ।

णउदं चउसीदि - हदं, कुमुदंगं होदि तं पि गुणिदव्वं ।
चउसीदि - लक्ख - वासेहि[2] कुमुदं णामं समुद्दिट्ठं ।।२९९।।

अर्थ :—चौरासीसे गुणित नयुत-प्रमाण एक 'कुमुदाङ्ग' होता है । इसको चौरासी लाख वर्षोंसे गुणा करनेपर 'कुमुद' नाम कहा गया है ।।२९९।।

विशेषार्थ :—(७) एक नयुत × ८४=२९५०९०३४६५५७४४ × २५ शून्य प्रमाण वर्षका एक कुमुदाङ्ग । (८) एक कुमुदाङ्ग × ८४ लाख=२४७८७५८९११०८२४९६ × २५ शून्य प्रमाण वर्षका एक कुमुद ।

---

१. ब. चउदस्स । २. द. ब. गुणिदे ।

कुमुदं चउसीदि हदं, पउमंगं होदि तं पि गुणिदव्वं ।
चउसीदि - लक्खवासे[1], पउमं णामं समुद्दिट्ठं ।।३००।।

अर्थ :—चौरासीसे गुणित कुमुद-प्रमाण एक 'पद्माङ्ग' होता है। इसको चौरासी लाख वर्षोंसे गुणा करनेपर 'पद्म' नाम कहा गया है ।।३००।।

विशेषार्थ :—(९) एक कुमुद × ८४ = २०८२१५७४८५३०९२९६६४ × २५ शून्य प्रमाण एक पद्माङ्ग। (१०) एक पद्माङ्ग × ८४ लाख = १७४९०१२२८७६५९८०९१७७६ × ३० शून्य प्रमाण वर्षोंका एक पद्म।

पउमं चउसीदि - हदं, णलिणंगं होदि तं पि गुणिदव्वं ।
चउसीदि - लक्खवासे, णलिणं णामं वियाणाहि ।।३०१।।

अर्थ :—चौरासीसे गुणित पद्म-प्रमाण एक 'नलिनाङ्ग' होता है। इसको चौरासी लाख वर्षोंसे गुणा करनेपर 'नलिन' नाम जानना चाहिए ।।३०१।।

विशेषार्थ :—(११) एक पद्म × ८४ = १४६९१७०३२१६३४२३९७०९१८४ × ३० शून्य प्रमाण वर्षोंका एक नलिनाङ्ग। (१२) एक नलिनाङ्ग × ८४ लाख = १२३४१०३०७०१७२७६१३-५५७१४५६ × ३५ शून्य प्रमाण वर्षोंका एक नलिन।

णलिणं चउसीदि - गुणं, कमलंगं णाम तं पि गुणिदव्वं ।
चउसीदी - लक्खेहिं, कमलं णामेण णिद्दिट्ठं ।।३०२।।

अर्थ :—चौरासीसे गुणित नलिन प्रमाण एक 'कमलाङ्ग' होता है। इसको चौरासीलाखसे गुणा करने पर 'कमल' नामसे कहा गया है ।।३०२।।

विशेषार्थ :—(१३) एक नलिन × ८४ = १०३६६४६५७८९४५११९५३८८००२३०४ × ३५ शून्य प्रमाण वर्षोंका एक कमलाङ्ग। (१४) एक कमलाङ्ग × ८४ लाख = ८७०७८३१२६३१३-९००४१२५९२१९३५३६ × ४० शून्य अर्थात् ६७ अंक प्रमाण वर्षोंका एक कमल।

कमलं चउसीदि - गुणं, तुडिदंगं होदि तं पि गुणिदव्वं ।
चउसीदी - लक्खेहिं, तुडिदं णामेण णादव्वं ।।३०३।।

---

१. द. ब. क. ज. उ. वासेहिं।

अर्थ :—कमलसे चौरासी-गुणा 'त्रुटिताङ्ग' होता है। इसको चौरासी-लाखसे गुणा करने-पर 'त्रुटित' नाम समझना चाहिए ॥३०३॥

विशेषार्थ :—(१५) एक कमल × ८४ = ७३१४५७८२६१०३६७६३४६५७७४४२५७०२४ × ४० शून्य प्रमाण वर्षोंका एक त्रुटिताङ्ग। (१६) एक त्रुटिताङ्ग × ८४ लाख = ६१४४२४५७३९-२७०८८१३११२५०५१७५९००१६ × ४५ शून्य अर्थात् ७६ अंक प्रमाण वर्षोंका एक त्रुटित।

तुडिदं चउसीदि-हदं, [1]अडडंगं होदि तं पि गुणिदव्वं।
चउसीदी - लक्खेहिं, अडडं णामेण णिद्दिट्ठं ॥३०४॥

अर्थ :—चौरासीसे गुणित त्रुटित-प्रमाण एक 'अटटाङ्ग' होता है। इसके चौरासीलाखसे गुणित होने पर अटट (इस) नामसे कहा गया है ॥३०४॥

विशेषार्थ :—(१७) एक त्रुटित × ८४ = ५१६११६६४२०९८७५४०३०१४५०४३४७७-५६१३४४ × ४५ शून्य अर्थात् ७६ अंक प्रमाण वर्षोंका एक अटटाङ्ग। (१८) एक अटटांग × ८४ लाख = ४३३५३७९७९३६२९५३३८५३२१८३६५२११५१५२८९६ × ५० शून्य प्रमाण वर्षोंका एक अटट।

अडडं चउसीदि - गुणं अममंगं होदि तं पि गुणिदव्वं।
चउसीदी - लक्खेहिं, अममं णामेण णिद्दिट्ठं ॥३०५॥

अर्थ :—चौरासीसे गुणित अटट-प्रमाण एक 'अममांग' होता है। इसको चौरासीलाखसे गुणा करने पर 'अमम' नामसे निर्दिष्ट किया गया है ॥३०५॥

विशेषार्थ :—(१९) एक अटट × ८४ = ३६४१७१९०२६६४८८०८४३६७०३४२६७७-७६७२८४३२६४ × ५० शून्य प्रमाण वर्षोंका एक अममांग। (२०) एक अममांग × ८४ लाख = ३०५९०४१९८२३८४९९९०८६८३०८७८४९३२४५१८८३४१७६ × ५५ शून्य प्रमाण वर्षोंका एक अमम।

अममं चउसीदि - गुणं, [2]हाहंगं होदि तं पि गुणिदव्वं।
चउसीदी - लक्खेहिं, हाहा णामं[3] समुद्दिट्ठं ॥३०६॥

---

१. ब. व. अडिअंगं। २ ब. य. हूहांगं। ३. क. ब. य. उ. णामस्समुद्दिट्ठं।

अर्थ :— चौरासीसे गुणित 'अमम' प्रमाण एक हाहांग होता है। इसको चौरासी लाखसे गुणा करनेपर 'हाहा' नामसे कहा गया है ।।३०६।।

विशेषार्थ :— (२१) एक अमम × ८४ = २५६९५९६९४५२०३३९९२३२१३७१३७९३४-३२५९५८२०७०७८४ × ५५ शून्य प्रमाण वर्षोंका एक हाहांग । (२२) एक हाहांग × ८४ लाख = २१५८४६१४३३९७०८५५३५५६६७८६७८६४८३३८०४८९३९४५८५६ × ६० शून्य प्रमाण वर्षोंका एक हाहा ।

हाहा-चउसीदि - गुणं, हूहंगं होदि तं पि गुणिदव्वं ।
चउसीदी - लक्खेहिं, हूहू - णामस्स परिमाणं ।।३०७।।

अर्थ :— हाहाको चौरासीसे गुणा करनेपर एक 'हूहांग' होता है । इसको चौरासीलाखसे गुणा करने पर 'हूहू' नामक कालका प्रमाण होता है ।।३०७।।

विशेषार्थ :— (२३) एक हाहा × ८४ = १८१३१०७६०४५३५५१८४१८७६१००९००६-४६०३९६११०९१४५१९०४ × ६० शून्य प्रमाण वर्षोंका एक हूहांग । (२४) एक हूहांग × ८४ लाख = १५२३०१०३८७८०९८३५५३८९५९२४७५६५४२६७३२७३३१६८१९५९९३६ × ६५ शून्य प्रमाण वर्षोंका एक हूहू ।

हूहू चउसीदि - गुणं, एक्क - लदंगं हवेदि गुणिदव्वं ।
चउसीदी - लक्खेहिं, परिमाणमिणं लदा - णामे[1] ।।३०८।।

अर्थ :— चौरासीसे गुणित हूहूका एक 'लतांग' होता है। इसको चौरासीलाखसे गुणा करनेपर 'लता' नामक प्रमाण उत्पन्न होता है ।।३०८।।

विशेषार्थ :— (२५) एक हूहू × ८४ = १२७९३२८७२५७६०२६१८५२७२५७६७९५४९-५८४५५४९५८६१२८४६३४६२४ × ६५ शून्य अर्थात् ११४ अंक प्रमाण वर्षोंका एक लतांग । (२६) एक लतांग × ८४ लाख = १०७४६३६१२९६३८६१९९५६२८९६४५०८२१६५१०२६१६५२३४७९०९३-०८४१६ × ७० शून्य अर्थात् १२१ अंक प्रमाण वर्षोंका एक लता ।

चउसीदि - हद - लदाए, [2]महालदंगं हवेदि गुणिदव्वं ।
चउसीदी - लक्खेहिं, महालदा णामगुद्दिट्ठं ।।३०९।।

---

१. ज. णामो । २. द. लतमं ब. क. ज. य. उ. लतांगं ।

अर्थ :—चौरासीसे गुणित लता-प्रमाण एक 'महालतांग' होता है। इसको चौरासीलाखसे गुणा करनेपर 'महालता' नाम कहा गया है ॥३०९॥

विशेषार्थ :—(२७) एक लता × ८४ = ९०२६९४३४८८९६४४०७६३२८३३०१८६९०१-८६८६१९७८७९७२२४३८१९०६९४४ × ७० शून्य प्रमाण वर्षोंका एक महालतांग। (२८) एक महालतांग × ८४ लाख = ७५८२६३२५३०७३०१०२४११५७९७३५६९९७५६९६४०६२१८९६६८-४८०८०१८३२९६ × ७५ शून्य प्रमाण वर्षोंका एक महालता।

चउसीदि-लक्ख-गुणिदा[1], महालदाओ हवेदि [2]सिरिकप्पं।
चउसीदि - लक्ख - गुणिदं, तं हत्थपहेलिदं णाम ॥३१०॥

अर्थ :—चौरासीलाखसे गुणित महालता-प्रमाण एक 'श्रीकल्प' होता है। इसको चौरासी-लाखसे गुणा करनेपर 'हस्तप्रहेलित' नामक प्रमाण उत्पन्न होता है ॥३१०॥

विशेषार्थ :—(२९) एक महालता × ८४ लाख = ६३६९४११३२५८१३२८६०२५७२६-९७७९८७७९५८४९५१२२३९३२१५२३८७३५३९६९६४ × ८० शून्य प्रमाण वर्षोंका एक श्रीकल्प होता है। (३०) एक श्रीकल्प × ८४ लाख = ५३५०३०५५१३६८३१६०२६१६१०६६१५०९७४८५-१३८४२२८१०३००८००५३७७३३३६५७६ × ८५ शून्य प्रमाण वर्षोंका एक हस्तप्रहेलित होता है।

हत्थपहेलिद - णामं, गुणिदं चउसीदि - लक्ख - वासेंहि।
अचलप्प[3]- णामधेओ, कालं [4]कालाणुवेदि - णिद्दिट्ठं[5] ॥३११॥

अर्थ :—चौरासी लाख वर्षोंसे गुणित हस्तप्रहेलित-प्रमाण एक 'अचलात्म' नामका काल होता है, ऐसा कालाणुओंके जानकार अर्थात् सर्वज्ञदेवने निर्दिष्ट किया है ॥३११॥

विशेषार्थ :—(३१) एक हस्तप्रहेलित × ८४ लाख = ४४९४२५६६३१४९३८५४६१९७-५२९५५६६८१८८७५१६२७५१६०६५२६७२४५१६९६०२७२३८४ × ९० शून्य प्रमाण वर्षोंका एक अचलात्म नामका कालांश होता है।

एक्कत्तीस - ट्ठाणे, चउसीदिं पुह पुह ठवेदूणं।
अण्णोण्ण - हदे लद्धं, अचलप्पं होदि [6]णउदि-सुण्णंकं ॥३१२॥

८४। ३१। ९०।

---

१. ब. ब. कुणिदं। २. द सिरिकंपं, ब. क. ज. उ. सिरकंपं। ३. द. अचलप्पं णाम धओ। ब. म. अचलप्पणामधेओ। ४. द. कालाउ हवेदि, ब. कालाणु हवेदि। ५. द ब. म. णिदिट्ठा। ६. द. णउदी।

अर्थ :—पृथक्-पृथक् इकतीस (३१) स्थानोंमें चौरासी (८४) को रखकर और उनका परस्पर गुणा करके आगे नब्बे शून्य रखनेपर 'अचलात्म' का प्रमाण प्राप्त होता है ।।३१२।।

विशेषार्थ :— $८४^{३१}$ × ९० शून्य = अचलात्म नामक कालांश । अर्थात् १५० अंक प्रमाण वर्षोंका एक अचलात्म होता है ।

एवं [1]एसो कालो, संखेज्जो वच्छराण गणणाए ।
उक्कस्सं संखेज्जं, [2]जावं तावं [3]पवत्तेओ ।।३१३।।

अर्थ :— इसप्रकार वर्षोंकी गणना द्वारा जहाँ तक उत्कृष्ट संख्यात प्राप्त हो वहाँ तक इस संख्यात कालको ले जाना चाहिए अर्थात् ग्रहण करना चाहिए ।।३१३।।

वयण :

एत्थ उक्कस्स-संखेज्जय[4]-जाण-णिमित्तं जंबूदीव-विस्थारं सहस्स-
जोयण उव्वेध[5] - पमाणं च चत्तारि - सरावया[6] कादव्वा ।
सलागा पडिसलागा महासलागा एदे तिण्णि वि अवट्ठिदा[7]
चउत्थो [8]अणवट्ठिदो । एदे सव्वे पण्णाए ठविदा ।

अर्थ :—यहाँ उत्कृष्ट संख्यात जाननेके निमित्त जम्बूद्वीप सदृश (एक लाख योजन) विस्तारवाले और एक हजार योजन प्रमाण गहरे चार गड्ढे करने चाहिए। इनमें शलाका, प्रतिशलाका एवं महाशलाका ये तीन गड्ढे अवस्थित तथा चौथा गड्ढा अनवस्थित है। ये सब गड्ढे बुद्धिसे स्थापित किए गए हैं ।

एत्थ चउत्थ-सरावय-अब्भंतरे दुवे सरिसवे [9]त्थुदे तं जहण्णं संखेज्जयं जादं । एदं पढम-वियप्पं । तिण्णि सरिसवे छुद्धे अजहण्णमणुक्कस्स-संखेज्जयं । एवं सरावए[10] पुण्णे[11] एदमुवरि मज्झिम-वियप्पं ।

---

१. ब. एवं सो । २. द. ब. क. ज. य. उ. जावलतोवं । ३. ब. पव्वत्त उ. य. पवत्तेओ । ४. क. ज. य. उ. संखेज्जयं । ५. द. ब. क. ज. य. उ. उवेद । ६. द. ब. क. ज. य. उ. सरावय । ७. क. ज. य. उ. अवट्ठिदो । ८. क. ज. य उ. अणवट्ठिदा । ९. द. ब. त्थुदे । १०. द. क. ज. य. उ. सरावओ । ११. द. ब. क. ज. य. उ. पुण्णो ।

अर्थ :—इनमेंसे चौथे (अनवस्था नामक) कुण्डके भीतर सरसोंके दो दाने डालनेपर वह जघन्य संख्यात होता है। संख्यातका यह प्रथम विकल्प है। तीन सरसों डालने पर अजघन्यानुत्कृष्ट (मध्यम) संख्यात होता है। इसीप्रकार एक-एक सरसों डालने पर उस (अनवस्था) कुण्डके पूर्ण होने तक (यह) तीनसे ऊपर सब मध्यम संख्यातके विकल्प होते हैं।

पुणो भरिद[1]-सरावया देओ वा दाणओ वा हत्थे घेत्तूण दीवे समुद्दे एक्केक्कं सरिसवं देउ[2]। सो णिट्ठिदो तक्काले सलाय - अब्भंतरे एग-सरिसओ [3]च्छुद्धो। जम्हि सलाया [4]समत्ता तम्हि सरावओ[5] वड्ढो वेयव्वो।

अर्थ :—पुनः सरसोंसे (पूर्ण) भरे हुए इस कुण्डमेंसे देव अथवा दानव हाथमें (सरसों) ग्रहणकर क्रमशः (एक-एक) द्वीप और समुद्रमें एक-एक सरसों देता जाय; इसप्रकार जब वह (अनवस्था) कुण्ड समाप्त (खाली) हो जाय, तब (उस समय) शलाका कुण्डके भीतर एक सरसों डाला जाय। जहाँ (जिस द्वीप या समुद्र) पर प्रथम कुण्डकी शलाकाएँ समाप्त हुई हों उस द्वीप या समुद्रकी सूचीप्रमाण उस अनवस्था कुण्डको बढ़ा दें।

तं भरिदूण हत्थे घेत्तूण दीवे समुद्दे णिट्ठिदव्वा[6]। जम्हि णिट्ठिदं तम्हि सरावयं वड्ढा-वेयव्वं। सलाय-सरावए दोण्णि [7]सरिसवे च्छुद्धे।

अर्थ:—पुनः उस (नवीन बनाये हुए अनवस्था कुण्ड) को सरसोंसे भरकर पहलेके ही सदृश (उन्हें) हाथमें ग्रहण कर क्रमशः आगे (आगे) के द्वीप और समुद्रमें एक-एक सरसों डालकर उन्हें पूरा कर दे। जिस द्वीप या समुद्रमें इस कुण्डके सरसों पूर्ण हो जावें उसकी सूची-व्यास बराबर पुनः (नवीन) अनवस्थाकुण्डको बढ़ावें और शलाका कुण्डोंमें एक दूसरा सरसों डाल दें।

विशेष :—[इसीप्रकार बढ़ते हुए व्यासके साथ हजार योजन गहराईवाले उतनेबार अनवस्था कुण्ड बन जाएँ, जितने कि प्रथम अनवस्था कुण्डमें सरसों थे, तब एक बार शलाका कुण्ड भरेगा। एक बार शलाका कुण्ड भरेगा तब एक सरसों प्रतिशलाका कुण्डमें डालकर शलाका कुण्ड खाली कर दिया जायगा तथा जिस द्वीप या समुद्रकी सूची व्यास सदृश अनवस्था कुण्ड बने उससे आगेके द्वीप-समुद्रोंमें एक-एक दाना डालते हुए जहाँ सरसों पुनः समाप्त हो जाए वहाँसे लेकर जम्बू-

१. ज. ब. भरदि। २. द. ब. क. उ. देय, ज. य. देइ। ३. द. थूवा, ब. त्थूदो। ४. ब. क. ज. य. उ. सम्मत्ता। ५. द. ब. क. ज. य. उ. सरावउ बढारेयंतु। ६. क. ज. णिच्छिदव्वा। ७. द. ब. ब. सरिसवत्थूदे।

द्वीप पर्यन्त नवीन अनवस्था कुण्ड बनाकर भरा जाएगा तब एक दाना शलाका कुण्डमें डाला जाएगा। पुनः उस नवीन अनवस्था कुण्डके सरसों ग्रहणकर आगे-आगेके द्वीप समुद्रोंमें एक-एक दाना डालते हुए जहाँ सरसों समाप्त हो जाय, उतने व्यास वाला अनवस्था कुण्ड जब भरा जायगा तब शलाका कुण्डमें एक दाना और डाला जाएगा। इसप्रकार करते हुए जब पुनः नवीन-नवीन (वृद्धिगत) व्यासको लिए हुए प्रथम अनवस्था कुण्डकी सरसोंके प्रमाण बराबर नवीन अनवस्था कुण्ड बन चुकेंगे तब शलाकाकुण्ड भरेगा और दूसरा दाना प्रतिशलाका कुण्डमें डाला जाएगा।

इसप्रकार बढ़ते हुए क्रमसे जितने सरसों प्रथम अनवस्था कुण्डमें थे, उनके वर्ग प्रमाण जब अनवस्था कुण्ड बन चुकेंगे तब शलाकाकुण्ड उतने ही सरसों प्रमाण बार भरेगा तब एक बार प्रतिशलाका कुण्ड भरेगा और एक दाना महाशलाका कुण्डमें डाला जाएगा। इसप्रकार क्रमशः वृद्धिगत होनेवाला अनवस्थाकुण्ड जब प्रथम अनवस्थाकुण्ड की सरसोंके घन प्रमाण बार बन चुकेंगे तब प्रथम अनवस्था कुण्डकी सरसोंके वर्ग प्रमाण बार शलाका कुण्ड भरे जायेंगे, तब प्रथम अनवस्था कुण्डकी सरसों प्रमाण बार प्रतिशलाका कुण्ड भरेंगे और तब एक बार महाशलाका कुण्ड भरेगा।

मानलो :—प्रथम अनवस्थाकुण्ड सरसोंके १० दानोंसे भरा था, अतः बढ़ते हुए व्यासके साथ १० अनवस्था कुण्डोंके बन जाने पर एक बार शलाका कुण्ड भरेगा तब एक दाना प्रतिशलाका-कुण्डमें डाला जाएगा। इसीप्रकार वृद्धिगत व्यासके साथ १० के वर्ग (१०×१०)=१०० अनवस्था-कुण्ड बन जानेपर १० बार शलाका कुण्ड भरेगा तब एक बार प्रतिशलाका कुण्ड भरेगा और तब एक दाना महाशलाका कुण्डमें डाला जाएगा।

इसीप्रकार बढ़ते हुए व्यासके साथ १० के घन (१०×१०×१०)=१००० अनवस्था कुण्ड बन जाने पर १० के वर्ग (१०×१०)=१०० बार शलाका कुण्ड भरेगा तब १० बार प्रतिशलाका कुण्ड भरेगा और तब एक बार महाशलाकाकुण्ड भरेगा।]

[कुण्डों का चित्र अगले पृष्ठ पर देखिये]

यथा—
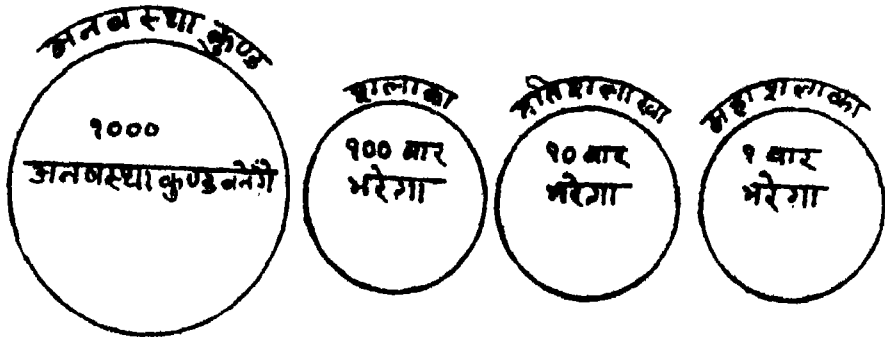
एवं सलाय-सरावया [1]पुण्णा, पडिसलाय-सरावया [1]पुण्णा, महासलाय-सरावया पुण्णा। जह दीव-समुद्दे तिण्णि[2] सरावया पुण्णा तस्संखेज्ज-दीव-समुद्द-वित्थरेण सहस्स-जोयणागाहेण[3] (सरावये) सरिसवं भरिदे तं उक्कस्स - संखेज्जयं अदिच्छिदूण[4] जहण्ण-परित्तासंखेज्जयं गंतूण जहण्ण-असंखेज्जअं पडिदं। तदो[5] एगरूवमवणीदे जादमुक्कस्स-संखेज्जयं। जम्हि जम्हि संखेज्जयं[6] मग्गिज्जदि तम्हि तम्हि अजहण्णमणुक्कस्संखेज्जयं घेत्तव्वं। तं कस्स विसओ? चोद्दस्स-पुव्विस्स।

अर्थ :-इसप्रकार शलाकाकुण्ड पूर्ण हो गये, प्रतिशलाका कुण्ड पूर्ण हो गये और महाशलाका कुण्ड पूर्ण हो गया। जिस द्वीप या समुद्रमे ये तीनो कुण्ड भर जाएँ उतने संख्यात द्वीप-समुद्रोंके विस्तार स्वरूप और एक हजार योजन गहरे गड्ढेको सरसोंसे भरदेने पर उत्कृष्ट संख्यातका अतिक्रमण कर जघन्यपरीतासंख्यात जाकर जघन्य असंख्यात प्राप्त होता है। उसमेंसे एक रूप कम कर देनेपर उत्कृष्ट संख्यातका प्रमाण होता है। जहाँ-जहाँ संख्यात खोजना हो वहाँ वहाँ अजघन्यानुत्कृष्ट (मध्यम) संख्यात ग्रहण करना चाहिए। यह किसका विषय है? यह चौदह पूर्वके ज्ञाता श्रुतकेवलीका विषय है।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. पुण्णो। २ क ज. य. उ. तिण्णि सरावया पुण्णो, जह दीप-समुद्दे संखेज्ज-दीव-समुद्द-वित्थरेण....। ३. क. ज. य. उ. गदेण। ४. द. अदिच्छि। ५. क. ज. य. उ. तदा। ६. द. क ज. य. संखेज्जयं घेत्तवं।

उक्कस्स-संख-मज्झे, इगि-समय-जुदे [1]जहण्णयमसंखं ।
तत्तो असंख - कालो, उक्कस्स - असंख - समयंतं ।।३१४।।

अर्थ :—उत्कृष्ट संख्यातमें एक समय मिलानेपर जघन्य असंख्यात होता है। इसके आगे उत्कृष्ट असंख्यात प्राप्त होने तक असंख्यात काल है ।।३१४।।

[2]जं तं असंखेज्जयं तं तिविहं, परित्तासंखेज्जयं, जुत्तासंखेज्जयं, असंखेज्जासंखेज्जयं चेदि । जं तं परित्तासंखेज्जयं तं तिविहं, जहण्ण - परित्तासंखेज्जयं, अजहण्णमणुक्कस्स-परित्तासंखेज्जयं, उक्कस्स-परित्तासंखेज्जयं चेदि । जं तं जुत्तासंखेज्जयं तं तिविहं, जहण्ण-जुत्तासंखेज्जयं, अजहण्णमणुक्कस्स-जुत्तासंखेज्जयं, उक्कस्स-जुत्तासंखेज्जयं चेदि । जं तं असंखेज्जासंखेज्जयं तं तिविहं[3], जहण्ण-असंखेज्जासंखेज्जयं, अजहण्णमणुक्कस्स-असंखेज्जासंखेज्जयं, उक्कस्स-असंखेज्जासंखेज्जयं चेदि ।

अर्थ:—जो यह असंख्यात है वह तीन प्रकार है—परीतासंख्यात, युक्तासंख्यात और असंख्यातासंख्यात । जो यह परीतासंख्यात है वह तीन प्रकारका है—जघन्य-परीतासंख्यात, अजघन्यानुत्कृष्ट-परीतासंख्यात और उत्कृष्ट-परीतासंख्यात । जो यह युक्तासंख्यात है वह भी तीन प्रकार है—जघन्ययुक्तासंख्यात, अजघन्यानुत्कृष्ट-युक्तासंख्यात और उत्कृष्ट-युक्तासंख्यात । जो यह असंख्यातासंख्यात है, वह भी तीन प्रकार है—जघन्य असंख्यातासंख्यात, अजघन्यानुत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात और उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात ।

जं तं जहण्ण-परित्तासंखेज्जयं तं विरलेदूण[4] एक्केक्कस्स रूवस्स जहण्ण परित्तासंखेज्जयं [5]दादूण अण्णोण्णब्भत्थे कदे उक्कस्स-परित्तासंखेज्जयं [6]अदिच्छेदूण जहण्ण-जुत्तासंखेज्जयं गंतूण [7]पडिदं । तदो एगरूवे अवणीदे जादं उक्कस्स-परित्तासंखेज्जयं ।

जम्हि जम्हि आवलिया [8]एक्कज्जं तम्हि तम्हि जहण्णजुत्तासंखेज्जयं घेत्तव्वं ।।

---

१. द. म. जहण्णडमसंख, ब. क. ज. य. उ. छ. जहण्णाइमसंखं । २. क. ज. य. उ. यं तं । ३. ब. उ. विविधं । ४. द. विरलोदूण । ५. क. उ. दोदूण । ६. द. अवलिच्छेत्तूण, ब. उ. आविच्छेदूण, क. अविच्छेदूण, ज. आवलिच्छेदूण । ७. ब. क. उ. परिदत्तावो, ज. पडिदत्तादा । ८. द. ब. क. ज. उ. अविियाकज्जं ।

अर्थ :—जो यह जघन्य परीतासंख्यात है उसका विरलन कर एक-एक अंक पर (वही) जघन्यपरीतासंख्यात देय देकर परस्पर गुणा करनेसे उत्कृष्ट परीतासंख्यातका उल्लंघनकर जघन्य-युक्तासंख्यात प्राप्त होता है। (जो आवली सदृश है।) अर्थात् आवलीके समय जघन्य-युक्तासंख्यात प्रमाण हैं)।

जहाँ-जहाँ एक आवलीका अधिकार हो वहाँ-वहाँ जघन्य-युक्तासंख्यात ग्रहण करना चाहिए।

जं तं जहण्ण-जुत्तासंखेज्जयं तं सयं वग्गिदो उक्कस्स-जुत्तासंखेज्जयं [1]अदिच्छिदूण जहण्णमसंखेज्जासंखेज्जयं गंतूण पडिदं। तदो एग-रूव-अवणीदे जादं उक्कस्स-जुत्ता-संखेज्जयं।

अर्थ :—जो यह जघन्य-युक्तासंख्यात है, उसका एक बार वर्ग करने पर उत्कृष्ट-युक्ता-संख्यातका उल्लंघनकर जघन्य-असंख्यातासंख्यात प्राप्त होता है। इसमेंसे एक अंक कम कर देनेसे उत्कृष्ट-युक्तासंख्यात प्राप्त होता है।

तदा जहण्णमसंखेज्जासंखेज्जयं दोप्पडि-रासिं कादूण एग-रासिं-सलाय[2]-पमाणं ठविय एग-रासिं विरलेदूण[3] एक्केक्कस्स[4] रूवस्स एग-पुंज-पमाणं[5] दादूण अण्णोण्णब्भत्थं करिय सलाय-रासिदो एग-रूवं [6]अवणेदव्वं। पुणो वि उप्पण्णरासिं विरलेदूण एक्केक्कस्स रूवस्स तमेव उप्पण्णरासिं दादूण अण्णोण्णब्भत्थं[7] कादूण सलाय-रासिदो [8]एगरूवमवणे-दव्वं। एदेण कमेण सलाय-रासी णिट्ठिदा।

अर्थ :—इसके बाद जघन्य-असंख्यातासंख्यातकी दो प्रतिराशियां कर उनमेंसे एक राशिको शलाका प्रमाण स्थापित करके और एक राशिका विरलन करके एक-एक अंकके प्रति एक-एक पुञ्ज-प्रमाण देकर परस्पर गुणा करके शलाका राशिमेंसे एक अंक कम कर देना चाहिए। इसप्रकार जो राशि उत्पन्न हो उसको पुन: विरलित कर एक-एक अंकके प्रति उसी उत्पन्न राशिको देय देकर और परस्पर गुणा करके शलाका राशिमेंसे एक अंक और कम कर देना चाहिए। इसी क्रमसे शलाका राशि समाप्त हो गई।

१. क. उ. अधिच्छिदूण ज. अधिच्छेदूणं। २ द. सलायममाण, ब. उ. सलायासमाण, क. ज. सलायासमाण। ३. द. विरलोदूण। ४. क. ज. य. उ. एक्केक्कं सरूवस्स। ५. क. ज. य. उ. समाणं। ६. क. ज. उ. अवणीदव्वं। ७. द. ब क. ज. उ. अण्णोण्णमंसप्पो। ८. द. ब. एगरूव।

णिट्ठिय-सवणंतर-रासिं दुप्पडिरासिं कादूण एय-पुंजं सलायं ठविय एयपुंजं विरलिदूण [1]एक्केक्कस्स रूवस्स उप्पण्ण-रासिं दादूण । अण्णोण्णब्भत्थं कादूण सलाय-रासिदो एयरूवं अवणेदव्वं । एदेण सरूवेण बिदिय-सलाय-पुंजं समत्तं ।

अर्थ :—उस राशिकी समाप्तिके अनन्तर उत्पन्न हुई राशिकी दो प्रतिराशियाँ करें । उनमेंसे एक पुंज शलाका रूपसे स्थापित कर और एक पुंजका विरलन कर, एक-एक अंकके प्रति उत्पन्न (हुई) राशिको देय देकर परस्पर गुणा करनेके पश्चात् शलाका राशिमेंसे एक अंक कम करना चाहिए । इस प्रक्रियासे द्वितीय शलाका राशि समाप्त हो गई ।

समत्तकाले उप्पण्ण-रासिं दुप्पडि-रासिं कादूण एयपुंजं सलायं ठविय एयपुंजं विरलिदूण एक्केक्कस्स रूवस्स उप्पण्ण-रासि-पमाणं दादूण अण्णोण्णब्भत्थं कादूण सलाय-रासीदो [2]एयरूवं अवणेदव्वं । एदेण कमेण तदिय-पुंजं णिट्ठिदं ।

अर्थ :—(द्वितीय शलाका राशिके) समाप्ति कालमें उत्पन्न राशिकी दो प्रतिराशियाँ करें । उनमेंसे एक पुञ्ज शलाका रूप स्थापित करें और एक पुञ्जको विरलित कर एक-एक अंकके प्रति उत्पन्न राशिको देय देकर परस्पर गुणा करनेके पश्चात् शलाका-राशिमेंसे एक अंक कम कर देना चाहिए । इस क्रमसे तृतीय पुंज समाप्त हो गया ।

एवं कदे[3] उक्कस्स-असंखेज्जासंखेज्जयं ण पावदि । धम्माधम्म लोगागास[4] एगजीव-पदेसा । चत्तारि वि लोगागास-मेत्ता, पत्तेय-सरीर-बादर-पदिट्ठिया[5] एदे दो वि किचूण सायरोवमं विरलीदूण विभंगदादूण अण्णोण्णब्भत्थं कदे रासि-पमाणं होदि । छुप्पेदे[6] असंखेज्जरासीओ पुव्विल्ल-रासिस्स उवरि पक्खिविदूण पुव्वं व तिण्णिवार-वग्गिद-संवग्गिदे कदे उक्कस्स-असंखेज्जासंखेज्जयं[7] ण उप्पज्जदि ।

अर्थ :—ऐसा करनेपर भी उत्कृष्ट-असंख्यातासंख्यात प्राप्त नहीं होता । (असंख्यात प्रदेशी) (१) धर्मद्रव्य, (२) अधर्मद्रव्य (३) लोकाकाश और (४) एक जीव, इन चारोंके प्रदेश लोकाकाश प्रमाण हैं । तथा (५) प्रत्येक शरीर (अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति स्वरूप यह जीव राशि एक जीवके प्रदेशोंसे असंख्यात गुणी है) और (६) बादर प्रतिष्ठित, (प्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति स्वरूप यह

---

१. क. ज. उ. एक्कोक्कस्सरूवं । २. द. ब. एयरूवस्स । ३. द. ब. क. ज. उ. कदो । ४. क. ज. उ. लोगागासा । ५. क. ज. उ. पदिट्ठियं । ६. द. ब. क. ज. उ. छक्कि पदे । ७. ब. क. असंखेज्जासंखेज्जदो ।

जीवराशि प्रत्येक शरीर वनस्पति जीव राशिसे असंख्यात गुणी है।) इन दोनों राशियोंका प्रमाण कुछ कम सागरोपम राशिका विरलनकर और उसीको देय देकर परस्पर गुणा करने पर जो राशि उत्पन्न हो उतना है (जो क्रमशः असंख्यात-लोक, असंख्यात लोक प्रमाण हैं)। इन छहों असंख्यात-राशियोंको पूर्व (तीन बार वर्गितसंवर्गित प्रक्रियासे) उत्पन्न राशिमें मिलाकर पूर्वके सदृश पुनः तीन बार वर्गित-संवर्गित करनेपर भी उत्कृष्ट-असंख्यातासंख्यात उत्पन्न नहीं होता।

तदा ठिदिबंध - ठाणाणि, ठिदिबंधज्झवसाय - ठाणाणि, कसायोदय - ठाणाणि, अणुभाग-बंधज्झवसाय-ठाणाणि, [1]जोगविभागपडिच्छेदाणि, उस्सप्पिणि-ओसप्पिणीसमयाणि च। एदाणि पक्खिविदूण पुव्वं व वग्गिदसंवग्गिदं कदे तदा उक्कस्स-असंखेज्जासंखेज्जयं अदिच्छिदूण जहण्ण - परित्ताणंतयं गंतूण पडिदं। तदो एगरूवं अवणिदे जादं उक्कस्स-असंखेज्जासंखेज्जयं। जम्हि जम्हि असंखेज्जासंखेज्जयं [2]मग्गिज्जदि तम्हि तम्हि अजहण्ण-मणुक्कस्स-असंखेज्जासंखेज्जयं घेत्तव्वं। तं कस्स विसओ? ओहिणाणिस्स।

अर्थ :—तब फिर उस राशिमें स्थितिबन्धस्थान, स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान, कषायोदय-स्थान, अनुभाग-बन्धाध्यवसायस्थान, योगोंके अविभागप्रतिच्छेद और उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी कालके समय, इन (छह) राशियोंको मिलाकर पूर्व सदृश ही वर्गित-संवर्गित करने पर उत्कृष्ट-असंख्याता-संख्यातका अतिक्रमण कर जघन्य-परीतानन्त प्राप्त होता है। इसमेंसे एक अंक कम कर देनेपर उत्कृष्ट-असंख्यातासंख्यात होता है। जहाँ-जहाँ असंख्यातासंख्यातकी खोज करना हो वहाँ-वहाँ अजघन्या-नुत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात को ग्रहण करना चाहिए। यह किसका विषय है? यह अवधि-ज्ञानीका विषय है।

उक्कस्स - असंखेज्जे, अवराणंतो हवेदि रूव - जुदे[3]।
तत्तो वड्ढदि [4]कालो, केवलणाणस्स परियंतं ॥३१५॥

अर्थ :—उत्कृष्ट असंख्यात (असंख्यातासंख्यात) में एक अंक मिला देनेपर जघन्य अनन्त होता है। उसके आगे केवलज्ञान पर्यन्त काल वृद्धिगत होता जाता है ॥३१५॥

जं तं अणंतं तं तिविहं, परित्ताणंतयं, जुत्ताणंतयं, अणंताणंतयं चेदि। [5]जं तं परित्ताणंतयं तं तिविहं, जहण्ण-परित्ताणंतयं, अजहण्णमणुक्कस्स-परित्ताणंतयं, उक्कस्स-

---

१. ज. जोगपलिच्छेदाणि। २. द. ब. उ. वग्गिज्जदि। ३. ज. य. जुदो। ४. क. ज. य. उ. काला। ५. द. ब. क. ज. उ. जुत्त।

परित्ताणंतयं चेदि । जं तं जुत्ताणंतयं तं तिविहं, जहण्ण-जुत्ताणंतयं, अजहण्णमणुक्कस्स-जुत्ता-णंतयं, उक्कस्स-जुत्ता-णंतयं चेदि । जं तं अणंताणंतयं तं तिविहं जहण्णमणंताणंतयं, अजहण्णमणुक्कस्स-अणंताणंतयं, उक्कस्स-अणंताणंतयं चेदि ।

अर्थ :—जो यह अनन्त है वह तीन प्रकार है—परीतानन्त, युक्तानन्त और अनन्तानन्त । इनमेंसे जो परीतानन्त है वह तीन प्रकार है—जघन्य परीतानन्त, अजघन्यानुत्कृष्ट परीतानन्त और उत्कृष्ट परीतानन्त । इसीप्रकार युक्तानन्त भी तीन प्रकार है—जघन्य युक्तानन्त, अजघन्यानुत्कृष्ट युक्तानन्त और उत्कृष्ट युक्तानन्त । अनन्तानन्त भी तीन प्रकार है—जघन्य अनन्तानन्त, अजघन्यानुत्कृष्ट अनन्तानन्त और उत्कृष्ट अनन्तानन्त ।

विशेषार्थ :—संख्यात, असंख्यात और अनन्तके भेद प्रभेदोंकी तालिका—

[तालिका अगले पृष्ठ पर देखिये]

तालिका : ८

संख्या प्रमाण
संख्यात
असंख्यात
अनन्त
जघन्य संख्यात
मध्यम संख्यात
उत्कृष्ट संख्यात
परीतासंख्यात
युक्तासंख्यात
असंख्यातासंख्यात
जघन्य परीतासंख्यात
मध्यम परीतासंख्यात
उत्कृष्ट परीतासंख्यात
जघन्य युक्तासंख्यात
मध्यम युक्तासंख्यात
उत्कृष्ट युक्तासंख्यात
जघन्य असंख्यातासंख्यात
मध्यम असंख्यातासंख्यात
उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात
परीतानन्त
युक्तानन्त
अनन्तानन्त
जघन्य परीतानन्त
मध्यम परीतानन्त
उत्कृष्ट परीतानन्त
जघन्य युक्तानन्त
मध्यम युक्तानन्त
उत्कृष्ट युक्तानन्त
जघन्य अनन्तानन्त
मध्यम अनन्तानन्त
उत्कृष्ट अनन्तानन्त
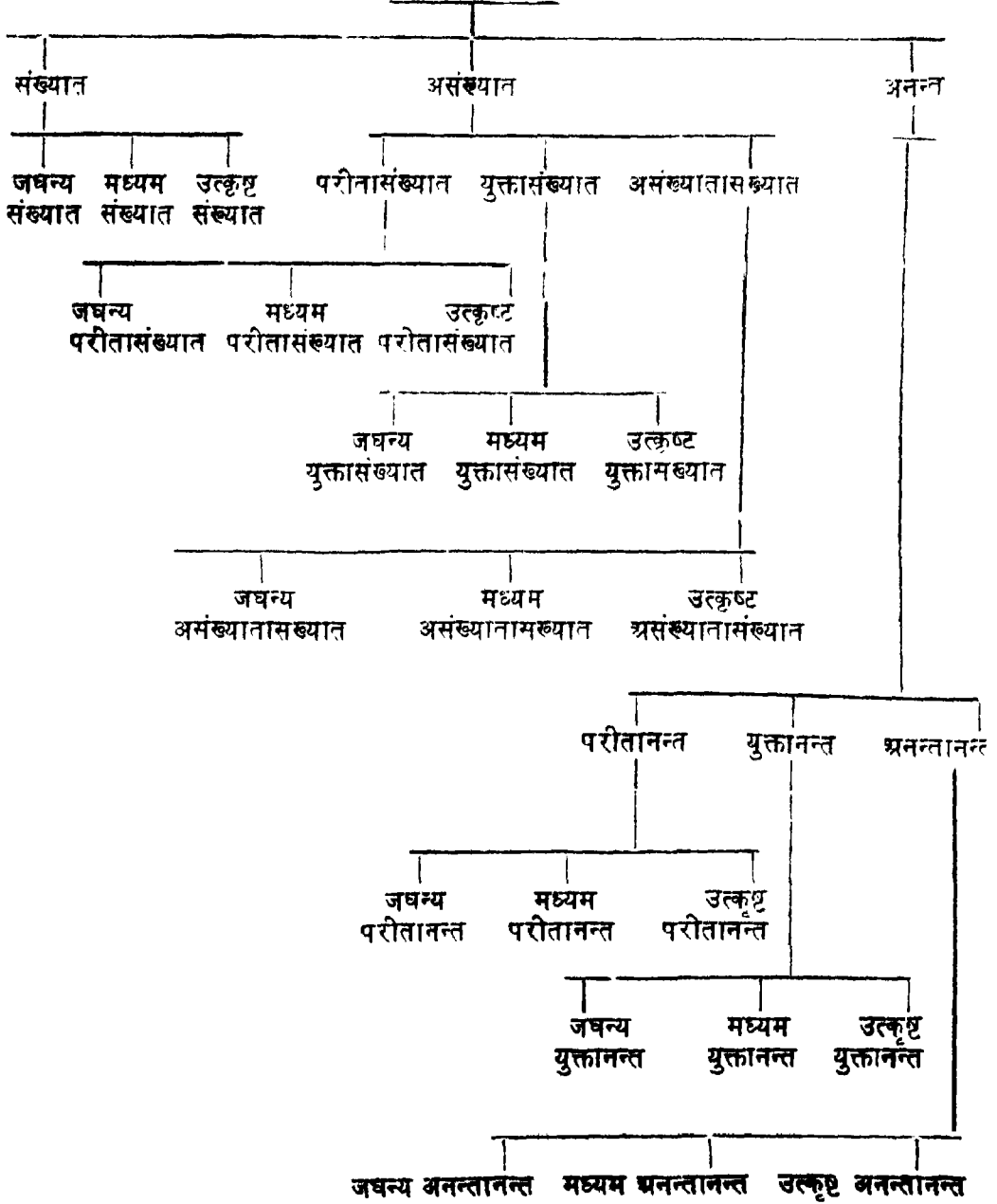
जं तं जहण्ण-परित्ताणंतयं तं विरलेदूण एक्केक्कस्स रूवस्स जहण्ण-परित्ताणंतयं दादूण अण्णोण्णब्भत्थे कदे उक्कस्स-परित्ताणंतयं अदिच्छिदूण जहण्ण-जुत्ताणंतयं गंतूण पडिदं। एवदिओ अभव्व-सिद्धिय-रासी। तदो एग-रूवे अवणीदे जादं उक्कस्स-परित्ताणंतयं। तदो जहण्ण-जुत्ताणंतयं सइ वग्गिदं उक्कस्स-जुत्ताणंतयं अदिच्छिदूण जहण्णमणंताणंतयं गंतूण पडिदं। तदो एग-रूवे अवणीदे जादं उक्कस्स-जुत्ताणंतयं। तदो जहण्णमणंताणंतयं पुव्वं व तिण्णिबार वग्गिद-संवग्गिद कदे उक्कस्स-अणंताणंतयं ण पावदि।

अर्थ :—यह जो जघन्य-परीतानन्त है, उसका विरलन कर और एक-एक अंकके प्रति जघन्य-परीतानन्त (ही) देय देकर परस्पर गुणा करनेपर उत्कृष्ट-परीतानन्तका उल्लंघन कर जघन्य-युक्तानन्त प्राप्त होता है। इतनी ही अभव्यराशि है (जघन्य युक्तानन्त की जितनी संख्या है उतनी संख्या प्रमाण ही अभव्य राशि है)। इस जघन्य युक्तानन्तमेंसे एक अंक कम करने पर उत्कृष्ट-परीतानन्त होता है। तत्पश्चात् जघन्ययुक्तानन्तका एक बार वर्ग करनेपर उत्कृष्टयुक्तानन्तको लांघकर जघन्य-अनन्तानन्त प्राप्त होता है। इसमेंसे एक अंक कम कर देनेपर उत्कृष्ट-युक्तानन्तकी प्राप्ति होती है। पश्चात् जघन्य-अनन्तानन्त रूप राशि को तीन बार वर्गित-संवर्गित करनेपर (भी) उत्कृष्ट-अनन्तानन्त प्राप्त नहीं होता।

सिद्धा णिगोद-जीवा, वणप्फदि कालो य पोग्गला चेव।
[1]सव्वमलोगागासं, [2]छप्पेदे णंत - पक्खेवा ।।३१६।।

अर्थ :—सिद्ध (जो सम्पूर्ण जीव राशिके अनन्तवे भाग प्रमाण हैं), निगोद जीव (जो सिद्धराशिसे अनन्तगुणी और पृथिवीकाय आदि चार स्थावर, प्रत्येक वनस्पति एवं त्रस इन तीन राशियोंसे रहित संसार राशि प्रमाण हैं), वनस्पति (प्रत्येक वनस्पति सहित निगोद वनस्पति), पुद्गल (जो जीव राशिसे अनन्तगुणा है), काल (जो पुद्गलसे अनन्तगुणे हैं ऐसे कालके समय) और अलोकाकाश (जो काल द्रव्यसे अनन्तगुणे हैं) ये छह अनन्त प्रक्षेप हैं ।।३१६।।

ताणि पक्खिदूण पुव्वं व तिण्णिवारे वग्गिद - संवग्गिदं कदे, तदो उक्कस्स-अणंताणंतयं ण पावदि। तदो धम्मट्ठियं अधम्मट्ठियं अगुरुलहुगुणं अणंताणंतं पक्खिविदूण पुव्वं व तिण्णिवारे वग्गिद - संवग्गिदं कदे उक्कस्स - अणंताणंतयं ण उप्पज्जदि। तदो

---

१. द. ब. क. ज. उ. सव्वं वमलोगागासं। २. द. ब. थप्पेदि, क. ज. उ. छप्पेदि।

केवलणाण-केवलदंसणस्स वाणंता - भागा तस्सुवरि 'पक्खित्ते उक्कस्स-अणंताणंतयं उप्पण्णं ।

अत्थि तं भायणं णत्थि तं दव्वं एवं भणिदो । एवं वग्गिय उप्पण्ण-सव्व-वग्ग-रासीणं पुंजं केवलणाण-केवलदंसणस्स अणंतिमभागं होदि तेण कारणेण अत्थि तं भाजणं णत्थि तं दव्वं । जम्हि जम्हि अणंताणंतयं [2]मग्गिज्जदि तम्हि तम्हि अजहण्णमणुक्कस्स-अणंताणंतयं घेत्तव्वं । तं कस्स विसओ ? केवलणाणिस्स ।

अर्थः इन छहों राशियोंको मिलाकर पूर्वके सदृश तीन बार वर्गित-संवर्गित करनेपर उत्कृष्ट अनन्तानन्त प्राप्त नहीं होता, अतः इस राशिमें, धर्म और अधर्म द्रव्योंमें स्थित अनन्तानन्त अगुरुलघुगुण (के अविभागीप्रतिच्छेदों) को मिलाकर पूर्वके सदृश तीन बार वर्गित-संवर्गित करना चाहिए । इसके पश्चात् भी जब उत्कृष्ट अनन्तानन्त उत्पन्न नहीं होता, तब केवलज्ञान अथवा केवल-दर्शनके अनन्त बहुभागको (अर्थात् केवलज्ञानके अविभागी प्रतिच्छेदोंमेंसे उपर्युक्त महाराशि घटा देने-पर जो अवशेष रहे वह) उसी राशि में मिला देनेपर (केवलज्ञानके अविभागीप्रतिच्छेदोंके प्रमाण स्वरूप) उत्कृष्ट अनन्तानन्त प्राप्त होता है । यथा—

मानलो :—उपर्युक्त सम्पूर्ण प्रक्रियासे उत्पन्न होने वाली राशि १०० है, जो मध्यम अनन्तानन्त स्वरूप है, इसे उत्कृष्ट अनन्तानन्त स्वरूप १००० में से घटा देनेपर (१०००—१००)= ९०० शेष रहे, इस शेष (९००) को १०० में जोड़कर (९०० + १००)=१००० स्वरूप उत्कृष्ट अनन्तानन्तका प्रमाण प्राप्त हो जाता है । उस पूर्वोक्त राशिमें मिलाने पर उत्कृष्ट अनन्तानन्त उत्पन्न हुआ (संख्या प्रमाण में इससे बड़ा और कोई प्रमाण नहीं है) ।

अर्थ —वह भाजन है द्रव्य नहीं है, इस प्रकार कहा गया है, क्योंकि इस प्रकार वर्गसे उत्पन्न सर्व वर्ग राशियोंका पुञ्ज केवलज्ञान-केवलदर्शनके अनन्तवें भाग है, इसी कारणसे वह भाजन है, द्रव्य नहीं है । जहाँ-जहाँ अनन्तानन्तका ग्रहण करना हो वहाँ-वहाँ अजघन्यानुत्कृष्ट-अनन्तानन्तका ग्रहण करना चाहिए । यह किसका विषय है ? यह केवलज्ञानीका विषय है ।

अवसर्पिणी एवं उत्सर्पिणी कालोंका स्वरूप एवं उनका प्रमाण—

भरहक्खेत्तम्मि इमे, अज्जा-खंडम्मि काल-परिभागा[3] ।
अवसप्पिणि -[4]उस्सप्पिणि - पज्जाया दोण्णि होंति पुढं ॥३१७॥

---

१. द. ब. क. ज. उ. पक्खित्तो । २. द. ब. क. ज. उ. वग्गिज्जदि । ३. द. परिभाया । ४. य. ओस्सप्पिणि ।

अर्थ :—भरतक्षेत्रके आर्यखण्डमें ये कालके विभाग हैं। यहाँ पृथक्-पृथक् अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी रूप दोनों ही कालकी पर्यायें होती है ।।३१७।।

णर-तिरियाणं आऊ, [1]उच्छेह-विभूवि-पहुदियं सव्वं ।
अवसप्पिणिए ह्रायदि, उस्सप्पिणियासु वड्ढेदि ।।३१८।।

अर्थ :—अवसर्पिणी कालमें मनुष्य एवं तिर्यञ्चोंकी आयु, शरीरकी ऊँचाई एवं विभूति आदि सब ही घटते रहते हैं तथा उत्सर्पिणी कालमें बढते रहते हैं ।।३१८।।

अद्धारपल्ल-सायर - उवमा दस होंति[2] कोडिकोडीओ ।
अवसप्पिणि - परिमाणं, तेत्तियमुस्सप्पिणी - कालो ।।३१९।।

अर्थ —अद्धापल्योंसे निर्मित दस कोड़ाकोडी सागरोपम-प्रमाण अवसर्पिणी और इतना ही उत्सर्पिणी काल भी है ।।३१९।।

दोण्णि वि मिलिदे कप्पं, छब्भेदा होंति तत्थ पत्तेक्कं ।
सुसमसुसमं च सुसमं, तइज्जयं [3]सुसमदुस्समयं ।।३२०।।

दुस्समसुसमं दुस्समममदिदुस्समयं च तेसु पढमम्मि ।
चत्तारि - सायरोवम - कोडीकोडीओ परिमाणं ।।३२१।।

सुसमम्मि तिण्णि जलही-उवमाणं होंति कोडिकोडीओ ।
दोण्णि तदियम्मि तुरिमे, बादाल-सहस्स-विरहिदो एक्को ।।३२२।।

इगिवीस-सहस्साणि, वासाणि [4]दुस्समम्मि परिमाणं ।
अदिदुस्समम्मि काले, तेत्तियमेत्तं मि णादव्वं ।।३२३।।

अर्थ :—इन दोनोंको मिलानेपर बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाणका एक कल्पकाल होता है। अवसर्पिणी और उत्सर्पिणीमेंसे प्रत्येक के छह-छह भेद होते हैं—सुषमासुषमा, सुषमा, सुषमा-दुष्षमा, दुष्षमासुषमा, दुष्षमा और अतिदुष्षमा। इन छहों कालोंमेंसे प्रथम सुषमासुषमा चार

---

१ ब. उच्छेहा। २ द. हुंति, य. होदि। ३. द. सुसुमदुस्समयं। ४. द. ब. क. ज. ठ. दुस्सहम्मि, य. दुस्सयम्मिं।

कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण, सुषमा तीन कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण, तीसरा दो कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण, चौथा बयालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण, पाँचवाँ दुष्षमा काल इक्कीस हजार वर्ष प्रमाण और अतिदुष्षमा काल भी इतने ही (इक्कीस हजार) वर्ष प्रमाण जानना चाहिए ।।३२०-३२३।।
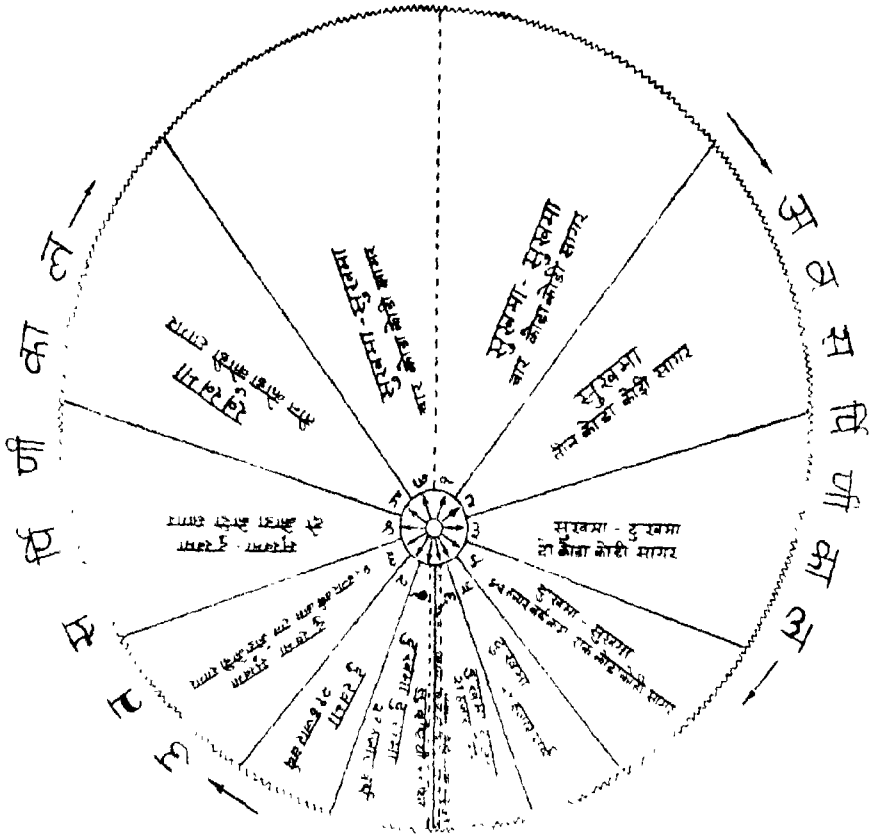
पंच मेरु सम्बंधी
पाँच भरत और पाँच ऐरावत क्षेत्रों में
अवसर्पिणी व उतसर्पिणी काल चक्र

सुषमासुषमा कालका निरूपण—

सुसमसुसमम्मि [1]काले, [2]भूमी रज-धूम-जलण-हिम-रहिदा ।
कंडिय [3]अब्भसिला - विच्छियादि - कीडोवसग्ग-परिचत्ता ।।३२४।।

णिम्मल-दप्पण-सरिसा[4], णिंदिद - दव्वेहि विरहिदा तीए ।
सिकदा हवेदि [5]दिव्वा, तणु-मण-णयणाण सुह-जणणी ।।३२५।।

अर्थ :—सुषमासुषमा कालमें भूमि रज, धूम, दाह और हिमसे रहित साफ-सुथरी, ओलावृष्टि तथा बिच्छू आदि कीड़ोंके उपसर्गसे रहित निर्मल दर्पणके समान, निन्द्यपदार्थोंसे रहित दिव्य-वालुकामय होती है जो तन-मन और नेत्रोंको सुख उत्पन्न करती है ।।३२४-३२५।।

विप्फुरिद-पंच-वण्णा, सहाव-मउवा य महुर-रस-जुत्ता ।
चउ-अंगुल-परिमाणा[6], तुणं[7] पि जाएदि सुरहि-गंधड्ढा[8] ।।३२६।।

अर्थ :—उस पृथिवी पर पाँच प्रकारके वर्णोंसे स्फुरायमान, स्वभावसे मृदुल, मधुर रससे युक्त, सुगन्धसे परिपूर्ण और चार अंगुल प्रमाण ऊँचे तृण उत्पन्न होते हैं ।।३२६।।

तीए [9]गुच्छा गुम्मा, कुसुमंकुर-फल-पवाल-परिपुण्णा ।
बहुओ विचित्त - वण्णा, रुक्ख - समूहा समुत्तुंगा ।।३२७।।

अर्थ :—उस कालमें पृथिवी पर गुच्छा, गुल्म (झाड़ी), पुष्प, अंकुर, फल एवं नवीन पत्तोंसे परिपूर्ण, विचित्र वर्णवाले और ऊँचे वृक्षोंके बहुतसे समूह होते हैं ।।३२७।।

कल्हार-कमल-कुवलय-कुमुदुज्जल-जल-पवाह-पहहत्था[10] ।
पोक्खरणी - वावीओ, मअरादि[11] - विवज्जिया होंति ।।३२८।।

अर्थ :—कल्हार (सफेद कमल), कमल, कुवलय और कुमुद (कमलपुष्पों) एवं उज्ज्वल जल-प्रवाहसे परिपूर्ण तथा मकरादि जल-जन्तुओंसे रहित पुष्करिणी और वापिकाएँ होती हैं ।।३२८।।

---

१. द. काल, उ. कालो । २. द. ब. क. ज. उ. भूमि । ३. द. ब. क. ज. उ. सलाइं । ४. ब. उ. सरसा । ५. द. ब. क. ज. य. उ. दव्वा । ६. क. ज. द. य. उ. परिमाणं । ७. क. य. उ. ज. द. ब. भणं ति । ८. क. य. उ. गंधट्टं । ९. द. ज. य. गच्छा । १०. द. ब. क. ज. य. उ. पवहत्थो । ११. द. ब. क. ज. य. उ. ममरादि ।

पोक्खरणी-पहुदीणं, चउ-तड-भूमीसु रयण-सोवाणा[1] ।
तेसु[1] वर-पासादा[2], सयणासण-णिवह-परिपुण्णा ॥३२९॥

अर्थ :– (इन) पुष्करिणी आदिककी चारों तट-भूमियोंमें रत्नोंकी सीढ़ियाँ होती है। उनमें शय्या एवं आसनोंके समूहोंसे परिपूर्ण उत्तम भवन हैं ॥३२९॥

णिस्सेस-वाहि-णासण-अमिदोवम[3]-विमल-सलिल-परिपुण्णा ।
रेहंति दिग्घियाओ, जल-कीडण-दिव्व-दव्व-जुदा ॥३३०॥

अर्थ :—सम्पूर्ण व्याधियोको नष्ट करनेवाले अमृतोपम निर्मल जलसे परिपूर्ण और जल-क्रीड़ाके निमित्तभूत दिव्य द्रव्योंसे संयुक्त दीर्घिकाएँ (वापिकाएँ) शोभायमान होती हैं ॥३३०॥

अइमुरमाण भवणा, सयणासण-सोहिदा सुपासादा ।
विविचित्तं [4]भासंते, णिरूवमं भोगभूमीए ॥३३१॥

अर्थ :—भोगभूमिमें (भोगभूमियोंके) अत्यन्त रमणीय भवन और उत्तम प्रासाद अनेक प्रकारकी शय्याओं एवं अनुपम आसनोंसे सुन्दर प्रतिभासित होते है ॥३३१॥

धरणिधरा उत्तुंगा[5], कंचण-वर-रयण-णियर-परिणामा ।
णाणाविह-कप्पद्दुम[6]-संपुण्णा दिग्घिआदि-जुदा ॥३३२॥

अर्थ :—(वहाँ पर) स्वर्ण एवं उत्तम रत्न समूहोंके परिणाम रूप, नाना प्रकारके कल्प-वृक्षोंसे परिपूर्ण तथा दीर्घिकादिक (सरोवरों) से संयुक्त उन्नत पर्वत है ॥३३२॥

धरणी वि पंचवण्णा, तणु-मण-णयणाण णंदणं कुणइ ।
वज्जिदणील-मरगय-मुत्ताहल-[7]पउमराय-फलिह-जुदा ॥३३३॥

अर्थ :—पंचवर्ण वाली और हीरा, इन्द्रनील, मरकत, मुक्ताफल, पद्मराग तथा स्फटिक मणिसे संयुक्त वहाँ की पृथिवी भी तन, मन, एवं नयनों को आनन्द देती है ॥३३३॥

---

१. ब. क. उ. सोवाणो । २. द ब. क. ज. उ वर पासादो, य. चर पासादो । ३. द. ब. क. ज. य. उ. अविदावम । ४. द. ब. भासंतो, क ज. य उ. पभासंतो । ५. द. ज. उत्तंगा । ६. द. ब. क. ज. य. उ. कप्पदुमा । ७. द. ब. क. ज. उ. पउररायपलिह ।

पवराओ वाहिणीओ, दो-तड-सोहंत-रयण-सोवाणा[1] ।
अमय-वर-खीर-पुण्णा, मणिमय सिकदादि सोहंति ॥३३४॥

अर्थ :—(वहाँ) उभय तटोंपर शोभायमान रत्नमय सीढ़ियोंसे संयुक्त और अमृत सदृश उत्तम क्षीर (जल) से परिपूर्ण श्रेष्ठ नदियाँ मणिमय बालुका से शोभायमान होती हैं ॥३३४॥

संख-पिपीलिय-मक्कुण-गोमच्छी-दंस-मसय-किमि-पहुदी ।
वियलिंदिया ण होंति हु, णियमेणं पढम-कालम्मि ॥३३५॥

अर्थ :—प्रथम (सुषमसुषमा) कालमें नियमसे शंख, चींटी, खटमल, गोमक्षिका, डाँस, मच्छर और कृमि आदिक विकलेन्द्रिय जीव नहीं होते ॥३३५॥

णत्थि असण्णी जीवो, णत्थि तहा सामि-भिच्च भेदो[2] य ।
कलह - महाजुद्धादी, ईसा - रोगादि ण हु होंति ॥३३६॥

अर्थ :— इस कालमें असंज्ञी जीव नहीं होते, स्वामी और भृत्यका भेद भी नहीं होता, कलह एवं भीषण युद्ध आदि तथा ईर्षा और रोग आदि भी नहीं होते हैं ॥३३६॥

रत्ति - दिणाणं भेदो, तिमिरादव-सीद-वेदणा-णिंदा ।
परदार - रदी परधण - चोरी[3] या णत्थि णियमेण ॥३३७॥

अर्थ :—प्रथम कालमें नियमसे रात-दिनका भेद, अन्धकार, गर्मी एवं शीतकी वेदना, निन्दा, परस्त्री रमण और परधन हरण नहीं होता ॥३३७॥

जमलाजमल-पसूदा, वर-वेंजण-लक्खणेहि परिपुण्णा ।
बदर - पमाणाहारं, अट्ठम - भत्तेसु भुंजंति ॥३३८॥

अर्थ :—इस कालमें युगल-युगलरूपसे उत्पन्न हुए (स्त्री-पुरुष) उत्तम व्यञ्जनों (तिल-मश आदि) और चिह्नों (शंख-चक्र आदि) से परिपूर्ण होते हुए अष्टम भक्तमें (चौथे दिन) बेरके बराबर आहार ग्रहण करते हैं ॥३३८॥

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. मोहाणो । २. द. ब. क. ज. य. भेदाओ । उ. भेदाउ । ३. द. ब. क. ज. य. उ. चारी ।

तस्सि काले छ च्चिय[1], चाव-सहस्साणि[2] देह-उस्सेहो ।
तिण्णि पलिदोवमाइं, आऊणि णराण णारीणं ।।३३९।।

अर्थ :—इस कालमें पुरुष और स्त्रियों के शरीर की ऊँचाई छह-हजार धनुष एवं आयु तीन पल्य प्रमाण होती है ।।३३९।।

पुट्ठीए होंति अट्ठी, छप्पण्णा समहिया य दोण्णि सया ।
सुसमसुसमम्मि काले, णराण णारीण पत्तेक्कं ।।३४०।।

अर्थ:—सुषमासुषमा कालमें पुरुष और स्त्रियोंमेंसे प्रत्येकके पृष्ठ भागमें दो सौ छप्पन हड्डियाँ होती है ।।३४०।।

भिण्णिंद-णील-केसा, णिरुवम-लावण्ण-रूव-परिपुण्णा ।
सुइ - सायर - मज्झगया, णीलुप्पल-सुरहि-णिस्सासा ।।३४१।।

अर्थ :—(इस कालमें मनुष्य) भिन्न इन्द्रनीलमणि अर्थात् खण्डित इन्द्रनीलमणि जैसे बीचसे गहरी नीली (काली) होती है उसके सदृश गहरे काले केशवाले, अनुपम लावण्यरूपसे परिपूर्ण सुखसागर में निमग्न और नीलकमल सदृश सुगन्धित निश्वास से युक्त होते है ।।३४१।।

तब्भोगभूमि-जादा, णव-णाग-सहस्स-सरिस-बल-जुत्ता ।
आरत्त - पाणि - पादा, णवचंपय - कुसुम - गंधड्ढा ।।३४२।।

मद्दव - अज्जव - जुत्ता, मंदकसाया सुसील - संपण्णा ।
आदिम - संहणण - जुदा, समचउरस्संग - संठाणा ।।३४३।।

बाल-रवी सम-तेया, कवलाहारा वि विगद-णीहारा ।
ते जुगल - धम्म - जुत्ता, परिवारा णत्थि तक्काले ।।३४४।।

गाम-णयरादि सव्वं, ण होदि ते होंति दिव्व-कप्पतरू ।
णिय - णिय - मण - संकप्पिद-वत्थूणिं देंति जुगलाणं ।।३४५।।

---

१. द. ब. क. ज य. उ. छव्विह् । २. द. ज. सहस्सा, य. सहस्सो ।

अर्थ :—उस भोगभूमिमे उत्पन्न हुए मनुष्य नौ हजार हाथियों के बलके सदृश बलसे युक्त, किंचित् लाल हाथ-पैर वाले, नव-चम्पकके फूलोंकी सुगन्धसे व्याप्त, मार्दव एवं आर्जव (गुणों) से संयुक्त, मन्दकषायी, सुशील (गुण से) सम्पूर्ण, आदि (वज्रवृषभनाराच) संहनन से युक्त, समचतुरस्र-शरीर-संस्थानवाले, उदित होते हुए सूर्य सदृश तेजस्वी, कवलाहार करते हुए भी मल-मूत्रसे रहित और युगलधर्म युक्त होते है। इस कालमें नर-नारीके अतिरिक्त अन्य परिवार नहीं होता। ग्राम एवं नगरादि सब नहीं होते, मात्र दिव्य कल्पवृक्ष होते हैं, जो युगलों को अपनी-अपनी मन इच्छित (संकल्पित) वस्तुएँ दिया करते है ।।३४२-३४५।।

दस प्रकारके कल्पवृक्ष—

पाणंग[1] - तूरियंगा, भूसण - वत्थंग - भोयणंगा य ।
आलय - दीविय - भायण - माला-तेजंग-आदि-कप्पतरू ।।३४६।।

अर्थ :—(भोगभूमिमें) पानाङ्ग, तूर्याङ्ग, भूषणाङ्ग, वस्त्राङ्ग, भोजनाङ्ग, आलयाङ्ग, दीपाङ्ग, भाजनाङ्ग, मालाङ्ग और तेजाङ्ग आदि कल्पवृक्ष होते हैं ।।३४६।।

पाणं महुर - सुसादं, छ-रसेहि जुदं पसत्थ - मइसीदं ।
बत्तीस - भेद - जुत्तं, पाणंगा देंति तुट्ठि - पुट्ठियरं ।।३४७।।

अर्थ :—(इनमेंसे) पानाङ्ग जातिके कल्पवृक्ष (भोगभूमिजोंको) मधुर, सुस्वादु, छह रसोंसे युक्त, प्रशस्त, अतिशीतल तथा तुष्टि और पुष्टिकारक बत्तीस प्रकारके पेय (द्रव्य) दिया करते हैं ।।३४७।।

तूरंगा वर - वीणा, [2]पडुपडह - मुइंग - झल्लरी - संखा ।
दुंदुभि - भंभा - भेरी - काहल-पमुहाइ देंति [3]वज्जाइं ।।३४८।।

अर्थ :—तूर्याङ्ग जातिके कल्पवृक्ष उत्तम वीणा, पटु पटह, मृदङ्ग, झालर, शंख, दुन्दुभि, भम्भा, भेरी और काहल इत्यादि भिन्न-भिन्न प्रकारके बाजे (वादित्र) देते है ।।३४८।।

तरुओ वि भूसणंगा, कंकण - कडिसुत्त - हार - केयूरा ।
मंजीर - कडय - कुंडल - तिरीड - मउडादियं देंति ।।३४९।।

अर्थ :—भूषणाङ्ग जातिके कल्पवृक्ष कंकण, कटिसूत्र, हार, केयूर, मञ्जीर, कटक, कुण्डल, किरीट और मुकुट इत्यादि आभूषण प्रदान करते हैं ।।३४९।।

---

१. क. ज. य. उ. पाणंगा । २. ब. पटह । ३. द ब. क. ज. य. उ. तूरंगा ।

वत्थंगा णिच्चं [1]पडचीण-सुवर-खउम-पहुदि-वत्थाणि ।
मण - णयणाणंदकरं, णाणा - वत्थादि ते देंति ।।३५०।।

अर्थ :—वस्त्राङ्ग जातिके कल्पवृक्ष नित्य चीनपट (सूती वस्त्र) एवं उत्तम क्षौम (रेशमी) आदि वस्त्र तथा मन और नेत्रोंको आनन्दित करने वाले नाना प्रकारके अन्य वस्त्र देते हैं ।।३५०।।

सोलस - विहमाहारं, सोलसभेयाणि वेंजणाणि पि ।
चोद्दसविह - सूपाइं, खज्जाणि विगुणचउवण्णं ।।३५१।।
सायाणं च पयारे, तेसट्ठी - संजुदाणि ति - सयाणि ।
रस - भेदा तेसट्ठी, देंति फुडं भोयणंग - दुमा ।।३५२।।

अर्थ :—भोजनाङ्ग जातिके कल्पवृक्ष सोलह प्रकारका आहार, सोलह प्रकारके व्यञ्जन, चौदह प्रकारके सूप (दाल आदि) चउवनके दुगुने (१०८) प्रकारके खाद्य पदार्थ, तीनसौ तिरेसठ प्रकारके स्वाद्य पदार्थ एवं तिरेसठ प्रकारके रस भेद पृथक्-पृथक् दिया करते हैं ।।३५१-३५२।।

सत्थिय - णंदावत्तं, पमुहा जे के वि दिव्व - पासादा ।
सोलस - भेदा रम्मा, देंति हु ते आलयंग - दुमा ।।३५३।।

अर्थ :—आलयाङ्ग जातिके कल्पवृक्ष, स्वस्तिक एवं नन्द्यावर्त आदि सोलह प्रकारके रमणीय दिव्य भवन दिया करते हैं ।।३५३।।

दीवंग-दुमा [2]साहा - पवाल - फल - कुसुममंकुरादीहिं ।
दीवा इव पज्जलिदा, पासादे देंति उज्जोवं ।।३५४।।

अर्थ :—दीपाङ्ग जातिके कल्पवृक्ष प्रासादोंमें शाखा, प्रवाल, फल, फूल और अंकुरादिके द्वारा जलते हुए दीपकोंके सदृश प्रकाश देते हैं ।।३५४।।

भायणअंगा कंचण - बहुरयण - विणिम्मियाइ थालाइं ।
भिंगार - कलस - गग्गरि - चामर पीढादियं देंति ।।३५५।।

अर्थ :—भाजनाङ्ग जातिके कल्पवृक्ष स्वर्ण एवं बहुत प्रकारके रत्नोंसे निर्मित थाल, झारी, कलश, गागर, चामर और आसनादिक प्रदान करते हैं ।।३५५।।

---

१. द. ब क. ज. य. उ. पडिवीण ।   २. द. सोहा ।

वल्ली-तरु-गुच्छ-लदुब्भवाण[1] सोलस - सहस्स - भेदाणं ।
मालंग - दुमा देंति हु, कुसुमाणं विविह - मालाओ ॥३५६॥

अर्थ :—मालाङ्ग जातिके कल्पवृक्ष वल्ली, तरु, गुच्छों और लताओंसे उत्पन्न हुए सोलह हजार भेद रूप पुष्पोंकी विविध मालाएँ देते हैं ॥३५६॥

तेजंगा मज्झंदिण-दिणयर-कोडीण किरण-संकासा ।
णक्खत्त - चंद - सूर - प्पहुदीणं कंति - संहरणा[2] ॥३५७॥

अर्थ :—तेजाङ्ग जातिके कल्पवृक्ष मध्यंदिनके करोड़ों सूर्योंकी किरणोंके सदृश होते हुए नक्षत्र, चन्द्र और सूर्यादिककी कान्तिका संहरण करते हैं ॥३५७॥

ते सव्वे कप्पदुमा, ण [3]वणप्पदी णो वेंतरा देवा ।
[4]णवरि पुढवि - सरूवा, पुण्ण - फलं देंति जीवाणं ॥३५८॥

अर्थ :—वे सर्व कल्पवृक्ष न तो वनस्पति ही हैं और न कोई व्यन्तर देव हैं । किन्तु पृथिवी रूप होते हुए वे वृक्ष जीवोंको उनके पुण्य (कर्म) का फल देते हैं ॥३५८॥

भोग भूमि में दस प्रकार के कल्प वृक्षों से भोग सामग्री

---
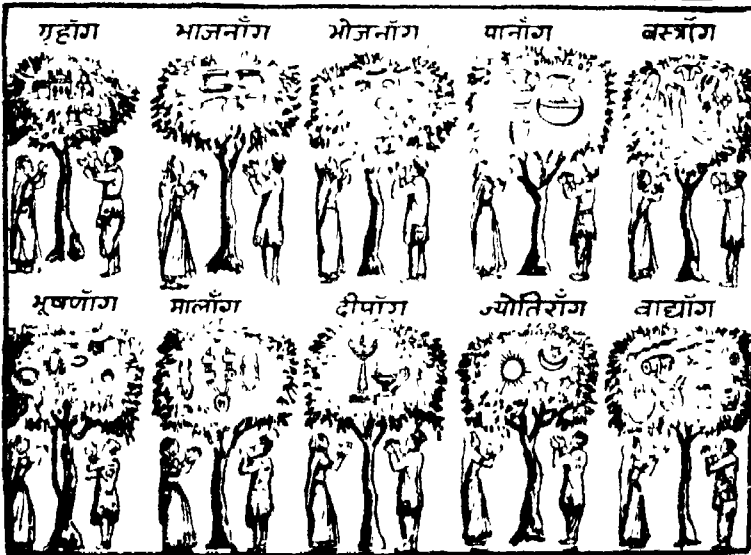
१. द. ब. लदुब्भवरण, क. ज. य. उ. लदुब्भवरणा । २. द. ब. क. ज. य. उ. संहरणं । ३. द. क. ज. वरणप्पदीणो ण वेंतरा, उ वरणप्फदी । ४ द. ब. क. ज. य. उ. णवरो ।

गीद - रवेसुं सोत्तं, रूवे चक्खू सुसोरहे घाणं।
जीहा विविह - रसेसुं, फासे फासिंदियं रमइ ॥३५९॥

अर्थ :—भोगभूमिजोंकी श्रोत्र-इन्द्रिय गीतोंकी ध्वनिमें, चक्षु रूपमें, घ्राण सुन्दर सौरभमें, जिह्वा विविध प्रकारके रसोंमें और स्पर्शन इन्द्रिय स्पर्शमें रमण करती है ॥३५९॥

इय अण्णोण्णासत्ता, ते जुगला वर णिरंतरे भोगे[1]।
सुलभे वि ण सत्तित्ति, इंदिय - विसएसु पावंति ॥३६०॥

अर्थ :—इसप्रकार परस्पर आसक्त हुए वे युगल (नर-नारी) उत्तम भोग-सामग्रीके निरन्तर सुलभ होने पर भी इन्द्रिय-विषयोंमें तृप्त नहीं हो पाते ॥३६०॥

जुगलाणि अणंतगुणं, भोगं चक्कहर-भोग-लाहादो[2]।
भुंजंति जाव[3] आउं, कदलीघादेण रहिदाणि ॥३६१॥

अर्थ :— भोगभूमियोंके वे युगल कदलीघात-मरणसे रहित होते हुए आयु-पर्यन्त चक्रवर्तीके भोग-लाभकी अपेक्षा अनन्तगुणे भोग भोगते हैं ॥३६१॥

कप्पदुम - दिण्ण - वत्थुं, घेत्तूण विकुव्वणाए बहुदेहे।
कादूणं ते जुगला, अणेय - भोगाइं[4] भुंजंति ॥३६२॥

अर्थ :— वे युगल, कल्पवृक्षों द्वारा दी गई वस्तुओंको ग्रहण करके और विक्रिया द्वारा बहुत प्रकारके शरीर बना कर अनेक भोग भोगते हैं ॥३६२॥

पुरिसा वर - मउड[5]- धरा, देविंदादो वि सुंदरायारा।
अच्छर - सरिसा इत्थी, मणि-कुंडल-मंडिय-कवोला ॥३६३॥

अर्थ :—(वहाँ पर) उत्तम मुकुटको धारण करने वाले पुरुष इन्द्रसे भी अधिक सुन्दराकार होते हैं और मणिमय कुण्डलोंसे विभूषित कपोलों वाली स्त्रियाँ अप्सराओंके सदृश होती हैं ॥३६३॥

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. भागे। २. द. ब क. ज. उ भोगयाहादो, य. भागयाहादो। ३. द. ब. जाद, क. ज. य. उ. जाव। ४. क. भोगाय, ज. भोगाइ। ५. द. ब. क. ज. उ. मौडधरा।

मउडं कुंडल - हारा, मेहल - पालंब - बम्हसुत्ताइं ।
अंगद - कडय - प्पहुदी, होंति सहावेण आभरणा ॥३६४॥

अर्थ :—भोगभूमिजोंके मुकुट, कुण्डल, हार, मेखला, प्रालम्ब, ब्रह्मसूत्र, अंगद और कटक इत्यादिक आभूषण स्वभावसे ही हुआ करते हैं ॥३६४॥

कुंडल - मंगद[1] - हारा, मउडं केयूर - पट्ट - कडयाइं ।
पालंब - सुत्त - णेउर - दो-मुद्दी-मेहलासि-छुरियाओ[2] ॥३६५॥

[3]गेवेज्ज कण्णपूरा, पुरिसाणं होंति सोलसाभरणा ।
चोद्दस इत्थीआणं, छुरिया - करवाल - हीणाइं ॥३६६॥

अर्थ :—भोगभूमिमें [1]कुण्डल, [2]अङ्गद, [3]हार, [4]मुकुट, [5]केयूर, [6]पट्ट, (भालपट्ट), [7]कटक, [8]प्रालम्ब, [9]सूत्र (ब्रह्मसूत्र), [10]नूपुर, [11]दो मुद्रिकाएँ, [12]मेखला, [13]असि (करवाल), [14]छुरी, [15]ग्रैवेयक और [16]कर्णपूर, ये सोलह आभरण पुरुषवर्ग के होते हैं। इनमेसे छुरी एवं करवालसे रहित शेष चौदह आभरण महिलावर्गके होते हैं ॥३६५-३६६॥

[4]कडय-कडि-सुत्त - णेउर - तिरीड-पालंब-सुत्त-मुद्दीओ ।
हारो कुंडल - मउडद्धहार - चूडामणी वि गेविज्जा ॥३६७॥

अंगद - छुरिया खग्गा, पुरिसाणं होंति सोलसाभरणा ।
चोद्दस इत्थीण तहा, छुरिया - खग्गेहि परिहीणा ॥३६८॥

पाठान्तरं ॥

अर्थ :—[1]कड़ा, [2]कटिसूत्र, [3]नूपुर, [4]किरीट, [5]प्रालम्ब, [6]सूत्र, [7]मुद्रिका, [8]हार, [9]कुण्डल, [10]मुकुट, [11]अर्धहार, [12]चूड़ामणि, [13]ग्रैवेय, [14]अंगद, [15]छुरी और [16]तलवार ये सोलह आभरण पुरुषोंके तथा छुरी और तलवारसे रहित शेष चौदह आभरण स्त्रियों के होते हैं ॥३६७-३६८॥

पाठान्तर ।

---

१. क. ज. उ. मंगल, य. मडल ।　२. द. ब. क. ज. य. उ. सुछुरियाओ ।　३. ब. गेवज्जा ।
४. द. ब. क. ज. य. उ. कडिय ।

तालिका : ९

भोगभूमिज जीवोंका संक्षिप्त वैभव

क्र०	नाम	वैभव	गाथा नं०
१	भूमि	स्वच्छ, साफ, कीड़ों आदिसे रहित, निर्मल, दर्पण सदृश, पंच वर्णकी।	३२४-३२५
२	तृण (घास)	पाँच वर्णकी मृदुल, मधुर, सुगन्धित और चार अंगुल प्रमाण।	३२६
३	वापिकाएँ	जल जन्तु रहित और सर्व व्याधियोंको नष्ट करने वाले अमृतोपम निर्मल जलसे युक्त।	३२८ से ३३०
४	प्रासाद	अनेक प्रकारकी मृदुल शय्याओं और अनुपम आसनोंसे युक्त।	३३१
५	पर्वत	स्वर्ण एवं रत्नोंके परिणाम स्वरूप तथा कल्पवृक्षोंसे युक्त और उन्नत।	३३२
६	नदियाँ	उभय तटों पर रत्नमय सीढ़ियोंसे संयुक्त और अमृत सदृश उत्तम जलसे सहित।	३३४
७	जीव	विकलत्रय एवं असंज्ञी जीवोंका तथा रोग, कलह और ईर्षा आदिका अभाव।	३३५ ३३६
८	काल	रात-दिनके भेद, अन्धकार गर्मी-सर्दी की बाधा और पापोंसे रहित।	३३७
९	उत्पत्ति	युगल उत्पत्ति होती है। अन्य परिवार एवं ग्राम नगरादि से रहित होते हैं।	३३८ और ३४४-४५
१०	बल	एक पुरुषमें नौ हजार हाथियोंके बराबर।	३४२
११	शरीर	प्रशस्त ३२ लक्षण युक्त। कवलाहार करते हुए भी निहार से रहित।	३४४
१२	कल्पवृक्ष	१० प्रकार के।	३४६
१३	पेय पदार्थ	३२ प्रकार के।	३४७
१४	वादित्र	नाना प्रकार के।	३४८
१५	आहार	१६ प्रकारका। (१६) व्यञ्जन-१७ प्रकारके। (१८) दाल-१४ प्रकारकी।	३५१
१९	खाद्य पदार्थ	१०८ प्रकार के।	३५१
२०	स्वाद्य पदार्थ	३६३ प्रकारके। (२१) रस-६३ प्रकार के।	३५२
२२	भवन	स्वस्तिक एवं नन्द्यावर्त आदि १६ प्रकारके।	३५३
२३	फूल मालाएँ	१६००० प्रकार की।	३५६
२४	भोग	चक्रवर्तीके भोगसे अनन्तगुणे।	३६१
२५	भोग साधन	विक्रिया द्वारा अनेक प्रकारके शरीर बनाते हैं।	३६२
२६	आभूषण	पुरुषके १६ प्रकारके और स्त्री के १४ प्रकारके।	३६६
२७	कला-गुण	६४ कलाओंसे युक्त।	३८९
२८	संहनन	वज्रवृषभनाराच।	३४३
२९	संस्थान	समचतुरस्र शरीर।	३४३
३०	मरण	कदली घात रहित।	
३१	मरणका कारण	पुरुषका छींक और स्त्रीके जम्भाई।	३८१

भोगभूमिमें उत्पत्तिके कारण

भोगमहीए सव्वे, जायंते मिच्छ - भाव - संजुत्ता ।
मंद - कसाया मणुवा, पेसुण्णासूय - दंब - परिहीणा ।।३६९।।

वज्जिद - मंसाहारा, महु - मज्जोदुंबरेहि [1]परिचत्ता ।
[2]सच्च-जुदा मद-रहिदा, चोरिय-परदार-परिहीणा ।।३७०।।

गुणधर-गुणेसु [3]रत्ता, जिण-पूजं जे कुणंति परवसदो ।
उववास - तणु - सरीरा, अज्जव - पहुदीहि संपण्णा ।।३७१।।

आहार-दाण-णिरदा, जदीसु वर-विविह-जोग-जुत्तेसुं ।
विमलतर - संजमेसु य, विमुक्क - गंथेसु भत्तीए ।।३७२।।

अर्थ :—भोगभूमिमें वे सब जीव उत्पन्न होते हैं जो मिथ्यात्वभावसे युक्त होते हुए भी मन्द-कषायी हैं, पैशून्य, असूयादि एवं दम्भसे रहित हैं, मांसाहारके त्यागी हैं, मधु, मद्य तथा उदुम्बर फलोंके भी त्यागी हैं, सत्यवादी हैं, अभिमानसे रहित हैं, चोरी एवं परस्त्रीके त्यागी हैं, गुणियोंके गुणोंमें अनुरक्त हैं, (भक्तिके) आधीन होकर जिनपूजा करते हैं, उपवाससे शरीरको कृश करने वाले हैं, आर्जवादि (गुणों) से सम्पन्न हैं; तथा उत्तम एवं विविध योगोंसे युक्त, अत्यन्त निर्मल संयमके धारक और परिग्रहसे रहित यतियोंको भक्तिसे आहारदान देनेमें तत्पर रहते हैं ।।३६९-३७२।।

पुव्वं बद्ध - णराऊ, पच्छा तित्थयर - पाद - मूलम्मि ।
पाविद - खाइय - सम्मा, जायंते केइ भोगभूमीए ।।३७३।।

अर्थ :—पूर्वमें मनुष्य आयु बाँधकर पश्चात् तीर्थंकरके पादमूलमें क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करने वाले कितने ही सम्यग्दृष्टि पुरुष भी भोगभूमिमें उत्पन्न होते हैं ।।३७३।।

एवं मिच्छाइट्ठी, णिग्गंथाणं जदीण [4]दाणाइं ।
दादूण पुण्ण - पाके, भोगमही केइ जायंति ।।३७४।।

---

१. ब. उ. परिचित्ता । २. द. ब. क. ज. य. उ. सत्थ । ३. द. ब. क. ज. य. उ. रत्तो । ४. ब. उ. दीणाइं ।

अर्थ:—इसप्रकार कितने ही मिथ्यादृष्टि मनुष्य निर्ग्रन्थयतियोंको दानादि देकर पुण्योदय आने पर भोगभूमि में उत्पन्न होते हैं ।।३७४।।

आहाराभय - दाणं विविहोसह-पोत्थयादि-दाणं च ।
पत्त - विसेसे दादूण भोगभूमीए जायंति ।।३७५।।

अर्थ:—(कितने ही मनुष्य) पात्र-विशेषों को आहारदान, अभयदान, विविध औषधियाँ एवं ज्ञानके उपकरण स्वरूप शास्त्र आदिका दान देकर भोगभूमिमें उत्पन्न होते हैं ।।३७५।।

दादूण केइ दाणं, पत्त - विसेसेसु के वि दाणाणं ।
अणुमोदणेण तिरिया, भोगक्खिदीए वि जायंति ।।३७६।।

अर्थ :—कोई पात्र विशेषोंको दान देकर और कोई दानोंकी अनुमोदना करनेसे तिर्यंच भी भोगभूमि में उत्पन्न होते हैं ।।३७६।।

[1]गहिदूणं जिणलिंगं, संजम-सम्मत्त-भाव-परिचत्ता ।
मायाचार - पयट्टा, चारित्तं णासयंति जे [2]पावा ।।३७७।।

दादूण [3]कुलिंगीणं, णाणा - दाणाणि जे णरा मूढा ।
[4]तव्वेस - धरा केई, भोगमहीए हवंति ते तिरिया ।।३७८।।

अर्थ :—जो पापी जिनलिंग ग्रहण कर संयम एवं सम्यक्त्वको छोड़ देते हैं और पश्चात् मायाचार में प्रवृत्त होकर चारित्र को (भी) नष्ट कर देते हैं, तथा जो कोई मूर्ख मनुष्य कुलिंगियोंको नाना प्रकारके दान देते हैं या उन (कुलिंग) भेषोंको धारण करते हैं, वे भोगभूमिमें तिर्यंच होते हैं ।।३७७-३७८।।

भोगभूमिमें गर्भ, जन्म एवं मरण काल तथा मरणके कारण—

भोगज-णर-तिरियाणं, णव-मास-पमाण-आउ-अवसेसे ।
ताणं हवंति गब्भा, ण सेस - कालम्मि कइ या वि ।।३७९।।

---

१. द. ब. गरहिदूण, क. ज. ठ. रहिदूण । २ क. ज. य. उ. पावं । ३. ब. कुलिंगीणं । ४. द. ब. क. ज. य. उ. तं वेसधरा ।

[1]पुण्णम्मि य णवमासे, भू-सयणे सोविऊण जुगलाइं ।
गब्भादो जुगलेसुं, [2]णिक्कंतेसुं मरंति तक्कालं ।।३८०।।

अर्थ :—भोगभूमिज मनुष्य और तिर्यंचोंकी नौ मास आयु अवशेष रहने पर ही उनके गर्भ रहता है, शेष कालमें किसीके भी गर्भ नहीं रहता । नव-मास पूर्ण हो जाने पर युगल (नर-नारी) भू-शय्या पर सोकर गर्भसे युगलके निकलने पर तत्काल ही मरण को प्राप्त हो जाते हैं ।।३७९-३८०।।

छिक्केण मरदि पुरिसो, जिंभारंभेण कामिणी दोण्हं ।
[3]सारद - मेघ व्व तणू, आमूलादो विलीएदि ।।३८१।।

अर्थ :—पुरुष छींकसे और स्त्री जँभाई आनेसे मृत्युको प्राप्त होते हैं । दोनोंके शरीर शरत्कालीन मेघके समान आमूल विलीन हो जाते हैं ।।३८१।।

भोगभूमिजो की आगति—

भावण - वेंतर - जोइस-सुरेसु जायंति मिच्छ-भाव-जुदा ।
सोहम्म - दुगे भोगज - णर - तिरिया सम्म-भाव-जुदा ।।३८२।।

अर्थ :—(मृत्युके बाद) भोगभूमिज मिथ्यादृष्टि मनुष्य-तिर्यंच भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें तथा सम्यग्दृष्टि मनुष्य-तिर्यञ्च सौधर्म युगल पर्यन्त उत्पन्न होते हैं ।।३८२।।

जन्मके पश्चात् भोगभूमिज जीवों का वृद्धिक्रम—

जादाण भोगभूवे, सयणोवरि बालयाण सुत्ताणं ।
णिय - अंगुट्ठय - लिहणे, गच्छंते तिण्णि दिवसाणि ।।३८३।।
[4]बइसण-अत्थिर-गमणं, थिर-गमण-कला-गुणेण पत्तेक्कं ।
[5]तारुण्णेणं सम्मत्त - गहण - पाउग्ग तिदिणाइं[6] ।।३८४।।

अर्थ :—भोगभूमिमें उत्पन्न हुए बालकोंके शय्यापर सोते हुए अपना अंगूठा चूसनेमें तीन दिन व्यतीत होते हैं, पश्चात् उपवेशन (बैठने), अस्थिर-गमन, स्थिर-गमन, कला गुणोंकी प्राप्ति,

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. पुण्णम्मि । २. द. ब. ज. य. णिक्कंतेसम्मरंति । ३. द. ब. क. ज. य. उ. सारंमेपुण्ण । ४. द. ब. उ. पीइसण । ५. ब. ज. य. ता पुण्णेणं । ६ द. ब. उ. ठिदिणाइं ।

तारुण्य प्राप्ति एवं सम्यक्त्व ग्रहणकी योग्यता, इनमेंसे क्रमशः प्रत्येक अवस्थामें उनके तीन-तीन दिन व्यतीत होते हैं ॥३८३-३८४॥

सम्यक्त्व ग्रहण के कारण—

जादि - भरणेण केई, केई पडिबोहणेण देवाणं ।
चारणमुणि - पहुदीणं, सम्मत्तं तत्थ गेण्हंति ॥३८५॥

अर्थ :—(भोगभूमिज) कोई जीव जाति-स्मरणसे, कोई देवोंके प्रतिबोधसे और कोई चारणमुनि आदिकके सदुपदेशसे सम्यक्त्व ग्रहण करते हैं ॥३८५॥

भोगभूमिज जीवोंका विशेष स्वरूप—

देवी-देव-सरिच्छा, बत्तीस-पसत्थ-लक्खणेहि जुदा ।
कोमल - देहा - मिहुणा[1], समचउरस्संग - संठाणा[2] ॥३८६॥

धादुमयंगा वि तहा, छेत्तुं भेत्तुं च ते किर[3] ण सक्का ।
असुचि - विहीणत्तादो, मुत्त - पुरीसासवो णत्थि ॥३८७॥

अर्थ :—भोगभूमिज नर-नारी, देव-देवियोंके सदृश बत्तीस प्रशस्त लक्षणों सहित, सुकुमार, देह-रूप-वैभववाले और समचतुरस्र-संस्थान संयुक्त होते हैं। उनका-शरीर धातुमय होते हुए भी छेदा-भेदा नहीं जा सकता। अशुचितासे रहित होनेके कारण उनके शरीरसे मूत्र तथा विष्टाका आस्रव नहीं होता ॥३८६-३८७॥

ताण जुगलाण देहा, अब्भं गुव्वट्टणं जण-विहीणा ।
मुह-दंत-णयण-धोवण-[4]णह-कट्टण-विरहिदा वि रेहंति ॥३८८॥

अर्थ :—उन युगल नर-नारियोंके शरीर, तैल-मर्दन, उबटन और अञ्जनसे तथा मुख, दाँत एवं नेत्रोंके धोने तथा नाखूनोंके काटनेसे रहित होते हुए भी शोभायमान होते हैं ॥३८८॥

अक्खर-आलेक्खेसुं, गणिदे गंधव्व - सिप्प - [5]पहुदीसुं ।
ते चउसट्ठि - कलासुं होंति सहावेण णिउणयरा ॥३८९॥

अर्थ :—वे अक्षर, चित्र, गणित, गन्धर्व और शिल्प इत्यादि चौंसठ-कलाओंमें स्वभावसे ही अतिशय निपुण होते हैं ॥३८९॥

---

१. द. क. ज. य. उ विहुणा। २. द. ब. क. ज. उ. संठाणं। ३. ब. क. ज. य. उ. किर ण ण सक्का। ४. द. ब. क. ज. उ. णय-कंदण। ५. द. क. ज. य. उ. पहुदेसुं।

ते सव्वे वर - जुगला, अण्णोण्णुप्पण्ण - पेम्म - संमूढा[1] ।
जम्हा तम्हा तेसुं, सावय - वद - संजमो णत्थि ॥३९०॥

अर्थ :—वे सब उत्तम युगल पारस्परिक प्रेममें अत्यन्त मुग्ध रहा करते हैं, इसलिए उनके श्रावकोचित व्रत-संयम नहीं होते ॥३९०॥

कोइल - महुरालावा, किण्णर - कंठा हवंति ते जुगला ।
कुल - जादि - भेद - हीणा, सुहसत्ता जल - दारिद्दा ॥३९१॥

अर्थ :—वे नर-नारी युगल, कोयल सदृश मधुर-भाषी, किन्नर सदृश कण्ठ वाले, कुल एवं जाति भेदसे रहित, सुखमें आसक्त और दारिद्र्य रहित होते हैं ॥३९१॥

भोगभूमिज तिर्यंचोंका वर्णन—

तिरिया भोगखिदीए, जुगला जुगला हवंति वर-वण्णा ।
सरला मंदकसाया, णाणाविह - जादि - संजुत्ता[2] ॥३९२॥

अर्थ :—भोगभूमिमें उत्तम वर्ण-विशिष्ट, सरल, मन्द-कषायी और नाना प्रकारकी जातियों वाले तिर्यञ्च जीव युगल-युगल रूपसे होते हैं ॥३९२॥

गो-केसरि-करि-मयरा-सूवर-सारंग - रोज्झ-महिस-वया ।
वाणर-गवय-तरच्छा, वग्घ -[3]सिगालच्छ-भल्ला य ॥३९३॥

कुक्कुड - कोइल - कीरा, पारावद - रायहंस - कारंडा ।
बक-कोक-कोंच-[4]किंजक - पहुदीओ होंति अण्णे वि ॥३९४॥

अर्थ :—(भोगभूमिमें) गाय, सिंह, हाथी, मगर, शूकर, सारङ्ग, रोझ (ऋश्य), भैंस, वृक (भेड़िया), बन्दर, गवय, तेंदुआ, व्याघ्र, शृगाल, रीछ, भालू, मुर्गा, कोयल, तोता, कबूतर, राजहंस, कारंड, बगुला, कोक (चकवा) क्रौंच एवं किञ्जक तथा और भी तिर्यञ्च होते हैं ॥३९३-३९४॥

जह मणुवाणं भोगा, तह तिरियाणं हवंति एदाणं ।
णिय - णिय - जोग्गत्तेणं, फल - कंद - तणंकुरादीणि ॥३९५॥

---

१. द.ब.क.ज.उ. संगूढा; य. सगूण। २. ब. उ. संजुदा। ३. ब.उ. सिग्गालस्स, क सिगालस्स। ४. ब. क. य. उ. किंजक, द. ज किंजक्क, य कंदग।

अर्थ :—वहाँ जिस प्रकार मनुष्योंके भोग होते हैं उसीप्रकार इन तिर्यञ्चोंके भी अपनी-अपनी योग्यतानुसार फल, कन्द, तृण और अंकुरादिके भोग होते हैं ॥३९५॥

वग्घादी भूमिचरा, वायस - पहुदी य खेयरा तिरिया ।
मंसाहारेण विणा, भुंजंते सुरतरूण महुर - फलं ॥३९६॥

अर्थ :—वहाँ व्याघ्रादिक भूमिचर और काक आदि नभचर तिर्यञ्च, मांसाहारके विना कल्पवृक्षोंके मधुर फल भोगते हैं ॥३९६॥

हरिणादि-[1]तणचरा तह, भोगमहीए तणाणि दिव्वाणि ।
भुंजंति जुगल - जुगला, उदय-दिणेस-प्पहा सव्वे ॥३९७॥

अर्थ :—भोगभूमिमें उदयकालीन सूर्यके सदृश प्रभा वाले समस्त हरिणादिक तृण-जीवी पशुओंके युगल दिव्य तृणोंका भोजन करते हैं ॥३९७॥

सुषमासुषमा काल (के वर्णन) का उपसंहार—

कालम्मि सुसमसुसमे, [2]चउ-कोडाकोडि-उवहि-उवमम्मि ।
पढमादो हीयंते, उच्छेहाऊ - बलद्धि - तेआइं[3] ॥३९८॥

अर्थ :—चार कोड़ाकोड़ी सागरोपम (प्रमाण) सुषमासुषमा कालमें पहिलेसे शरीरकी ऊँचाई, आयु, बल, ऋद्धि एवं तेज आदि हीन-हीन होते जाते हैं ॥३९८॥

सुषमा कालका निरूपण—

उच्छेह-पहुदि खीणे, सुसमो णामेण पविसदे कालो ।
तस्स पमाणं सायर - उवमाणं तिण्णि कोडिकोडीओ ॥३९९॥

अर्थ :—इस प्रकार उत्सेध-आदि क्षीण होनेपर सुषमा नामका द्वितीय काल प्रविष्ट होता है। उसका प्रमाण तीन कोड़ाकोड़ी सागरोपम है ॥३९९॥

मनुष्योंकी आयु, उत्सेध एवं कान्ति—

सुसमस्सादिम्मि [4]णराणुच्छेहो चउ - सहस्स - चावाणि ।
दो पल्ल - पमाणाऊ, संपुण्णमियंक - सरिस - पहा ॥४००॥

। दं ४००० । प २ ।

---

१. ब. क. य. उ. तणचारा । २ द चउक्कोडा । ३. द. ब. क. ज. उ. तेआयं । ४. द. ब. क. ज. य. उ. णरा उच्छेहो ।

अर्थ :—सुषमा कालके प्रारम्भमें मनुष्योंके शरीरका उत्सेध चार हजार (४०००) धनुष, आयु दो पल्य प्रमाण और प्रभा (शरीरकी कान्ति) पूर्णचन्द्र सदृश होती है ॥४००॥

पृष्ठभागकी हड्डियोंका प्रमाण—

अट्ठावीसुत्तर - सयमट्ठी पुट्ठीए होंति एदाणं ।
अच्छर-सरिसा इत्थी, तिदस- [1]सरिच्छा णरा होंति ॥४०१॥

अर्थ :—इनके पृष्ठभागमें एकसौ अट्ठाईस हड्डियां होती हैं । (उस समय) स्त्रियाँ अप्सराओं सदृश और पुरुष देवों सदृश होते हैं ॥४०१॥

संस्थान एवं आहार—

तस्सि काले मणुवा, अक्ख-प्फल-सरिसममिदमाहारं[2] ।
भुंजंति छट्ठ - भत्ते, समचउरस्संग - संठाणा ॥४०२॥

अर्थ :—उस कालमें, मनुष्य समचतुरस्र-संस्थानसे युक्त होते हुए षष्ठभक्त (तीसरे दिन) अक्ष (बहेड़ा) फल बराबर अमृतमय आहार करते हैं ॥४०२॥

उत्पन्न होनेके बाद वृद्धिक्रम—

तस्सिं संजादाणं, सयणोवरि बालयाण सुत्ताणं ।
णिय - अंगुट्ठिय - लिहणे[3], पंच [4]दिणाणिं पवच्चंति ॥४०३॥

अर्थ :—उस कालमें उत्पन्न हुए बालकोंके शय्यापर सोते हुए अपना अंगूठा चूसनेमें पाँच दिन व्यतीत होते हैं ॥४०३॥

बइसण-अत्थिर-गमणं, थिर-गमण-कला-गुणेण पत्तेक्कं ।
[5]तरुणेणं सम्मत्त - गहण-जोग्गेण जंति[6] पंच - दिणा ॥४०४॥

अर्थ :—पश्चात् उपवेशन, अस्थिरगमन, स्थिरगमन, कलागुण प्राप्ति, तारुण्य और सम्यक्त्व ग्रहणकी योग्यता, इनमेंसे क्रमशः प्रत्येक अवस्थामें उन बालकोंके पाँच-पाँच दिन जाते हैं ॥४०४॥

---

१. ब. उ. सरिसा । २. द. मविबक्खाहारं । ३. द. ब. विलीहणे । ४. द. ब. दिणाणेव वच्चंति, क. उ. दिणाणेव पवच्चंति । य. दिणाणि पवंचति । ५. द. तरुणोणं, ब. क. उ. तारुणेणं । ६. द. ब. क. ज. य. उ. जोग-जुत्ति ।

अवशेष कथन—

एत्तिय - मेत्त - विसेसं, मोत्तूणं सेस-वण्णण-पयारा ।
सुसमसुसमम्मि काले, जे भणिदा[1] एत्थ वत्तव्वा ॥४०५॥

अर्थ :—उपर्युक्त इतनी मात्र विशेषताको छोड़कर शेष वर्णनके प्रकार जो सुषमसुषमा कालमें कहे गये हैं, उन्हें यहाँ भी कहना चाहिए ॥४०५॥

दूसरे कालका प्रमाण आदि—

कालम्मि सुसमणामे, तिय-कोडोकोडि-उवहि-उवमम्मि ।
पढमादो हीयंते, उच्छेहाऊ - बलद्धि - तेजादी ॥४०६॥

अर्थ :—तीन कोड़ाकोड़ी सागरोपम-प्रमाण सुषमा नामक कालमें पहिले से ही उत्सेध, आयु, बल, ऋद्धि और तेज आदि उत्तरोत्तर हीन-हीन होते जाते हैं ॥४०६॥

सुषमादुषमा कालका निरूपण—

उच्छेह-पहुदि-खीणे, पविसेदि हु सुसमदुस्समो कालो ।
तस्स पमाणं सायर - उवमाणं दोण्णि कोडिकोडीओ ॥४०७॥

अर्थ :—उत्सेधादिक क्षीण होने पर सुषमदुषमा काल प्रवेश करता है। उस कालका प्रमाण दो कोड़ाकोड़ी सागरोपम है ॥४०७॥

तक्कालादिम्मि [2]णराणुच्छेहो दो सहस्स - चावाणि ।
एक्क - पलिदोवमाऊ, पियंगु - सारिच्छ - वण्ण-धरा ॥४०८॥

। दं २००० । प १ ।

अर्थ :—उस कालके प्रारम्भमें मनुष्योंकी ऊँचाई दो हजार (२०००) धनुष, आयु एक पल्य प्रमाण और वर्ण प्रियंगु फल सदृश होता है ॥४०८॥

चउसट्ठी पुट्ठीए, णराण - णारीण होंति अट्ठी वि ।
अच्छर - सरिसा रामा, अमर - समाणो णरो होदि ॥४०९॥

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. जो भणिदो । २. द. ब. क. ज. य. उ. णरा-उच्छेहो ।

अर्थ :—उस कालमें स्त्री-पुरुषोंके पृष्ठभागमें चौंसठ हड्डियाँ होती हैं, तथा नारियाँ अप्सराओं सदृश और पुरुष देवों सदृश होते हैं ॥४०९॥

तक्काले ते मणुवा, आमलक - पमाणममिय - आहारं ।
भुंजंति दिणंतरिया, समचउरस्संग - संठाणा ॥४१०॥

अर्थ :—उस कालमें समचतुरस्रसंस्थानसे युक्त वे मनुष्य एक दिनके अन्तरसे आँवले बराबर अमृतमय आहार ग्रहण करते हैं ॥४१०॥

तस्सि संजादाणं, सयणोवरि बालयाण सुत्ताणं ।
णिय - [1]अंगुट्ठय - लिहणे, सत्त [2]दिणाणि पवच्चंति ॥४११॥

अर्थ :—उस कालमें उत्पन्न हुए बालकोंके शय्यापर सोते हुए अपना अंगूठा चूसनेमें सात दिन व्यतीत होते हैं ॥४११॥

बइसण-अत्थिर-गमणं, थिर-गमण-कला-गुणेण पत्तेक्कं ।
तरुणेणं सम्मत्तं, गहणं जोगेण सत्त - दिणं ॥४१२॥

अर्थ :—पश्चात् उपवेशन, अस्थिरगमन, स्थिरगमन, कलागुणप्राप्ति, तारुण्य और सम्यक्त्व-ग्रहणकी योग्यतासे प्रत्येक अवस्थामें क्रमशः सात-सात दिन जाते हैं ॥४१२॥

एत्तिय - मेत्त - विसेसं, मोत्तूणं सेस-वण्णण-पयारा ।
कालम्मि सुसम - णामे, जे[3] भणिदा एत्थ वत्तव्वा ॥४१३॥

अर्थ:—इतनी मात्र विशेषताको छोड़कर शेष वर्णनके प्रकार जो सुषमा नामक दूसरे कालमें कह आए हैं, वे ही यहाँ पर कहने चाहिए ॥४१३॥

भोगखिदीए ण होंति हु, चोरारिप्पहुदि-विविह-बाधाओ ।
असि - पहुदि - च्छक्कम्मा, सीदादप-वाद-वरिसाणि ॥४१४॥

अर्थ :—भोगभूमिमें चोर एवं शत्रु आदि की विविध बाधाएँ, असि आदिक छह-कर्म तथा शीत, आतप, वात (प्रचण्ड वायु) एवं वर्षा नहीं होती ॥४१४॥

---

१. द. अंगुट्ठालहणे। २. द. ब. क. ज. य. उ दिणाणं। ३. द. ब. क. ज. य. उ. जो भणिदो।

भोगभूमिजोंमें मार्गणा आदिका निरूपण—

गुणजीवा पज्जत्ती, पाणा सण्णा य मग्गणा कमसो ।
उवजोगो कहिदव्वा, भोगखिदी - संभवाण जह-जोग्गं[1] ॥४१५॥

अर्थ :—भोगभूमिज जीवोंके यथायोग्य गुणस्थान, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा, मार्गणा और उपयोगका कथन क्रमशः करना चाहिए ।४१५॥

भोगभुवाणं अवरे, दो गुणठाणं विरम्मि चउ - संखा ।
मिच्छाइट्ठी सासण - सम्मा मिस्साविरद - सम्मा ॥४१६॥

अर्थ :—भोगभूमिज जीवोंके जघन्यसे अर्थात् अपर्याप्त अवस्थामें मिथ्यात्व और सासादन ये दो गुणस्थान होते हैं, तथा उत्कृष्टतासे अर्थात् पर्याप्त अवस्थामें मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यक्त्व, मिश्र और अविरतसम्यग्दृष्टि ये चार गुणस्थान होते हैं ॥४१६॥

ताण अपच्चक्खाणावरणोदय - सहिद सव्व जीवाणं ।
विसयाणंद - जुदाणं, णाणाविह - राग - पउराणं ॥४१७॥

देसविरदादि उवरिं, दस - गुणठाणाण - हेदु - भूदाओ ।
जाओ विसोहियाओ, कइया ण ताओ जायंते ॥४१८॥

अर्थ :—अप्रत्याख्यानावरण-कषायोदय सहित दीर्घ रागवाले वे सभी जीव विषयोंके आनन्दसे युक्त होते हैं । देशविरतसे लेकर दसवें गुणस्थान पर्यन्तकी कारणभूत उत्पन्न हुई विशुद्धि वहाँ किसी भी जीवके नहीं पाई जाती है ॥४१७-४१८॥

जीव - समासा दोण्णि य, णिव्वत्तिय-पुण्णपुण्ण-भेदेणं ।
पज्जत्ती छब्भेया, तेत्तिय - मेत्ता अपज्जत्ती ॥४१९॥

अर्थ :—इन जीवोंके निर्वृत्त्यपर्याप्त और पर्याप्तके भेदसे दो जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ और इतनी ही अपर्याप्तियाँ होती हैं ॥४१९॥

---

१. द. य. जोगं ।

अक्खा [1]मण-वच-काया, उस्सासाऊ हवंति दस पाणा ।
[2]पज्जत्ते इदरम्मि, मण - वच - उस्सास - परिहीणा ।।४२०।।

अर्थ :— उनके पर्याप्त अवस्थामें पाँचों इन्द्रियाँ, मन, वचन, काय, श्वासोच्छ्वास एवं आयु ये दस प्राण तथा इतर अर्थात् अपर्याप्त अवस्थामें मन, वचन और श्वासोच्छ्वाससे रहित शेष सात प्राण होते हैं ।।४२०।।

चउ-सण्णा णर-तिरिया, सयला तस-काय जोग-एक्करसं ।
चउ-मण-चउ-वयणाइं, [3]ओराल-दुगं च कम्म - इयं ।।४२१।।

पुरिसित्थी-वेद-जुदा, सयल - कसाएहि संजुदा णिच्चं ।
छण्णाण - जुदा ताइं, मदि ओहीणाण - सुद - णाणे ।।४२२।।

मदि - सुद - अण्णाणाइं, विभंगणाणं असंजदा सव्वे ।
तिद्दंसणा य ताइं, चक्खु - अचक्खूणि ओहि-दंसणयं ।।४२३।।

भोगपुण्णए[4] मिच्छे, सासण - सम्मे य असुह-तिय-लेस्सं ।
काऊ जहण्ण सम्मे, मिच्छ - चउक्के सुह - तियं पुण्णे[5] ।।४२४।।

भव्वाभव्वा छस्सम्मत्ता [6]उवसमिय - खइय - सम्मत्ता ।
तह वेदय - सम्मत्तं, सासण - मिस्सा य मिच्छा य ।।४२५।।

सण्णी जीवा होंति हु, दोण्णि य आहारिणो अणाहारा ।
सायार - अणायारा, उवजोगा होंति णियमेणं ।।४२६।।

अर्थ :—भोगभूमिज जीव आहार, भय, मैथुन एवं परिग्रह इन चार संज्ञाओं से; मनुष्य और तिर्यञ्च गतिसे; सकल अर्थात् पंचेन्द्रिय जातिसे; त्रस कायसे; चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, दो औदारिक (औदारिक, औदारिक मिश्र) तथा कार्मण इन ग्यारह योगोंसे; पुरुषवेद और स्त्री

---

१. द. मणु । २. द. ब. क. ज. य उ. पज्जत्ती । ३. ब. क. उ. उराल । ४. द. ब. क. ज. य. उ. पुण्णम । ५. ब. उ. पुणे । ६. द चेवसमिय ।

वेदसे; नित्य सम्पूर्ण कषायोंसे; मति, श्रुत, अवधि, मति अज्ञान, श्रुताज्ञान एवं विभंगज्ञान, इन छह ज्ञानोंसे; सर्व असंयम; चक्षु, अचक्षु और अवधि इन तीन दर्शनोंसे संयुक्त होते हैं। अपर्याप्त अवस्थामें मिथ्यात्व एवं सासादन गुणस्थानोंमें कृष्ण, नील, कापोत इन तीन अशुभ लेश्याओंसे और चतुर्थ गुण-स्थानमें कापोत लेश्याके जघन्य अंशों से तथा पर्याप्त अवस्थामें मिथ्यात्वादि चारों गुणस्थानोंमें तीनों शुभ लेश्याओंसे युक्त; भव्यत्व तथा अभव्यत्वसे; औपशमिक, क्षायिक, वेदक, मिश्र, सासादन और मिथ्यात्व इन छहों सम्यक्त्वोंसे संयुक्त होते हैं। संज्ञी; आहारक और अनाहारक होते हैं तथा नियमसे साकार (ज्ञान) और निराकार (दर्शन) उपयोग वाले होते हैं ।।४२१-४२६।।

मंद - कसायेण जुदा, उदयागद-सत्थ-पयडि-संजुत्ता ।
विविह - विणोदासत्ता, णर - तिरिया भोगजा होंति ।।४२७।।

अर्थ :—भोगभूमिज मनुष्य और तिर्यंच मन्दकषायसे युक्त, उदयमें आयी हुई पुण्य-प्रकृतियोंसे संयुक्त तथा अनेक प्रकारके विनोदोंमें आसक्त रहते हैं ।।४२७।।

[तालिका १० अगले पृष्ठ पर देखिये]

तालिका : १०

सुषमा-सुषमा आदि तीन कालोंमें आयु, आहारादिकी वृद्धि-हानिका प्रदर्शन

क०	विषय	सुषमासुषमा	सुषमा	सुषमा-दुःषमा
१	भूमि-रचना	उत्तम भोगभूमि	मध्यम भोगभूमि	जघन्य भोगभूमि
२	काल-प्रमाण	४ कोड़ाकोड़ी सागर	३ कोड़ाकोड़ी सागर	२ कोड़ाकोड़ी सागर
३	आयु—उत्कृष्ट जघन्य	३ पल्य २ पल्य	२ पल्य १ पल्य	१ पल्य १ समय + १पूर्वकोटि
४	आहार प्रमाण	बेर प्रमाण	बहेड़ा प्रमाण	आँवला प्रमाण
५	अवगाहना—उत्कृष्ट जघन्य	६००० धनुष ४००० धनुष	४००० धनुष २००० धनुष	२००० धनुष ५०० धनुष
६	आहार-अन्तराल	३ दिन बाद	२ दिन बाद	१ दिन बाद
७	कवला.है किंतु निहारका	अभाव	अभाव	अभाव
८	उत्तानशयन अंगूठा चूस.	३ दिन पर्यन्त	५ दिन पर्यन्त	७ दिन पर्यन्त
९	उपवेशन (बैठना)	३ दिन पर्यन्त	५ दिन पर्यन्त	७ दिन पर्यन्त
१०	अस्थिर गमन	३ दिन पर्यन्त	५ दिन पर्यन्त	७ दिन पर्यन्त
११	स्थिर गमन	३ दिन पर्यन्त	५ दिन पर्यन्त	७ दिन पर्यन्त
१२	कला गुण प्राप्ति	३ दिन पर्यन्त	५ दिन पर्यन्त	७ दिन पर्यन्त
१३	तारुण्य प्राप्ति	३ दिन पर्यन्त	५ दिन पर्यन्त	७ दिन पर्यन्त
१४	सम्यक्त्व-योग्यता	३ दिन पर्यन्त	५ दिन पर्यन्त	७ दिन पर्यन्त
१५	शरीर पृष्ठभागकी हड्डियाँ	२५६	१२८	६४
१६	संयम	अभाव	अभाव	अभाव
१७	गुणस्थान अपर्याप्तमें पर्याप्तमें	मिथ्यात्व-सासादन पहले से चार तक	मिथ्यात्व-सासादन पहले से चार तक	मिथ्यात्व-सासादन पहलेसे चार तक
१८	शरीर की कान्ति	सूर्य प्रभा सदृश	पूर्ण चन्द्रप्रभा सदृश	प्रियंगु फल सदृश
१९	मरणके बाद शरीर	मेघवत् विलीन	मेघवत् विलीन	मेघवत् विलीन
२०	मरण बाद गति— मिथ्यादृष्टि सम्यग्दृष्टि	 भवनत्रिक में दूसरे स्वर्ग पर्यन्त	 भवनत्रिकमें दूसरे स्वर्ग पर्यन्त	 भवनत्रिकमें दूसरे स्वर्ग पर्यन्त

प्रतिश्रुति नामक प्रथम कुलकरका निरूपण—

पलिदोवमट्ठमंसे, किंचूणे तदिय - काल - अवसेसे ।
पढमो कुलकर-पुरिसो, उप्पज्जदि पडिसुदी सुवण्ण-णिहो ।।४२८।।

$\frac{प}{८}$ ।

अर्थ :—तृतीय कालके कुछ कम एक पल्योपमके आठवें भाग प्रमाण (काल) अवशेष रहने पर सुवर्ण सदृश प्रभासे युक्त प्रतिश्रुति नामक प्रथम कुलकर पुरुष उत्पन्न होता है ।।४२८।।

एक्क-सहस्सं अट्ठसय-सहिदं चावाणि तस्स उच्छेहो ।
पल्लस्स दसमभागो, आऊ देवी [1]सयंपहा णाम ।।४२९।।

। दं १८०० । प $\frac{1}{10}$ ।[2]

अर्थ :—उसके शरीरका उत्सेध एक हजार आठ सौ धनुष, आयु पल्यके दसवें भाग प्रमाण और स्वयंप्रभा नामकी देवी थी ।।४२९।।

णभ-गज-घंट-णिहाणं[3], चंदाइच्चाण मंडलाणि तदा ।
आसाढ - पुण्णिमाए, दट्ठूणं भोगभूमिजा सव्वे ।।४३०।।

[4]आकस्सिकमविघोरं, उप्पाद [5]जादमेदमिदि मत्ता ।
पज्जाउला पकंपं, पत्ता पवणेण पहद - रुक्खो व्व ।।४३१।।

अर्थ :—उस समय समस्त भोगभूमिज आषाढ़ मासकी पूर्णिमामें आकाशरूपी हाथीके घण्टे सदृश चन्द्र और सूर्यके मण्डलोंको देखकर व्याकुल होते हुए 'यह कोई आकस्मिक महा भयानक उत्पात हुआ है, ऐसा समझकर वायुसे आहत वृक्षके सदृश प्रकम्पनको प्राप्त हुए ।।४३०-४३१।।

[6]पडिसुद-णामो कुलकर-पुरिसो एदाण [7]देइ अभय-णिरं ।
तेजंगा[8] कालवसा, संजादा मंद - किरणोघा ।।४३२।।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. सयंपहो । २. द. । प १० । ३. द. ब. क. ज. य. उ. भाणं । ४. क. ज. य. उ. आकस्सिकमदिघ्घोरं । ५. द. ब. क. ज. य. उ. जादमोदमिदि । ६. ब. मदिसुदि । ७. क. ज. य. उ. दवि । ८. ज. ब. तेजंगार ।

तक्कारणेण [1]एण्हिं, ससहर-रविमंडलाणि गयणम्मि ।
पयडाणि णत्थि तुम्हं, एदाण दिसाए भय-हेदू [2] ।।४३३।।

अर्थ :- तब प्रतिश्रुति नामक कुलकर पुरुषने उनको निर्भय करने वाली वाणीसे बतलाया कि कालवश अब तेजांग जातिके कल्पवृक्षोंके किरण-समूह मन्द पड़ गये हैं, इस कारण इस समय आकाशमें चन्द्र और सूर्यके मण्डल प्रगट हुए हैं। इनकी ओरसे तुम लोगोंको भयका कोई कारण नहीं है ।।४३२-४३३।।

णिच्चं चिय [3]एदाणं, उदयत्थमणाणि होंति आयासे ।
पडिहद-किरणाण [4] पुढं तेयंगदुमाण तेएहिं ।।४३४।।

अर्थ :- आकाशमें यद्यपि इनका उदय और अस्त नित्य ही होता रहा है, परन्तु तेजाङ्ग जातिके कल्पवृक्षोंके तेजसे इनकी किरणोंके प्रतिहत होनेसे (अब तक) वे प्रगट नहीं दिखते थे ।।४३४।।

जंबूदीवे मेरुं, कुव्वंति पदाहिणं तरणि-चंदा ।
रत्ति-दिणाण विभागं, [5]कुणमाणा किरण-सत्तीए ।।४३५।।

अर्थ :—ये सूर्य एवं चन्द्रमा अपनी किरणशक्तिसे दिन-रातरूप विभाग करते हुए जम्बूद्वीपमें मेरुपर्वतकी प्रदक्षिणा किया करते हैं ।।४३५।।

सोऊण तस्स वयणं, संजादा णिब्भया तदा सव्वे ।
अच्चंति चलण-कमले [6], थुणंति बहुविह-पयारेहिं ।।४३६।।

अर्थ :—इस प्रकार उन (प्रतिश्रुति) के वचन सुनकर वे सब नर-नारी निर्भय होकर बहुत प्रकारसे उनके चरणकमलोंकी पूजा और स्तुति करते हैं ।।४३६।।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. यण्हि । २. द. ब. उ. भयदेहो, क. ज. य. भयहेवो । ३. ब. ज. क. एदाणि । ४. द. ब. क. ज. य. उ. किरणाणि । ५. ब. क. उ. कुणमाणो । ६. ब. कमलो ।

सन्मति नामक मनुका निरूपण—

पडिसुद - मरणादु तदा, पल्लस्सासीदिमंस - विच्छेदे[1] ।
उप्पज्जदि बिदिय - मणू, सम्मदि - णामो सुवण्ण-णिहो ।।४३७।।

। प $\frac{}{८०}$ ।

अर्थ :—प्रतिश्रुति कुलकरकी मृत्युके पश्चात् पल्यके अस्सीवें-भागके व्यतीत हो जाने पर स्वर्ण सदृश कान्ति वाला सन्मति नामक द्वितीय मनु उत्पन्न होता है ।।४३७।।

एक्क - सहस्सं ति-सयस्सहिदं दंडाणि तस्स उच्छेहो ।
पलिदोवम-सद-भागो, आऊ देवी जसस्सदो णामो ।।४३८।।

। दंड १३०० । $\frac{प १}{१००}$ ।

अर्थ :—उसके शरीरकी ऊँचाई एक हजार तीनसौ धनुष प्रमाण और आयु पल्योपमके सौवें भाग प्रमाण थी उसकी देवीका नाम यशस्वती था ।।४३८।।

तक्काले तेयंगा, णट्ठ - पभावा हवंति ते सव्वे ।
तत्तो सूरत्थमणे, वट्ठूण तमाइ [2]तारालिं ।।४३९।।

उप्पादा अइघोरा, अदिट्ठ - पुव्वा [3]विब्भंभिदा एदे ।
इय भोगज-णर-तिरिया, णिब्भर-भय-भंभला[4] जादा ।।४४०।।

अर्थ :—उस समय तेजाङ्ग जातिके सब कल्पवृक्ष प्रभाहीन हो जाते हैं, इसीलिए सूर्यके अस्तङ्गत होनेपर अन्धकार और तारा पंक्तियों को देखकर 'ये अत्यन्त भयानक अदृष्ट-पूर्व उत्पात प्रकट हुए' यह मानकर वे भोगभूमिज मनुष्य-तिर्यञ्च भयसे अत्यन्त व्याकुल हुए ।।४३९-४४०।।

सम्मदि-णामो कुलकर-पुरिसो [5]भीदाण देहि अभय-गिरं ।
तेयंगा कालवसा, णिम्मूल - पणट्ठ - किरणोघा ।।४४१।।

---

१. ब. य. विच्छेदो । २. ब. य. ताराइ । ३. द. बिब्भिदा, ब. क. ज. य. उ. बिब्भिदा । ४. द. भयमेत्तला, ब. क. ज. य. उ. भभमला । ५. द. ब. क. ज. उ. भेदाण देवि । य. भेदाण देवि ।

तेण तमं वित्थरिदं, ताराणं मंडलं पि गयणतले ।
तुम्हाण[1] णत्थि किंचि वि, एदाण विसाए भय - हेदू ।।४४२।।

अर्थ :—तब सन्मति नामक कुलकर उन भयभीत हुए भोगभूमिजोंको निर्भय करने वाली वाणीसे कहते हैं कि अब कालवश तेजाङ्ग कल्पवृक्षोंके किरण समूह सर्वथा नष्ट हो चुके हैं । इस कारण आकाश प्रदेशमे इस समय अन्धकार और (साथ ही) ताराओंका समूह भी फैल गया है । तुम लोगोंको इनकी ओरसे कुछ भी भयका कारण नहीं है ।।४४१-४४२।।

अत्थि सदा अंधारं, ताराओ [2]तेयंग - तरु - गणेहिं ।
पडिहद-किरणा पुव्वं, काल-वसेणज्ज [3]पायडा जादा ।।४४३।।

अर्थ :—अन्धकार और तारागण तो सदा ही रहते हैं, किन्तु पूर्वमें तेजाङ्ग जातिके कल्प-वृक्षोंके समूहोंमे वे प्रतिहत-किरण थे, सो आज कालवश प्रगट हो गये हैं ।।४४३।।

जंबूदीवे मेरुं, कुव्वंति पदाहिणं गहा तारा ।
णक्खत्ता णिच्चं ते, तेज - विणासा तमो होदि ।।४४४।।

अर्थ :—वे ग्रह, तारा और नक्षत्र जम्बूद्वीपमें मेरुकी प्रदक्षिणा नित्य किया करते है । तेजके विनाशसे ही अंधकार होता है ।।४४४।।

सोऊण तस्स वयणं, संजादा णिब्भया तदा सव्वे ।
अच्चंति चलण - कमले, थुणंति [4]विविहेहिं तुत्तेहिं ।।४४५।।

अर्थ :—तब कुलकरके ये वचन सुनकर वे सब निर्भय हो गये और उसके चरण-कमलोंकी पूजा करने लगे तथा अनेक स्तोत्रोंसे स्तुति करने लगे ।।४४५।।

क्षेमङ्कर नामक कुलकरका निरूपण—

सम्मदि - सग्ग - पवेसे, अट्ठ-सयाबहिद-पल्ल-विच्छेदे[5] ।
खेमंकरो त्ति कुलयर - पुरिसो[6] उप्पज्जदे तदिओ ।।४४६।।

। प ८०० ।

---

१. द. ब. क. ज. उ. तम्हाण । २. द. ज. य. तेयअंतरगतेहिं, ब. क. उ. तेयअंगतरगतेहिं । ३. द. ज. य. पायदा । ४. द. ब. क. ज. य. उ. विविहेहरमंतेहिं । ५. द. ज. ब. विच्छेदो । ६. द. ज. य. परिसो ।

अर्थ :—सन्मति नामक कुलकरके स्वर्ग चले जाने पर आठ सौ से भाजित एक पल्य कालके पश्चात् क्षेमङ्कर नामक तीसरा कुलकर पुरुष उत्पन्न हुआ ।।४४६।।

[1]अट्ठ-सय-चाव-तुंगो, सहस्स - हरिदेक्क-पल्ल-परमाऊ ।
चामीयर - सम - वण्णो, तस्स सुणंदा महादेवी ।।४४७।।

। द ८०० । $\frac{\text{प १}}{\text{१०००}}$ ।

अर्थ :—इस कुलकरके शरीरकी ऊंचाई आठ सौ (८००) धनुष थी । आयु हजारसे भाजित एक पल्य प्रमाण और वर्ण स्वर्ण सदृश था । उसकी महादेवी सुनन्दा थी ।।४४७।।

वग्घादि-तिरिय-जीवा, काल-वसा कूर-भावमावण्णा ।
[2]तब्भयदो भोग - णरा, सव्वे [3]अच्चाउला जादा ।।४४८।।

अर्थ :—उस समय कालवश व्याघ्रादिक तिर्यञ्च जीवोंके क्रूर-परिणामी होनेसे सर्व भोगभूमिज मनुष्य उनके भयसे अत्यन्त व्याकुल होगये थे ।।४४८।।

खेमंकर - णाम[4] मणू, भीदाणं[5] देदि दिव्व - उवदेसं[6] ।
कालस्स विकारादो, एदे कूरत्तणं पत्ता ।।४४९।।
ता [7]एण्हिं विस्सासं, पायाणं मा करेज्ज कइया[8] वि ।
तासेज्ज [9]कलुस - वयणा, इय भणिदे णिब्भया जादा ।।४५०।।

अर्थ :—तब क्षेमङ्कर नामक मनु उन भयभीत प्राणियोंको दिव्य उपदेश देते हैं कि कालके विकारसे ये तिर्यञ्च जीव क्रूरताको प्राप्त हुए हैं, इसलिए अब इन पापियोंका विश्वास कदापि मत करो; ये विकृतमुख प्राणी तुम्हें त्रास दे सकते हैं । उनके ऐसा कहने पर वे भोगभूमिज निर्भयता को प्राप्त हुए ।।४४९-४५०।।

---

१. द. ब. क. ज. उ. सट्ठ । २. द. ब. क. ज. य. उ. तब्भयदा । ३. द. पच्चाउला । ४. द. क. ज. य. उ. णामो । ५. द. ब. क. ज. य. उ. भयवदाणं देहि । ६. ब. क. उ. उवएसं । ७. क. ज. य. उ. एण्हि । ८. द. ब. क. ज य. उ. कइयाभि । ९. द. ब. क. ज. य. उ. कलुव ।

क्षेमंधर नामक मनुका निरूपण—

तम्मणुवे तिदिव-गदे, अट्ठ - सहस्सावहरिद - पल्लम्मि ।
अंतरिदे उप्पज्जदि, तुरिमो खेमंधरो[1] य मणू ।।४५१।।

। प ८००० ।

अर्थ :—उस कुलकरका स्वर्गवास होनेपर आठ हजारसे भाजित पल्य-प्रमाण कालके अनन्तर क्षेमंधर नामक चतुर्थ मनु उत्पन्न हुआ ।।४५१।।

तस्सुच्छेहो दंडा, सत्त - सया पंचहत्तरी - जुत्ता[2] ।
सय - कदि - हिदेक्क - पल्ला आउ - पमाणं पि एदस्स ।।४५२।।

। दं ७७५ । प १०००० ।

अर्थ :—उसके शरीरकी ऊँचाई सात सौ पचहत्तर धनुष और आयु सौ के वर्ग (१००००) से भाजित एक पल्य प्रमाण थी ।।४५२।।

सो कंचण-सम-वण्णो, देवी विमला[3] त्ति तस्स [4]विक्खादा ।
तक्काले[5] सीहादी, कूरमया खंति मणुव - मंसाइं ।।४५३।।

अर्थ :—उसका वर्ण स्वर्ण सदृश था उसकी देवी 'विमला' नामसे विख्यात थी । उस समय क्रूरता को प्राप्त हुए सिंहादिक मनुष्योंका मांस खाने लगे थे ।।४५३।।

सीहप्पहुदि - भएणं, अदिभीदा भोगभूमिजा ताहे[6] ।
उवदिसदि मणू ताणं, दंडादि सुरक्खणोवायं ।।४५४।।

अर्थ :—तब सिंहादिकके भयसे अत्यन्त भयभीत हुए भोगभूमिजोंको क्षेमंधर मनुने उनसे अपनी सुरक्षाके उपायभूत दण्डादिक रखने का उपदेश दिया ।।४५४।।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. खेमंधरा । २. क. ज. य. उ. जुत्तो । ३. क. ज. य. उ. विमलं । ४. द. ब. क. ज. य. उ. विक्खादो । ५. ज. य. तक्कालो । ६. द. ज. य तावे, ब. क. उ. तावो ।

सीमङ्कर नामक मनुका निरूपण—

तम्मणुवे णाक - गदे, सीदी-सहस्सावहरिद-पल्लम्मि ।
अंतरिदे[1] पंचमओ, जम्मदि सीमंकरो त्ति मणू ॥४५५॥

| प १ / ८०००० |

अर्थ :—इस कुलकरके स्वर्ग चले जानेपर अस्सी हजारसे भाजित पल्य प्रमाण कालके अन्तरसे पाँचवे सीमङ्कर मनुका जन्म हुआ ॥४५५॥

तस्सुच्छेहो दंडा[2], पण्णासब्भहिय - सत्त - सय - मेत्ता ।
लक्खेण भजिद - पल्लं, आऊ वण्णो सुवण्ण-णिहो ॥४५६॥

। दं ७५० । प १ / १००००० ।

अर्थ :—उसके शरीरका उत्सेध सातसौ पचास (७५०) धनुष, आयु एक लाखमें भाजित पल्य प्रमाण और वर्ण स्वर्ण सदृश था ॥४५६॥

देवी तस्स पसिद्धा, णामेण मणोहरि त्ति तक्काले ।
कप्पतरू अप्प - फला, [3]अदिलोहो होदि मणुवाणं ॥४५७॥

अर्थ :—उसकी देवी 'मनोहरी' नामसे प्रसिद्ध थी। इस समय कल्पवृक्ष अल्प फल देने लगे थे और मनुष्योंमें लोभ बढ़ चला था ॥४५७॥

सुरतरु - लुद्धा[4] जुगला, अण्णोण्णं ते कुणंति संवादं ।
सीमंकरेण सीमं, कादूण णिवारिदा सव्वे ॥४५८॥

---

१. द. ब. क. उ. अंतरिदे पंचमदो, ज. तं अंतरिदे पंचमदो। २. द. क. ज. य. उ. दडो। ३. द. य. ज. अदिलोहादि। ४. द. क. सद्धा।

अर्थ :—कल्पवृक्षोंमें लुब्ध हुए वे युगल परस्पर विवाद करने लगे थे। तब सीमा निर्धारित करके सीमङ्कर द्वारा उन सबका पारस्परिक संघर्ष रोका गया ॥४५८॥

उपर्युक्त पाँच कुलकरोंकी दण्ड व्यवस्था—

सिक्खं कुणंति ताणं, पडिसुदि - पहुदी कुलंकरा पंच।
सिक्खण - कम्म - णिमित्तं, दंडं कुव्वंति [1]हाकारं ॥४५९॥

अर्थ :—प्रतिश्रुति आदि पाँच कुलकर उन (भोगभूमिजों) को शिक्षा देते हैं और इस शिक्षण कार्यके निमित्त 'हा' इस प्रकारका दण्ड (विधान) करते हैं ॥४५९॥

सीमन्धर नामक कुलकरका निरूपण—

तम्मणुवे तिदिव - गदे, अड-लक्खावहिद-पल्ल-परिकंते।
सीमंधरो त्ति छट्ठो, उप्पज्जदि [2]कुलकरो पुरिसो ॥४६०॥

| प १
| ८ ल

अर्थ :—इस (सीमङ्कर) कुलकरके स्वर्ग चले जानेपर आठ लाखसे भाजित पल्य प्रमाण काल बाद सीमन्धर नामक छठा कुलकर पुरुष उत्पन्न होता है ॥४६०॥

तस्सुच्छेहो [3]दंडा, पणवीसब्भहिय - सत्त - सय - मेत्ता।
दस-लक्ख - भजिद - पल्लं, आऊ देवी जसोहरा णाम ॥४६१॥

। दंड ७२५ । प १०००००० (?)

अर्थ :—उसके शरीरका उत्सेध सातसौ पच्चीस धनुष था और आयु दस लाखसे भाजित पल्य प्रमाण थी। इसके 'यशोधरा' नामकी देवी थी ॥४६१॥

तक्काले कप्पदुमा, अविविरला अप्प-फल-रसा होंति।
भोग - णराणं तेसुं, कलहो उप्पज्जवे णिच्चं ॥४६२॥

---

१. द. ज. य. हुकारं। २. ब. क. ज. उ. कुलकरा। ३. य. ज. दंडो।

अर्थ :—इस कुलकरके समयमें कल्पवृक्ष अत्यन्त विरल और अल्पफल एवं अल्प रस वाले हो जाते हैं, इसलिए भोगभूमिज मनुष्यों के बीच इनके विषयमें नित्य ही कलह उत्पन्न होने लगता है ॥४६२॥

[1]सव्वक्कलह - णिवारण - हेदूओ ताण कुणइ सीमाओ ।
तरु - गुच्छादी चिण्हं, तेण य सीमंधरो[2] भणिओ ॥४६३॥

अर्थ :—वह कुलकर कलह दूर करनेके निमित्त वृक्षों तथा पौधों (या फलोंके गुच्छों) आदिको चिह्न रूप मानकर सीमा नियत करता है अतः वह सीमन्धर कहा गया है ॥४६३॥

विमलवाहन कुलकरका निरूपण—

तम्मणुवे सग्ग - गदे, असीदि-लक्खावहरिद-पल्लम्मि ।
वोलीणे उप्पण्णो, सत्तमओ [3]विमलवाहणो त्ति मणू ॥४६४॥

प १
८०००००० ।

अर्थ :—सीमन्धर मनुके स्वर्ग चले जानेपर अस्सी लाखसे भाजित पल्य प्रमाण काल बाद विमलवाहन नामक सातवाँ मनु उत्पन्न हुआ ॥४६४॥

सत्त-सय-चाव - तुंगो, इगि-कोडी-भजिद-पल्ल-परमाऊ ।
कंचण - सरिच्छ - वण्णो, सुमदी - णामा महादेवी ॥४६५॥

१
दंड ७०० । प १०००००००।

अर्थ :—यह मनु सातसौ धनुष-प्रमाण ऊँचा, एक करोड़से भाजित पल्यप्रमाण आयुका धारक और स्वर्ण सदृश वर्णवाला था । इसके सुमति नामकी महादेवी थी ॥४६५॥

तक्काले भोग - णरा, गमणागमणेहि पीडिदा संता[4] ।
आरोहंति करिद - प्पहुदिं तस्सोवदेसेणं[5] ॥४६६॥

---

१ क. ज. य. उ. सव्वाकलह । २. क. ... सीमकर । ३. द. ब. क. ज. य. उ. विमलवाहरा । ४. द. क. ज. य. सत्ता । ५. द. क. ज. य. उ. तस्सोवदेसेरा ।

अर्थ :—इस समय गमनागमनसे पीड़ाको प्राप्त हुए भोगभूमिज मनुष्य इस मनुके उपदेशसे हाथी आदि पर सवारी करने लगे थे ।।४६६।।

चक्षुष्मान कुलकरका निरूपण—

सत्तमए णाक - गदे, अड-कोडो-भजिद-पल्ल-विच्छेदे ।
[1]उप्पज्जदि अट्ठमओ, चक्खुम्मो कणय - वण्ण - तणू ।।४६७।।

१
। प ८००००००० ।

अर्थ :—सप्तम कुलकरके स्वर्गस्थ होने पर आठ करोड़से भाजित पल्य-प्रमाण कालके अनन्तर स्वर्ण सदृश वर्ण वाले शरीरसे युक्त चक्षुष्मान् नामक आठवाँ कुलकर उत्पन्न होता है ।।४६७।।

तस्सुच्छेहो दंडा, पणवीस - विहीण - सत्त - सय-मेत्ता ।
दस - कोडि - भजिदमेक्कं, पलिदोवममाउ - परिमाणं ।।४६८।।

१
। दं ६७५ । प १०००००००० ।

अर्थ :—उसके शरीरकी ऊंचाई पच्चीस कम सातसौ (६७५) धनुष और आयु दस करोड़से भाजित एक पल्योपम प्रमाण थी ।।४६८।।

देवी धारिणि - णामा, तक्काले भोगभूमि - जुगलाणं ।
[2]संजणिदे णिय - बाले, दट्ठूण महब्भयं होदि ।।४६९।।

अर्थ :—(इस कुलकरके) धारिणी नामकी देवी थी । इसके समयमें उत्पन्न हुए अपने बाल युगलको देखकर भोगभूमिज युगलोंको महाभय उपस्थित होता है ।।४६९।।

एस मणू [3]भीदाणं, ताणं भासेदि दिव्वमुवदेसं ।
[4]तुम्हाण सुदा एदे, पेच्छह पुण्णिदु - सुंदरं वदणं ।।४७०।।

अर्थ :—तब यह मनु उन भयभीत युगलोंको दिव्य उपदेश देता है कि ये तुम्हारे पुत्र-पुत्री हैं, पूर्ण चन्द्र सदृश इनके सुन्दर मुख देखो ।।४७०।।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. उप्पण्णदि । २. ब. क. ज. य. उ. साजणिदे । ३. द. ब. क. ज. य. उ. भेदाणं । ४. द. ब. क. उ तुम्हेण, ज. य तुम्हेणु ।

तम्मणु - उवएसादो, बालय - वदणाणि देक्खिदूण फुडं ।
भोग - णरा तक्काले, आउ - विहीणा विलीयंति ।।४७१।।

अर्थ :—इस मनुके उपदेशसे स्पष्ट रूपसे अपने बालकोंके मुख देखकर भोगभूमिज (युगल) तत्काल ही आयुसे रहित होकर विलीन हो जाते थे ।।४७१।।

यशस्वी मनुका निरूपण—

अट्ठमए णाक - गदे, असीदि-कोडीहि भजिद-पल्लम्मि ।
वोलीणे उप्पज्जदि, जसस्सि - णामो मणू णवमो ।।४७२।।

१
। प ८००००००००० ।

अर्थ :—आठवें कुलकरके स्वर्ग-गमन पश्चात् अस्सी करोड़से भाजित पल्यके व्यतीत होने पर यशस्वी नामक नवम मनु उत्पन्न हुआ ।।४७२।।

पण्णासाधिय - छस्सय - कोदंड - पमाण - देह - उच्छेहो ।
कंचण - वण्ण - सरीरो, सय - कोडी - भजिद - पल्लाऊ ।।४७३।।

१
। दं ६५० । प १०००००००००० ।

अर्थ :—वह स्वर्ण सदृश वर्ण वाले शरीरसे युक्त, छह सौ पचास धनुष ऊँचा और सौ करोड़से भाजित पल्योपम प्रमाण आयु वाला था ।।४७३।।

णामेण कंतमाला, हुवेदि देवी इमस्स तक्काले ।
णामकरणुच्छवट्टं, उवदेसं देदि जुगलाणं ।।४७४।।

अर्थ :—इसके कान्तमाला नामकी देवी थी। यह उस समय युगलोंको अपनी सन्तानके नामकरण-उत्सवके लिए उपदेश देता है ।।४७४।।

लद्धूणं उवदेसं, णामाणि कुणंति ते वि बालाणं ।
णिवसिय थोवं कालं, [1]पक्खीणाऊ विलीयंति ।।४७५।।

---

१. ब. क. ज. य. उ. परिखीणाऊ ।

अर्थ :—इस उपदेशको पाकर वे युगल भी बालकोंके नाम करने (रखते) हैं और थोड़े समय रह कर आयु क्षीण होने पर विलीन हो जाते हैं ।।४७५।।

अभिचन्द्र नामक कुलकरका निरूपण—

[1]णवमे सुरलोय - गदे, अडसय - कोडीहिं भजिद - पल्लम्मि ।
अंतरिदे उप्पज्जदि, अहिचंदो णाम दसम - मणू ।।४७६।।

१
। प ८००००००००० ।

अर्थ :—नवम कुलकरके स्वर्गस्थ होने पर आठ सौ करोडसे भाजित पल्यके अनन्तर अभिचन्द्र नामक दसवां मनु उत्पन्न होता है ।।४७६।।

पणुवीसाधिय - छस्सय - कोदंड - पमाण - देह - उच्छेहो ।
कोडी - सहस्स - भजिदा पलिदोवममेत्त - परमाऊ ।।४७७।।

१
। दं ६२५ । प १०००००००००० ।

अर्थ :—उसके शरीरकी ऊंचाई छह सौ पच्चीस धनुष और आयु एक हजार करोडसे भाजित पल्योपम प्रमाण थी ।।४७७।।

कंचण - समाण - वण्णो, देवी णामेण सिरिमदी तस्स ।
सो वि सिसूणं रोदण - वारण - हेदु कहेदि उवदेसं ।।४७८।।

अर्थ :—उसके शरीरका वर्ण स्वर्ण सदृश था। उसके श्रीमती नामकी देवी थी। वह (कुलकर) भी शिशुओंका रुदन रोकने हेतु उपदेश देता है ।।४७८।।

रत्तीए ससिबिंबं, दरिसिय [2]खेलावणाणि कादूणं ।
ताण [3]वयणोवदेसं, सिक्खावह कुणह जवणं मि ।।४७९।।

---

१. द. क. णवमो। २. द. ब. खेलावणाणि। ३ ब. वयणोदीमं, ब. उ. वयणोवदीमं, क ज य. वयणोवगदी।

अर्थ :– रात्रिमें चन्द्रमण्डल दिखाकर और खिलावन करके उन्हें वचनोपदेश (बोलना) सिखाओ तथा यत्न (पूर्वक उनका रक्षण) करो ।।४७९।।

सोऊणं उवएसं, भोग-णरा तह करंति बालाणं ।
अच्छिय थोव-दिणाइं, पक्खीणाऊ विलीयंति ।।४८०।।

अर्थ :—यह उपदेश सुनकर भोगभूमिज मनुष्य शिशुओंके साथ वैसा ही व्यवहार करते हैं। वे (युगल) थोड़े दिन रह कर आयुके क्षीण होने पर विलीन हो जाते हैं ।।४८०।।

उपर्युक्त पांच कुलकरोंकी दण्ड व्यवस्था—

[1]लोहेणाभिहदाणं, सीमंधर - पहुदि - कुलकरा पंच ।
ताणं सिक्खण-हेदुं, हा - मा - कारं कुणंति [2]दंडत्थं ।।४८१।।

अर्थ :—सीमन्धरादिक पाँच कुलकर लोभसे आक्रान्त उन युगलों के शिक्षण हेतु दण्डके लिये हा (खेद सूचक) और मा (निषेध सूचक) शब्दोंका उपयोग करते हैं ।।४८१।।*

चन्द्राभ मनुका निरूपण—

अहिचंदे तिदिव-गदे, दस-[3]घण-हद-अट्ठ-कोडि-हिद-पल्ले ।
अंतरिदे चंदाहो, एक्कारसमो हवेदि मणू ।।४८२।।

$$\frac{\text{प}}{८००००००००००}$$

अर्थ :—अभिचन्द्र कुलकरका स्वर्गारोहण हो जाने पर दसके घन (१०००) से गुणित आठ करोड़ (आठ करोड़ × १०००) से भाजित पल्य प्रमाण अन्तरालके पश्चात् चन्द्राभ नामक ग्यारहवाँ मनु उत्पन्न होता है ।।४८२।।

छस्सय-[4]दंडुच्छेहो, वर-चामीयर-सरिच्छ-तणु-वण्णो ।
दस - कोडि - सहस्सेहिं, [5]भाजिद - पल्ल - प्पमाणाऊ ।।४८३।।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. लोभेणाभयदाणं । २. द. दंडत्था । * त्रिलोकसार गा० ७९८ के आधार पर शेष कुलकरोंके समय हा-मा-धिक्की व्यवस्था थी। ३. द. ब. क. ज. य. उ. दसपुणहद । ४. ब. दंडुच्छेहो । ५. ब. क. ज. य. उ. भजिदे ।

। दं ६०० । प १००००००००००० ।

अर्थ :—उसके शरीरकी ऊँचाई छह सौ धनुष, शरीरका वर्ण उत्तम स्वर्ण सदृश और आयु दस हजार करोड़ से भाजित पल्योपम प्रमाण थी ॥४८३॥

णिरुवम-लावण्ण-जुदा, तस्स य देवी पहावदी-णामा ।
तक्काले अदिसीदं, होदि तुसारं च अदिवाऊ ॥४८४॥

सीदाणिल-[1]फासादो, अइदुक्खं पाविदूण भोगणरा ।
चंदादी - जोदि - गणे, तुसार - छण्णे ण पेच्छंति ॥४८५॥

अदि - भीदाण इमाणं, चंदाहो देदि दिव्व - उवदेसं ।
भोगावणि-हाणीए, जादा कम्मक्खिदी [2]णिअडा ॥४८६॥

अर्थ :—उस (कुलकर) के अनुपम लावण्य युक्त प्रभावती नामकी देवी थी । उस कालमें शीत बढ़ गई थी, तुषार छाने लगा था और अति वायु चलने लगी थी । शीतल वायुके स्पर्शसे अत्यन्त दुःख पाकर भोगभूमिज मनुष्य तुषारसे आच्छादित चन्द्रादिक ज्योतिषगणको नहीं देख पाते थे । इस कारण अत्यन्त भयको प्राप्त उन भोगभूमिज पुरुषोंको चन्द्राभ कुलकर यह दिव्य उपदेश देता है कि भोगभूमिकी हानि होने पर अब कर्मभूमि निकट आ गई है ॥४८४-४८६॥

कालस्स विकारादो, एस सहाओ पयट्टदे णियमा ।
णासइ तुसारमेयं, एण्हि मत्तंड - किरणेहिं ॥४८७॥

अर्थ :—कालके विकारसे नियमतः यह स्वभाव प्रवृत्त हुआ है । अब यह तुषार सूर्यकी किरणोंसे नष्ट होगा ॥४८७॥

सोदूण तस्स वयणं, ते सव्वे भोगभूमिजा मणुवा ।
रवि-[3]किरणासिद-सीदा, पुत्त-कलत्तेहिं जीवंति ॥४८८॥

अर्थ :—उस (कुलकर) के वचन सुनकर वे सब भोगभूमिज मनुष्य सूर्यकी किरणोंसे शीतको नष्ट करते हुए पुत्र-कलत्रके साथ जीवित रहने लगे ॥४८८॥

---

१. द. ब. य. पासादो । २. द. ब. क. उ. णिअदा, ज. णणदा, य. णएदा । ३. द. ब. क. ज. य. उ. रविकिरणासदसीदो ।

मरुदेव कुलकरका निरूपण—

चंदाहे सग्ग-गदे, सीदि-सहस्सेहि गुणिद-कोडि-हिदे ।
पल्ले गयम्मि जम्मइ, मरुदेवो णाम बारसमो ।।४८९।।

१
। प ८०००००००००००० ।

अर्थ :—चन्द्राभ कुलकरके स्वर्ग चले जानेके बाद अस्सी हजार करोड़से भाजित पल्य व्यतीत होने पर मरुदेव नामक बारहवें कुलकरने जन्म लिया ।।४८९।।

पंच - सया पण्णत्तरि - सहिदा चावाणि तस्स उच्छेहो ।
इगि-लक्ख-कोडि-भजिदं, पलिदोवममाउ - परिमाणं ।।४९०।।

। द ५७५ । प १००००००००००० ।

अर्थ :– उसके शरीरकी ऊँचाई पाँचसौ पचहत्तर धनुष और आयु एक लाख करोड़से भाजित पल्योपम प्रमाण थी ।।४९०।।

कंचण - णिहस्स तस्स य, सच्चा णामेण अणुवमा देवी ।
तक्काले गज्जंता, मेघा वरिसंति तडिवंता[1] ।।४९१।।

अर्थ :—स्वर्ण सदृश प्रभावाले उस कुलकरके 'सत्या' नामकी अनुपम देवी थी। उसके समयमें बिजली युक्त मेघ गरजते हुए बरसने लगे थे ।।४९१।।

कद्दम - पवह - णदीओ, अदिट्ठ-पुव्वाओ [2]ताव दट्ठूणं ।
अदिभीदाण णराणं काल - विभागं भणेदि[3] मरुदेवो ।।४९२।।

अर्थ :—उस समय पहले कभी नहीं देखी गयी कीचड़ युक्त जल-प्रवाहवाली नदियोंको देख कर अत्यन्त भयभीत हुए मनुष्योंको मरुदेव काल-विभाग प्ररूपित करता है ।।४९२।।

---

१. क. ज. य. उ. तदिवंता । २. द. ब. क. ज. य. उ. ताव । ३. द. ब. क. ज. य. उ. ब णेदि ।

कालस्स विकारादो, आसण्णा होदि तुम्ह कम्म-मही ।
[1]णावादीहि णदीणं, उत्तारह भूधरेसु सोवाणे ।।४६३।।

कादूण चलह [2]तुम्हे, पाउस-कालम्मि-धरह छत्ताइं[3] ।
सोदूण तस्स वयणं, सव्वे ते भोगभूमि - णरा ।।४६४।।

उत्तरिय वाहिणीओ, आरुहिदूण च तुंग[4]-सेलेसुं ।
वि - णिवारिद - वरिसाओ, पुत्त - कलत्तेहिं जीवंति ।।४६५।।

अर्थ :—कालके विकारसे अब कर्मभूमि तुम्हारे निकट है। अब तुम लोग नदियोंको नौका आदिसे पार करो, सीढ़ियोंसे होकर पहाड़ों पर चलो (चढ़ो) और वर्षाकालमें छत्रादि धारण करो। उस कुलकरके वचन सुनकर वे सब भोगभूमिज मनुष्य नदियों को उतर कर, उत्तुङ्ग पहाड़ों पर चढ़कर और वर्षाका निवारण करते हुए पुत्र एवं कलत्रके साथ जीवित रहने लगे ।।४६३-४६५।।

प्रसेनजित् कुलकरका निरूपण—

मरुदेवे तिदिव-गदे, अड-कोडी-लक्ख-भजिद-पल्लम्मि ।
अंतरिदे उप्पज्जदि, [5]पसेणजिण्णाम तेरसमो ।।४६६।।

प $\frac{१}{८००००००००००००}$ ।

अर्थ :—मरुदेवके स्वर्गस्थ हो जाने पर आठ लाख करोड़से भाजित पल्य-प्रमाण अन्तरालके पश्चात् प्रसेनजित् नामक तेरहवाँ कुलकर उत्पन्न होता है ।।४६६।।

चामीयर-सम-[6]वण्णो, दस-हद-पणवण्ण-चाव-उच्छेहो ।
दस-कोडि - लक्ख - भाजिद - पलिदोवममेत्त - परमाऊ ।।४६७।।

दं ५५० । प $\frac{१}{१००००००००००००००}$ ।

---

१. द. ब. णावादीण। २. द. ब. क. ज. य. उ. तुम्हो। ३. द. ब. क. ज. य. उ. छत्ताहिं। ४. द. ब क. ज. य. उ. तुरंगसेलेसुं। ५. द. पसेणदिण्णाम। ६ द. ब. क. ज. उ. वण्णा।

अर्थ :—वह कुलकर स्वर्ण सदृश वर्ण वाला, दससे गुणित पचपन अर्थात् ५५० धनुष प्रमाण ऊँचा और दस लाख करोड़से भाजित पल्योपम प्रमाण आयु वाला था ।।४६७।।

अमिदमदी तद्देवी, तक्काले वत्ति-पडल-परिवेढा[1] ।
[2]जायंति जुगलबाला, देक्खिय भीदा किमेदमिदि ।।४६८।।

भय-जुत्ताण णराणं, पसेणजिदभणदि दिव्व-उवदेसं ।
[3]वत्ति-पडलापहरणं, कहिदम्मि कुणंति ते सव्वे ।।४६९।।

अर्थ :—उसके 'अमितमती' नामक देवी थी। उस समय वर्तिपटल (जरायु) से वेष्टित युगल शिशु जन्म लेते हैं। उन्हें देखकर माता-पिता भयभीत होते हैं और यह क्या है ? ऐसा सोचते हैं। इस प्रकार भयसे संयुक्त मनुष्योंको प्रसेनजित् मनु वर्ति - पटल दूर करनेका दिव्य उपदेश देते हैं। (उनके) कथनानुसार वे सब मनुष्य वर्ति - पटल दूर करने लगे ।।४६८-४६९।।

पेच्छंते बालाणं, मुहाणि [4]वियसत्त-कमल-सरिसाणि ।
कुव्वंति पयत्तेणं, सिसूण रक्खा णरा सव्वे ।।५००।।

अर्थ :—सब मनुष्य शिशुओंके विकसित कमल सदृश मुखोंको देखने लगे और प्रयत्न-पूर्वक उनका रक्षण करने लगे ।।५००।।

चौदहवें नाभिराय मनुका निरूपण—

तम्मणु-तिदिव[5]-पवेसे, कोडि-हदासीदि-लक्ख-हिद-पल्ले ।
[6]अंतरिदे संभूदो, चोद्दसमो णाभिराअ - मणू ।।५०१।।

$\frac{?}{}$
। प ८००००००००००००० ।

अर्थ :—उस मनुके स्वर्गस्थ होने पर अस्सी लाख करोड़से भाजित पल्य प्रमाण कालके अन्तरालसे चौदहवें नाभिराय मनु उत्पन्न हुए ।।५०१।।

---

१. द ब. क ज. पडल परिवेदा, ज. य. पद परिवेदा। २. क. ज. य. उ. जायंती। ३. ब. उ. विति। ४, द. ब. क. ज. य. उ. वमट्ट। ५. द. ब. उ. तिदव। ६. द. ब. क. उ. अंतरिदो।

पणुवीसुत्तर-पण-सय-चाउच्छेहो सुवण्ण-वण्ण-णिहो ।
इगि-पुव्व-कोडि-आऊ, मरुदेवी णाम तस्स बहू ।।५०२।।

। दं ५२५ । पुव्व कोडि १ आउ ।

अर्थ :—वह पाँचसौ पच्चीस धनुष ऊँचा, स्वर्ण सदृश वर्ण वाला और एक पूर्व कोटि प्रमाण आयुसे युक्त था। उसके मरुदेवी नामकी पत्नी थी ।।५०२।।

तस्सि काले होदि हु, बालाणं णाभिणाल - मइदीहं ।
तक्कत्तणोवदेसं, कहदि मणू ते पकुव्वंति ।।५०३।।

अर्थ :—उस समय बालकोंका नाभिनाल अत्यन्त लम्बा होने लगा था, नाभिराय कुलकर उसे काटनेका उपदेश देते हैं और वे मनुष्य वैसा ही करते हैं ।।५०३।।

कप्पद्दुमा पणट्ठा, ताहे[1] विविहो[2] सहीणि सस्साणि ।
महुर - रसाइ फलाइं, पेच्छंति सहावदो धरित्तीसु ।।५०४।।

अर्थ :—उस समय कल्पवृक्ष नष्ट हो गये और पृथिवी पर स्वभावसे ही उत्पन्न हुई अनेक प्रकारकी औषधियाँ, सस्य (धान्यादि) एवं मधुर रस युक्त फल दिखाई देने लगे ।।५०४।।

कप्पतरूण विणासे, तिव्व-भया भोगभूमिजा मणुवा ।
सव्वे वि णाहिराजं, सरणं पविसंति रक्खेत्ति ।।५०५।।

अर्थ :—कल्पवृक्षोंके नष्ट हो जाने पर तीव्र भयसे युक्त सब ही भोगभूमिज मनुष्य नाभिराय कुलकरकी शरणमें पहुँचे और बोले 'रक्षा करो' ।।५०५।।

करुणाए णाहिराओ, णराण उवदिसदि जीवणोवायं ।
भुंजह वणप्पदीणं, चोचादीणं फलाइ भक्खाणि ।।५०६।।

अर्थ :—नाभिराय करुणा-पूर्वक उन मनुष्योंको आजीविकाके उपायका उपदेश देते हैं। (वे बताते हैं कि) भक्षण करने योग्य चोचादिक (छिलके वाली) वनस्पतियोंके फल (केला, श्रीफल आदि) खाओ ।।५०६।।

---

१. द. तादे, ब. क. ज. य. उ. तहि । २. द. ब. क. ज. य. उ. विविहोसहीण सस्थाणं ।

सालि-जव-वल्ल-[1]तुवरी-तिल-मास-प्पहुदि-विविह-धण्णाइं ।
[2]उवभुंजह पियह तहा, सुरहि-प्पहुदीण दुद्धाणि ।।५०७।।

अर्थ :—शालि, जौ, वल्ल, तूवर, तिल और उड़द आदि विविध प्रकारके धान्य खाओ और गाय आदिका दूध पिओ ।।५०७।।

अण्णं बहु उवदेसं, देदि दयालू णराण सयलाणं ।
तं कादूणं [3]सुखिदा, जीवंते तप्पसाएण ।।५०८।।

अर्थ :—(इसके अतिरिक्त) दयालु नाभिराय उन सब मनुष्योंको अन्य भी अनेक प्रकारकी शिक्षा (सीख) देते हैं। तदनुसार आचरण करके वे सब मनुष्य, मनु नाभिरायके प्रसादसे सुख-पूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे ।।५०८।।

मतान्तरसे कुलकरोंकी आयुका निर्धारण—

पलिदोवम-दसमंसो, ऊणो थोवेण पदिसुदिस्साऊ[4] ।
अममं अडडं तुडियं, कमलं णलिणं च पउम-पउमंगा ।।५०९।।

कुमुद-कुमुदंग-[5]णउदा, णउदंगं पव्व-पुव्व-कोडीओ ।
सेस-मणूणं आऊ, कमसो केई [6]णिरूवेंति ।।५१०।।

पाठान्तरं ।।

अर्थ :—प्रतिश्रुति कुलकरकी आयु कुछ कम पल्योपमके दसवें भाग प्रमाण थी। इसके आगे शेष तेरह कुलकरोंकी आयु क्रमशः अमम, अडड, त्रुटित, कमल, नलिन, पद्म, पद्माङ्ग, कुमुद, कुमुदाङ्ग, नयुत, नयुताङ्ग, पर्व और पूर्व कोटि प्रमाण थी, ऐसा कोई आचार्य कहते हैं ।।५०९-५१०।।

नोट :—४२८ से ५१० पर्यन्तकी गाथाओंसे सम्बन्धित मूल संदृष्टियोंके अर्थ, देवियोंके नाम और दण्ड व्यवस्था आदिका निदर्शन इसप्रकार है—

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. तोवरी .... विविहुवण्णाइं । २. द. ब. क. ज. य. उ. उवभुंजदि । ३. द. ब. क. ज. य. उ. सुखिदो । ४. क. ज. य. उ. पदिसुदिमाऊ । ५. द. ब. क. ज. य. उ. णलिणा । ६. द. णरूवंति ।

तालिका : ११

कुलकरोंके उत्सेध, आयु एवं अन्तरकाल आदिका विवरण— गाथा ४२८ से ५१०

क्रमांक	नाम	उत्सेध (धनुषोंमें)	आयु-प्रमाण	मतान्तरसे आयु प्र०	जन्मका अन्तर काल	देवीके नाम	दण्ड निर्धारण
१	प्रतिश्रुति	१८००	पल्य/१०	कुछ कम पल्य/१०	०	स्वयंप्रभा	हा
२	सन्मति	१३००	पल्य/१००	अमम	पल्य/८०	यशस्वती	हा
३	क्षेमङ्कर	८००	पल्य/१०००	अडड	पल्य/८००	सुनन्दा	हा
४	क्षेमन्धर	७७५	पल्य/१००००	त्रुटित	पल्य/८०००	विमला	हा
५	सीमङ्कर	७५०	पल्य/१०००००	कमल	पल्य/८००००	मनोहरी	हा
६	सीमन्धर	७२५	पल्य/दस लाख	नलिन	पल्य/८ लाख	यशोधरा	हा मा
७	विमलवाहन	७००	पल्य/१ क०	पद्म	पल्य/८० लाख	सुमती	हा मा
८	चक्षुष्मान्	६७५	पल्य/१० क०	पद्माङ्ग	पल्य/८ क०	धारिणी	हा मा
९	यशस्वी	६५०	पल्य/१०० क०	कुमुद	पल्य/८० क०	कान्तमाला	हा मा
१०	अभिचन्द्र	६२५	पल्य/१००० क०	कुमुदाङ्ग	पल्य/८०० क०	श्रीमती	हा मा
११	चन्द्राभ	६००	पल्य/१० हजार क०	नयुत	पल्य/८००० क०	प्रभावती	त्रि.सा.गा.७९८ हा मा धिक्
१२	मरुदेव	५७५	पल्य/१ लाख क०	नयुताङ्ग	पल्य/८० हजार क०	सत्या	" " "
१३	प्रसेनजित्	५५०	पल्य/१० लाख क०	पूर्व	पल्य/८ लाख क०	अमितमती	" " "
१४	नाभिराय	५२५	पूर्व कोटि वर्ष	पूर्वकोटि	पल्य/८० लाख क०	मरुदेवी पत्नी	" " "

कुलकरोंका विशेष निरूपण –

एदे चउदस मणुओ, पडिसुद-पहुदी हु णाहिरायंता ।
पुव्व-भवम्मि विदेहे, रायकुमारा महाकुले [1]जादा ।।५११।।

अर्थ :—प्रतिश्रुतिको आदि लेकर नाभिराय-पर्यन्त ये चौदह मनु पूर्व-भवमें विदेह क्षेत्रके अन्तर्गत महाकुलमें राजकुमार थे ।।५११।।

कुसला दाणादीसुं, [2]संजम-तव-णाणवंत-पत्ताणं ।
णिय-जोग्ग[3]-अणुट्ठाणा, मद्दव-अज्जव-गुणेहिं संजुत्ता ।।५१२।।

मिच्छत्त-भावणाए, भोगाउं बंधिऊण[4] ते सव्वे ।
[5]पच्छा खाइय-सम्मं, गेण्हंति जिणिंद चलण-मूलम्हि ।।५१३।।

अर्थ :—संयम, तप और ज्ञानसे संयुक्त पात्रोंको दानादिक देनेमें कुशल, अपने योग्य अनुष्ठानसे युक्त तथा मार्दव-आर्जवादि गुणोंसे सम्पन्न वे सब पूर्वमें मिथ्यात्व-भावनासे भोगभूमिकी आयु बाँध कर पश्चात् जिनेन्द्र भगवानके पादमूलमें क्षायिक सम्यक्त्व ग्रहण करते हैं ।।५१२-५१३।।

णिय-जोग्ग-सुदं [6]पढिदा, खीणे आउम्हि ओहिणाण-[7]जुदा ।
उप्पज्जिदूण भोगे, केइ[8] णरा ओहि-णाणेण ।।५१४।।

जादि-भरणेण केई, भोग-मणुस्साण जीवणोवायं ।
भासंति जेण तेणं, मणुणो भणिदा मुणिदेहिं ।।५१५।।

अर्थ :—अपने योग्य श्रुतको पढ़कर (इनमेंसे) कितने ही राजकुमार आयु-क्षीण हो जाने पर भोगभूमिमें अवधिज्ञान सहित मनुष्य उत्पन्न होकर अवधिज्ञानसे और कितने ही जाति-स्मरणसे भोगभूमिज मनुष्योंको जीवनके उपाय बताते हैं, इसलिये ये मुनीन्द्रों द्वारा 'मनु' कहे गये हैं ।।५१४-५१५।।

---

१ ब. उ. जादो । २. द. ब. क. ज. य. उ. संजव । ३. ब. क. उ. जोगा । ४. द. बंधवूण, य बंधिदूण । ५. द. ब क. ज. उ. पच्छा । ६. द. ब. क. ज. य. उ. पढिदा । ७. द. ब. ज. उ. जुदो । ८. ब. केई ।

कुल-धारणादु सव्वे, कुलधर-णामेण भुवण-विक्खादा ।
कुल-करणम्मि य कुसला, कुलकर-णामेण-सुपसिद्धा ।।५१६।।

अर्थ :—ये सब कुलोंके धारण करनेसे 'कुलधर' नामसे और कुलोंके करनेमें कुशल होनेसे 'कुलकर' नामसे भी लोकमें प्रसिद्ध हैं ।।५१६।।

शलाका पुरुषोंकी संख्या एवं उनके नाम—

एत्तो सलाय-[1]पुरिसा, तेसट्ठी सयल-[2]भुवण-विक्खादा ।
जायंति भरह-खेत्ते, णरसीहा पुण्ण-पाकेण ।।५१७।।

अर्थ :—अब (नाभिराय कुलकरके पश्चात्) भरतक्षेत्रमें पुण्योदयसे मनुष्योंमें श्रेष्ठ और सम्पूर्ण लोकमें प्रसिद्ध तिरेसठ शलाका-पुरुष उत्पन्न होने लगते हैं ।।५१७।।

तित्थयर-चक्क-बल-हरि-पडिसत्तू णाम विस्सुदा कमसो ।
वि - गुणिय - बारस - बारस - पयत्थ - णिहि - रंध - संखाए ।।५१८।।

। २४।१२।९।९।९ ।

अर्थ :—ये शलाका पुरुष तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती, बलभद्र, नारायण और प्रतिशत्रु (प्रति-नारायण) नामोंसे प्रसिद्ध हैं । इनकी संख्या क्रमशः बारहकी दुगुनी (चौबीस), बारह, नौ (पदार्थ), नौ (निधि) और नौ (रन्ध्र) है ।।५१८।।

विशेषार्थ :—प्रत्येक उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी कालमें चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नौ बलभद्र, नौ नारायण और नौ प्रतिनारायण ये ६३ महापुरुष होते हैं । भरतक्षेत्र के इस अवसर्पिणी कालमें भी इतने ही हुए हैं, जिनके नाम आदि इस प्रकार हैं—

वर्तमान कालीन चौबीस तीर्थंकरोंके नाम—

उसहमजियं च संभवमहिणंदण-सुमइ-णाम-धेयं च ।
पउमप्पहं सुपासं, चंदप्पह-पुप्फदंत-सीयलए ।।५१९।।

---

१ द. ब. क. ज. ठ. पुरिसो । २. ब. भवण ।

सेयंस-वासुपुज्जे, विमलाणंते य धम्म-संती य ।
कुंथु-अर-मल्लि-सुव्वय-णमि-णेमी-पास-वड्ढमाणा य ॥५२०॥

पणमह चउवीस-जिणे, तित्थयरे तत्थ भरह-खेत्तम्मि ।
भव्वाणं भव-रुक्खं, छिंदंते णाण-परसूहिं ॥५२१॥

अर्थ :—भरतक्षेत्रमें उत्पन्न हुए १ ऋषभ, २ अजित, ३ सम्भव, ४ अभिनन्दन, ५ सुमति, ६ पद्मप्रभ, ७ सुपार्श्व, ८ चन्द्रप्रभ, ९ पुष्पदन्त, १० शीतल, ११ श्रेयांस, १२ वासुपूज्य, १३ विमल, १४ अनन्त, १५ धर्म, १६ शान्ति, १७ कुन्थु, १८ अर, १९ मल्लि, २० (मुनि) सुव्रत, २१ नमि, २२ नेमि, २३ पार्श्व और २४ वर्द्धमान इन चोबीस तीर्थङ्करोंको नमस्कार करो। ये ज्ञानरूपी फरसेसे भव्य जीवोंके संसाररूपी वृक्षको छेदते हैं ॥५१९-५२१॥

चक्रवर्तियोंके नाम—

भरहो सगरो मघवो, सणक्कुमारो य संति-कुंथु-अरा ।
तह य [1]सुभोमो पउमो, हरिजयसेणा[2] य बम्हदत्तो य ॥५२२॥

छक्खंड-पुढवि-मंडल-पसाहणा कित्ति-भरिय-[3]भुवणयला ।
एदे बारस जादा, चक्कहरा भरह-खेत्तम्मि ॥५२३॥

अर्थ :—भरतक्षेत्रमें १ भरत, २ सगर, ३ मघवा, ४ सनत्कुमार, ५ शान्ति, ६ कुन्थु, ७ अर, ८ सुभौम, ९ पद्म, १० हरिषेण, ११ जयसेन और १२ ब्रह्मदत्त ये बारह चक्रवर्ती छह खण्ड-रूप पृथिवीमंडलको सिद्ध करनेवाले और कीर्तिसे भुवनतलको भरने वाले उत्पन्न हुए हैं॥५२२-५२३॥

बलदेवोंके नाम—

बिजयाचला सुधम्मो, सुप्पह-णामो सुदंसणो णंदी ।
तह णंदिमित्त-रामा, पउमो णव होंति बलदेवा ॥५२४॥

---

१. ब. क. ज. य. उ. सुभोम्मो । २. ब. क. ज. य. उ. सेणो । ३. द. व. क. ज. ब. उ. भवणयला ।

अर्थ :—(भरतक्षेत्रमें) विजय, अचल, सुधर्म, सुप्रभ, सुदर्शन, नन्दी, नन्दिमित्र, राम और पद्म ये नौ बलदेव हुए हैं ॥५२४॥

नारायणोंके नाम—

तह य तिविट्ठ-दुविट्ठा, सयंभू पुरिसुत्तमो पुरिससीहो ।
पुंडरिय[1]-दत्त-णारायणा य किण्हो हवंति णव विण्हू ॥५२५॥

अर्थ :—तथा त्रिपृष्ठ, द्विपृष्ठ, स्वयम्भू, पुरुषोत्तम, पुरुषसिंह, पुण्डरीक, दत्त, नारायण (लक्ष्मण) और कृष्ण ये नौ विष्णु (नारायण) हैं ॥५२५॥

प्रतिनारायणोंके नाम—

अस्सग्गीवो तारय-मेरक-मधुकीडभा तह णिसुंभो ।
बलि-पहरण-रावणा य, जरसंधो णव य पडिसत्तू ॥५२६॥

अर्थ :—अश्वग्रीव, तारक, मेरक, मधुकैटभ, निशुम्भ, बलि, प्रहरण, रावण और जरासंध, ये नौ प्रतिशत्रु (प्रतिनारायण) हैं ॥५२६॥

रुद्रोंके नाम—

भीमावलि-जियसत्तू, रुद्दो [2]वइसाणलो य [3]सुपइट्ठो ।
तह अचल पुंडरीओ, अजियंधर अजियणाभि-पेढाला ॥५२७॥

सच्चइसुदो य एदे, एक्कारस होंति तित्थयर-काले ।
रुद्दा रउद्द-कम्मा, अहम्म-वावार-संलग्गा ॥५२८॥

अर्थ :—तीर्थंकर कालमें भीमावलि, जितशत्रु, रुद्र, विश्वानल, सुप्रतिष्ठ, अचल, पुण्डरीक, अजितन्धर, अजितनाभि, पीठ और सात्यकिसुत ये ग्यारह रुद्र होते हैं। ये सब अधर्मपूर्ण व्यापारमें संलग्न होकर रौद्रकर्म किया करते हैं ॥५२७-५२८॥

---

१. क. ज. य. उ. पुंडरीय। २. द. ब. क. उ. वेइसावणो। ३. क. ज. य. उ. सपइटठा।

तीर्थङ्करोंके अवतरण-स्थान—

सव्वत्थसिद्धि-ठाणा, अवइण्णा उसह-धम्म-पहुदि-तिया ।
विजया णंदण-अजिया, चंदप्पह वइजयंताद ।।५२९।।

अपराजियाभिहाणा, अर-णमि-मल्लीओ णेमिणाहो य ।
सुमई जयंत-ठाणा, आरण-जुगला य [1]सुविहि-सीयलया ।।५३०।।

पुप्फोत्तराभिहाणा, अणंत-सेयंस-वड्ढमाण-जिणा ।
विमलो य [2]सदाराणद-पाणद-कप्पा य सुव्वदो पासो ।।५३१।।

हेट्ठिम-मज्झिम-उवरिम-गेवेज्जादागदा महासत्ता ।
संभव-सुपास-पउमा, महसुक्का[3] वासुपुज्ज-जिणो[4] ।।५३२।।

अर्थ :—ऋषभ और धर्मादिक (धर्म, शान्ति, कुन्थु) तीन तीर्थङ्कर सर्वार्थसिद्धिसे अवतीर्ण हुए थे; अभिनन्दन और अजितनाथ विजयसे; चन्द्रप्रभ वैजयन्तसे; अर, नमि, मल्लि और नेमिनाथ अपराजित नामक विमानसे; सुमतिनाथ जयन्त विमानसे; पुष्पदन्त और शीतलनाथ क्रमशः आरण युगलसे; अनन्त, श्रेयांस और वर्धमान जिनेन्द्र पुष्पोत्तर विमानसे; विमल, शतार कल्पसे; (मुनि) सुव्रत और पार्श्वनाथ क्रमशः आनत एवं प्राणत कल्पसे; सम्भव, सुपार्श्व और पद्मप्रभ महापुरुष क्रमशः अधोग्रैवेयक, मध्यग्रैवेयक और ऊर्ध्वग्रैवेयकसे, तथा वासुपूज्य जिनेन्द्र महाशुक्र कल्पसे अवतीर्ण हुए थे ।।५२९-५३२।।

ऋषभादि चौवीस तीर्थङ्करों के जन्म स्थान, माता-पिता, जन्मतिथि एवं जन्मनक्षत्रोंके नाम—

जादो हु अवज्झाए, उसहो मरुदेवि-णाभिराएहिं ।
चेत्तासिय-णवमीए, णक्खत्ते [5]उत्तरासाढे ।।५३३।।

अर्थ :—ऋषभनाथ तीर्थंकर अयोध्या नगरीमें, मरुदेवी माता एवं नाभिराय पितासे चैत्र-कृष्णा नवमीको उत्तराषाढ़ा नक्षत्रमें उत्पन्न हुए ।।५३३।।

---

१. द. ब. ज. य. उ. सुहइ । २. द. सहारापाणद, ज. सहाराणदपाणद, य. सहस्साणदपाणद । ३. द. ब. क. ज. य. उ. महसुक्के । ४. द. ब. क. उ. जिणा । ५. द. ब. क. ज. य. उ. उत्तरासाढा ।

माघस्स सुक्क-पक्खे, रोहिणि-रिक्खम्मि दसमि-दिवसम्मि ।
साकेदे अजिय-जिणो, जादो जियसत्तु-विजयाहिं ॥५३४॥

अर्थ :—अजित जिनेन्द्र साकेत नगरीमें, पिता जितशत्रु एवं माता विजयासे, माघ शुक्ला दसमीके दिन रोहिणी नक्षत्रमे उत्पन्न हुए ॥५३४॥

सावत्थीए संभवदेवो य जिदारिणा[1] सुसेणाए ।
मग्गसिर-पुण्णिमाए, जेट्ठा-रिक्खम्मि संजादो ॥५३५॥

अर्थ :—सम्भवदेव श्रावस्ती नगरीमें पिता जितारि और माता सुषेणासे मगसिरकी पूर्णिमाके दिन ज्येष्ठा नक्षत्रमें उत्पन्न हुए ॥५३५॥

माघस्स बारसीए, सिदम्मि पक्खे पुणव्वसू-रिक्खे ।
संवर-सिद्धत्थाहिं, साकेदे णंदणो जादो ॥५३६॥

अर्थ :—अभिनन्दनस्वामी साकेतपुरीमें पिता संवर और माता सिद्धार्थासे माघ शुक्ला द्वादशीको पुनर्वसु नक्षत्रमें उत्पन्न हुए ॥५३६॥

[2]मेघप्पहेण सुमई, साकेद-पुरम्मि मंगलाए य ।
सावण-सुक्केयारसि-दिवसम्मि मघासु संजणिदो ॥५३७॥

अर्थ :—सुमतिनाथजी साकेतपुरीमें पिता मेघप्रभ और माता मङ्गलासे श्रावण-शुक्ला एकादशीके दिन मघा नक्षत्रमें उत्पन्न हुए ॥५३७॥

अस्सजुद-किण्ह-तेरसि-दिणम्मि पउमप्पहो अ चित्तासु ।
धरणेण सुसीमाए, कोसंबी-पुरवरे जादो ॥५३८॥

अर्थ :—पद्मप्रभने कौशाम्बी पुरीमें पिता धरण और माता सुसीमासे आसोज कृष्णा त्रयोदशीके दिन चित्रा नक्षत्रमें जन्म लिया ॥५३८॥

---

१. द. ऐ जिदारिणा । ब. राजिदारिणा । क. ज. य. उ. ए जिदारिणा । २. द. ज. मेघप्पएण, ब. क. उ. मेघरधएण ।

वाराणसिए [1]पुहवी-सुपइट्ठेहिं सुपास-देवो य ।
जेट्ठस्स सुक्क-बारसि-दिणम्मि [2]जादो विसाहाए ॥५३९॥

अर्थ:—सुपार्श्वदेव वाराणसी (बनारस) नगरीमें पिता सुप्रतिष्ठ और माता पृथिवीसे ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशीके दिन विशाखा नक्षत्रमें उत्पन्न हुए थे ॥५३९॥

[3]चंदपहो चंदपुरे, जादो महसेण-लच्छिमइ [4]आहिं ।
पुस्सस्स किण्ह-एयारसिए अणुराह-णक्खत्ते ॥५४०॥

अर्थ :—चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र चन्द्रपुरीमें पिता महासेन और माता लक्ष्मीमती (लक्ष्मणा) से पौष कृष्णा एकादशीको अनुराधा नक्षत्रमें अवतीर्ण हुए ॥५४०॥

रामा-सुग्गीवेहिं, काकंदीए य पुप्फयंत-जिणो ।
मग्गसिर-पाडिवाए, सिदाए मूलम्मि संजणिदो ॥५४१॥

अर्थ :—पुष्पदन्त जिनेन्द्र काकन्दीमे पिता सुग्रीव और माता रामासे मगसिर शुक्ला प्रतिपदाको मूल नक्षत्रमें उत्पन्न हुए ॥५४१॥

माघस्स बारसीए, पुव्वासाढासु किण्ह-पक्खम्मि ।
सीयल-सामी दिढरह-णंदाहिं भद्दिले जादो ॥५४२॥

अर्थ :—शीतलनाथ स्वामी भद्दलपुर (भद्रिकापुरी) में पिता दृढ़रथ और माता नन्दासे माघके कृष्ण पक्षकी द्वादशीको पूर्वाषाढा नक्षत्रमे उत्पन्न हुए ॥५४२॥

सिहपुरे सेयंसो, विण्हु-णरिंदेण वेणु-देवीए ।
एक्कारसिए फग्गुण-सिद-पक्खे सवण-भे जादो ॥५४३॥

अर्थ :—श्रेयांसनाथ सिंहपुरीमे पिता विष्णु नरेन्द्र और माता वेणुदेवीसे फाल्गुन शुक्ला एकादशीको श्रवण नक्षत्रमें उत्पन्न हुए ॥५४३॥

---

१. ब. क. उ. पुहईवी । २ क ज. य.उ. जादा । ३. द.ज. य चदप्पहो । ४. द. आईहि, ब. क. ज. उ. आइहिं, य आइदि ।

चंपाए [1]वासुपुज्जो, वसुपुज्ज-णरेसरेण विजयाए ।
फग्गुण-सुक्क-चउद्दसि-दिणम्मि जादो विसाहासु ।।५४४।।

अर्थ :—वासुपूज्यजी चम्पापुरीमें पिता वसुपूज्यराजा और माता विजयासे फाल्गुन शुक्ला चतुर्दशीके दिन विशाखा नक्षत्रमें उत्पन्न हुए ।।५४४।।

कंपिल्लपुरे विमलो, जादो कदवम्म-[2]जयस्सामाहिं ।
माघ-सिद-चोद्दसीए, णक्खत्ते पुव्वभद्दपदे ।।५४५।।

अर्थ :—विमलनाथ कम्पिलापुरीमें पिता कृतवर्मा और माता जयश्यामासे माघशुक्ला चतुर्दशीको पूर्वभाद्रपद नक्षत्रमें उत्पन्न हुए ।।५४५।।

जेट्ठस्स बारसीए, किण्हाए रेवदीसु य अणंतो ।
साकेदपुरे जादो, सव्वजसा-सिंहसेणेहिं ।।५४६।।

अर्थ :—अनन्तनाथ अयोध्यापुरीमें पिता सिंहसेन और माता सर्वयशासे ज्येष्ठ-कृष्णा द्वादशीको रेवती नक्षत्रमें अवतीर्ण हुए ।।५४६।।

रयणपुरे धम्म-जिणो, भाणु-णरिंदेण [3]सुव्वदाए य ।
माघ-सिद-तेरसीए, जादो पुस्सम्मि णक्खत्ते ।।५४७।।

अर्थ :- धर्मनाथ तीर्थंकर रत्नपुरमें पिता भानु नरेन्द्र और माता सुव्रतासे माघशुक्ला त्रयोदशीको पुष्य नक्षत्रमें उत्पन्न हुए ।।५४७।।

जेट्ठ-सिद-बारसीए, भरणी-रिक्खम्मि संतिणाहो य ।
हत्थिणउरम्मि [4]जादो, अइराए विस्ससेणेण ।।५४८।।

अर्थ :—शान्तिनाथजी हस्तिनापुरमें पिता विश्वसेन और माता ऐरासे ज्येष्ठ-शुक्ला द्वादशीको भरणी नक्षत्रमें उत्पन्न हुए ।।५४८।।

---

१. द. ब. वसुपुज्जो । २. द. ब. क. ज. य. उ. जाद । ३. द. ब. क. ज. य. उ. सुव्वलाए अं । ४. द. ज. जादा ।

तत्थ च्चिय कुंथु-जिणो, सिरिमइ-देवीसु सूरसेणेण ।
वइसाह-पाडिवाए, सिय-पक्खे कित्तियासु संजणिदो ।।५४९।।

अर्थ :—कुन्थुनाथ जिनेन्द्र हस्तिनापुरमें पिता सूर्यसेन और माता श्रीमती देवीसे वैशाख शुक्ला प्रतिपदाको कृतिका-नक्षत्रमें उत्पन्न हुए ।।५४९।।

मग्गसिर-चोद्दसीए, सिद-पक्खे रोहिणीसु अर-देवो ।
णागपुरे संजणिदो, मित्ताए सुदरिसणाणिदेसुं ।।५५०।।

अर्थ :—अरनाथजी हस्तिनापुरमें पिता सुदर्शन राजा और माता मित्रासे मगसिर-शुक्ला चतुर्दशी को रोहिणी नक्षत्रमें अवतीर्ण हुए ।।५५०।।

[1]मिहिलाए मल्लि-जिणो, पहुवदीए [2]कुंभप्पभावदीसेहिं ।
मग्गसिर-सुक्क-एक्कादसीए[3] [4]अस्सिणीए संजादो ।।५५१।।

अर्थ :—मल्लिनाथजी मिथिलापुरीमें पिता कुम्भ और माता प्रभावतीसे मगसिर शुक्ला एकादशीको अश्विनी नक्षत्रमें उत्पन्न हुए ।।५५१।।

रायगिहे मुणिसुव्वय-देवो पउमा-सुमित्त-राएहिं ।
अस्सजुद-बारसीए, सिद-पक्खे सवण-भे जादो ।।५५२।।

अर्थ :—मुनिसुव्रतदेव राजगृहमें पिता सुमित्र राजा और माता पद्मासे आसोज-शुक्ला द्वादशीको श्रवण नक्षत्रमें उत्पन्न हुए ।।५५२।।

मिहिला-पुरिए जादो, विजय-णरिंदेण वप्पिलाए य ।
अस्सिणि-रिक्खे[5] आसाढ[6]-सुक्क-दसमीए णमिसामी ।।५५३।।

अर्थ :—नमिनाथ स्वामी मिथिलापुरीमें पिता विजयनरेन्द्र और माता वप्रिलासे आषाढ़ शुक्ला दशमीको अश्विनी नक्षत्रमें अवतीर्ण हुए ।।५५३।।

---

१. द. क. ज. य. महिलाए । २. द. ब. ज. य. उ. कुंथुप्पभिवदीसेहिं । ३. द. क. ज. य. उ. एक्कादसिए । ४. ब. उ. अस्सिणी जदा एसं । द. क. ज. य. अस्सिणी जुदा एसं । ५. द. ब. क. उ. रेक्खे । ६. द. आसाढे ।

सउरी-पुरम्मि [1]जादो, सिवदेवीए समुद्दविजएण ।
वइसाह-तेरसीए, सिदाए चित्तासु णेमि-जिणो ।।५५४।।

अर्थ :—नेमि जिनेन्द्र शौरीपुरमें पिता समुद्रविजय और माता शिवदेवीसे वैशाख-शुक्ला त्रयोदशीको चित्रा नक्षत्रमें अवतीर्ण हुए ।।५५४।।

हयसेण-वम्मिलाहिं[2], जादो[3] वाणारसीए पास-जिणो ।
पुस्सस्स बहुल-एक्कारसिए रिक्खे विसाहाए ।।५५५।।

अर्थ :—पार्श्वनाथ जिनेन्द्र वाराणसी नगरीमें पिता अश्वसेन और माता वर्मिला (वामा) से पौष-कृष्णा एकादशीको विशाखा नक्षत्रमें उत्पन्न हुए ।।५५५।।

सिद्धत्थराय-पियकारिणीहिं णयरम्मि [4]कुंडले वीरो[5] ।
उत्तरफग्गुणि-रिक्खे, चेत्त-सिद तेरसीए उप्पण्णो ।।५५६।।

अर्थ :—वीर जिनेन्द्र कुण्डलपुरमें पिता सिद्धार्थ और माता प्रियकारिणी (त्रिशला) से चैत्र-शुक्ला त्रयोदशीको उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें उत्पन्न हुए ।।५५६।।

चौवीस तीर्थङ्करोंके वंशोंका निर्देश—

इंदवज्जा —

धम्मार-कुंथू कुरुवंस-जादा, णाहोग्ग-वंसेसु[6] वि वीर-पासा ।
सो सुव्वदो जादव-वंस-जम्मा, णेमी अ इक्खाकु-कुलम्मि सेसा ।।५५७।।

अर्थ :—धर्मनाथ, अरनाथ और कुंथुनाथ कुरुवंशमें उत्पन्न हुए। महावीर और पार्श्वनाथ क्रमशः नाथ एवं उग्र वंशमें, मुनिसुव्रत और नेमिनाथ यादव (हरि) वंशमें तथा शेष सब तीर्थङ्कर इक्ष्वाकु कुलमें उत्पन्न हुए ।।५५७।।

---

१. क. ज. उ जादा। २. द. ज. य. वम्मिणाहिं। ३. क. ज. य. उ. जादा। ४. द. कंडलो। ५. द. धीरा, ज. य. वीरा। ६. ब. क. ज य. उ. सुम्मिवीरपासो।

चौबीस तीर्थङ्करोंकी भक्ति करनेका फल—

इंदवज्जा—

एदे जिणिंदे भरहम्मि खेत्ते, भव्वाण पुण्णेहि कदावतारे ।
काएण वाचा मणसा णमंता, सोक्खाइ मोक्खाइ लहंति भव्वा ।।५५८।।

अर्थ :—भव्य-जीवों के पुण्योदयसे भरतक्षेत्रमें अवतीर्ण हुए इन चौबीस तीर्थङ्करोंको जो भव्यजीव मन-वचन-कायसे नमस्कार करते हैं, वे मोक्षसुख पाते हैं ।।५५८।।

धोडकं[1]— (दोधक वृत्तम्)

केवलणाण - [2]वणप्फइ - कंदे,
तित्थयरे चउवीस - जिणिंदे[3] ।
जो अहिणंदइ भत्ति - पयत्तो,
बज्झइ तस्स पुरंदर - पट्टो ।।५५९।।

अर्थ :—भक्तिमें प्रवृत्त होकर जो कोई भी केवलज्ञानरूप वनस्पतिके कन्द और तीर्थके प्रवर्तक चौबीस तीर्थङ्करोंका अभिनन्दन करता है उसके इन्द्रका पट्ट बँधता है ।।५५९।।

[तालिका नं० १२ पृष्ठ १५८-१५९ पर देखें]

---

१ [दोधकम्] । २. द. वणप्पइ, ज. य. वप्पइ । ३. द. जिणेंदो ।

चौबीस तीर्थंकरों की आगति, जन्म विवरण एवं वंश आदि का निरूपण– गाथा ५१९–५५७

क्र.	नाम	आगति	जन्मनगरी	पिता का नाम	माता का नाम	जन्म मास	पक्ष	तिथि	नक्षत्र	वंश
१.	ऋषभनाथ	सर्वार्थसिद्धि	अयोध्या	नाभिराय	मरुदेवी	चैत्र	कृष्ण	नवमी	उत्तराषाढ़ा	इक्ष्वाकुवंशी
२	अजितनाथ	विजय से	साकेत	जितशत्रु	विजया	माघ	शुक्ल	दशमी	रोहणी	''
३	सम्भवनाथ	अधो ग्रै०	श्रावस्ती	जितारि	सुसेना	मगसिर	शुक्ल	पूर्णिमा	जयेष्ठा	''
४	अभिनन्दन	विजय से	साकेत	संवर	सिद्धार्था	माघ	शुक्ल	द्वादशी	पुनर्वसु	''
५	सुमतिनाथ	जयन्त	साकेत	मेघप्रभ	मंगला	श्रावण	शुक्ल	एकादशी	मघा	''
६.	पद्मप्रभ	ऊर्ध्व ग्रै०	कौशाम्बी	धरण	सुसीमा	आसौज	कृष्ण	त्रयोदशी	चित्रा	''
७.	सुपार्श्वनाथ	मध्य ग्रै०	वाराणसी	सुप्रतिष्ठ	पृथ्वी	ज्येष्ठ	शुक्ल	द्वादशी	विशाखा	''
८.	चन्द्रप्रभ	वैजयंत	चन्द्रपुरी	महासेन	लक्ष्मीमती	पौष	कृष्ण	एकादशी	अनुराधा	''
९.	पुष्पदन्त	आरण	काकन्दी	सुग्रीव	रामा	मगसिर	शुक्ल	प्रतिपदा	मूल	''
१०.	शीतलनाथ	अच्युत	भद्दलपुर	दृढरथ	नन्दा	माघ	कृष्ण	द्वादशी	पूर्वाषाढा	''
११.	श्रेयांसनाथ	पुष्पोत्तर	सिंहपुरी	विष्णु	वेणुदेवी	फाल्गुन	शुक्ल	एकादशी	श्रवण	''

१२.	वासुपूज्यु	महाशुक्र	चम्पापुरी	वसुपूज्य	विजया	फाल्गुन	शुक्ल	चतुर्दशी	विशाखा	इक्ष्वाकुवंशी
१३.	विमलनाथ	शतार	कंपिला	कृतवर्मा	जयश्यामा	माघ	शुक्ल	चतुर्दशी	पूर्वाभाद्रपद	,,
१४.	अनन्तनाथ	पुष्पोत्तर	अयोध्या	सिंहसेन	सर्वयशा	ज्येष्ठ	कृष्ण	द्वादशी	रेवती	इक्ष्वाकुवंशी
१५.	धर्मनाथ	सर्वार्थसिद्धि	रत्नपुर	भानु	सुव्रता	माघ	शुक्ल	त्रयोदशी	पुष्य	कुरुवंशी
१६.	शान्तिनाथ	सर्वार्थसिद्धि	हस्तिनापुर	विश्वसेन	ऐरा	ज्येष्ठ	शुक्ल	द्वादशी	भरणी	इक्ष्वाकुवंशी
१७.	कुन्थुनाथ	सर्वार्थसिद्धि	हस्तिनापुर	सूर्यसेन	श्रीमती	वैशाख	शुक्ल	प्रतिपदा	कृतिका	कुरुवंशी
१८.	अरनाथ	अपराजित	हस्तिनापुर	सुदर्शन	मित्रा	मगसिर	शुक्ल	चतुर्दशी	रोहणी	कुरुवंशी
१९.	मल्लिनाथ	अपराजित	मिथिला	कुम्भ	प्रभावती	मगसिर	शुक्ल	एकादशी	अश्वनी	इक्ष्वाकुवंशी
२०.	मुनिसुव्रत	आनत	राजगृह	सुमित्र	पद्मा	आसौज	शुक्ल	द्वादशी	श्रवण	यादववंशी
२१.	नमिनाथ	अपराजित	मिथिला	विजय	वप्रिला	आषाढ	शुक्ल	दशमी	अश्वनी	इक्ष्वाकुवंशी
२२.	नेमिनाथ	अपराजित	शौरीपुर	समुद्रविजय	शिवदेवी	वैशाखा	शुकल	त्रयोदशी	चित्रा	यादववंशी
२३.	पार्श्वनाथ	प्राणत	वाराणसी	अश्वसेन	वामा	पौष	कृष्ण	एकादशी	विशाखा	उग्रवंशी
२४	महावीर	पुष्पोत्तर	कुण्डलपुर	सिद्धार्थ	प्रियकारिणी	चैत्र	शुक्ल	त्रयोदशी	उत्तरफाल्गुनी	नाथवंशी

चौबीस तीर्थङ्करोंके जन्मान्तरालका प्रमाण—

सुसम-दुसमम्मि णामे, सेसे चउसीदि-लक्ख-पुव्वाणि ।
वास-तए अड-मासे, इगि-पक्खे उसह-उप्पत्ती ॥५६०॥

॥ पुव्व व ८४ ल । व ३, मा ८, प १ ॥

अर्थ :—सुषमदुषमा नामक कालमें चौरासी लाख पूर्व, तीन वर्ष, आठ माह और एक पक्ष अवशेष रहने पर भगवान् ऋषभदेवका जन्म हुआ ॥५६०॥

पण्णास-कोडि-लक्खा, बारसहद-पुव्व-लक्ख-वास-जुदा ।
जादम्हि उवहि-उवमा, उसहुप्पत्तीए अजिय-उप्पत्ती ॥५६१॥

॥ सा ५० को ल । पुव्व धण १२ ल ॥

अर्थ :—ऋषभदेवकी उत्पत्तिके पश्चात् पचास लाख - करोड़ सागरोपम और बारह लाख वर्षपूर्वोंके व्यतीत हो जाने पर अजितनाथ तीर्थङ्करका जन्म हुआ ॥५६१॥

अह तीस-कोडि-लक्खे, बारस-हद-पुव्व-लक्ख-वास-जुदे ।
गलिदम्मि उवहि-उवमे, अजियुप्पत्तीए संभवुप्पत्ती ॥५६२॥

॥ सा ३० को ल । धण पुव्व १२ ल ॥

अर्थ :—अजितनाथकी उत्पत्तिके पश्चात् बारह लाख वर्ष पूर्व सहित तीस लाख करोड़ सागरोपमोंके निकल जाने पर सम्भवनाथकी उत्पत्ति हुई ॥५६२॥

दस-पुव्व-लक्ख-संजुद-सायर-दस-कोडि-लक्ख-वोच्छेए ।
संभव - उप्पत्तीए, अहिणंदण - देव - उप्पत्ती ॥५६३॥

॥ सा १० को ल । धण पुव्व १० ल ॥

अर्थ :—सम्भव जिनेन्द्रकी उत्पत्तिके पश्चात् दस-लाख पूर्व सहित दस लाख करोड़ सागरोपमोंके व्यतीत हो जाने पर अभिनन्दननाथका जन्म हुआ ॥५६३॥

दस-पुव्व-लक्ख-संजुद-सायर-णव-कोडि-लक्ख-पडिवित्ते[1] ।
णंदण - उप्पत्तीए, सुमइ-जिणिंदस्स उप्पत्ती ॥५६४॥

---

१. ब. परिवत्ते, क. ज. ठ. परिवंत्ते, य. परिवंतो ।

। सा ६ को ल । धण पुव्व व १० ल ।

अर्थ :—अभिनन्दन स्वामीकी उत्पत्तिके पश्चात् दस लाख पूर्व सहित नौ लाख करोड़ सागरोपमोंके बीत जाने पर सुमति जिनेन्द्रकी उत्पत्ति हुई ।।५६४।।

दस-पुव्व-लक्ख-समहिय, सायर-कोडी-सहस्स-णवदीए ।
[1]पविलत्ते पउमप्पह-जम्मो सुमइस्स जम्मादो ।।५६५।।

। सा ९०००० को । धण पुव्व व १० ल ।

अर्थ :—सुमतिनाथ तीर्थङ्करके जन्मके पश्चात् दस लाख पूर्व सहित नब्बे हजार करोड़ सागरोपमोंके व्यतीत हो जानेपर पद्मप्रभका जन्म हुआ ।।५६५।।

दस-पुव्व-लक्ख-समहिय, सायर-कोडी-सहस्स-णवकम्मि ।
वोलीणे पउमप्पह-संभूदीए सुपास-संभूदी ।।५६६।।

। सा ९००० को । धण पुव्व १० ल ।

अर्थ :—पद्मप्रभके जन्मके पश्चात् दस लाख पूर्व सहित नौ हजार करोड़ सागरोपमोंका अतिक्रमण हो जानेपर सुपार्श्वनाथका जन्म हुआ ।।५६६।।

दस-पुव्व-लक्ख-संजुद-सायर-णव-कोडि-सय-विरामम्मि ।
चंदप्पह - उप्पत्ती, उप्पत्तीदो सुपासस्स ।।५६७।।

। सा ९०० को । पुव्व १० ल ।

अर्थ :—सुपार्श्वनाथकी उत्पत्तिके पश्चात् दस लाख पूर्व सहित नौ सौ सागरोपमोंके बीत जाने पर चन्द्रप्रभ जिनेन्द्रकी उत्पत्ति हुई ।।५६७।।

अड-लक्ख-पुव्व-समहिय-सायर-कोडीण णउदि-विच्छेदे[2] ।
चंदपहुप्पत्तीदो[3], उप्पत्ती पुप्फदंतस्स ।।५६८।।

---

१. क. ज. य. उ. परिवंसे । २. द. विच्छेदो । ३. द. ब. क. ज. य. उ. चंदप्पह-उप्पत्तीदो ।

। सा ९० को । अग पुव्व व ८ ल ।

अर्थ :—चन्द्रप्रभकी उत्पत्तिमे आठ लाख पूर्व सहित नब्बे करोड़ सागरोपमोंका विच्छेद होनेपर भगवान् पुष्पदन्तकी उत्पत्ति हुई ।।५६८।।

इगि-पुव्व-लक्ख-समहिय-सायर-णव-कोडि-मेत्त-कालम्मि ।
गलियम्मि पुप्फदंतुप्पत्तीदो सीयलुप्पत्ती ।।५६९।।

। सा ९ को । धण पुव्व १ ल ।

अर्थ :—पुष्पदन्तकी उत्पत्तिके अनन्तर एक लाख पूर्व सहित नौ करोड़ सागरोपमोंके बीत जानेपर शीतलनाथका जन्म हुआ ।।५६९।।

इगि-कोडि-[1]पण्ण-लक्खा-छब्बीस-सहस्स-वास-मेत्ताए ।
अब्भहिएणं जलणिहि-उवमसयेणं विहीणाए ।।५७०।।

वोलीणाए सायर-कोडीए पुव्व-लक्ख-जुत्ताए ।
सीयल-संभूदीदो, सेयंस-जिणस्स संभूदी ।।५७१।।

। सा को १ । पुव्व व १ ल । रिण सागरोपम १०० । व १५०२६००० ।

अर्थ :—शीतलनाथकी उत्पत्तिके पश्चात् सौ सागरोपम और एक करोड़ पचास लाख छब्बीस हजार वर्ष कम एक लाख पूर्व सहित करोड़ सागरोपमोंके अतिक्रान्त हो जानेपर श्रेयांस जिनेन्द्र उत्पन्न हुए ।।५७०-५७१।।

बारस-हद-इगि-लक्खब्भहियाए वास-उवहि-माणेसु ।
चउवण्णेसु गदेसु, सेयंस-भवादु वासुपुज्ज-भवो[2] ।।५७२।।

। सा ५४ वस्स १२ ल ।

अर्थ :—श्रेयांसनाथकी उत्पत्तिके बाद बारह लाख वर्ष सहित चौवन सागरोपमोंके व्यतीत हो जाने पर वासुपूज्य तीर्थंकरका जन्म हुआ ।।५७२।।

---

१. द. पंचलक्खा । २. द ब. क. ज. य. उ. भवा ।

तीसोवहीण विरमे, बारस-हद-वरिस-लक्ख-अहियाणं ।
जाणेज्ज वासुपुज्जुप्पत्तीदो[1] विमल-उप्पत्ती ॥५७३॥

। सा ३० वस्स १२ ल ।

अर्थ :— वासुपूज्यकी उत्पत्तिके अनन्तर बारह लाख वर्ष अधिक तीस सागरोपमोंके बीतने-पर विमलनाथकी उत्पत्ति जाननी चाहिए ॥५७३॥

उवहि-उवमाण-णवके, तिय-हद-दह-लक्ख-वास-अदिरित्ते[2] ।
वोलीणे विमल-जिणुप्पत्तीदो[3] अह अणंत-उप्पत्ती ॥५७४॥

। सा ९ वस्स ३० ल ।

अर्थ :—विमल जिनेन्द्रकी उत्पत्तिके बाद तीस लाख वर्ष अधिक नौ सागरोपमोंके व्यतीत हो जानेपर अनन्तनाथ उत्पन्न हुए ॥५७४॥

वीस-हद-वास-लक्खब्भहिएसुं चउसु उवहि-उवमेसुं ।
विरदेसु धम्म-जम्मो, अणंत-सामिस्स जम्मादो ॥५७५॥

। सा ४ वस्स २० ल ।

अर्थ :– अनन्तनाथ स्वामीके जन्मके पश्चात् बीस लाख वर्ष अधिक चार सागरोपमोंके बीतने पर धर्मनाथ प्रभुने जन्म लिया ॥५७५॥

उवहि-उवमाण-तिदए, वोलीणे णवय-लक्ख-वास-जुदे ।
पावोण[4]-पल्ल-रहिदो, संति-भवो[5] धम्म-भवदो य ॥५७६॥

सा ३ वस्स धण ९ ल रिण प ३/४ ।

अर्थ :—धर्मनाथकी उत्पत्तिके पश्चात् पौन पल्य कम और नौ लाख वर्ष सहित तीन सागरोपमोंके व्यतीत हो जाने पर शान्तिनाथ भगवान्‌ने जन्म लिया ॥५७६॥

---

१. द. वासुपुज्जुप्पत्तीदा । २. द. ब. क. ज. ठ. अधिरित्तो । ३. द. जिणुप्पत्तीदा । ४. द. पावाण । ५. द. ब. क. ज. य. उ. भवा ।

पल्लद्धे वोलीणे, पण-वास-सहस्समाण[1]-अदिरित्ते ।
कुंथु-जिणे-संजणणं, जणणादो संति-णाहस्स ॥५७७॥

। प ½ धरण वस्स ५००० ।

अर्थ :— शान्तिनाथके जन्मके पश्चात् पाँच हजार वर्ष अधिक आधे पल्यके बीतनेपर कुन्थुनाथ जिनेन्द्र उत्पन्न हुए ॥५७७॥

एक्करस-सहस्सूणिय-कोडि-सहस्सूण-पल्ल-पादम्मि ।
विरदम्मि अर-जिणिंदो, कुंथुप्पत्तीए उप्पण्णो ॥५७८॥

। प ¼ रिण वस्स को १००० रिण वस्स ११००० ।

अर्थ : कुन्थुनाथकी उत्पत्तिके पश्चात् ग्यारह हजार कम एक हजार करोड़ वर्षसे रहित पाव पल्यके व्यतीत हो जाने पर अर जिनेन्द्र उत्पन्न हुए ॥५७८॥

उणतीस-सहस्साहिय-कोडि-सहस्सम्मि वस्सतीदम्मि ।
अर-जिण-उप्पत्तीदो, उप्पत्ती मल्लि-णाहस्स ॥५७९॥

। वस्स को १००० धरण व २९००० ।

अथ :—अर जिनेन्द्रकी उत्पत्तिके बाद उनतीस हजार अधिक एक हजार करोड़ वर्षोंके बीत जाने पर मल्लिनाथका जन्म हुआ ॥५७९॥

पणुवीस-सहस्साहिय-णव-हव-छल्लक्ख-वासवोच्छेदे ।
मल्लि-जिणुब्भूवीदो, उब्भूदी सुव्वय-जिणस्स ॥५८०॥

। वा ५४२५००० ।

अर्थ :—मल्लि-जिनेन्द्रकी उत्पत्तिके पश्चात् पच्चीस हजार अधिक नौ से गुणित छह (चौवन) लाख वर्षोंके बीत जाने पर मुनिसुव्रत जिनेन्द्रकी उत्पत्ति हुई ॥५८०॥

---

१. द. ब. क ज. य. उ. मास अधिरित्तो।

बीस-सहस्सब्भहिया, छल्लक्ख-पमाण-वासवोच्छेदे ।
सुव्वय-उप्पत्तीदो, उप्पत्ती णमि-जिणिंदस्स ॥५८१॥

। वा ६२०००० ।

अर्थ :—मुनिसुव्रतनाथकी उत्पत्तिके पश्चात् बीस हजार अधिक छह लाख वर्ष प्रमाण काल व्यतीत हो जाने पर नमि जिनेन्द्रका जन्म हुआ ॥५८१॥

पण-लक्खेसु गदेसुं, णवय-सहस्साहिएसु वासाणं ।
णमिणाहुप्पत्तीदो, उप्पत्ती णेमि-णाहस्स ॥५८२॥

। वा ५०९००० ।

अर्थ :—नमिनाथकी उत्पत्तिके पश्चात् नौ हजार अधिक पाँच लाख वर्ष व्यतीत हो जाने पर नेमिनाथकी उत्पत्ति हुई ॥५८२॥

पण्णासाहिय-छस्सय-चुलसीदि-सहस्स-वस्स-परिवड्ढे ।
णेमि-जिणुप्पत्तीदो, उप्पत्ती पास-णाहस्स ॥५८३॥

। वा ८४६५० ।

अर्थ :—नेमिनाथ तीर्थङ्करकी उत्पत्तिके पश्चात् चौरासी हजार छह सौ पचास वर्षोंके व्यतीत हो जाने पर पार्श्वनाथकी उत्पत्ति हुई ॥५८३॥

अट्ठत्तरि-अहियाए, बे-सद-परिमाण-वास-अदिरित्ते[1] ।
पास-जिणुप्पत्तीदो, उप्पत्ती वड्ढमाणस्स ॥५८४॥

। वा २७८ ।

अर्थ :—भगवान् पार्श्वनाथकी उत्पत्तिके पश्चात् दो सौ अठत्तर वर्ष व्यतीत हो जाने पर वर्द्धमान तीर्थंकरका जन्म हुआ ॥५८४॥

---

१. द. ब. क. ज. उ. अदिरित्तो ।

इंदवज्जा (उपजाति)

एवं जिणाणं जणणंतरालप्पमाणमाणंदकरं जणस्स ।
कम्मग्गलाइं[1] [2]विहडाविदूण, उग्घाडए मोक्खपुरी-कवाडं ।।५८५।।

।। उप्पत्तियंतरं समत्तं ।।

अर्थ :— लोगोंको आनन्दित करने वाला तीर्थङ्करोंके अन्तरालकालका यह प्रमाण उन (भव्यों) की कर्मरूपी अर्गलाको नष्ट करके मोक्षपुरीके कपाटको उद्घाटित करता है ।।५८५।।

।। उत्पत्तिके अन्तरालकालका कथन समाप्त हुआ ।।

ऋषभादि तीर्थङ्करोंका आयु प्रमाण—

उसहादि-दससु आऊ, चुलसीदी तह [3]बहत्तरी सट्ठी ।
पण्णास-ताल-तीसा, वीसं दस-दु-इगि-लक्ख-पुव्वाइं ।।५८६।।

आदिजिणे पुव्व ८४ ल । अजिय पुव्व ७२ ल ।
संभव पुव्व ६० ल । अहिणदण पुव्व ५० ल ।
सुमइ पुव्व ४० ल । पउमप्पह पुव्व ३० ल ।
सुपासणाह पुव्व २० ल । चंदप्पह पुव्व १० ल ।
पुप्फयंत पुव्व २ ल । सीयल पुव्व १ ल ।

अर्थ :—वृषभादिक दस तीर्थङ्करोंकी आयु क्रमशः चौरासी लाख पूर्व, बहत्तर लाख पूर्व, साठ लाख पूर्व, पचास लाख पूर्व, चालीस लाख पूर्व, तीसलाख पूर्व, बीस लाख पूर्व, दस लाख पूर्व, दो लाख पूर्व और एक लाख पूर्व प्रमाण थी ।।५८६।।

तत्तो य वरिस-लक्खं, चुलसीदी तह [4]बहत्तरी सट्ठी ।
तीस-दस-एक्कमाऊ, सेयंस-प्पहुदि-छक्कस्स ।।५८७।।

---

१. ब. क. ज. य. उ. कम्मग्गिगलाइ । २. द. विहडाविदूण उग्घोड मोक्खस्स, ब. क. ज. य. उ. विहडाविदूण उग्घाड-मोक्खस्स । ३. द. ज. य. बिहत्तरी । ४. द. बिहत्तरी, ज. य. वत्तरी, उ. बहत्तरी ।

सेयंस-वरिस ८४ ल। वासुपुज्ज वस्स ७२ ल।

विमल-वस्स ६० ल। अणंत वस्स ३० ल।

धम्म वस्स १० ल। संति वस्स १ ल।

अर्थ :—इसके आगे श्रेयांसनाथको आदि लेकर छह तीर्थङ्करोंकी आयु क्रमशः चौरासी लाख, बहत्तर लाख, साठ लाख, तीस लाख, दस लाख और एक लाख वर्ष प्रमाण थी ॥५८७॥

तत्तो वरिस-सहस्सा, पणणउदी चदुरसीदि पणवण्णं ।
तीस[1]-दस-एक्कमाऊ, कुंथु-जिण-प्पहुदि-छक्कस्स ॥५८८॥

कुंथुणाह वरिस ९५००० । अर वरिस ८४००० । मल्लि वरिस ५५००० ।

सुव्वय वरिस ३०००० । णमि वरिस १०००० । णेमिणाह वरिस १००० ।

अर्थ :—इसके आगे कुन्थुनाथको आदि लेकर छह तीर्थङ्करोंकी आयु क्रमशः पंचानबे हजार, चौरासी हजार, पचपन हजार, तीस हजार, दस हजार और एक हजार वर्षप्रमाण थी ॥५८८॥

वास-सदमेक्कमाऊ, पास-जिणेंदस्स होइ णियमेण ।
सिरि-वड्ढमाण-आऊ, बाहत्तरि-वस्स-परिमाणो ॥५८९॥

पास-जिणे वस्स १०० । वीर-जिणेंदस्स वस्स ७२ ।

। आऊ-समत्ता ।

अर्थ :—भगवान् पार्श्वनाथकी आयु नियमसे सौ वर्ष और वर्धमानजिनेन्द्रकी आयु बहत्तर वर्ष प्रमाण थी ॥५८९॥

॥ जिनेन्द्रोंकी आयुका कथन समाप्त हुआ ॥

वृषभादि तीर्थंकरोंका कुमारकाल—

पढमे कुमार-कालो, जिण-रिसहे वीस-पुव्व-लक्खाणि ।
अजियादि-अर-जिणंते, सग-सग-आउस्स पादेगो[2] ॥५९०॥

---

१. ब. क. द. ज. ठ. तिसदस्स । २. द. ब. क. ठ. पादोणा ।

उसह पुव्व २० ल । अजिय पुव्व १८ ल । संभव पुव्व १५ ल । अहिणंदण पुव्व १२५०००० । सुमइ पुव्व १० ल । पउमप्पह पुव्व ७५००००[1] । सुपास पुव्व ५ ल । चंदप्पह पुव्व २५०००० । पुप्फयंत पुव्व ५०००० । सीयल पुव्व २५००० । सेयंस वस्स २१ ल । वासुपुज्ज वस्स १८ ल । विमल वस्स १५ ल । अणंत वस्स ७५०००० । धम्म वस्स २५०००० । संति वस्स २५००० । कुंथु वस्स २३७५० । अरणाह वस्स २१००० ।

अर्थ :—प्रथम जिनेन्द्रका कुमारकाल बीस लाख पूर्व और अजितनाथको आदि लेकर अर जिनेन्द्र पर्यन्त अपनी-अपनी आयुके चतुर्थभाग प्रमाण कुमार-काल था ।।५९०।।

तत्तो कुमार-कालो, एग[2]-सयं सग-सहस्स-पंच-सया ।
पणुवीस-सयं ति-सयं, तीसं तीसं च छक्कस्स ।।५९१।।

मल्लिणाह १००[3] । मुणिसुव्वय ७५०० । णमि २५०० । णेमि ३०० । पासणाह ३० । वीरणाह ३० ।

।। एवं कुमार-कालो समत्तो[4] ।।

अर्थ :—इसके आगे छह तीर्थङ्करोंका कुमारकाल क्रमशः एक सौ, सात हजार पाँच सौ (७५००), पच्चीस सौ, तीन सौ, तीस और तीस वर्ष प्रमाण था ।।५९१।।

विशेषार्थ :—गाथामें मल्लिनाथका कुमारकाल १०० वर्ष मात्र कहा गया है। इसका अर्थ है कि उन्होंने १०० वर्षकी आयुमें ही दीक्षा ग्रहण कर ली थी। दीक्षाके बाद वे ६ दिन छद्मस्थ अवस्थामें और ५४८९९ वर्ष ११ माह २४ दिन केवली अवस्थामें रहे। इन सबका योग (१००+ ५४८९९ वर्ष ११ माह, २४ दिन =) ५५००० वर्ष होता है और उनकी आयु भी इतनी ही थी।

।। इस प्रकार कुमार-काल समाप्त हुआ ।।

---

१. द. ७५००००० । २. द. एक्कसयं । ३. द. १०००० । ४. द. समत्ता, ब. सम्मत्ता ।

ऋषभादि तीर्थंकरोंके शरीरका उत्सेध—

पंचसय-धणु-पमाणो, उसह-जिणेंदस्स होदि उच्छेहो ।
तत्तो पण्णासूणा, णियमेणं पुप्फदंत-पेरंते ॥५६२॥

उ ५०० । अ ४५० । सं ४०० । अ ३५० । सु ३०० । प २५० ।
सु २०० । चंद १५० । पुप्फ १०० ।

अर्थ :—भगवान् ऋषभनाथके शरीरकी ऊँचाई पाँचसौ धनुष प्रमाण थी । इसके आगे पुष्पदन्त पर्यन्त जिनेन्द्रोंके शरीरकी ऊँचाई नियमसे पचास-पचास धनुष कम होती गई है ॥५६२॥

एत्तो जाव अणंतं, दस-दस-कोदंड-मेत्त-परिहीणो ।
तत्तो णेमि जिणंतं, पण-पण-चावेहि परिहीणो ॥५६३॥

सी ९० । से ८० । वा ७० । वि ६० । अ ५० । ध ४५ । सं ४० ।
कुं ३५ । अर ३० । म २५ । सुव्व २० । ण १५ । णे १० ।

अर्थ :—इसके आगे अनन्तनाथ पर्यन्त दस-दस धनुष और फिर नेमिनाथ पर्यन्त पाँच-पाँच धनुष उत्सेध कम होता गया है ॥५६३॥

णव हत्था पास-जिणे[1], सग हत्था वड्ढमाण-णामम्मि ।
एत्तो तित्थयराणं, सरीर-वण्णं परूवेमो ॥५६४॥

पा ह ९ । वीर ह ७ ।

॥ उच्छेहो समत्तो[2] ॥

अर्थ :—भगवान् पार्श्वनाथके शरीरका उत्सेध नौ हाथ और वर्धमान स्वामीके शरीरका उत्सेध सात हाथ प्रमाण था । अब तीर्थङ्करोंके शरीरके वर्ण (रंग) का कथन करता हूँ ॥५६४॥

॥ उत्सेधका कथन समाप्त हुआ ॥

---

१. द. जिणा । २. द. ब. उ. सम्मत्ता, क. सम्मत्तं, ज. सम्मत्तो ।

ऋषभादि तीर्थङ्करोंका शरीर-वर्ण—

[1]चंदपह-पुप्फदंता[2], कुंदेंदु-तुसार-हार-संकासा ।
णीला-सुपास-पासा, सुव्वय-णेमी सणीर-घण-वण्णा ॥५६५॥

विद्दुम-समाण-देहा, पउमप्पह-वासुपुज्ज-जिणणाहा[3] ।
सेसाण जिणवराणं, काया चामीयरायारा ॥५६६॥

॥ सरीर-वण्णं[4] गदं ॥

अर्थ :—भगवान् चन्द्रप्रभ और पुष्पदन्त कुन्दपुष्प, चन्द्रमा, बर्फ तथा (मुक्ता) हार सदृश धवल वर्णके थे । सुपार्श्वनाथ और पार्श्वनाथ नीलवर्णके थे । मुनिसुव्रतनाथ और नेमिनाथ जलयुक्त बादल (मेघ) के वर्ण सदृश अर्थात् श्याम वर्णके तथा पद्मप्रभ एवं वासुपूज्य जिनेन्द्रके शरीर प्रवाल सदृश रक्तवर्णके थे । शेष (सोलह) तीर्थंकरोंके शरीर स्वर्ण सदृश (पीत) वर्णके थे ॥५६५-५६६॥

॥ शरीरके वर्णका कथन समाप्त हुआ ॥

ऋषभादि तीर्थंकरोंका राज्यकाल—

तेसट्ठि-पुव्व-लक्खा, पढम-जिणे रज्ज-काल-परिमाणं ।
तेवण्ण-पुव्व-लक्खा, अजिदे पुव्वंग-संजुत्ता ॥५६७॥

। पुव्व ६३ ल । अजि ५३ ल पुव्वंग १ ।

अर्थ :—आदि जिनेन्द्रके राज्यकालका प्रमाण तिरेसठ लाख पूर्व और अजित जिनेन्द्रके राज्यकालका प्रमाण एक पूर्वांग सहित तिरेपन लाख पूर्व था ॥५६७॥

चउदाल-पमाणाइं, संभव-सामिस्स पुव्व-लक्खाइं ।
चउ-पुव्वंग-जुदाइं, णिद्दिट्ठं सव्व-दरिसीहिं ॥५६८॥

। पुव्व ४४ ल । पूर्वांग ४ ।

---

१. द. क. ज. य. चदप्पह । २. द. ब. क. ज. य उ. पुप्फदंतो । ३. द ब. क ज य. उ. जिणणाहो । ४. द. ब. ज. उ. वण्णाण ।

अर्थ :—सम्भवनाथ स्वामीके राज्यकालका प्रमाण सर्वज्ञदेवने चार पूर्वांग सहित चवालीस लाख पूर्व प्रमाण बतलाया है ।।५९८।।

छत्तीस-पुव्व-लक्खा, पण्णास-सहस्स-पुव्व-संजुत्ता ।
अड-पुव्वंगेहि जुदा, अहिणंदण-[1]जिणवरिंदस्स ।।५९९।।

। पुव्व ३६५०००० । पर्वांग ८ ।

अर्थ :—अभिनन्दन जिनेन्द्रके राज्यकालका प्रमाण आठ पूर्वाङ्ग सहित छत्तीस लाख पचास हजार पूर्व था ।।५९९।।

एक्कोणतीस-परिमाण-पुव्व-लक्खाणि वच्छराणं पि ।
पुव्वंगाणि बारस-सहिदाणि सुमइ-सामिस्स ।।६००।।

। पुव्व २९ ल । पूर्वांग १२ ।

अर्थ :—सुमतिनाथ स्वामीका राज्यकाल बारह पूर्वाङ्ग सहित उनतीस लाख वर्ष पूर्व प्रमाण था ।।६००।।

इगिवीस-पुव्व-लक्खा, पण्णास-सहस्स-पुव्व-संजुत्ता ।
सोलस-पुव्वंगहिया, रज्जं पउमप्पह-जिणस्स ।।६०१।।

। पुव्व २१५०००० । पूर्वांग १६ ।

अर्थ :—पद्मप्रभ जिनेन्द्रका राज्यकाल सोलह पूर्वांग सहित इक्कीस लाख पचास हजार पूर्व प्रमाण था ।।६०१।।

चोद्दस सयस्सहस्सा, पुव्वाणं तह य पुव्व-अंगाइं ।
वीसवि-परिमाणाइं, णेयाणि सुपास-सामिस्स ।।६०२।।

। पुव्व १४ ल । पूर्वांग २० ।

---

१. क. जिणि, ठ. जिणे ।

अर्थ :—सुपार्श्वनाथ स्वामीका राज्यकाल बीस पूर्वाङ्ग सहित चौदह लाख पूर्व प्रमाण जानना चाहिये ।।६०२।।

पण्णास-सहस्साहिय-छल्लक्ख-पमाण-वरिस-पुव्वाणि ।
पुव्वंगा चउवीसा, चंदप्पह-जिणवरिंदस्स ।।६०३।।

। पुव्व ६५०००० । पूर्वांग २४ ।

अर्थ :—चन्द्रप्रभ जिनेन्द्रके राज्यकालका प्रमाण छह लाख पचास हजार वर्ष पूर्व और चौबीस पूर्वाङ्ग है ।।६०३।।

अडवीस-पुव्व-अंगब्भहियं सुविहिस्स पुव्व-लक्खद्धं ।
सीयल-देवस्स तहा, केवलयं पुव्व-लक्खद्धं ।।६०४।।

। पुव्व ५०००० अंग २८ । पुव्व ५०००० ।

अर्थ : सुविधिनाथ (पुष्पदन्त) स्वामीका राज्यकाल अट्ठाईस पूर्वाङ्ग अधिक अर्ध लाख पूर्व और शीतलनाथका राज्यकाल मात्र अर्धलाख पूर्व प्रमाण था ।।६०४।।

सेयंस-जिणेसस्स य, [1]दुवाल-संखाणि वास-लक्खाणि ।
पढमं चिय परिहरिया, रज्जसिरी वासुपुज्जेण ।।६०५।।

। वस्साणि ४२ ल ।

अर्थ :—भगवान् श्रेयांसनाथका राज्यकाल बयालीस लाख वर्ष प्रमाण था। वासुपूज्य जिनेन्द्रने पहिले ही राज्यलक्ष्मी छोड़ दी थी ।।६०५।।

विमलस्स तीस-लक्खा, अणंतणाहस्स-पंच-दस-लक्खा ।
लक्खा पणप्पमाणा, वासाणं धम्म-सामिस्स ।।६०६।।

। वासाणि ३० ल । वस्स १५ ल । वस्स ५ ल ।

---

१. द. ब क. ज. उ. दुवाल, य दुवाल ।

अर्थ :—विमलनाथका राज्यकाल तीस लाख, अनन्तनाथका पन्द्रह लाख और धर्मनाथ स्वामीका पाँच लाख वर्ष प्रमाण था ।।६०६।।

लक्खस्स पाद-माणं, संति-जिणेसस्स मंडली-सत्तं ।
तस्स य चक्कधरत्तो, तत्तियमेत्ताणि वस्साणि ।।६०७।।

। २५००० । २५००० ।

अर्थ :—शान्तिनाथ जिनेन्द्रका मण्डलेशत्व-काल एक लाखके चतुर्थांश प्रमाण और चक्रवर्तित्व-काल भी इतने ही वर्ष प्रमाण था ।।६०७।।

तेवीस सहस्साइं, सग-सय-पण्णास मंडलो-सत्तं ।
कुंथु-जिणिदस्स तहा, [1]ताइं चिय चक्कवट्टित्ते ।।६०८।।

। २३७५० । २३७५० ।

अर्थ :—कुन्थु जिनेन्द्र तेईस हजार सातसौ पचास वर्ष तक मण्डलेश और फिर इतने ही वर्ष प्रमाण चक्रवर्ती रहे ।।६०८।।

इगिवीस सहस्साइं, वस्साइं होंति मंडली-सत्ते ।
अर-णामम्मि जिणिदे, ताइं चिय चक्कवट्टित्ते ।।६०९।।

। २१००० । २१००० ।

अर्थ :—अरनाथ जिनेन्द्रके इक्कीस हजार वर्ष मण्डलेश अवस्थामें और इतने ही वर्ष चक्रवर्तित्वमें व्यतीत हुए ।।६०९।।

ण हि रज्जं मल्लि-जिणे, पण्णारस-पण-सहस्स-वासाइं ।
सुव्वय-णमिणाहाणं, णेमित्तिदयस्स[2] ण हि रज्जं ।।६१०।।

। मल्लि० । मुणिसुव्वय १५००० । णमि ५००० । णेमि० । पास० । वीर० ।

[तालिका नं० १३ पृष्ठ १७४-१७५ पर देखें]

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. तायं । २. ब. उ. तिदयसणाहि, क. ज. य. त्तिदयस्स ण हि ।

तालिका : १३ ऋषभादि चौबीस तीर्थंकरों के जन्मान्तर, आयु

क्रमांक	नाम	जन्मान्तर-काल	आयु
१	ऋषभनाथ	तृतीयकाल में ८४ ला. पू. ३ व. ८$\frac{१}{२}$ मा. शेष० ५० लाख करोड़ सागर(+) १२ लाख पूर्व वर्ष	८४ लाख पूर्व
२	अजितनाथ	३० लाख करोड सागर (+) १२ लाख पूर्व वर्ष	७२ लाख पूर्व
३	सम्भवनाथ	१० लाख करोड़ सागर (+) १२ लाख पूर्व वर्ष	६० लाख पूर्व
४	अभिनन्दननाथ	९ लाख करोड सागर (+) १० लाख पूर्व वर्ष	५० लाख पूर्व
५	सुमतिनाथ	९० हजार करोड सागर (+) १० लाख पूर्व वर्ष	४० लाख पूर्व
६	पद्मप्रभ	९००० करोड़ सागर (+) १० लाख पूर्व वर्ष	३० लाख पूर्व
७	सुपार्श्वनाथ	९०० करोड सागर (+) १० लाख पूर्व वर्ष	२० लाख पूर्व
८	चन्द्रप्रभ	९० करोड सागर (+) १० लाख पूर्व वर्ष	१० लाख पूर्व
९	पुष्पदन्त	९ करोड़ सागर (+) १ लाख पूर्व वर्ष	२ लाख पूर्व
१०	शीतलनाथ	(१ को सा (+) १ ला पू)(-)(१०० सा १५०२६००० वर्ष)	१ लाख पूर्व
११	श्रेयांसनाथ	५४ सागर (+) १२ लाख वर्ष	८४ लाख वर्ष
१२	वासुपूज्य	३० सागर (+) १२ लाख वर्ष	७२ लाख वर्ष
१३	विमलनाथ	९ सागर (+) १२ लाख वर्ष	६० लाख वर्ष
१४	अनन्तनाथ	४ सागर (+) २० लाख वर्ष पूर्व	३० लाख वर्ष
१५	धर्मनाथ	३ सागर (+) ९ ला वर्ष(-)३/४ पल्य	१० लाख वर्ष
१६	शान्तिनाथ	१/२ पल्य (+) ५००० वर्ष	१ लाख वर्ष
१७	कुन्थुनाथ	१/४ पल्य (-) ९९९९९८९००० वर्ष	९५००० वर्ष
१८	अरनाथ	१०००००२९००० वर्ष	८४००० वर्ष
१९	मल्लिनाथ	५४२५००० वर्ष	५५००० वर्ष
२०	मुनिसुव्रत	६२०००० वर्ष	३०००० वर्ष
२१	नमिनाथ	५०९००० वर्ष	१०००० वर्ष
२२	नेमिनाथ	८४६५० वर्ष	१००० वर्ष
२३	पार्श्वनाथ	२७८ वर्ष	१०० वर्ष
२४	महावीर	चतुर्थकाल में ७५ वर्ष ८$\frac{१}{२}$ मास शेष रहने पर उत्पन्न हुए।	७२ वर्ष

कुमारकाल, उत्सेध, वर्ण, राज्यकाल एवं चिह्न निर्देश— गाथा : ५६०–६१२

कुमार-काल	उत्सेध	वर्ण	राज्य-काल	चिह्न
२० लाख पूर्व	५०० धनुष	स्वर्ण	६३ लाख पूर्व	बैल
१८ लाख पूर्व	४५० धनुष	स्वर्ण	५३ लाख पूर्व + १ पूर्वांग	गज
१५ लाख पूर्व	४०० धनुष	स्वर्ण	४४ लाख पूर्व + ४ पूर्वांग	अश्व
१२ $\frac{1}{2}$ '' ''	३५० ''	स्वर्ण	३६ $\frac{1}{2}$ '' + ८ ''	बन्दर
१० $\frac{1}{2}$ '' ''	३०० ''	स्वर्ण	२९ '' + १२ ''	चकवा
७ $\frac{1}{2}$ '' ''	२५० ''	रक्त	२१ $\frac{1}{2}$ '' + १६ ''	कमल
५ '' ''	२०० ''	नील	१४ '' + २० ''	नन्द्यावर्त
२ $\frac{1}{2}$ '' ''	१५० ''	धवल	६ $\frac{1}{2}$ '' + २४ ''	अर्धचन्द्र
५०००० पूर्व	१०० ''	धवल	१/२ '' + २८ ''	मगर
२५००० पूर्व	९० ''	स्वर्ण	५०००० पूर्व	स्वस्तिक
२१००००० वर्ष	८० ''	स्वर्ण	४२००००० वर्ष	गेंडा
१८००००० ''	७० ''	रक्त	०	भैंसा
१५००००० ''	६० ''	स्वर्ण	३०००००० वर्ष	शूकर
७५०००० ''	५० ''	स्वर्ण	१५००००० वर्ष	सेही
२५०००० ''	४५ ''	स्वर्ण	५००००० वर्ष	वज्र
२५००० ''	४० ''	स्वर्ण	मण्डलेश २५००० वर्ष, चक्र २५००० वर्ष	हरिण
२३७५०	३५''	स्वर्ण	'' २३७५० वर्ष, '' २३७५०	छाग
२१००० ''	३० ''	स्वर्ण	'' २१००० वर्ष, '' २१०००	मत्स्य
१०० ''	२५ ''	स्वर्ण	०	कलश
७५०० ''	२० ''	गहरा नीला	१५००० वर्ष	कूर्म
२५०० ''	१५ ''	स्वर्ण	५००० वर्ष	उत्पल
३०० ''	१० ''	गहरा नीला	०	शंख
३० ''	९ हाथ	नील	०	सर्प
३० ''	७ हाथ	स्वर्ण	०	सिंह

अर्थ :—मल्लि जिनेन्द्रने राज्य नहीं किया। मुनिसुव्रत और नमिनाथका राज्यकाल क्रमशः पन्द्रह हजार और पाँच हजार वर्ष प्रमाण था। नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और वीर प्रभुने राज्य नहीं किया ॥६१०॥

ऋषभादि चौबीस तीर्थंकरोंके चिह्न—

रिसहादीणं चिण्हं, गोवदि-गय-तुरय-वाणरा कोका।
पउमं णंदावत्तं, अद्धससि-मयर-सत्थियाइं पि ॥६११॥

गंडं महिस-वराहा[1], [2]साहो-वज्जाणि हरिण-छगला[3] य।
तगरकुसुमा य कलसा, कुम्मुप्पल-संख-अहि-सिहा ॥६१२॥

अर्थ :—बैल, गज, अश्व, बन्दर, चकवा, कमल, नन्द्यावर्त, अर्धचन्द्र, मगर, स्वस्तिक, गेंडा, भैंसा, शूकर, सेही, वज्र, हरिण, छाग, तगरकुसुम (मत्स्य), कलश, कूर्म, उत्पल (नीलकमल), शंख, सर्प और सिंह ये क्रमशः ऋषभादिक चौबीस तीर्थङ्करोंके चिह्न हैं ॥६११-६१२॥

नोट :—गाथा ५६० से ६१२ पर्यन्तकी मूलसंदृष्टियोंके अर्थ तालिका नं० १३ द्वारा स्पष्ट किये गये हैं, जो पृष्ठ १७४-१७५ पर देखें।

राज्य पद निर्देश—

अर-कुंथु-संति-णामा, तित्थयरा चक्कवट्टिणो[4] भूदा।
सेसा अणुवम-भुजबल-साहिय-रिपु[5]-मंडला जादा ॥६१३॥

अर्थ :—अरनाथ, कुन्थुनाथ और शान्तिनाथ नामके तीन तीर्थङ्कर चक्रवर्ती हुए थे। शेष तीर्थङ्कर अपने अनुपम बाहुबलसे रिपु वर्गको सिद्ध करनेवाले (माण्डलिक राजा) हुए ॥६१३॥

चौबीसों तीर्थङ्करोंकी वैराग्य उत्पत्तिका कारण—

संति-दुग-वासुपुज्जा, सुमइ-दुगं [6]सुव्वदादि-पंच-जिणा।
णिय-पच्छिम-जम्माणं, उवओगा[7] जाद-वेरग्गा ॥६१४॥

---

१ द. वराहो। २. द. ब. क. ज. य. उ. सीहा। ३. द. ब. क. ज. उ. तगरा। ४. द. ब. क. ज. य. उ. चक्कवट्टिणा। ५. द. रिसमंडला, ब. उ रिवमंडला, ज. य. रिभमंडला, क. रविमंडला। ६. ब. उ. सुवुदादि। ७. क. उवउग्ग।

अर्थ :—शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, वासुपूज्य, सुमतिनाथ एवं पद्मप्रभु ये पाँच (तीर्थङ्कर) तथा सुव्रतादिक (मुनिसुव्रत, नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ एवं वर्धमान) पाँच, इस प्रकार कुल दस तीर्थङ्कर अपने पूर्व (पिछले) जन्मोंके स्मरणसे वैराग्यको प्राप्त हुए ।।६१४।।

अजिय-जिण-पुप्फदंता, अणंतदेओ य धम्म-सामी-य ।
दट्ठूण उक्कपडणं, संसार-सरीर-भोग-णिव्विण्णा ।।६१५।।

अर्थ :—अजित जिन, पुष्पदन्त, अनन्तदेव और धर्मनाथ स्वामी (ये चार तीर्थङ्कर) उल्कापात देखकर संसार, शरीर एवं भोगोंमे विरक्त हुए ।।६१५।।

अर-संभव-विमल-जिणा, अब्भ-विणासेण जाद-वेरग्गा ।
सेयंस-सुपास-जिणा, वसंत-वणलच्छि-णासेण ।।६१६।।

अर्थ :—अरनाथ, सम्भवनाथ और विमल जिनेन्द्र मेघ विनाशसे; तथा भगवान श्रेयांस और सुपार्श्व जिनेन्द्र वसन्तकालीन वन-लक्ष्मीका विनाश देखकर वैराग्यको प्राप्त हुए ।।६१६।।

चंदप्पह-मल्लि-जिणा, अद्धुव-पहुदीहि जाद-वेरग्गा ।
सीयलओ हिम-णासे, उसहो णीलंजणाए मरणाओ ।।६१७।।

अर्थ :—चन्द्रप्रभ और मल्लि जिनेन्द्र अध्रुव (बिजली) आदिसे शीतलनाथ हिम-नाशसे और ऋषभदेव नीलाञ्जनाके मरणसे वैराग्यको प्राप्त हुए ।।६१७।।

गंधव्व-णयर-णासे, णंदणदेवो वि जाद-वेरग्गो ।
इय बाहिर-हेदूहिं, जिणा विरागेण चिंतंति ।।६१८।।

अर्थ :—अभिनन्दन स्वामी गन्धर्व नगरका नाश देख विरक्त हुए । इस प्रकार इन बाह्य हेतुओंसे विरक्त होकर वे तीर्थंकर चिन्तवन करते है ।।६१८।।

ऋषभादि चौबीस तीर्थंकरों द्वारा चिन्तन की हुई वैराग्य-भावनाके अन्तर्गत नरकगतिके दुःख—

णिरएसु णत्थि सोक्खं, णिमेसमेत्तं[1] पि णारयाण सदा ।
दुक्खाइ[2] दारुणाइं, [3]वट्टंते पच्चमाणाणं ।।६१९।।

---

१ द मेत्तमि । २. द. क. दुक्खाइ । ३. द. वड्ढंते ।

अर्थ :—नरकोंमें पचनेवाले नारकियोंको क्षणमात्र भी सुख नहीं है, वे सदैव दारुण दुःखों का अनुभव करते रहते हैं ।।६१९।।

जं कुणदि विसय-लुद्धो[1], पावं तस्सोदयम्मि णिरएसु ।
तिव्वाओ[2] वेयणाओ, पावंतो विलवदि विसण्णो ।।६२०।।

अर्थ :—विषयोंमें लुब्ध होकर जीव जो कुछ पाप करता है उसका उदय आने पर नरकोंमें तीव्र वेदनाओंको पाकर विषण्ण (दुःखी) हो विलाप करता है ।।६२०।।

[3]खणमेत्तो विसय-सुहे, जे दुक्खाइं असंख-कालाइं ।
विसहंति घोर-णिरए, ताण समो णत्थि णिब्बुद्धी ।।६२१।।

अर्थ :—जो जीव क्षणमात्र रहनेवाले विषय सुखके निमित्त असंख्यातकाल तक घोर नरकोंमें दुःख सहन करते हैं उनके सदृश निर्बुद्धि और कोई नहीं है ।।६२१।।

[4]अंधो णिवडइ कूवे, बहिरो ण सुणेदि साधु-उवदेसं ।
पेच्छंतो णिसुणंतो, णिरए जं पडइ तं चोज्जं ।।६२२।।

अर्थ :—यदि अन्धा कुएमें गिरता है और बहरा सदुपदेश नहीं सुनता तो कोई आश्चर्य नहीं किन्तु जो देखता एवं सुनता हुआ नरकमें पड़ता है, यह आश्चर्य है ।।६२२।।

तिर्यंचगतिके दुःख—

भोत्तूण णिमिसमेत्तं, विसय-सुहं विसम-दुक्ख-बहुलाइं ।
तिरय-गदीए पावा, चेट्ठंति अणंत-कालाइं ।।६२३।।

अर्थ :—पापी जीव क्षणमात्र विषय-सुखको भोगकर विषम एवं प्रचुर दुःखोंको भोगते हुए अनन्तकाल तक तिर्यञ्चगतिमें रहते हैं ।।६२३।।

---

१. द ब. क. उ. लुद्धा, ज. य. लद्धा ।	२. क. उ. तिव्वाउ ।	३. द. खणमत्तो ।
४. द. ब. अंधा ।

ताडण-तासण-बंधण-वाहण-लंछण-विभेदणं[1] दमणं ।
कण्णच्छेदण-णासा-विंधण-णिल्लंछणं[2] चेव ॥६२४॥

छेदण-भेदण-दहणं, णिप्पीडण-गालणं छुधा तण्हा ।
भक्खण-मद्दण-मलणं, विकत्तणं सीदमुण्हं च ॥६२५॥

अर्थ :—तिर्यञ्चगतिमें, ताड़ना, त्रास देना, बांधना, बोझा लादना, चिह्नित (शङ्खादिकके आकारसे जलाना) करना, मारना, दमन करना, कानोंका छेदना, नाक वेधना, अण्डकोशको कुचलना (बधिया करना), छेदन, भेदन, दहन, निष्पीडन, गालन, क्षुधा, तृषा, भक्षण, मर्दन, मलन, विकर्तन, शीत और उष्ण (आदि दुःख प्राप्त होते हैं) ॥६२४-६२५॥

एवं अणंत-खुत्तो, णिच्च-चदुग्गदि-णिगोद-मज्झम्मि ।
जम्मण-मरण-रहट्टं, अणंत-खुत्तो [3]परिगदो जं ॥६२६॥

अर्थ :—इस प्रकार अनन्तबार नित्य निगोद और चतुर्गति (इतर) निगोदके मध्य जाकर अनन्तबार जिस जन्म-मरणरूप अरहट (घटीयन्त्र) को प्राप्त किया है (उसके विषयमें विचार करना) ॥६२६॥

मनुष्यगतिके दुःखोंके अन्तर्गत गर्भस्थ बालकका क्रमिक विकास—

पुव्वकद-पाव-गुरुगो, मादा-पिदरस्स रत्त-सुक्कादो ।
जादूण य वस-रत्तं, अच्छदि [4]कललस्सरूवेणं ॥६२७॥

[5]कलुसी-कदम्मि अच्छदि, दस-रत्तं तस्सियम्मि थिर-भूदं ।
पत्तेक्कं मासं चिय, [6]बुब्बुद-घणभूद-मांसपेसी य ॥६२८॥

पंच - पुलगाउ[7]- अंगोवंगाइं [8]चम्म-रोम-णह-रूव ।
फंदणमट्ठम-मासे, णवमे दसमे य णिग्गमणं ॥६२९॥

---

१. द. ब. क. ज. य. उ विहेदणं । २. द. क. ज. य मेलिच्छणं, ब. उ. मेलच्छिणं । ३ द. क. ज य. परिगदा जं, ब. उ. परिगदाउज । ४. द. कललहस्स । ५. द. ब. क. ज. य. उ. कलुसे । ६. द. ज. य. बब्बुद्द । ७. द ब. क. ज. य उ. बलकाग्रो । ८. द. ज. य. मरणमरोमरूवं, ब. क. उ. चम्मरोमरूवं ।

अर्थ : -पूर्वकृत महा पापके उदयसे जीव माताके रक्त और पिताके शुक्रसे उत्पन्न होकर दस रात्रि पर्यन्त कललरूप (कर्दम सदृश गाढ़ी) पर्यायमें रहता है। पश्चात् दस रात्रि पर्यन्त कलुषीकृत पर्यायमें और इतनी ही अर्थात् दस रात्रि पर्यन्त स्थिरीभूत (निष्कम्प) पर्यायमें रहता है। इसके पश्चात् प्रत्येक मासमें क्रमशः बुदबुद, घनभूत (ठोस), मांसपेशी, पाँच पुलक (दो हाथ, दो पैर और एक सिर), अङ्गोपाङ्ग और चर्म तथा रोम एवं नखोंकी उत्पत्ति होती है। पुनः आठवें मासमें स्पन्दन क्रिया और नौवें या दसवें मासमें निर्गमन (जन्म) होता है ॥६२७-६२९॥

योनिका स्वरूप एवं गर्भाशयके दुःख—

असुची अपेक्खणीयं, दुग्गंधं मुत्त-सोणिद-दुवारं ।
वोत्तुं पि लज्ज-णिज्जं, पोट्टमुहं जम्मभूमी मे ॥६३०॥

अर्थ :—अशुचि, अदर्शनीय, दुर्गन्धसे युक्त, मूत्र एवं खूनका द्वार तथा जिसका कथन करने में भी लज्जा आती है ऐसा जो उदरका मुख (योनि) है वह इस मनुष्यका जन्म स्थान है ॥६३०॥

आमासयस्स हेट्ठा, उवरिं पक्कासयस्स गूथम्मि ।
मज्झम्मि [1]वत्थि-पडले, पच्छण्णो वमिक-पिज्जंतो ॥६३१॥

अच्छदि णाव-दस-मासे, गब्भे [2]आहरदि सव्व-अंगेसु ।
गूथरसं अइकुणिमं, घोरतरं दुक्ख-संभूदं ॥६३२॥

अर्थ :- (यह प्राणी) गर्भ समयमें आमाशयके नीचे और पक्वाशयके ऊपर मलके बीचों-बीच वस्ति-पटल (जरायु पटल) में आच्छादित, वान्ति (वमन) को पीता हुआ नौ-दस मास गर्भमें स्थित रहता है और वहां सब अङ्गोंमें दुःखसे उत्पन्न अत्यन्त तीव्र दुर्गन्धसे युक्त विष्ठा-रसको आहारके रूपमें ग्रहण करता है ॥६३१-६३२॥

मनुष्यपर्यायका कालक्षय -

बालत्तणम्मि गुरुगं, दुक्खं पत्तो अजाण-माणेण ।
जोव्वण-काले मज्झे, इत्थी-पासम्मि संसत्तो ॥६३३॥

---

१ द ब क. ज य. उ. तिव्व। २. ब. उ. आहारदि। ३. द. ब. क ज. य. उ. बालत्तणपि।

अर्थ :—यह जीव बालकपनमें अज्ञानके कारण प्रचुर दुःखको प्राप्त हुआ तथा यौवन-कालमें स्त्रीके साथ आसक्त रहा ॥६३३॥

वेढेदि[1] विसय-हेदु[2], कलत्त-पासेहि दुव्विमोचेहिं ।
कोसेण कोसकारो, व [3]दुम्मदी मोह-पासेसु ॥६३४॥

अर्थ :—जिस प्रकार रेशमका कीड़ा रेशमके तन्तु-जालमें अपने आपको ही वेष्टित करता है, उसी प्रकार यह दुर्मति (जीव) विषयके निमित्त दुर्विमोच स्त्रीरूप पाशोंसे अपने आपको मोह-जालमें फँसा लेता है ॥६३४॥

कामातुरस्स गच्छदि, [4]खणमिव संवच्छराणि बहुगाणि ।
[5]पाणितल-धरिद-गंडो[6], बहुसो चिंतेदि दीण-मुहो[7] ॥६३५॥

अर्थ :—कामातुर जीवके बहुतसे वर्ष एक क्षणके सदृश बीत जाते हैं । वह हस्ततलपर कपोल रखकर दीनमुख होता हुआ बहुत प्रकारसे चिन्ता करता है ॥६३५॥

कामुम्मत्तो पुरिसो, कामिज्जंते जणे[8] अलभमाणे ।
[9]घत्तदि मरिदुं बहुधा, मरुप्पपातादि-करणेहिं[10] ॥६३६॥

अर्थ :—कामोन्मत्त पुरुष अभीष्ट जन (स्त्री आदि) को न प्राप्त कर बहुधा मरु-प्रपातादि साधनोंसे मरनेकी चेष्टा करता है ॥६३६॥

[11]कामप्पुण्णो पुरिसो, तिलोक्कसारं पि जहदि सुव-लाहं ।
कुणदि-असंजम-बहुलं, अणंत-संसार-संजणणं ॥६३७॥

---

१. द ब. क. ज. य. उ. बेदेदि । २. द. ब. क. ज. य. उ. हेदू । ३. द क. ज. य. उ. बद्धमदो । ब बद्धुममदो । ४. द. खणमवि । ५. ब. उ. पालितल : ६. द. ज. य. गधो । ७. द. ब. क ज. य. उ मुहे । ८. द. ज. य जणो य अभममाणो, क. जणो य अभममाणो, उ. जणो य अभममाणो, ब. जणे य अभममाणो । ९. द. ब. क. ज. उ. पुत्तदि, य. पुत्तादे । १०. द. ज. करणहि, य. करणम्हि । ११. द. कामं पुणो, ब. क ज. य. उ. काम पुण्णो ।

अर्थ :—कामसे परिपूर्ण पुरुष तीन लोकमें श्रेष्ठ श्रुत-लाभको भी छोड़ देता है और अनन्त संसारको उत्पन्न करनेवाले प्रचुर असंयमको (ग्रहण) करता है ॥६३७॥

[1]उच्चो धीरो वीरो, बहुमाणीओ वि विसय-लुद्ध[2]-मई ।
सेवदि णिच्चं णिच्चं, सहदि हि बहुगं[3] पि अवमाणं ॥६३८॥

अर्थ :—उच्च, धीर, वीर और बहुत माननीय मनुष्य भी विषयोंमें लुब्ध-बुद्धि होकर नीचसे नीचका भी सेवन करता है और अनेक प्रकारके अपमान सहता है ॥६३८॥

दुक्खं दुज्जस-बहुलं, इह लोगे दुग्गदिं पि परलोगे ।
हिंडदि दूरमपारे, संसारे विसय-लुद्ध-मई ॥६३९॥

अर्थ :—विषयोंमें आसक्त बुद्धिवाला पुरुष इस लोकमें प्रचुर अपकीर्ति युक्त दुःखको तथा परलोकमें दुर्गतिको प्राप्त कर अपार संसारमें बहुत काल तक परिभ्रमण करता है ॥६३९॥

विसयामिसेहि [4]पुण्णो, अणंत-सोक्खाण हेदु सम्मत्तं ।
सच्चारित्तं [5]जहदि हु, तणं व लज्जं च मज्जादं ॥६४०॥

अर्थ :—विषय-भोगोंसे परिपूर्ण पुरुष अनन्तसुखके कारणभूत सम्यक्त्व, सम्यक्चारित्र तथा लज्जा और मर्यादाको तृण सदृश छोड़ देता है ॥६४०॥

सीदं उण्हं तण्हं, छुधं च दुस्सेज्ज-भत्त-पंथ-समं ।
सुकुमालको वि कामी, सहदि वहदि भारमवि-गुरुगं ॥६४१॥

अर्थ :—सुकुमार भी कामी पुरुष शीत, उष्ण, तृषा, क्षुधा, दुष्टशय्या, खोटा आहार और मार्गश्रमको सहता है तथा अत्यन्त भारी बोझ ढोता है ॥६४१॥

अपि च बधो जीवाणं, मेहुण-सण्णाए होदि बहुगाणं ।
तिल-[6]णालीए [7]तत्तायस-प्पवेसो व्व जोणीए[8] ॥६४२॥

---

१. द. ब. ज. य. उ. उच्चा । २. द. क. ज. य. उ. लद्ध । ३. द. ब. क. ज. य. उ. बहुवाणि । ४. ब. क. उ. पुणो । ५. द. ब ज. य. जादि हु । ६. द. ज. य. णाणीए, ब. क. उ. घाणीए । ७. द. क. ज. य. उ. तत्तय । ८. द. ब. क. ज. य. उ. जाणीए ।

अर्थ :—तथा, मैथुन संज्ञासे तिल्लोंकी नालीमें तप्त लोहेके प्रवेशके सदृश योनिमें बहुतसे जीवोंका वध होता है ।।६४२।।

इह लोगे वि महल्लं, दोसं[1] कामस्स वस-गदो पत्तो ।
काल-गदो वि अणंतं, दुक्खं पावेदि कामंधो ।।६४३।।

अर्थ :—कामके वशीभूत हुआ पुरुष इस लोकमें भी महान् दोषको प्राप्त होता है और कामान्ध होता हुआ मरकर परलोकमें भी अनन्त दुःख पाता है ।।६४३।।

सोणिय-सुक्कुप्पाइय[2]-देहो[3] दुक्खाइ गब्भ-वासम्मि ।
सहिदूण दारुणाइं, धिट्ठो[4] पावाइ कुणइ पुणो ।।६४४।।

अर्थ :—शोणित और शुक्रसे उत्पन्न हुई देहसे युक्त जीव गर्भवासमें महा भयानक दुःख सह कर निर्लज्ज हुआ फिरसे पाप करता है ।।६४४।।

वाहि-णिहाणं[5] देहो, बहुपोस-सुपोसियो वि सय-वारं[6] ।
अत्थी पवण-पणोल्लिय[7]-पायव-दल-चंचल-सहावो[8] ।।६४५।।

अर्थ :—बहुतसे पुष्टिकारक पदार्थों द्वारा सैंकड़ों बार अच्छी तरह पोषा गया भी व्याधियों का निधानभूत यह शरीर पवनसे प्रेरित वृक्षके पत्ते सदृश चंचल स्वभाव वाला है ।।६४५।।

तारुण्णं तडि-तरलं, विसया-पेरंत विरस-वित्थारा ।
अत्थो अणत्थ-मूलो, अविचारिय-सुंदरं सव्वं ।।६४६।।

अर्थ :—विषयोंसे प्रेरित (यह) तारुण्य बिजली सदृश चंचल है और अर्थ (इन्द्रिय-विषय) नीरसता पूर्ण हैं, अनर्थके मूल कारण हैं; इस प्रकार ये सब (अनर्थके मूल) मात्र अविचारितरम्य ही हैं ।।६४६।।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. दोसा । २. द. सुक्कंपाइय, ब. सुक्कंपाइय, क. य. ज. उ. सुकप्पाइय । ३. द. दोहो, ब. क. ज. य. उ. दाहो । ४. द. क. ज. य. विट्ठो, ब. उ. विट्ठो । ५. द. ब. क. उ. णिणाहं । ६. द. ब. क. ज. य. उ. धारं । ७. द. ब. क. ज. य. उ. पणोल्लिय । ८. द ब. क. ज. य. उ. सहावा ।

मादा पिदा कलत्तं, पुत्ता बंधू य इंद-जाला य ।
दिट्ठ-पणट्ठाइं खणे[1], मणस्स दुसहाइं[2] सल्लाइं ।।६४७।।

अर्थ :—माता, पिता, पत्नी, पुत्र और बन्धुजन इन्द्रजाल सदृश क्षण-मात्रमें देखते-देखते नष्ट हो जाते हैं ये सब मनके लिये दुस्सह शल्य हैं ।।६४७।।

देवगतिके दुःख एवं उपसंहार—

पत्ताए थोवेहिं, सोक्खं भावेहि णिच्च-[3]गरुवाइं ।
दुक्खाइं माणसाइं, देव-गदीए अणुभवंति ।।६४८।।

अर्थ :—देवगतिमें किञ्चित् सुखको प्राप्त हुए जीव उस (सुख) के विनाशकी चिन्ता रूप भावोंसे नित्य ही महान् मानसिक दुःखोंका अनुभव किया करते हैं ।।६४८।।

चइदूण चउ-गदीओ, दारुण-दुव्वार-दुक्ख-खाणीओ ।
परमाणंद-णिहाणं, णिव्वाणं आसु वच्चामो ।।६४९।।

अर्थ :—अतएव दारुण और दुर्निवार दुःखोंकी खानिभूत इन चारों गतियोंको छोड़ कर हम उत्कृष्ट आनन्दके निधान-स्वरूप मोक्षको शीघ्र ही प्राप्त करें ।।६४९।।

ऋषभादि तीर्थंकरोंके दीक्षा-स्थान—

तम्हा मोक्खस्स कारणं—

दारवदीए[4] णेमी, सेसा तेवीस तेसु तित्थयरा ।
णिय-णिय-जाद-पुरेसुं, गिण्हंति जिणिंद-दिक्खाइं ।।६५०।।

अर्थ :—इसीलिए मोक्षके निमित्त—

उन चौबीस तीर्थङ्करोंमेंसे (भगवान्) नेमिनाथ द्वारावती नगरीमें और शेष तेईस तीर्थंकर अपने-अपने जन्म-स्थानोंमें जैनेन्द्री-दीक्षा ग्रहण करते हैं ।।६५०।।

---

१. ब. क्ष. खणो । २. द. ब. क. ज. य. उ. दुसमाइं । ३. द. ब. क. ज. य. उ. गरुवाहिं ।
४. ब. दारवदीये ।

ऋषभादि तीर्थंकरोंकी दीक्षा-तिथि, पहर (काल), नक्षत्र, वन और दीक्षा समय उपवासोंके प्रमाणोंका निरूपण—

चेत्ता-सिद-णवमीए, तदिए पहरम्मि उत्तरासाढे।
सिद्धत्थ-वणे उसहो, उववासे छट्ठमम्मि णिक्कंतो[1] ।।६५१।।

अर्थ :—भगवान् ऋषभदेव चैत्र कृष्णा नवमीके तीसरे पहर उत्तराषाढ़ नक्षत्रमें सिद्धार्थ वनमें षष्ठ (मासके) उपवासके साथ दीक्षित हुए ।।६५१।।

माघस्स सुक्क-णवमी-अवरण्हे रोहिणीसु अजिय-जिणो ।
रम्मे [2]सहेदुग-वणे, अट्ठम-भत्तम्मि णिक्कंतो ।।६५२।।

अर्थ :—अजित जिनेन्द्र माघ शुक्ला नवमीके दिन अपराह्णमें रोहिणी नक्षत्रके रहते सुन्दर सहेतुक वनमें अष्टम भक्तके साथ दीक्षित हुए ।।६५२।।

मग्गसिर-पुण्णिमाए, तदिए पहरम्मि तदिय-उववासे ।
जेट्ठाए णिक्कंतो, संभव-सामी सहेदुगम्मि वणे ।।६५३।।

अर्थ :—सम्भवनाथ स्वामीने मगसिरकी पूर्णिमाको तृतीय पहरमें ज्येष्ठा नक्षत्रके रहते सहेतुक वनमें तृतीय उपवासके साथ दीक्षा ग्रहण की ।।६५३।।

सिद-बारसि-पुव्वण्हे, माघे मासे पुणव्वसू-रिक्खे ।
उग्ग-वणे उववासे, तदिए अभिणंदणो य णिक्कंतो[3] ।।६५४।।

अर्थ :—अभिनन्दन भगवान्ने माघ शुक्ला-द्वादशीके दिन पूर्वाह्णमें पुनर्वसु नक्षत्रके रहते उग्रवनमें तृतीय उपवासके साथ दीक्षा धारण की ।।६५४।।

णवमीए पुव्वण्हे, मघासु वइसाह-सुक्क-पक्खम्मि ।
सुमई सहेदुग-वणे, णिक्कंतो तदिय-उववासे ।।६५५।।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. णिक्कंता । २. द. ब. सुहेदुगवणे । ३. ब. क. ज. य. उ. णिक्कंता ।

अर्थ :—भगवान् सुमतिनाथ वैशाख शुक्ला नवमीको पूर्वाह्णमें मघा नक्षत्रके रहते सहेतुक वनमें तृतीय उपवासके साथ दीक्षित हुए ।।६५५।।

चेत्तासु किण्ह-तेरसि-अवरण्हे कित्तियस्स णिक्कंतो ।
पउमप्पहो जिणिदो, तदिए खवणे मणोहरुज्जाणे ।।६५६।।

अर्थ :—पद्मप्रभ जिनेन्द्र कार्तिक कृष्णा त्रयोदशीके अपराह्णमें चित्रा नक्षत्रके (उदित) रहते मनोहर उद्यानमें तृतीय उपवासके साथ दीक्षित हुए ।।६५६।।

सिद-बारसि-पुव्वण्हे, जेट्ठस्स विसाहभम्मि जिण-दिक्खं ।
गेण्हेदि तदिय-खवणे, सुपासदेवो सहेदुगम्मि वणे ।।६५७।।

अर्थ :—सुपार्श्वनाथने ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशीके पूर्वाह्णमें विशाखा नक्षत्रके रहते सहेतुक वनमें तृतीय उपवासके साथ जिन दीक्षा ग्रहण की ।।६५७।।

अणुराहाए पुस्से, बहुले एयारसीए अवरण्हे ।
[1]चंदपहो धरइ तवं, सव्वत्थ-वणम्मि तदिय-उववासे ।।६५८।।

अर्थ :—चन्द्रप्रभने पौष कृष्णा एकादशीके अपराह्णमें अनुराधा नक्षत्रके रहते तृतीय उपवासके साथ सर्वार्थवनमें तप धारण किया ।।६५८।।

अणुराहाए पुस्से, सिद-पक्खेकारसीए अवरण्हे ।
[2]पव्वज्जइ पुप्फवणे, तदिए खवणम्मि पुप्फयंत-जिणो[3]।।६५९।।

अर्थ :—पुष्पदन्त तीर्थंकर पौष-शुक्ला एकादशीके अपराह्णमें अनुराधा नक्षत्रके रहते पुष्पवनमें तृतीय उपवासके साथ प्रव्रजित (दीक्षित) हुए ।।६५९।।

माघस्स [4]किण्ह-बारसि-अवरण्हे मूलभम्मि पव्वज्जा ।
गहिया सहेदुग-वणे, सीयल-देवेण तदिय-उववासे ।।६६०।।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. चंदप्पह । २ द. ब. क. ज. य. उ. पवज्जिय । ३. द. क. ज. य. उ. जिणे । ४. द. ज. किण्हे ।

अर्थ : शीतलनाथ स्वामीने माघ कृष्णा द्वादशीके अपराह्णमें मूल नक्षत्रके रहते सहेतुक वनमें तृतीय उपवासके साथ प्रव्रज्या ग्रहण की ।।६६०।।

एक्कारसि-पुव्वण्हे, फग्गुण-बहुले मणोहरुज्जाणे ।
सवणम्मि तदिय-खवणे, सेयंसो धरइ जिण-दिक्खं ।।६६१।।

अर्थ :-श्रेयांसदेवने फाल्गुन कृष्णा एकादशीके पूर्वाह्णमें श्रवण नक्षत्रके रहते मनोहर उद्यानमें तृतीय उपवासके साथ जिन दीक्षा धारण की ।।६६१।।

फग्गुण-कसण-चउद्दसि-अवरण्हे वासुपुज्ज-तव-गहणं ।
रिक्खम्मि विसाखाए, इगि-उववासे मणोहरुज्जाणे ।।६६२।।

अर्थ :—वासुपूज्य जिनेन्द्रने फाल्गुन कृष्णा चतुर्दशीके अपराह्णमें विशाखा नक्षत्रके रहते मनोहर उद्यानमें एक उपवासके साथ तप ग्रहण किया ।।६६२।।

माघस्स सिद-चउत्थी, अवरण्हे तह सहेदुगम्मि वणे ।
उत्तरभद्दपदासुं, विमलो णिक्कमइ तदिय-उववासे ।।६६३।।

अर्थ :—विमलनाथ स्वामीने माघ शुक्ला चतुर्थीके अपराह्णमें उत्तर भाद्रपद नक्षत्रके रहते सहेतुक वनमें तृतीय उपवासके साथ दीक्षा ग्रहण की ।।६६३।।

जेट्ठस्स बहुल-बारसि, अवरण्हे रेवदीसु खवणतिए ।
धरिया सहेदुग-वणे, अणंतदेवेण तव-लच्छी ।।६६४।।

अर्थ :—अनन्तनाथ स्वामीने ज्येष्ठ कृष्णा द्वादशीके दिन अपराह्णमें रेवती नक्षत्रके रहते सहेतुक वनमें तृतीय उपवासके साथ तपो लक्ष्मी धारण की ।।६६४।।

सिद-तेरसि-अवरण्हे, भद्दपदे पुस्सभम्मि खवण-तिए ।
णमिऊणं सिद्धाणं, सालि-वणे णिक्कमइ धम्मो ।।६६५।।

अर्थ :—धर्मनाथ तीर्थंकरने भाद्रपद शुक्ला त्रयोदशीके अपराह्णमें पुष्य नक्षत्रके रहते शालि-वनमें तृतीय उपवासके साथ सिद्धोंको नमस्कार कर जिन दीक्षा ग्रहण की ।।६६५।।

जेट्ठस्स बहुल-[1]चउत्थी-अवरण्हे भरणिभम्मि चूद-वणे ।
पडिवज्जदि पव्वज्जं, संति-जिणो तदिय-उववासे ।।६६६।।

अर्थ :—शान्तिनाथ जिनेन्द्रने ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्थीके अपराह्णमें भरणी नक्षत्रके रहते आम्रवनमें तृतीय उपवासके साथ जिन दीक्षा धारण की ।।६६६।।

वइसाह-सुद्ध-पाडिव-अवरण्हे कित्तियासु खवण-तिए ।
कुंथू सहेदुग-वणे, पव्वजिओ पणमिऊण सिद्धाणं[2] ।।६६७।।

अर्थ :—कुन्थुनाथ स्वामी वैशाख शुक्ला प्रतिपदाके अपराह्णमें कृत्तिका नक्षत्रके रहते सहेतुक वनमें तृतीय उपवासके साथ सिद्धोंको प्रणाम कर दीक्षित हुए ।।६६७।।

मगसिर-सुद्ध-दसमी-अवरण्हे रेवदीसु अर-देवो ।
तदिय-खवणम्मि गेण्हदि, जिणिंद-रूवं सहेदुगम्मि वणे ।।६६८।।

अर्थ :—अरनाथ तीर्थङ्करने मगसिर शुक्ला दसमीके अपराह्णमें रेवती नक्षत्रके रहते सहेतुक वनमें तृतीय उपवासके साथ जिनेन्द्ररूप ग्रहण किया ।।६६८।।

मग्गसिर-सुद्ध-एक्कारसिए अह अस्सिणीसु पुव्वण्हे ।
[3]धरदि तवं सालि-वणे, [4]मल्ली छट्ठेण भत्तेण ।।६६९।।

अर्थ :—मल्लि जिनेन्द्रने मगसिर-शुक्ला एकादशीके पूर्वाह्णमें अश्विनी नक्षत्रके रहते शालि वनमें षष्ठ भक्तके साथ तप धारण किया ।।६६९।।

वइसाह-बहुल-दसमो अवरण्हे सवणभम्मि णील-वणे ।
उववासे तदियम्मि य, सुव्वददेवो[5] महाव्वदं धरदि ।।६७०।।

अर्थ :—मुनिसुव्रतदेवने वैशाख कृष्णा दसमीके अपराह्णमें श्रवण नक्षत्रके उदय रहते नील-वनमें तृतीय उपवासके साथ महाव्रत धारण किये ।।६७०।।

---

१. द. ब. उ. चोत्ती, ज. य. चोत्ती । २. ब. उ. सिद्धाणं । ३. द. ब. धरिदि, ब. क. ज. य. धरिद । ४. द. ब. क. ज. य. उ. मल्लि । ५. द. ब. क. उ. देवा ।

आसाढ-बहुल-दसमी-अवरण्हे अस्सिणीसु [1]चेत्त-वणे ।
णमि-णाहो पव्वज्जं, पडिवज्जदि तदिय-खवणम्हि ॥६७१॥

अर्थ :—नमिनाथने आषाढ़ कृष्णा दसमीके अपराह्णमें अश्विनी नक्षत्रके रहते चैत्र-वनमें तृतीय उपवासके साथ दीक्षा स्वीकार की ॥६७१॥

चेत्तासु-सुद्ध-छट्ठी-अवरण्हे सावणम्मि णेमि-जिणो ।
तदिय-खवणम्मि गेण्हदि, सहकार-वणम्मि तव-चरणं ॥६७२॥

अर्थ :—नेमिनाथने श्रावण शुक्ला षष्ठीके अपराह्णमें चित्रा नक्षत्रके रहते सहकार वनमें तृतीय उपवासके साथ तप ग्रहण किया ॥६७२॥

माघस्सिद-एक्कारसि-पुव्वण्हे गेण्हदे विसाहासु ।
पव्वज्जं पासजिणो, अस्सत्त-वणम्मि छट्ठ-भत्तेण ॥६७३॥

अर्थ :—पार्श्वनाथने माघ शुक्ला एकादशीके पूर्वाह्णमें विशाखा नक्षत्रके रहते षष्ठ भक्तके साथ अश्वत्थ वनमें दीक्षा ग्रहण की ॥६७३॥

मग्गसिर-बहुल-दसमी-अवरण्हे उत्तरासु [2]णाथ-वणे ।
तदिय-खमणम्मि गहिदं, महव्वदं वड्ढमाणेण ॥६७४॥

अर्थ :—वर्धमान भगवान्‌ने मगसिर कृष्णा दसमीके अपराह्णमें उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रके रहते नाथवनमें तृतीय उपवासके साथ महाव्रत ग्रहण किये ॥६७४॥

सह-दीक्षित राजकुमारोंकी संख्या—

[3]पव्वजिदो मल्लि-जिणो, रायकुमारेहि ति-सय-मेत्तेहिं ।
पास-जिणो वि तह च्चिय, एक्को च्चिय वड्ढमाण-जिणो[4] ॥६७५॥

मल्लि ३०० । पास ३०० । वीर ० ।

[तालिका नं० १८ पृष्ठ १९०-१९१ पर देखें]

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. चेतवणे । २. द. ज. णाथरणे, ब. उ. णापवणे, क. णायवणे, य. णाघवणे । ३. द ब. क. उ. पव्वज्जिदो । ४. द. ब. क. ज. उ. जिणे ।

चौबीस तीर्थंकरों के वैराग्य का कारण और दीक्षा का सम्पूर्ण विवरण गाथा ६१४-६१८ और ६५० ६७६

क्र	नाम	वैराग्य का कारण	दीक्षा स्थान	दीक्षा							सहदीक्षित
				मास	पक्ष	तिथि	काल	नक्षत्र	वन	दीक्षोपवास	
१	ऋषभनाथ	नीलाञ्जना मरण	अयोध्या	चैत्रा	कृष्ण	नवमी	अपराह्न	उत्तराषाढ़ा	सिद्धार्थ	छहमास	४०००
२	अजितनाथ	उल्कापात	साकेत	माघ	शुक्ल	नवमी	अपराह्न	रोहणी	सहेतुक	अष्टभक्त	१०००
३	सम्भवनाथ	मेघविनाश	श्रावस्ती	मगसिर	शुक्ल	पूर्णिमा	अराह्न	ज्येष्ठा	सहेतुक	तीन उप०	१०००
४	अभिनन्दन	गंधर्वनगर नाश	साकेत	माघ	शुक्ल	द्वादशी	पूर्वाह्न	पुनर्वसु	सहेतुक	तीन उप०	१०००
५	सुमतिनाथ	जातिस्मरण	साकेत	वैशाख	शुक्ल	नवमी	पूर्वाह्न	मघा	सहेतुक	तीन उप०	१०००
६	पद्मनाथ	जातिस्मरण	कौशाम्बी	कार्तिक	कृष्ण	त्रयोदशी	अपराह्न	चित्रा	मनोहर	तीन उप०	१०००
७	सुपार्श्वनाथ	पतझड़	बनारस	ज्येष्ठ	शुक्ल	द्वादशी	पूर्वाह्न	विशाखा	सहेतुक	तीन उप०	१०००
८	चन्द्रप्रभ	बिजली	चन्द्रपुरी	पौष	कृष्ण	एकादशी	अपराह्न	अनुराधा	सर्वार्थ	तीन उप०	१०००
९	पुष्पदन्त	उल्कापात	काकन्दी	पौष	शुक्ल	एकादशी	अपराह्न	अनुराधा	पुष्प	तीन उप०	१०००
१०	शीतलनाथ	हिमनाश	भद्दलपुर	माघ	कृष्ण	द्वादशी	अपराह्न	मूल	सहेतुक	तीन उप०	१०००
११	श्रेयांसनाथ	पतझड़	सिंहपुरी	फाल्गुन	कृष्ण	एकादशी	पूर्वाह्न	श्रवण	मनोहर	तीन उप०	१०००

१२	वासुपूज्य	जातिसमरण	चम्पापुरी	फाल्गुन	कृष्ण	चतुर्दशी	अपराह्न	विशाख	मनोहर	एक उप०	६७६
१३	विमलनाथ	मेघनाश	कंपिला	माघ	शुक्ल	चतुर्थी	अपराह्न	उ०भा०	सहेतुक	तीन उप०	१०००
१४	अनन्तनाथ	उल्कापात	अयोध्या	ज्येष्ठ	कृष्ण	द्वादशी	अपराह्न	रेवती	सहेतुक	तीन उप०	१०००
१५	धर्मनाथ	उल्कापात	रत्नपुर	भाद्रपद	शुक्ल	त्रयोदशी	अपराह्न	पुष्य	शालिवन	तीन उप०	१०००
१६	शान्तिनाथ	जातिस्मरण	हस्तिनापुर	ज्येष्ठ	कृष्ण	चतुर्दशी	अपराह्न	भरणी	आम्र	तीन उप०	१०००
१७	कुन्थुनाथ	जातिस्मरण	हस्तिनापुर	वैशाख	शुक्ल	प्रतिपदा	अपराह्न	कृतिका	सहेतुक	तीन उप०	१०००
१८	अरनाथ	मेघनाथ	हस्तिनापुर	मगसिर	शुक्ल	दशमी	अपराह्न	रेवती	सहेतुक	तीन उप०	१०००
१९	मल्लिनाथ	बिजली	मिथिला	मगसिर	शुक्ल	एकादशी	पूर्वाह्न	अश्विनी	शालि	षष्ठ भक्त	३००
२०	मुनिसुव्रत	जातिस्मरण	राजगृह	वैशाख	कृष्ण	दशमी	अपराह्न	श्रवण	नील	तीन उप०	१०००
२१	नमिनाथ	जातिस्मरण	मिथिला	आषाढ	कृष्ण	दशमी	अपराह्न	अश्विनी	चैत्र	तीन उप०	१०००
२२	नेमिनाथ	जातिस्मरण	द्वारावती	श्रावण	शुक्ल	षष्ठी	अपराह्न	चित्रा	सहकार	तीन उ०	१०००
२३	पार्श्वनाथ	जातिस्मरण	वाराणसी	माघ	शुक्ल	एकादशी	पूर्वाह्न	विशाखा	अश्वत्थ	षष्ठ भक्त	३००
२४	महावीर	जातिस्मरण	कुण्डलपुर	मगसिर	कृष्ण	दशमी	अपराह्न	उत्तरा फाल्गुनी	नाथ	तीन उप०	०

अर्थ :—मल्लिनाथ जिनेन्द्र तीन सौ राजकुमारोंके साथ दीक्षित हुए। पार्श्वनाथ भी उतने ही (तीन सौ) राजकुमारोंके साथ दीक्षित हुए तथा वर्धमान जिनेन्द्र अकेले ही दीक्षित हुए (उनके साथ किसी की भी दीक्षा नहीं हुई) ।।६७५।।

छावत्तरि-जुद-छस्सय-संखेहिं वासुपुज्जसामी य ।
उसहो तालसएहिं, सेसा पुह-पुह सहस्स-मेत्तेहिं ।।६७६।।

वासु ६७६ । उसह ४००० । सेसा पत्तेक्का १००० ।

अर्थ :—वासुपूज्य स्वामी छह सौ छिहत्तर (६७६), ऋषभनाथ चार हजार (४०००) और शेष तीर्थंकर पृथक्-पृथक् एक-एक हजार (१०००-१०००) राजकुमारोंके साथ दीक्षित हुए ।।६७६।।

दीक्षा-अवस्था-निर्देश—

णेमी मल्ली वीरो, कुमार-कालम्मि वासुपुज्जो य ।
पासो वि य गहिद-तवा, सेस-जिणा रज्ज-चरिमम्मि ।।६७७।।

अर्थ :—भगवान् नेमिनाथ, मल्लिनाथ, महावीर, वासुपूज्य और पार्श्वनाथ इन पाँच तीर्थंकरोंने कुमार-कालमें और शेष तीर्थङ्करोंने राज्यके अन्तमें तप ग्रहण किया ।।६७७।।

प्रथम पारणाका निर्देश—

एक्क-वरिसेण उसहो, उच्छुरसं कुणइ पारणं अवरे ।
गो-खीरे णिप्पण्णं, अण्णं बिदियम्मि दिवसम्मि ।।६७८।।

अर्थ :—भगवान् ऋषभदेवने एक वर्षमें इक्षुरसकी पारणा की थी और इतर तीर्थङ्करोंने दूसरे दिन गो-क्षीरमें निष्पन्न अन्न (खीर) की पारणा की थी ।।६७८।।

विशेषार्थ :—भगवान् ऋषभदेवने छह मासके उपवास सहित दीक्षा ग्रहण की थी परन्तु उनकी पारणा एक वर्ष बाद हुई थी। शेष तेईस तीर्थकरोंमेंसे २० ने तीन उपवास, दो तीर्थङ्करोंने दो उपवास और श्री वासुपूज्य स्वामीने एक उपवासके साथ दीक्षा ग्रहण की थी। इन सबकी पारणा दीक्षोपवासोंके दूसरे दिन ही हो गई थी।

पारणा के दिन होने वाले पञ्चाश्चर्य–

सव्वाण पारण-दिणे, णिवदई वर-रयण-वरिसमंबरदो।

पंण-घण-हद-दह-लक्खं, जेट्ठं अवरं सहस्स-भागं च।।६७९।।

।१२५०००००० ।१२५०००।

अर्थ :– पारणा के दिन (सब दाताओं के यहां) आकाश से उत्तम रत्नों की वर्षा होती है, जिसमें अधिक से अधिक पाँच के घन (१२५) से गुणित दस लाख (१२५००००००) प्रमाण और कम से कम इसके हजारवें भाग (१२५०००) प्रमाण रत्न बरसते हैं।। ६७९ ।।

दत्ति-विसोहि-विसेसोब्भेद-निमित्तं खु रयण-उट्ठीए।

बायंति दुंदुहीओ, देवा जलदेहि अंतरिदा।।६८०।।

अर्थ :–दान-विशुद्धिकी विशेषता प्रकट करने के निमित्त, देव मेघों से अन्तर्हित होते हुए रत्नवृष्टि पूर्वक दुन्दुभी (बाजे) बजाते हैं।।६८०।।

पसरइ दाणुग्घोसो, वादि [2]सुगंधो सुसीयलो पवणो।

दिव्व-कुसुमेहि गयणं, वरिसइ इय पंच-चोज्जणि[3]।।६८१।।

अर्थ :–उस दान का उद्‌घोष (जय-जय शब्द) फैलता है, सुगन्धित एवं शीतल वायु चलती है और आकाश से दिव्य फूलों की वर्षा होती है। इस प्रकार ये पञ्चाश्चर्य होते हैं।।६८१।।

तीर्थकरों के छद्‌मस्थ काल का प्रमाण–

उसहादीसुं वासा, सहस्स-बारस-चउद्दसट्ठरसा।

बीस [4]दछुमत्थ-कालो, छच्चियय[5] पउमप्पहे मासा।।६८२।।

अर्थ– ।उसह वासा १००० ।अजिय १२। संभव १४। अहिणंदण १८। सुमई २०। थउपप्पह मा ६।

१. द.ब.क.उ. पणपणहद, द.ज.य. पणपुणहद। २. द. सुयंधा, क.ज.य.उ. सुयंधो। ३ द.ब.क.ज.य.उ. चोजाणि।
४ ब.त.उ छदुमट्ठ, ज.य.छदुमत्थ। ५. द.ब.क.अ.य.उ छव्विह।

अर्थ :—ऋषभादिक पाँच तीर्थङ्करोंका छद्मस्थ काल क्रमशः एक हजार वर्ष, बारह वर्ष, चौदह वर्ष, अठारह वर्ष और बीस वर्ष प्रमाण तथा पद्मप्रभका मात्र छह मास प्रमाण ही है ।।६८२।।

वासाणि णव सुपासे, मासा चंदप्पहम्मि तिण्णि तवो ।
चदु-ति-दु-एक्का ति-दु-इगि-सोलस-चउवग्ग-चउकदी वासा ।।६८३।।

सुपास वास ९ । चंद मा ३ । पुप्फ वा ४ । सीयल वास ३ । सेयं वा २ ।

वासु १ । विमल ३ । अणंत २ । धम्म १ । संति १६ । कुंथु १६ । अर १६ ।

अर्थ :—सुपार्श्वनाथ स्वामीका छद्मस्थ काल नौ वर्ष, चन्द्रप्रभका तीन मास और इसके आगे क्रमशः चार, तीन, दो, एक, तीन, दो, एक, सोलह, चारका वर्ग (सोलह) और फिर चारकी कृति (सोलह) वर्ष प्रमाण है ।।६८३।।

मल्लि-जिणे छद्दिवसा, एक्कारस सुव्वदे जिणे मासा ।
णमिणाहे णव वासा, दिणाणि छप्पण्ण णेमि जिणे ।।६८४।।

। मल्लि-दिण ६ । सुव्वद मा ११ । णमि वा ९ । णेमि दि ५६ ।

अर्थ :—छद्मस्थ कालमें मल्लि जिनेन्द्रके छह दिन, मुनिसुव्रत जिनेन्द्रके ग्यारह मास, नमिनाथके नौ वर्ष और नेमिनाथके छप्पन दिन व्यतीत हुए ।।६८४।।

पास-जिणे चउमासा, बारस-वासाणि वड्ढमाण-जिणे ।
एत्तियमेत्ते समए, केवलणाणं[1] ण ताण उप्पण्णं ।।६८५।।

। पास मास ४ । वीर वासा १२ ।

अर्थ :—पार्श्व जिनेन्द्रका चार मास और वर्धमान जिनेन्द्रका बारह वर्ष प्रमाण छद्मस्थ-काल रहा है । इतने समय (उपर्युक्त छद्मस्थ काल) तक उन तीर्थंकरोंको केवलज्ञान नहीं हुआ था ।।६८५।।

---

१. ब. क. य. उ. केवलणाणे, ज. केवलाणाणं ।

चौबीसों तीर्थङ्करोंके केवलज्ञानकी तिथि, समय, नक्षत्र और स्थानका निर्देश

फग्गुण-किण्हेयारसि-पुव्वण्हे पुरिमताल-णयरम्मि ।
उत्तरसाढे उसहे, उप्पण्णं केवलं णाणं ।।६८६।।

अर्थ :—ऋषभनाथको फाल्गुन-कृष्णा एकादशीके पूर्वाह्णमें उत्तराषाढा नक्षत्रके रहते पुरिमताल नगरमें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ ।।६८६।।

पुस्सस्स सुक्क-चोद्दसि-अवरण्हे रोहिणिम्मि णक्खत्ते ।
अजिय-जिणे उप्पण्णं, अणंतणाणं सहेदुगम्मि वणे ।।६८७।।

अर्थ :—अजित जिनेन्द्रको पौष-शुक्ला चतुर्दशीके अपराह्णमें रोहिणी नक्षत्रके रहते सहेतुक वनमें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ ।।६८७।।

कत्तिय-सुक्के पंचमि-अवरण्हे मिगसिरम्मि रिक्खम्मि ।
संभव-जिणस्स जादं, केवलणाणं खु तम्मि वणे ।।६८८।।

अर्थ :—सम्भवनाथ जिनेन्द्रको कार्तिक शुक्ला पंचमीके अपराह्णमें मृगशिरा नक्षत्रके रहते सहेतुक वनमें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ ।।६८८।।

पुस्सस्स पुण्णिमाए, रिक्खम्मि पुणव्वसुम्मि अवरण्हे ।
उग्ग-वणे अभिणंदण-जिणस्स संजाद-सव्वगयं ।।६८९।।

अर्थ :—अभिनन्दन जिनेन्द्रको पौष (शुक्ला) पूर्णिमाके अपराह्णमें पुनर्वसु नक्षत्रके रहते उग्र-वनमें सर्वगत (केवलज्ञान) उत्पन्न हुआ ।।६८९।।

वइसाह-सुक्क-दसमी, मघाए रिक्खे सहेदुगम्मि वणे ।
अवरण्हे उप्पण्णं, सुमइ-जिणे केवलं णाणं ।।६९०।।

अर्थ :—सुमति जिनेन्द्रको वैशाख-शुक्ला दसमीके अपराह्णमें मघा नक्षत्रके रहते सहेतुक वनमें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ ।।६९०।।

वइसाह-सुक्क-दसमी, चेत्ता-रिक्खे मणोहरुज्जाणे ।
अवरण्हे उप्पण्णं, पउमप्पह-जिणवरिंदस्स ।।६९१।।

अर्थ :--पद्मप्रभ जिनेन्द्रको वैशाख-शुक्ला दसमीके अपराह्णमें चित्रा नक्षत्रके रहते मनोहर उद्यानमें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ ।।६९१।।

फग्गुण-कसिणे सत्तमि, विसाह-रिक्खे सहेदुगम्मि वणे ।
अवरण्हे [1]असवत्तं, सुपास-णाहस्स संजादं ।।६९२।।

अर्थ :—सुपार्श्वनाथको फाल्गुन कृष्णा सप्तमीके अपराह्णमें विशाखा नक्षत्रके रहते सहेतुक वनमें असपत्न (केवलज्ञान) उत्पन्न हुआ था ।।६९२।।

तद्दिवसे अणुराहे, सव्वत्थ-वणे दिणस्स पच्छिमए ।
चंदप्पह-जिण-णाहे, संजादं सव्वभाव-गदं ।।६९३।।

अर्थ :—चन्द्रप्रभ जिनेन्द्रको उसी दिन (फाल्गुन कृष्णा सप्तमीको) दिनके पश्चिम भाग (अपराह्ण) में अनुराधा नक्षत्रके रहते सर्वार्थ वनमें सम्पूर्ण पदार्थोंको अवगत करने वाला केवलज्ञान उत्पन्न हुआ ।।६९३।।

कत्तिय-सुक्के तदिए, अवरण्हे मूल-भे य पुप्फवणे ।
सुविहि-जिणे उप्पण्णं, तिहुवण-संखोभयं णाणं ।।६९४।।

अर्थ :— सुविधि जिनेन्द्रको कार्तिक-शुक्ला तृतीयाके अपराह्णमें मूल नक्षत्रके रहते पुष्प-वनमें तीनों लोकोंको आश्चर्यान्वित करनेवाला केवलज्ञान उत्पन्न हुआ ।।६९४।।

पुस्सस्स किण्ह-चोद्दसि-पुव्वासाढे दिणस्स पच्छिमए ।
सीयल-जिणस्स जादं, अणंतणाणं सहेदुगम्मि वणे ।।६९५।।

अर्थ :—शीतलनाथ तीर्थङ्करको पौष-कृष्णा चतुर्दशीको दिनके पश्चिम भागमें पूर्वाषाढ़ा नक्षत्रके रहते सहेतुक वनमें अनन्तज्ञान उत्पन्न हुआ ।।६९५।।

माघस्स य अमवासे, पुव्वण्हे सवणभम्मि सेयंसे ।
जादं केवलणाणं, सुविसाल-मणोहरुज्जाणे ।।६९६।।

---

१. द.ब. क. ज य. उ. अवसत्तं ।

अर्थ :—श्रेयांस जिनेन्द्रको माघकी अमावस्याके दिन पूर्वाह्णमें श्रवण नक्षत्रके रहते मनोहर उद्यानमें केवलज्ञान प्राप्त हुआ ।।६९६।।

माघस्स पुण्णिमाए, विसाह-रिक्खे मणोहरुज्जाणे ।
अवरण्हे संजादं, केवलणाणं खु वासुपुज्ज-जिणे ।।६९७।।

अर्थ :—वासुपूज्य जिनेन्द्रको माघ (शुक्ला) पूर्णिमाके अपराह्णमें विशाखा नक्षत्रके रहते मनोहर उद्यानमें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ ।।६९७।।

पुस्से सिद-दसमीए, अवरण्हे तह य उत्तरासाढे ।
विमल-जिणिंदे[1] जादं, अणंतणाणं सहेदुगम्मि वणे ।।६९८।।

अर्थ :—विमल जिनेन्द्रको पौष-शुक्ला दसमीके अपराह्णमें उत्तराषाढ़ा नक्षत्रके रहते सहेतुक वनमें अनन्तज्ञान उत्पन्न हुआ ।।६९८।।

चेत्तस्स य अमवासे, रेवदि-रिक्खे सहेदुगम्मि वणे ।
अवरण्हे संजादं, केवलणाणं अणंत जिणे ।।६९९।।

अर्थ :—अनन्त जिनेन्द्रको चैत्रमासकी अमावस्याके अपराह्णमें रेवती नक्षत्रके रहते सहेतुक वनमें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ ।।६९९।।

पुस्सस्स पुण्णिमाए, पुस्से रिक्खे सहेदुगम्मि वणे ।
अवरण्हे संजादं, धम्म-जिणिंदस्स[2] सव्वगदं ।।७००।।

अर्थ :—धर्मनाथ जिनेन्द्रको पौष मासकी पूर्णिमाके दिन अपराह्णमें पुष्य नक्षत्रके रहते सहेतुक वनमें सर्व पदार्थोंको जानने वाला केवलज्ञान उत्पन्न हुआ ।।७००।।

पुस्से [3]सुक्केयारसि-भरणी-रिक्खे दिणस्स पच्छिमए ।
चूद-वणे [4]संजादं, संति-जिणेसस्स केवलं णाणं ।।७०१।।

---

१. ब. क. ठ जिणंदे । २. ब. जिणंदस्स, उ. जिणंदस्स । ३. द. बारसि । ४. द. ब. क. ज. उ. संजादो, य. हंजादा ।

अर्थ :—शान्ति जिनेशको पौष शुक्ला एकादशीके दिन दिवसके पश्चिम भागमें भरणी नक्षत्रके रहते आम्रवनमें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ ।।७०१।।

चेत्तस्स सुक्क-तदिए, कित्तिय-रिक्खे सहेदुगम्मि वणे ।
अवरण्हे उप्पण्णं, कुंथु-जिणेसस्स केवलं णाणं ।।७०२।।

अर्थ :—कुन्थु जिनेन्द्रको चैत्र-शुक्ला तृतीयाके दिन अपराह्णमें कृत्तिका नक्षत्रके उदय रहते सहेतुक वनमें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ ।।७०२।।

कत्तिय-सुक्के बारसि-रेवदि-रिक्खे सहेदुगम्मि वणे ।
अवरण्हे उप्पण्णं, केवलणाणं अर-जिणस्स ।।७०३।।

अर्थ :—अरनाथ जिनेन्द्रको कार्तिक-शुक्ला द्वादशीके अपराह्णमें रेवती नक्षत्रके रहते सहेतुक वनमें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ ।।७०३।।

फग्गुण-किण्हे बारसि, अस्सिणि-रिक्खे मणोहरुज्जाणे ।
अवरण्हे मल्लि-जिणे, केवलणाणं समुप्पण्णं ।।७०४।।

अर्थ :—मल्लिनाथ जिनेन्द्रको फाल्गुन कृष्णा द्वादशीके अपराह्णमें अश्विनी नक्षत्रके रहते मनोहर उद्यानमें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ ।।७०४।।

फग्गुण-किण्हे छट्ठी-पुव्वण्हे सवण-भे य णील-वणे ।
मुणिसुव्वयस्स जादं, असहाय-परक्कमं णाणं ।।७०५।।

अर्थ :—मुनिसुव्रत जिनेशको फाल्गुन कृष्णा षष्ठीके पूर्वाह्णमें श्रवण नक्षत्रके रहते नील वनमें असहाय-पराक्रमरूप केवलज्ञान उत्पन्न हुआ ।।७०५।।

चेत्तस्स सुक्क-तदिए, अस्सिणि-रिक्खे दिणस्स पच्छिमए ।
चित्त-वणे संजादं, अणंत-णाणं णमि-जिणस्स ।।७०६।।

अर्थ :—नमिनाथ जिनेन्द्रको चैत्र-शुक्ला तृतीयाको दिनके पश्चिम भागमें अश्विनी नक्षत्रके रहते चित्र वनमें अनन्तज्ञान उत्पन्न हुआ ।।७०६।।

अस्सउज-सुक्क-पडिवदि-पुव्वण्हे उज्जयंत-गिरि-सिहरे ।
चित्ते रिक्खे जादं, णेमिस्स य केवलं णाणं ।।७०७।।

अर्थ :—नेमिनाथको आसोज शुक्ला प्रतिपदाके पूर्वाह्णमें चित्रा नक्षत्रके रहते ऊर्जयन्त-गिरिके शिखर पर केवलज्ञान उत्पन्न हुआ ।।७०७।।

चित्ते बहुल-चउत्थी-विसाह-रिक्खम्मि पासणाहस्स ।
सक्कपुरे पुव्वण्हे, केवलणाणं समुप्पण्णं ।।७०८।।

अर्थ :—पार्श्वनाथको चैत्र कृष्णा चतुर्थीके पूर्वाह्णमें विशाखा नक्षत्रके रहते शक्रपुरमें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ ।।७०८।।

वइसाह-सुक्क-दसमी, हत्ते रिक्खम्मि वीर-णाहस्स ।
[1]रिजुकूल-णदी-तीरे, अवरण्हे केवलं णाणं ।।७०९।।

अर्थ :—वीरनाथ जिनेन्द्रको वैशाख शुक्ला दसमीके अपराह्णमें हस्त नक्षत्रके रहते ऋजु-कूला नदीके किनारे केवलज्ञान उत्पन्न हुआ ।।७०९।।

तीर्थङ्करोंके केवलज्ञानका अन्तरकाल—

जणणंतरेसु पुह पुह, पुव्विल्लाणं[2] कुमार-रज्जत्तं ।
छदुमत्थस्सा य कालं, अवणिय [3]पच्छिल्ल-तित्थकत्ताणं[4] ।।७१०।।

कोमार-रज्ज-छदुमत्थसयमाणम्हि मेलिदे होदि ।
केवलणाणुप्पत्ती - अंतरमाणं[5] जिणिदाणं ।।७११।।

अजि = सा ५० ल को । व ८३९९०१२ ।

संभ = सा ३० ल को । अंगाणि ३ । वास २ ।

---

१. ब. ऋजुकूल । २. द. ब. क. य. पच्छिल्लाणं । ३. द. ब. क. ज. य. उ. पुव्विल्लं । ४. ब. य. उ. तित्थकत्तारं । ५. द. ब. क. ज. य. उ. अणंतमाणं विणिदाणं ।

अभि = सा १० ल को । अं ४ । वा ४ ।

सु = सा ९ ल को । अग ४ । वा २[1] ।

पउ = सा ९०००० को । अं ३ । व ८३९९९८० । मा ६[2] ।

सुपा = सा ९००० को । अंग ४ । वास ८ । मा ६ ।

चद = सा ९०० को । अंग ३ । वरस ८३९९९९१ मा ३[3] ।

सुविहि = सा ९० को । अंग ४ । वा ३ । मा ९ ।

सीय = सा ९ को । पु ७४९९९ । अंग ८३९९९९१ । वा ८३९९९९९९ ।

सेयं = सा ९९९९९९०० । पु २४९९९ । वास ७०५५९९९१२७३९९९ ।

वासपुज्ज= सा ५४ रिण वास ३३००००१ ।

विमल = सा ३० । वास ३९००००२ ।

अणत = सा ९ । वास ७४९९९९ ।

धम्म = सा ४ । वास ४९९९९९ ।

संति = सा ३ । वा २२५०१५ रिण प $\frac{3}{4}$ ।

कुंथु = प $\frac{1}{2}$ । वा १०५०[4] ।

अर = प $\frac{1}{4}$ रिण वा ९९९९९९७२५० ।

मल्लि = वास ९९९९९६६०८४ । दिण ६ ।

मुणि = ५४४७४०० । मा १० । दिण २४ ।

णमि = वास ६०५००८ । मा १ ।

णेमि = वास ५०१७६१[5] । दिण ५६ ।

पास = वास ८४३८० । मा २ । दिण ४ ।

वीर = वास २८९ । मा ८ ।

॥ केवलणाणंतरं गयं ॥

अर्थ :—जन्मके अन्तरकालमेंसे पृथक्-पृथक् पूर्व-पूर्व तीर्थंकरोंके कुमारकाल, राज्यकाल और छद्मस्थकालको कम करके तथा पिछले तीर्थंकरोंके कुमार, राज्य और छद्मस्थकालके प्रमाणको मिला देने पर जिनेन्द्रोंके केवलज्ञानकी उत्पत्तिके अन्तरकालका प्रमाण होता है ॥७१०-७११॥

॥ केवलज्ञानका अन्तर-काल समाप्त हुआ ॥

[तालिका सं० १५ पृष्ठ २०२-२०३ पर देखें]

---

१. द. वस्स ३३९९९९१ मा ३ । २. द. ब. ३३५९५९८० । ३. द. वस्स ३३५९९९१ मा ३ । ४. ब. १२७० । ५. ब. ५१७६१ ।

केवलज्ञानका स्वामी—

(शार्दूलविक्रीडित वृत्तम्)

[1]जे संसार-सरीर-भोग-विसए, णिव्वेय-णिव्वाहिणो[2] ।
जे सम्मत्त-विभूसिदा सविणया, घोरं चरंता तवं ।।
जे सज्झाय-महद्धि-वड्ढिव गदा, झाणं च कम्मंतकं ।
ताणं केवलणाणमुत्तम-पदं, जाए वि किं कोदुकं ? ।।७१२।।

अर्थ :—जो संसार, शरीर और भोग-विषयोंमें निर्वेद धारण करने वाले हैं, सम्यक्त्वसे विभूषित हैं, विनयसे संयुक्त हैं, घोर तपका आचरण करते हैं, स्वाध्यायसे महान् ऋद्धि एवं वृद्धिको प्राप्त हैं और कर्मोंका अन्त करने वाले ध्यानको भी प्राप्त हैं, उनके यदि केवलज्ञानरूप उत्तम पद उत्पन्न होता है तो इसमें क्या आश्चर्य है ? ।।७१२।।

केवलज्ञानोत्पत्तिके पश्चात् शरीरका ऊर्ध्वगमन—

जादे केवलणाणे, परमोरालं जिणाण [3]सव्वाणं ।
गच्छदि [4]उवरिं चावा, पंच-सहस्साणि वसुहादो ।।७१३।।

अर्थ :—केवलज्ञान उत्पन्न होने पर समस्त तीर्थंकरोंका परमौदारिक शरीर पृथिवीसे पाँच हजार धनुष प्रमाण ऊपर चला जाता है ।।७१३।।

इन्द्रादिकों को केवलोत्पत्तिका परिज्ञान—

भुवणत्तयस्स ताहे[5], अइसय[6]-कोडीअ होदि पक्खोहो ।
सोहम्म-पहुदि-इंदाणं[7] आसणाइं पि कंपंति ।।७१४।।

अर्थ :—उस समय तीनों लोकोंमें अतिशय मात्रामें प्रभाव उत्पन्न होता है और सौधर्मादिक इन्द्रोंके आसन कम्पायमान होते हैं ।।७१४।।

---

१ द. जो । २. क. ज. य. उ. णिव्वाहिणे ३. क. य. उ. सव्वाण । ४. द. ब. क. ज. य. उ. उवरे । ५. द. ब. क. ज. य. उ. तासो । ६. ब. क. उ. अइसया । ७. द. ब. क. ज. उ. इंदा आसंणाइं ।

तीर्थंकरों का छद्मस्थ काल, केवलज्ञान उत्पत्ति के मास, पक्ष आदि तथा केवलज्ञानोत्पत्तिका अंतरकाल- **गाथा ६८३-७११**

क्रंम	नाम	छद्मस्थ काल	केवलज्ञान उत्पत्ति के मास	पक्ष	तिथि	समय	नक्षत्र	स्थान	केवलज्ञानोत्पत्ति अन्तराल
१	ऋषभनाथ	१००० वर्ष	फाल्गुन	कृष्ण	एकादशी	पूर्वाह्न	उत्तराषाढ़ा	पुरिमताल नगर	X X X X
२	अजितनाथ	१२ वर्ष	पौष	शुक्ल	चतुर्दशी	अपराह्न	रोहिणी	सहेतुक वन	५० लाख कोटि सागर + ८३९८७१२ वर्ष।
३	सम्भवनाथ	१४ वर्ष	कार्तिक	कृष्ण	पंचमी	अपराह्न	मृग०	सहेतुक वन	३० लाख कोटि सागर + ३ पूर्वांग, २ वर्ष।
४	अभिनन्दन	१८ वर्ष	पौष	शुक्ल	पूर्णिमा	अपराह्न	पुन०	उग्रवन	१० लाख कोटि सागर + ४ पूर्वांग, ४ वर्ष।
५	सुमतिनाथ	२० वर्ष	वैशाख	शुक्ल	दसमी	अपराह्न	मघा	सहेतुक	९ लाख कोटि सागर + ४ पूर्वांग २ वर्ष।
६	पद्मप्रभ	६ मास	वैशाख	शुक्ल	दसमी	अपराह्न	चित्रा	मनोहर	९०००० कोटि सागर + ३ पूर्वांग, ८३९९९८० $\frac{१}{२}$ वर्ष।
७	सुपार्श्वनाथ	९ वर्ष	फाल्गुन	कृष्ण	सप्तमी	अपराह्न	विशाखा	सहेतुक	९००० कोटि सागर + ४ पूर्वांग ८ $\frac{१}{२}$ वर्ष।
८	चन्द्रप्रभ	३ मास	फाल्गुन	कृष्ण	सप्तमी	अपराह्न	अनुराधा	सर्वार्थ	९०० कोटि सागर + ३ पूर्वांग ८३९९९१ $\frac{१}{४}$ वर्ष।
९	पुष्पदन्त	४ वर्ष	कार्तिक	शुक्ल	तृतीया	अपराह्न	मूल	पुष्पवन	९० कोटि सागर + ४ पूर्वांग ३ $\frac{३}{४}$ वर्ष।
१०	शीतलनाथ	३ वर्ष	पौष	कृष्ण	चतुर्दशी	अपराह्न	पू०षा०	सहेतुक	९ कोटि सागर ७४९९९ पूर्व, ८३९९९१ पूर्वांग ८३९९९९९ वर्ष।
११	श्रेयांसनाथ	२ वर्ष	माघ	कृष्ण	अमावस	पूर्वाह्न	श्रवण	मनोहर	९९९९९००० सागर, २४९९९ पूर्व और ७०५५८९९१२७३९९९ वर्ष।
१२	वासुपूज्य	१ वर्ष	माघ	शुक्ल	पूर्णिमा	अपराह्न	विशाखा	मनोहर	५४ सागर ३३०००१ वर्ष।

१३	विमलनाथ	३ वर्ष	पौष	शुक्ल	दसमी	अपराह्न	पू०षा०	सहेतुक	३० सागर ३९००००२ वर्ष।
१४	अनन्तनाथ	२ वर्ष	चैत्र	कृष्ण	अमा०	अपराह्न	रेवती	सहेतुक	९ सागर ७४९९९९ वर्ष।
१५	धर्मनाथ	१ वर्ष	पौष	शुक्ल	पूर्णिमा	अपराह्न	पुष्य	सहेतुक	४ सागर ४९९९९९ वर्ष।
१६	शान्तिनाथ	१६ वर्ष	पौष	शुक्ल	एकादशी	अपराह्न	भरणी	आम्रवन	३ सागर २२५०१५ वर्ष ३/४पल्य।
१७	कुन्थुनाथ	१६ वर्ष	चैत्र	शुक्ल	तृतीया	अपराह्न	कृतिका	सहेतुक	१/२ पल्य १२५० वर्ष।
१८	अरनाथ	१६ वर्ष	कार्तिक	शुक्ल	द्वादशी	अपराह्न	रेवती	सहेतुक	१/४ पल्य–९९९९९८७२५० वर्ष।
१९	मल्लिनाथ	६ दिन	फाल्गुन	कृष्ण	द्वादशी	अपराह्न	अश्विनी	मनोहर	९९९९९६६०८४ वर्ष ६ दिन।
२०	मुनिसुव्रत	११ मास	फाल्गुन	कृष्ण	षष्ठी	पूर्वाह्न	श्रवण	नीलवन	५४४७४०० वर्ष १० मास २४ दिन।
२१	नमिनाथ	९ वर्ष	चैत्र	शुक्ल	तृतीया	अपराह्न	अश्विनी	चित्रवन	६०५००८ वर्ष १ मास।
२२	नेमिनाथ	५६ दिन	आसोज	शुक्ल	प्रतिपदा	पूर्वाह्न	चित्रा	उर्जयन्त पर्वत	५०१७९१ वर्ष १ मास २६ दिन।
२३	पार्श्वनाथ	४ मास	चैत्र	कृष्ण	चतुर्थी	पूर्वाह्न	विशाखा	शक्रपुर	८४३८० वर्ष २ मास ४ दिन।
२४	महावीर	१२ वर्ष	वैशाख	शुकल	दसमी	अपराह्न	हस्त	ऋजुकूला नदी तट	२८९. वर्ष ८ माह बाद वीर प्रभु को केवलज्ञान हुआ।

सवकंपेणं इंदा, संखुग्घोसेण भवणवासि-सुरा ।
पडह-रवेहिं वेंतर, सीह-णिणादेण जोइसिया ॥७१५॥

घंटाए कप्पवासी, णाणुप्पत्ति जिणाण णादूणं ।
पणमंति भत्ति-जुत्ता, गंतूणं सत्त वि कमाओ[1] ॥७१६॥

अर्थ :—आसन कम्पित होनेसे इन्द्र, शङ्खके उद्घोषसे भवनवासी देव, पटहके शब्दोंसे व्यन्तरदेव, सिंहनादसे ज्योतिषी देव और घण्टाके शब्दसे कल्पवासी देव तीर्थङ्करोंके केवलज्ञानकी उत्पत्ति जानकर भक्तियुक्त होते हुए उसी दिशामें सात कदम चलकर प्रणाम करते हैं ॥७१५-७१६॥

अहमिंदा जे देवा, आसण-कंपेण तं वि णादूणं ।
गंतूण तेत्तियं चिय, तत्थ ठिया ते णमंति जिणे[2] ॥७१७॥

अर्थ :—जो अहमिन्द्र देव हैं वे भी आसन कम्पित होनेसे केवलज्ञानकी उत्पत्ति जानकर और उतने ही (७ कदम) आगे जाकर वहां स्थित होते हुए, जिनेन्द्रदेवको नमस्कार करते हैं ॥७१७॥

कुबेर द्वारा समवसरणकी रचना—

ताहे सक्काणाए, जिणाण सयलाण समवसरणाणि ।
विक्किरियाए धणदो, विरएदि विचित्त-रूवेहिं ॥७१८॥

अर्थ :—उस समय सौधर्मेन्द्रकी आज्ञासे कुबेर विक्रिया द्वारा सभी तीर्थङ्करोंके समवसरणों की अद्भुत रूपमें रचना करता है ॥७१८॥

समवसरणका निरूपण करनेकी प्रतिज्ञा—

उवमातीदं ताणं, को सक्कइ वण्णिदुं सयल-रूवं ।
एण्हि[3] लव-मेत्तमहं, साहेमि जहाणुपुव्वीए ॥७१९॥

अर्थ :—उन समवसरणोंके सम्पूर्ण अनुपम स्वरूपका वर्णन करनेमें कौन समर्थ है ? अब मैं (यतिवृषभाचार्य) आनुपूर्वी क्रमसे उनके स्वरूपका अल्प मात्र (बहुत थोड़ा) कथन करता हूँ ॥७१९॥

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. विक्कामो । २. द. ब. क. उ. जिणो । ३. द. इण्हं ।

समवसरणोंके निरूपणमें इकतीस अधिकारोंका निर्देश—

सामण्णभूमि-माणं, माणं सोवाणयाण विण्णासो ।
वीही धूलीसाला, चेत्तप्पासाद-भूमीओ ॥७२०॥

६

णट्टयसाला थंभा, वेदी खादी य वेदि-वल्लि-खिदी ।
साला उववण-वसुहा, णट्टयसाला य वेदि-धय-खोणी ॥७२१॥

११

सालो कप्पमहीओ, णट्टयसाला य वेदि-भवणमही ।
थूहा साला सिरिमंडव[1] य बारस-गणाण विण्णासो ॥७२२॥

९

वेदी पढमं बिदियं, तदियं पीढं च [2]गंधउडि-माणं ।
इदि इगितीसा पुह पुह, अहियारा समवसरणाणं ॥७२३॥

५

अर्थ :—१ सामान्य भूमिका प्रमाण, २ सोपानोंका प्रमाण, ३ विन्यास, ४ वीथी, ५ धूलिशाल, ६ चैत्यप्रासाद-भूमियाँ, ७ नृत्यशाला, ८ मानस्तम्भ, ९ वेदी, १० खातिका, ११ वेदी, १२ लता-भूमि, १३ साल, १४ उपवनभूमि, १५ नृत्यशाला १६ वेदी, १७ ध्वज-क्षोणी, १८ साल, १९ कल्प-भूमि, २० नृत्यशाला, २१ वेदी, २२ भवनमही, २३ स्तूप, २४ साल २५ श्रीमण्डप, २६ बारह सभाओंकी रचना, २७ वेदी, २८ पीठ, २९ द्वितीय पीठ, ३० तृतीय पीठ और ३१ गंधकुटीका प्रमाण, इस प्रकार समवसरणके कथनमें पृथक्-पृथक् ये इकतीस अधिकार हैं ॥७२०-७२३॥

---

१. द. ज. य. सिरिमंदवियहिरसगाणाण, ब. सिरिमंदवि य हरिसिगणाण । उ. सिरिमंदवि य हरिसगणाण, क. सिरिमंडवि य हिरिसगणाण । २. क. उ. गंधवदि, द. ज. य. गंधमदि ।

सामान्य भूमि, उसका प्रमाण एवं अवसर्पिणीकालके समवसरणोंका प्रमाण—

रविमंडल व्व वट्टा, सयला वि अखण्ड-इंदणीलमई ।
सामण्ण-खिदी बारस, जोयण-मेत्तं मि उसहस्स ।।७२४।।

तत्तो बे - कोसूणो, पत्तेयं णेमिणाह - पज्जंतं ।
चउभागेण विहीणा, पासस्स य वड्ढमाणस्स ।।७२५।।

उ जोयण १२ । अजिय $\frac{२३}{२}$ । सं ११ । अहिणं $\frac{२१}{२}$ । सु १० । प $\frac{१९}{२}$ ।
सु ९ । चं $\frac{१७}{२}$ । पु ८ । सी $\frac{१५}{२}$ । से ७ । वा $\frac{१३}{२}$ । वि ६ । अ $\frac{११}{२}$ ।
ध ५ । सं $\frac{९}{२}$ । कु ४ । अ $\frac{७}{२}$ । म ३ । मु $\frac{५}{२}$ । ण २ । णे $\frac{३}{२}$ । पा $\frac{५}{४}$ । वी १ ।

अर्थ :—भगवान् ऋषभदेवके समवसरणकी सम्पूर्ण सामान्य-भूमि सूर्यमण्डलके सदृश गोल, अखण्ड, इन्द्रनीलमणिमयी तथा बारह योजन प्रमाण विस्तारसे युक्त थी । इसके आगे नेमिनाथ पर्यंत प्रत्येक तीर्थङ्करके समवसरणकी सामान्य भूमि दो कोस कम तथा पार्श्वनाथ एवं वर्धमान तीर्थङ्करकी योजनके चतुर्थ भागसे ($\frac{१}{४}$ यो०) कम थी ।।७२४-७२५।।

उत्सर्पिणीकाल सम्बन्धी समवसरणोंका प्रमाण—

अवसप्पिणिए एदं, भणिदं उस्सप्पिणीए विवरीयं ।
बारस-जोयण-मेत्ता, सयल-विदेह-तित्थ-कत्ताणं ।।७२६।।

१ । $\frac{५}{४}$ । $\frac{३}{२}$ । २ । $\frac{५}{२}$ । ३ । $\frac{७}{२}$ । ४ । $\frac{९}{२}$ । ५ । $\frac{११}{२}$ । ६ । $\frac{१३}{२}$ । ७ । $\frac{१५}{२}$ ।
८ । $\frac{१७}{२}$ । ९ । $\frac{१९}{२}$ । १० । $\frac{२१}{२}$ । ११ । $\frac{२३}{२}$ । १२ ।

अर्थ :—यह जो सामान्य भूमिका प्रमाण बतलाया गया है, वह अवसर्पिणी कालका है । उत्सर्पिणी कालमें इससे विपरीत है । विदेह क्षेत्रके सभी तीर्थङ्करोंके समवसरणकी भूमि बारह योजन प्रमाण ही रहती है ।।७२६।।

मतान्तरसे समवसरणका प्रमाण—

इह केई आइरिया, पण्णारस-कम्मभूमि-जादाणं ।
तित्थयराणं बारस-जोयण-परिमाण-मिच्छंति ।।७२७।।

। १२ । पाठान्तरम्

। सामण्ण-भूमी समत्ता[१] ।

---

१. ब. क. ज. य. उ. सम्मत्ता ।

अर्थ :—यहाँ कोई आचार्य पन्द्रह कर्मभूमियोंमें उत्पन्न हुए तीर्थङ्करोंकी समवसरण-भूमिको बारह योजन प्रमाण मानते हैं ॥७२७॥

पाठान्तर

। सामान्य-भूमिका वर्णन समाप्त हुआ ।

सोपानोंके विस्तार आदिका निर्देश—

सुर-णर-तिरियारोहण-सोवाणा चउदिसासु पत्तेयं ।
वीस-सहस्सा गयणे, कणयमया उड्ढ-उड्ढम्मि ॥७२८॥

। सोपान २०००० । ४ ।

अर्थ :—देवों, मनुष्यों और तिर्यञ्चोंके चढ़नेके लिए आकाशमें चारों दिशाओंमेंसे प्रत्येक दिशामें ऊपर-ऊपर स्वर्णमय बीस-बीस हजार सीढ़ियाँ होती हैं ॥७२८॥

उसहादी चउवीसं, जोयण एक्कूण णेमि-पज्जंतं ।
चउवीसं भजिदव्वा, दीहं सोवाण णादव्वा ॥७२९॥

२४/२४	२३/२४	२२/२४	२१/२४	२०/२४	१९/२४	१८/२४	१७/२४	१६/२४	१५/२४	१४/२४	१३/२४	१२/२४	११/२४	१०/२४

९/२४	८/२४	७/२४	६/२४	५/२४	४/२४	३/२४

अर्थ :—ऋषभदेवके (समवसरणमें) सोपानोंकी लम्बाई २४ से भाजित चौबीस योजन है। पश्चात् नेमिनाथ पर्यन्त (भाज्य राशिमेंसे) क्रमशः एक-एक योजन कम होती गई है ॥७२९॥

पासम्मि पंच कोसा, चउ वीरे अट्ठताल-अवहरिदा ।
इगि-हत्थुच्छेहा ते, सोवाणा एक्क-हत्थ-वासा य ॥७३०॥

५/४८	४/४८	उह १	दीह १

॥ सोवाणा[1] समत्ता ॥

---

१. द. ज. ब. सोवाण समत्ता । उ. क. सोवाणसम्मत्ता ।

अर्थ :—भगवान् पार्श्वनाथके समवसरणमें सीढ़ियोंकी लम्बाई अड़तालीससे भाजित पांच कोस और वीरनाथके अड़तालीससे भाजित चार कोस प्रमाण थी। वे सीढ़ियाँ एक हाथ ऊँची और एक ही हाथ विस्तारवालीं थीं ॥७३०॥

। सोपानोंका कथन समाप्त हुआ ।

समवसरणोंका विन्यास—

चउ साला वेदीओ, पंच तदंतेसु अट्ठ भूमीओ ।
सव्वब्भंतरभागे, पत्तेक्कं तिण्णि पीढाणि ॥७३१॥

। साला ४ । वेदी ५ । भूमि ८ । पीढाणि ३ ।

। विण्णासो समत्तो[1] ।

अर्थ :—चार कोट, पाँच वेदियाँ, इनके बीच आठ भूमियाँ और सर्वत्र प्रत्येकके अन्तर-भागमें तीन पीठ होते हैं ॥७३१॥

। विन्यास समाप्त हुआ ।

समवसरणस्थ वीथियोंका निरूपण—

पत्तेक्कं चउसंखा, वीहीओ पढम-पीढ-पज्जंता ।
णिय-णिय-जिण-सोवाणय-दीहत्त-सरिस-वित्थारा ॥७३२॥

२४	२३	२२	२१	२०	१९	१८	१७	१६	१५	१४	१३	१२	११	१०	९
२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४

८	७	६	५	४	[३	५	४]
२४	२४	२४	२४	२४	२४	४८	४८

अर्थ :—प्रथम पीठ पर्यन्त प्रत्येकमें अपने-अपने तीर्थङ्करके समवसरणभूमिस्थ सोपानोंकी लम्बाईके बराबर विस्तार वाली चार वीथियाँ होती हैं ॥७३२॥

---

१. द. ब. क. ज. उ. सम्मत्ता, य. सम्मत्तो ।

एक्केक्काणं दो-द्दो[1], कोसा वीहोण रुंद-परिमाणं ।
कमसो हीणं जाव य, वीर-जिणं के[2] वि इच्छंति ।।७३३।।

च सद्देण णिय-सोवाणाण दीहत्तणं पि ।

पाठान्तरम् ।

अर्थ :—एक-एक वीथीके विस्तारका परिमाण दो-दो कोस है और वीर जिनेन्द्र तक यह क्रमशः हीन होता गया है, ऐसा अन्य कितने ही आचार्य कहते हैं ।।७३३।।

च शब्दसे अपने-अपने सोपानोंकी दीर्घता भी (उसी प्रकार दो-दो कोस है और क्रमशः कम होती गई है, ऐसा जानना चाहिए ।)

पाठान्तर

पंच-सया बावण्णा, कोसाणं वीहियाण दीहत्तं ।
चउवीस-हिदा कमसो, तेवीसूणा य णेमि-पज्जंतं ।।७३४।।

५५२/२४	५२९/२४	५०६/२४	४८३/२४	४६०/२४	४३७/२४	४१४/२४	३९१/२४	३६८/२४
३४५/२४	३२२/२४	२९९/२४	२७६/२४	२५३/२४	२३०/२४	२०७/२४	१८४/२४	१६१/२४
१३८/२४	११५/२४	९२/२४	६९/२४					

अर्थ :—भगवान् ऋषभदेवके समवसरणमें वीथियोंकी लम्बाई चौबीस से भाजित पाँचसौ बावन कोस प्रमाण थी और इसके आगे नेमिनाथ पर्यन्त क्रमशः भाज्यराशि (५५२) में से उत्तरोत्तर तेईस कम करके चौबीसका भाग देने पर जो लब्ध आवे उतनी वीथियोंकी दीर्घता होती है ।।७३४।।

पण्णारसेहि अहियं, कोसाण सयं च पासणाहम्मि ।
देवम्मि वड्ढमाणे, बाणउदी अट्ठताल-हिदा ।।७३५।।

११५/४८	९२/४८

---

१. ब. क. ज. य. दो, दो । २. ब. उ. केचि ।

अर्थ :—भगवान् पार्श्वनाथके समवसरणमें वीथियोंकी दीर्घता अड़तालीससे भाजित एकसौ पन्द्रह कोस और वर्धमान जिनके अड़तालीससे भाजित बानवें कोस प्रमाण थी ॥७३५॥

वीही-दो-पासेसुं[1], णिम्मल- फलिहोवलेहि[1] रइदाओ ।
दो वेदीओ वीही-वीहत्त-समाण-दीहत्ता ॥७३६॥

५५२	५२९	५०६	४८३	४६०	४३७	४१४	३९१	३६८	३४५	३२२
२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४

२९९	२७६	२५३	२३०	२०७	१८४	१६१	१३८	११५	९२	६९
२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४

११५	९२
४८	४८

अर्थ :—वीथियोंके दोनों पार्श्वभागोंमें वीथियोंकी दीर्घताके सदृश दीर्घतासे युक्त और निर्मल स्फटिक-पाषाणसे रचित दो वेदियाँ होती हैं ॥७३६॥

वेदीण रुंद दंडा, अट्ठट्ठहिदाणि[2] छस्सहस्साणि ।
अड्ढाइज्जसएहिं, कमेण हीणाणि णेमि-पज्जंतं ॥७३७॥

६०००	५७५०	५५००	५२५०	५०००	४७५०	४५००	४२५०
८	८	८	८	८	८	८	८

४०००	३७५०	३५००	३२५०	३०००	२७५०	२५००	२२५०
८	८	८	८	८	८	८	८

२०००	१७५०	१५००	१२५०	१०००	७५०
८	८	८	८	८	८

अर्थ :—भगवान् ऋषभदेवके समवसरणमें वेदियोंकी मोटाई छह हजार धनुष प्रमाण थी । पुनः इससे आगे भगवान् नेमिनाथ पर्यन्त क्रमशः उत्तरोत्तर अढ़ाई सौ-अढ़ाई सौ कम होते गये हैं । ये सभी राशियाँ आठ-आठसे भाजित हैं ॥७३७॥

---

१. द. ज. य. पलिहोवबेहि । २. द. ब. रहिदाणि, य. सहिदाणि ।

कोदंड-छस्सयाइं, पणवीस-जुदाइ अट्ठ-विहत्ताइं[1] ।
पासम्मि वड्ढमाणे, पण-घण-दंडाणि वलिदाणि ॥७३८॥

| ६२५/८ | १२५/२ |

अर्थ :—भगवान् पार्श्वनाथके समवसरणमें वेदियोंका विस्तार आठसे भाजित छह सौ पच्चीस धनुष और वर्धमान स्वामीके दो से भाजित पांचके घन (एक सौ पच्चीस) धनुष प्रमाण था ॥७३८॥

अट्ठाणं भूमीणं, मूले बहवा हु तोरणद्दारा[2] ।
सोहिय-वज्ज-कवाडा, सुर-णर-तिरिएहिं संचरिदा ॥७३९॥

अर्थ :—आठों भूमियोंके मूलमें वज्रमय कपाटोंसे सुशोभित और देवों, मनुष्यों एवं तिर्यञ्चोंके सञ्चारसे युक्त बहुतसे तोरणद्वार होते हैं ॥७३९॥

णिय-णिय-जिणेसराणं[3], देहुस्सेहेण चउहि गुणिदेण ।
चरियट्टालय-चंचइयाणं[4] वेदीण उस्सेहो ॥७४०॥

२००० । १८०० । १६०० । १४०० । १२०० । १००० । ८०० । ६०० ।
४०० । ३६० । ३२० । २८० । २४० । २०० । १८० । १६० । १४० । १२० ।
१०० । ८० । ६० । ४० । हत्थाणि[5] ३६ । २८ ।

। वीही समत्ता[6] ।

अर्थ :—मार्गों एवं अट्टालिकाओंसे रमणीक वेदियोंकी ऊँचाई अपने-अपने जिनेन्द्रोंके शरीरके उत्सेधसे चौगुनी होती है ॥७४०॥

। वीथियोंका वर्णन समाप्त हुआ ।

---

१. द. ज. ब. अडवीसहत्ताइं, ब. क. उ. अट्ठहत्थाइं । २. द. ब. ज. य. उ. तोरणद्दारा, क. तोरणं दारा । ३. द. ब. क. ज. य. उ. जिणेसठाणं । ४. द. चेतयाणा, ब. चेतइयाण, क. ज. य. उ. चेच्चईयाण । ५. द. ब. ज. य. उ. पुव्वाणि । ६. ब. सम्मत्ता ।

समवसरणों, सोपानों, वीथियों और वेदियों का प्रमाण

क्रम	अवसर्पिणी काल के सम. का प्रमाण	उत्सर्पिणी काल के सम का प्रमाण	समवसरणों के सोपानों की लम्बाई	समवसरणों के सोपानों की चौड़ाई	समवसरणों के सोपानों की ऊँचाई	वीथियों की चौड़ाई	वीथियों की लम्बाई	वेदियों की लम्बाई	वेदियों की मोटाई	वेदियों की ऊँचाई
१	१२ योजन	१ योजन	१ योजन	१ हाथ	१ हाथ	४ कोस	५ ३/४ योजन	५ ३/४ योजन	७५० धनुष	२००० धनुष
२	११ १/२ योजन	१ १/४ योजन	३ ५/६ कोस	१ हाथ	१ हाथ	३ ५/६ कोस	५ ४१/९६ योजन	५ ४१/९६ योजन	७१८ ३/४ ,,	१८०० धनुष
३	११ योजन	१ १/२ योजन	३ २/३ कोस	१ हाथ	१ हाथ	३ २/३ कोस	५ १३/४८ योजन	५ १३/४८ योजन	६८७ १/२ ,,	१६०० धनुष
४	१० १/२ योजन	२ योजन	३ १/२ कोस	१ हाथ	१ हाथ	३ १/२ कोस	५ १/३२ योजन	५ १/३२ योजन	६५६ १/४ ,,	१४०० धनुष
५	१० योजन	२ १/२ योजन	३ १/३ कोस	१ हाथ	१ हाथ	३ १/३ कोस	४ १९/२४ योजन	४ १९/२४ योजन	६२५ ,,	१२०० धनुष
६	९ १/२ योजन	३ योजन	३ १/६ कोस	१ हाथ	१ हाथ	३ १/६ कोस	४ ५३/९६ योजन	४ ५३/९६ योजन	५९३ ३/४ ,,	१००० धनुष
७	९ योजन	३ १/२ योजन	३ कोस	१ हाथ	१ हाथ	३ कोस	४ ५/१६ योजन	४ ५/१६ योजन	५६२ १/२ ,,	८०० धनुष
८	८ १/२ योजन	४ योजन	२ ५/६ कोस	१ हाथ	१ हाथ	२ ५/६ कोस	४ ७/९६ योजन	४ ७/९६ योजन	५३१ १/४ ,,	६०० धनुष
९	८ योजन	४ १/२ योजन	२ २/३ कोस	१ हाथ	१ हाथ	२ २/३ कोस	३ ५/६ योजन	३ ५/६ योजन	५०० ,,	४०० धनुष
१०	७ १/२ योजन	५ योजन	२ १/२ कोस	१ हाथ	१ हाथ	२ १/२ कोस	३ १९/३२ योजन	३ १९/३२ योजन	४६८ ३/४ ,,	३६० धनुष
११	७ योजन	५ १/२ योजन	२ १/३ कोस	१ हाथ	१ हाथ	२ १/३ कोस	३ १७/४८ योजन	३ १७/४८ योजन	४३७ १/२ ,,	३२० धनुष
१२	६ १/२ योजन	६ योजन	२ १/६ कोस	१ हाथ	१ हाथ	२ १/६ कोस	३ ११/९६ योजन	३ ११/९६ योजन	४०६ १/४ ,,	२८० धनुष

१३	६ योजन	६ $\frac{१}{२}$ योजन	२ कोस	१ हाथ	१ हाथ	२ कोस	२ $\frac{७}{८}$ योजन	२ $\frac{७}{८}$ योजन	३७५ धनुष	२४० धनुष
१४	५ $\frac{१}{२}$ योजन	७ योजन	१ $\frac{५}{६}$ कोस	१ हाथ	१ हाथ	१ $\frac{५}{६}$ कोस	२ $\frac{६१}{९६}$ योजन	२ $\frac{६१}{९६}$ योजन	३४३ $\frac{३}{४}$ धनुष	२०० धनुष
१५	५ योजन	७ $\frac{१}{२}$ योजन	१ $\frac{२}{३}$ कोस	१ हाथ	१ हाथ	१ $\frac{२}{३}$ कोस	२ $\frac{१९}{४८}$ योजन	२ $\frac{१९}{४८}$ योजन	३१२ $\frac{१}{२}$ धनुष	१८० धनुष
१६	४ $\frac{१}{२}$ योजन	८ योजन	१ $\frac{१}{२}$ कोस	१ हाथ	१ हाथ	१ $\frac{१}{२}$ कोस	२ $\frac{५}{३२}$ योजन	२ $\frac{५}{३२}$ योजन	२८१ $\frac{१}{४}$ धनुष	१६० धनुष
१७	४ योजन	८ $\frac{१}{२}$ योजन	१ $\frac{१}{३}$ कोस	१ हाथ	१ हाथ	१ $\frac{१}{३}$ कोस	१ $\frac{११}{१२}$ योजन	१ $\frac{११}{१२}$ योजन	२५० धनुष	१४० धनुष
१८	३ $\frac{१}{२}$ योजन	९ योजन	१ $\frac{१}{६}$ कोस	१ हाथ	१ हाथ	१ $\frac{१}{६}$ कोस	१ $\frac{६५}{९६}$ योजन	१ $\frac{६५}{९६}$ योजन	२१८ $\frac{३}{४}$ धनुष	१२० धनुष
१९	३ योजन	९ $\frac{१}{२}$ योजन	१ कोस	१ हाथ	१ हाथ	१ कोस	१ $\frac{७}{१६}$ योजन	१ $\frac{७}{१६}$ योजन	१८७ $\frac{१}{२}$ धनुष	१०० धनुष
२०	२ $\frac{१}{२}$ योजन	१० योजन	$\frac{५}{६}$ कोस	१ हाथ	१ हाथ	$\frac{५}{६}$ कोस	१ $\frac{१९}{९६}$ योजन	१ $\frac{१९}{९६}$ योजन	१५६ $\frac{१}{४}$ धनुष	८० धनुष
२१	२ योजन	१० $\frac{१}{२}$ योजन	$\frac{२}{३}$ कोस	१ हाथ	१ हाथ	$\frac{२}{३}$ कोस	३ $\frac{५}{६}$ योजन	३ $\frac{५}{६}$ योजन	१२५ धनुष	६० धनुष
२२	१ $\frac{१}{२}$ योजन	११ योजन	$\frac{१}{२}$ कोस	१ हाथ	१ हाथ	$\frac{१}{२}$ कोस	२ $\frac{७}{८}$ योजन	२ $\frac{७}{८}$ योजन	९३ $\frac{३}{४}$ धनुष	४० धनुष
२३	१ $\frac{१}{४}$ योजन	११ $\frac{१}{२}$ योजन	$\frac{५}{१२}$ कोस	१ हाथ	१ हाथ	$\frac{५}{१२}$ कोस	२ $\frac{१९}{४८}$ योजन	२ $\frac{१९}{४८}$ योजन	७८ $\frac{१}{८}$ धनुष	३६ धनुष
२४	१ योजन	१२ योजन	$\frac{१}{३}$ कोस	१ हाथ	१ हाथ	$\frac{१}{३}$ कोस	१ $\frac{११}{१२}$ योजन	१ $\frac{११}{१२}$ योजन	६२ $\frac{१}{२}$ धनुष	२८ धनुष
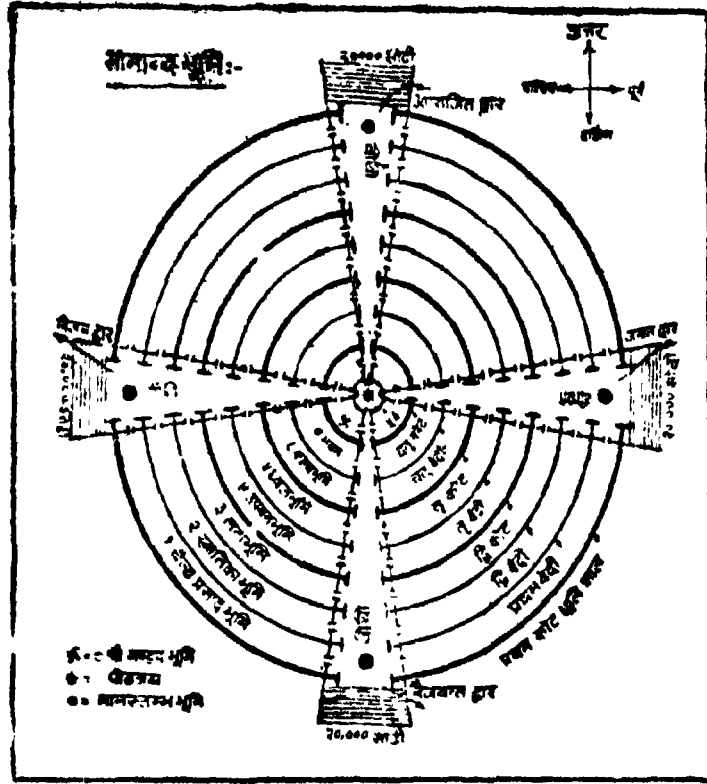
समवसरणका चित्र

धूलिमालोंका सम्पूर्ण वर्णन—

सव्वाणं बाहिरए, धूलीसाला [1]विसाल-समवट्टा ।
विप्फुरिय-पंच-वण्णा, मणुसुत्तर-पव्वदायारा ॥७४१॥

चरियट्टालय-रम्मा, पयल-पडाया-कलाव-रमणिज्जा ।
तिहुवण-विम्हय-जणणी, चउहि दुवारेहि परियरिया ॥७४२॥

---

१ ब. य. उ. विसाला ।

अर्थ :—सबके बाहर पाँच-वर्णोंसे स्फुरायमान, विशाल एवं समानगोल, मानुषोत्तर पर्वतके आकार (सदृश) धूलिसाल नामक कोट होता है; जो मार्ग एवं अट्टालिकाओंसे रमणीय, उज्ज्वल पताकाओंके समूहसे सुन्दर, तीनों लोकोंको विस्मित करने वाला और चार द्वारोंसे युक्त होता है ।।७४१-७४२।।

विजयं ति [1]पुव्वदारं, दक्खिण-दारं च वइजयंतेत्ति ।
पच्छिम-उत्तर-दारा, जयंत-अपराजिदा णामा ।।७४३।।

अर्थ :—इनमें पूर्व-द्वारका नाम विजय, दक्षिण द्वारका वैजयन्त, पश्चिम द्वारका जयन्त और उत्तर-द्वारका नाम अपराजित होता है ।।७४३।।

एदे गोउर-दारा, तवणीयमया ति-भूमि-भूसणया ।
सुर-णर-मिहुण-सणाहा, तोरण-णच्चंत-मणिमाला ।।७४४।।

अर्थ :—ये चारों गोपुर-द्वार सुवर्णसे निर्मित, तीन भूमियोंसे विभूषित, देव एवं मनुष्योंके मिथुनों (जोड़ों) से संयुक्त तथा तोरणों पर नाचती (लटकती) हुई मणि-मालाओंसे शोभायमान होते हैं ।।७४४।।

एक्केक्क-गोउराणं, बाहिर-मज्झम्मि दारदो पासे ।
बाउलया विस्थिण्णा, मंगल-णिहि-धूव-घड-भरिदा ।।७४५।।

अर्थ :--प्रत्येक गोपुरके बाहर और मध्यभागमें द्वारके पार्श्वभागोंमें मङ्गल-द्रव्य, निधि एवं धूप-घटसे युक्त विस्तीर्ण पुतलियाँ होती हैं ।।७४५।।

भिंगार-कलस-दप्पण-चामर-धय-वियण-छत्त-सुपइट्ठा ।
इय अट्ठ मंगलाइं, अट्ठुत्तर-सय-जुदाणि एक्केक्कं ।।७४६।।

अर्थ :—झारी, कलश, दर्पण, चामर, ध्वजा, व्यजन, छत्र एवं सुप्रतिष्ठ, ये आठ मङ्गल-द्रव्य हैं । इनमेंसे प्रत्येक एक सौ आठ होते हैं ।।७४६।।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. पुव्वदारा ।

काल-महकाल-पंडू, माणव-संखा य पउम-णइसप्पा ।
पिंगल-णाणा-रयणा, अट्ठुत्तर-सय-जुवाणि णिहि एदे ॥७४७॥

अर्थ :—काल, महाकाल, पाण्डु, माणवक, शङ्ख, पद्म, नैसर्प, पिंगल और नानारत्न ये नव निधियाँ प्रत्येक एक सौ आठ (एक सौ आठ) होती हैं ॥७४७॥

उडु-जोग्ग-दव्व-भायण-धण्णाउह-तूर-वत्थ-हम्माणि ।
आभरण-सयल-रयणा[1], देंति हु कालादिया कमसो ॥७४८॥

अर्थ :—उक्त कालादिक निधियाँ ऋतुके योग्य क्रमशः द्रव्य (मालादिक), भाजन, धान्य, आयुध, वादित्र, वस्त्र, प्रासाद, आभरण एवं सम्पूर्ण रत्न देती हैं ॥७४८॥

गोसीस-मलय-चंदण-कालागरु-पहुदि-धूव-गंधड्ढा ।
एक्केक्के [2]भूवलये, एक्केक्को होदि धूव-घडो ॥७४९॥

अर्थ :—एक-एक भूवलयके ऊपर गोशीर्ष, मलय-चन्दन और कालागरु आदिक धूपोंकी गन्धसे व्याप्त एक-एक धूप-घट होता है ॥७४९॥

धूलीसाला-गोउर-बाहिरए मयर-तोरण-सयाणि ।
अब्भंतरम्मि भागे, पत्तेयं रयण-तोरण-सयाणि ॥७५०॥

अर्थ :—धूलिसाल सम्बन्धी गोपुरोंके प्रत्येक बाह्य भागमें सैकड़ों मकर-तोरण और अभ्यन्तर भागमें सैकड़ों रत्नमय तोरण होते हैं ॥७५०॥

गोउर-दुवार-मज्झे, दोसु वि पासेसु रयण-णिम्मविया ।
एक्केक्क-णट्ट-साला, णच्चंत सुरंगणा-णिवहा ॥७५१॥

अर्थ :—गोपुर-द्वारोंके बीच दोनों पार्श्वभागोंमें रत्नोंसे निर्मित और नृत्य करती हुई देवाङ्गनाओंके समूहसे युक्त एक-एक नाटयशाला होती है ॥७५१॥

---

१. द. रयणादी दंतो, ज. रयणादी देंती, य. रणादी देंती । २. क. उ. बाउलाए, द. ज. य. बाउलाए ।

धूलीसाला-गोउर-दारेसुं चउसु होंति पत्तेक्कं ।
वर-रयण-दंड-हत्था, जोइसिया दार-रक्खणया ।।७५२।।

अर्थ :—धूलिसालके चारों गोपुरोंमें से प्रत्येकमें, हाथमें उत्तम रत्नदण्डको लिए हुए ज्योतिष्क देव द्वार-रक्षक होते हैं ।।७५२।।

चउ-गोउर-दारेसुं, बाहिर-अब्भंतरम्मि भागम्मि ।
सुह-सुंदर-संचारा, सोवाणा विविह-रयणमया ।।७५३।।

अर्थ :—चारों गोपुरद्वारोंके बाह्य और अभ्यन्तर भागमें विविध प्रकारके रत्नोंसे निर्मित, सुख-पूर्वक सुन्दर संचार योग्य सीढ़ियाँ होती हैं ।।७५३।।

धूलीसालाण पुढं, णिय-जिण-देहोदय-प्पमाणेणं ।
चउ-गुणिदेणं उदओ, सव्वेसु वि समवसरणेसुं ।।७५४।।

२००० । १८०० । १६०० । १४०० । १२०० । १००० । ८०० । ६०० । ४०० ।

३६० । ३२० । २८० । २४० । २०० । १८० । १६० । १४० । १२० । १०० ।

८० । ६० । ४० । हत्थाणि ३६ । २८ ।

अर्थ :—सब समवसरणोंमें धूलिसालोंकी ऊँचाई अपने-अपने तीर्थंकरके शरीरके उत्सेध प्रमाणसे चौगुनी होती है ।।७५४।।

तोरण-उदओ अहिओ, धूलीसालाण उदय-संखादो ।
तत्तो य सादिरेगो, गोउर-दाराण सयलाणं ।।७५५।।

अर्थ :—धूलिसालोंकी ऊँचाईकी संख्यासे तोरणोंकी ऊँचाई अधिक होती है और इनसे भी अधिक समस्त गोपुरोंकी ऊँचाई होती है ।।७५५।।

चउवीसं चेय कोसा, धूलीसालाण मूल-वित्थारा ।
बारस-भगेण हिदा, णेमि-जिणंतं कमेण एक्कूणा ।।७५६।।

$\frac{२४}{१४४}$	$\frac{२३}{१४४}$	$\frac{२२}{१४४}$	$\frac{२१}{१४४}$	$\frac{२०}{१४४}$	$\frac{१९}{१४४}$	$\frac{१८}{१४४}$	$\frac{१७}{१४४}$	$\frac{१६}{१४४}$	$\frac{१५}{१४४}$	$\frac{१४}{१४४}$	$\frac{१३}{१४४}$
$\frac{१२}{१४४}$	$\frac{११}{१४४}$	$\frac{१०}{१४४}$	$\frac{९}{१४४}$	$\frac{८}{१४४}$	$\frac{७}{१४४}$	$\frac{६}{१४४}$	$\frac{५}{१४४}$	$\frac{४}{१४४}$	$\frac{३}{१४४}$		

अर्थ :—भगवान् ऋषभदेवके समवसरणमें धूलिसालका मूल-विस्तार बारहके वर्गसे भाजित चौबीस ही कोस प्रमाण था। फिर इसके आगे भगवान् नेमिनाथ पर्यन्त (भाज्य राशिमें से) क्रमशः एक-एक कम होता गया है ॥७५६॥

अडसीदि-दोसएहिं, भजिदा पासम्मि पंच कोसा य ।
एक्को य वड्ढमाणे, [1]कोसो बाहत्तरी-हरिदो ॥७५७॥

$\frac{५}{२८८}$	$\frac{१}{७२}$

अर्थ :—भगवान् पार्श्वनाथके समवसरणमें धूलिसालका मूल विस्तार दो सौ अठासीसे भाजित पाँच कोस और वर्धमान भगवान्‌के समवसरणमें उसका विस्तार बहत्तरसे भाजित एक कोस प्रमाण था ॥७५७॥

मज्झिम-उवरिम-भागे, धूलीसालाण रुंद-उवएसो ।
काल-वसेण पणट्ठो, [2]सरितीरुप्पण्ण-विडवो व्व ॥७५८॥

। धूलीसाला समत्ता ।

अर्थ :—धूलिसालोंके मध्य और उपरिम भागके विस्तारका उपदेश कालवशसे नदी-तीरोत्पन्न वृक्षके सदृश नष्ट हो गया है ॥७५८॥

। धूलिसालोंका वर्णन समाप्त हुआ ।

---

१. द ज. य. कोसा।   २. द. ब. क. य. उ. सरितीपप्पण्णविदम्रो व्व ।
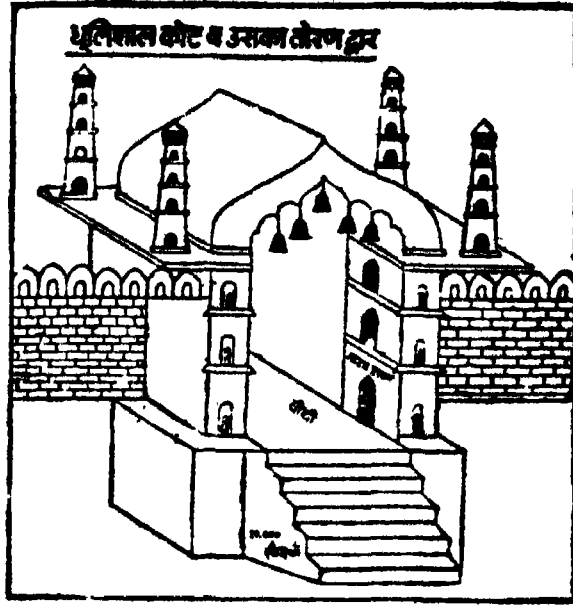
धूलिसालकोट एवं उसका तोरणद्वार

चैत्यप्रासाद भूमियोंका निरूपण—

सालब्भंतरभागे, चेत्तप्पासाद-णाम-भूमीओ ।
'वेढंति सयल-खेत्तं[2], जिणपुर-पासाद-सहिदाओ[3] ॥७५९॥

अर्थ :—उन धूलिसालोंके अभ्यन्तर भागमें जिनपुरसम्बन्धी प्रासादोंसे युक्त चैत्य-प्रासाद नामक भूमियाँ सकलक्षेत्रको वेष्टित करती हैं ॥७५९॥

एक्केक्कं जिण-भवणं, पासादा पंच पंच अंतरिदा ।
विविह-वण-संड-मंडण-वर-वावी-कूव-रमणिज्जा ॥७६०॥

अर्थ :—एक-एक जिनभवनके अन्तरालसे पाँच-पाँच प्रासाद हैं, जो विविध वन-समूहोंसे मण्डित और उत्तम वापिकाओं एवं कुओंसे रमणीय होते हैं ॥७६०॥

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. वेढंति । २. ब. खेत्तं । ३. द. ब. ज. य. उ. सरिदाओ, क. सरिदाओ ।

जिणपुर-पासावाणं, उस्सेहो णिय-जिणिंद-उवएण ।
बारस-हदेण सरिसो, णट्ठो दोहत्त-वास-उवदेसो ॥७६१॥

६००० । ५४०० । ४८०० । ४२०० । ३६०० । ३००० । २४०० । १८०० ।

१२०० । १०८० । ९६० । ८४० । ७२० । ६०० । ५४० । ४८० । ४२० ।

३६० । ३०० । २४० । १८० । १२० । २७ । २१ ।

अर्थ :—जिनपुर और प्रासादोंकी ऊँचाई अपने-अपने तीर्थङ्करकी ऊँचाईसे बारह-गुणी होती है। इनकी लम्बाई और विस्तारके प्रमाणका उपदेश नष्ट हो गया है ॥७६१॥

दु-सय-चउसट्ठि-जोयणमुसहे [1]एक्कारसोणमणुकमसो ।
चउवीस-वग्ग-भजिदं, णेमि-जिणं जाव पढम-खिदि-रुंदं ॥७६२॥

२६४/५७६ | २५३/५७६ | २४२/५७६ | २३१/५७६ | २२०/५७६ | २०९/५७६ | १९८/५७६ | १८७/५७६ | १७६/५७६ | १६५/५७६ | १५४/५७६ |

१४३/५७६ | १३२/५७६ | १२१/५७६ | ११०/५७६ | ९९/५७६ | ८८/५७६ | ७७/५७६ | ६६/५७६ | ५५/५७६ | ४४/५७६ | ३३/५७६ |

अर्थ :—भगवान् ऋषभदेवके समवसरणमें प्रथम पृथिवीका विस्तार चौबीसके वर्ग (५७६) से भाजित दो सौ चौंसठ योजन था। फिर इससे आगे नेमिनाथ तीर्थङ्कर पर्यन्त भाज्य राशिमेंसे क्रमशः उत्तरोत्तर ग्यारह-ग्यारह कम होते गये हैं ॥७६२॥

पणवण्णासा कोसा, पास-जिणे अट्ठसीदि-दु-सय-हिदा ।
बावोस [2]वीरणाहे, बारस-वग्गेहि पविभत्ता ॥७६३॥

को | ५५/२८८ | ४४/२८८ |

। चेदिय-पासाद-भूमी सम्मत्ता ।

---

१. द. ज. य. एक्कारसाणि मणु, ब. क. उ. एक्कारसोण मणु। २. द. वीरणाहो।

अर्थ :– पार्श्वनाथ तीर्थङ्करके समवसरणमें प्रथम पृथिवीका विस्तार दो सौ अठासीसे भाजित पचपन कोस और वीरनाथ भगवान्‌के बारहके वर्ग (१४४) से भाजित बाईस कोस प्रमाण था ।।७६३।।

। चैत्य-प्रासाद-भूमिका कथन समाप्त हुआ ।

नाट्यशालाओंका निरूपण—

आदिम-खिदीसु पुह-पुह, वीहीणं दोसु दोसु पासेसु ।
दोह्णो णट्टय-साला, वर-कंचण-रयण-णिम्मिविया ।।७६४।।

। २ । २ ।

अर्थ :—प्रथम पृथिवियोंमें पृथक्-पृथक् वीथियोंके दोनों पार्श्वभागोंमें उत्तम स्वर्ण एवं रत्नोंसे निर्मित दो-दो नाट्यशालायें होती हैं ।।७६४।।

णट्टय-सालाण पुढं, उस्सेहो णिय-जिणिंद-उदएहिं ।
बारस-हदेहि सरिसो, णट्ठा दीहत्त-वास-उवएसा ।।७६५।।

दण्डा ६००० । ५४०० । ४८०० । ४२०० । ३६०० । ३००० । २४०० । १८०० । १२०० । १०८० । ९६० । ८४० । ७२० । ६०० । ५४० । ४८० । ४२० । ३६० । ३०० । २४० । १८० । णेमि १२० । पास २७ । वीर २१ ।

अर्थ :– नाट्यशालाओंकी ऊँचाई बारहसे गुणित अपने-अपने तीर्थंकरोंके शरीरकी ऊँचाईके सदृश होती है, तथा इनकी लम्बाई एवं विस्तारका उपदेश नष्ट हो गया है ।।७६५।।

एक्केक्काए णट्टय-सालाए चउ हवट्ठ रंगाणि ।
[1]एक्केक्कस्सिं रंगे, भावण-कण्णाउ बत्तीसा ।।७६६।।

गायंति जिणिंदाणं, विजयं विविहत्थ-दिव्व-गीदेहिं ।
अभिणइय णच्चणीओ, खिवंति कुसुमंजलि ताओ ।।७६७।।

---

१. द. ज. एक्केक्कसिं, ब. क. य. उ. एक्केक्कसिं ।

अर्थ :—प्रत्येक नाटयशालामें चारसे गुणित आठ (३२) रङ्गभूमियाँ और प्रत्येक रङ्गभूमिमें बत्तीस भवनवासी-कन्यायें अभिनयपूर्वक नृत्य करती हुई नानाप्रकारके अर्थोंसे युक्त दिव्य गीतों द्वारा तीर्थङ्करोंकी विजयके गीत गाती हैं और पुष्पाञ्जलियोंका क्षेपण करती हैं ।।७६६-७६७।।

[1]एक्केक्काए णट्टय-सालाए दोण्णि दोण्णि धूव-घडा ।
णाणा-सुगंधि-धूवं, पसरेमं वासिय-दिगंता ।।७६८।।

। णट्टयसाला समत्ता ।

अर्थ :—प्रत्येक नाटयशालामें नानाप्रकारकी सुगन्धित धूपोंसे दिङ्-मण्डलको सुवासित करने वाले दो-दो धूप घट रहते हैं ।।७६८।।

नाटयशालाओंका वर्णन समाप्त हुआ ।

[तालिका नं० १७ पृष्ठ २२३ पर देखें]

---

१. द. क. ध. उ. एक्केक्काणं, ज. एक्केक्काणि ।

तालिका : १७

धूलिसाल-प्रासाद-प्रथम-पृथिवी एवं नाटयशालाओंका प्रमाण—					
नं०	धूलिसालोंकी ऊँचाई गाथा ७५४	धूलिसालोंका मूल विस्तार गाथा ७५६	जिनपुर एवं प्रासादोंकी ऊँचाई गाथा ७६१	प्रथम पृथिवीका विस्तार गाथा ७६२	नाटयशालाओंकी ऊँचाई गाथा ७६५
१	२००० धनुष	३३३ १/३ धनुष	६००० धनुष	१ ५/६ कोस	६००० धनुष
२	१८०० „	३१९ ४/९ „	५४०० „	१ १०९/१४४ „	५४०० „
३	१६०० „	३०५ ५/९ „	४८०० „	१ ४९/७२ „	४८०० „
४	१४०० „	२९१ २/३ „	४२०० „	१ ८७/१४४ „	४२०० „
५	१२०० „	२७७ ७/९ „	३६०० „	१ १९/३६ „	३६०० „
६	१००० „	२६३ ८/९ „	३००० „	१ ६५/१४४ „	३००० „
७	८०० „	२५० „	२४०० „	१ ३/८ „	२४०० „
८	६०० „	२३६ १/९ „	१८०० „	१ ४३/१४४ „	१८०० „
९	४०० „	२२२ २/९ „	१२०० „	१ २/९ „	१२०० „
१०	३६० „	२०८ १/३ „	१०८० „	१ ७/४८ „	१०८० „
११	३२० „	१९४ ४/९ „	९६० „	१ ५/७२ „	९६० „
१२	२८० „	१८० ५/९ „	८४० „	१९८६ १/९ धनुष	८४० „
१३	२४० „	१६६ २/३ „	७२० „	१८३३ १/३ „	७२० „
१४	२०० „	१५२ ७/९ „	६०० „	१६८० ५/९ „	६०० „
१५	१८० „	१३८ ८/९ „	५४० „	१५२७ ७/९ „	५४० „
१६	१६० „	१२५ „	४८० „	१३७५ „	४८० „
१७	१४० „	१११ १/९ „	४२० „	१२२२ २/९ „	४२० „
१८	१२० „	९७ २/९ „	३६० „	१०६९ ४/९ „	३६० „
१९	१०० „	८३ १/३ „	३०० „	९१६ २/३ „	३०० „
२०	८० „	६९ ४/९ „	२४० „	७६३ ८/९ „	२४० „
२१	६० „	५५ ५/९ „	१८० „	६११ १/९ „	१८० „
२२	४० „	४१ २/३ „	१२० „	४५८ १/३ „	१२० „
२३	३६ हाथ	३४ १३/१८ „	२७ „	३८१ १७/१८ „	२७ „
२४	२८ हाथ	२७ ७/९ „	२१ „	३०५ ५/९ „	२१ „

मानस्तम्भ के

एक दिशात्मक कोट, वेदी, भूमियों एवं नाट्यशालाओं आदिका चित्रण—
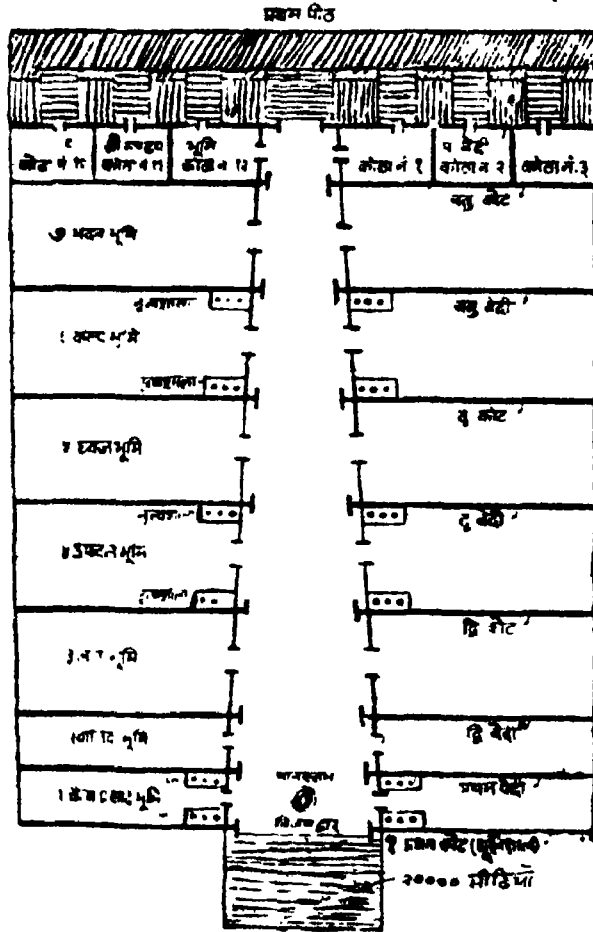
मानस्तम्भोंका निरूपण—

णिय-णिय-पढम-खिदीए, बहुमज्झे चउसु वीहि-मज्झम्मि ।
माणत्थंभ-खिदीए, सम-वट्टा विविह-वण्णण-सहाओ ।।७६९।।

अर्थ :—अपनी-अपनी प्रथम पृथिवीके बहुमध्यभागमें चारों वीथियोंके बीचोंबीच समान गोल और विविध वर्णन-योग्य मानस्तम्भ भूमियाँ होती हैं ।।७६९।।

अब्भंतरम्मि ताणं, चउ-गोउर-दार-सुंदरा साला।
णच्चंत-धय-वडाया[1] मणि-किरणुज्जोइय-दिगंता[2] ॥७७०॥

अर्थ :—उनके (मानस्तम्भ-भूमियोंके) अभ्यन्तर भागमें चार गोपुरद्वारोंसे सुन्दर, नाचती हुई ध्वज-पताकाओं सहित और मणियोंकी किरणोंसे दिङ्-मण्डलको प्रकाशित करनेवाले कोट होते हैं ॥७७०॥

ताणं पि मज्झभागे, वण-संडा विविह-दिव्व-तरु-भरिया[3]।
कल-कोकिल-कल-कलया, सुर-किण्णर-मिहुण[4]-संछण्णा ॥७७१॥

अर्थ :—उनके भी मध्य भागमें विविध दिव्य-वृक्षोंसे संयुक्त, सुन्दर कोयलोंके कल-कल शब्दोंसे मुखरित और सुर एवं किन्नर-युगलोंसे संकीर्ण वन-खण्ड हैं ॥७७१॥

तम्मज्झे रम्माइं, पुव्वादि-दिसासु लोयपालाणं।
सोम-जम-वरुण-धणदा, होंति महा-कीडण-पुराइं ॥७७२॥

अर्थ :—उनके मध्यमें पूर्वादिक दिशाओंमें क्रमशः सोम, यम, वरुण और कुबेर, इन लोक-पालोंके अत्यन्त रमणीय महाक्रीड़ा नगर होते हैं ॥७७२॥

ताणब्भंतर-भागे, साला चउ-गोउरादि-परियरिया।
तत्तो वण-वावीओ, कलिंदवरमाणण-सहाओ ॥७७३॥

अर्थ :—उनके अभ्यन्तरभागमें चार गोपुरादिसे वेष्टित कोट और इसके आगे वन-वापिकाएँ होती हैं, जो प्रफुल्लित नीलकमलोंसे शोभायमान होती हैं ॥७७३॥

ताणं मज्झे णिय-णिय-दिसासु दिव्वाणि कीडण-पुराइं।
हुदवह-णेरिदि-मारुद-ईसाणाणं च लोयपालाणं ॥७७४॥

अर्थ :—उनके बीचमें लोकपालोंके अपनी-अपनी दिशामें तथा आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य और ईशान, इन विदिशाओंमें भी दिव्य क्रीडन-पुर होते हैं ॥७७४॥

---

१. द. क. ज. य. उ. वडाया। २. द. क. ज. य. उ. अधियतो, ब. अदियते। ३. द. चरिया, ज. वरिया। ४. द. ब. क. ज. य. उ. मिहुणाणि।

ताणब्भंतरभागे, सालाओ वर-विसाल-दाराओ ।
तम्मज्झे पीढाणि, एक्केक्के[1] समवसरणम्मि ॥७७५॥

अर्थ :—उनके अभ्यन्तर भागमें उत्तम विशाल द्वारोंसे युक्त कोट होते हैं और फिर इनके बीचमें पीठ होते हैं। ऐसी संरचना प्रत्येक समवसरणमें होती है ॥७७५॥

वेरुलियमयं पढमं, पीढं तस्सोवरिम्मि कणयमयं ।
तुइयं तस्स य उवरिं, तदियं बहु-वण्ण-रयणमयं ॥७७६॥

अर्थ :—इनमेंसे पहला पीठ वैडूर्यमणिमय, उसके ऊपर दूसरा पीठ सुवर्णमय और उसके भी ऊपर तीसरा पीठ बहुत वर्णके रत्नोंसे निर्मित होता है ॥७७६॥

आदिम-पीढुच्छेहो, दंडा चउवीस रूव-तिय-हरिदा ।
उसह-जिणिंदे कमसो, रूवूणा णेमि-पज्जंतं ॥७७७॥

२४/३	२३/३	२२/३	२१/३	२०/३	१९/३	१८/३	१७/३	१६/३	१५/३	१४/३	१३/३	१२/३	११/३	१०/३

९/३	८/३	७/३	६/३	५/३	४/३	३/३

अर्थ :—भगवान् ऋषभदेवके समवसरणमें प्रथम पीठकी ऊँचाई तीनसे भाजित चौबीस धनुष प्रमाण थी। इसके आगे नेमिनाथ पर्यन्त क्रमशः उत्तरोत्तर भाज्य-राशिमेंसे एक-एक अंक कम होता गया है ॥७७७॥

पासे पंच छहिदा, तिदय-हिदा दोण्णि वड्ढमाण-जिणे ।
सेसाण अद्धमाणा, आदिम-पीढस्स उदयाओ ॥७७८॥

५/६	२/३

१. ब. क. ज. य. उ. एक्केक्कं ।

अर्थ :—इसके आगे पार्श्वनाथके समवसरणमें प्रथम पीठकी ऊँचाई छहसे भाजित पाँच और वर्धमान जिनके तीनसे भाजित दो धनुष प्रमाण थी। शेष दो पीठोंकी ऊँचाई प्रथम पीठकी ऊँचाईसे आधी थी ॥७७८॥

बिदिय-पीढाणं उदय-दंडा—

२४/६	२३/६	२२/६	२१/६	२०/६	१९/६	१८/६	१७/६	१६/६	१५/६	१४/६	१३/६	१२/६	११/६	१०/६	९/६	८/६
७/६	६/६	५/६	४/६	३/६	५/१२	२/६										

तदिय-पीढाणं उदय-दंडा—

२४/६	२३/६	२२/६	२१/६	२०/६	१९/६	१८/६	१७/६	१६/६	१५/६	१४/६	१३/६	१२/६	११/६	१०/६	९/६	८/६
७/६	६/६	५/६	४/६	३/६	५/१२	२/६										

पीढत्तयस्स कमसो, सोवाणं चउदिसासु पत्तेक्कं।
अट्ठ चउ चउ पमाणं, जिण-आणिद-दीह-वित्थारा ॥७७९॥

अर्थ :—चारों दिशाओंमें से प्रत्येक दिशामें इन तीनों पीठोंकी सीढ़ियोंका प्रमाण क्रमशः आठ, चार और चार है। इन सीढ़ियोंकी लम्बाई और विस्तार जिनेन्द्र ही जानते हैं। अर्थात् उसका उपदेश नष्ट हो गया है ॥७७९॥

पढम-पीढाणं—

८।८।८।८।८।८।८।८।८।८।८।८।८।८।८।

८।८।८।८।८।८।८।८।८।

बिदिय-पीढाणं सोवाणं—

४।४।४।४।४।४।४।४।४।४।४।४।४।४।४।४।४।

४।४।४।४।४।४।४।

[तदिय-पीढाणं सोवाणं]—

४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ ।

४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ ।

नोट :—तीनों पीठोंकी सीढ़ियोंका प्रमाण तालिकामें दर्शाया गया है ।

पढमाणं बिदियाणं, वित्थारं माणथंभ-पीढाणं ।
जाणेदि जिणेंदो त्ति य, उच्छिण्णो अम्ह उवएसो ।।७८०।।

अर्थ :—प्रथम एवं द्वितीय मानस्तम्भ-पीठोंका विस्तार जिनेन्द्र ही जानते हैं । हमारे लिए तो इसका उपदेश अब नष्ट हो चुका है ।।७८०।।

दंडा तिण्णि सहस्सा, तिय-हरिदा तदिय-पीढ-वित्थारो ।
उसह-जिणिदे कमसो, पण-घण-हीणा य जाव णेमि-जिणं ।।७८१।।

३०००	२८७५	२७५०	२६२५	२५००	२३७५	२२५०	२१२५
३	३	३	३	३	३	३	३
२०००	१८७५	१७५०	१६२५	१५००	१३७५	१२५०	११२५
३	३	३	३	३	३	३	३
१०००	८७५	७५०	६२५	५००	३७५		
३	३	३	३	३	३		

अर्थ :—ऋषभदेवके समवसरणमें तृतीय पीठका विस्तार तीनसे भाजित तीन हजार धनुष प्रमाण था । इसके आगे नेमिजिनेन्द्र पर्यन्त क्रमशः उत्तरोत्तर पाँचका घन (१२५) भाज्यराशिमेंसे कम होता गया है ।।७८१।।

पणवीसाधिय-छस्सय-धणूणि पासम्मि छक्क-भजिदाणि ।
दंडाणं पंच-सया, छक्क-हिदा वीरणाहस्स ।।७८२।।

६२५	५००
६	६

अर्थ :—भगवान् पार्श्वनाथके समवसरणमें तृतीय पीठका विस्तार छहसे भाजित छह सौ पच्चीस धनुष और वीरनाथके छहसे भाजित पाँचसौ धनुष प्रमाण था ।।७८२।।

तालिका : १८

पीठोंका विस्तार आदि एवं सीढ़ियोंका प्रमाण— गाथा ७७७–७८२

क्रमांक	समवसरण स्थित प्रथम पीठोंकी ऊँचाई गा. ७७७	द्वितीय पीठोंकी ऊँचाई	तृतीय पीठोंकी ऊँचाई	प्रथम पीठों की सीढ़ियों का प्रमाण	द्वितीय पीठों की सीढ़ियों का प्रमाण	तृतीय पीठों की सीढ़ियों का प्रमाण	तृतीय पीठका विस्तार गा. ७८१-८२
				सीढ़ियाँ			
१	८ धनुष	४ धनुष	४ धनुष	८ हैं	४ हैं	४ हैं	१००० धनुप
२	७$\frac{२}{३}$,,	३$\frac{५}{६}$,,	३$\frac{५}{६}$,,	८ ,,	४ ,,	४ ,,	९५८$\frac{१}{३}$,,
३	७$\frac{१}{३}$,,	३$\frac{२}{३}$,,	३$\frac{२}{३}$,,	८ ,,	४ ,,	४ ,,	९१६$\frac{२}{३}$,,
४	७ ,,	३$\frac{१}{२}$,,	३$\frac{१}{२}$,,	८ ,,	४ ,,	४ ,,	८७५ ,,
५	६$\frac{२}{३}$,,	३$\frac{१}{३}$,,	३$\frac{१}{३}$,,	८ ,,	४ ,,	४ ,,	८३३$\frac{१}{३}$,,
६	६$\frac{१}{३}$,,	३$\frac{१}{६}$,,	३$\frac{१}{६}$,,	८ ,,	४ ,,	४ ,,	७९१$\frac{२}{३}$,,
७	६ ,,	३ ,,	३ ,,	८ ,,	४ ,,	४ ,,	७५० ,,
८	५$\frac{२}{३}$,,	२$\frac{५}{६}$,,	२$\frac{५}{६}$,,	८ ,,	४ ,,	४ ,,	७०८$\frac{१}{३}$,,
९	५$\frac{१}{३}$,,	२$\frac{२}{३}$,,	२$\frac{२}{३}$,,	८ ,,	४ ,,	४ ,,	६६६$\frac{२}{३}$,,
१०	५ ,,	२$\frac{१}{२}$,,	२$\frac{१}{२}$,,	८ ,,	४ ,,	४ ,,	६२५ ,,
११	४$\frac{२}{३}$,,	२$\frac{१}{३}$,,	२$\frac{१}{३}$,,	८ ,,	४ ,,	४ ,,	५८३$\frac{१}{३}$,,
१२	४$\frac{१}{३}$,,	२$\frac{१}{६}$,,	२$\frac{१}{६}$,,	८ ,,	४ ,,	४ ,,	५४१$\frac{२}{३}$,,
१३	४ ,,	२ ,,	२ ,,	८ ,,	४ ,,	४ ,,	५०० ,,
१४	३$\frac{२}{३}$,,	१$\frac{५}{६}$,,	१$\frac{५}{६}$,,	८ ,,	४ ,,	४ ,,	४५८$\frac{१}{३}$,,
१५	३$\frac{१}{३}$,,	१$\frac{२}{३}$,,	१$\frac{२}{३}$,,	८ ,,	४ ,,	४ ,,	४१६$\frac{२}{३}$,,
१६	३ ,,	१$\frac{१}{२}$,,	१$\frac{१}{२}$,,	८ ,,	४ ,,	४ ,,	३७५ ,,
१७	२$\frac{२}{३}$,,	१$\frac{१}{३}$,,	१$\frac{१}{३}$,,	८ ,,	४ ,,	४ ,,	३३३$\frac{१}{३}$,,
१८	२$\frac{१}{३}$,,	१$\frac{१}{६}$,,	१$\frac{१}{६}$,,	८ ,,	४ ,,	४ ,,	२९१$\frac{२}{३}$,,
१९	२ ,,	१ ,,	१ ,,	८ ,,	४ ,,	४ ,,	२५० ,,
२०	१$\frac{२}{३}$,,	$\frac{५}{६}$,,	$\frac{५}{६}$,,	८ ,,	४ ,,	४ ,,	२०८$\frac{१}{३}$,,
२१	१$\frac{१}{३}$,,	$\frac{२}{३}$,,	$\frac{२}{३}$,,	८ ,,	४ ,,	४ ,,	१६६$\frac{२}{३}$,,
२२	१ ,,	$\frac{१}{२}$,,	$\frac{१}{२}$,,	८ ,,	४ ,,	४ ,,	१२५ ,,
२३	$\frac{५}{६}$,,	$\frac{५}{१२}$,,	$\frac{५}{१२}$,,	८ ,,	४ ,,	४ ,,	१०४$\frac{१}{६}$,,
२४	$\frac{२}{३}$,,	$\frac{१}{३}$,,	$\frac{१}{३}$,,	८ ,,	४ ,,	४ ,,	८३$\frac{१}{३}$,,

पीढाण उवरि माणत्थंभा उसहम्मि ताण[1] बहलत्तं ।
दु-पण-णव-ति-दुग-खंडा, अंक-कमे तिगुण-अट्ठ-पविहत्ता ॥७८३॥

अड-णउदि-अहिय-णव-सय-ऊणा कमसो य णेमि-परियंतं ।
पण्ण-कदी पंचूणा, चउवीस-हिदा य पासणाहम्मि ॥७८४॥

अर्थ :—पीठोंके ऊपर मानस्तम्भ होते हैं । उनका बाहल्य ऋषभदेवके समवसरणमें आठके तिगुने (२४) से भाजित, अंक क्रमसे दो, पाँच, नौ, तीन और दो (२३९५२) धनुष प्रमाण था । इसके आगे नेमिनाथ तीर्थङ्कर पर्यन्त भाज्य राशिमेंसे क्रमशः उत्तरोत्तर नौ सौ अट्ठानबै कम होते गये हैं । पार्श्वनाथके समवसरणमें मानस्तम्भोंका बाहल्य चौबीससे भाजित पचासके वर्गमेंसे पाँच कम (२४९५/२४) धनुष प्रमाण था ॥७८३-७८४॥

उसहादि-पास-परियतं—

२३९५२/२४	२२९५४/२४	२१९५६/२४	२०९५८/२४	१९९६०/२४	१८९६२/२४	१७९६४/२४	
१६९६६/२४	१५९६८/२४	१४९७०/२४	१३९७२/२४	१२९७४/२४	११९७६/२४	१०९७८/२४	
९९८०/२४	८९८२/२४	७९८४/२४	६९८६/२४	५९८८/२४	४९९०/२४	३९९२/२४	२९९४/२४
२४९५/२४							

पंच-सया रूऊणा, छक्क-हिदा वड्ढमाण-देवम्मि ।
णिय-णिय-जिण-उदयेहिं, बारस-गुणिदेहिं थंभ-उच्छेहो ॥७८५॥

४११/१ । ६००० । ५४०० । ४८०० । ४२०० । ३६०० । ३००० । २४०० ।
१८०० । १२०० । १०८० । ९६० । ८४० । ७२० । ६०० । ५४० । ४८० ।
४२० । ३६० । ३०० । २४० । १८० । १२० । २७ । २१ ।

---

१. द. ताणबहलत्तं, ज. य. ताल-बहत्तं, क. उ. ताण बहलत्तं ।

अर्थ :—वर्द्धमान तीर्थङ्करके समवसरणमें मानस्तम्भोंका बाहल्य छहसे भाजित एक कम पांच सौ धनुष प्रमाण था। इन मानस्तम्भोंकी ऊँचाई अपने-अपने तीर्थङ्करके शरीरकी ऊँचाईसे बारह-गुणी होती है ।।७८५।।

जोयण-अहियं उदयं, माणत्थंभाण उसह-सामिम्मि ।
कम-हीणं सेसेसुं, एवं केई णिरूवंति ।।७८६।।

पाठान्तरम्

२४/२४ | २३/२४ | २२/२४ | २१/२४ | २०/२४ | १९/२४ | १८/२४ | १७/२४ | १६/२४ | १५/२४ | १४/२४ | १३/२४ | १२/२४ | ११/२४ |

१०/२४ | ९/२४ | ८/२४ | ७/२४ | ६/२४ | ५/२४ | ४/२४ | ३/२४ | ५/४८ | ४/४८ |[1]

अर्थ :—ऋषभनाथ स्वामीके समवसरणमें मानस्तम्भोंकी ऊँचाई एक योजनसे अधिक थी। शेष तीर्थङ्करोंके मानस्तम्भोंकी ऊँचाई क्रमशः हीन होती गई है। ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं ।।७८६।।

पाठान्तरम्

---

१. ब. ५/२४ | ४/४८ |

तालिका : १६

मानस्तम्भोंका बाहल्य एवं ऊँचाई—			गाथा ७८३-७८६
नं०	मानस्तम्भोंका बाहल्य	मानस्तम्भोंकी ऊँचाई	प्रकारान्तरसे मानस्तम्भोंकी ऊँचाई गाथा ७८६
१	९९८ धनुष	६००० धनुष	१ योजन
२	९५६$\frac{७}{१२}$,,	५४०० ,,	३$\frac{५}{६}$ कोस
३	९१४$\frac{५}{६}$,,	४८०० ,,	३$\frac{२}{३}$,,
४	८७३$\frac{१}{४}$,,	४२०० ,,	३$\frac{१}{२}$,,
५	८३१$\frac{२}{३}$,,	३६०० ,,	३$\frac{१}{३}$,,
६	७९०$\frac{१}{१२}$,,	३००० ,,	३$\frac{१}{६}$,,
७	७४८$\frac{१}{२}$,,	२४०० ,,	३ ,,
८	७०६$\frac{११}{१२}$,,	१८०० ,,	२$\frac{५}{६}$,,
९	६६५$\frac{१}{३}$,,	१२०० ,,	२$\frac{२}{३}$,,
१०	६२३$\frac{३}{४}$,,	१०८० ,,	२$\frac{१}{२}$,,
११	५८२$\frac{१}{६}$,	९६० ,,	२$\frac{१}{३}$,,
१२	५४०$\frac{७}{१२}$,,	८४० ,,	२$\frac{१}{६}$,,
१३	४९९ ,,	७२० ,,	२ ,,
१४	४५७$\frac{५}{१२}$,,	६०० ,,	१$\frac{५}{६}$,,
१५	४१५$\frac{५}{६}$,,	५४० ,,	१$\frac{२}{३}$,,
१६	३७४$\frac{१}{४}$,,	४८० ,,	१$\frac{१}{२}$,,
१७	३३२$\frac{२}{३}$,,	४२० ,,	१$\frac{१}{३}$,,
१८	२९१$\frac{१}{१२}$,,	३६० ,,	१$\frac{१}{६}$,,
१९	२४९$\frac{१}{२}$,,	३०० ,,	१ ,,
२०	२०७$\frac{११}{१२}$,,	२४० ,,	$\frac{५}{६}$,,
२१	१६६$\frac{१}{३}$,,	१८० ,,	$\frac{२}{३}$,,
२२	१२४$\frac{३}{४}$,,	१२० ,,	$\frac{१}{२}$,,
२३	१०३$\frac{२३}{२४}$,,	२७ ,,	$\frac{१}{१२}$,,
२४	८३$\frac{१}{६}$,,	२१ ,,	$\frac{१}{३}$,,

थंभाण मूलभागा, दु-सहस्स-पमाण वज्जदारड्ढा[1] ।
मज्झिम-भागा[2] वट्टा, पत्तेक्कं फलिह-णिम्मविया ।।७८७।।

२००० ।

उवरिम-भागा उज्जल-वेरुलियमया विभूसिया परदो ।
चामर - घंटा - किंकिणि - रयणावलि - केदु - पहुदीहिं ।।७८८।।

अर्थ :—प्रत्येक मानस्तम्भका मूलभाग दो हजार (धनुष) प्रमाण है और वज्र-द्वारोंसे युक्त होता है । मध्यम भाग स्फटिक मणिसे निर्मित और वृत्ताकार होता है तथा उज्ज्वल वैडूर्य मणिमय उपरिम भाग चारों ओर चामर, घण्टा, किंकिणी, रत्नहार एवं ध्वजा इत्यादिकोंसे विभूषित रहता है ।।७८७-७८८।।

ताणं मूले उवरिं, अट्ठ-महापाडिहेरि-जुत्ताओ ।
पडिदिसमेक्केक्काओ, रम्माओ जिणिंद-पडिमाओ ।।७८९।।

अर्थ :—प्रत्येक मानस्तम्भके मूलभागमें एवं उपरिमभागमें प्रत्येक दिशामें आठ-आठ महा-प्रतिहार्योंसे युक्त एक-एक रमणीय जिन प्रतिमा होती है ।।७८९।।

माणुल्लासिय-मिच्छा, वि दूरदो दंसणेण थंभाणं ।
जं होंति गलिद-माणा, माणत्थंभेत्ति[3] तं[4] भणिदं ।।७९०।।

अर्थ :—क्योंकि मानस्तम्भोंको दूरसे ही देख लेनेपर अभिमानी मिथ्यादृष्टि लोग अभिमान से रहित हो जाते हैं अतः इन (स्तम्भों) को 'मानस्तम्भ' कहा गया है ।।७९०।।

सालत्तय-बाहिरए, पत्तेक्कं चउ-दिसासु होंति दहा ।
वीहिं पडि पुव्वादि-क्कमेण सव्वेसु समवसरणेसु ।।७९१।।

---

१. द. ब. क. उ. वज्जदारंदा, ज. य. वज्जदारुंदा । २. द. भावी, ज. ब. भावा ।
३. द. ज. य. माणत्थंभं तिरथयं । ४. ब. क. उ. यं ।

अर्थ :—सब समवसरणोंमें तीनों कोटोंके बाहर चार-दिशाओंमेंसे प्रत्येक दिशामें क्रमशः पूर्वादिक वीथीके आश्रित द्रह (वापिकाएँ) होते हैं ॥७६१॥

णंदुत्तर-णंदाओ, णंदिमई णंदिघोस-णामाओ ।
पुव्वत्थंभे पुव्वादिएसु भागेसु [1]चत्तारो ॥७६२॥

अर्थ :—पूर्वदिशागत मानस्तम्भके पूर्वादिक भागोंमें क्रमशः नन्दोत्तरा, नन्दा, नन्दिमती और नन्दिघोषा नामक चार द्रह होते हैं ॥७६२॥

विजया य वइजयंता, जयंत-अवराजिवाइ णामेहिं ।
दक्खिण-थंभे[2] पुव्वादिएसु भागेसु चत्तारो ॥७६३॥

अर्थ :—दक्षिण दिशा स्थित मानस्तम्भके आश्रित पूर्वादिक भागोंमें क्रमशः विजया, वैजयन्ता, जयन्ता और अपराजिता नामक चार द्रह होते हैं ॥७६३॥

अभिहाणे य असोगा, सुप्पइबुद्धा[3] य कुमुद-पुंडरिया ।
पच्छिम-थंभे पुव्वादिएसु भाएसु चत्तारो ॥७६४॥

अर्थ :—पश्चिम दिशागत मानस्तम्भके आश्रित पूर्वादिक भागोंमें क्रमशः अशोका, सुप्रतिबुद्धा (सुप्रसिद्धा), कुमुदा और पुण्डरीका नामक चार द्रह होते हैं ॥७६४॥

हिदय-महाणंदाओ, सुप्पइबुद्धा पहंकरा णामा ।
उत्तर-थंभे पुव्वादिएसु भाएसु चत्तारो ॥७६५॥

अर्थ :—उत्तर दिशावर्ती मानस्तम्भके आश्रित पूर्वादिक भागोंमें क्रमशः हृदयानन्दा, महानन्दा, सुप्रतिबुद्धा और प्रभङ्करा नामक चार द्रह होते हैं ॥७६५॥

एदे सम-चउरस्सा, पवर-दहा पउम-पहुदि-संजुत्ता ।
टंकुक्किण्णा वेदिय-चउ-तोरण-रयणमाल-रमणिज्जा ॥७६६॥

---

१. ब. य. चत्तारो । २. द. ज. य. थंभा । ३. द. ब. क. ब. ब. उ. सुप्पइबुं पाठः

अर्थ :—ये उपर्युक्त उत्तम द्रह समचतुष्कोण, कमलादिकसे संयुक्त, टङ्कोत्कीर्ण और वेदिका, चार तोरण एवं रत्नमालाओंसे रमणीय होते हैं ।।७६६।।

सव्व-दहाणं मणिमय, सोवाणा चउ-तडेसु पत्तेक्कं ।
जल-कीडण-जोग्गेहिं, संपुण्णं दिव्व-दव्वेहिं ।।७६७।।

अर्थ :—सब द्रहोंके चारों तटोंमेंसे प्रत्येक तटपर जलक्रीड़ाके योग्य दिव्य द्रव्योंसे परिपूर्ण मणिमयी सोपान होते हैं ।।७६७।।

भावण-वेंतर-जोइस-कप्पंवासी य कीडण-पयट्टा ।
णर-किण्णर-मिहुणाणं, कुंकुम-पंकेण पिंजरिदा ।।७६८।।

अर्थ :—इन द्रहोंमें भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और कल्पवासी देव क्रीड़ामें प्रवृत्त होते हैं। ये द्रह नर एवं किन्नर-युगलोंके कुंकुम-पङ्कसे पीतवर्ण रहते हैं ।।७६८।।

एक्केक्क-कमल-संडे, दोह्णो कुंडाणि णिम्मल-जलाइं ।
सुर-णर-तिरिया तेसुं, धुव्वंतो चरण-रेणूओ ।।७६९।।

। माणत्थंभा समत्ता ।

अर्थ :—प्रत्येक कमलखण्ड अर्थात् द्रहके आश्रित निर्मल जलसे परिपूर्ण दो-दो कुण्ड होते हैं, जिनमें देव, मनुष्य एवं तिर्यञ्च अपने पैरोंकी धूलि धोया करते हैं ।।७६९।।

। मानस्तम्भोंका वर्णन समाप्त हुआ ।

मानस्तंभ भूमि
वीथी
वीथी
४ वापिका
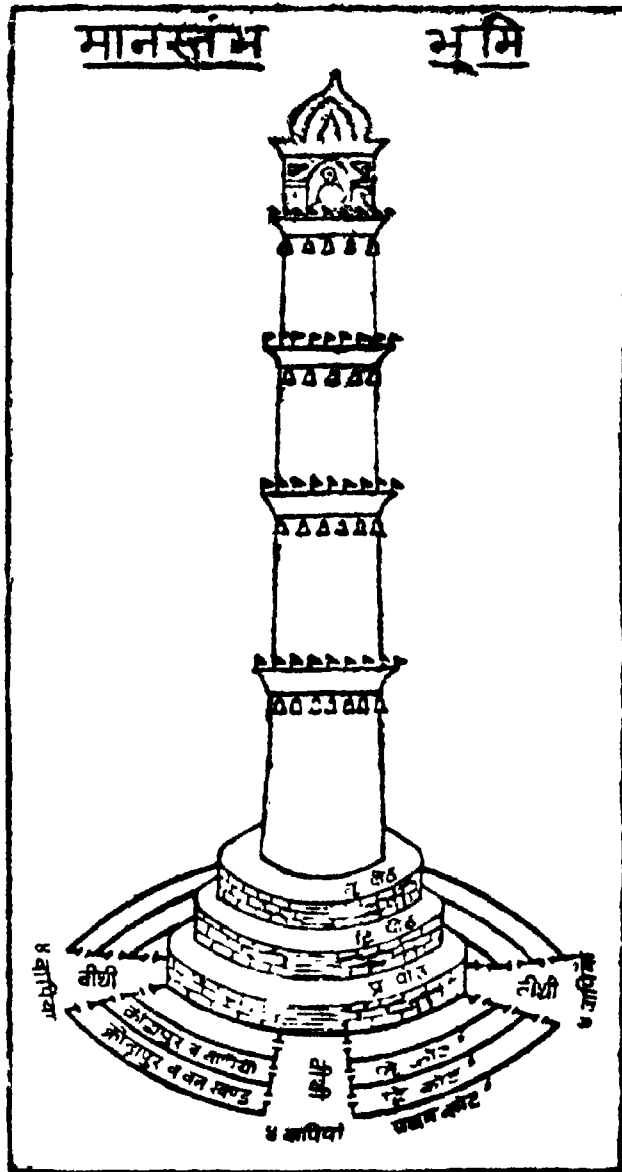
प्रथम वेदीका निरूपण—

वर-रयण-केदु-तोरण-घंटा-जालादिएहि जुत्ताओ ।
आदिम-वेदीओ [1]तहा, सव्वेसु वि समवसरणेसु ।।८००।।

अर्थ :—सभी समवसरणोंमें उत्तम रत्नमय ध्वजा, तोरण और घण्टाओंके समूहादिकसे युक्त प्रथम वेदियाँ भी उसीप्रकार होती हैं ।।८००।।

गोउर-दुवार-वाउल-पहुवी सव्वाण वेदियाण[2] तहा ।
अट्ठुत्तर-सय-मंगल-णव-णिहि-वव्वाइ पुव्वं व ।।८०१।।

अर्थ :—सर्व वेदियोंके गोपुरद्वार, नौ निधियाँ, पुत्तलिका इत्यादि तथा एक सौ आठ मंगल द्रव्य पूर्वके सदृश ही होते हैं ।।८०१।।

णवरि विसेसो णिय-णिय-धूलीसालाण मूल-रुंदेहिं ।
मूलोवरि-भागेसुं, समाण-वासाओ वेदीओ ।।८०२।।

२४/१४४	२३/१४४	२२/१४४	२१/१४४	२०/१४४	१९/१४४	१८/१४४	१७/१४४	१६/१४४	१५/१४४	१४/१४४	१३/१४४	१२/१४४

११/१४४	१०/१४४	९/१४४	८/१४४	७/१४४	६/१४४	५/१४४	४/१४४	३/१४४	५/२८८	१/७२

। पढम-वेदी समत्ता ।

अर्थ :—विशेषता मात्र यह है कि इन वेदियोंके मूल और उपरिम भागका विस्तार अपने-अपने धूलिसालोंके मूल विस्तारके सदृश होता है ।।८०२।।

। प्रथम वेदीका कथन समाप्त हुआ ।

खाइय-खेत्ताणि[3] तदो, हवंति [4]वर-सच्छ-सलिल-पुण्णाइं ।
णिय-णिय-जिण-उदएहिं, चउ-भजिदेहिं सरिच्छ-गहिराणि ।।८०३।।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. तदा ।   २. द. ज. य. वेदिमाण ।   ३. द. ब. य. खेत्ताणि ।
४. द. ब. क. ज. य. उ. वरवत्त ।

१२५ | $\frac{२२५}{२}$ | १०० | $\frac{१७५}{२}$ | ७५ | $\frac{१२५}{२}$ | ५० | $\frac{७५}{२}$ | २५ | $\frac{४५}{२}$ | २० | $\frac{३५}{२}$ |

१५ | $\frac{२५}{२}$ | $\frac{४५}{४}$ | १० | $\frac{३५}{४}$ | $\frac{१५}{२}$ | $\frac{२५}{४}$ | ५ | $\frac{१५}{४}$ | $\frac{५}{२}$ | हत्था $\frac{६}{४}$ | $\frac{७}{४}$ |

अर्थ :—इसके आगे उत्तम एवं स्वच्छ जलसे परिपूर्ण और अपने-अपने जिनेन्द्रकी ऊँचाईके चतुर्थ भाग प्रमाण गहरे खातिका-क्षेत्र होते हैं ॥८०३॥

फुल्लंत-कुमुद-कुवलय-कमल-वणामोद-भर[1]-सुगंधीणि ।
मणिमय-सोवाणाणि, जुदाणि पक्खीहिं[2] हंस-पहुदीहिं ॥८०४॥

अर्थ :—ये खातिकाएँ फूले हुए कुमुद, कुवलय और कमल-वनोंके आमोदसे सुगन्धित तथा मणिमय सोपानों एवं हंसादि पक्षियों सहित होती हैं ॥८०४॥

णिय-णिय-पढम-खिदीणं, जेत्तियमेत्तं खु वास-परिमाणं ।
णिय-णिय-बिदिय-खिदीणं, तेत्तियमेत्तं च पत्तेयं ॥८०५॥

$\frac{२६४}{५७६}$ | $\frac{२५३}{५७६}$ | $\frac{२४२}{५७६}$ | $\frac{२३१}{५७६}$ | $\frac{२२०}{५७६}$ | $\frac{२०९}{५७६}$ | $\frac{१९८}{५७६}$ | $\frac{१८७}{५७६}$ | $\frac{१७६}{५७६}$ | $\frac{१६५}{५७६}$ | $\frac{१५४}{५७६}$ |

$\frac{१४३}{५७६}$ | $\frac{१३२}{५७६}$ | $\frac{१२१}{५७६}$ | $\frac{११०}{५७६}$ | $\frac{९९}{५७६}$ | $\frac{८८}{५७६}$ | $\frac{७७}{५७६}$ | $\frac{६६}{५७६}$ | $\frac{५५}{५७६}$ | $\frac{४४}{५७६}$ | $\frac{३३}{५७६}$ |

$\frac{५५}{२८८}$ | $\frac{११}{७२}$ |

अर्थ :—अपनी-अपनी प्रथम पृथिवीके विस्तारका जितना प्रमाण होता है, उतना ही विस्तार अपनी-अपनी प्रत्येक द्वितीय पृथिवीका भी हुआ करता है ॥८०५॥

वेदण्पासाद-खिदिं, केई णेच्छंति ताण[3] उवएसे ।
खाइय-खिदीण जोयणमुसहे सेसेसु कम-हीणं ॥८०६॥

---

१. ब. क. ज. य. उ. भवणसुगंधीणि । २. द. ब. क. ज. य. उ. पक्खेहिं । ३. द. क. भाए ।

अर्थ :—कोई-कोई आचार्य चैत्य-प्रासाद-भूमिको स्वीकार नहीं करते हैं। उनके उप-देशानुसार ऋषभदेवके समवसरणमें खातिका-भूमिका विस्तार एक योजन प्रमाण था और शेष तीर्थङ्करोंके समवसरणमें क्रमश: हीन-हीन था ॥८०६॥

धूलीसालाणं वित्थारे हि सहिय-खाइय-खेत्ताणं कमसो रुंद-जोयणाणि—

२४/२४	२३/२४	२२/२४	२१/२४	२०/२४	१९/२४	१८/२४	१७/२४	१६/२४	१५/२४	१४/२४	१३/२४	१२/२४	११/२४	१०/२४	९/२४	८/२४

७/२४	६/२४	५/२४	४/२४	३/२४	५/४८	४/४८

अर्थ :—धूलिसालके विस्तारके साथ खातिका-क्षेत्रका विस्तार क्रमश: इतने योजन रहता है। (तालिकामें देखिए)

तत्थ धूलीसालाणं कमसो मूल-वित्थारो—

२४/२८८	२३/२८८	२२/२८८	२१/२८८	२०/२८८	१९/२८८	१८/२८८	१७/२८८	१६/२८८	१५/२८८	१४/२८८	१३/२८८
१२/२८८	११/२८८	१०/२८८	९/२८८	८/२८८	७/२८८	६/२८८	५/२८८	४/२८८	३/२८८	५/५७६	४/५७६

अर्थ :—क्रमश: धूलिसालका मूल विस्तार (तालिकामें देखिए)।

सग-सग धूलीसालाणं वित्थारेण विरहिदे सग-सग-खाइय-खेत्ताणं वित्थारो—

२६४/२८८	२५३/२८८	२४२/२८८	२३१/२८८	२२०/२८८	२०९/२८८	१९८/२८८	१८७/२८८	१७६/२८८	१६५/२८८	१५४/२८८	१४३/२८८
१३२/२८८	१२१/२८८	११०/२८८	९९/२८८	८८/२८८	७७/२८८	६६/२८८	५५/२८८	४४/२८८	३३/२८८	५५/५७६	४४/५७६

। खाइयक्खेत्ताणि समत्ता ।

पाठान्तरम् ।

अपने-अपने धूलिसालोंके विस्तारसे रहित अपने-अपने खातिका-क्षेत्रोंका विस्तार। (तालिकामें देखिए)

खातिका-क्षेत्रका वर्णन समाप्त हुआ।

तालिका : २०

खातिका आदि क्षेत्रोंका प्रमाण—

नं०	वेदियोंके मूल एवं उपरिम भागका विस्तार गा. ८०२	खातिका क्षे. की गहराईका प्रमाण गा. ८०३	दूसरी पृथिवी का विस्तार गाथा ८०५	धूलिसाल सहित खातिका क्षे. का विस्तार	प्रकारान्तरसे धूलिसालका मूल विस्तार	धूलिसाल रहित खातिका क्षेत्रका विस्तार
१	$३३३\frac{१}{३}$ धनुष	१२५ धनुष	$१\frac{५}{६}$ कोस	१ योजन	$१६६\frac{२}{३}$ ध०	$३\frac{२}{३}$ कोस
२	$३१९\frac{४}{९}$,,	$११२\frac{१}{२}$,,	$१\frac{१०९}{१४४}$,,	$३\frac{५}{६}$ कोस	$१५९\frac{१३}{१८}$,,	$३\frac{३७}{७२}$,,
३	$३०५\frac{५}{९}$,,	१०० ,,	$१\frac{४९}{७२}$,,	$३\frac{२}{३}$,,	$१५२\frac{७}{९}$,,	$३\frac{१३}{३६}$,,
४	$२९१\frac{२}{३}$,,	$८७\frac{१}{२}$,,	$१\frac{८७}{१४४}$,,	$३\frac{१}{२}$,,	$१४५\frac{५}{६}$,,	$३\frac{५}{२४}$,,
५	$२७७\frac{७}{९}$,,	७५ ,,	$१\frac{१९}{३६}$,,	$३\frac{१}{३}$,,	$१३८\frac{८}{९}$,,	$३\frac{१}{१८}$,,
६	$२६३\frac{८}{९}$,,	$६२\frac{१}{२}$,,	$१\frac{६५}{१४४}$,,	$३\frac{१}{६}$,,	$१३१\frac{१७}{१८}$,,	$२\frac{६५}{७२}$,,
७	२५० ,,	५० ,,	$१\frac{३}{८}$,,	३ ,,	१२५ ,	$२\frac{३}{४}$,,
८	$२३६\frac{१}{९}$,,	$३७\frac{१}{२}$,,	$१\frac{४३}{१४४}$,,	$२\frac{५}{६}$,,	१ $८\frac{१}{१८}$,,	$२\frac{४३}{७२}$,,
९	$२२२\frac{२}{९}$,,	२५ ,,	$१\frac{२}{९}$,,	$२\frac{२}{३}$,,	$१११\frac{१}{९}$,,	$२\frac{४}{९}$,,
१०	$२०८\frac{१}{३}$,,	$२२\frac{१}{२}$,,	$१\frac{७}{४८}$,,	$२\frac{१}{२}$,,	$१०४\frac{१}{६}$,,	$२\frac{७}{२४}$,,
११	$१९४\frac{४}{९}$,,	२० ,	$१\frac{५}{७२}$,,	$२\frac{१}{३}$,,	$९७\frac{२}{९}$,,	$२\frac{५}{३६}$,,
१२	$१८०\frac{५}{९}$,,	$१७\frac{१}{२}$,,	$१९८६\frac{१}{९}$ धनुष	$२\frac{१}{६}$,,	$९०\frac{५}{१८}$,,	$१\frac{७१}{७२}$,,
१३	$१६६\frac{२}{३}$,,	१५ ,,	$१८३३\frac{१}{३}$,,	२ ,,	$८३\frac{१}{३}$,,	$१\frac{५}{६}$,,
१४	$१५२\frac{७}{९}$,,	$१२\frac{१}{२}$,,	$१६८०\frac{५}{९}$,,	$१\frac{५}{६}$,,	$७६\frac{७}{१८}$,	$१\frac{४९}{७२}$,,
१५	$१३८\frac{८}{९}$,,	$११\frac{१}{४}$,,	$१५२७\frac{७}{९}$,,	$१\frac{२}{३}$,,	$६९\frac{४}{९}$,,	$१\frac{१९}{३६}$,,
१६	१२५ ,,	१० ,,	१३७५ ,,	$१\frac{१}{२}$,,	$६२\frac{१}{२}$,,	$१\frac{३}{८}$,,
१७	$१११\frac{१}{९}$,,	$८\frac{३}{४}$,,	$१२२२\frac{२}{९}$,,	$१\frac{१}{३}$,,	$५५\frac{५}{९}$,,	$१\frac{२}{९}$,,
१८	$९७\frac{२}{९}$,,	$७\frac{१}{२}$,,	$१०६९\frac{४}{९}$,,	$१\frac{१}{६}$,,	$४८\frac{११}{१८}$,,	$१\frac{५}{७२}$,,
१९	$८३\frac{१}{३}$,,	$६\frac{१}{४}$,	$९१६\frac{२}{३}$,,	१ ,,	$४१\frac{२}{३}$,,	$\frac{११}{१२}$,,
२०	$६९\frac{४}{९}$,,	५ ,,	$७६३\frac{८}{९}$,,	$\frac{५}{६}$,,	$३४\frac{१३}{१८}$,,	$\frac{५५}{७२}$,,
२१	$५५\frac{५}{९}$,,	$३\frac{३}{४}$,,	$६११\frac{१}{९}$,,	$\frac{२}{३}$,,	$२७\frac{७}{९}$,,	$\frac{११}{१८}$,,
२२	$४१\frac{२}{३}$,,	$२\frac{१}{२}$,,	$४५८\frac{१}{३}$,,	$\frac{१}{२}$,,	$२०\frac{५}{६}$,,	$\frac{११}{२४}$,,
२३	$३४\frac{१३}{१८}$,,	$२\frac{१}{८}$ हाथ	$३८१\frac{१७}{१८}$,,	$\frac{५}{१२}$,,	$१७\frac{१३}{३६}$,,	$\frac{५५}{१४४}$,,
२४	$२७\frac{७}{९}$,,	$१\frac{३}{४}$,,	$३०५\frac{५}{९}$,,	$\frac{१}{३}$,,	$१३\frac{८}{९}$,,	$\frac{११}{३६}$,,

दूसरी वेदी एवं वल्ली क्षेत्रका विस्तार—

बिदियाओ वेदीओ, णिय-णिय-पढमिल्ल-वेदियाहि समा ।
एसो णवरि विसेसो, वित्थारो दुगुण-परिमाणं ॥८०७॥

वित्थारं दुगुण-दुगुणं होदि—

२४	२३	२२	२१	२०	१९	१८	१७	१६	१५	१४	१३	१२	११
७२	७२	७२	७२	७२	७२	७२	७२	७२	७२	७२	७२	७२	७२

१०	९	८	७	६	५	४	३	५	१
७२	७२	७२	७२	७२	७२	७२	७२	१४४	३६

। बिदिय-वेदी-पमाणं सम्मत्तं ।

अर्थ :—दूसरी वेदियां अपनी-अपनी पूर्व वेदिकाओंके सदृश हैं । परन्तु विशेषता यह है कि इनका विस्तार दुगुने-दुगुने प्रमाण है ॥८०७॥

विस्तार दूना-दूना होता है (तालिकामें देखिए) ।

। द्वितीय वेदियोंका प्रमाण समाप्त हुआ ।

पुण्णाग-णाग-कुज्जय - सयवत्तइमुत्त[1]-पहुदि-जुत्ताणि ।
वल्ली-खेत्ताणि तदो[2], कीडण-गिरि-गुरव[3]-सोहाणि ॥८०८॥
मणि-सोवाण-मणोहर-पोक्खरणी-फुल्ल-कमल-संडाणि ।
ताणं रुंदो दुगुणो, खाइय-खेत्ताण-रुंदादो ॥८०९॥

२६४	२५३	२४२	२३१	२२०	२०९	१९८	१८७	१७६	१६५
२८८	२८८	२८८	२८८	२८८	२८८	२८८	२८८	२८८	२८८

१५४	१४३	१३२	१२१	११०	९९	८८	७७	६६	५५	४४	३३	५५	४४
२८८	२८८	२८८	२८८	२८८	२८८	२८८	२८८	२८८	२८८	२८८	२८८	१४४	१४४

। तदिय-वल्ली-खिदी-समत्ता ।

अर्थ :—इसके आगे पुन्नाग, नाग, कुब्जक, शतपत्र एवं अतिमुक्त आदिसे संयुक्त, क्रीड़ा-पर्वतोंसे अतिशय शोभायमान और मणिमय-सोपानोंसे मनोहर, वापिकाओंके विकसित कमल-

१. ब. क. उ. सयवत्तयमुत्त । २. द. ब. क. य. ज. उ. तदा । ३. द. क. य. गरुव ।

समूहों सहित वल्ली-क्षेत्र होते हैं। इनका विस्तार खातिका-क्षेत्रोंके विस्तारसे दुगुना रहता है ॥८०८-८०९॥

। तृतीय-वल्ली-भूमि समाप्त हुई।

दूसरा कोट—

तत्तो बिदिया साला, धूलीसालाण[1] वण्णणेहि समा।
दुगुणो रुंदो[2] दारा, रजदमया जक्ख-रक्खणा णवरि ॥८१०॥

२४	२३	२२	२१	२०	१९	१८	१७	१६	१५	१४	१३	१२
७२	७२	७२	७२	७२	७२	७२	७२	७२	७२	७२	७२	७२

११	१०	९	८	७	६	५	४	३	५	१
७२	७२	७२	७२	७२	७२	७२	७२	७२	१४४	३६

। बिदिय-साला समत्ता।

अर्थ :—इसके आगे दूसरा कोट है, जिसका वर्णन धूलिसालोंके सदृश ही है परन्तु इतना विशेष है कि इसका विस्तार दुगुना है और इसके द्वार रजतमय हैं। यह कोट यक्ष जातिके देवों द्वारा रक्षित है ॥८१०॥

। द्वितीय कोट का वर्णन समाप्त हुआ।

उपवन भूमि—

तत्तो चउत्थ-उववण-भूमीए असोय-सत्तपण्ण-वणा।
चंपय-चूव-वणाइं, पुव्वादि-दिसासु राजंति ॥८११॥

अर्थ :—इसके आगे चौथी उपवन भूमि होती है, जिसमें पूर्वादि दिशाओंके क्रमसे अशोकवन, सप्तपर्णवन, चम्पकवन और आम्रवन, ये चार वन शोभायमान होते हैं ॥८११॥

विविह-वणसंड-मंडण-विविह-णई-पुलिण-कीडण-गिरीहिं।
विविह-वर-वाविआहिं, उववण-भूमीउ[3] रम्माओ ॥८१२

---

१. ब. सालोण। २. द. ज. य. मंदा। ३. ब. य. भूमी व, ड. भूमीओ।

अर्थ :—ये उपवन भूमियाँ विविध प्रकारके वन-समूहोंसे मण्डित, विविध नदियोंके पुलिन और क्रीड़ा पर्वतों से तथा अनेक प्रकार की उत्तम वापिकाओंसे रमणीय होती हैं ।।८१२।।

एक्केक्काए उववण-खिदिए तरवो असोय-सत्तदला ।
चंपय[1]-चूदा सुंदर-रूवा चत्तारि चत्तारि ।।८१३।।

अर्थ :—एक-एक उपवन-भूमिमें अशोक, सप्तच्छद, चम्पक एवं आम्र, ये चार-चार सुन्दर रूपवाले वृक्ष होते हैं ।।८१३।।

चैत्यवृक्षों की ऊँचाई एवं जिन-प्रतिमाएँ—

चामर-पहुदि-जुदाणं, चेत्त-तरूणं हवंति उच्छेहा[2] ।
णिय-णिय-जिण-उदएहिं, बारस-गुणिदेहि सारिच्छा ।।८१४।।

६००० । ५४०० । ४८०० । ४२०० । ३६०० । ३००० । २४०० । १८०० ।

१२०० । १०८० । ९६० । ८४० । ७२० । ६०० । ५४० । ४८० । ४२० ।

३६० । ३०० । २४० । १८० । १२० । २७ । २१ ।

अर्थ :—चामरादि सहित चैत्य-वृक्षोंकी ऊँचाई बारहसे गुणित अपने-अपने तीर्थंकरोंकी ऊँचाईके सदृश होती है ।।८१४।।

मणिमय-जिण-पडिमाओ, अट्ठ-महापाडिहेर-जुत्ताओ[3] ।
एक्केक्कस्सि चेत्तदुमम्मि चत्तारि चत्तारि ।।८१५।।

अर्थ :—एक-एक चैत्यवृक्षके आश्रित आठ महाप्रातिहार्योंसे संयुक्त चार-चार मणिमय जिन-प्रतिमाएँ होती हैं ।।८१५।।

---

१. द. चम्पमचूवा सुन्दरचूवा, ब. ब. चम्पयचूवा सुन्दरभूवा ।   २. द. ब. क. ज. ब. उ. उच्छेहो ।
३. द. ब. क. ज. ब. उ. संजुत्ती ।
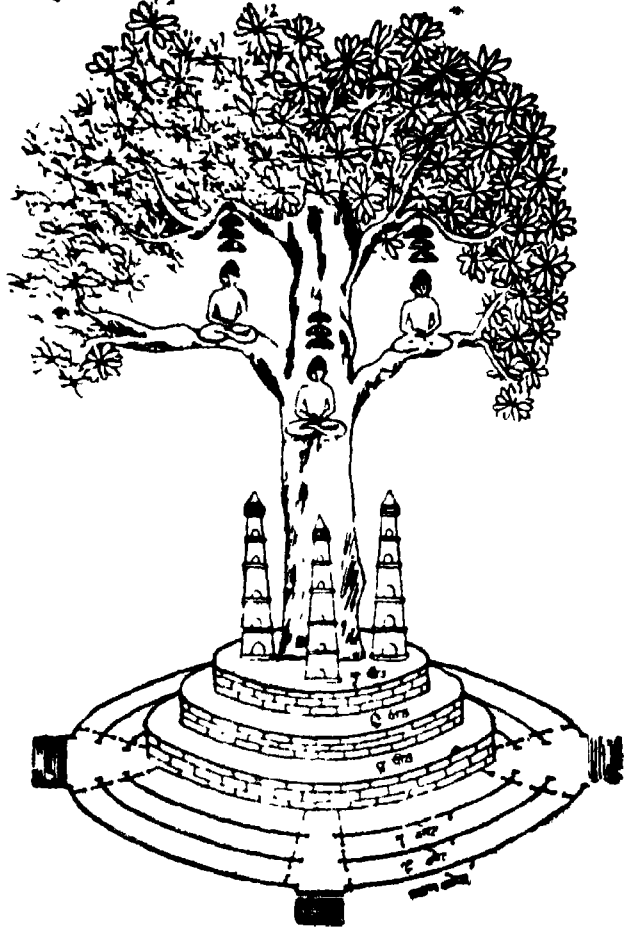
सात भव निरीक्षग—

उववण-वावि-जलेहिं, सित्ता पेच्छंति एक्क-भव-जाइं ।
तस्स णिरिक्खण-मेत्ते, सत्त-भवातीद-भावि-जादीओ ।।८१६।।

अर्थ :—उपवनकी वापिकाओंके जलसे अभिषिक्त जन-समूह एक भवजाति (जन्म) को देखते हैं, तथा उनके (वापीके जलमें) निरीक्षण करने पर अतीत एवं अनागत सम्बन्धी सात भव–

विशेषार्थ :—समवसरणकी उपवन भूमिमें स्थित वापिकाओंके जलसे स्नान करने पर वर्तमान भवके आगे-पीछेकी बात जानते हैं और वापिकाओंके जलमें देखने पर तीन अतीतके, तीन भावी और एक वर्तमान का इसप्रकार सात भव देखते हैं।

मानस्तम्भका विवेचन -

सालत्तय-परिअरिया[1], पीढ-त्तय-उवरि माणथंभा य।
चत्तारो चत्तारो, एक्केक्के चेत्त-रुक्खम्मि ॥८१७॥

अर्थ :—एक-एक चैत्यवृक्षके आश्रित तीन कोटोंसे वेष्टित एवं तीन पीठोंके ऊपर चार-चार मानस्तम्भ होते हैं ॥८१७॥

सहिदा वर-वावीहिं, कमलुप्पल-कुमुद-परिमलिल्लाहिं[2]।
सुर-णर-मिहुण-तणुग्गय-कुंकुम-पंकेहि पिंजर-जलाहिं ॥८१८॥

अर्थ :—ये मानस्तम्भ कमल, उत्पल एवं कुमुदोंकी सुगन्धसे युक्त तथा देव और मनुष्य-युगलोंके शरीरसे निकली हुई केशरके पङ्कसे पीत जलवाली उत्तम वापिकाओं सहित होते हैं ॥८१८॥

कत्थ वि हम्मा रम्मा, कोडण-सालाओ कत्थ वि वराओ।
कत्थ वि णट्टय-साला, णच्चंत सुरंगणाइण्णा[3] ॥८१९॥

अर्थ :—वहाँ पर कहीं रमणीय भवन, कहीं उत्तम क्रीडनशाला और कहीं नृत्य करती हुई देवाङ्गनाओंसे आकीर्ण नाट्यशालाएँ होती हैं ॥८१९॥

बहुभूमी-भूसणया, सव्वे वर-विविह-रयण-णिम्मविदा।
एदे पंति-कमेणं, उववण-भूमीसु सोहंति ॥८२०॥

अर्थ :—बहुत भूमियों (खण्डों) से भूषित तथा उत्तम और नानाप्रकारके रत्नोंसे निर्मित ये सब भवन पंक्ति क्रमसे उपवनभूमियोंमें शोभायमान होते हैं ॥८२०॥

---

१. द. परिहरिया। २. द. परिमलुल्लाहिं। ३. ब. सुरंगणाइगणा, क. उ. णच्चंति सुरगणा इंगणा।

ताणं हम्मादीणं, सव्वेसु[1] होंति समवसरणेसुं ।
णिय-णिय[2]-जिण-उदएहिं, बारस-गुणिदेहि सम-उदया ॥८२१॥

६००० । ५४०० । ……………………णेमि १२० पास २७ । वीर २१ ।

अर्थ :—सर्व समवसरणोंमें इन हर्म्यादिकोंकी ऊँचाई बारहसे गुणित अपने-अपने तीर्थंकरोंकी ऊँचाईके बराबर होती है ॥८२१॥

णिय-णिय-पढम-खिदीणं, जेत्तिय-मेत्तं हु रुंद-परिमाणं ।
णिय-णिय-वण-भूमीणं, तेत्तिय-मेत्तं हवे दुगुणं ॥८२२॥

२६४	२५३	२४२	२३१	२२०	२०९	१९८	१८७	१७६
२८८	२८८	२८८	२८८	२८८	२८८	२८८	२८८	२८८

१६५	१५४	१४३	१३२	१२१	११०	९९	८८	७७	६६	५५
२८८	२८८	२८८	२८८	२८८	२८८	२८८	२८८	२८८	२८८	२८८

४४	३३	५५	४४
२८८	२८८	५७६	५७६

। तुरिम[3]-वण-भूमी समत्ता ।

अर्थ :—अपनी-अपनी प्रथम पृथिवीके विस्तारका जितना प्रमाण होता है, उससे दून प्रमाण अपनी-अपनी उपवन-भूमियोंके विस्तारका होता है ॥८२२॥

। चतुर्थ वन-भूमिका कथन समाप्त हुआ ।

---

१. क. ब. उ. सव्वेसि । २. ब. ड. णियजिणजिण । ३. द. चरिमवण ।

तालिका : २१

वेदी, वल्लीभूमि, कोट, चैत्यवृक्ष, प्रासाद एवं उपवनभूमिका प्रमाण—

नं०	दूसरी वेदीका विस्तार गाथा ८०७	वल्लीभूमिका विस्तार गाथा ८०९	दूसरे कोटका विस्तार गाथा ८१०	चैत्यवृक्षोंकी ऊँचाई गाथा ८१४	प्रासादोंकी ऊँचाई गाथा ८२१	उपवनभूमिका विस्तार गाथा ८२२
१	६६६ २/३ धनुष	३ २/३ कोस	६६६ २/३ धनुष	६००० धनुष	६००० धनुष	३ २/३ कोस
२	६३८ ८/९ ,,	३ ३७/७२ ,,	६३८ ८/९ ,,	५४०० ,,	५४०० ,,	३ ३७/७२ ,,
३	६११ १/९ ,,	३ १३/३६ ,,	६११ १/९ ,,	४८०० ,,	४८०० ,,	३ १३/३६ ,,
४	५८३ १/३ ,,	३ ५/२४ ,,	५८३ १/३ ,,	४२०० ,,	४२०० ,,	३ ५/२४ ,,
५	५५५ ५/९ ,,	३ १/१८ ,,	५५५ ५/९ ,,	३६०० ,,	३६०० ,,	३ १/१८ ,,
६	५२७ ७/९ ,,	२ ६५/७२ ,,	५२७ ७/९ ,,	३००० ,,	३००० ,,	२ ६५/७२ ,,
७	५०० ,,	२ ३/४ ,,	५०० ,,	२४०० ,,	२४०० ,,	२ ३/४ ,,
८	४७२ २/९ ,,	२ ४३/७२ ,,	४७२ २/९ ,,	१८०० ,,	१८०० ,,	२ ४३/७२ ,,
९	४४४ ४/९ ,,	२ ४/९ ,,	४४४ ४/९ ,,	१२०० ,,	१२०० ,,	२ ४/९ ,,
१०	४१६ २/३ ,,	२ ७/२४ ,,	४१६ २/३ ,,	१०८० ,,	१०८० ,,	२ ७/२४ ,,
११	३८८ ८/९ ,,	२ ५/३६ ,,	३८८ ८/९ ,,	९६० ,,	९६० ,,	२ ५/३६ ,,
१२	३६१ १/९ ,,	१ ७१/७२ ,,	३६१ १/९ ,,	८४० ,,	८४० ,,	१ ७१/७२ ,,
१३	३३३ १/३ ,,	१ ५/६ ,,	३३३ १/३ ,,	७२० ,,	७२० ,,	१ ५/६ ,,
१४	३०५ ५/९ ,,	१ ४९/७२ ,,	३०५ ५/९ ,,	६०० ,,	६०० ,,	१ ४९/७२ ,,
१५	२७७ ७/९ ,,	१ १९/३६ ,,	२७७ ७/९ ,,	५४० ,,	५४० ,,	१ १९/३६ ,,
१६	२५० ,,	१ ३/८ ,,	२५० ,,	४८० ,,	४८० ,,	१ ३/८ ,,
१७	२२२ २/९ ,,	१ २/९ ,,	२२२ २/९ ,,	४२० ,,	४२० ,,	१ २/९ ,,
१८	१९४ ४/९ ,,	१ ५/७२ ,,	१९४ ४/९ ,,	३६० ,,	३६० ,,	१ ५/७२ ,,
१९	१६६ २/३ ,,	११/१२ ,,	१६६ २/३ ,,	३०० ,,	३०० ,,	११/१२ ,,
२०	१३८ ८/९ ,,	५५/७२ ,,	१३८ ८/९ ,,	२४० ,,	२४० ,,	५५/७२ ,,
२१	१११ १/९ ,,	११/१८ ,,	१११ १/९ ,,	१८० ,,	१८० ,,	११/१८ ,,
२२	८३ १/३ ,,	११/२४ ,,	८३ १/३ ,,	१२० ,,	१२० ,,	११/२४ ,,
२३	६९ १/३६ ,,	५५/१४४ ,,	६९ १/३६ ,,	२७ ,,	२७ ,,	५५/१४४ ,,
२४	५५ ५/९ ,,	११/३२ ,,	५५ ५/९ ,,	२१ ,,	२१ ,,	११/३२ ,,

दो-हो॒सु पासेसु, सव्व-वण-प्पणिधि-सव्व-वीहीणं ।
दो-दो णट्टय-साला, ताण पुढं आविमट्ठ-सालासु ॥८२३॥
भावण-सुर-कण्णाओ, णच्चंते कप्पवासि-कण्णाओ ।
अग्गिम-अड-सालासु, पुव्वा[1] व सुवण्णणा सव्वा ॥८२४॥

। णट्टयसाला समत्ता ।

अर्थ :—सर्व वनोंके आश्रित सर्व वीथियोंके दोनों पार्श्वभागोंमें दो-दो नाटचशालाएँ होती हैं । इनमें से आदिकी आठ नाटचशालाओंमें भवनवासिनी देव-कन्याएँ और इससे आगेकी आठ नाटचशालाओंमें कल्पवासिनी कन्याएँ नृत्य करती हैं । इन नाटच-शालाओंका सुन्दर वर्णन पूर्वके सदृश ही है ॥८२३-८२४ ॥

। नाटचशालाओंका कथन समाप्त हुआ ।

तदियाओ वेदीओ, हवंति णिय-बिदिय-वेदियाहि समा ।
णवरि विसेसो एसो, जक्खिदा दार-रक्खणया ॥८२५॥

। तदिया वेदी समत्ता ।

अर्थ :—तीसरी वेदियाँ अपनी-अपनी दूसरी वेदियोंके सदृश होती हैं । केवल विशेषता यह है कि यहाँ पर यक्षेन्द्र द्वार-रक्षक हुआ करते हैं ॥८२५॥

। तृतीय वेदी समाप्त हुई ।

ध्वज-भूमिका वर्णन—

तत्तो धय-भूमीए, दिव्व-धया होंति ते च दस-भेया ।
सीह-गय-वसह-खगवइ-सिहि-ससि-रवि-हंस-पउम-चक्का-य ॥८२६॥

अर्थ :—इसके आगे ध्वज-भूमिमें सिंह, गज, वृषभ, गरुड़, मयूर, चन्द्र, सूर्य, हंस, पद्म और चक्र इन चिह्नोंसे चिह्नित दस प्रकारकी दिव्य ध्वजाएँ होती हैं ॥८२६॥

---

१. द. ब. उ. पुव्वासुरवण्णणा । क. ज. य. पुव्वासुवण्णणा ।

अट्ठुत्तर[1]-सय-सहिया, एक्केक्का तं पि अट्ठ-अहिय-सया ।
खुल्लय-धय-संजुत्ता, पत्तेक्कं चउ-दिसासु-फुडं ।।८२७।।

अर्थ :—चारों दिशाओंमेंसे प्रत्येक दिशामें इन दस प्रकारकी ध्वजाओंमें से एक-एक ध्वजा एक सौ आठ रहती हैं और इनमें से भी प्रत्येक ध्वजा अपनी एक सौ आठ क्षुद्रध्वजाओंसे संयुक्त होती हैं ।।८२७।।

सुण्ण-अड-अट्ठ-णभ-सग-चउक्क-अंकक्कमेण-मिलिदाणं ।
सव्व-धयाणं संखा, एक्केक्के समवसरणम्हि ।।८२८।।

। ४७०८८० ।

अर्थ :—शून्य, आठ, आठ, शून्य, सात एवं चार अंकोंके क्रमश: मिलाने पर जो संख्या उत्पन्न हो उतनी ध्वजाएं एक-एक समवसरणमें हुआ करती हैं ।।८२८।।

विशेषार्थ :—१०-१० प्रकारकी महाध्वजाएँ चारों दिशाओंमें हैं, अतः १०×४=४० । प्रत्येक महाध्वजा १०८, १०८ है, अतः १०८×४०=४३२० कुल महाध्वजाएँ हुई । इनमेंसे प्रत्येक महाध्वजा १०८, १०८ क्षुद्र ध्वजाओं सहित हैं। इसप्रकार (४३२०×१०८=४६६५६०)+ ४३२०=४७०८८० कुल ध्वजाएँ एक समवसरणमें होती हैं ।

संलग्गा सयल-धया, कणयत्थंभेसु रयण-खचिदेसु ।
थंभुच्छेहो णिय-णिय-जिण[2]-तणु-उदएहि बारस-हदेहिं ।।८२९।।

६००० । ५४०० । ४८०० । ४२०० । ३६०० । ३००० । २४०० । १८०० ।

१२०० । १०८० । ९६० । ८४० । ७२० । ६०० । ५४० । ४८० । ४२० ।

३६० । ३०० । २४० । १८० । १२० । २७ । २१ ।

अर्थ :—समस्त ध्वजाएँ रत्नोंसे खचित स्वर्णमय स्तम्भोंमें संलग्न रहती है । इन स्तम्भोंकी ऊँचाई अपने-अपने तीर्थंकरोके शरीरकी ऊँचाईसे बारह-गुणी हुआ करती है ।।८२९।।

स्तम्भोंका विस्तार—

उसहम्मि थंभ-रुंदं, चउसट्ठी-अहिय-दु-सय-पव्वाणि ।
तिय-भजिदाणि कमसो, एक्करसूणाणि णेमि-पज्जंतं ।।८३०।।

---

१. ब. उ. अट्ठुत्तरसहिए । २. द. जिण अण उदएहिं, ज. उ. जिण जिण उदएहिं ।

पासम्मि थंभ-रुंदा, पक्का पणवण्ण छक्क-पविहत्ता ।
चउदाला छक्क-हिदा, णिद्दिट्ठा वड्ढमाणम्मि ॥८३१॥

२६४/३	२५३/३	२४२/३	२३१/३	२२०/३	२०९/३	१९८/३	१८७/३	१७६/३	१६५/३	१५४/३

१४३/३	१३२/३	१२१/३	११०/३	९९/३	८८/३	७७/३	६६/३	५५/३	४४/३	३३/३	५५/६	४४/६

अर्थ :—ऋषभदेवके समवसरणमें इन स्तम्भोंका विस्तार तीनसे भाजित दो सौ चौंसठ अंगुल था। फिर इसके आगे नेमिनाथ पर्यन्त क्रमशः भाज्य राशि में ग्यारह-ग्यारह कम होते गये हैं। पार्श्वनाथके समवसरणमें इन स्तम्भोंका विस्तार छह से विभक्त पचपन अंगुल और वर्धमान स्वामीके छहसे भाजित चवालीस अंगुल प्रमाण कहा गया है ॥८३०-८३१॥

ध्वजदण्डोंका अन्तर—

धय-दंडाणं अंतरमुसह-जिणे छस्सयाणि चावाणि ।
चउवीसेहि हिदाणि, पण-कदि-हीणाणि जाव णेमि-जिणं ॥८३२॥

६००/२४	५७५/२४	५५०/२४	५२५/२४	५००/२४	४७५/२४	४५०/२४	४२५/२४	४००/२४	३७५/२४	३५०/२४

३२५/२४	३००/२४	२७५/२४	२५०/२४	२२५/२४	२००/२४	१७५/२४	१५०/२४	१२५/२४	१००/२४	७५/२४

पणुवीस-अहिय-धणु-सय [1]अडदाल-हिदं च पासणाहम्मि ।
वीर - जिणे एक्क - सयं, तेत्तिय - मेत्तेहि अवहरिदं ॥८३३॥

१२५/४८	१००/४८

अर्थ :—ऋषभ जिनेन्द्रके समवसरणमें ध्वज-दण्डोंका अन्तर चौबीससे भाजित छह सौ धनुष प्रमाण था। फिर इसके आगे नेमि-जिनेन्द्र पर्यन्त भाज्य राशिमेंसे क्रमशः उत्तरोत्तर पाँचका वर्ग अर्थात् पच्चीस-पच्चीस कम होते गये हैं। पार्श्वनाथ तीर्थंकरके समवसरणमें इन ध्वज-दण्डोंका अन्तर अड़तालीससे भाजित एक सौ पच्चीस धनुष एवं वीर जिनेन्द्रके समवसरण में इतने मात्र (अड़तालीस) से भाजित एक सौ धनुष-प्रमाण था ॥८३२-८३३॥

---

१. द. क. अडदालसहिदं च।

ध्वजभूमियोंका विस्तार—

णिय-णिय-वल्लि-खिदीणं, जेत्तिय-मेत्तो हुवेदि वित्थारो ।
णिय - णिय - धय - भूमीणं, तेत्तिय - मेत्तो मुणेयव्वो ।।८३४।।

२६४/२८८	२५३/२८८	२४२/२८८	२३१/२८८	२२०/२८८	२०९/२८८	१९८/२८८	१८७/२८८	१७६/२८८	१६५/२८८	१५४/२८८	१४३/२८८
१३२/२८८	१२१/२८८	११०/२८८	९९/२८८	८८/२८८	७७/२८८	६६/२८८	५५/२८८	४४/२८८	३३/२८८	५५/५७६	४४/५७६

। पंचम-धय-भूमी समत्ता ।

अर्थ :– अपनी-अपनी लता-भूमियोंका जितना विस्तार होता है उतना ही विस्तार अपनी-अपनी ध्वज-भूमियों का भी जानना चाहिए ।।८३४।।

। पंचम ध्वजभूमिका वर्णन समाप्त हुआ ।

तीसरे कोटका विस्तार—

तदिया साला अज्जुण-वण्णा णिय-धूलिसाल-सरिसगुणा ।
णवरि य [1]दुगुणो वासो, भावणया दार-रक्खणया ।।८३५।।

२४/२८८	२३/२८८	२२/२८८	२१/२८८	२०/२८८	१९/२८८	१८/२८८	१७/२८८	१६/२८८	१५/२८८	१४/२८८	१३/२८८
१२/२८८	११/२८८	१०/२८८	९/२८८	८/२८८	७/२८८	६/२८८	५/२८८	४/२८८	३/२८८	५/५७६	१/१४४

। तदिय-साला समत्ता[2] ।

अर्थ :— इसके आगे चाँदीके सदृश वर्णवाला तीसरा कोट अपने धूलिसाल कोटके ही सदृश होता है । परन्तु यहाँ इतनी विशेषता है कि इस कोटका विस्तार दूना होता है और इसके द्वाररक्षक, भवनवासी देव होते हैं ।।८३५।।

। तीसरे कोटका वर्णन समाप्त हुआ ।

---

१. ब. क. ज. उ. दुगुणा । २, ब. क. ज. य. उ. सम्मत्ता ।

कल्पभूमिका विस्तार—

तत्तो छट्ठी भूमी, दसविह - कप्पद्दुमेहिं संपुण्णा ।
णिय - णिय - धय - भूमीणं वास-समा-कप्पतरु-भूमी ॥८३६॥

२६४/२८८	२५३/२८८	२४२/२८८	२३१/२८८	२२०/२८८	२०९/२८८	१९८/२८८	१८७/२८८	१७६/२८८	१६५/२८८	१५४/२८८	१४३/२८८
१३२/२८८	१२१/२८८	११०/२८८	९९/२८८	८८/२८८	७७/२८८	६६/२८८	५५/२८८	४४/२८८	३३/२८८	५५/५७६	४४/५७६

अर्थ :—इसके आगे छठी कल्पभूमि है, जो दस प्रकारके कल्पवृक्षोंसे परिपूर्ण और अपनी-अपनी ध्वज-भूमियोंके विस्तार प्रमाण विस्तार वाली होती है ॥८३६॥

[तालिका : २२ पृष्ठ सं० २५३ पर देखिये]

कल्पभूमियोंका वर्णन—

पाणंग-तूरियंगा, भूसण-वत्थंग-भोयणंगा य ।
आलय-दीविय[1]-भायण-माला-तेयंगया तरुओ ॥८३७॥

अर्थ :—इस भूमिमें पानाङ्ग, तूर्याङ्ग, भूषणाङ्ग, वस्त्राङ्ग, भोजनाङ्ग, आलयाङ्ग, दीपाङ्ग, भाजनाङ्ग, मालाङ्ग और तेजाङ्ग ये दस प्रकारके कल्पवृक्ष होते हैं ॥८३७॥

ते पाण - तूर - भूसण - वत्थाहारालयप्पदीवाणि ।
भायण - माला - जोदिणि देंती संकप्प - मेत्तेण ॥८३८॥

अर्थ :—वे (कल्पवृक्ष मनुष्योंको) संकल्प मात्रसे पानक, वाद्य, आभूषण, वस्त्र, भोजन, प्रासाद, दीपक, बर्तन, मालाएं एवं तेजयुक्त पदार्थ देते है ॥८३८॥

---

१. द. ज. य. वीग्यि ।

स्तम्भों, ध्वजदण्डों एवं ध्वजभूमियों तथा तृतीय कोट का प्रमाण

नं.	स्तम्भों की ऊँचाई गाथा ८२९	स्तम्भों का विस्तार गाथा ८३०	ध्वजदण्डों का अन्तर गाथा ८३२	ध्वजभूमियों का विस्तार गाथा ८३४	तृतीय कोट का विस्तार गाथा ८३५	कल्प भूमिका विस्तार ८३६
१	६००० धनुष	$३\frac{२}{३}$ हाथ	२५ धनुष	$३\frac{२}{३}$ कोस	$६६६\frac{२}{३}$ धनुष	$३\frac{२}{३}$ कोस
२	५४०० धनुष	$३\frac{३७}{७२}$ हाथ	$२३\frac{२३}{२४}$ धनुष	$३\frac{३७}{७२}$ कोस	$६३८\frac{८}{९}$ धनुष	$३\frac{३७}{७२}$ कोस
३	४८०० धनुष	$३\frac{१३}{३६}$ हाथ	$२२\frac{११}{१२}$ धनुष	$३\frac{१३}{३६}$ कोस	$६११\frac{१}{९}$ धनुष	$३\frac{१३}{३६}$ कोस
४	४२०० धनुष	$३\frac{५}{२४}$ हाथ	$२१\frac{७}{८}$ धनुष	$३\frac{५}{२४}$ कोस	$५८३\frac{१}{३}$ धनुष	$३\frac{५}{२४}$ कोस
५	३६०० धनुष	$३\frac{१}{१८}$ हाथ	$२०\frac{५}{६}$ धनुष	$३\frac{१}{१८}$ कोस	$५५५\frac{५}{९}$ धनुष	$३\frac{१}{१८}$ कोस
६	३००० धनुष	$२\frac{६५}{७२}$ हाथ	$१९\frac{१९}{२४}$ धनुष	$२\frac{६५}{७२}$ कोस	$५२७\frac{७}{९}$ धनुष	$२\frac{६५}{७२}$ कोस
७	२४०० धनुष	$२\frac{३}{४}$ हाथ	$१८\frac{३}{४}$ धनुष	$२\frac{३}{४}$ कोस	५०० धनुष	$२\frac{३}{४}$ कोस
८	१८०० धनुष	$२\frac{४३}{७२}$ हाथ	$१७\frac{१७}{२४}$ धनुष	$२\frac{४३}{७२}$ कोस	$४७२\frac{२}{९}$ धनुष	$२\frac{४३}{७२}$ कोस
९	१२०० धनुष	$२\frac{४}{९}$ हाथ	$१६\frac{२}{३}$ धनुष	$२\frac{४}{९}$ कोस	$४४४\frac{४}{९}$ धनुष	$२\frac{४}{९}$ कोस
१०	१०८० धनुष	$२\frac{७}{२४}$ हाथ	$१५\frac{५}{८}$ धनुष	$२\frac{७}{२४}$ कोस	$४१६\frac{२}{३}$ धनुष	$२\frac{७}{२४}$ कोस
११	९६० धनुष	$२\frac{५}{३६}$ हाथ	$१४\frac{७}{१२}$ धनुष	$२\frac{५}{३६}$ कोस	$३८८\frac{८}{९}$ धनुष	$२\frac{५}{३६}$ कोस
१२	८४० धनुष	$१\frac{७१}{७२}$ हाथ	$१३\frac{१३}{२४}$ धनुष	$१\frac{७१}{७२}$ कोस	$३६१\frac{१}{९}$ धनुष	$१\frac{७१}{७२}$ कोस
१३	७२० धनुष	$१\frac{५}{६}$ हाथ	$१२\frac{१}{२}$ धनुष	$१\frac{५}{६}$ कोस	$३३३\frac{१}{३}$ धनुष	$१\frac{५}{६}$ कोस
१४	६०० धनुष	$१\frac{४९}{७२}$ हाथ	$११\frac{११}{२४}$ धनुष	$१\frac{४९}{७२}$ कोस	$३०५\frac{५}{९}$ धनुष	$१\frac{४९}{७२}$ कोस
१५	५४० धनुष	$१\frac{१९}{३६}$ हाथ	$१०\frac{५}{१२}$ धनुष	$१\frac{१९}{३६}$ कोस	$२७७\frac{७}{९}$ धनुष	$१\frac{१९}{३६}$ कोस
१६	४८० धनुष	$१\frac{३}{८}$ हाथ	$९\frac{३}{८}$ धनुष	$१\frac{३}{८}$ कोस	२५० धनुष	$१\frac{३}{८}$ कोस
१७	४२० धनुष	$१\frac{२}{९}$ हाथ	$८\frac{१}{३}$ धनुष	$१\frac{२}{९}$ कोस	$२२२\frac{२}{९}$ धनुष	$१\frac{२}{९}$ कोस
१८	३६० धनुष	$१\frac{५}{७२}$ हाथ	$७\frac{७}{२४}$ धनुष	$१\frac{५}{७२}$ कोस	$१९४\frac{४}{९}$ धनुष	$१\frac{५}{७२}$ कोस
१९	३०० धनुष	२२ अंगुल	$६\frac{१}{४}$ धनुष	$\frac{११}{१२}$ कोस	$१६६\frac{२}{३}$ धनुष	$\frac{११}{१२}$ कोस
२०	२४० धनुष	$१८\frac{१}{३}$ अंगुल	$५\frac{५}{२४}$ धनुष	$\frac{५५}{७२}$ कोस	$१३८\frac{८}{९}$ धनुष	$\frac{५५}{७२}$ कोस
२१	१८० धनुष	$१४\frac{२}{३}$ अंगुल	$४\frac{१}{६}$ धनुष	$\frac{११}{१८}$ कोस	$१११\frac{१}{९}$ धनुष	$\frac{११}{१८}$ कोस
२२	१२० धनुष	११ अंगुल	$३\frac{५}{८}$ धनुष	$\frac{११}{२४}$ कोस	$८३\frac{१}{३}$ धनुष	$\frac{११}{२४}$ कोस
२३	२७ धनुष	$६\frac{१}{६}$ अंगुल	$२\frac{२९}{४८}$ धनुष	$\frac{५५}{१४४}$ कोस	$६६\frac{४}{९}$ धनुष	$\frac{५५}{१४४}$ कोस
२४	२१ धनुष	$७\frac{१}{३}$ अंगुल	$२\frac{१}{१२}$ धनुष	$\frac{११}{३६}$ कोस	$५५\frac{५}{९}$ धनुष	$\frac{११}{३६}$ कोस

कत्थ वि वर-वावीओ, कमलुप्पल-कुमुद-परिमलिल्लाओ ।
सुर-णर-मिहुण-तणुग्गय - कुंकुम - पंकेहिं पिंजर-जलाओ ॥८३९॥
कत्थ वि हम्मा रम्मा, कीडण-सालाओ कत्थ वि वराओ ।
कत्थ वि पेक्खण-साला, गिज्जंत-जिणिंद-जय-चरिया ॥८४०॥

अर्थ :—कल्प भूमिमें कहीं पर कमल, उत्पल एवं कुमुदोंकी सुगन्धसे परिपूर्ण तथा देव एवं मनुष्य युगलोंके शरीरसे निकले हुए केशरके कर्दमसे पीत-जलवाली उत्तम वापिकाएँ, कहीं पर रमणीय प्रासाद, कहीं पर उत्तम क्रीड़न-शालाएँ और कहींपर जिनेन्द्रदेवके विजय-चरित्रके गीतोंसे युक्त प्रेक्षण (नृत्य देखनेकी) शालाएँ होती हैं ॥८३९-८४०॥

बहु-भूमी-भूसणया, सव्वे वर-विविह-रयण-णिम्मविदा ।
एदे पंति-कमेणं, सोहंते कप्प - भूमीसु ॥८४१॥

अर्थ :—उत्तम नाना रत्नोंसे निर्मित और अनेक खण्डों (मंजिलों) से सुशोभित ये सब हर्म्यादिक (प्रासाद, क्रीड़ागृह, प्रेक्षागृह आदि) पंक्ति क्रमसे इन कल्पभूमियोंमें शोभायमान होते हैं ॥८४१॥

चत्तारो चत्तारो, पुव्वादिसु[1] महा णमेरु-मंदारा ।
संताण-पारिजादा, सिद्धत्था[2] कप्प - भूमीसुं ॥८४२॥

अर्थ :—कल्पभूमियों पर पूर्वादिक दिशाओंमें नमेरु, मन्दार, सन्तानक और पारिजात, ये चार-चार महान् सिद्धार्थ वृक्ष होते हैं ॥८४२॥

सव्वे सिद्धत्थ-तरू, तिप्पायारा ति[3]- मेहलसिरत्था ।
एक्केक्कस्स य तरुणो, मूले चत्तारि चत्तारि ॥८४३॥
सिद्धाणं पडिमाओ, विचित्त-पीढाओ रयण-मइयाओ ।
वंदण - मेत्त - णिवारिय - दुरंत - संसार - भीदीओ ॥८४४॥

अर्थ :—ये सब सिद्धार्थवृक्ष तीन कोटोंसे युक्त और तीन-मेखलाओंके ऊपर स्थित होते हैं। इनमें से प्रत्येक वृक्षके मूल भागमें अद्भुत पीठोंसे संयुक्त और वन्दना करने मात्रसे ही दुरन्त संसारके भयको नष्ट करनेवाली ऐसी रत्नमय चार-चार प्रतिमाएँ सिद्धोंकी होती हैं ॥८४३-८४४॥

---

१. द. ज. य. पुव्वादिसुहाण । २. द. सिद्धंता । ३. द ज. य. उ. तिमेहलसरिच्छा ।

सालत्तय-संवेढिय-ति-पीढ-उवरम्मि माणथंभाओ ।
चत्तारो चत्तारो, सिद्धत्थ-तरुम्मि एक्केक्के ॥८४५॥

अर्थ :—एक-एक सिद्धार्थ वृक्षके आश्रित, तीन कोटोंसे संवेष्टित पीठत्रयके ऊपर चार-चार मानस्तम्भ होते हैं ॥८४५॥

कप्पतरू सिद्धत्था, कीडण - सालाओ तासु [1]पासादा ।
णिय-णिय-जिण-उदयेहिं बारस-गुणिदेहिं सम-उदया ॥८४६॥

६००० । ५४०० । ४८०० । ४२०० । ३६०० । ३००० । २४०० । १८०० ।

१२०० । १०८० । ९६० । ८४० । ७२० । ६०० । ५४० । ४८० । ४२० ।

३६० । ३०० । २४० । १८० । १२० । २७ । २१ ।

। छट्ठ भूमि-समत्ता ।

अर्थ :—कल्पभूमियोंमें स्थित सिद्धार्थ-कल्पवृक्ष, क्रीड़नशालाएँ एवं प्रासाद बारहसे गुणित अपने-अपने जिनेन्द्रकी ऊँचाई सदृश ऊँचाई वाले होते हैं ॥८४६॥

। छठी भूमिका वर्णन समाप्त हुआ ।

कल्पतरुभूमि स्थित नाट्यशालाएँ—

कप्प-तरु-भूमि-पणिधिसु, वीहिं पडि दिव्व-रयण-णिम्मविदा ।
चउ चउ णट्टय-साला, णिय-चेत्त-तरूहि सरिस-उच्छेहो ॥८४७॥

६००० । ५४०० । ४८०० । ४२०० । ३६०० । ३००० । २४०० । १८०० ।

१२०० । १०८० । ९६० । ८४० । ७२० । ६०० । ५४० । ४८० । ४२० । ३६० ।

३०० । २४० । १८० । १२० । २७ । २१ ।

अर्थ :—कल्पतरु-भूमिके पार्श्वभागोंमें प्रत्येक वीथीके आश्रित दिव्य रत्नोंसे निर्मित और अपने चैत्य-वृक्षोंके सदृश ऊँचाई वाली चार-चार नाट्यशालाएँ होती हैं ॥८४७॥

---

1. द. ब. क. ज. य. उ. पासादो ।

पण-भूमि-भूसिदाओ, सव्वाओ बु-तीस-रंग-भूमीओ ।
जोइसिय - कण्णयाहिं, पणच्चमाणाहि रम्माओ ।।८४८।।

। णट्टयसाला समत्ता ।

अर्थ :—सर्व नाटचशालाएँ पाँच भूमियो (खण्डों-मंजिलों) से विभूषित, बत्तीस रङ्ग-भूमियों सहित और नृत्य करती हुई ज्योतिषी कन्याओंसे रमणीय होती हैं ।।८४८।।

। नाटचशालाओंका वर्णन समाप्त हुआ ।

चतुर्थ वेदी --

तत्तो चउत्थ-वेदी, हवेदि णिय-पढम-वेदिया-सरिसा ।
णवरि विसेसो भावण - देवा दाराणि रक्खंति ।।८४९।।

। तुरिय-वेदी समत्ता ।

अर्थ :—इसके आगे अपनी प्रथम वेदी सदृश चौथी वेदी होती है। विशेषता मात्र इतनी है कि यहाँ द्वारों की रक्षा भवनवासी देव करते हैं ।।८४९।।

। चौथी वेदीका वर्णन समाप्त हुआ ।

भवन-भूमियाँ —

तत्तो भवण-खिदीओ, भवणाइं तासु रयण-रइदाइं ।
धुव्वंत - धय -[१]वडाइं, वर - तोरण - तुंग - दाराइं ।।८५०।।

अर्थ :—इससे आगे भवन-भूमियाँ होती हैं; जिनमें फहराती हुई ध्वजा-पताकाओं सहित एवं उत्तम तोरण-युक्त उन्नत द्वारों वाले रत्न-निर्मित भवन होते हैं ।।८५०।।

सुर - मिहुण - गेय - णच्चण-तूर-रवेहिं जिणाभिसेएहिं ।
सोहंते ते भवणा, एक्केक्के भवण - भूमीसु ।।८५१।।

अर्थ :—भवन-भूमियोंपर स्थित वे एक-एक भवन सुर-युगलोंके गीत, नृत्य एवं बाजोंके शब्दोंसे तथा जिनाभिषेकोंसे शोभायमान होते हैं ।।८५१।।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. वडाइ ।

उववण-पहुदि सव्वं, पुव्वं विय भवण-भूमि-विक्खंभो ।
णिय-पढम-वेदि-वासे, गुणिदे एक्कारसेहिं सारिच्छा ॥८५२॥

२६४	२५३	२४२	२३१	२२०	२०६	१९८	१८७	१७६	१६५	१५४	१४३
५७६	५७६	५७६	५७६	५७६	५७६	५७६	५७६	५७६	५७६	५७६	५७६

१३२	१२१	११०	९९	८८	७७	६६	५५	४४	३३	५५	४४
५७६	५७६	५७६	५७६	५७६	५७६	५७६	५७६	५७६	५७६	११५२	११५२

। भवणक्खिदी समत्ता ।

अर्थ :—यहाँ उपवनादिक सब पूर्व सदृश ही होते हैं । उपर्युक्त भवन-भूमियोंका विस्तार ग्यारह से गुणित अपनी प्रथम वेदीके विस्तार सदृश है ॥८५२॥

। भवनभूमिका वर्णन समाप्त हुआ ।

स्तूपोंका वर्णन—

भवण-खिदि-प्पणिधीसुं, वीहिं पडि होंति णव-णवा थूहा ।
जिण - सिद्ध - प्पडिमाहिं, अप्पडिमाहिं समाइण्णा ॥८५३॥

अर्थ :—भवन-भूमिके पार्श्वभागोंमें प्रत्येक वीथीके मध्यमें जिन (अर्हन्त) और सिद्धोंकी अनुपम प्रतिमाओंसे व्याप्त नौ-नौ स्तूप होते हैं ॥८५३॥

छत्तादि-विभव-जुत्ता, चच्चंत-विचित्त-धय-चलालोला[1] ।
अट्ठ - मंगल - परियरिया, ते सव्वे दिव्व - रयणमया ॥८५४॥

अर्थ :—वे सब स्तूप छत्रादि वैभवसे संयुक्त, फहराती हुई ध्वजाओंके समूहसे चञ्चल, आठ मङ्गल द्रव्योंसे सहित और दिव्य-रत्नोंसे निर्मित होते हैं ॥८५४॥

एक्केक्केसिं थूहे, अंतरयं मयर - तोरणाण सयं ।
उच्छेहो [2]थूहाणं, णिय - चेत्त - दुमाण उदय - समं ॥८५५॥

---

१. द. ज. य. चलालोवा । २. द. ब. क. ज. य. उ. थूहाणि ।

६००० । ५४०० । ४८०० । ४२०० । ३६०० । ३००० । २४०० । १८०० । १२०० ।

१०८० । ९६० । ८४० । ७२० । ६०० । ५४० । ४८० । ४२० । ३६० । ३०० ।

२४० । १८० । १२० । २७ । २१ ।

अर्थ :–एक-एक स्तूपके बीचमें मकराकार सौ तोरण होते है । इन स्तूपोंकी ऊँचाई इनके अपने चैत्यवृक्षोंकी ऊँचाई सदृश होती है ।।८५५।।

दीहत्त - रुंद - माणं, ताणं संपइ पणट्ठ - उवएसं ।
[1]भव्वाभिसेय - णच्चण - पदाहिणं तेसु कुव्वंति ।।८५६।।

। थूहा समत्ता ।

अर्थ :—इन स्तूपोंकी लम्बाई एवं विस्तारके प्रमाण का उपदेश इस समय नष्ट हो चुका है । भव्य-जीव इन स्तूपोंका अभिषेक, पूजन और प्रदक्षिणा करते हैं ।।८५६।।

। स्तूपोंका कथन समाप्त हुआ ।

चतुर्थ कोट—

तत्तो चउत्थ - साला, हुवेइ आयास-फलिह-संकासा ।
मरगय - मणिमय - गोउर-दार - चउक्केण रमणिज्जा ।।८५७।।

अर्थ :—इसके आगे निर्मल-स्फटिक रत्न सदृश और मरकत-मणिमय चार-गोपुर-द्वारोंसे रमणीय ऐसा चतुर्थ कोट होता है ।।८५७।।

वर-रयण - दंड - मंडल-भुज-दंडा कप्पवासिणो देवा ।
जिणपाद - कमल-भत्ता, गोउर - दाराणि रक्खंति ।।८५८।।

अर्थ :—जिनके भुजदण्ड उत्तम रत्नमय दण्डोंसे मण्डित हैं और जिनेन्द्र भगवान्‌के चरण-कमलोंमें जिनकी भक्ति है ऐसे कल्पवासी देव यहाँ गोपुर द्वारोंकी रक्षा करते हैं ।।८५८।।

सालाणं विक्खंभो, कोसं चउवीस वसह - णाहम्मि ।
अडसीदि - दुसय - भजिदा एक्कूणा जाव णेमि-जिणं ।।८५९।।

---

१. द. भव्वाओ ।

$\frac{२४}{२८८}$	$\frac{२३}{२८८}$	$\frac{२२}{२८८}$	$\frac{२१}{२८८}$	$\frac{२०}{२८८}$	$\frac{१९}{२८८}$	$\frac{१८}{२८८}$	$\frac{१७}{२८८}$	$\frac{१६}{२८८}$	$\frac{१५}{२८८}$	$\frac{१४}{२८८}$	$\frac{१३}{२८८}$	$\frac{१२}{२८८}$

$\frac{११}{२८८}$	$\frac{१०}{२८८}$	$\frac{९}{२८८}$	$\frac{८}{२८८}$	$\frac{७}{२८८}$	$\frac{६}{२८८}$	$\frac{५}{२८८}$	$\frac{४}{२८८}$	$\frac{३}{२८८}$

अर्थ :—वृषभनाथ भगवान्‌के समवसरणमें कोटका विस्तार दो सौ अठासीसे भाजित चौबीस कोस प्रमाण था। इसके आगे नेमिनाथ पर्यन्त क्रमशः एक-एक कोस कम होता गया है ।।८५९।।

पणवीसाहिय - छस्सय - दंडा छत्तीस[1]-संविहत्था य ।
पासम्मि वड्ढमाणे, णव - हिद - पणुवीस-अहिय-सयं ।।८६०।।

$\frac{६२५}{३६}$[2]	$\frac{१२५}{९}$

। तुरिम-साला समत्ता ।

अर्थ :— भगवान् पार्श्वनाथके समवसरणमें कोटका विस्तार छत्तीससे विभक्त छहसौ पच्चीस धनुष और वर्धमान स्वामीके कोटका विस्तार नौसे भाजित एकसौ पच्चीस धनुष प्रमाण था ।।८६०।।

। चतुर्थ कोटका वर्णन समाप्त हुआ ।

श्रीमण्डपभूमि—

अह सिरि-मंडव-भूमी, अट्ठमया [3]अणुवमा मणोहरया ।
वर - रयण - थंभ - धरिया, मुत्ता-जालाइ[4]-कय-सोहा ।।८६१।।

अर्थ :—इसके पश्चात् अनुपम, मनोहर, उत्तम रत्नोंके स्तम्भों पर स्थित और मुक्ता-जालादिसे शोभायमान आठवीं श्रीमण्डपभूमि होती है ।।८६१।।

णिम्मल-फलिह-विणिम्मिय-सोलस-भित्तीण अंतरे कोट्ठा ।
बारस ताणं उवओ, णिय-जिण-उदएहि बारस-हदेहिं ।।८६२।।

---

१. ब. बत्तीस । २. ब. १२५/३२ । ३. द. मणुवमा, ब. ज. य. मणुवमाणमणो, क. मणुवमणो, उ. मणुवमाणं मणो । ४. द. ब. क. ज. य. उ. जालाणोकमसोहा ।

६००० । ५४०० । ४८०० । ४२०० । ३६०० । ३००० । २४०० । १८०० । १२०० ।
१०८० । ९६० । ८४० । ७२० । ६०० । ५४० । ४८० । ४२० । ३६० । ३०० ।
२४० । १८० । १२० । २७ । २१ ।

अर्थ :--निर्मल स्फटिकसे निर्मित सोलह दीवालोंके मध्य बारह कोठे होते हैं । इन कोठोंकी ऊँचाई अपने-अपने जिनेन्द्रकी ऊँचाईसे बारह-गुणी होती है ।।८६२।।

वीसाहिय - कोस - सयं, रुंदं कोट्ठाण उसह-णाहम्मि ।
बारस - वग्गेण हिदं, पणहीणं जाव णेमि - जिणं ।।८६३।।

पास-जिणे पणवीसा, अडसीदी-अहिय-दुसय-पविहत्ता ।
वीर-जिणिंदे दंडा, पंच-घणा दस-हदा य णव-भजिदा ।।८६४।।

१२०	११५	११०	१०५	१००	९५	९०	८५	८०	७५	७०
१४४	१४४	१४४	१४४	१४४	१४४	१४४	१४४	१४४	१४४	१४४

६५	६०	५५	५०	४५	४०	३५	३०	२५	२०	१५
१४४	१४४	१४४	१४४	१४४	१४४	१४४	१४४	१४४	१४४	१४४

२५	१२५०
२८८	९

। सिरिमंडवा समत्ता ।

अर्थ :—ऋषभतीर्थंकरके समवसरणमें कोठोंका विस्तार बारहके वर्ग (१४४) से भाजित एक सौ बीस कोस प्रमाण था । इसके आगे नेमिनाथ पर्यंत क्रमशः उत्तरोत्तर पांच-पांच कम होते गये हैं । पार्श्व जिनेन्द्र के यह विस्तार दो सौ अठासीसे भाजित पच्चीस कोस और महावीरके पाँचके घनको दससे गुणाकर नौ का भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतने धनुष प्रमाण था ।।८६३-८६४।।

। श्रीमण्डपोंका वर्णन समाप्त हुआ ।

तालिका : २३

कल्पवृक्षों···नाट्यशालाओं, स्तूपों एवं कोठों आदि का प्रमाण—

नं०	कल्पवृक्ष क्रीडन शा. और प्रासादोंकी ऊँचाई गा. ८४६	नाट्यशालाओं की ऊँचाई गा. ८४७	भवन-भूमियोंका विस्तार गा. ८५२	स्तूपोंकी ऊँचाई गा. ८५५	चतुर्थकोट का विस्तार गा. ८५९	दीवालों (कोठों) की ऊँचाई गा. ८६२	कोठोंका विस्तार गा. ८६३
१	६००० धनुष	६००० धनुष	१$\frac{१}{२}$ कोस	६००० घ.	१६६६$\frac{२}{३}$ घ.	६००० घ.	१६६६$\frac{२}{३}$ घ.
२	५४०० ,,	५४०० ,,	१$\frac{१०१}{४४४}$,,	५४०० ,,	१५९$\frac{१३}{१६}$,,	५४०० ,,	१५९७$\frac{२}{९}$,,
३	४८०० ,,	४८०० ,,	१$\frac{४१}{७२}$,,	४८०० ,,	१५२$\frac{०}{९}$,,	४८०० ,,	१५२७$\frac{७}{९}$,,
४	४२०० ,,	४२०० ,,	१$\frac{६७}{१४४}$,,	४२०० ,,	१४५$\frac{५}{६}$,,	४२०० ,,	१४५८$\frac{१}{३}$,,
५	३६०० ,,	३६०० ,,	१$\frac{३}{३६}$,,	३६०० ,,	१३८$\frac{८}{९}$,,	३६०० ,,	१३८८$\frac{८}{९}$,,
६	३००० ,,	३००० ,,	१$\frac{१५}{१४४}$,,	३००० ,,	१३१$\frac{१}{९}$$\frac{९}{८}$,,	३००० ,,	१३१९$\frac{४}{९}$,,
७	२४०० ,,	२४०० ,,	१$\frac{३}{८}$,,	२४०० ,,	१२५ ,,	२४०० ,,	१२५० ,,
८	१८०० ,,	१८०० ,,	१$\frac{४३}{१४४}$,,	१८०० ,,	११८$\frac{१}{१८}$,,	१८०० ,,	११८०$\frac{५}{९}$,,
९	१२०० ,,	१२०० ,,	१$\frac{२}{९}$,,	१२०० ,,	१११$\frac{१}{९}$,,	१२०० ,,	११११$\frac{१}{९}$,,
१०	१०८० ,,	१०८० ,,	१$\frac{०}{४८}$,,	१०८० ,,	१०४$\frac{१}{६}$,,	१०८० ,,	१०४१$\frac{२}{३}$,,
११	९६० ,,	९६० ,,	१$\frac{५}{७२}$,,	९६० ,,	९७$\frac{२}{९}$,,	९६० ,,	९७२$\frac{२}{९}$,,
१२	८४० ,,	८४० ,,	१९८६$\frac{१}{९}$ घ.	८४० ,,	९०$\frac{५}{१८}$,,	८४० ,,	९०२$\frac{७}{९}$,,
१३	७२० ,,	७२० ,,	१८३३$\frac{१}{३}$,	७२० ,,	८३$\frac{१}{३}$,,	७२० ,,	८३३$\frac{१}{३}$,,
१४	६०० ,,	६०० ,,	१६८०$\frac{५}{९}$,,	६०० ,,	७६$\frac{७}{१८}$,,	६०० ,,	७६३$\frac{८}{९}$,,
१५	५४० ,,	५४० ,,	१५२७$\frac{७}{९}$,,	५४० ,,	६९$\frac{४}{९}$,,	५४० ,,	६९४$\frac{४}{९}$,,
१६	४८० ,,	४८० ,,	१३७५ ,,	४८० ,,	६२$\frac{१}{२}$,,	४८० ,,	६२५ ,,
१७	४२० ,,	४२० ,,	१२२२$\frac{२}{९}$,,	४२० ,,	५५$\frac{५}{९}$,,	४२० ,,	५५५$\frac{५}{९}$,,
१८	३६० ,,	३६० ,,	१०६९$\frac{४}{९}$,,	३६० ,,	४८$\frac{११}{१८}$,,	३६० ,,	४८६$\frac{१}{९}$,,
१९	३०० ,,	३०० ,,	९१६$\frac{२}{३}$,,	३०० ,,	४१$\frac{२}{३}$,,	३०० ,,	४१६$\frac{२}{३}$,,
२०	२४० ,,	२४० ,,	७६३$\frac{८}{९}$,,	२४० ,,	३४$\frac{१}{९}$$\frac{३}{८}$,,	२४० ,,	३४७$\frac{२}{९}$,,
२१	१८० ,,	१८० ,,	६११$\frac{१}{९}$,,	१८० ,,	२७$\frac{७}{९}$,,	१८० ,,	२७७$\frac{७}{९}$,,
२२	१२० ,,	१२० ,,	४५८$\frac{१}{३}$,,	१२० ,,	२०$\frac{५}{६}$,,	१२० ,,	२०८$\frac{१}{३}$,,
२३	२७ ,,	२७ ,,	३८१$\frac{१}{९}$$\frac{७}{८}$,,	२७ ,,	१७$\frac{१}{३}$$\frac{३}{६}$,,	२७ ,,	१७३$\frac{१}{९}$$\frac{१}{८}$,,
२४	२१ ,,	२१ ,,	३०५$\frac{५}{९}$,,	२१ ,,	१३$\frac{८}{९}$,,	२१ ,,	१३८$\frac{८}{९}$,,

समवसरणगत बारह कोठोंमें बैठने वाले जीवोंका विभाग—

चेट्ठंति [1]बारस - गणा, कोट्ठाणब्भंतरेसु पुव्वादी ।
पुह पुह पदाहिणेणं गणाण साहेमि विण्णासा ।।८६५।।

अर्थ :—इन कोठोंके भीतर पूर्वादि प्रदक्षिण-क्रमसे पृथक्-पृथक् बारहगण बैठते हैं । इन गणोंके विन्यासका कथन आगे करता हूँ ।।८६५।।

अक्खीण - महाणसिया, सप्पी-खीरामियासव[2]-रसाओ ।
[3]गणहर - देव - प्पमुहा, कोट्ठे पढमम्मि चेट्ठंति ।।८६६।।

अर्थ :—इन बारह कोठोंमेंसे प्रथम कोठेमें अक्षीणमहानसिक ऋद्धि तथा सर्पिरास्रव क्षीरास्रव एवं अमृतास्रवरूप रस-ऋद्धियोंके धारक गणधर देवप्रमुख बैठा करते हैं ।।८६६।।

बिदियम्मि फलिह-भित्ती-अंतरिदे कप्पवासि-देवीओ ।
तदियम्मि अज्जियाओ, [4]सावइयाओ विणीदाओ ।।८६७।।

अर्थ :—स्फटिकमणिमयी दीवालोंसे व्यवहित दूसरे कोठेमें कल्पवासिनी देवियाँ एवं तीसरे कोठेमें अतिशय विनम्र आर्यिकाएँ और श्राविकाएँ बैठती हैं ।।८६७।।

तुरिये जोइसियाणं, देवीओ परम-भत्ति-मंतीओ ।
पंचमए विणिदाओ, वितर - देवाण देवीओ ।।८६८।।

अर्थ :—चतुर्थ कोठेमें परम-भक्तिसे संयुक्त ज्योतिषी देवोंकी देवियाँ और पाँचवें कोठेमें व्यन्तर देवोंकी विनीत देवियाँ बैठा करती हैं ।।८६८।।

छट्ठम्मि जिणवरच्चण-कुसलाओ भवणवासि-देवीओ ।
सत्तमए जिण - भत्ता, दस - भेदा भावणा देवा ।।८६९।।

अर्थ :—छठे कोठेमें जिनेन्द्रदेवके अर्चनमें कुशल भवनवासिनी देवियाँ और सातवें कोठेमें दस प्रकारके जिन भक्त भवनवासी देव बैठते हैं ।।८६९।।

---

१. क. गणहराइं, द. ज. य. हिरगणाइं, ब. उ. रिहिगणाइं । २. द. ब. क. ज. य. उ. मियामिवीरसओ । ३. मणहरदेव । ४. द. ज. य. सावइयाओ वि विणिदाओ, क. सावइयाओ विणिदाओ ।

अट्ठमए अट्ठविहा, वेंतरदेवा य किण्णर-प्पहुदी ।
णवमे ससि-रवि-पहुदी, जोइसिया जिण-णिविट्ठ-मणा ॥८७०॥

अर्थ :—आठवें कोठेमें किन्नरादिक आठ प्रकारके व्यन्तरदेव और नवम कोठेमें जिनेन्द्र-देवमें मनको निविष्ट करने वाले चन्द्र-सूर्यादिक ज्योतिषी देव बैठते हैं ॥८७०॥

सोहम्मादी अच्चुद-कप्पंता देव-रायणो दसमे ।
एक्करसे चक्कहरा, मंडलिया पत्थिवा मणुवा ॥८७१॥

अर्थ :—दसवें कोठेमें सौधर्मस्वर्गसे लेकर अच्युत स्वर्ग पर्यन्तके देव एवं उनके इन्द्र तथा ग्यारहवें कोठेमें चक्रवर्ती, माण्डलिक राजा एवं अन्य मनुष्य बैठते हैं ॥८७१॥

बारसमम्मि य तिरिया, करि-केसरि-वग्घ-हरिण[1]-पहुदीओ ।
मोत्तूण पुव्व-वेरं, सत्तू वि सुमित्त-भाव-जुदा ॥८७२॥

। गण-विण्णासा समत्ता ।

अर्थ :—बारहवें कोठेमें हाथी, सिंह, व्याघ्र और हरिणादिक तिर्यञ्च जीव बैठते हैं । इनमें पूर्व वैरको छोड़कर शत्रु भी उत्तम मित्र भावसे संयुक्त होते हैं ॥८७२॥

[समवशरण चित्र पृष्ठ २६४ पर देखें]

। गणोंकी रचना समाप्त हुई ।

---

१. द. हरिणी ।
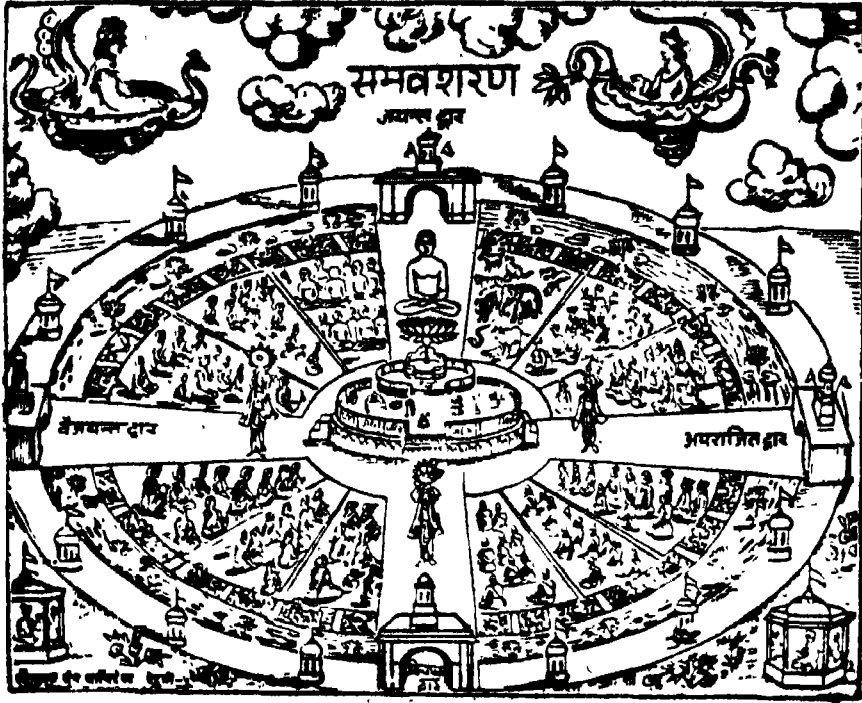
पाँचवीं वेदी—

अह पंचम-वेदीओ, णिम्मल-फलिहोवलेहि रइदाओ ।
णिय-णिय-चउत्थ-साला-सरिच्छ - उच्छेह-पहुदीओ ।।८७३।।

२४	२३	२२	२१	२०	१९	१८	१७	१६	१५	१४	१३
२८८	२८८	२८८	२८८	२८८	२८८	२८८	२८८	२८८	२८८	२८८	२८८

१२	११	१०	९	८	७	६	५	४	३	५	४
२८८	२८८	२८८	२८८	२८८	२८८	२८८	२८८	२८८	२८८	५७६	५७६

। पंचम-वेदी समत्ता ।

अर्थ :—इसके अनन्तर निर्मल स्फटिक पाषाणोंसे विरचित और अपने-अपने चतुर्थ कोटके सदृश विस्तारादि सहित पाँचवीं वेदियाँ होती हैं ।।८७३।।

। पाँचवीं वेदीका वर्णन समाप्त हुआ ।

प्रथम पीठका प्रमाण—

तत्तो पढमे पीढा, वेरुलिय - मणीहि णिम्मिदा ताणं ।
णिय - माणत्थंभादिम - पीढुच्छेहोव्व उच्छेहा[1] ।।८७४।।

२४/३	२३/३	२२/३	२१/३	२०/३	१९/३	१८/३	१७/३	१६/३	१५/३	१४/३	१३/३	१२/३	११/३

१०/३	९/३	८/३	७/३	६/३	५/३	४/३	३/३	५/६	४/६

अर्थ :—इसके आगे वैडूर्य-मणियोंसे निर्मित प्रथम पीठ है । इन पीठोंकी ऊँचाई अपने-अपने मानस्तम्भादि की ऊँचाई सदृश है ।।८७४।।

पत्तेक्कं कोट्ठाणं, [2]पणधीसु तह य सयल-वीहीणं ।
होंति हु सोलस सोलस, सोवाणा पढम पीढेसु ।।८७५।।

अर्थ :—प्रथम पीठोंके ऊपर (उपर्युक्त) बारह कोठोंमेंसे प्रत्येक कोठेके प्रवेश-द्वारमें एवं समस्त (चारों) वीथियोंके सम्मुख सोलह-सोलह सोपान होते हैं ।।८७५।।

रुंदेण पढम-पीढा, कोसा चउवीस बारसेहि [3]हिदा ।
उसह - जिणिंदे कमसो, एक्केक्कूणाणि णेमि - जिणं ।।८७६।।

२४/१२	२३/१२	२२/१२	२१/१२	२०/१२	१९/१२	१८/१२	१७/१२	१६/१२	१५/१२	१४/१२	१३/१२	१२/१२

११/१२	१०/१२	९/१२	८/१२	७/१२	६/१२	५/१२	४/१२	३/१२

अर्थ :—ऋषभ-जिनेन्द्रके समवसरणमें प्रथम पीठका विस्तार बारहसे भाजित चौबीस कोस था । फिर इसके आगे नेमि जिनेन्द्र पर्यन्त क्रमशः एक-एक अंक कम होता गया है ।।८७६।।

---

१. द. ब. क. ज. उ. महीदुच्छेहो हवंति दुच्छेहो, य. महीदुच्छेहो बंति उच्छेहो । २. द. पणवीसुत्तय-सय-वीहीणं, ब. ज. य. उ. पणधीसुत्तय-सयल-वीहीणं । क. पणधीसुत्तयसयल वीहाणं । ३. द. ब. क. ज. य. उ. हदा ।

पण-परिमाणा कोसा, चउवीस हिदा य पासणाहम्मि ।
एक्को च्चिय छक्क - हिदे देवे सिरिवड्ढमाणम्मि ॥८७७॥

५	१
२४	६

अर्थ :—पार्श्व-जिनेन्द्रके समवसरणमें प्रथम पीठका विस्तार चौबीससे भाजित पाँच कोस और वर्धमान जिनेन्द्रके समवसरणमें छहसे भाजित एक कोस प्रमाण ही था ॥८७७॥

पीठोंकी परिधियोंका प्रमाण—

पीढाणं परिहीओ, णिय-णिय-वित्थार-तिगुणिय-पमाणा ।
वर - रयण - णिम्मियाओ, अणुवम-रमणिज्ज-सोहाओ ॥८७८॥

२४	२३	२२	२१	२०	१९	१८	१७	१६	१५	१४	१३
४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४

१२	११	१०	९	८	७	६	५	४	३	५	४
४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	८	८

अर्थ :—पीठोंकी परिधियोंका प्रमाण अपने-अपने विस्तारसे तिगुणा होता है। ये पीठिकाएँ उत्तम रत्नोंसे निर्मित एवं अनुपम रमणीय शोभासे सम्पन्न होती हैं ॥८७८॥

धर्मचक्र—

वलयोवम - पीढेसुं, विविहच्चण-दव्व-मंगल-जुदेसुं ।
सिर-धरिद-धम्म-चक्का, चेट्ठंते चउ-दिसासु जक्खिदा ॥८७९॥

अर्थ :—चूड़ी सदृश गोल तथा नाना प्रकारके पूजा-द्रव्य एवं मंगल-द्रव्यों सहित इन पीठों पर चारों दिशाओंमें धर्मचक्रको सिर पर रखे हुए यक्षेन्द्र स्थित रहते हैं ॥८७९॥

मेखलाका विस्तार—

चावाणि छस्सहस्सा, अट्ठ - हिदा पीढ-मेहला-रुंदं ।
उसह - जिणे पण्णाहिय-बे-सय-ऊणाणि णेमि - जिणं ॥८८०॥

पणवीसाहिय - छस्सय, अट्ठ-विहत्तं च पास-णाहम्मि ।
एक्क - सयं पणवीसब्भहियं वीरम्मि दोहि हिदं ॥८८१॥

६०००	५७५०	५५००	५२५०	५०००	४७५०	४५००	४२५०	४०००	३७५०
८	८	८	८	८	८	८	८	८	८

३५००	३२५०	३०००	२७५०	२५००	२२५०	२०००	१७५०	१५००	१२५०
८	८	८	८	८	८	८	८	८	८

१०००	७५०	६२५	१२५
८	८	८	८

अर्थ :—ऋषभजिनेन्द्रके समवसरणमें पीठकी मेखलाका विस्तार आठसे भाजित छह हजार धनुष प्रमाण था । पुनः इसके आगे नेमिनाथ पर्यन्त क्रमशः उत्तरोत्तर दोसौ पचास-दोसौ पचास अंक कम होते गये हैं तथा पार्श्वनाथके यह विस्तार आठसे भाजित छहसौ पच्चीस धनुष एवं वीर प्रभुके दो से भाजित एकसौ पच्चीस धनुष प्रमाण था ॥८८०-८८१॥

गणधरादिकों द्वारा की हुई भक्ति—

आरुहिदूणं तेसुं, [1]गणहर - देवादि - बारस- गणा ते ।
कादूण [2]ति - प्पदाहिणमच्चंति मुहं मुहं णाहं ॥८८२॥

थोदूण थुदि - सएहिं, असंखगुणसेढि-कम्म-णिज्जरणं ।
कादूण पसण्ण - मणा, णिय - णिय - कोट्ठेसु पविसंति ॥८८३॥

। पढम-पीढा समत्ता ।

अर्थ :—वे गणधरदेवादिक बारह-गण उन पीठों पर चढ़कर और तीन प्रदक्षिणा देकर बार-बार जिनेन्द्र देवकी पूजा करते हैं, तथा सैकड़ों स्तुतियों द्वारा कीर्तन कर कर्मोकी असंख्यात-गुणश्रेणीरूप निर्जरा करके प्रसन्न-चित्त होते हुए अपने-अपने कोठोंमें प्रवेश करते हैं। अर्थात् अपने-अपने कोठोंमें बैठ जाते हैं ॥८८२-८८३॥

। प्रथम पीठोंका वर्णन समाप्त हुआ ।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. गणगणदेवादि। २. द. बिप्पणवाहीण, क बिप्पवीहीणं, ज. ब. उ. बिप्पवाहीणं।

विशेषार्थ :—समोसरणके बारह कोठोंमें क्रमशः ऋषि (गणधरादिक), कल्पवासी देवियाँ, आर्यिकाएँ, श्राविकाएँ, ज्योतिष देवियाँ, व्यन्तर देवियाँ, भवनवासिनी देवियाँ, भवनवासी देव, व्यन्तरदेव, ज्योतिषी देव, कल्पवासी देव, चक्रवर्ती आदि पुरुष तथा तिर्यंचोंके बैठनेकी व्यवस्था रहती है। जिनेन्द्र भगवानको ये सब अपने-अपने कोठोंमें प्रविष्ट होकर ही नमस्कार, वन्दना एवं स्तुति करते हैं। परन्तु सब कोठोंके प्रधान, प्रमुख गण (गणधर प्रमुख, कल्पवासी देवी प्रमुख, आर्यिका प्रमुख आदि-आदि) प्रथम पीठ पर चढ़कर तीन प्रदक्षिणा देकर जिनेन्द्र भगवान्‌की पूजा-स्तुतिरूप कीर्तन द्वारा असंख्यात गुणश्रेणीरूप निर्जरा करते हैं। भगवान महावीरके समवसरणमें यह गौरव ऋषियोंमें गौतमगणधरको, आर्यिकाओंमें आर्यिका चन्दनाको, श्रावकोंमें राजा श्रेणिक को, पशुओंमें सिंह को एवं अन्य-अन्य प्रमुखोंको अवश्य ही मिला है और गन्धकुटीकी जिस प्रथम पीठ पर खड़े होकर गणधर देवादि ने स्तुति की है उसी पीठ पर आर्यिका, श्राविका, देवियाँ और सिंहने भी पहुँच कर भक्ति-भाव पूर्वक स्तुति, वन्दनादि की है।

[तालिका : २४ पृष्ठ २६९ पर देखिये]

समवसप्त होने वाला समवसरण का मूल विस्तार

		२६१ ८६३	२६६ ८७३			गंधकुटी के प्रथम	गाथा ७२४-२५
१७.	[illegible]	[illegible]/६	[illegible]/६	[illegible]/३६	[illegible]/१८	[illegible]/४८	
१८.	आ	४८६ १/६	४८ ११/१८	१६१/६६ × २ =	१६१/४८ +	७/४८ =	३ १/२
१९	मवि	४१६ २/३	४१ २/३	६६/४८ × २ =	६६/२४ +	६/४८ =	३
२०.	मुनि	३४७ २/६	३४ १३/१८	३४५/२८८ × २ =	३४५/१४४ +	५/४८ =	२ १/२
२१.	ना	२७७ ७/६	२७ ७/६	२३/२४ × २ =	२३/१२ +	४/४८ =	२
२२.	ने	२०८ १/३	२० ५/६	६६/१६ × २ =	६६/८ +	३/४८ =	१ १/२
२३.	पार्श्व	१७३ ११/१८	१७ १३/३६	३४५/५७६ × २ =	३४५/२८८ +	५/६६ =	१ १/४
२४.	महा	१३८ ८/६	१३ ८/६	२३/४८ ×२=	२३/२४ +	१/२४ =	१ योजना

की विस्तार
:०
नुष
"
"
"
"
"
"
"
"
"
"
"
"
"

तालिका : २४

वेदी, पीठ, परिधियाँ एवं मेखला का विस्तार आदि

नं०	पाँचवीं वेदी का विस्तार गा० ८७३	प्रथम पीठ की ऊँचाई गा० ८७४	प्रथम पीठका विस्तार गा० ८७६	पीठोंकी परिधियों का प्रमाण गा० ८७८	पीठ की मेखला का विस्तार गा० ८८०
१	१६६ २/३ ध.	८ धनुष	२ कोस	६ कोस	७५० धनुष
२	१५९ १३/१८ ,,	७ २/३ ,,	१ ११/१२ ,,	५ ३/४ ,,	७१८ ३/४ ,,
३	१५२ ७/९ ,,	७ १/३ ,,	१ ५/६ ,,	५ १/२ ,,	६८७ १/२ ,,
४	१४५ ५/६ ,,	७ ,,	१ ३/४ ,,	५ १/४ ,,	६५६ १/४ ,,
५	१३८ ८/९ ,,	६ २/३ ,,	१ २/३ ,,	५ ,,	६२५ ,,
६	१३१ १७/१८ ,,	६ १/३ ,,	१ ७/१२ ,,	४ ३/४ ,,	५९३ ३/४ ,,
७	१२५ ,,	६ ,,	१ १/२ ,,	४ १/२ ,,	५६२ १/२ ,,
८	११८ १/१८ ,,	५ २/३ ,,	१ ५/१२ ,,	४ १/४ ,,	५३१ १/४ ,,
९	१११ १/९ ,,	५ १/३ ,,	१ १/३ ,,	४ ,,	५०० ,,
१०	१०४ १/६ ,,	५ ,,	१ १/४ ,,	३ ३/४ ,,	४६८ ३/४ ,,
११	९७ २/९ ,,	४ २/३ ,,	१ १/६ ,,	३ १/२ ,,	४३७ १/२ ,,
१२	९० ५/१८ ,,	४ १/३ ,,	१ १/१२ ,,	३ १/४ ,,	४०६ १/४ ,,
१३	८३ १/३ ,,	४ ,,	१ ,,	३ ,,	३७५ ,,
१४	७६ ७/१८ ,,	३ २/३ ,,	१८३३ १/३ ध०	२ ३/४ ,,	३४३ ३/४ ,,
१५	६९ ४/९ ,,	३ १/३ ,,	१६६६ २/३ ,,	२ १/२ ,,	३१२ १/२ ,,
१६	६२ १/२ ,,	३ ,,	१५०० ,,	२ १/४ ,,	२८१ १/४ ,,
१७	५५ ५/९ ,,	२ २/३ ,,	१३३३ १/३ ,,	२ ,,	२५० ,,
१८	४८ ११/१८ ,,	२ १/३ ,,	११६६ २/३ ,,	१ ३/४ ,,	२१८ ३/४ ,,
१९	४१ २/३ ,,	२ ,,	१००० ,,	१ १/२ ,,	१८७ १/२ ,,
२०	३४ १३/१८ ,,	१ २/३ ,,	८३३ १/३ ,,	१ १/४ ,,	१५६ १/४ ,,
२१	२७ ७/९ ,,	१ १/३ ,,	६६६ २/३ ,,	१ ,,	१२५ ,,
२२	२० ५/६ ,,	१ ,,	५०० ,,	३/४ ,,	९३ ३/४ ,,
२३	१७ १३/३१ ,,	५/६ ,,	४१६ २/३ ,,	५/८ ,,	७८ १/८ ,,
२४	१३ ६/१ ,,	२/३ ,,	३३३ १/३ ,,	१/२ ,,	६२ १/२ ,,

दूसरे पीठका वर्णन—

पढमोवरिम्मि विदिया, पीढा चेट्ठंति ताण उच्छेहो ।
चउ-दंडा आदि-जिणे, छब्भागेणूण[1] जाव णेमिजिणं ॥८८४॥

२४/६	२३/६	२२/६	२१/६	२०/६	१९/६	१८/६	१७/६	१६/६	१५/६	१४/६	१३/६	१२/६	११/६	१०/६

९/६	८/६	७/६	६/६	५/६	४/६	३/६

अर्थ :—प्रथम पीठोंके ऊपर दूसरे पीठ होते हैं। ऋषभदेवके समवसरणमें उनके (दूसरे) पीठकी ऊँचाई चार धनुष थी। फिर इसके आगे उत्तरोत्तर क्रमशः नेमिजिनेन्द्र पर्यन्त एक बटा छह—एक बटा छह (१/६) भाग कम होता गया है ॥८८४॥

पास-जिणे पण-दंडा, बारस-भजिदा य वीर-णाहम्मि ।
एक्को च्चिय तिय-भजिदा णाणावर-रयण-[2]णिलय-इला ॥८८५॥

५/१२	१/३

अर्थ :—पार्श्वनाथ तीर्थंकरके समवसरणमें दूसरी पीठकी ऊँचाई बारहसे भाजित पाँच धनुष और वीरनाथके तीन से भाजित एक धनुष मात्र थी। ये दूसरी पीठिकाएँ नाना प्रकारके उत्तम रत्नोंसे खचित भूमि-युक्त हैं ॥८८५॥

दूसरी पीठोंकी मेखलाओंका विस्तार—

चावाणि छस्सहस्सा, अट्ठ - हिदा ताण मेहला - रुंदा ।
उसह-जिणे पण्णा-हिय-बो-सय-ऊणा य णेमि-परियंतं ॥८८६॥

पणवीसाहिय-छस्सय, अट्ठ - विहत्तं च पास - सामिस्स ।
एक्क - सयं पणवीसब्भहियं वीरम्मि वोहि [3]हिदं ॥८८७॥

---

१. छब्भागो जाव । २. ब. क. ज. य. उ. णिलइयला । ३. द. हिदो ।

६०००	५७५०	५५००	५२५०	५०००	४७५०	४५००	४२५०	४०००
८	८	८	८	८	८	८	८	८

३७५०	३५००	३२५०	३०००	२७५०	२५००	२२५०	२०००	१७५०
८	८	८	८	८	८	८	८	८

१५००	१२५०	१०००	७५०	६२५	१२५
८	८	८	८	८	२

अर्थ :—ऋषभनाथके समवसरणमें उनकी (दूसरी पीठोंकी) मेखलाओंका विस्तार आठसे भाजित छह हजार धनुष था। इसके आगे नेमिनाथ पर्यन्त क्रमशः दो सौ पचास-दो सौ पचास भाग कम होता गया है। पार्श्वनाथ [के समवसरणमें द्वितीय पीठकी मेखलाओं] का विस्तार आठसे भाजित छह सौ पच्चीस धनुष और वीरनाथ भगवान्‌के यह विस्तार दोसे भाजित एकसौ पच्चीस धनुष प्रमाण था ॥८८६-८८७॥

सोपान एवं ध्वजाओंका वर्णन—

ताणं कणयमयाणं, पीढाणं पंच - वण्ण - रयणमया ।
समवट्टा सोवाणा, चेट्ठंते चउ - दिसासु अट्ठट्ठं ॥८८८॥

। ८ । ८ ।

अर्थ :—उन स्वर्णमय पीठोंके ऊपर चढ़नेके लिए चारों दिशाओंमें पाँच वर्णके रत्नोंसे निर्मित समान आकार वाले आठ-आठ सोपान होते हैं ॥८८८॥

केसरि-वसह-सरोरुह-चक्कंबर-दाम-गरुड-हत्थि-धया ।
मणि - थंभ - लंबमाणा, राजंते बिदिय - पीढेसुं ॥८८९॥

अर्थ :—द्वितीय पीठोंके ऊपर मणिमय स्तम्भोंपर लटकती हुई सिंह, बैल, कमल, चक्र, वस्त्र, माला, गरुड़ और हाथी इन चिह्नोंसे युक्त ध्वजाएँ शोभायमान होती हैं ॥८८९॥

धूव-घडा णव-णिहिणो, अच्चण-दव्वाणि [1]मंगलाणि पि ।
चेट्ठंति बिदिय - पीढे, को सक्कइ ताण वण्णेदुं ॥८९०॥

अर्थ :—द्वितीय पीठपर जो धूपघट, नव निधियाँ, पूजन द्रव्य और मंगलद्रव्य स्थित रहते हैं, उनका वर्णन कर सकनेमें कौन समर्थ है ? ॥८९०॥

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. मंगलाणं ।

द्वितीय पीठका विस्तार—

वीसाहिय-सय-कोसा, उसह-जिणे बिदिय-पीढ-वित्थारा ।
पंचूणा छण्णउदी, भजिदा कमसो य णेमि - पज्जंतं ॥८६१॥

पास - जिणे पणुवीसं, अट्ठूणं वोसएहि अवहरिदा ।
पंच च्चिय वीरजिणे, पविहत्ता अट्ठतालेहिं ॥८६२॥

$\frac{१२०}{९६}$	$\frac{११५}{९६}$	$\frac{११०}{९६}$	$\frac{१०५}{९६}$	$\frac{१००}{९६}$	$\frac{९५}{९६}$	$\frac{९०}{९६}$	$\frac{८५}{९६}$	$\frac{८०}{९६}$	$\frac{७५}{९६}$	$\frac{७०}{९६}$
$\frac{६५}{९६}$	$\frac{६०}{९६}$	$\frac{५५}{९६}$	$\frac{५०}{९६}$	$\frac{४५}{९६}$	$\frac{४०}{९६}$	$\frac{३५}{९६}$	$\frac{३०}{९६}$	$\frac{२५}{९६}$	$\frac{२०}{९६}$	$\frac{१५}{९६}$

$\frac{२५}{१९२}$	$\frac{५}{४८}$

। बिदिय-पीढा समत्ता ।

अर्थ :—ऋषभनाथ जिनेन्द्रके समवसरणमें द्वितीय पीठका विस्तार छ्यानवैसे भाजित एक सौ बीस कोस प्रमाण था । पश्चात् इसके आगे नेमिनाथ पर्यन्त क्रमशः पाँच-पाँच भाग कम होते गये हैं । पार्श्व जिनेन्द्रके यह विस्तार आठ कम दोसौसे भाजित पच्चीस कोस तथा वीर जिनेन्द्रके अड़तालीससे भाजित पाँच कोस प्रमाण था ॥८६१-८६२॥

। द्वितीय पीठोंका वर्णन समाप्त हुआ ।

तीसरी पीठिकाओंकी ऊँचाई एवं विस्तार—

ताणोवरि तदियाइं, पीढाइं विविह-रयण-रइदाइं ।
णिय-णिय-दुइज्ज-[1]पीढुच्छेह-समा ताण [2]उच्छेहा ॥८६३॥

---

१. द. ब. पीढच्छेद । २. ब. उच्छेधो, ज. ठ. उच्छेदो, क. उच्छेहो ।

२४/६	२३/६	२२/६	२१/६	२०/६	१९/६	१८/६	१७/६	१६/६	१५/६	१४/६

१३/६	१२/६	११/६	१०/६	९/६	८/६	७/६	६/६	५/६	४/६	३/६	५/१२	१/३

अर्थ :—द्वितीय पीठोंके ऊपर विविध प्रकारके रत्नोंसे खचित तीसरी पीठिकाएं होती हैं। इनकी ऊँचाई अपनी-अपनी दूसरी पीठिकाओंकी ऊँचाई सदृश होती है ।।८९३।।

णिय-आदिम-पीढाणं, वित्थार-चउत्थ-भाग-सारिच्छा ।
एदाणं वित्थारा[1], [2]तिउण-कदे तत्थ समहिए परिही ।।८९४।।

२४/४८	२३/४८	२२/४८	२१/४८	२०/४८	१९/४८	१८/४८	१७/४८	१६/४८	१५/४८	१४/४८	१३/४८

१२/४८	११/४८	१०/४८	९/४८	८/४८	७/४८	६/४८	५/४८	४/४८	३/४८

५/९६	४/९९

अर्थ :—इनका विस्तार अपनी प्रथम पीठिकाओंके विस्तारके चतुर्थ भाग प्रमाण होता है और तिगुणे विस्तारसे कुछ अधिक इनकी परिधि होती है ।।८९४।।

ताणं दिणयर - मंडल - समवट्टाणं हवंति अट्ठट्ठ ।
सोवाणा रयणमया, चउसु दिसासुं [3]सुहप्पासा ।।८९५।।

। तदिय-पीढा समत्ता ।

अर्थ :—सूर्य मण्डल सदृश गोल उन पीठोंके चारों ओर रत्नमय एवं सुखकर स्पर्शवाली आठ-आठ सीढ़ियाँ होती हैं ।।८९५।।

। तृतीय पीठिकाओंका वर्णन समाप्त हुआ ।

---

१. द. ज. य. उ. वित्थारो । २. ब. उ. तउग । ३. द. ब. ज. य. सुहप्पासं । क. सुहप्पासुं, उ. सुह-उपपासुं ।

गन्धकुटीका निरूपण—

एक्केक्का [1]गंधउडी, होदि तदो तदिय-पीढ-उवरिम्मि ।
चामर - किंकिणि - वंदणमाला - हारादि-रमणिज्जा ॥८९६॥

गोसीस[2]- मलय - चंदण-कालागरु-पहुदि- धूव-गंधड्ढा ।
पज्जलंत - रयण - दीवा, णच्चंत - विचित्त - धय-पंती ॥८९७॥

अर्थ :—इसके आगे इन तीसरी पीठिकाओंके ऊपर एक-एक गन्धकुटी होती है । यह गन्ध-कुटी चामर, किंकिणी, वन्दनमाला एवं हारादिकसे रमणीय, गोशीर, मलयचन्दन और कालागरु इत्यादिक धूपोंकी गन्धसे व्याप्त, प्रज्वलित रत्नदीपकोंसे युक्त तथा नाचती हुई विचित्र ध्वजाओंकी पंक्तियोंसे संयुक्त होती है ॥८९६-८९७॥

तीए रुंदायामा, छस्सय - दंडाणि उसहणाहम्मि ।
पण-कदि - परिहीणाणि, कमसो सिरि-णेमि-परियंतं ॥८९८॥

पणुवीसब्भहिय - सयं, दोहि विहत्तं च पासणाहम्मि ।
बिगुणिय - पणुवीसाइं, तित्थयरे वड्ढमाणम्मि ॥८९९॥

६०० । ५७५ । ५५० । ५२५ । ५०० । ४७५ । ४५० । ४२५ । ४०० । ३७५ । ३५० ।

३२५ । ३०० । २७५ । २५० । २२५ । २०० । १७५ । १५० । १२५ । १०० ।

७५ । $\frac{१२५}{२}$ । ५० ।

अर्थ :—उस गन्धकुटीकी चौड़ाई और लम्बाई ऋषभनाथके समवसरणमें छहसौ धनुष प्रमाण थी । पश्चात् नेमिनाथ पर्यन्त क्रमशः उत्तरोत्तर पाँचका वर्ग अथवा २५-२५ धनुष कम होती गई है । पार्श्वनाथकी गन्धकुटी दो से विभक्त एक सौ पच्चीस धनुष तथा वर्धमान स्वामीकी दुगुणित पच्चीस (५०) धनुष प्रमाण थी ॥८९८-८९९॥

उदओ गंधउडीए, दंडाणं णव - सयाणि उसह - जिणे ।
कमसो णेमि-जिणंतं, चउवीस-विहत्त-पभव-हीणाणि ॥९००॥

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. गंधउदी । २. ब. क. उ. गोसीर ।

पणुहत्तरि-जुद-ति-सया, पास-जिणिदम्मि चउविहत्ता य ।
पणुवीसोणं[1] च सयं, जिणपवरे वीर - णाहम्मि ॥९०१॥

९००	१७२५/२	१६५०/२	१५७५/२	१५००/२	१४२५/२	१३५०/२	१२७५/२	१२००/२	११२५/२
१०५०/२	९७५/२	९००/२	८२५/२	७५०/२	६७५/२	६००/२	५२५/२	४५०/२	३७५/२
३००/२	२२५/२	३७५/४	७५						

अर्थ :—ऋषभ जिनेन्द्रके समवसरणमें गन्धकुटीकी ऊँचाई नौ सौ धनुष प्रमाण थी । पश्चात् क्रमशः नेमिनाथ पर्यन्त चौबीससे विभक्त मुख (९०० ÷ २४ = ३७½) प्रमाण हीन होती गई है । पार्श्व जिनेन्द्रके चारसे विभक्त तीनसौ पचत्तर धनुष और वीरजिनेन्द्रके पच्चीस कम सौ धनुष प्रमाण थी ॥९००-९०१॥

सिंहासणाणि मज्झे, [2]गंधउडीणं सपाद - पीढाणि ।
वर - फलिह-णिम्मिदाणि[3] घंटा - जालादि रम्माणि ॥९०२॥

अर्थ :—गन्धकुटियोंके मध्य पादपीठ सहित, उत्तम स्फटिकमणियोंसे निर्मित एवं घण्टाओं के समूहादिकसे रमणीय सिंहासन होते हैं ॥९०२॥

[तालिका : २५ अगले पृष्ठ २७६ पर देखिये]

रयण-खचिदाणि ताणि, जिणिंद-उच्छेह-जोग्ग-उदयाणि ।
इत्थं तित्थयराणं, कहिदाइं समवसरणाइं ॥९०३॥

। इदि समवसरणा समत्ता ।

---

१. द. पणवीससोलं च । २. द. ब. क. ज. य. उ. गंधमदीणं । ३. ब. उ. णिम्मदाणि ।

तालिका : २५

दूसरे एवं तीसरे पीठोंका तथा गन्धकुटीका विस्तार आदि—

नं०	दूसरे पीठो की ऊँचाई गा० ८८४	दूसरे पीठोंकी मेखलाओंका वि० गा. ८८६	दूसरे पीठोंका विस्तार गा० ८९१	तीसरे पीठो की ऊँचाई गा. ८९३	तीसरे पीठोंका विस्तार गाथा ८९४	गन्ध कुटीकी लम्बाई और चौ. गा. ८९८	गन्ध कुटीकी ऊँचाई गा० ९००
१	४ धनुष	७५० ध०	१$\frac{१}{४}$ कोस	४ धनुष	१००० धनुष	६०० धनुष	९०० धनुष
२	३$\frac{५}{६}$,,	७१८$\frac{३}{४}$,,	१$\frac{१९}{९६}$,,	३$\frac{५}{६}$,,	९५८$\frac{१}{३}$,,	५७५ ,,	८६२$\frac{१}{२}$,,
३	३$\frac{२}{३}$,,	६८७$\frac{१}{२}$,,	१$\frac{७}{४८}$,,	३$\frac{२}{३}$,,	९१६$\frac{२}{३}$,,	५५० ,,	८२५ ,,
४	३$\frac{१}{२}$,,	६५६$\frac{१}{४}$,,	१$\frac{३}{३२}$,,	३$\frac{१}{२}$,,	८७५ ,,	५२५ ,,	७८७$\frac{१}{२}$,,
५	३$\frac{१}{३}$,,	६२५ ,,	१$\frac{१}{२४}$,,	३$\frac{१}{३}$,,	८३३$\frac{१}{३}$,	५०० ,,	७५० ,,
६	३$\frac{१}{६}$,,	५९३$\frac{३}{४}$,,	१९७९$\frac{१}{६}$ ध०	३$\frac{१}{६}$,,	७९१$\frac{२}{३}$,,	४७५ ,,	७१२$\frac{१}{२}$,,
७	३ ,,	५६२$\frac{१}{२}$,,	१८७५ ,,	३ ,,	७५० ,,	४५० ,,	६७५ ,,
८	२$\frac{५}{६}$,,	५३१$\frac{१}{४}$,,	१७७०$\frac{५}{६}$,,	२$\frac{५}{६}$,,	७०८$\frac{१}{३}$,,	४२५ ,,	६३७$\frac{१}{२}$,,
९	२$\frac{२}{३}$,,	५०० ,,	१६६६$\frac{२}{३}$,,	२$\frac{२}{३}$,,	६६६$\frac{२}{३}$,,	४०० ,,	६०० ,,
१०	२$\frac{१}{२}$,,	४६८$\frac{३}{४}$,,	१५६२$\frac{१}{२}$,,	२$\frac{१}{२}$,,	६२५ ,,	३७५ ,,	५६२$\frac{१}{२}$,,
११	२$\frac{१}{३}$,,	४३७$\frac{१}{२}$,,	१४५८$\frac{१}{३}$,,	२$\frac{१}{३}$,,	५८३$\frac{१}{३}$,,	३५० ,,	५२५ ,,
१२	२$\frac{१}{६}$,,	४०६$\frac{१}{४}$,,	१३५४$\frac{१}{६}$,,	२$\frac{१}{६}$,,	५४१$\frac{२}{३}$,,	३२५ ,,	४८७$\frac{१}{२}$,,
१३	२ ,,	३७५ ,,	१२५० ,,	२ ,,	५०० ,,	३०० ,,	४५० ,,
१४	१$\frac{५}{६}$,,	३४३$\frac{३}{४}$,,	११४५$\frac{५}{६}$,,	१$\frac{५}{६}$,,	४५८$\frac{१}{३}$,,	२७५ ,,	४१२$\frac{१}{२}$,,
१५	१$\frac{२}{३}$,,	३१२$\frac{१}{२}$,,	१०४१$\frac{२}{३}$,,	१$\frac{२}{३}$,,	४१६$\frac{२}{३}$,,	२५० ,	३७५ ,,
१६	१$\frac{१}{२}$,,	२८१$\frac{१}{४}$,,	९३७$\frac{१}{२}$,,	१$\frac{१}{२}$,,	३७५ ,,	२२५ ,,	३३७$\frac{१}{२}$,,
१७	१$\frac{१}{३}$,,	२५० ,,	८३३$\frac{१}{३}$,,	१$\frac{१}{३}$,,	३३३$\frac{१}{३}$,,	२०० ,,	३०० ,,
१८	१$\frac{१}{६}$,,	२१८$\frac{३}{४}$,,	७२९$\frac{१}{६}$,,	१$\frac{१}{६}$,,	२९१$\frac{२}{३}$,,	१७५ ,,	२६२$\frac{१}{२}$,,
१९	१ ,,	१८७$\frac{१}{२}$,,	६२५ ,,	१ ,,	२५० ,,	१५० ,,	२२५ ,,
२०	$\frac{५}{६}$,,	१५६$\frac{१}{४}$,,	५२०$\frac{५}{६}$,,	$\frac{५}{६}$,,	२०८$\frac{१}{३}$,,	१२५ ,,	१८७$\frac{१}{२}$,,
२१	$\frac{२}{३}$,,	१२५ ,,	४१६$\frac{२}{३}$,,	$\frac{२}{३}$,,	१६६$\frac{२}{३}$,,	१०० ,,	१५० ,,
२२	$\frac{१}{२}$,,	९३$\frac{३}{४}$,,	३१२$\frac{१}{२}$,,	$\frac{१}{२}$,,	१२५ ,,	७५ ,,	११२$\frac{१}{२}$,,
२३	$\frac{५}{१२}$,,	७८$\frac{१}{८}$,,	२६०$\frac{५}{१२}$,	$\frac{५}{१२}$,,	१०४$\frac{१}{६}$,,	६२$\frac{१}{२}$,,	९३$\frac{३}{४}$,,
२४	$\frac{१}{३}$,,	६२$\frac{१}{२}$,,	२०८$\frac{१}{३}$,,	$\frac{१}{३}$,,	८३$\frac{१}{३}$,,	५० ,,	७५ ,,

अर्थ :—रत्नोंसे खचित उन सिंहासनों की ऊँचाई तीर्थंकरोंकी ऊँचाईके ही योग्य हुआ करती है। इस प्रकार यहाँ तीर्थंकरोंके समवसरणोंका कथन किया गया है ॥९०३॥

। इसप्रकार समवसरणोंका वर्णन समाप्त हुआ ।

गन्धकुटी का चित्रण—
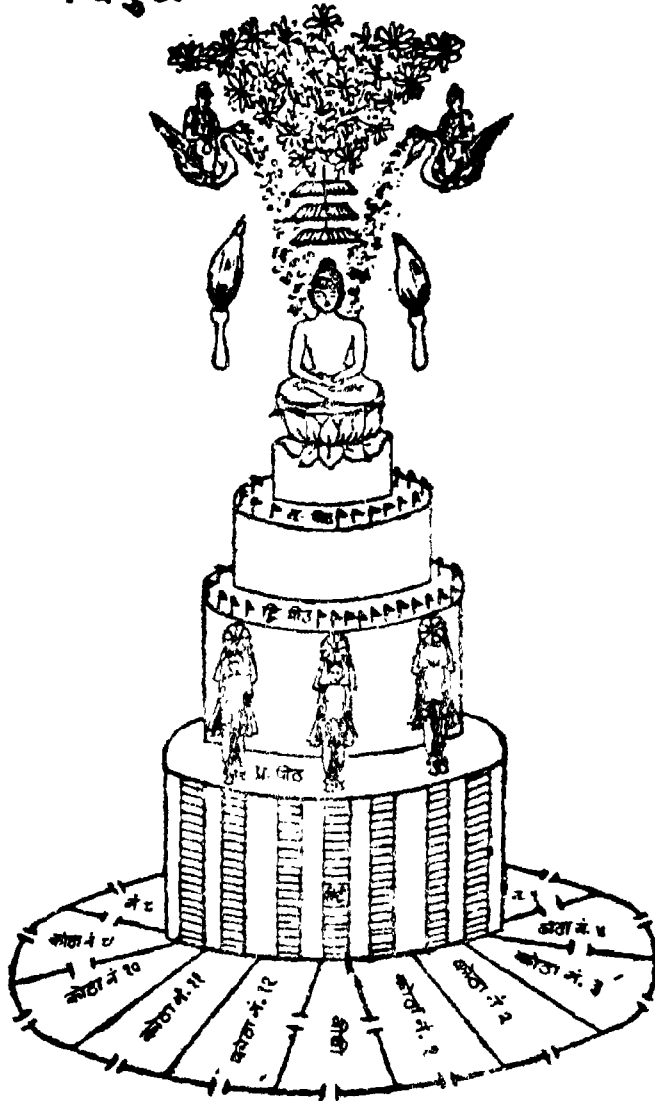
अरहन्तोंकी स्थिति सिंहासनसे ऊपर—

[1]चउरंगुलंतराले, उवरिं सिंहासणाणि अरहंता ।
चेट्ठंति [2]गयण - मग्गे, लोयालोय - प्पयास - मत्तंडा ॥९०४॥

अर्थ :—लोक-अलोकको प्रकाशित करनेके लिए सूर्य सदृश भगवान् अरहन्तदेव उन सिंहासनोंके ऊपर आकाशमार्गमें चार अंगुलके अन्तरालसे स्थित रहते हैं ॥९०४॥

जन्मके दस अतिशय—

णिस्सेदत्तं णिम्मल - गत्तत्तं दुद्ध - धवल - रुहिरत्तं ।
आदिम - संहडणत्तं, समचउरस्संग - संठाणं ॥९०५॥

। ५ ।

अणुवम - रूवत्तं णव - चंपय-वर-सुरहि - गंध-धारित्तं ।
अट्ठुत्तर-वर-लक्खण-सहस्स-धरणं अणंतबल - विरियं ॥९०६॥

। ४ ।

मिदु-हिद-मधुरालाओ, साभाविय-अदिसयं च दह-भेदं ।
एवं तित्थयराणं जम्मग्गहणादि - उप्पण्णं ॥९०७॥

। १ ।

अर्थ :— १ स्वेद-रहितता, २ निर्मल-शरीरता, ३ दूध सदृश धवल रुधिर, ४ वज्रर्षभनाराच-संहनन, ५ समचतुरस्र-शरीर संस्थान, ६ अनुपम रूप, ७ नवीन चम्पक की उत्तम गन्ध सदृश गन्धका धारण करना, ८ एक हजार आठ उत्तम लक्षणों का धारण करना, ९ अनन्त बल-वीर्य और १० हितकारी मृदु एवं मधुर भाषण, ये स्वाभाविक अतिशयके दस भेद हैं। ये अतिशय तीर्थंकरोंके जन्म-ग्रहणसे ही उत्पन्न हो जाते हैं ॥९०५-९०७॥

केवलज्ञानके ग्यारह अतिशय—

जोयण-सद-मज्जादं, सुभिक्खदा चउ-दिसासु णिय-ठाणा ।
णहयल - गमणमहिंसा, भोयण - उवसग्ग - परिहीणा ॥९०८॥

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. चउरंगुलंतरालो । २. द. य. रयण ।

सव्वाहि - मुह - ट्ठियत्तं, अच्छायत्तं [1]अपम्हफंदित्तं ।
विज्जाणं ईसत्तं, सम - णह - रोमत्तणं सरीरम्मि ॥९०९॥

अट्ठरस - महाभासा, खुल्लय-भासा सयाइ सत्त-तहा ।
अक्खर - अणक्खरप्पय सण्णी-जीवाण सयल-भासाओ ॥९१०॥

एदासिं भासाणं, तालुव - दंतोट्ठ - कंठ - [2]वावारे ।
परिहरिय एक्क - कालं, भव्व - जणे दिव्व-भासित्तं ॥९११॥

पगदीए अक्खलिदो, संझत्तिदयम्मि णव - मुहुत्ताणि ।
णिस्सरदि णिरुवमाणो, दिव्वझुणी जाव [3]जोयणयं ॥९१२॥

अवसेस - काल - समए, गणहर - देविंद - चक्कवट्टीणं ।
पण्हाणुरूवमत्थं[4], दिव्वझुणी सत्त - भंगीहिं ॥९१३॥

छद्दव्व - णव - पयत्थे[5], पंचट्ठीकाय - सत्त - तच्चाणि[6] ।
णाणाविह - हेदूहिं, दिव्वझुणी[7] भणइ भव्वाणं ॥९१४॥

[8]घादिक्खएण जादा, एक्कारस अदिसया महच्छरिया ।
एदे तित्थयराणं, केवलणाणम्मि उप्पण्णे ॥९१५॥

अर्थ :—अपने स्थानसे चारों दिशाओंमें १ एकसौ योजन पर्यन्त सुभिक्षता, २ आकाश-गमन, ३ अहिंसा (हिंसाका अभाव), ४ भोजन एवं ५ उपसर्ग का अभाव, ६ सबकी ओर मुख करके स्थित होना, ७ छाया नहीं पड़ना, ८ निर्निमेष दृष्टि, ९ विद्याओंकी ईशता, १० शरीरमें नखों एवं बालों का न बढ़ना, अठारह महाभाषा, सातसौ क्षुद्र-भाषा तथा और भी जो संज्ञी जीवोंकी समस्त अक्षर-अनक्षरात्मक भाषाएँ हैं उनमें तालु, दाँत, ओष्ठ और कण्ठके व्यापारसे रहित होकर एक ही समय (एक साथ) भव्य जनोंको दिव्य उपदेश देना ।

भगवान् जिनेन्द्रकी स्वभावतः अस्खलित तथा अनुपम ११ दिव्य-ध्वनि तीनों सन्ध्या-कालोंमें नव-मुहूर्तों तक निकलती है और एक योजन पर्यन्त जाती है। इसके अतिरिक्त गणधरदेव,

---

१. द. क. ज. य. उ. अपम्हुपंदित्तं, ब. अपम्हयं दित्तं । २. द. ब. क. ज. य. उ. वावारो । ३. ब. उ. जोयणं । ४. द. ब. क. ज. य. उ. पण्हाणरूवमत्थं । ५. द. ब. क. ज. उ. पयत्थो । ६. द. ज. य. तत्ताणि, क. उ. तस्याणि । ७. द. दिव्वज्झणि । ८. ब. उ. घादिक्खएण य ।

इन्द्र एवं चक्रवर्तीके प्रश्नानुरूप अर्थके निरूपणार्थ यह दिव्य-ध्वनि शेष समयोंमें भी निकलती है। यह दिव्यध्वनि भव्य जीवोंको छह-द्रव्य, नौ-पदार्थ, पाँच अस्तिकाय और सात तत्त्वोंका निरूपण नानाप्रकारके हेतुओं द्वारा करती है। इसप्रकार घातिया कर्मोंके क्षयसे उत्पन्न हुए, महान् आश्चर्य-जनक ये ग्यारह अतिशय तीर्थंकरोंको केवलज्ञान उत्पन्न होने पर प्रगट होते हैं ।।९०८-९१५।।

देवकृत तेरह अतिशय—

माहप्पेण जिणाणं, संखेज्जेसु च जोयणेसु वणं।
पल्लव - कुसुम - फलद्धी - भरिदं जायदि अकालम्मि ।।९१६।।

कंटय-सक्कर-पहुदिं, अवणित्ता वादि सुरकदो वाऊ।
मोत्तूण पुव्व - वेरं, जीवा वट्टंति मेत्तीसु ।।९१७।।

दप्पण-तल-सारिच्छा, रयणमई होदि तेत्तिया भूमी।
गंधोदकेइ वरिसइ, मेघकुमारो पि सक्क - आणाए ।।९१८।।

फल-भार-णमिद-साली-जवादि-सस्सं सुरा विकुव्वंति।
सव्वाणं जीवाणं, उप्पज्जदि णिच्चमाणंदो ।।९१९।।

वायदि विक्किरियाए, वायुकुमारो हु सीयलो पवणो।
कूव - तडायादीणि, णिम्मल - सलिलेण पुण्णाणि ।।९२०।।

धूमुक्कपडण - पहुदीहि विरहिदं होदि णिम्मलं गयणं।
रोगादीणं बाधा, ण होंति सयलाण जीवाणं ।।९२१।।

जक्खिंद-मत्थएसुं, किरणुज्जल-दिव्व-धम्म-चक्काणि।
दट्ठूण संठियाइं[1], चत्तारि जणस्स अच्छरिया ।।९२२।।

छप्पण्णा चउदिसासुं, कंचण - कमलाणि तित्थ-कत्ताणं।
एक्कं च पायपीढं, अच्चण-दव्वाणि दिव्व-विहिदाणि ।।९२३।।

। चोत्तीस अइसया समत्ता।

---

१. ब. उ. सतियाइं।

अर्थ :—१ तीर्थंकरोंके माहात्म्यसे संख्यात योजनों तक वन प्रदेश असमयमें ही पत्रों, फूलों एवं फलोंसे परिपूर्ण समृद्ध हो जाता है; २ काँटों और रेती आदिको दूर करती हुई सुखदायक वायु प्रवाहित होती है, ३ जीव पूर्व वैरको छोड़कर मैत्री-भावसे रहने लगते हैं; ४ उतनी भूमि दर्पणतल सदृश स्वच्छ एवं रत्नमय हो जाती है; ५ सौधर्म इन्द्रकी आज्ञासे मेघकुमार देव सुगन्धित जलकी वर्षा करता है; ६ देव विक्रियासे फलोंके भारसे नम्रीभूत शालि और जौ आदि सस्यकी रचना करते हैं; ७ सब जीवोंको नित्य आनन्द उत्पन्न होता है; ८ वायुकुमार देव विक्रियासे शीतल-पवन चलाता है; ९ कूप और तालाब आदिक निर्मल जलसे परिपूर्ण हो जाते हैं; १० आकाश धुआँ एवं उल्का-पातादिसे रहित होकर निर्मल हो जाता है; ११ सम्पूर्ण जीव रोगबाधाओंसे रहित हो जाते हैं, १२ यक्षेन्द्रोंके मस्तकों पर स्थित और किरणोंकी भाँति उज्ज्वल ऐसे चार दिव्य धर्मचक्रोंको देखकर मनुष्योंको आश्चर्य होता है तथा १३ तीर्थंकरोंकी चारों दिशाओं (विदिशाओं) में छप्पन स्वर्ण-कमल, एक पादपीठ और विविध दिव्य पूजन-द्रव्य होते हैं ॥९१६-९२३॥

चौतीस अतिशयोंका वर्णन समाप्त हुआ।

अशोक वृक्ष प्रातिहार्यका निरूपण—

जेसिं तरूण - मूले, उप्पण्णं जाण केवलं णाणं।
उसह - प्पहुदि - जिणाणं, ते चिय असोय-रुक्ख त्ति ॥९२४॥

अर्थ :—ऋषभादि तीर्थंकरोंको जिन वृक्षोंके नीचे केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है वे ही अशोक-वृक्ष हैं ॥९२४॥

णग्गोह - सत्तपण्णं, सालं सरलं पियंगु तच्चेव।
सिरिसं णागतरू वि य, अक्खा धूलीपलास तेंदूवं ॥९२५॥

पाडल-जंबू पिप्पल - दहिवण्णो णंदि-तिलय-चूदा य।
[1]कंकेलि - चंप - बउलं, मेसयसिंगं[2] धवं सालं ॥९२६॥

सोहंति असोय - तरू, पल्लव - कुसुमाणदाहि साहाहिं।
लंबंत - मुत्त - दामा, घंटा - जालादि - रमणिज्जा ॥९२७॥

---

१. ब. क. उ. किंकल्लि, ज. य. कंकेल्लि। २ ब. मेलवसिंगं, द. क. ज. य. उ. मेसयसिंगं।

अर्थ :—१ न्यग्रोध, २ सप्तपर्ण, ३ शाल, ४ सरल, ५ प्रियंगु, ६ प्रियंगु, ७ शिरीष, ८ नागवृक्ष, ९ अक्ष (बहेड़ा), १० धूलिपलाश, ११ तेंदू, १२ पाटल, १३ जम्बू, १४ पीपल, १५ दधिपर्ण, १६ नन्दी, १७ तिलक, १८ आम्र, १९ कंकेलि (अशोक), २० चम्पक, २१ बकुल, २२ मेषशृङ्ग, २३ धव और २४ शाल, ये तीर्थंकरोंके अशोकवृक्ष हैं। लटकती हुई मोतियोंकी मालाओं और घण्टा-समूहादिकसे रमणीय तथा पल्लवों एवं पुष्पोंसे झुकी हुई शाखाओं वाले ये सब अशोक वृक्ष अत्यन्त शोभायमान होते हैं ।।९२५-९२७।।

णिय-णिय-जिण-उदएहिं, बारस-गुणिदेण सरिस-उच्छेहा[1] ।
उसह - जिण - प्पहुदीणं, असोय - रुक्खा विरायंति ।।९२८।।

अर्थ :—ऋषभादिक तीर्थंकरोंके उपर्युक्त चौबीस अशोकवृक्ष अपने-अपने जिनेन्द्रकी ऊँचाईसे बारह गुणे ऊँचे शोभायमान हैं ।।९२८।।

किं वण्णणेण बहुणा, दट्ठूणमसोय - पादवे एदे ।
णिय - उज्जाण - वणेसुं, ण रमदि चित्तं सुरेसस्स ।।९२९।।

अर्थ :—बहुत वर्णनसे क्या ? इन अशोक वृक्षोंको देखकर इन्द्रका भी चित्त अपने उद्यान-वनोंमें नहीं रमता है ।।९२९।।

तीन छत्र प्रातिहार्य—

ससि - मंडल - संकासं, मुत्ताजाल - प्पयास - [2]संजुत्तं ।
छत्तत्तयं विरायदि सव्वाणं तित्थ - [3]कत्ताणं ।।९३०।।

अर्थ :—चन्द्र-मण्डल सदृश और मुक्ता-समूहोंके प्रकाशसे संयुक्त तीन छत्र सब तीर्थंकरोंके (मस्तकों पर) शोभायमान होते हैं ।।९३०।।

सिंहासन प्रातिहार्य—

सिंहासणं विसालं, विसुद्ध - फलिहोवलेहिं णिम्मविदं ।
वर-रयण-णियर-खचिदं, को सक्कइ वण्णिदुं ताणं ।।९३१।।

अर्थ :—निर्मल स्फटिक-पाषाणसे निर्मित और उत्कृष्ट रत्नोंके समूहसे खचित उन तीर्थंकरोंका जो विशाल सिंहासन होता है, उसका वर्णन करनेमें कौन समर्थ हो सकता है ।।९३१।।

---

१. द. क. ज. ब. उ. उच्छेहो। २. द. क. ज. य. उ. संजुत्ता। ३. ब. य. कत्तारं।

भक्ति युक्त गणों द्वारा वेष्टित प्रातिहार्य—

णिब्भर-भत्ति-पसत्ता, अंजलि-हत्था पफुल्ल-मुह-कमला ।
चेट्ठंति गणा सव्वे, एक्केक्कं वेढिऊण[1] जिणं ॥६३२॥

अर्थ :—गाढ़ भक्तिमें आसक्त, हाथ जोड़े हुए एवं विकसित मुख कमलसे संयुक्त सम्पूर्ण (द्वादश) गण प्रत्येक तीर्थंकर को घेर कर (बारह सभाओंमें) स्थित रहते हैं ॥६३२॥

दुन्दुभिवाद्य प्रातिहार्य—

विसय-कसायासत्ता, [2]हद-मोहा पविस जिणपहू सरणं ।
कहिदुं वा भव्वाणं, गहिरं सुर-दुंदुही सरइ ॥६३३॥

अर्थ :—"विषय-कषायोंमें आसक्त (हे जीवो) मोहसे रहित होकर जिनेन्द्र प्रभुकी शरणमें जाओ," भव्य जीवोंको ऐसा कहनेके लिए ही मानो देवोंका दुन्दुभी बाजा गम्भीर शब्द करता है॥६३३॥

पुष्पवृष्टि प्रातिहार्य—

झण-झण-झणंत-छप्पय-छण्णा वरभत्ति-भरिद-सुरमुक्का ।
णिवडेदि कुसुम - विट्ठी, जिणिंद - पय-कमल - मूलेसुं ॥६३४॥

अर्थ :—झन-झन शब्द करते हुए भ्रमरोंसे व्याप्त एवं उत्तम भक्तिसे युक्त देवों द्वारा छोड़ी हुई पुष्पवृष्टि भगवान् जिनेन्द्रके चरण-कमलोंके मूलमें गिरती है ॥६३४॥

प्रभामण्डल प्रातिहार्य—

भव-सग-दंसण-हेदुं, दरिसण - मेत्तेण सयल - लोयस्स ।
भामंडलं जिणाणं, रवि - कोडि - समुज्जलं जयइ ॥६३५॥

अर्थ :—जो दर्शन-मात्रसे ही सब लोगोंको अपने-अपने सात भव देखनेमें निमित्त है और करोड़ों सूर्योंके सदृश उज्ज्वल है तीर्थंकरोंका ऐसा वह प्रभामण्डल जयवन्त होता है ॥६३५॥

चमर प्रातिहार्य—

चउसट्ठि - चामरेहिं, मुणाल - कुंदेंदु - संख - धवलेहिं ।
सुर - कर - पलम्बिदेहिं विज्जिज्जंता जयंतु जिणा ॥६३६॥

। अट्ठ महपाडिहेरा समत्ता ।

---

१. द. वेढिऊण । २. ब. उ. मोहो हद । द. क. ज. य. मोहो वह ।

अर्थ :—देवोंके हाथोंसे झुलाये (ढोरे) गये मृणाल, कुन्दपुष्प, चन्द्रमा एवं शङ्ख सदृश सफेद चौंसठ चामरोंसे वीज्यमान जिनेन्द्र भगवान् जयवन्त होवें ॥६३६॥

। आठ महाप्रातिहार्योंका कथन समाप्त हुआ ।
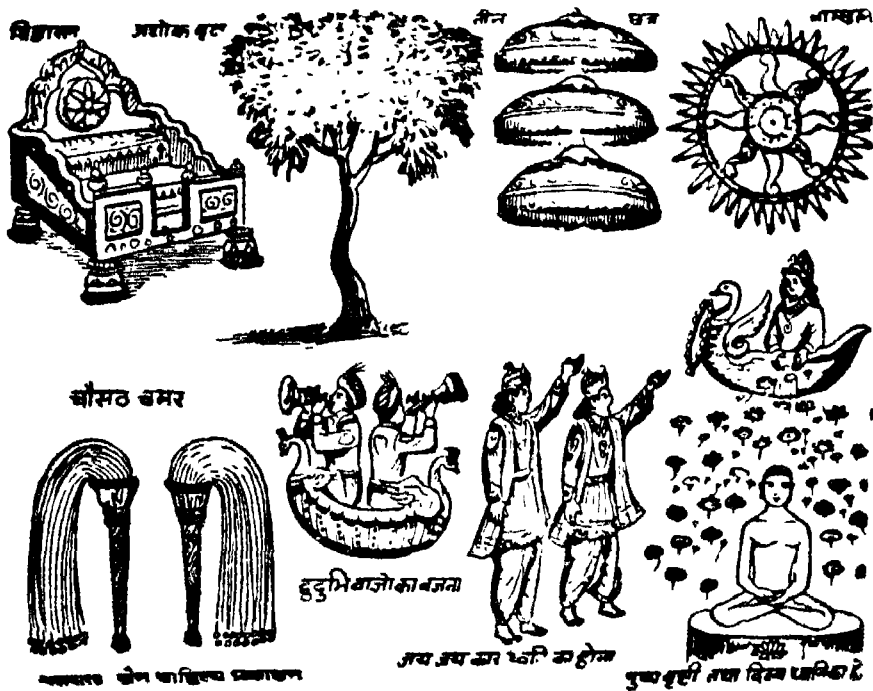
नमस्कार—

चउतीसातिसय - संजुद'- अट्ठ महापाडिहेर - संजुत्ते ।
मोक्खयरे तित्थयरे, तिहुवण - णाहे णमंसामि ॥६३७॥

अर्थ :—जो चौंतीस-अतिशयोंको प्राप्त हैं, आठ महाप्रातिहार्योंसे संयुक्त हैं, मोक्षको करने वाले (मोक्षमार्गके नेता) हैं और तीनों लोकोंके स्वामी हैं ऐसे तीर्थंकरोंको मैं नमस्कार करता हूं ॥६३७॥

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. मेदे ।

समोसरणोंमें बन्दनारत जीवोंकी संख्या—

जिण - वंदणा - पयट्टा, पल्लासंखेज्जभाग - परिमाणा ।
चेट्ठंति विविह - जीवा, एक्केक्के समवसरणेसुं ॥६३८॥

अर्थ :—प्रत्येक समवसरणमें पल्यके असंख्यातवें भाग-प्रमाण विविध-प्रकारके जीव जिन-देवकी वन्दनामें प्रवृत्त होते हुए स्थित रहते हैं ॥६३८॥

अवगाहन शक्तिकी अतिशयता—

कोट्ठाणं खेत्तादो, जीवक्खेत्तप्फलं असंख - गुणं ।
होदूण अपुट्ठ त्ति हु, जिण - माहप्पेण ते सव्वे ॥६३९॥

अर्थ :—समवसरणके कोठोंके क्षेत्रसे यद्यपि जीवोंका क्षेत्रफल असंख्यातगुणा है, तथापि वे सब जीव जिनेन्द्रदेवके माहात्म्यसे एक दूसरेसे अस्पृष्ट रहते हैं ॥६३९॥

प्रवेश-निर्गमन प्रमाण—

संखेज्ज - जोयणाणि, बाल - प्पहुदी पवेस - णिग्गमणे ।
अंतोमुहुत्त - काले, जिण - माहप्पेण गच्छंति ॥६४०॥

अर्थ :—जिनेन्द्र भगवान्के माहात्म्यसे बालक-प्रभृति जीव समवसरणमें प्रवेश करने करते अथवा निकलनेमें अन्तर्मुहूर्तकालके भीतर संख्यात योजन चले जाते हैं ॥६४०॥

समवसरणमें कौन नहीं जाते ?

मिच्छाइट्ठि[1]-अभव्वा, तेसु असण्णी ण होंति कइयावि ।
तह य अणज्झवसाया, संदिद्धा विविह - विवरीया ॥६४१॥

अर्थ :—समवसरणमें मिथ्यादृष्टि, अभव्य और असंज्ञी जीव कदापि नहीं होते तथा अनध्यवसायसे युक्त, सन्देहसे सयुक्त और विविध प्रकारकी विपरीतताओं वाले जीव भी नहीं होते ॥६४१॥

---

१. द. ब. क. ज. उ. य. मिच्छाइट्ठीभव्वा ।

समवसरणमें रोगादिका अभाव—

आतंक - रोग - मरणुप्पत्तीओ वेर - काम - बाधाओ ।
तण्हा - छुह - पीडाओ, जिण - माहप्पेण ण वि होंति ।।६४२।।

अर्थ :—जिन भगवान्के माहात्म्यसे आतङ्क, रोग, मरण, उत्पत्ति, वैर, कामबाधा तथा पिपासा और क्षुधाकी पीड़ाएँ वहाँ नहीं होती हैं ।।६४२।।

ऋषभादि तीर्थंकरोंके यक्ष—

जक्खणाम—

गोवदण - महाजक्खा, तिमुहो जक्खेसरो य तुंबुरओ ।
मादंग - विजय - अजियो, बम्हो बम्हेसरो य कोमारो ।।६४३।।

छम्मुहओ पादालो, किण्णर - किंपुरिस - गरुड-गंधव्वा ।
तह य कुबेरो वरुणो, [1]भकुडी-गोमेध-पास-मातंगा ।।६४४।।

गुज्झकओ इदि एदे, जक्खा चउबीस उसह - पहुदीहिं ।
तित्थयराणं पासे, चेट्ठंते भत्ति - संजुत्ता ।।६४५।।

अर्थ :—१ गोवदन, २ महायक्ष, ३ त्रिमुख, ४ यक्षेश्वर, ५ तुम्बुरव, ६ मातंग, ७ विजय, ८ अजित, ९ ब्रह्म, १० ब्रह्मोत्तर, ११ कुमार, १२ षण्मुख, १३ पाताल, १४ किन्नर, १५ किम्पुरुष, १६ गरुड़, १७ गन्धर्व, १८ कुबेर, १९ वरुण, २० भृकुटि, २१ गोमेध, २२ पार्श्व, २३ मातंग और २४ गुह्यक, भक्तिसे संयुक्त चौबीस यक्ष ऋषभादिक तीर्थंकरोंके पास स्थित रहते हैं ।।६४३-६४५।।

ऋषभादि तीर्थंकरोंकी यक्षिणियाँ—

जक्खीओ चक्केसरि - रोहिणि-पण्णत्ति-वज्जसिंखलया ।
वज्जंकुसा य अप्पदिचक्केसरि - पुरिसदत्ता[2] य ।।६४६।।

मणवेगा - कालीओ, तह जालामालिणी महाकाली ।
गउरी - गंधारीओ, वेरोटी णामया अणंदमदी ।।६४७।।

---

१. द. ब. क. ज. उ. भिउदी, य. भिउडी । २. ब. क उ. पुरुसदत्ती ।

माणसि-महमाणसिया, जया य विजयापराजिदाओ य ।
बहुरूपिणि - कुंभंडी, पउमा - सिद्धायिणीओ त्ति ।।६४८।।

अर्थ :– १ चक्रेश्वरी, २ रोहिणी, ३ प्रज्ञप्ति, ४ वज्रशृंखला, ५ वज्रांकुशा, ६ अप्रतिचक्रेश्वरी, ७ पुरुषदत्ता, ८ मनोवेगा, ९ काली, १० ज्वालामालिनी, ११ महाकाली, १२ गौरी, १३ गान्धारी, १४ वैरोटी, १५ अनन्तमती, १६ मानसी, १७ महामानसी, १८ जया, १९ विजया, २० अपराजिता, २१ बहुरूपिणी, २२ कूष्माण्डी, २३ पद्मा और २४ सिद्धायिनी ये यक्षिणियाँ भी क्रमशः ऋषभादिक चौबीस तीर्थंकरोंके समीप रहा करती हैं ।।६४६-६४८।।

जिनेन्द्रभक्तिका फल—

वसन्ततिलकम्—

पीयूस - णिज्झर - णिहं जिण - चंद - वाणिं,
सोऊण बारस गणा [1]णिय - कोट्ठएसुं ।
णिच्चं अणंत - गुणसेढि - विसुद्धि - लद्धा -
छिंदंति कम्म - पडलं खु असंखसेणिं ।।६४९।।

अर्थ :– जैसे चन्द्रमासे अमृत झरता है, उसी प्रकार जिनेन्द्र रूपी चन्द्रमाकी वाणीको अपने-अपने कोठोंमें सुनकर वे भिन्न-भिन्न जीवोंके बारह गण नित्य अनन्त-गुणश्रेणीरूप विशुद्धिसे संयुक्त शरीरको धारण करते हुए असंख्यातश्रेणीरूप कर्म-पटलको नष्ट करते हैं ।।६४९।।

इन्द्रवज्रा—

भत्तीए आसत्त-मणा जिणिंद-पायारविंदेसु णिवेसियत्था ।
णादीद-कालं ण पयट्टमाणं, णो भावि-कालं पविभावयंति ।।६५०।।

अर्थ :—जिनका मन भक्तिमें आसक्त है और जिन्होंने जिनेन्द्र-देवके पादारविन्दोंमें आस्था (श्रद्धा) रखी है वे भव्य जीव अतीत, वर्तमान और भावी कालको भी नहीं जानते हैं । अर्थात् भक्ति-वश 'मैं कौन हूँ, कौन था और क्या होऊँगा' इस विकल्पसे रहित हो जाते हैं ।।६५०।।

---

१. द. अंकाराएसु ।

इन्द्रवज्रा—

एवं पहावा भरहस्स खेत्ते, धम्म-प्पउत्ती[1] परमं दिसंता ।
सव्वे जिणिंदा वर-भव्व-संघस्सप्पोत्थिदं[2] मोक्ख-सुहाइ-देंतु ।।९५१।।

अर्थ :—उपर्युक्त प्रभावसे संयुक्त वे सब तीर्थंकर भरत क्षेत्रमें उत्कृष्ट धर्म-प्रवृत्तिका उपदेश देते हुए उत्तम भव्य-समूहको आत्मासे उत्पन्न हुआ मोक्ष-सुख प्रदान करें ।।९५१।।

ऋषभादि तीर्थंकरोंका केवलिकाल—

पुव्वाणमेक्क - लक्खं, वासाणं ऊणिदं सहस्सेण ।
उसह - जिणिंदे कहिदं, केवलि - कालस्स परिमाणं ।।९५२।।

उसह पू० १ ल ।। रिण=वास १००० ।।

अर्थ :—ऋषभ जिनेन्द्रके केवलिकालका प्रमाण एक हजार वर्ष कम एक लाख पूर्व कहा गया है ।।९५२।।

वारस- वच्छर - समहिय-पुव्वंग-विहीण-पुव्व-इगि-लक्खं ।
केवलिकाल - पमाणं, अजिय - जिणिदे मुणेयव्वं ।।९५३।।

अजिय पू० १ ल ।। रिण=पूर्वांग १ । व १२ ।

अर्थ :—अजित जिनेन्द्रके केवलिकालका प्रमाण बारह वर्ष और एक पूर्वाङ्ग कम एक लाख पूर्व जानना चाहिए ।।९५३।।

चोद्दस-वच्छर - समहिय-चउ-पुव्वंगोण-पुव्व-इगि-लक्खं ।
संभव - जिणस्स भणिदं, केवलिकालस्स परिमाणं ।।९५४।।

सभव पू० १ ल ।। रिण=पूर्वांग ४ । १४ वरस ।

अर्थ :—सम्भव जिनेन्द्रका केवलिकाल चौदह वर्ष, चार पूर्वाङ्ग कम एक लाख पूर्व प्रमाण कहा गया है ।।९५४।।

अट्ठारस - वासाहिय - अड-[3]पुव्वंगोण-पुव्व-इगि-लक्खं ।
केवलिकाल - पमाणं, णंदणणाहम्मि णिद्दिट्ठं ।।९५५।।

णंदण पू० १ ल ।। रिण=पूर्वांग ८। वस्स १८।।

---

१. द. ज. य. प्पमत्ति । २. क. ब. उ. संघस्सुप्पोत्थिद । ३. द. ज. य. पुव्वंगाण ।

अर्थ :—अभिनन्दन जिनेन्द्रका केवलिकाल अठारह वर्ष और ८ पूर्वाङ्ग कम एक लाख पूर्व प्रमाण निर्दिष्ट किया गया है ।।६५५।।

वीसदि - वच्छर-समहिय - बारस-पुव्वंग-हीण-पुव्वाणं ।
एक्कं लक्खं होदि हु, केवलिकालं सुमइणाहम्मि ।।६५६।।

सुमइ पू० १ ल ।। रिण=पुव्वंग १२ ।। वास २० ।।

अर्थ :—सुमति जिनेन्द्रका केवलिकाल बीस वर्ष और १२ पूर्वाङ्ग कम एक लाख पूर्व प्रमाण है ।।६५६।।

विगुणिय-तिमास-समहिय-सोलस-पुव्वंग हीण - पुव्वाणं ।
इगि - लक्ख पउमणाहे, केवलिकालस्स परिमाणं ।।६५७।।

पउम पू० १ ल ।। रिण=पुव्वंग १६ ।। मा ६ ।।

अर्थ :—पद्म जिनेन्द्रका केवलिकाल ६ मास और सोलह पूर्वाङ्ग कम एक लाख पूर्व प्रमाण है ।।६५७।।

णव - संवच्छर - समहिय-वीसदि-पुव्वंग-हीण-पुव्वाणं ।
एक्कं लक्खं केवलिकाल - पमाणं सुपास - जिणे ।।६५८।।

सुपास पू० १ ल ।। रिण=पुव्वंग २० ।। वास ९ ।।

अर्थ :— सुपार्श्व जिनेन्द्रका केवलिकाल नौ वर्ष और बीस पूर्वाङ्ग कम एक लाख पूर्व प्रमाण है ।।६५८।।

मास-त्तिदयाहिय[1]- चउवीसदि-पुव्वंग - रहिद - पुव्वाणं ।
इगि - लक्खं चंदप्पह - केवलिकालस्स संखाणं ।।६५९।।

चंदपह पू० १ ल ।। रिण=पूर्वांग २४ ।। मास ३ ।।

अर्थ :— चन्द्रप्रभ जिनेन्द्रके केवलिकालकी संख्या तीन माह और चौबीस पूर्वाङ्ग कम एक लाख पूर्व है ।।६५९।।

---

१ द. ब. क. ज. य. उ. मासं तिदया वि य ।

चउ-वच्छर - समहिय-अडवीसदि-पुव्वंग-रहिद पुव्वाणं ।
एक्कं लक्खं केवलिकाल - पमाणं च पुप्फदंत - जिणे ॥९६०॥

पुप्फ पू० १ ल ॥ रिण=पूर्वांग २८ ॥ वास ४ ॥

अर्थ :—पुष्पदन्त जिनेन्द्रका केवलिकाल चार वर्ष और अट्ठाईस-पूर्वाङ्गकम एक लाख पूर्व प्रमाण है ॥९६०॥

संवस्सर-तिद - ऊणिय - पणवीस-सहस्सयाणि पुव्वाणि ।
सीयलजिणम्मि कहिदं, केवलिकालस्स परिमाणं ॥९६१॥

सीयल पुव्व० २५००० । रिण=वास ३ ॥

अर्थ :—शीतल जिनेन्द्रके केवलिकालका प्रमाण तीन वर्ष कम पच्चीस-हजार पूर्व कहा गया है ॥९६१॥

इगिवीस-वस्स-लक्खा, दोहि विहीणा पहुम्मि सेयंसे ।
चउवण्ण-वास-लक्खं, ऊणं एक्केण वासुपुज्जजिणे ॥९६२॥

॥ सेयंस वस्स[1] २०९९९९८ ॥ वासुपुज्ज वस्स ५३९९९९९ ॥

अर्थ :—श्रेयांस जिनेन्द्रका केवलिकाल दो (वर्ष) कम इक्कीस लाख वर्ष और वासुपूज्य जिनेन्द्रका एक कम चौवन लाख वर्ष प्रमाण है ॥९६२॥

पण्णरस-वास-लक्खा, तिदय-विहीणा य विमलणाहम्मि ।
सय-कदि-हद-पण्णत्तरि-वासा दो विरहिदा अणंतजिणे ॥९६३॥

॥ विमल[2] वस्स १४९९९९७ । अणंत वास ७४९९९८ ॥

अर्थ :—विमल जिनेन्द्रका केवलिकाल तीन कम पन्द्रह लाख वर्ष और अनन्तनाथ जिनेन्द्रका सौके वर्गसे गुणित पचहत्तरमेंसे दो कम है ॥९६३॥

पंच - सयाणं वग्गो, ऊणो एक्केण धम्मणाहम्मि ।
वस्स-घण - हद - पणुवीसा, सोलस - हीणा य संतीसे ॥९६४॥

॥ धम्म वस्स २४९९९९ । संति २४९९८४ ॥

---

१. द.ब.ज.य.उ. पुव्व । २. ब. उ. विमलस्स पुव्व, द. ज. य. विमल ।

अर्थ :—धर्मनाथ जिनेन्द्रका केवलिकाल पाँचसौके वर्गमेंसे एक कम और शान्तिनाथ जिनेन्द्रका दसके घनसे गुणित पच्चीसमेंसे सोलह वर्ष कम है ॥६६४॥

चोत्तीसाहिय-सग-सय, तेवोस-सहस्सयाणि कुंथुम्मि ।
चउसीदी-जुद-णव-सय-वीस-सहस्सा अरम्मि वासाणं ॥६६५॥

॥ कुंथु २३७३४ । अर २०९८४ ॥

अर्थ :—कुन्थुनाथ जिनेन्द्रका केवलिकाल तेईस हजार सातसौ चौंतीस वर्ष और अरनाथ जिनेन्द्रका बीस हजार नौ सौ चौरासी वर्ष प्रमाण है ॥६६५॥

णव-णउदि-अहिय-अड-सय-चउवण्ण-सहस्सयाणि वासाणि ।
एक्करसं चिय मासा, चउवीस दिणाइ मल्लिम्मि ॥६६६॥

। मल्लि वास ५४८९९ मा ११ दि २४ ।

अर्थ :—मल्लिनाथ जिनेन्द्रका केवलिकाल चौवन हजार आठ सौ निन्यानबे वर्ष, ग्यारह मास और चौबीस दिन प्रमाण है ॥६६६॥

णवणउदि-अहिय-चउ-सय-सत्त-सहस्साणि वस्सराणि पि ।
इगि - मासो सुव्वदए, केवलिकालस्स परिमाणं ॥६६७॥

। सुव्वद वा० ७४९९ मा १ ।

अर्थ :—मुनिसुव्रत जिनेन्द्रका केवलिकाल सात हजार चारसौ निन्यानबे वर्ष और एक मास प्रमाण है ॥६६७॥

वासाणि दो सहस्सा, चत्तारि सयाणि णमिम्मि इगिणउदी ।
एक्कोणा सत्त - सया, दस मासा चउ - दिणाणि णेमिस्स ॥६६८॥

। णमि वा २४९१ । णेमि वा ६९९ मा० १० दि ४ ।

अर्थ :—नमिनाथ जिनेन्द्रका केवलिकाल दो हजार चार सौ एकानबे वर्ष और नेमिनाथ जिनेन्द्रका एक कम सातसौ वर्ष, दस मास तथा चार दिन प्रमाण है ॥६६८॥

अड-मास-समहियाणं, ऊणत्तरि वस्सराणि पासजिणे ।
वीरम्मि तीस वासा, केवलिकालस्स संख त्ति ॥६६९॥

। पास वास ६९ मा ८ । वीर वास ३० ।

अर्थ :—पार्श्वजिनेन्द्रके केवलिकाल का प्रमाण आठ मास अधिक उनहत्तर वर्ष और वीर जिनेन्द्रका तीस वर्ष है ॥६६९॥

प्रत्येक तीर्थंकरके गणधरोंकी संख्या—

चउसीदि णउदि पण-तिग-सोलस-एक्कारसुत्तर-सयाइं ।
पणणउदी ते - णउदी, गणहरदेवा हु अट्ठ - परियंतं ॥६७०॥

। उ ८४, अ ९०, स १०५, णं १०३, सु ११६, प १११, सु ९५, च. ९३ ।

अर्थ :—आठवें तीर्थंकर पर्यन्त क्रमशः चौरासी, नब्बे, एकसौ पाँच, एकसौ तीन, एकसौ सोलह, एकसौ ग्यारह, पंचानबे और तेरानबे गणधर देव थे ॥६७०॥

अडसीदी सगसीदी, सत्तत्तरि छक्क - समहिया सट्ठी ।
पणवण्णा पण्णासा, तत्तो य अणंत - परियंतं ॥६७१॥

। पु ८८, सी ८७, से ७७, वासु ६६, वि ५५ अण ५० ।

अर्थ :—अनन्तनाथ तीर्थंकर पर्यन्त क्रमशः अठासी, सतासी, सतत्तर, छ्यासठ, पचपन और पचास गणधर थे ॥६७१॥

तेदालं छत्तीसा, पणतीसा तीस अट्ठवीसा य ।
अट्ठारस सत्तारसेक्कारस - दस - एक्करस य वीरंतं ॥६७२॥

ध० ४३, संति ३६, कुंथु ३५, अर ३०, म. २८, मु १८, ण १७, णे ११, पा १०, वीर ११ ।

अर्थ :—धर्मनाथसे वीर जिनेन्द्र पर्यन्त क्रमशः तेंतालीस, छत्तीस पेंतीस, तीस, अट्ठाईस, अठारह, सत्तरह, ग्यारह, दस और ग्यारह गणधर थे ॥६७२॥

ऋषभादि तीर्थंकरोंके आद्य गणधरोंके नाम -

[1]पढमो हु उसहसेणो, केसरिसेणो य चारुदत्तो य।
वज्जचमरो[2] य वज्जो, चमरो बलदत्त - वेदब्भा ॥९७३॥

णागो कुंथू धम्मो, मंदिरणामा जओ अरिट्ठो य।
सेणो चक्कायुहयां, सयंभू कुंभो विसाखो य ॥९७४॥

मल्लीणामो सोमा - वरदत्त सयंभु - इंदभूदीओ।
उसहादीणं आदिम - गणहर णामाणि एदाणि ॥९७५॥

अर्थ :- १ ऋषभसेन, २ केशरि (सिंह) सेन, ३ चारुदत्त, ४ वज्रचमर, ५ वज्र, ६ चमर, ७ बलदत्त (बलिदत्तक), ८ वैदर्भ, ९ नाग (अनगार), १० कुन्थु, ११ धर्म, १२ मन्दिर, १३ जय, १४ अरिष्ट, १५ सेन (अरिष्टसेन), १६ चक्रायुध, १७ स्वयंभू, १८ कुम्भ (कुन्थु), १९ विशाख, २० मल्लि, २१ सोमक, २२ वरदत्त, २३ स्वयंभू और २४ इन्द्रभूति, ये क्रमशः ऋषभादि तीर्थंकरोंके प्रथम गणधरोंके नाम हैं ॥९७३-९७५॥

[तालिका : २६ अगले पृष्ठ पर देखिये]

ऋद्धियोंका स्वरूप कहनेकी प्रतिज्ञा एवं उनके भेद—

एदे गणहर - देवा, सव्वे वि हु अट्ठ-रिद्धि-संपुण्णा।
ताणं रिद्धि - सरूवं, लव - मेत्तं तं णिरूवेमो ॥९७६॥

अर्थ :—ये सब ही गणधरदेव आठ ऋद्धियोंसे संयुक्त होते हैं। यहाँ उन गणधरों की ऋद्धियोंके स्वरूपका हम लव-मात्र निरूपण करते हैं ॥९७६॥

---

१. द. ब. क. ज. ब य. पढमा। २. द. ब ज. य. उ वज्जदमरो।

तालिका : २६

तीर्थंकरोंका केवलिकाल, गणधरोंकी संख्या एवं नाम—

नं०	नाम	केवलिकाल (गा० ९५२-९६६)	गणधरोंकी संख्या गा. ९६७-७३	ऋषभादि तीर्थं. के आद्य गणधरोंके नाम गा. ९७३-७५
१	ऋषभनाथ	९९९९९ पूर्व, ८३९९९९९ पूर्वांग, ८३९९००० वर्ष ।	८४	ऋषभसेन
२	अजितनाथ	९९९९९ पूर्व, ८३९९९९८ पूर्वांग, ८३९९९८८ वर्ष ।	९०	केशरि(सिंह)सेन
३	सम्भव	९९९९९ पूर्व, ८३९९९९५ पूर्वांग, ८३९९९८६ वर्ष ।	१०५	चारुदत्त
४	अभिनन्दन	९९९९९ पूर्व, ८३९९९९१ पूर्वांग, ८३९९९८२ वर्ष ।	१०३	वज्रचमर
५	सुमतिनाथ	९९९९९ पूर्व, ८३९९९८७ पूर्वांग, ८३९९९८० वर्ष ।	११६	वज्र
६	पद्मप्रभु	९९९९९ पूर्व, ८३९९९८३ पूर्वांग, ८३९९९९९½ वर्ष ।	१११	चमर
७	सुपार्श्वनाथ	९९९९९ पूर्व ८३९९९७९ पूर्वांग, ८३९९९९१ वर्ष ।	९५	बलदत्त
८	चन्द्रप्रभ	९९९९९ पूर्व, ८३९९९७५ पूर्वांग, ८३९९९९९ वर्ष ९ माह ।	९३	वैदर्भ
९	पुष्पदन्त	९९९९९ पूर्व, ८३९९९७१ पूर्वांग, ८३९९९९६ वर्ष ।	८८	नाग (अनगार)
१०	शीतलनाथ	२४९९९ पूर्व, ८३९९९९९ पूर्वांग, ८३९९९९७ वर्ष ।	८७	कुन्थु
११	श्रेयांसनाथ	२०९९९९८ वर्ष ।	७७	धर्म
१२	वासुपूज्य	५३९९९९९ वर्ष ।	६६	मन्दिर
१३	विमलनाथ	१४९९९९७ वर्ष ।	५५	जय
१४	अनन्तनाथ	७४९९९८ वर्ष ।	५०	अरिष्ट
१५	धर्मनाथ	२४९९९९ वर्ष ।	४३	सेन(अरिष्टसेन)
१६	शान्तिनाथ	२४९८४ वर्ष ।	३६	चक्रायुध
१७	कुन्थुनाथ	२३७३४ वर्ष ।	३५	स्वयंभू
१८	अरनाथ	२०९८४ वर्ष ।	३०	कुम्भ (कुन्थु)
१९	मल्लिनाथ	५४८९९ वर्ष, ११ मास, २४ दिन ।	२८	विशाख
२०	मुनिसुव्रत	७४९९ वर्ष, १ मास	१८	मल्लि
२१	नमिनाथ	२४९१ वर्ष ।	१७	सुप्रभ(सोमक)
२२	नेमिनाथ	६९९ वर्ष, १० मास, ४ दिन ।	११	वरदत्त
२३	पार्श्वनाथ	६९ वर्ष, ८ मास ।	१०	स्वयंभू
२४	वीरनाथ	३० वर्ष ।	११	इन्द्रभूति
			१४५९	

बुद्धी-विकिरिय[1]-किरिया, तव-बल-ओसहि-रसक्खिदी रिद्धी ।
एदासु बुद्धि - रिद्धी, अट्ठारस - भेद - विक्खादा ॥६७७॥

ओहि - मणपज्जवाणं, केवलणाणी वि बीज - बुद्धी य ।
पंचमया कोट्ठमई, पदाणुसारित्तणं छट्ठं ॥६७८॥

संभिण्णस्सोदित्तं, दूरस्सादं च दूरपस्सं च ।
दूरग्घाणं दूरस्सवणं तह दूरदंसणं चेव ॥६७९॥

दस-चोद्दस - पुव्वित्तं, णिमित्त-रिद्धीए तत्थ कुसलत्तं ।
पण्णसमणाहियाणं, कमसो पत्तेय - बुद्धि - वादित्तं ॥६८०॥

अर्थ :—१ बुद्धि, २ विक्रिया, ३ क्रिया, ४ तप, ५ बल, ६ औषधि, ७ रस और ८ क्षिति (क्षेत्र) के भेदसे ऋद्धियाँ आठ प्रकारकी है ।

इनमेंसे बुद्धिऋद्धि—१ अवधिज्ञान, २ मनःपर्ययज्ञान, ३ केवलज्ञान, ४ बीजबुद्धि, ५ कोष्ठ-मति, ६ पदानुसारित्व, ७ संभिन्नश्रोतृत्व, ८ दूरास्वादन, ९ दूरस्पर्श, १० दूरघ्राण, ११ दूरश्रवण, १२ दूरदर्शन, १३ दसपूर्वित्व, १४ चौदह-पूर्वित्व, १५ निमित्तऋद्धि इनमें कुशलता, १६ प्रज्ञाश्रमण, १७ प्रत्येक-बुद्धित्व और १८ वादित्व इन अठारह भेदोंसे विख्यात है ॥६७७-६८०॥

बुद्धि-ऋद्धियोंके अन्तर्गत अवधिज्ञान ऋद्धिका स्वरूप—

अंतिम - खंदंताइं[2], परमाणु - प्पहुदि - मुत्ति-दव्वाइं ।
जं पच्चक्खं जाणइ, तमोहिणाणं ति णादव्वं ॥६८१॥

। ओहिणाणं गदं ।

अर्थ :—जो (देश) प्रत्यक्ष-ज्ञान अन्तिम स्कन्ध-पर्यन्त परमाणु आदिक मूर्त द्रव्योंको जानता है उसको अवधिज्ञान जानना चाहिए ॥६८१॥

। अवधिज्ञानका वर्णन पूर्ण हुआ ।

---

१. द. ब. य. विकिकरिय । २. द. खंवताई, ब. क. ज. य. उ. खंवताइं ।

मनःपर्ययज्ञान ऋद्धि—

चिंतियमचिंतियं वा, [1]अद्धं चिंतियमणेय - भेय - गयं।
जं जाणइ णर - लोए, तं चिय मणपज्जवं णाणं ॥६८२॥

। मणपज्जवणाणं गदं ।

अर्थ :—मनुष्य लोकमें स्थित अनेक भेद रूप चिन्तित, अचिन्तित अथवा अर्धचिन्तित पदार्थोंको जो ज्ञान जानता है वह मनःपर्ययज्ञान है ॥६८२॥

। मनःपर्ययज्ञान का वर्णन पूर्ण हुआ ।

केवलज्ञान—

उपविट्ठ-सयल-भावं, लोयालोएसु तिमिर - परिचत्तं।
केवलमखंड - भेदं, केवलणाणं भणंति [2]जिणा ॥६८३॥

। केवलणाणं गदं ।

अर्थ :—जो ज्ञान प्रतिपक्षीसे रहित होकर सम्पूर्ण पदार्थोंको विषय करता है, लोक एवं अलोकके विषयमें अज्ञान-तिमिरसे रहित है, केवल (इन्द्रियादिक की सहायतासे रहित) है और अखण्ड है, उसे जिनेन्द्रदेव केवलज्ञान कहते हैं ॥६८३॥

। केवलज्ञान का वर्णन पूर्ण हुआ ।

बीजबुद्धि—

णोइंदिय - सुदणाणावरणाणं [3]वीरअंतरायाए ।
तिविहाणं पयडीणं, उक्कस्स - खओवसम - विसुद्धस्स ॥६८४॥

संखेज्ज - सरूवाणं, [4]सद्दाणं तत्थ लिंग - संजुत्तं ।
एक्कं चिय बीजपदं, लद्धूण गुरूपदेसेणं ॥६८५॥

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. अत्थचिंता य। २. ब. उ. जिणा णं। ३. द. क. ज. य. वीरिय। ४. द. ब. क. ज. य. उ. तत्ताणं।

तम्मि पदे आहारे, सयल - सुदं चिंतिऊण[1] गेण्हेदि ।
कस्स वि महेसिणो जा, बुद्धी सा बीज - बुद्धि त्ति ।।६८६।।

। बीज-बुद्धी समत्ता ।

अर्थ :—नोइन्द्रियावरण, श्रुतज्ञानावरण और वीर्यान्तराय इन तीन प्रकारकी प्रकृतियोंके उत्कृष्ट क्षयोपशमसे विशुद्ध हुए किसी भी महर्षिकी जो बुद्धि सख्यात-स्वरूप शब्दोंके मध्यमेंसे लिङ्ग सहित एक ही बीजभूत पदको गुरुके उपदेशसे प्राप्त कर उस पदके आश्रयसे सम्पूर्ण श्रुतको विचार कर ग्रहण करती है, वह बीज-बुद्धि है ।।६८४-६८६।।

। बीज-बुद्धिकी वर्णना समाप्त हुई ।

कोष्ठबुद्धि—

उक्कस्स - धारणाए, जुत्तो पुरिसो गुरूवदेसेण ।
णाणाविह - गंथेसु[2], वित्थारे लिंग - सद्द - बीजाणि ।।६८७।।

गहिऊण णिय-मदीए, मिस्सेण विणा धरेदि मदि-कोट्ठे ।
जो होदि तस्स बुद्धी, णिद्दिट्ठा कोट्ठ - बुद्धि त्ति ।।६८८।।

। कोट्ठ-बुद्धी[3] गदा ।

अर्थ : उत्कृष्ट धारणासे युक्त जो कोई पुरुष (ऋषि) गुरुके उपदेशसे नाना प्रकारके ग्रन्थोंमेंसे विस्तार पूर्वक लिङ्ग सहित शब्दरूप बीजोंको अपनी बुद्धिसे ग्रहण कर उन्हें मिश्रणके बिना बुद्धिरूपी कोठेमें धारण करता है, उसकी बुद्धि कोष्ठ-बुद्धि कही गई है ।।६८७-६८८।।

। कोष्ठ बुद्धिकी वर्णना समाप्त हुई ।

पदानुसारिणी बुद्धिके भेद एवं उनका स्वरूप—

बुद्धी वियक्खण - णाणं, पदाणुसारी हवेदि तिवियप्पा ।
अणुसारी पडिसारी, जहत्थ - णामा उभयसारी ।।६८९।।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. चिंतियाणं । २. द. गंथत्थेसु वित्थरे लिग-सद्द बीजाणि । ३. द. ब. क. ज. य. उ. कोट्ठबुद्धि गदं ।

अर्थ :—विशिष्ट ज्ञानको पदानुसारणी बुद्धि कहते हैं। उसके तीन भेद हैं—अनुसारणी, प्रतिसारणी और उभयसारणी। ये तीनों बुद्धियाँ यथार्थ नाम वाली हैं ॥९८९।

आदि - अवसाण - मज्झे, गुरूवदेसेण एक्क-बीज-पदं।
गेण्हिय उवरिम-गंथं, जा गिण्हदि सा मदी हु अणुसारी ॥९९०॥

। अणुसारी गदा ।

अर्थ :—जो बुद्धि आदि, मध्य एवं अन्तमें गुरुके उपदेशसे एक बीज पदको ग्रहण करके उपरिम ग्रन्थको ग्रहण करती है वह अनुसारणी बुद्धि कहलाती है ॥९९०॥

। अनुसारणी बुद्धि की वर्णना समाप्त हुई।

आदि-अवसाण-मज्झे, गुरूवदेसेण एक्क - बीज - पदं।
गेण्हिय हेट्ठिम - गंथं, बुज्झदि जा सा च पडिसारी ॥९९१॥

। पडिसारी गदा ।

अर्थ :—गुरुके उपदेशसे आदि, मध्य अथवा अन्तमे एक बीज पदको ग्रहण करके जो बुद्धि अधस्तन ग्रन्थको जानती है, वह प्रतिसारणी बुद्धि कहलाती है ॥९९१॥

। प्रतिसारणी बुद्धि की वर्णना समाप्त हुई।

णियमेण अणियमेण य, जुगवं एगस्स बीज - सद्दस्स।
उवरिम - हेट्ठिम - गंथं, जा[1] बुज्झइ उभयसारी सा ॥९९२॥

। उभयसारी गदा ।

। एवं पदाणुसारी गदा ।

अर्थ :—जो बुद्धि नियम अथवा अनियमसे एक बीज-शब्दके (ग्रहण करने पर) उपरिम और अधस्तन ग्रन्थको एक साथ जानती है, वह उभयसारणी बुद्धि है ॥९९२॥

। उभय-सारणी बुद्धिका कथन समाप्त हुआ।

। इसप्रकार पदानुसारणी बुद्धिका कथन समाप्त हुआ।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. जो।

सम्भिन्नश्रोतृत्व-बुद्धि-ऋद्धि—

सोदिंदिय[1] - सुदणाणावरणाणं वीरियंतरायाए ।
उक्कस्स - खवोवसमे, उदिदंगोवंग - णाम - कम्मम्मि ॥९९३॥

सोदुक्कस्स - खिदीदो, बाहिं संखेज्ज - जोयण-पएसे ।
संठिय - णर - तिरियाणं, बहुविह - सद्दे समुत्थंते ॥९९४॥

अक्खर - अणक्खरमए, सोदूणं दस - दिसासु पत्तेक्कं ।
जं दिज्जदि पडिवयणं, तं चिय संभिण्ण - सोदित्तं ॥९९५॥

। संभिण्ण-सोदित्तं गदं ।

अर्थ :—श्रोत्रेन्द्रियावरण, श्रुतज्ञानावरण और वीर्यान्तरायका उत्कृष्ट क्षयोपशम तथा अङ्गोपाङ्ग नामकर्मका उदय होनेपर श्रोत्र-इन्द्रियके उत्कृष्ट क्षेत्रसे बाहर दसों दिशाओंमें संख्यात योजन प्रमाण क्षेत्रमें स्थित मनुष्य एवं तिर्यञ्चोंके अक्षरानक्षरात्मक बहुत प्रकारके उठने वाले शब्दों को सुनकर जिससे प्रत्युत्तर दिया जाता है, वह संभिन्नश्रोतृत्व नामक बुद्धि-ऋद्धि कहलाती है ॥९९३-९९५॥

। संभिन्नश्रोतृत्व-बुद्धि-ऋद्धिका कथन समाप्त हुआ ।

दूरास्वादित्व-ऋद्धि—

जिब्भिदिय - सुदणाणावरणाणं वीरियंतरायाए ।
उक्कस्स - खवोवसमे उदिदंगोवंग - णाम - कम्मम्मि ॥९९६॥

जिब्भुक्कस्स-खिदीदो, बाहिं संखेज्ज-जोयण-ठियाणं ।
विविह - रसाणं सादं, जं जाणइ दूर - सादित्तं ॥९९७॥

। दूरसादित्तं गदं ।

अर्थ :—जिह्वेन्द्रियावरण, श्रुतज्ञानावरण और वीर्यान्तरायका उत्कृष्ट क्षयोपशम तथा अङ्गोपाङ्ग नामकर्मका उदय होने पर जो जिह्वा-इन्द्रियके उत्कृष्ट विषय-क्षेत्रसे बाहर संख्यात योजन

---

1. ब. ज. य. उ. सोदिदय ।

प्रमाण क्षेत्रमें स्थित विविध-रसोंके स्वादको जानती है, उसे दूरास्वादित्व-ऋद्धि कहते हैं ।।६६६–६६७।।

। दूरास्वादित्व-ऋद्धिका कथन समाप्त हुआ ।

दूरस्पर्शत्व-ऋद्धि—

फासिंदिय - सुदणाणावरणाणं वीरियंतरायाए ।
उक्कस्स - खवोवसमे, उदिदंगोवंग - णाम - कम्मम्मि ।।६६८।।

फासुक्कस्स - खिदीदो, बाहिं संखेज्ज-जोयण-ठियाणं ।
अट्ठ - विहप्फासाणि, जं जाणइ दूर - फासत्तं ।।६६६।।

। दूर-फासं गदं ।

अर्थ :– स्पर्शनेन्द्रियावरण, श्रुतज्ञानावरण और वीर्यान्तरायका उत्कृष्ट क्षयोपशम तथा अङ्गोपाङ्ग नामकर्म का उदय होने पर जो स्पर्शनेन्द्रियके उत्कृष्ट विषय क्षेत्रसे बाहर संख्यात योजनोंमें स्थित आठ प्रकारके स्पर्शोंको जानती है वह दूरस्पर्शत्व-ऋद्धि है ।।६६८–६६६।।

। दूर-स्पर्शत्व-ऋद्धिका कथन समाप्त हुआ ।

दूर-घ्राणत्व-ऋद्धि—

घाणिंदिय - सुदणाणावरणाणं वीरियंतरायाए ।
उक्कस्स - खवोवसमे, उदिदंगोवंग - णाम - कम्मम्मि ।।१०००।।

घाणुक्कस्स-खिदीदो, बाहिं संखेज्ज-जोयण-गदाणि[1] ।
जं बहुविह - [2]गंधाणि, तं घायदि दूर - घाणत्तं ।।१००१।।

। दूर-घाणत्तं गदं ।

अर्थ :—घ्राणेन्द्रियावरण, श्रुतज्ञानावरण और वीर्यान्तरायका उत्कृष्ट क्षयोपशम तथा अंगोपांग नामकर्मका उदय होने पर जो घ्राणेन्द्रियके उत्कृष्ट विषय क्षेत्रसे बाहर संख्यात योजनोंमें प्राप्त हुए बहुत प्रकारके गन्धोंको सूँघती है, वह दूरघ्राणत्व ऋद्धि है ।।१०००–१००१।।

। दूरघ्राणत्व-ऋद्धिका कथन समाप्त हुआ ।

---

१. ब. क. उ. गदाणं । २. द. ब. क. ज. य. उ. गंधाण ।

दूर-श्रवणत्व-ऋद्धि—

सोदिंदिय - सुदणाणावरणाणं वीरियंतरायाए ।
उक्कस्स - खओवसमे, उदिदंगोवंग - णाम - कम्मम्मि ॥१००२॥

सोदुक्कस्स - खिदीदो, बाहिं संखेज्ज - जोयण - पएसे ।
चिट्ठंताणं माणुस - तिरियाणं बहु - वियप्पाणं ॥१००३॥

अक्खर - अणक्खरमए, बहुविह - सद्दे विसेस-संजुत्ते ।
उप्पण्णे आयण्णइ, जं भणिअं दूर - सवणत्तं ॥१००४॥

। दूरसवणत्तं गदं ।

अर्थ :—श्रोत्रेन्द्रियावरण, श्रुतज्ञानावरण और वीर्यान्तरायका उत्कृष्ट क्षयोपशम तथा अङ्गोपाङ्ग नामकर्मका उदय होने पर जो श्रोत्रेन्द्रियके उत्कृष्ट विषय-क्षेत्रसे बाहर संख्यात योजन प्रमाण क्षेत्रमें स्थित-रहने वाले बहुत प्रकारके मनुष्यों एवं तिर्यञ्चोंकी विशेषतासे संयुक्त अनेक प्रकारके अक्षरानक्षरात्मक शब्दोंके उत्पन्न होने पर उनका श्रवण करती है, उसे दूरश्रवणत्व ऋद्धि कहा गया है ॥१००२-१००४॥

। दूरश्रवणत्व-ऋद्धिका कथन समाप्त हुआ ।

दूर-दर्शित्व-ऋद्धि—

रूविंदिय - सुदणाणावरणाणं वीरियंतरायाए ।
उक्कस्स - खओवसमे, उदिदंगोवंग - णाम - कम्मम्मि ॥१००५॥

रूउक्कस्स-खिदीदो, बाहिं संखेज्ज - जोयण - ठिदाइं ।
जं बहुविह - दव्वाइं, देक्खइ तं दूरदरिसिणं णाम ॥१००६॥

। दूरदरिसिणं गदं ।

अर्थ :—चक्षुरिन्द्रियावरण, श्रुतज्ञानावरण और वीर्यान्तरायका उत्कृष्ट क्षयोपशम तथा अङ्गोपाङ्ग नामकर्मका उदय होने पर जो चक्षुरिन्द्रियके उत्कृष्ट विषयक्षेत्रसे बाहर संख्यात योजनोंमें स्थित बहुत प्रकारके द्रव्योंको देखती है, वह दूरदर्शित्व-ऋद्धि है ॥१००५-१००६॥

। दूरदर्शित्व-ऋद्धिका कथन समाप्त हुआ ।

दश-पूर्वित्व-ऋद्धि—

रोहिणि - पहुदीण महाविज्जाणं देवदाउ पंच सया ।
अंगुट्ठ - पसेणाइं, [1]खुल्लय - विज्जाण सत्त सया ॥१००७॥

एत्तूण पेसणाइं, मग्गंते दसम - पुव्व - पढणम्मि ।
णेच्छंति संजमंता, ताओ जे ते[2] अभिण्णदसपुव्वी ॥१००८॥

भुवणेसु सुप्पसिद्धा, विज्जाहर-समण-णाम-पज्जाया ।
ताणं मुणीण बुद्धी, दसपुव्वी णाम बोद्धव्वा ॥१००९॥

। दसपुव्वी गदा ।

अर्थ :— दस-पूर्व पढ़नेमें रोहिणी आदि महाविद्याओंके पाँचसौ और अंगुष्ठ-प्रसेनादिक (प्रश्नादिक) क्षुद्र (लघु) विद्याओंके सातसौ देवता आकर आज्ञा मांगते हैं। इस समय जो महर्षि जितेन्द्रिय होनेके कारण उन विद्याओं की इच्छा नहीं करते, वे 'विद्याधर श्रमण' पर्याय नामसे भुवनमें प्रसिद्ध होते हुए अभिन्नदसपूर्वी कहलाते हैं। उन ऋषियोंकी बुद्धिको दस - पूर्वी जानना चाहिए ॥१००७-१००९॥

। दस-पूर्वित्व-ऋद्धिका कथन समाप्त हुआ ।

चौदह-पूर्वित्व ऋद्धि—

सयलागम-पारगया, सुदकेवलि - णाम - सुप्पसिद्धा जे ।
एदाण बुद्धि - रिद्धी, चोद्दसपुव्वि त्ति णामेण ॥१०१०॥

। चोद्दस-पुव्वित्तं[3] गदं ।

अर्थ :—जो महर्षि सम्पूर्ण आगमके पारंगत हैं तथा श्रुतकेवली नामसे सुप्रसिद्ध हैं उनके चौदहपूर्वी नामक बुद्धि-ऋद्धि होती है ॥१०१०॥

। चौदह-पूर्वित्व-ऋद्धिका कथन समाप्त हुआ ।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. अक्खअविज्जाण । २. द. ब. क. ज. य. उ. त । ३. द ब क. ज. य. उ पुव्वित्ति ।

निमित्त-ऋद्धिके अन्तर्गत नभ, भौम आदि निमित्तोंका निरूपण—

णइमित्तिका य रिद्धी, णभ - भउमंगं - सराइ वेंजणयं ।
लक्खण - चिण्हं सउणं, अट्ठ - वियप्पेहि वित्थरिदं ।।१०११।।

अर्थ :—नैमित्तिक ऋद्धि नभ, भौम, अंग, स्वर, व्यंजन, लक्षण, चिह्न (छिन्न ?) और स्वप्न इन आठ भेदोंसे विस्तृत है ।।१०११।।

रवि-ससि-गह-पहुदीणं, उदयत्थमणादिआइं[1] दट्ठूणं ।
कालत्तय-दुक्ख-सुहं, जं जाणइ तं हि णह - णिमित्तं ।।१०१२।।

। णह-णिमित्तं गदं ।

अर्थ :—सूर्य, चन्द्र और ग्रह आदिके उदय एवं अस्त आदिकोंको देखकर जो कालत्रयके दुःख-सुख आदिका जानना है, वह नभ-निमित्त है ।।१०१२।।

। नभनिमित्तका कथन समाप्त हुआ ।

घण-सुसिर-णिद्ध-लुक्ख-प्पहुदि-गुणे भाविदूण भूमीए ।
जं जाणइ खय-वड्ढि, [2]तम्मयस-कणय-रजद-पमुहाणं ।।१०१३।।

दिस-विदिस-अंतरेसुं, चउरंग - बलं ठिदं च दट्ठूणं ।
जं जाणइ जयमजयं, तं भउम - णिमित्तमुद्दिट्ठं ।।१०१४।।

। भउम-णिमित्तं गदं ।

अर्थ :—पृथिवीके घन (सान्द्रता), सुषिर (पोलापन), स्निग्धता और रूक्षता आदि गुणोंका विचार कर जो तांबा, लोहा, स्वर्ण एवं चाँदी आदि धातुओंकी हानि-वृद्धिको तथा दिशा-विदिशाओंके अन्तरालोंमें स्थित चतुरंगबलको देखकर जो जय-पराजय को भी जानता है, उसे भौम-निमित्त कहा गया है ।।१०१३-१०१४।।

। भौम-निमित्तका कथन समाप्त हुआ ।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ आदि । २. द. ब. क. ज. य. उ. तंमयग ।

वातादि - प्पयडीओ[1], रुहिर - प्पहुदिस्सहाव-सत्ताइं[2] ।
णिण्णाण[3] उण्णयाणं, अंगोवंगाण दंसणा पासा[4] ।।१०१५।।

णर-तिरियाणं दट्ठुं, जं जाणइ दुक्ख-सोक्ख-मरणादिं ।
कालत्तय - णिप्पण्णं, अंग - णिमित्तं पसिद्धं तु ।।१०१६।।

। अंग-णिमित्तं गदं ।

अर्थ :—जिससे मनुष्य और तिर्यञ्चोंके निम्न एव उन्नत अंग-उपाङ्गोंके दर्शन एवं स्पर्शसे वातादि तीन प्रकृतियों और रुधिरादि सात स्वभावों (धातुओं) को देखकर तीनों कालोंमें उत्पन्न होने वाले सुख-दुःख तथा मरण-आदिको जाना जाता है, वह अङ्ग-निमित्त नामसे प्रसिद्ध है ।।१०१५-१०१६।।

। अङ्ग-निमित्तका कथन समाप्त हुआ ।

णर-तिरियाण विचित्तं, सद्दं सोदूण दुक्ख-सोक्खादिं ।
कालत्तय - णिप्पण्णं, जं जाणइ तं सर - णिमित्तं ।।१०१७।।

। सर-णिमित्तं गदं ।

अर्थ :—जिसके द्वारा मनुष्यों और तिर्यञ्चोंके विचित्र शब्दोंको सुनकर कालत्रयमें होने वाले दुःख-सुखको जाना जाता है, वह स्वर-निमित्त है ।।१०१७।।

। स्वर-निमित्तका कथन समाप्त हुआ ।

सिर-मुह-कंठ-प्पहुदिसु, तिल-मसय-प्पहुदिआइ[5] दट्ठूणं ।
जं तिय-काल-सुहाइं, जाणइ तं वेंजण - णिमित्तं ।।१०१८।।

। वेंजण-णिमित्तं गदं ।

अर्थ :—सिर, मुख और कण्ठ आदि पर तिल एवं मसे आदिको देखकर तीनों कालके सुखादिक को जानना, सो व्यञ्जन-निमित्त है ।।१०१८।।

। व्यञ्जन-निमित्तका कथन समाप्त हुआ ।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. परिदीओ । २. द. ब. क. ज. य. उ. सत्तेइं । ३. द. ब. क. ज. य. उ. तिण्हाण उण्हयाणं । ४. द. ब. क. ज. य. उ. पासं । ५. द. ब. क. ज. य. उ. आदि ।

कर-चरणतल-प्पहुदिसु, पंकय - कुलिसादियाणि दट्ठूणं ।
जं तिय-काल-सुहाइं, लक्खइ तं लक्खण - णिमित्तं ।।१०१९।।

लक्खण-णिमित्तं गदं ।

अर्थ :--हस्ततल (हथेली) और चरणतल (पगतली) आदिमें कमल एवं वज्र इत्यादि चिह्नोंको देखकर कालत्रयमें होने वाले सुखादिको जानना, यह लक्षण निमित्त है ।।१०१९।।

। लक्षण-निमित्तका कथन समाप्त हुआ ।

सुर-दाणव-रक्खस-णर-तिरिएहिं [1]छिण्ण-सत्थ-वत्थाणि ।
पासाद - णयर - देसादियाणि चिण्हाणि दट्ठूणं ।।१०२०।।

कालत्तय - संभूदं, सुहासुहं मरण - विविह - दव्वं च ।
सुह - दुक्खाइं लक्खइ, चिण्ह-णिमित्तत्ति तं जाणइ ।।१०२१।।

। चिण्ह-णिमित्तं गदं ।

अर्थ :--देव, दानव, राक्षस, मनुष्य और तिर्यञ्चोंके द्वारा छेदे गये शस्त्र एवं वस्त्रादि तथा प्रासाद, नगर और देशादिक चिह्नोंको देखकर त्रिकालमें उत्पन्न होने वाले शुभ-अशुभको, मरण-को, विविध प्रकारके द्रव्योंको और सुख-दुःखको जानना यह चिह्न निमित्त है ।।१०२०-१०२१।।

। चिह्न-निमित्तका कथन समाप्त हुआ ।

[2]वातादि-दोस-चत्तो, पच्छिम - रत्ते मयंक-रवि-पहुदिं ।
णिय-मुह-कमल-पविट्ठं, देक्खइ सउणम्मि सुह - सउणं ।।१०२२।।

घड - तेल्लब्भंगादी, रासह - करभादिएसु[3] आरोहं ।
परदेस - गमण - सव्वं, जं देक्खइ असुह - सउणं तं ।।१०२३।।

जं भासइ दुक्ख - सुह - प्पमुहं कालत्तए वि संजादं ।
तं चिय सउण - णिमित्तं, चिण्हा मालो[4] त्ति दो-भेदं ।।१०२४।।

---

१. द. ब. ज. उ. छद । २. द. बालादि । ३ द. ज खरभादिएसु । ४. द. ब क. ज. य. उ. मालोट्ठिदो भेदं ।

करि-केसरि-पहुदीणं, [1]दंसण - मेत्तादि चिण्ह-सउणं तं ।
पुव्वावर - संबंधं, सउणं तं माल - सउणो त्ति ।।१०२५।।

। सउण-णिमित्तं गदं ।

।। एवं णिमित्त-रिद्धी समत्ता ।।

अर्थ :—वात-पित्तादि दोषोंसे रहित सोया हुआ व्यक्ति पिछली रात्रिमें यदि अपने मुख-कमलमें प्रविष्ट होते हुए सूर्य-चन्द्र आदि शुभ स्वप्नोंको देखे तथा घृत एवं तैल आदि की मालिश, गर्दभ एवं ऊँट आदि पर सवारी और परदेश-गमनादिरूप अशुभ स्वप्न देखे तो उसके फलस्वरूप तीन कालमें होनेवाले सुख-दुःखादिकको बतलाना स्वप्न-निमित्त है । इसके चिह्न और माला रूपसे दो भेद हैं । इनमेंसे स्वप्नमे हाथी एवं सिंहादिकके दर्शन मात्र आदिकको चिह्न-स्वप्न और पूर्वापर सम्बन्ध रखने वाले स्वप्नको माला स्वप्न कहते हैं ।।१०२२-१०२५।।

। स्वप्न-निमित्तका कथन समाप्त हुआ ।

। इसप्रकार निमित्त-ऋद्धिका कथन समाप्त हुआ ।

प्रज्ञा-श्रमण-ऋद्धि—

पगदीए सुदणाणावरणाए वीरियंतरायाए ।
उक्कस्स - खवोवसमे, उप्पज्जइ पण्ण - समणद्धी ।।१०२६।।

पण्णा-सवणद्धि-जुदो, चोद्दस-पुव्वीसु विसय-सुहुमत्तं ।
सव्वं हि सुदं जाणदि, अकअज्झअणो वि णियमेणं ।।१०२७।।

भासंति तस्स बुद्धी, पण्णा - समणद्धि सा च चउ-भेदा ।
अउपत्तिय - परिणामिय-वइणइकी-कम्मजाभिधाणेहि ।।१०२८।।

अर्थ :—श्रुतज्ञानावरण और वीर्यान्तरायकर्मका उत्कृष्ट क्षयोपशम होने पर प्रज्ञा-श्रमण-ऋद्धि उत्पन्न होती है । प्रज्ञा-श्रमण-ऋद्धिसे युक्त महर्षि बिना अध्ययन किए ही चौदह-पूर्वोंमें विषय-की सूक्ष्मता पूर्वक सम्पूर्ण श्रुतको जानता है और उसका नियम-पूर्वक निरूपण करता है । उसकी

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. दंसणजेट्ठादि ।

बुद्धिको प्रज्ञा-श्रमण-ऋद्धि कहते हैं। वह औत्पत्तिकी, पारिणामिकी, वैनयिकी और कर्मजा इन चार नामों वाली जाननी चाहिए ॥१०२६-१०२८॥

अउपत्तिकी भवंतर - सुद - विणएणं समुल्लसिदभावा।
णिय-णिय-जादि-विसेसे, उप्पण्णा पारिणामिकी णामा ॥१०२९॥

बइणइकी विणएणं, उप्पज्जदि बारसंग-सुद-जोग्गे।
उवदेसेण विणा तव - विसेस-लाहेण कम्मजा तुरिमा ॥१०३०॥

। पण्णा-समणद्धि गदा।

अर्थ :—पूर्व-भवमें श्रुतके प्रति की गई विनयसे उत्पन्न होने वाली औत्पत्तिकी, निज-निज जाति-विशेषमें उत्पन्न हुई पारिणामिकी, द्वादशाङ्ग श्रुतके योग्य विनयसे उत्पन्न होने वाली वैनयिकी और उपदेशके बिना ही विशेष तपकी प्राप्तिसे आविर्भूत हुई चौथी कर्मजा प्रज्ञा-श्रमण-ऋद्धि समझनी चाहिए ॥१०२९-१०३०॥

। प्रज्ञा-श्रमण-ऋद्धिका कथन समाप्त हुआ।

प्रत्येक-बुद्धि—

कम्माण उवसमेण य, गुरूवदेसं विणा वि पावेदि।
सण्णाण - तवप्पगमं, जीए[1] पत्तेय - बुद्धी सा ॥१०३१॥

। पत्तेय-बुद्धी गदा[2]।

अर्थ :—जिसके द्वारा गुरुके उपदेशके बिना ही कर्मोंके उपशमसे सम्यग्ज्ञान और तपके विषयमें प्रगति होती है, वह प्रत्येक-बुद्धि कहलाती है ॥१०३१॥

प्रत्येक बुद्धिका कथन समाप्त हुआ।

---

१. ब. ब. क. ज. य. उ. जीवे। २. द. ब. क. ज. य. उ. बदं।

वादित्व-ऋद्धि —

सक्कादि पि विपक्खं, बहुवादेहिं णिरुत्तरं कुणदि ।
पर - दव्वाइ[1] गवेसइ, जीए वादित्त - बुद्धीए ॥१०३२॥

। वादित्त-रिद्धी-गदा ।

। एवं बुद्धि-रिद्धी-समत्ता ।

अर्थ :—जिस ऋद्धि द्वारा शाक्यादिक (या शक्रादि) विपक्षियोंको भी बहुत भारी वादसे निरुत्तर कर दिया जाता है और परके द्रव्योंकी गवेषणा (परीक्षा) की जाती है (या दूसरोंके छिद्र अथवा दोष ढूँढे जाते हैं) वह वादित्व बुद्धि-ऋद्धि कहलाती है ॥१०३२॥

वादित्व-बुद्धि-ऋद्धिका कथन समाप्त हुआ ।

॥ इसप्रकार बुद्धि-ऋद्धिका कथन समाप्त हुआ ॥

विक्रिया ऋद्धिके भेद एवं उनका स्वरूप—

अणिमा-महिमा-लघिमा-गरिमा-पत्ती य तह[2] अ पाकम्मं ।
ईसत्त - वसित्ताइं[3], अप्पडिघावंतधाणा य ॥१०३३॥

रिद्धी हु कामरूवा, एवं रूवेहिं विविह - भेएहिं ।
रिद्धि - विकिरिया णामा, समणाणं तव - विसेसेणं ॥१०३४॥

अर्थ :—अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व, वशित्व, अप्रतिघात, अन्तर्धान और कामरूप, इस प्रकारके अनेक भेदोंसे युक्त विक्रिया नामक ऋद्धि तपो-विशेषसे श्रमणोंके हुआ करती है ॥१०३३-१०३४॥

---

१. [परछिद्दाइ] । २. द. तह अप्पकम्मं । ब. उ. तहा अ पाकम्म । ३. द. ब. क. ज. य. उ. वसत्ताइं ।

अणिमा-ऋद्धि—

अणु-तणु-करणं अणिमा, अणुच्छिद्दे पविसिदूण तत्थेव ।
विकिरदि खंधावारं, [1]णिस्सेसं चक्कवट्टिस्स ॥१०३५॥

अर्थ :—शरीरको अणु बराबर (छोटा) कर लेना अणिमा-ऋद्धि है। इस ऋद्धिके प्रभावसे महर्षि अणुके बराबर छिद्रमें प्रविष्ट होकर वहाँ ही (विक्रिया द्वारा) चक्रवर्तीके सम्पूर्ण कटककी रचना करता है ॥१०३५॥

महिमा, लघिमा और गरिमा-ऋद्धियाँ—

मेरूवमाण[2]- देहा, महिमा अणिलाउ लहुतरो लहिमा ।
वज्जाहितो गुरुवत्तणं च गरिम त्ति भण्णंति ॥१०३६॥

अर्थ :—शरीरको मेरु बराबर (बड़ा) कर लेना महिमा, वायुसे भी लघुतर (पतला) करनेको लघिमा और वज्रसे भी अधिक गुरुता युक्त कर लेनेको गरिमा ऋद्धि कहते हैं ॥१०३६॥

प्राप्ति-ऋद्धि -

भूमीए चेट्ठंतो, अंगुलि - अग्गेण सूर - ससि - पहुदिं ।
मेरु - सिहराणि अण्णं, जं पावदि पत्ति - रिद्धी सा ॥१०३७॥

अर्थ :—भूमिपर स्थित रहकर अंगुलिके अग्रभागसे सूर्य-चन्द्र आदिकको, मेरु-शिखरोंको तथा अन्य भी वस्तुओंको जो प्राप्त करती है वह प्राप्ति-ऋद्धि कहलाती है ॥१०३७॥

प्राकाम्य-ऋद्धि –

सलिले वि य भूमीए, [3]उम्मज्ज-णिमज्जणाणि जं कुणदि ।
भूमीए वि य सलिले, गच्छदि पाकम्म - रिद्धी सा ॥१०३८॥

अर्थ :—जिस ऋद्धिके प्रभावसे (श्रमण) पृथिवीपर भी जलके सदृश उन्मज्जन-निमज्जन करता है तथा जलपर भी पृथिवीके सदृश गमन करता है, वह प्राकाम्य-ऋद्धि है ॥१०३८॥

---

१. द. णिएस । २. ब. क. उ. मेरूवमाणा । ३. द. ब. उ. उम्मज्जणाणि ।

ईशत्व-वशित्व-ऋद्धि—

णिस्सेसाण पहुत्तं, जगाण ईसत्त - णाम - रिद्धी सा ।
वसमेंति तव - बलेणं, जं जीवोहा वसित्त - रिद्धी सा ।।१०३९।।

अर्थ :—जिससे सब मनुष्यों पर प्रभुत्व होता है, वह ईशत्व-नामक ऋद्धि है तथा जिससे तपो-बल द्वारा जीव-समूह वश में होते हैं, वह वशित्व ऋद्धि कही जाती है ।।१०३९।।

अप्रतिघात-ऋद्धि—

सेल-सिला-तरु-पमुहाणब्भंतरं[1] होइदूण गयणं व ।
जं वच्चदि सा रिद्धी, अप्पडिघादेत्ति गुण - णामा ।।१०४०।।

अर्थ :—जिस ऋद्धिके बलसे शैल, शिला और वृक्षादिकके मध्यमें होकर आकाशके सदृश गमन किया जाता है, वह सार्थक नामवाली अप्रतिघात-ऋद्धि है ।।१०४०।।

अदृश्यता एवं कामरूपित्व-ऋद्धि—

जं हवदि [2]अद्दिसत्तं, अंतद्धाणाभिहाण - रिद्धी सा ।
जुगवं बहुरूवाणि, जो विरयदि कामरूव - रिद्धी सा ।।१०४१।।

। विक्किरिया-रिद्धि[3] समत्ता ।

अर्थ :—जिस ऋद्धिसे अदृश्यता प्राप्त होती है, वह अन्तर्धान-नामक ऋद्धि और जिससे युगपत् बहुतसे रूप रचे जाते हैं, वह कामरूप-ऋद्धि है ।।१०४१।।

। विक्रिया-ऋद्धि-समाप्त हुई ।

क्रिया-ऋद्धिके भेद, आकाश-गामिनी-ऋद्धिका लक्षण एवं चारण-ऋद्धिके भेद—

दुविहा किरिया - रिद्धी, णहयल-गामित्त-चारणत्तेहिं ।
[4]उड्ढीओ आसीणो, काउस्सग्गेण इदरेणं ।।१०४२।।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. पमुहाणं अंतरतं होइदम्मि । २. द. ब. क. ज. य. उ. अद्दिसत्तं । ३. ब. क. ऋद्धि । ४. द. ब. उ. उड्ढीओ, क. उब्भीओ ।

गच्छेदि जिए गयणे, सा रिद्धी गयण-गामिणी णामा ।
चारण - रिद्धी बहुविह - वियप्प - संदोह - वित्थरिदा ।।१०४३।।

जल-जंघा-फल-पुप्फं, पत्तग्गि - सिहाण धूम - मेघाणं ।
धारा-मक्कड[1]- तंतू - जोदी - मरुदाण चारणा कमसो ।।१०४४।।

अर्थ :—क्रिया-ऋद्धिके दो भेद हैं—नभस्तल-गामित्व और चारणत्व । इनमेंसे जिस ऋद्धिके द्वारा कायोत्सर्ग अथवा अन्य प्रकारसे ऊर्ध्व स्थित होकर या बैठकर आकाशमें गमन किया जाता है, वह आकाश-गामिनी नामवाली ऋद्धि है । दूसरी चारण-ऋद्धि क्रमशः जल-चारण, जङ्घा-चारण, फल-चारण, पुष्प-चारण, पत्र-चारण, अग्निशिखा-चारण, धूम-चारण, मेघ-चारण, धारा-चारण, मकड़ी-तन्तु-चारण, ज्योतिश्चारण और मरुच्चारण इत्यादि अनेक प्रकारके विकल्प-समूहोंसे विस्तारको प्राप्त है ।।१०४३-१०४४।।

जल-चारण-ऋद्धि—

अविराहियप्पुकाए, जीवे पद - खेवणेहिं जं जादि ।
धावेदि जलहि-मज्झे सव्वे य जल - चारणा[2] - रिद्धी ।।१०४५।।

अर्थ :—जिस ऋद्धिसे जीव समुद्रके मध्यमें अर्थात् जलपर पैर रखता हुआ जाता है और दौड़ता है किन्तु जलकायिक जीवोंकी विराधना नहीं करता वह जल-चारण-ऋद्धि है ।।१०४५।।

जङ्घाचारण-ऋद्धि—

चउरंगुल-मेत्त-महिं, छंडिय गयणम्मि कुडिल-जाणु विणा ।
जं बहु - जोयण - गमणं, सा जंघाचारणा रिद्धी ।।१०४६।।

अर्थ :—चार-अंगुल प्रमाण पृथिवीको छोड़कर तथा घुटनोंको मोड़े बिना जो आकाशमें बहुत योजनों पर्यन्त गमन करता है, वह जङ्घाचारण-ऋद्धि है ।।१०४६।।

फलचारण-ऋद्धि—

अविराहिदूण जीवे, तल्लीणे वण - फलाण विविहाणं ।
उवरिम्मि जं पधावदि, स च्चिय फल - चारणा रिद्धी ।।१०४७।।

१. द. ज. य मक्कड तंतू । २. द. ज. य. जल-चालणा ।

अर्थ :– जिस ऋद्धिसे विविध-प्रकारके वन-फलोंमें रहने वाले जीवोंकी विराधना न करते हुए उनके ऊपरसे दौड़ता (चलता) है, वह फल-चारण-ऋद्धि है ।।१०४७।।

पुष्पचारण-ऋद्धि—

अविराहिदूण जीवे, तल्लीणे बहु - विहाण पुप्फाणं ।
उवरिम्मि जं पसप्पदि, सा रिद्धी पुप्फ-चारणा णामा ।।१०४८।।

अर्थ :—जिस ऋद्धिके प्रभावसे बहुत प्रकारके फूलोंमें रहने वाले जीवोकी विराधना न करके उनके ऊपरसे जाता है, वह पुष्पचारण नामक ऋद्धि है ।।१०४८।।

पत्रचारण-ऋद्धि—

अविराहिदूण जीवे, तल्लीण बहु - विहाण पत्ताणं ।
जा उवरि वच्चदि मुणी, सा रिद्धी पत्त-चारणा णामा ।।१०४९।।

अर्थ :—जिस ऋद्धिका धारक मुनि बहुत-प्रकारके पत्तोंमे रहने वाले जीवोंकी विराधना न करके उनके ऊपरसे चला जाता है वह पत्र–चारण नामक ऋद्धि है ।।१०४९।।

अग्निशिखा-चारण ऋद्धि—

अविराहिदूण जीवे, अग्गिसिहा - संठिए विचित्ताणं ।
जं ताण उवरि गमणं, अग्गिसिहा - चारणा रिद्धी ।।१०५०।।

अर्थ :—अग्निशिखाओंमे स्थित जीवोकी विराधना न करके उन विचित्र अग्नि-शिखाओं परसे गमन करना अग्निशिखा ऋद्धि कहलाती है ।।१०५०।।

धूम-चारण-ऋद्धि—

अह-उड्ढ-तिरिय-पसरं, धूमं [1]अवलंबिऊण जं देंति ।
पद - खेवे अक्खलिया, सा रिद्धी धूम - चारणा णाम ।।१०५१।।

---

१. द. ब. क. अविलंबिऊण ।

अर्थ :—जिस ऋद्धिके प्रभावसे मुनिजन नीचे, ऊपर और तिरछे फैलने वाले धुएँका अवलम्बन लेकर अस्खलित (एकसी गति) पादक्षेप करते हुए गमन करते हैं, वह-धूम-चारण नामक ऋद्धि है ।।१०५१।।

मेघ-चारण-ऋद्धि—

अविराहिदूण जीवे, अपुकाए बहु - विहाण मेघाणं ।
जं उवरि गच्छइ मुणी, सा रिद्धी मेघ - चारणा णाम ।।१०५२।।

अर्थ :—जिस ऋद्धिसे मुनि अप्कायिक जीवोंको पीड़ा न पहुँचाकर बहुत प्रकारके मेघों परसे गमन करते हैं, वह मेघ-चारण नामक ऋद्धि है ।।१०५२।।

धारा-चारण-ऋद्धि—

अविराहिय तल्लीणे, जीवे घण-मुक्क-वारि-धाराणं ।
[1]उवरिं जं जादि मुणी, सा धारा - चारणा रिद्धी ।।१०५३।।

अर्थ :—जिसके प्रभावसे मुनि मेघोंसे छोड़ी गयी जलधाराओंमें स्थित जीवोंकी विराधना न कर उनके ऊपरसे जाते हैं, वह धारा-चारण-ऋद्धि है ।।१०५३।।

मकड़ी-तन्तु-चारण-ऋद्धि—

मक्कडय-तंतु-पंती-उवरिं अदिलघुओ तुरिद-पद-खेवे ।
गच्छेदि मुणि - महेसी, सा मक्कड-तंतु-चारणा रिद्धी ।।१०५४।।

अर्थ :—जिसके द्वारा मुनि-महर्षि शीघ्रतासे किए गये पद-विक्षेपसे अत्यन्त लघु होते हुए, मकड़ीके तन्तुओंकी पंक्ति परसे गमन करता है, वह मकड़ी तन्तु-चारण-ऋद्धि है ।।१०५४।।

ज्योतिश्चारण-ऋद्धि

अह-उड्ढ-तिरिय-पसरे, किरणे अवलंबिऊण[2] जोदीणं ।
जं गच्छेदि तवस्सी, सा रिद्धी जोदि - चारणा णाम ।।१०५५।।

---

१. द. ब. क. ज. य उ. उवरिम । २ द ब क. अविलंबिदूण ।

अर्थ :—जिस ऋद्धिके द्वारा तपस्वी ज्योतिषी-देवोंके विमानोंकी नीचे, ऊपर और तिरछे फैलनेवाली किरणोंका अवलम्बन लेकर गमन करता है, वह ज्योतिश्चारण-ऋद्धि है ॥१०५५॥

मारुत-चारण-ऋद्धि—

णाणाविह-गदि-मारुद-पदेस-पंतीसु[1] देंति[2] पदखेवे ।
जं अक्खलिया मुणिणो, सा मारुद - चारणा - रिद्धी ॥१०५६॥

अर्थ :—जिस ऋद्धिके प्रभावसे मुनि नानाप्रकारकी गतिसे युक्त वायुके प्रदेशोंकी पंक्तियों पर अस्खलित होकर पद-विक्षेप करते हैं, वह मारुत-चारण-ऋद्धि है ॥१०५६॥

उपसंहार—

अण्णे विविहा - भंगा , चारण-रिद्धीए भासिदा भेदा ।
ताण सरूवं कहणे,[4] उवएसो अम्ह उच्छिण्णो ॥१०५७॥

एवं किरिया-रिद्धी समत्ता ।

अर्थ :—विविध भङ्गोंसे युक्त चारण-ऋद्धिके अन्य भेद भी भासित होते हैं, परन्तु उनके स्वरूपका कथन करने-वाला उपदेश हमारे लिए नष्ट हो चुका है ॥१०५७॥

। इसप्रकार क्रिया-ऋद्धि समाप्त हुई ।

तप-ऋद्धिके भेद-प्रभेद

उग्गतवा दित्ततवा, तत्ततवा तह महातवा तुरिमा ।
घोरतवा पंचमिया, घोर - परक्कम - तवा छट्ठी ॥१०५८॥

तव - रिद्धीए कहिदं, सत्तम य अघोर - बम्हचारित्तं ।
उग्गतवा दो भेदा, उग्गोग्ग-अवट्ठि-दुग्ग-तव-णामा ॥१०५९॥

---

१. द. ब. ज. य. उ. सतीसु, क. सुत्तीसु । २. द. दिति । ३. द. ज. य. मंजा । ४. द. ज. य. कहणो ।

अर्थ :—उग्रतप, दीप्ततप, तप्ततप, (चतुर्थ) महातप, (पाँचवाँ) घोरतप, (छठा) घोर-पराक्रमतप और (सातवाँ) अघोरब्रह्मचारित्व, इसप्रकार तप-ऋद्धिके ये सात भेद कहे गये हैं। इनमेंसे उग्रतप-ऋद्धिके दो भेद होते हैं—उग्रोग्रतप और अवस्थित-उग्रतप ॥१०५८-१०५९॥

उग्रोग्र-तप-ऋद्धि—

दिक्खोववासमादिं, [1]कादूणं एक्काहिएक्कपचएण[2] ।
आमरणंतं जवणं, सा होदि उग्गोग्ग - तव - रिद्धी ॥१०६०॥

अर्थ :—दीक्षोपवाससे प्रारम्भ कर मरण-पर्यन्त एक-एक अधिक उपवासको बढाकर निर्वाह करना, उग्रोग्रतप-ऋद्धि है ॥१०६०॥

अवस्थित-उग्र-तप—

दिक्खोपवासमादिं, कादुं एक्कंतरोव वासाणि ।
कुव्वाणो जिण - णिब्भर - भत्ति - पसत्तेण चितेण ॥१०६१॥

उप्पण्ण - कारणंतर, जादे छट्ठट्ठमादि उववासे ।
हेट्ठं ण जादि जीए, सा होदि अवट्ठिदोग्ग-तव-रिद्धी ॥१०६२॥

अर्थ :—दीक्षार्थ एक उपवास करके (पारणा करे और पुनः) एक-एक दिनका अन्तर देकर उपवास करता जाए। पुनः कुछ कारण पाकर षष्ठ-भक्त, पुनः अष्टम-भक्त (पुनः दसम-भक्त, पुनः द्वादशम-भक्त) इत्यादि क्रमसे नीचे न गिर-कर जिनेन्द्रकी भक्ति-पूर्वक प्रसन्न-चित्तसे उत्तरोत्तर मरणपर्यन्त उपवासोंको बढ़ाते जाना अवस्थित-उग्र-तप-ऋद्धि है ॥१०६१-१०६२॥

दीप्त-तप-ऋद्धि—

बहुविह - उववासेहिं, रविसम-वड्ढंत-काय-किरणोहा ।
काय-मण-वयण-बलिणो, जीए[3] सा दित्त-तव-रिद्धी ॥१०६३॥

अर्थ :—जिस ऋद्धिके प्रभावसे मन, वचन और कायसे बलिष्ठ ऋषिके बहुत प्रकारके उपवासों-द्वारा शरीरकी किरणोंका समूह सूर्य-सदृश बढ़ता हो वह दीप्त-तप-ऋद्धि है ॥१०६३॥

---

१. द. क. ज. य. उ. कादुं । २. द. ब. क. ज. य. उ. पंचेण । ३. द. ब. क. ज. य. उ. जीवे ।

तप्त-तप-ऋद्धि—

तत्ते लोह - कडाहे, पडिदंबु - कणं व जीए भुत्तण्णं ।
झिज्जदि धाऊहिं सा, णिय - झाणाएहिं तत्त - तवा ॥१०६४॥

अर्थ :—लोहेकी तप्त कड़ाहीमें गिरे हुए जल-कणके सदृश जिस ऋद्धिसे खाया हुआ अन्न धातुओं सहित क्षीण हो जाता है (मल-मूत्रादिरूप परिणमन नहीं करता) वह निज ध्यानसे उत्पन्न हुई तप्त-तप-ऋद्धि है ॥१०६४॥

महातप-ऋद्धि—

मंदरपंति - प्पमुहे, महोववासे[1] करेदि सव्वे वि ।
चउ - सण्णाण - बलेणं, [2]जीए सा महातवा रिद्धी ॥१०६५॥

अर्थ :—जिस ऋद्धिके प्रभावसे मुनि चार सम्यग्ज्ञानोंके बलसे मन्दर-पंक्ति-प्रमुख सब ही महान् उपवासोंको करता है, वह महातप-ऋद्धि है ॥१०६५॥

घोर-तप-ऋद्धि—

जर - सूल - प्पमुहाणं, रोगेणच्चंत-पीडि-अंगा[3] वि ।
साहंति दुद्धर - तवं, जीए[4] सा घोर - तव - रिद्धी ॥१०६६॥

अर्थ :—जिस ऋद्धिके बलसे ज्वर एवं शूलादिक-रोगसे शरीरके अत्यन्त पीड़ित होने पर भी साधुजन दुर्द्धर-तपको सिद्ध करते हैं, वह घोर-तप-ऋद्धि है ॥१०६६॥

घोर-पराक्रम-तप-ऋद्धि—

णिरुवम-वड्ढंत-तवा, तिहुवण-संहरण-करण-सत्ति-जुदा ।
कंटय-सिलग्गि-पव्वय-धूमुक्का-पहुदि - वरिसण-समत्था ॥१०६७॥

सहस त्ति सयल-सायर-सलिलुप्पीलस्स सोसण-समत्था ।
जायंति जीए[5] मुणिणो, घोर-परक्कम-तव त्ति सा रिद्धी ॥१०६८॥

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. महोववासो । २. द. ब. क. ज. य. उ. जीवे । ३. द. ब. क. ज. य. उ. अंगो । ४. द. ब. क. ज. य. उ. जीवे । ५. द. ब. क. ज. य. उ. जिय ।

अर्थ :—जिस ऋद्धिके प्रभावसे मुनिजन अनुपम एवं वृद्धिङ्गत तप सहित, तीनों लोकोंको संहार करनेकी शक्ति युक्त, कण्टक, शिला, अग्नि, पर्वत, धुआँ तथा उल्का आदिके बरसानेमें समर्थ एवं सहसा सम्पूर्ण समुद्रके जल-समूहको सुखानेकी शक्तिसे भी संयुक्त होते हैं, वह घोरपराक्रम-तप-ऋद्धि है ॥१०६७-१०६८॥

अघोर-ब्रह्मचारित्व-ऋद्धि—

जीए ण होंति मुणिणो, खेत्तम्मि वि चोर-पहुदि-बाधाओ ।
कलह - महाजुद्धादी[1], रिद्धी साघोर - बम्हचारित्ता ॥१०६९॥

अर्थ :—जिस ऋद्धिसे मुनिके क्षेत्रमें चौरादिक बाधाएँ और कलह एवं युद्धादिक नहीं होते हैं, वह अघोरब्रह्मचारित्व ऋद्धि है ॥१०६९॥

उक्कस्स - खवोवसमे, चारित्तावरण - मोह - कम्मस्स ।
जा दुस्सिमणं णासइ, रिद्धी साघोर - बम्ह - चारित्ता ॥१०७०॥

अर्थ :—चारित्र-निरोधक मोहकर्म (चारित्रमोहनीय) का उत्कृष्ट क्षयोपशम होनेपर जो ऋद्धि दुस्स्वप्नको नष्ट करती है, वह अघोर-ब्रह्मचारित्व-ऋद्धि है ॥१०७०॥

अहवा—

सव्व - गुणेहि अघोरं, महेसिणो बम्हसद्द - चारित्तं ।
विप्फुरिदाए जीए, रिद्धी साघोर - बम्ह - चारित्ता ॥१०७१॥

। एवं तव-रिद्धी समत्ता ।

अर्थ :—अथवा—

जिस ऋद्धिके आविर्भूत होनेसे महर्षिजन सब गुणोंके साथ अघोर (अविनश्वर) ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं, वह अघोर-ब्रह्मचारित्व-ऋद्धि है ॥१०७१॥

। इसप्रकार तप-ऋद्धिका कथन समाप्त हुआ ।

---

१ द. ब. क. ज. य. उ. जुद्दादो ।

बल-ऋद्धिके भेद एवं मनोबल-ऋद्धि—

बल-रिद्धी ति - वियप्पा, मण-वयण-सरीरयाण भेदेण ।
सुद - णाणावरणाए, पयडीए वीरियंतरायाए ।।१०७२।।

उक्कस्स - खवोवसमे, मुहुत्त - मेत्तंतरम्मि सयल-सुदं ।
चिंतइ जाणइ जीए, सा रिद्धी मण - बला णामा ।।१०७३।।

अर्थ :—मन, वचन और कायके भेदसे बल-ऋद्धि तीन प्रकार की है। इनमेंसे जिस ऋद्धिके द्वारा श्रुतज्ञानावरण और वीर्यान्तराय, इन दो प्रकृतियोंका उत्कृष्ट क्षयोपशम होनेपर (श्रमण) मुहूर्तमात्र (अन्तर्मुहूर्त) कालमें सम्पूर्ण श्रुतका चिन्तवन कर लेता है एवं उसे जान लेता है, वह मनोबल नामक ऋद्धि है ।।१०७२-१०७३।।

वचनबल-ऋद्धि—

जिब्भिंदिय - णोइंदिय-सुदणाणावरण-विरिय-विग्घाणं ।
उक्कस्स - खवोवसमे, मुहुत्त - मेत्तंतरम्मि मुणी ।।१०७४।।

सयलं पि सुदं जाणइ, उच्चारइ जीए[1] विप्फुरंतीए ।
[2]असमो अहीण-कंठो, सा रिद्धी वयण - बल - णामा ।।१०७५।।

अर्थ :—जिह्वेन्द्रियावरण, नोइन्द्रियावरण, श्रुतज्ञानावरण और वीर्यान्तरायका उत्कृष्ट क्षयोपशम होने पर जिस-ऋद्धिके प्रगट होनेसे मुनि श्रम-रहित एवं अहीन-कण्ठ (कण्ठसे बोले बिना ही) होते हुए (अन्तर) मुहूर्तमात्र कालके भीतर सम्पूर्ण श्रुतको जान लेते हैं एवं उसका उच्चारण कर लेते हैं, उसे वचन-बल नामक ऋद्धि जानना चाहिए ।।१०७४-१०७५।।

कायबल-ऋद्धि—

उक्कस्स - खवोवसमे, पविसेसे विरिय-विग्घ-पयडीए ।
मास-चउमास-पमुहे[3], काउस्सग्गे वि सम - हीणा ।।१०७६।।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. जिय विप्फुरतिए । २. द. ब. क. उ. यसमे, ज. य. यसमो । ३. द. ब. ज. य. उ. पमुहो ।

उच्चट्टिय [1]तेल्लोक्कं, झत्ति कणिट्ठंगुलीए अण्णत्थ ।
थविदुं जीए समत्था, सा रिद्धी काय - बल - णामा ।।१०७७।।

। एवं बल-रिद्धी समत्ता ।

अर्थ :—जिस ऋद्धिके बलसे वीर्यान्तराय प्रकृतिके उत्कृष्ट क्षयोपशमकी विशेषता होने पर मुनि मास एवं चतुर्मासादिरूप कायोत्सर्ग करते हुए भी श्रमसे रहित होते हैं तथा शीघ्रतासे तीनों लोकोंको कनिष्ठ अंगुलीके ऊपर उठाकर अन्यत्र स्थापित करनेमें समर्थ होते हैं, वह कायबल नामक ऋद्धि है ।।१०७६-१०७७।।

। इसप्रकार बल-ऋद्धिका वर्णन समाप्त हुआ ।

औषधि-ऋद्धिके भेद—

आमरिस-खेल-जल्ला-मल-विड-सव्वा ओसही - पत्ता ।
मुह - विट्ठि - णिव्विसाओ, अट्ठ - विहा ओसही रिद्धी ।।१०७८।।

अर्थ :—आमर्शौषधि, क्ष्वेलौषधि, जल्लौषधि, मलौषधि, विडौषधि, सर्वौषधि, मुखनिर्विष और दृष्टिनिर्विष, इसप्रकार औषधिऋद्धि आठ प्रकारकी है ।।१०७८।।

आमर्शौषधि-ऋद्धि—

रिसि-कर-चरणादीणं, अल्लिय-मेत्तम्मि जीए पासम्मि ।
जीवा होंति णिरोगा, सा अमरीसोसही रिद्धी ।।१०७९।।

अर्थ :—जिस ऋद्धिके प्रभावसे ऋषिके हस्त एवं पादादिके स्पर्शसे तथा समीप आने मात्रसे (रोगी) जीव नीरोग हो जाते हैं, वह आमर्शौषधि-ऋद्धि है ।।१०७९।।

क्ष्वेलौषधि-ऋद्धि—

जीए लालासेमच्छीमल[2] - सिंहाण - आदिया सिग्घं ।
जीवाण रोग - हरणा, स च्चिय खेलोसही रिद्धी ।।१०८०।।

---

१. द. क. ज. य तेलोक्कं । २. द. ब. क. ज. य उ. सेमच्छेयर ।

अर्थ :—जिस ऋद्धिके प्रभावसे (ऋषिके) लार, कफ, अक्षिमल, और नासिकामल शीघ्र ही जीवोंके रोगोंको नष्ट करते हैं, वह क्ष्वेलौषधि-ऋद्धि है ।।१०८०।।

जल्लौषधि-ऋद्धि—

सेयजलं अंगरयं, जल्लं भण्णंति जीए तेणावि ।
जीवाण रोग - हरणं, रिद्धी जल्लोसही णामा ।।१०८१।।

अर्थ :- स्वेदजल (पसीना) के आश्रित (उत्पन्न होने वाला) शरीरका (अङ्गरज) मल जल्ल कहा जाता है । जिस ऋद्धिके प्रभावसे उस अङ्गरजसे भी जीवोंके रोग नष्ट होते हैं, वह जल्लौषधि-ऋद्धि है ।।१०८१।।

मलौषधि-ऋद्धि—

जीहोट्ठ - दंत - णासा - सोत्तादि-मलं पि जीए सत्तीए ।
जीवाण रोग - हरणं, मलोसही णाम सा रिद्धी ।।१०८२।।

अर्थ :—जिस शक्तिसे जिह्वा, ओठ, दाँत, नासिका और श्रोत्रादिकका मल भी जीवोंके रोगोंको दूर करनेवाला होता है वह मलौषधि नामक ऋद्धि है ।।१०८२।।

विडौषधि-ऋद्धि--

मुत्त-पुरीसो वि पुढं, दारुण-बहुजीव-वाहि-संहरणा ।
जीए महामुणीणं, विडोसही णाम सा रिद्धी ।।१०८३।।

अर्थ :–जिस ऋद्धिके प्रभावसे महामुनियोंका मूत्र एवं विष्ठा भी जीवोंके बहुत भयानक रोगोंको नष्ट करनेवाला होता है, वह विडौषधि नामक ऋद्धि है ।।१०८३।।

सर्वौषधि-ऋद्धि—

जीए पस्स-जलाणिल-रोम-णहादीणि[1] वाहि - हरणाणि ।
दुक्कर - तव - जुत्ताणं, रिद्धी सव्वोसही णामा ।।१०८४।।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. पहादीणि ।

अर्थ :—जिस ऋद्धिके प्रभावसे दुष्कर तपसे युक्त मुनियों द्वारा स्पर्श किया हुआ जल एवं वायु तथा उनके रोम और नख आदि भी व्याधिके हरनेवाले हो जाते हैं, वह सर्वौषधि नामक ऋद्धि है ।।१०८४।।

वचननिर्विष-ऋद्धि—

तित्तादि-विविह-मण्णं, विसजुत्तं जीए वयण-मेत्तेण ।
पावेदि णिव्विसत्तं[1], सा रिद्धी वयण-णिव्विसा णामा ।।१०८५।।

अर्थ :—जिस ऋद्धिके प्रभावसे तिक्तादिक रस एवं विष संयुक्त विविध-प्रकारका अन्न (भोजन) वचनमात्रसे ही निर्विष हो जाता है, वह वचननिर्विष नामक ऋद्धि है ।।१०८५।।

अहवा बहुवाहीहिं, परिभूवा झत्ति होंति णीरोगा ।
सोदुं वयणं जीए, सा रिद्धी वयण - णिव्विसा णामा ।।१०८६।।

अर्थ :—अथवा जिस ऋद्धिके प्रभावसे बहुत-व्याधियोंसे युक्त जीव (ऋषिके) वचन सुनकर ही शीघ्र नीरोग हो जाते है, वह वचन-निर्विष नामक ऋद्धि है ।।१०८६।।

दृष्टिनिर्विष-ऋद्धि—

रोग - विसेहिं पहदा, दिट्ठीए जीए झत्ति[2] पावंति ।
णीरोग-णिव्विसत्तं, सा भणिदा दिट्ठि-णिव्विसा रिद्धी ।।१०८७।।

। एवमोसहि-रिद्धी समत्ता ।

अर्थ :—जिस ऋद्धिके प्रभावसे रोग एवं विषसे युक्त जीव (ऋषिके) देखने मात्रसे शीघ्र ही नीरोगता एवं निर्विषताको प्राप्त करते हैं, वह दृष्टिनिर्विष-ऋद्धि कही गई है ।।१०८७।।

। इसप्रकार औषधि-ऋद्धिका कथन समाप्त हुआ ।

रस-ऋद्धिके भेद—

छब्भेया रस - रिद्धी, आसी-दिट्ठी-विसा य दो[3] तेसुं ।
खीर -[4]महु - अमिय - सप्पीसविओ चत्तारि होंति कमे ।।१०८८।।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. णिव्विसंते । २. द. ज. य. ज वि । ३. द. ब. क. ज. य. उ. यदा । ४. द. मुहु ।

अर्थ :—आशीविष और दृष्टिविष तथा क्षीरस्रवी, मधुस्रवी, अमृतस्रवी एवं सर्पिस्रवी ऐसे दो तथा चार क्रमशः रस-ऋद्धिके छह भेद होते हैं ॥१०८८॥

आशीविष-ऋद्धि—

मर इदि भणिदे जीवो, मरेइ सहस त्ति जीए सत्तीए ।
दुक्कर-तव-जुद-मुणिणा, आसीविस-णाम-रिद्धी सा ॥१०८९॥

अर्थ :—जिस ऋद्धिके प्रभावसे दुष्कर-तप युक्त मुनिके द्वारा 'मर जाओ' इसप्रकार कहने पर जीव सहसा मर जाता है, वह आशीविष नामक ऋद्धि है ॥१०८९॥

दृष्टिविष-ऋद्धि—

जीए जीओ दिट्ठो, महेसिणो रोस - भरिय - हिदएण ।
अहि - दट्ठो व मरिज्जदि, दिट्ठिविसा णाम सा रिद्धी ॥१०९०॥

अर्थ :—जिस ऋद्धिके प्रभावसे रोष युक्त हृदयवाले महर्षि द्वारा देखा गया जीव सर्प द्वारा काटे गयेके सदृश मर जाता है वह दृष्टिविष नामक ऋद्धि है ॥१०९०॥

क्षीरस्रवी-ऋद्धि—

करयल - णिक्खित्ताणि[1], रुक्खाहारादियाणि[2] तक्कालं ।
पावंति खीर - भावं, जीए खीरोसवी रिद्धी ॥१०९१॥

अर्थ :—जिससे हस्ततल पर रखे हुए रूखे आहारादिक तत्काल ही दुग्ध-परिणामको प्राप्त हो जाते हैं, वह क्षीरस्रवी-ऋद्धि है ॥१०९१॥

अहवा दुक्खप्पहुदी, जीए मुणि - वयण - सवण[3]-मेत्तेणं ।
पसमदि णर - तिरियाणं, स च्चिय खीरासवी रिद्धी ॥१०९२॥

अर्थ :—अथवा, जिस ऋद्धिसे मुनियोंके वचनोंके श्रवणमात्रसे ही मनुष्य-तिर्यञ्चोंके दुःखादिक शान्त हो जाते हैं, उसे क्षीरस्रवी-ऋद्धि समझना चाहिए ॥१०९२॥

---

१. द. ब. उ. निक्खित्ताणं । २. द. ब. क. ज. रादियाण । ३. ब. क. ज. य. उ. समण ।

मधुस्रवी-ऋद्धि—

मुणि-कर-णिक्खित्ताणि, रुक्खाहारादियाणि होंति खणे ।
जीए महुर-रसाइं, स च्चिय महुयासवी रिद्धी ॥१०६३॥

अर्थ :—जिस ऋद्धिसे मुनिके हाथमें रखे गये रूखे आहारादिक क्षणभरमें मधुर-रससे युक्त हो जाते हैं, वह मधुस्रवी ऋद्धि है ॥१०६३॥

अहवा दुक्ख-प्पहुदी, जीए मुणि-वयण-सवण-मेत्तेणं ।
णासदि णर-तिरियाणं, स च्चिय [1]महुयासवी रिद्धी ॥१०६४॥

अर्थ :—अथवा, जिस ऋद्धिसे मुनिके वचनोंके श्रवणमात्रसे मनुष्य-तिर्यञ्चोंके दुःखादिक नष्ट हो जाते हैं, वह मधुस्रवी ऋद्धि है ॥१०६४॥

अमृतस्रवी-ऋद्धि—

मुणि-पाणि-संठियाणि, रुक्खाहारादियाणि जीअ[2] खणे ।
पावंति अमिय-भावं, एसा अमियासवी रिद्धी ॥१०६५॥

अर्थ :—जिस ऋद्धिके प्रभावसे मुनियोंके हाथमें स्थित रूखे आहार आदिक, क्षणमात्रमें अमृतपनेको प्राप्त होते हैं, वह अमृतस्रवी ऋद्धि है । १०६५॥

अहवा दुक्खादीणि, महेसि-वयणस्स सवण-कालम्मि[3] ।
णासंति जीए सिग्घं, सा रिद्धी अमिय-आसवी णामा ॥१०६६॥

अर्थ :—अथवा, जिस ऋषिके वचन सुननेमात्रसे (श्रवणकालमें) शीघ्र ही दुःखादिक नष्ट हो जाते हैं, वह अमृतस्रवी नामक ऋद्धि है ॥१०६६॥

सर्पिस्रवी-ऋद्धि—

रिसि-पाणितल[4]-णिहित्तं, रुक्खाहारादियं पि खण-मेत्ते ।
पावेदि सप्पिरूवं, जीए सा सप्पियासवी रिद्धी ॥१०६७॥

अर्थ :—जिस ऋद्धिसे ऋषिके हस्ततलमें निक्षिप्त रूखा आहारादिक भी क्षणमात्रमें घृतरूपताको प्राप्त करता है, वह सर्पिस्रवीऋद्धि है ॥१०६७॥

---

१. ब. क. उ. महुरोसवी । २. द. जीव । ३. द. ब. क. ज. य. उ. कादम्मि । ४. उ. पाणितया ।

अहवा दुक्ख-प्पमुहं, सवणेण मुणिंद-दिव्व-वयणस्स ।
उवसामदि जीवाणं, जीए सा सप्पियासवी रिद्धी ।।१०९८।।

। एवं रस-रिद्धी समत्ता ।

अर्थ :—अथवा, जिस ऋद्धिके प्रभावसे मुनीन्द्रके दिव्य वचनोंके सुननेसे ही जीवोंके दु:खादिक शान्त हो जाते हैं, वह सर्पिस्रवी-ऋद्धि है ।।१०९८।।

। इसप्रकार रस-ऋद्धिकी वर्णना समाप्त हुई ।

क्षेत्र-ऋद्धिके भेद—

तिहुवण-विम्हय-जणणा, दो भेदा होंति खेत्त-रिद्धीए ।
अक्खीण - महाणसिया, अक्खीण-महालया च णामेण ।।१०९९।।

अर्थ :—त्रिभुवनको विस्मित करनेवाली क्षेत्र-ऋद्धिके दो भेद हैं, अक्षीणमहानसिक और अक्षीणमहालय ।।१०९९।।

अक्षीणमहानसिक-ऋद्धि—

लाहंतराय-कम्मक्खवोवसम-संजुदाए जीअ फुडं ।
मुणि[1]-भुत्त-सेसमण्णं, थालिय-मज्झम्मि एक्कं वि ।।११००।।

तद्दिवसे खज्जंतं, खंधावारेण चक्कवट्टिस्स ।
भिज्जइ ण लवेण वि सा, अक्खीण-महाणसा रिद्धी ।।११०१।।

अर्थ :—लाभान्तरायकर्मके क्षयोपशमसे संयुक्त जिस ऋद्धिके प्रभावसे मुनिके आहारोपरान्त थालीके मध्य बची हुई भोज्य सामग्रीमेंसे एक भी वस्तुको यदि उस दिन चक्रवर्तीका सम्पूर्ण कटक भी खावे तो भी वह लेशमात्र क्षीण नहीं होती है, वह अक्षीण-महानसिक ऋद्धि है ।।११००-११०१।।

---

१. ब. क. उ. मुणि-भुत्त-सेसेसुमण्णद्धामज्झ पियं क वि ।
ज. य. मुणिगुत्त-सेसेमण्ण ,, ,, ,, ।
द. मुणिभुत्त-सेसेमण्ण ,, ,, ,, ।

अक्षीण-महालय-ऋद्धि—

जीए चउधणु-माणे, समचउरस्सालयम्मि णर-तिरिया ।
मंति असंखेज्जा सा, अक्खीण-महालया रिद्धी ॥११०२॥

। एव खेत्त-रिद्धी समत्ता ।

॥ एवं अट्ठ-रिद्धी समत्ता ॥

अर्थ :—जिस ऋद्धिके प्रभावसे समचतुष्कोण चार धनुष-प्रमाण क्षेत्रमें असंख्यात मनुष्य-तिर्यञ्च स्थान प्राप्त कर लेते हैं, वह अक्षीणमहालय-ऋद्धि है ॥११०२॥

। इसप्रकार क्षेत्रऋद्धिका कथन समाप्त हुआ ।

। इसप्रकार आठों ऋद्धियोंका वर्णन समाप्त हुआ ।

आठों ऋद्धियोंके भेद-प्रभेदोंकी तालिका इसप्रकार है—

[तालिका २७ पृष्ठ ३२६ व ३२७ पर देखिये]

ऋद्धियां
तालिका : २७
१ बुद्धि-ऋद्धि
२ विक्रिया-ऋद्धि
३ क्रिया-ऋद्धि
४ तप-ऋद्धि
—१ अणिमा
—२ महिमा
—३ लघिमा
—४ गरिमा
—५ प्राप्ति
—६ प्राकाम्य
—७ ईशत्व
—८ वशित्व
—९ अप्रतिघात
—१० अन्तर्धान
—११ कामरूप
१ नभस्तल-गामित्व
२ चारणत्व
—१ जलचारण
—२ जंघाचारण
—३ फल ,,
—४ पुष्प ,,
—५ पत्र ,,
—६ अग्नि ,,
—७ धूम ,,
—८ मेघ ,,
—९ धारा ,,
—१० तन्तु ,,
—११ ज्योतिषचा.
—१२ मरुच्चारण
१ उग्रतप
उग्रोग्रतप
अवस्थितउग्र०
२ दीप्ततप
३ तप्ततप
४ महातप
५ घोरतप
६ घोरपराक्रम०
७ अघोरब्रह्मचा०
१ अवधिज्ञान
२ मनःपर्ययज्ञान
३ केवलज्ञान
४ बीजबुद्धि
५ कोष्ठमति
६ पदानुसारित्व
अनुसारिणी
प्रतिसारिणी
उभयसारिणी
७ संभिन्नश्रोतृत्व
८ दूरास्वादन
९ दूरस्पर्श
१० दूरघ्राण
११ दूरश्रवण
१२ दूरदर्शन
१३ दशपूर्वित्व
१४ चौदहपूर्वित्व

५ बल-ऋद्धि
१ मनोबल
२ वचनबल
३ कायबल
६ औषधि-ऋद्धि
१ आमर्शौषधि
२ क्षेलौषधि
३ जल्लौषधि
४ मलौषधि
५ विड्डौषधि
६ सर्वौषधि
७ वचननिर्विष
८ दृष्टिनिर्विष
७ रस-ऋद्धि
१ आशीविष
२ दृष्टिविष
३ क्षीरस्रवी
४ मधुस्रवी
५ अमृतस्रवी
६ सर्पिस्रवी
८ क्षेत्र-ऋद्धि
१ अक्षीणमहानसिक
२ अक्षीणमहालय
१५ निमित्तऋद्धि
नभ
भौम
अङ्ग
स्वर
व्यंजन
लक्षण
चिह्न
स्वप्न
माला
चिह्न
१६ प्रज्ञाश्रमण
औत्पत्तिकी
पारिणामिकी
वैनयिकी
कर्मजा
१७ प्रत्येकबुद्धि
१८ वादित्वऋद्धि
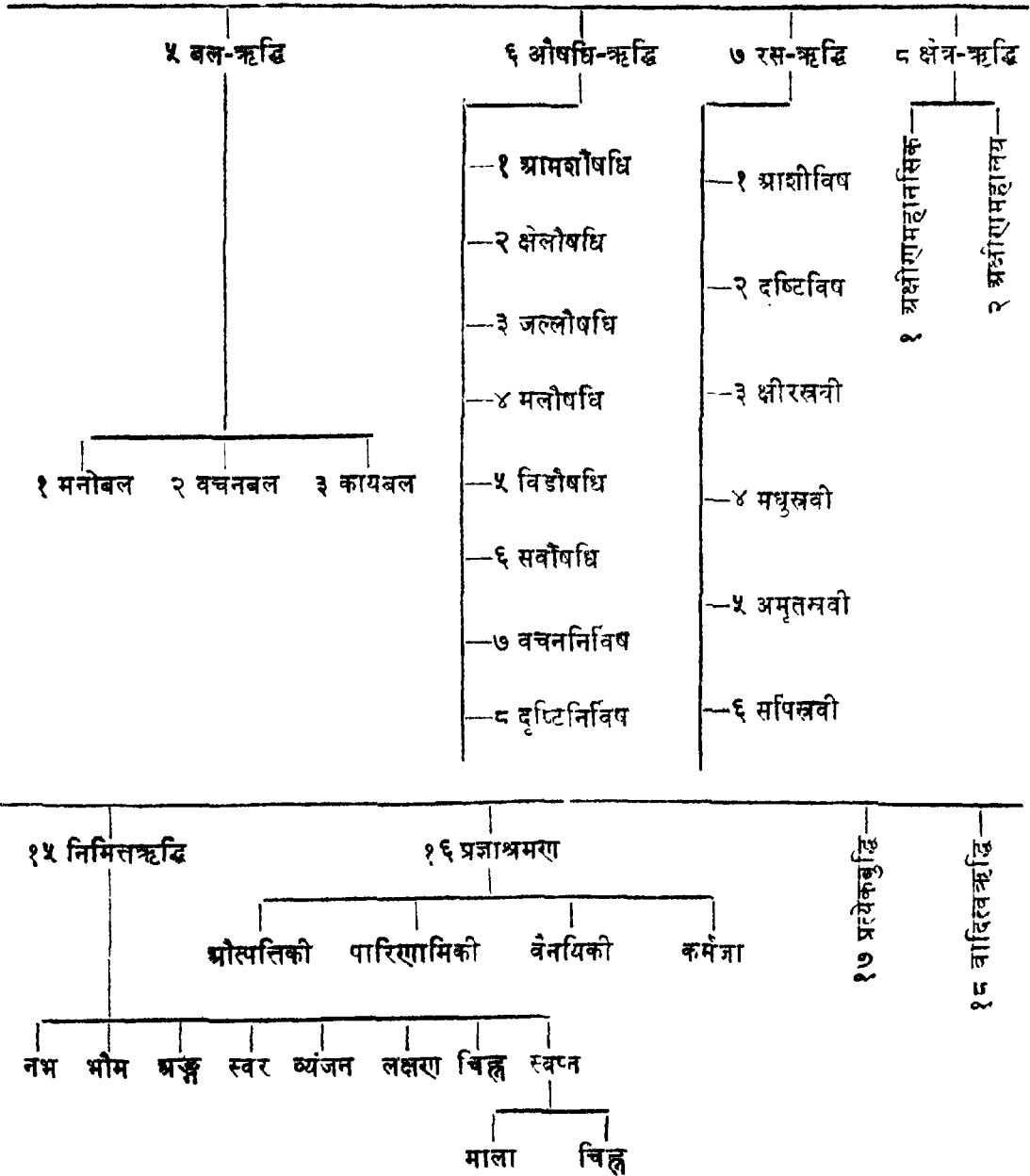
ऋषियोंकी संख्या—

एत्तो[1] उवरि रिसि-संखं[2] भणिस्सामि—

चउसीदि-सहस्साणि, रिसि-प्पमाणं हवेदि उसह-जिणे ।
इगि-दु-ति-लक्खा, कमसो अजिय-जिणे संभवम्मि णंदणए ॥११०३॥

उस ८४००० । अजि १ ल । संभव २ ल । अभि ३ ल ।

अर्थ :—यहाँसे आगे अब ऋषियोंकी संख्या कहता हूं—

ऋषियोंका प्रमाण ऋषभ-जिनेन्द्रके समयमें चौरासी हजार तथा अजितनाथ, सम्भवनाथ एवं अभिनन्दननाथके समयमें क्रमशः एक लाख, दो लाख और तीन लाख था ॥११०३॥

वीस-सहस्स-जुदाइं, लक्खाइं तिण्णि सुमइ-देवम्मि ।
तीस-सहस्स-जुदाणि, पउमपहे तिण्णि लक्खाणि ॥११०४॥

सुमइ ३२०००० । पउम ३३०००० ।

अर्थ :—सुमतिनाथके समयमें ऋषियोंका प्रमाण तीन लाख, बीस हजार और पद्मप्रभके समयमें तीन लाख, तीस हजार था ॥११०४॥

तिण्णि सुपासे चंदप्पह-देवे दोण्णि अद्ध-संजुत्ता ।
सुविहि-जिणिवम्मि दुवे, सीयलणाहम्मि इगि-लक्खं ॥११०५॥

सुपास ३ ल । चंद २५०००० । पुप्फ २ ल । सीय १ ल ।

अर्थ :—ऋषियोंकी संख्याका प्रमाण सुपार्श्वनाथस्वामीके समयमें तीन लाख, चन्द्रप्रभ-देवके अढ़ाई लाख, सुविधिजिनेन्द्रके दो लाख और शीतलनाथके एक लाख था ॥११०५॥

चउसीदि - सहस्साइं, सेयंसे वासुपुज्ज - णाहम्मि ।
बाहत्तरि अडसट्ठी, विमले छावट्ठिया अणंतम्मि ॥११०६॥

से ८४००० । वा ७२००० । विम ६८००० । अणं ६६००० ।

अर्थ :—श्रेयांस जिनेन्द्रके समयमें ऋषियोंका प्रमाण चौरासी हजार, वासुपूज्यस्वामीके बहत्तर हजार, विमलनाथके अड़सठ हजार और अनन्तनाथके छयासठ हजार था ॥११०६॥

---

१. ब. उ. तत्तो । २. द. ब. क. ज. य. उ. संखा ।

धम्मम्मि संति-कुंथू-अर-मल्लीसुं कमा सहस्साणि ।
चउसट्ठी बासट्ठी, सट्ठी पण्णास चालीसा ॥११०७॥

धम्म ६४००० । सं ६२००० । कुं ६०००० । अर ५०००० । म ४०००० ।

अर्थ :—धर्मनाथ, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ और मल्लिनाथ तीर्थंकरके समयमें ऋषियोंकी संख्याका प्रमाण क्रमशः चौसठहजार, बासठहजार, साठहजार, पचासहजार और चालीस हजार था ॥११०७॥

सुव्वद-णमि-णेमीसुं, कमसो पासम्मि वड्ढमाणम्मि ।
तीसं वीसट्ठारस, सोलस-चोद्दस[1] - सहस्साणि ॥११०८॥

सु ३०००० । ण २०००० । णेमि १८००० । पास १६००० । वीर १४००० ।

अर्थ :—मुनिसुव्रत, नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और वर्धमान स्वामीके समयमें ऋषियोंका प्रमाण क्रमशः तीस हजार, बीस हजार, अठारह हजार, सोलह हजार और चौदह हजार था ॥११०८॥

प्रत्येक तीर्थंकरके सात गणोंके नाम—

पुव्वधर-सिक्खग-ओही-केवलि-वेउव्वि-विउलमदि-वादी ।
पत्तेक्कं सत्त-गणा, सव्वाणं तित्थ - कत्ताणं ॥११०९॥

अर्थ :—सब तीर्थंकरोंमेंसे प्रत्येक (तीर्थंकर) के पूर्वधर, शिक्षक, अवधिज्ञानी, केवली, विक्रिया-ऋद्धिधारी, विपुलमति एवं वादी इसप्रकार ये सात संघ होते हैं ॥११०९॥

ऋषभ-तीर्थंकरके गणोंकी संख्या—

चत्तारि सहस्सा सग - सयाइ - पण्णास पुव्वधर-संखा ।
सिक्खग - संखा स च्चिय, छस्सय ऊणो कदं णवरि ॥१११०॥

उसह पुव्व ४७५० । सिक्ख ४१५० ।

अर्थ :—ऋषभ जिनेन्द्रके सात गणोंमेंसे पूर्वधरोंकी संख्या चार हजार सातसौ पचास थी । शिक्षकोंकी संख्या भी यही थी परन्तु इसमेंसे छहसौ कम थे, इतनी यहाँ विशेषता है ॥१११०॥

---

१. द. चउदस ।

णव - वीस - सहस्साणि, कमेण ओहीण केवलीणं पि ।
वेगुव्वीण सहस्सा, वीसच्चिय छस्सयब्भहिया ॥११११॥

ओ ९००० । के २०००० । वे २०६०० ।

अर्थ :—ऋषभजिनेन्द्रके क्रमशः अवधिज्ञानी नौ हजार, केवली बीस हजार और विक्रिया धारी छहसौ अधिक बीस हजार थे ॥११११॥

विउलमदीणं बारस - सहस्सया सग - सयाइ पण्णासा ।
वादीण तत्तियं चिय, एदे उसहम्मि सत्त - गणा ॥१११२॥

वि १२७५० । वा १२७५० ।

अर्थ :—विपुलमति बारह हजार सातसौ पचास थे और वादी भी इतने ही थे । इसप्रकार ऋषभदेवके ये सात गण थे ॥१११२॥

अजित जिनेन्द्रके सात गणोंका प्रमाण—

ति-सहस्सा सत्त-सया, पण्णा-अजिय-पहुम्मि पुव्वधरा ।
इगिवीस - सहस्साणि, सिक्खकया छस्सयाइं पि ॥१११३॥

पु ३७५० । सि २१६०० ।

चउणउदि-सया ओही, वीस-सहस्साणि होंति केवलिणो ।
वेगुव्वीण सहस्सा, वीस सयाणि पि चत्तारि ॥१११४॥

ओ ९४०० । के २०००० । वे २०४०० ।

विउलमदीओ बारस, सहस्सया चउ - सयाइ पण्णासा ।
वादीण सहस्साइं, बारस चत्तारि [1]च सयाणि ॥१११५॥

वि १२४५० । वा १२४०० ।

---

१. द. ब. क. ज. य उ चउ ।

अर्थ :—अजितप्रभुके सात गणोंमेंसे पूर्वधर तीन हजार सातसौ पचास, शिक्षक इक्कीस हजार छह सौ, अवधिज्ञानी नौ हजार चारसौ, केवली बीस हजार, विक्रिया-ऋद्धि धारक बीस हजार चारसौ, विपुलमति बारह हजार चारसौ पचास और वादी बारह हजार चारसौ थे ।।१११३-१११५।।

सम्भवनाथके गणोंकी संख्या—

पुव्वधरा पण्णाहिय-इगिवीस-सयाणि संभव-जिणम्मि ।
उणतीस - सहस्साइं, इगिलक्खं सिक्खगा ति - सया ।।१११६।।

पु २१५० । सि १२९३०० ।

छण्णउदि-सया ओही, केवलिणो पण्णरस-सहस्साणि ।
उणवीस - सहस्साइं, वेगुव्विय अड - सयाणि पि ।।१११७।।

ओ ९६०० । केवलि १५००० । वे १९८०० ।

होंति सहस्सा बारस, पण्णाहियमिगि-सयं च विउलमदी ।
छक्केण य गुणिदाणि, दोण्णि सहस्साणि वादि - गणा ।।१११८।।

। वि १२१५० । वादि १२००० ।

अर्थ :—सम्भवजिनेन्द्रके सात गणोंमेंसे पूर्वधर दो हजार एक सौ पचास, शिक्षक एक लाख उनतीस हजार तीन सौ, अवधिज्ञानी नौ हजार छह सौ, केवली पन्द्रह हजार, विक्रियाऋद्धि धारक उन्नीस हजार आठसौ, विपुलमति बारह हजार एकसौ पचास और वादि-गण छहसे गुणित दो हजार अर्थात् बारह हजार थे ।।१११६-१११८।।

अभिनन्दननाथके गणोंकी संख्या—

पंचसयब्भहियाइं, दोण्णि सहस्साइ होंति पुव्वधरा ।
दो सिक्खग-लक्खाइं, तीस-सहस्साइ पण्णासा ।।१११९।।

। पु २५०० । सि २३००५० ।

अडणउदि-सया ओही, केवलिणो विगुण-अड-सहस्साणि ।
वेगुव्वि - सहस्साइं, वहंति एक्कूण - वीसाणि ।।११२०।।

। ओ ९८०० । के १६००० । वे १९००० ।

इगिवीस-सहस्साइं, पण्णाहिय-छस्सयाणि विउलमदी ।
एक्कं चेय सहस्सा, वादी अभिणंदणे देवे ॥११२१॥

। वि २१६५० । वा १००० ।

अर्थ :—अभिनन्दन जिनेन्द्रके सात गणोंमेंसे पूर्वधर दो हजार पाँच सौ, शिक्षक दो लाख तीस हजार पचास, अवधिज्ञानी नौ हजार आठ सौ, केवली दुगने आठ (सोलह)हजार, विक्रिया-ऋद्धिधारक एक कम बीस (उन्नीस) हजार, विपुलमति इक्कीस हजार छहसौ पचास और वादी केवल एक हजार ही थे ॥१११९-११२१॥

सुमतिनाथके गणोंकी संख्या—

दोण्णि सहस्सा चउ-सय, जुत्ता सुमदि-प्पहुम्मि पुव्वधरा ।
अड्ढाइज्जं लक्खा, तेदाल-सयाइ सिक्खगा पण्णा ॥११२२॥

पुव्व २४०० । सि २५४३५० ।

एक्करस-तेरसाइं, कमे[1] सहस्साणि ओहि-केवलिणो ।
अट्ठरस-सहस्साइं, चत्तारि सयाणि वेगुव्वी ॥११२३॥

ओ ११००० । के १३००० । वे १८४००

विउलमदी य सहस्सा, दस-संखा चउसएहि संजुत्ता ।
पण्णास-जुद-सहस्सा, दस चउ-सय-अहिय वादिगणा ॥११२४॥

। वि १०४०० । वा १०४५० ।

अर्थ :—सुमतिजिनेन्द्रके सात गणोंमेंसे पूर्वधर दो हजार चार सौ, शिक्षक दो लाख चौवनहजार तीन सौ पचास, अवधिज्ञानी ग्यारह हजार, केवली तेरह हजार, विक्रिया-ऋद्धि धारक अठारह हजार चार सौ, विपुलमति दस हजार चार सौ और वादी दस हजार चार सौ पचास थे ॥११२२-११२४॥

---

१. ब. क. कमेण ।

पद्मप्रभजिनेन्द्रके सात गणोंकी संख्या—

दोण्णि सहस्सा ति-सया, पुव्वधरा सिक्खया दुवे लक्खा ।
ऊणत्तरिं सहस्सा, ओहि-गणा दस-सहस्साणि ।।११२५।।

पुव्व २३०० । सि २६९००० । ओ १०००० ।

चउरंक[1]-ताडिदाइं, तिण्णि सहस्साणि होंति केवलिणो ।
अट्ठ - सएहिं जुत्ता, वेगुव्वी सोलस - सहस्सा ।।११२६।।

। के १२००० । वे १६८०० ।

विगुणा पंच-सहस्सा, तिण्णि सयाइं हवंति विउलमदी ।
छाधिय - णउदि - सयाइं, वादी पउमप्पहे देवे ।।११२७।।

। वि १०३०० । वा ९६०० ।

अर्थ :—पद्मप्रभजिनेन्द्रके सात गणोंमेसे पूर्वधर दो हजार तीन सौ, शिक्षक दो लाख उनहत्तर हजार, अवधिज्ञानी दस हजार, केवली चारसे गुणित तीन हजार (बारह हजार), विक्रिया-ऋद्धिके धारक सोलह हजार आठ सौ, विपुलमति पाँच हजारके दुगुणे (दस हजार) तीन सौ और वादी नौ हजार छह सौ थे ।।११२५-११२७।।

सुपार्श्वजिनेन्द्रके सात गणोंकी संख्या—

पुव्वधरा तीसाहिय-दोण्णि-सहस्सा हवंति सिक्खगणा ।
चोदाल सहस्साणि, दो लक्खा णव-सया वीसा ।।११२८।।

। पु २०३० । सि २४४९२० ।

णव य सहस्सा ओही, केवलिणो एक्करस - सहस्साणि ।
तेवण्ण - सयब्भहिया, वेगुव्वी दस सहस्साणि ।।११२९।।

। ओ ९००० । के ११००० । वे १५३०० ।

---

1. ब क. उ. चउकं ।

एक्काणउदि - सयाइं, पण्णासा - संजुदाइ विउलमदी ।
अट्ठ सहस्सा छस्सय - सहिया वादी सुपास - जिणे ॥११३०॥

वि ९१५० । वा ८६०० ।

अर्थ :—सुपार्श्वजिनेन्द्रके सात गणोंमेंसे पूर्वधर दो हजार तीस, शिक्षकगण दो लाख चवालीस हजार नौ सौ बीस, अवधिज्ञानी नौ हजार, केवली ग्यारह हजार, विक्रिया-ऋद्धिधारक तिरेपन सौ अधिक दस हजार (पन्द्रह हजार तीन सौ), विपुलमति नौ हजार एकसौ पचास और वादी आठ हजार छहसौ थे ॥११२८-११३०॥

चन्द्रप्रभके सात गणोंकी संख्या—

चत्तारि सहस्साइं, देवे चंदप्पहम्मि पुव्वधरा ।
दो-लक्ख - दस - सहस्सा, चत्तारि सयाइ सिक्खगणा ॥११३१॥

। पु ४००० । सि २१०४०० ।

बे अट्ठरस सहस्सा, छच्च सया अट्ठ सग सहस्साइं ।
कमसो ओही केवलि - वेउव्वी - विउलमदि - वादी ॥११३२॥

ओ २००० । के १८००० । वे ६०० । वि ८००० । वा ७००० ॥

अर्थ :— चन्द्रप्रभ जिनेन्द्रके सात गणोंमेंसे पूर्वधर चार हजार, शिक्षकगण दो लाख दस हजार चारसौ और अवधिज्ञानी, केवली, विक्रियाधारी, विपुलमति तथा वादी क्रमशः दो हजार, अठारह हजार, छहसौ, आठ हजार और सात हजार थे ॥११३१-११३२॥

पुष्पदन्तके सात गणोंकी संख्या—

ति-गुणिय-पंच-सयाइं, पुव्वधरा सिक्खयाइं इगि-लक्खा ।
पणवण्ण - सहस्साइं, अब्भहियाइं पण - सएहिं ॥११३३॥

पु १५०० । सि १५५५०० ।

चउसीदि-सया ओही, केवलिणो सग-सहस्स-पंच-सया ।
णह-सुण्ण-सुण्ण-तिय-इगि-अंक-कमेणं पि वेगुव्वी ॥११३४॥

ओ ८४०० । के ७५०० । वे १३००० ।

सग-संख-सहस्साणि, जुत्ताणि पण-सएहिं विउलमदी ।
छावट्ठि सया वादी, बेवे सिरिपुप्फदंतम्मि ।।११३५।।

वि ७५०० । वा ६६०० ।

अर्थ :—श्री पुष्पदन्तके सात गणोंमेंसे पूर्वधर पाँचसौके तिगुने (पन्द्रहसौ), शिक्षक एक लाख पचपन हजार पाँचसौ, अवधिज्ञानी आठ हजार चारसौ, केवली सात हजार पाँच सौ, विक्रिया-ऋद्धिधारी क्रमशः शून्य, शून्य, शून्य तीन और एक अंक (तेरह हजार) प्रमाण, विपुलमति सात हजार पाँचसौ और वादी छह हजार छहसौ थे ।।११३३-११३५।।

शीतलनाथके सात गणोंकी संख्या—

एक्क - सहस्सं चउ-सय-संजुत्तं सीयलम्मि पुव्वधरा ।
उणसट्ठि - सहस्साइं, बेण्णि सया सिक्खगा होंति ।।११३६।।

पु १४०० । सि ५९२०० ।

दु-सय-जुद-सग-सहस्सा सत्त-सहस्साणि ओहि-केवलिणो ।
चउरंक - ताडिदाणिं, तिण्णि सहस्साणि वेगुव्वी ।।११३७।।

ओ ७२०० । के ७००० । वे १२००० ।

सत्त-सहस्साणि पुढं, जुत्ताणि पण - सदेहिं विउलमदी ।
सत्तावण्ण सयाइं, वादी सिरिसीयलेसम्मि ।।११३८।।

वि ७५०० । वा ५७०० ।

अर्थ :—श्रीशीतलनाथस्वामीके सात गणोंमेंसे पूर्वधर एक हजार चारसौ, शिक्षक उनसठ हजार दो सौ, अवधिज्ञानी सात हजार दो सौ, केवली सात हजार, विक्रियाऋद्धिधारी चारसे गुणित तीन (अर्थात् बारह)हजार, विपुलमति सात हजार पाँच सौ और वादी पाँच हजार सात सौ थे ।।११३६-११३८ ।।

श्रेयांस-जिनेन्द्रके सात गणोंका प्रमाण—

एक्कं चेय सहस्सा, संजुत्ता तिय-सएहिं पुव्वधरा ।
अडदाल-सहस्साइं, दो-सय-जुत्ताइं सिक्खगणा ।।११३९।।

पु १३०० । सि ४८२०० ।

छ-सहस्साइं ओही, केवलिणो छस्सहस्स-पंच-सया ।
एक्कारस-मेत्ताणि, होंति सहस्साणि वेगुव्वी ।।११४०।।

ओ ६००० । के ६५०० । वे ११००० ।

बे-रूव-ताडिदाइं, तिण्णि सहस्साइ तह य विउलमदी ।
पण - गुणिद - सहस्साइं, वादी सेयंस - देवम्मि ।।११४१।।

वि ६००० । वा ५००० ।

अर्थ :—श्रेयांसजिनेन्द्रके सात गणोंमेंसे पूर्वधर एक हजार तीनसौ, शिक्षक अड़तालीस हजार दो सौ, अवधिज्ञानी छह हजार, केवली छह हजार पाँचसौ, विक्रिया-ऋद्धिधारी ग्यारह हजार, विपुलमति दोसे गुणित तीन (छह) हजार तथा वादी पाँच हजार थे ।।११३९-११४१।।

वासुपूज्यदेवके सात गणोंका प्रमाण—

एक्कं चेव सहस्सा, संजुत्ता दो-सएहिं पुव्वधरा ।
उणदाल-सहस्साणिं, दोण्णि सयाणिं पि सिक्खगणा ।।११४२।।

पु १२०० । सि ३९२०० ।

पंच-सहस्सा चउ-सय-जुत्ता ओही हवंति केवलिणो ।
छच्चेव सहस्साणिं, वेगुव्वी दस सहस्साइं ।।११४३।।

ओ ५४०० । के ६००० । वे १०००० ।

छच्चेव सहस्साणिं, चत्तारि सहस्सया य दु-सय-जुदा[1] ।
विउलमदी वादीओ, कमसो सिरि - वासुपुज्ज - जिणे ।।११४४।।

वि ६००० । वा ४२०० ।

अर्थ :—श्री वासुपूज्य जिनेन्द्रके सात गणोंमेंसे पूर्वधर एक हजार दो सौ, शिक्षकगण उनतालीस हजार दो सौ, अवधिज्ञानी पांच हजार चार सौ, केवली छह हजार, विक्रिया-ऋद्धिधारी दस हजार, विपुलमति छह हजार और वादी चार हजार दो सौ थे ।।११४२-११४४।।

---

१. ब. क. ज. य. उ. जुद ।

विमल-जिनेन्द्रके सात गणोंकी संख्या—

एक्क - सएणब्भहियं, एक्क - सहस्सं हुवंति पुव्वधरा ।
अट्ठत्तीस सहस्सा, पण-सय-सहिदा य सिक्ख - गणा ॥११४५॥

। पुव्व ११०० । सि ३८५०० ।

अडदाल - सयं ओही, केवलिणो पण - सएण जुत्ताणि ।
पण - संख - सहस्साणि, वेगुव्वी णव सहस्साणि ॥११४६॥

ओ ४८०० । के ५५०० । वि ९००० ।

पंच - सहस्साणि पुढं, जुत्ताणि पण-सएहिं विउलमदी ।
तिण्णि सहस्सा छस्सय - सहिदा वादी विमलदेवे ॥११४७॥

वि ५५०० । वा ३६०० ।

अर्थ :—विमलनाथ तीर्थंकरके सात गणोंमेंसे पूर्वधर एक हजार एक सौ, शिक्षकगण अड़तीस हजार पाँच सौ, अवधिज्ञानी चार हजार आठसौ, केवली पाँच हजार पाँच सौ, विक्रिया-ऋद्धिके धारी नौ हजार, विपुलमति पाँच हजार पाँच सौ और वादी तीन-हजार छहसौ थे ॥११४५-११४७॥

अनन्तनाथके सात गणोंका प्रमाण—

एक्कं चेव सहस्सा, पुव्वधरा सिक्खगा य पंच-सया ।
उणदाल सहस्साणि, ओही तेदाल - सय - संखा ॥११४८॥

पु १००० । सि ३९५०० । ओ ४३०० ।

पंचट्ठ-पण - सहस्सा, केवलि-वेगुव्वि-विउलमदि-तिदए ।
तिण्णि सहस्सा बे - सय - जुदाणि वादी अणंत - जिणे ॥११४९॥

के ५००० । वे ८००० । वि ५००० । वा ३२०० ।

अर्थ :—अनन्तनाथ जिनेन्द्रके सात गणोंमेंसे पूर्वधर एक हजार, शिक्षक उनतालीस हजार पाँच सौ, अवधिज्ञानी चार हजार तीन सौ, केवली पाँच हजार, विक्रिया ऋद्धिधारी आठ हजार, विपुलमति पाँच हजार और वादी तीन हजार दो सौ थे ॥११४८-११४९॥

धर्मनाथके सात गणोंका प्रमाण—

णव पुव्वधर-सयाइं, चाल-सहस्साइं सग-सया-सिक्खा ।
छत्तीस - सया ओही, पणवाल - सयाणि केवलिणो ।।११५०।।

पु ९०० । सि ४०७०० । ओ ३६०० । के ४५०० ।

वेगुव्वि[1] सग-सहस्सा, पणवाल-सयाणि होंति विउलमदी ।
अट्ठावीस - सयाणि, वादी सिरिधम्म - सामिम्मि ।।११५१।।

वे ७००० । वि ४५०० । वा २८०० ।

अर्थ :—धर्मनाथ स्वामीके सात गणोंमेंसे पूर्वधर नौ सौ, शिक्षक चालीस हजार सात सौ, अवधिज्ञानी छत्तीस सौ, केवली चार हजार पाँच सौ, विक्रिया-ऋद्धिधारी सात हजार, विपुलमति चार हजार पाँच सौ तथा वादी दो हजार आठ सौ थे ।।११५०-११५१।।

शान्तिनाथके सात गणोंका प्रमाण—

अट्ठ-सया पुव्वधरा, इगिदाल-सहस्स-अड-सया सिक्खा ।
तिण्णि सहस्सा ओही, केवलिणो चउ - सहस्साणि ।।११५२।।

पु ८०० । सि ४१८०० । ओ ३००० । के ४००० ।

वेगुव्वि छस्सहस्सा, चत्तारि - सहस्सयाणि विउलमदी ।
दोण्णि सहस्सा चउ - सय - जुत्ता संतीसरे वादी ।।११५३।।

वे ६००० । वि ४००० । वा २४०० ।

अर्थ :—शान्तिनाथके सात गणोंमेंसे पूर्वधर आठ सौ, शिक्षक इकतालीस हजार आठ सौ, अवधिज्ञानी तीन हजार, केवली चार हजार, विक्रिया-ऋद्धिधारी छह हजार, विपुलमति चार हजार और वादी दो हजार चार सौ थे ।।११५२-११५३।।

---

१. द. विगुव्वि ।

कुन्थुनाथके सात गणोंके प्रमाण—

सत्त सयाणि चेव य, पुव्वधरा होंति सिक्खगा य तहा ।
तेदाल - सहस्साइं, पण्णासब्भहियमेक्क - सयं ॥११५४॥

। पु ७०० । सि ४३१५० ।

पणुवीस[1]-सया ओही, बत्तीस-सयाणि होंति केवलिणो ।
एक्क - सयब्भहियाणि, पंच - सहस्साणि वेगुव्वी ॥११५५॥

ओ २५०० । के ३२०० । वे ५१०० ।

ति-सहस्सा तिण्णि सया, पण्णब्भहिया हुवंति विउलमदी ।
दोण्णि सहस्साणि पुढं, वादी सिरि - कुंथुणाहम्मि ॥११५६॥

वि ३३५० । वा २००० ।

अर्थ :—कुन्थुनाथ स्वामीके सात गणोंमेंसे पूर्वधर सातसौ, शिक्षक तेंतालीस हजार एक सौ पचास, अवधिज्ञानी दो हजार पाँच सौ, केवली तीन हजार दो सौ, विक्रिया-ऋद्धिधारी पाँच हजार एकसौ, विपुलमति तीन हजार तीन सौ पचास तथा वादी दो हजार थे ॥११५४-११५६॥

अर-जिनेन्द्रके सात गणोंका प्रमाण—

दस-अहिय छस्सयाइं, पुव्वधरा होंति सिक्खगा सवणा ।
पणतीस - सहस्साणि, अड - सय - जुत्ताणि पणतीसं ॥११५७॥

पु ६१० । सि ३५८३५ ।

अट्ठावीस सयाणि, ओहीओ तेत्तियाणि केवलिणो ।
चत्तारि सहस्साणि, ति - सयब्भहियाणि वेउव्वी ॥११५८॥

। ओ २८०० । के २८०० । वे ४३०० ।

पणवण्णब्भहियाणिं, दोण्णि सहस्साइ होंति विउलमदी ।
एक्क - सहस्सं छस्सय - संजुत्तं अर - जिणे वादी ॥११५९॥

---

१. द. पणवीस ।

वि २०५५ । वा १६०० ।

अर्थ :—अरनाथ जिनेन्द्रके सात गणोंमेंसे पूर्वधर छहसौ दस, शिक्षक-श्रमण पैंतीस हजार आठ सौ पैंतीस, अवधिज्ञानी दो हजार आठ सौ, इतने ही केवली, विक्रियाऋद्धिधारी चार हजार तीन सौ, विपुलमति दो हजार पचपन और वादी एक हजार छह सौ थे ॥११५७-११५९॥

मल्लिजिनेन्द्रके सात गणोंका प्रमाण—

पण्णासब्भहियाणि, पंच - सयाणि हवंति पुव्वधरा ।
एक्कूणतीस - संखा, सिक्खय - समणा सहस्सा य ॥११६०॥

। पु ५५० । सि २९००० ।

बावीस-सया ओही, तेत्तिय-मेत्ता य होंति केवलिणो ।
णव-सय-अब्भहियाइं[1], दोण्णि सहस्साणि वेगुव्वी ॥११६१॥

। ओ २२०० । के २२०० । वे २९०० ।

एक्क-सहस्सा सग-सय-सहिदं पण्णा य होंति विउलमदी ।
चउसय - जुदं सहस्सं, वादी सिरि - मल्लिणाहम्मि ॥११६२॥

। वि १७५० । वा १४०० ।

अर्थ :—श्रीमल्लिनाथके सात गणोंमेंसे पूर्वधर पाँचसौ पचास, शिक्षक-श्रमण एक कम तीस अर्थात् उनतीस हजार, अवधिज्ञानी दो हजार दो सौ, इतने ही केवली, विक्रिया-ऋद्धिधारी दो हजार नौ सौ, विपुलमति एक हजार सातसौ पचास और वादी एक हजार चार सौ थे ॥११६०-११६२॥

मुनिसुव्रतनाथके सात गणोंकी संख्या—

पंच-सया पुव्वधरा, सिक्खगणा एक्कवीसवि सहस्सा ।
अड[2]- सय - जुदं सहस्सं, ओही तं चेव केवलिणो ॥११६३॥

पु ५०० । सि २१००० । ओ १८०० । के १८०० ।

---

१. द. ब. क. ज. उ. अब्भहियाए । २. द. अट्ठसजुदं ।

बावीसं पण्णारस, [1]बारस कमसो सयाणि वेउव्वी ।
विउलमदी वादीओ, सुव्वयणाहम्मि जिणणाहे ॥११६४॥

। वे २२०० । वि १५०० । वा १२०० ।

अर्थ :—मुनिसुव्रत-जिनेन्द्रके सात गणोंमेंसे पूर्वधर पाँचसौ, शिक्षक इक्कीस हजार, अवधि-ज्ञानी एक हजार आठ सौ, केवली भी इतने ही, विक्रिया-ऋद्धिधारी बाईससौ, विपुलमति पन्द्रहसौ तथा वादी बारह सौ थे ॥११६३-११६४॥

नमिनाथके सात गणोंकी संख्या—

चत्तारि सया पण्णा, पुव्वधरा सिक्खया सहस्साइं ।
बारस छ-सय-जुदाइं, ओही सोलस-सयाणि णमिणाहे ॥११६५॥

पु ४५० । सि १२६०० । ओ १६०० ।

ताइं चिय केवलिणो, पण्णरस-सयाइं होंति वेगुव्वी ।
बारस सयाइ पण्णा, विउलमदी दस - सया वादी ॥११६६॥

के १६०० । वे १५०० । वि १२५० । वा १००० ।

अर्थ :—नमिनाथके सात गणोंमेंसे पूर्वधर चारसौ पचास, शिक्षक बारह हजार छह सौ, अवधिज्ञानी सोलह सौ, केवली भी सोलह सौ, विक्रिया-ऋद्धिधारी पन्द्रहसौ, विपुलमति बारह सौ पचास और वादी एक हजार थे ॥११६५-११६६॥

नेमिनाथके सात गणोंका प्रमाण—

चउसय पुव्वधरा, एक्करस-सहस्स-अड-सया सिक्खा ।
पण्णरस - सया ओही, तेत्तिय - मेत्ता य केवलिणो ॥११६७॥

पु ४०० । सि ११८०० । ओ १५०० । के १५०० ।

---

1. द. बारसककमसो ।

इगि-सय-जुदं सहस्सं, वेगुव्वी णव सयाणि विउलमदी ।
अट्ठ सयाइं वादी, तिहुवण - सामिम्मि णेमिम्मि ॥११६८॥

वे ११०० । वि ९०० । वा ८०० ।

अर्थ :—त्रैलोक्य स्वामी श्री नेमिनाथके सात गणोंमेंसे पूर्वधर बीसके वर्ग (चार सौ) प्रमाण, शिक्षक ग्यारह हजार आठ सौ, अवधिज्ञानी पन्द्रहसौ केवली भी इतने ही, विक्रिया-ऋद्धि धारी एक हजार एक सौ, विपुलमति नौ सौ और वादी आठ सौ थे ॥११६७-११६८॥

पार्श्व-जिनेन्द्रके सात गणोंका प्रमाण—

तिण्णि सयाणि पण्णा, पुव्वधरा सिक्खगा सहस्साणिं ।
दह णव-सय-जुत्ताणि, ओहि - मुणी चोद्दस-सयाणि ॥११६९॥

पु ३५० । सि १०९०० । ओ १४०० ।

दस-घण-केवलणाणी, वेगुव्वी तेत्तियं पि विउलमदी ।
सत्त - सयाणि पण्णा, पास - जिणे छस्सया वादी ॥११७०॥

के १००० । वे १००० । वि ७५० । वा ६०० ।

अर्थ :—पार्श्व-जिनेन्द्रके सात गणोंमेंसे पूर्वधर तीनसौ पचास, शिक्षक दस हजार नौ सौ, अवधिज्ञानी मुनि चौदह सौ, केवली दसके घन (अर्थात् एक हजार) प्रमाण, इतने ही विक्रिया-ऋद्धिधारी, विपुलमति सातसौ पचास और वादी छह सौ थे ॥११६९-११७०॥

वर्धमान जिनके सात गणोंका प्रमाण—

ति-सयाइं पुव्वधरा, णव-णउदि[1]-सयाइ होंति सिक्खगणा ।
तेरस - सयाणि ओही, सत्त - सयाइं पि केवलिणो ॥११७१॥

पु ३०० । सि ९९०० । ओ १३०० । के ७०० ।

---

१. द. णवदि ।

इगि-सय-रहिद-सहस्सं, वेगुव्वी पण-सयाणि विउलमदी ।
चत्तारि - सया वादी, गण - संखा वड्ढमाण - जिणे ।।११७२।।

वे ९०० । वि ५०० । वा ४०० ।

अर्थ :—वर्धमान जिनेन्द्रके सात गणोंमेंसे पूर्वधर तीन सौ, शिक्षकगण नौ हजार नौ सौ, अवधिज्ञानी तेरह सौ, केवली सात सौ, विक्रिया-ऋद्धि-धारी सौ कम एक हजार (नौ सौ), विपुलमति पाँचसौ और वादी चार सौ थे ।।११७१-११७२।।

सर्व तीर्थंकरोंके सातों गणोंमेंसे प्रत्येक की कुल-संख्या—

णभ-चउ-णव-छक्क-तियं, पुव्वधरा सव्व-तित्थ-कत्ताणं ।
पण-पंच-पण-णभा णभ-णभ-दुग-अंकक्कमेण सिक्खगणा ।।११७३।।

सव्व-पुव्वधरांक-कमेण जाणिज्जइ ३६९४० ।
सव्व सि २०००५५५ ।

अर्थ :—सर्व तीर्थंकरोंके शून्य, चार, नौ, छह और तीन इतने (३६९४०) अङ्क प्रमाण पूर्वधर तथा पाँच, पाँच, पाँच शून्य, शून्य, शून्य और दो इतने (२०००५५५) अङ्कप्रमाण शिक्षक-गण थे ।।११७३।।

गयणंबर-छस्सत्त-दु-एक्का सव्वे वि ओहि-णाणीओ ।
केवलणाणी सव्वे, गयणंबर - अट्ठ - पंच - अट्ठेक्का ।।११७४।।

सव्व-ओही १२७६०० । सव्व-के १८५८०० ।

अर्थ :—सर्व अवधिज्ञानी शून्य, शून्य, छह, सात, दो और एक इतने (१२७६००) अङ्क-प्रमाण; तथा सर्व केवली शून्य, शून्य, आठ, पाँच, आठ और एक इतने (१८५८००) अङ्क-प्रमाण थे ।।११७४।।

आयास-णभ-[1]णवं पण-दु-दु-अंक-कमेण सव्व-वेगुव्वी ।
पंचंबर-णवय-चऊ-पणमेक्कं चिय सव्व - विउलमदी ।।११७५।।

सव्व-वे २२५९०० । सव्व-वि १५४९०५ ।

---

१. द. णवपण ।

अर्थ :—सर्व विक्रिया-ऋद्धि-धारी अङ्क-क्रमसे शून्य, शून्य, नौ, पाँच, दो और दो (२२५९००) अंक-प्रमाण; तथा सर्व विपुलमति पाँच, शून्य, नौ, चार, पाँच और एक (१५४९०५) अङ्क-प्रमाण थे ॥११७५॥

णभ-णभ-ति-छ-एक्केक्कं, अंक-कमे होंति सव्व-वादि-गणा ।
सत्तगणा णभ - अंबर - गयणट्ठ - चउक्क-अड-दोण्णि ॥११७६॥

सव्व-वादिगणा ११६३०० । सव्व-गणा २८४८००० ।

अर्थ :—सर्व वादी अङ्क-क्रमसे शून्य, शून्य, तीन, छह एक और एक (११६३००) अङ्क-प्रमाण थे । इन सातों गणोंकी सम्पूर्ण संख्या शून्य, शून्य, शून्य, आठ, चार, आठ और दो इन (२८४८०००) अङ्कों-प्रमाण होती है ॥११७६॥

नोट :—११०३ से ११७६ अर्थात् ७३ गाथाओंकी मूल-संदृष्टियोंका अर्थ इस तालिकामें निहित है—

(तालिका २८ अगले पृष्ठ पर देखिये)

तालिका : २८

सातों गणों का पृथक्-पृथक् एवं एकत्रित (ऋषिगणों का) प्रमाण गा० ११०३-११७६

क्र०	पूर्वधर	शिक्षक	अवधिज्ञानी	केवली	विक्रिया०	विपुलमति	वादी	ऋषिगण
१	४७५०+	४१५० +	९०००+	२०००० +	२०६००+	१२७५०+	१२७५०=	८४०००
२	३७५०	२१६००	९४००	२००००	२०४००	१२४५०	१२४००=	१०००००
३	२१५०	१२९३००	९६००	१५०००	१९८००	१२१५०	१२०००=	२०००००
४	२५००	२३००५०	९८००	१६०००	१९०००	११६५०	१०००=	३०००००
५	२४००	२५४३५०	११०००	१३०००	१८४००	१०४००	१०४५०=	३२००००
६	२३००	२६९०००	१००००	१२०००	१६८००	१०३००	९६००=	३३००००
७	२०३०	२४४९२०	९०००	११०००	१५३००	९१५०	८६००=	३०००००
८	४०००	२१०४००	२०००	१८०००	६००	८०००	७०००=	२५००००
९	१५००	१५५५००	८४००	७५००	१३०००	७५००	६६००=	२०००००
१०	१४००	५९२००	७२००	७०००	१२०००	७५००	५७०० –	१०००००
११	१३००	४८२००	६०००	६५००	११०००	६०००	५०००=	८४०००
१२	१२००	३९२००	५४००	६०००	१००००	६०००	४२००=	७२०००
१३	११००	३८५००	४८००	५५००	९०००	५५००	३६००=	६८०००
१४	१०००	३९५००	४३००	५०००	८०००	५०००	३२००=	६६०००
१५	९००	४०७००	३६००	४५००	७०००	४५००	२८००=	६४०००
१६	८००	४१८००	३०००	४०००	६०००	४०००	२४००=	६२०००
१७	७००	४३१५०	२५००	३२००	५१००	३३५०	२०००=	६००००
१८	६१०	३५८३५	२८००	२८००	४३००	२०५५	१६००=	५००००
१९	५५०	२९०००	२२००	२२००	२९००	१७५०	१४००=	४००००
२०	५००	२१०००	१८००	१८००	२२००	१५००	१२००=	३००००
२१	४५०	१२६००	१६००	१६००	१५००	१२५०	१०००=	२००००
२२	४००	११८००	१५००	१५००	११००	९००	८००=	१८०००
२३	३५०	१०९००	१४००	१०००	१०००	७५०	६००=	१६०००
२४	३००	९९००	१३००	७००	९००	५००	४००=	१४०००
	३६९४०	२०००५५५	१२७६००	१८५८००	२२५९००	१५४९०५	११६३००=	२८४८०००

ऋषभादि तीर्थंकरोंकी आर्यिकाओंका प्रमाण—

पण्णास-सहस्साणि, लक्खाणि तिण्णि उसह - णाहस्स ।
अजियस्स तिण्णि लक्खा, बीस - सहस्साणि विरदीओ ।।११७७।।

३५०००० । ३२००००

अर्थ :—ऋषभजिनेन्द्रके तीर्थमें तीन लाख पचास हजार (३५००००) और अजितनाथके तीर्थमें तीन लाख बीस हजार (३२००००) आर्यिकाएँ थीं ।।११७७।।

तीस - सहस्सब्भहिया, तिय-लक्खा संभवस्स तित्थम्मि ।
विरदीओ तिण्णि लक्खा, तीस-सहस्साणि छ-सय तुरियम्मि ।।११७८।।

३३०००० । ३३०६००

अर्थ :—सम्भवनाथके तीर्थमे तीन लाख तीस हजार (३३००००) एवं चतुर्थ अभिनन्दननाथके तीर्थमें तीन लाख तीस हजार छह सौ (३३०६००) आर्यिकाएँ थीं ।।११७८।।

तीस-सहस्सब्भहिया, सुमइ-जिणिदस्स तिण्णि लक्खाइं ।
विरदीओ चउ-लक्खा, बीस-सहस्साणि पउमपह-णाहे ।।११७९।।

३३०००० । ४२०००० ।

अर्थ :—सुमतिजिनेन्द्रके तीर्थमें तीन लाख तीस हजार (३३००००) और पद्मप्रभके तीर्थमे चार लाख बीस हजार (४२००००) आर्यिकाएँ थी ।।११७९।।

तीस - सहस्सा तिण्णि य, लक्खा तित्थे सुपासदेवस्स ।
चंदपहे[1] तिय - लक्खा, सीदि - सहस्साणि विरदीओ ।।११८०।।

३३०००० । ३८०००० ।

अर्थ :—सुपार्श्वजिनेन्द्रके तीर्थमें तीन लाख तीस हजार (३३००००) और चन्द्रप्रभके तीर्थमें तीन लाख अस्सी हजार (३८००००) आर्यिकाएँ थीं ।।११८०।।

---

१. द. ब. चंदप्पहे ।

ताइं च्चिय पत्तेक्कं, सुविहि-जिणेसम्मि सीयल-जिणिंदे[1] ।
तीस - सहस्सब्भहियं, लक्खं सेयंसदेवम्मि ॥११८१॥

३८०००० । ३८०००० । १३०००० ।

अर्थ :—सुविधि और शीतल जिनेन्द्रमेंसे प्रत्येकके तीर्थमें उतनी ही (तीन लाख अस्सी हजार) तथा श्रेयांस जिनेन्द्रके तीर्थमें एक लाख तीस हजार (१३००००) आर्यिकाएँ थीं ॥११८१॥

विरदीउ [2]वासुपुज्जे, इगि-लक्खं होंति छस्सहस्साणि ।
इगि-लक्खं ति - सहस्सा, विरदीओ विमल - देवस्स ॥११८२॥

१०६००० । १०३००० ।

अर्थ :—वासुपूज्य स्वामीके तीर्थमें एक लाख छह हजार (१०६०००) और विमलदेवके तीर्थमें एक लाख तीन हजार (१०३०००) आर्यिकाएँ थीं ॥११८२॥

अट्ठ-सहस्सब्भहियं, अणंत-सामिस्स होंति इगि-लक्खं ।
बासट्ठि - सहस्साणि[3], चत्तारि सयाणि धम्मणाहस्स ॥११८३॥

१०८००० । ६२४०० ।

अर्थ :—अनन्तनाथ स्वामीके तीर्थमें एक लाख आठ हजार (१०८०००) और धर्मनाथके तीर्थमें बासठ हजार चार सौ (६२४००) आर्यिकाएँ थीं ॥११८३॥

सट्ठि-सहस्सा ति-सयब्भहिया संती-सतित्थ-विरदीओ ।
सट्ठि - सहस्सा ति - सया, पण्णासा कुंथुदेवस्स ॥११८४॥

६०३०० । ६०३५० ।

अर्थ :—शान्तिनाथके तीर्थमें साठ हजार तीनसौ (६०३००) और कुन्थुजिनेन्द्रके तीर्थमें साठ हजार तीन सौ पचास (६०३५०) आर्यिकाएँ थीं ॥११८४॥

अर-जिण-वरिंद-तित्थे, सट्ठि-सहस्साणि होंति विरदीओ ।
पणवण्ण - सहस्साणि, मल्लि - जिणेसस्य तित्थम्मि ॥११८५॥

६०००० । ५५००० ।

---

१. ब. उ. जिणिदो । २. द. क. ज. य. उ. वसपुज्जे । ३. द. सहस्साणं ।

अर्थ :—अरजिनेन्द्रके तीर्थमें साठ हजार (६००००) और मल्लि जिनेन्द्रके तीर्थमें पचपन हजार (५५०००) आर्यिकाएँ थीं ।।११८५।।

पण्णास - सहस्साणि, विरदीओ सुव्वदस्स तित्थम्मि ।
पंच - सहस्सब्भहिया, चाल - सहस्सा णमि - जिणस्स ।।११८६।।

५०००० । ४५००० ।

अर्थ :—मुनिसुव्रतके तीर्थमें पचास हजार (५००००) और नमि जिनेन्द्रके तीर्थमें पाँच हजार अधिक चालीस (पैंतालीस) हजार (४५०००) आर्यिकाएँ थीं ।।११८६।।

विगुणिय-वीस-सहस्सा, णेमिस्स कमेण पास-वीराणं ।
अडतीसं छत्तीसं, होंति सहस्साणि विरदीओ ।।११८७।।

४०००० । ३८००० । ३६००० ।

अर्थ :—नेमिनाथके तीर्थमें द्विगुण बीस (चालीस) हजार (४००००) और पार्श्वनाथ एवं वीर जिनेशके तीर्थमें क्रमशः अड़तीस हजार (३८०००) एवं छत्तीस हजार (३६०००) आर्यिकाएँ थीं ।।११८७।।

आर्यिकाओंकी कुल संख्या—

णभ-पण-दु-छ-पंचंबर - पंचंक - कमेण तित्थ - कत्ताणं ।
सव्वाणं विरदीओ, चंदुज्जल - णिक्कलंक[1] - सीलाओ ।।११८८।।

। ५०५६२५० ।

अर्थ :—सर्व तीर्थंकरोंके तीर्थमें चन्द्र सदृश उज्ज्वल एवं निष्कलङ्क शीलसे संयुक्त समस्त आर्यिकाएँ क्रमशः शून्य, पांच, दो, छह, पांच, शून्य और पांच (५०५६२५०) अंक प्रमाण थीं ।।११८८।।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. णिम्मलंक ।

प्रमुख आर्यिकाओंके नाम—

बम्हुप्पकुज्ज[1]- णामा, धम्मसिरी मेरुसेण - अयणंता ।
तह रतिसेणा [2]मीणा, बरुणा घोसा य धरणा य ॥११८९॥

चारण - वरसेणाओ, पम्मा[3] - सव्वसिस-सुव्वदाओ वि ।
हरिसेण - भावियाओ, कुंथू - मधुसेण - पुप्फदंताओ ॥११९०॥

मग्गिणि-अक्खि-सुलोया, चंदण-णामाओ उसह-पहुदीणं ।
एदा पढम - गणीओ, एक्केक्का सव्वविरदीओ ॥११९१॥

अर्थ :—१ ब्राह्मी, २ प्रकुब्जा (कुब्जा), ३ धर्मश्री (धर्मार्या), ४ मेरुषेणा, ५ अनन्ता (अनन्तमती), ६ रतिषेणा, ७ मीना (मीनार्या), ८ वरुणा, ९ घोषा (घोषार्या), १० धरणा, ११ चारणा (धारणा), १२ वरसेना (सेना), १३ पद्मा, १४ सर्वश्री, १५ सुव्रता, १६ हरिषेणा, १७ भाविता, १८ कुन्थुसेना (यक्षिता), १९ मधुसेना (बन्धुसेना), २० पुष्पदन्ता (पूर्वदत्ता), २१ मार्गिणी (मंगिनी), २२ यक्षिणी (राजमती), २३ सुलोका (सुलोचना) एवं २४ चन्दना नामक एक-एक आर्यिका क्रमशः ऋषभादिकके तीर्थमें रहने वाली आर्यिकाओंके समूहमें प्रमुख थीं ॥११८९-११९१॥

श्रावकोंकी संख्या—

लक्खाणि तिण्णि सावय - संखा उसहादि-अट्ठ-तित्थेसु ।
पत्तेक्कं दो लक्खा, सुविहिप्पहुदीसु[4] अट्ठ - तित्थेसु ॥११९२॥

। ८ । ३००००० । २००००० ।

एक्केक्कं[5] चिय लक्खं, कुंथु-जिणिदादि-अट्ठ-तित्थेसु ।
सव्वाण सावयाणं, मिलिदे अडदाल - लक्खाणि ॥११९३॥

८ । १००००० । ४८०००००[6] ।

---

१ द. ब. क. ज. य. उ. कुब्ब । २ ब. क. ज. य. उ. णामा । ३. द. ब. क. ज. य. उ. पम्मा-सत्तस्ससुव्वाओ वि । ४. द. क. ज. य. उ. सुविहप्पहुदीसु । ५. ब. क. ज. उ. एक्कंकं । ६. ब. उ. ८४००००० ।

अर्थ :—श्रावकोंकी संख्या ऋषभादिक आठ तीर्थंकरोंमेंसे प्रत्येकके तीर्थमें तीन-तीन लाख और सुविधिनाथ प्रभृति आठ तीर्थंकरोंमेंसे प्रत्येकके तीर्थमें दो-दो लाख थी। कुन्थुनाथादि आठ तीर्थंकरोंमेंसे प्रत्येकके तीर्थमें श्रावकोंकी संख्या एक-एक लाख कही गई है। सर्व श्रावकोंकी संख्याको मिला देनेपर समस्त प्रमाण अड़तालीस लाख होता है ।।११९२-११९३।।

श्राविकाओंकी संख्या—

पण - चउ - तिय - लक्खाइं, [1]पण्णबिदाट्ठट्ठ - तित्थेसुं ।
पुह पुह सावगि - संखा, सव्वा छण्णउदि - लक्खाइं ।।११९४।।

। ५०००००। ४०००००। ३०००००। ९६०००००।

अर्थ :—आठ-आठ तीर्थंकरोंमेंसे प्रत्येकके तीर्थमें श्राविकाओंकी पृथक्-पृथक् संख्या क्रमशः पाँच लाख, चार लाख और तीन लाख तथा (श्राविकाओं की) सम्पूर्ण संख्या छयानबै लाख कही गई है ।।११९४।।

प्रत्येक तीर्थमें देव-देवियों तथा अन्य मनुष्यों एवं तिर्यञ्चोंकी संख्या—

देवी - देव - समूहा, संखातीदा हवंति णर - तिरिया ।
संखेज्जा [2]एक्केक्के, तित्थे विहरंति भत्ति - जुत्ता[3] ।।११९५।।

अर्थ :—प्रत्येक तीर्थंकरके तीर्थमें असंख्यात देव-देवियोंके समूह एवं संख्यात मनुष्य और तिर्यंच जीव भक्तिसे संयुक्त होते हुए विहार किया करते हैं ।।११९५।।

ऋषभादि तीर्थंकरोंके मुक्त होनेकी तिथि काल, नक्षत्र और सह-मुक्त जीवोंकी संख्याका निर्देश—

माघस्स किण्ह-चोद्दसि-पुव्वण्हे णियय-जम्म-णक्खत्ते ।
अट्ठावयम्मि उसहो, अजुदेण समं गओ मोक्खं[4] ।।११९६।।

१००००

अर्थ :—ऋषभदेव माघ-कृष्णा चतुर्दशीके पूर्वाह्णमें अपने जन्म (उत्तराषाढा) नक्षत्रके रहते कैलाशपर्वतसे दस हजार मुनिराजोंके साथ मोक्षको प्राप्त हुए ।।११९६।।

---

१. द. ब क. ज. य उ. पण्णिदिरा। २. एक्केक्को। ३. ब. उ. जुत्तो, द ज. जुदो, य. क. जुदा। ४. द. ब. क. ज. उ. जोमि। य जम्मि।

चेत्तस्स सुद्ध-पंचमि-पुव्वण्हे भरणि - णाम - णक्खत्ते ।
सम्मेदे अजियजिणो, मुत्ति [1]पत्तो सहस्स - समं ॥११९७॥

१०००

अर्थ :—अजित जिनेन्द्र चैत्र-शुक्ला पंचमीके पूर्वाह्णमें भरणी नक्षत्रके रहते सम्मेदशिखरसे एक हजार मुनियोंके साथ मुक्तिको प्राप्त हुए ॥११९७॥

चेत्तस्स सुक्क - छुट्ठी - अवरण्हे जम्म - भम्मि सम्मेदे ।
संपत्तो अपवग्गं, संभवसामी सहस्स - जुदो[2] ॥११९८॥

१००० ।

अर्थ :—सम्भवनाथ स्वामी चैत्र-शुक्ला षष्ठीके अपराह्णमें जन्म (ज्येष्ठा) नक्षत्रके रहते सम्मेदशिखरसे एक हजार मुनियोंके साथ मोक्षको प्राप्त हुए हैं ॥११९८॥

वइसाह-सुक्क-सत्तमि, पुव्वण्हे जम्म - भम्मि सम्मेदे ।
दस-सय - महस्सि - सहिदो, णंदणदेवो[3] गदो मोक्खं ॥११९९॥

। १००० ।

अर्थ :—अभिनन्दन देव वैशाख-शुक्ला सप्तमीके पूर्वाह्णमें अपने जन्म (पुनर्वसु) नक्षत्रके रहते सम्मेदशिखरसे एक हजार महर्षियोंके साथ मोक्षको प्राप्त हुए ॥११९९॥

चेत्तस्स सुक्क - दसमी - पुव्वण्हे जम्म - भम्मि सम्मेदे ।
दस - सय - रिसि - संजुत्तो[4], सुमई णिव्वाणमावण्णो ॥१२००॥

१०००

अर्थ :—सुमतिजिनेन्द्र चैत्र-शुक्ला दसमीके पूर्वाह्णमें अपने जन्म (मघा) नक्षत्रके रहते सम्मेदशिखरसे एक हजार ऋषियोंके साथ निर्वाणको प्राप्त हुए ॥१२००॥

---

१. द. ब. क. ज. ठ. मुत्ति पत्ता । २. द. ब. ज. ठ. जुदा । ३. द. ब. क. ज. ठ. देवा ।
४. द. ब. ज. ठ. संजुत्ता ।

फग्गुण-किण्ह-चउत्थी-अवरण्हे जम्म - भम्मि सम्मेदे ।
चउवीसाहिय - तिय - सय - सहिदो पउमप्पहो देवो ।।१२०१।।

३२४

अर्थ :—पद्मप्रभदेव फाल्गुन-कृष्णा चतुर्थीके अपराह्णमें अपने जन्म (चित्रा) नक्षत्रके रहते सम्मेदशिखरसे तीनसौ चौबीस मुनियोंके साथ मुक्तिको प्राप्त हुए हैं ।।१२०१।।

फग्गुण - बहुलच्छट्ठी - पुव्वण्हे पव्वदम्मि सम्मेदे ।
अणुराहाए पण - सय - जुत्तो[1] मुत्तो सुपास - जिणो ।।१२०२।।

। ५०० ।

अर्थ :—सुपार्श्वजिनेन्द्र फाल्गुन-कृष्णा षष्ठीके पूर्वाह्णमें अनुराधा नक्षत्रके रहते सम्मेद-पर्वतसे पाँचसौ मुनियों सहित मुक्तिको प्राप्त हुए हैं ।।१२०२।।

सिद-सत्तमि-पुव्वण्हे, भद्दपदे मुणि सहस्स - [2]संजुत्तो ।
जेट्ठेसु सम्मेदे, चंदप्पह - जिणवरो सिद्धो ।।१२०३।।

१००० ।

अर्थ :—चन्द्रप्रभ-जिनेन्द्र भाद्रपद-शुक्ला सप्तमीके पूर्वाह्णमें ज्येष्ठा नक्षत्रके रहते एक हजार मुनियों सहित सम्मेदशिखरसे मुक्त हुए हैं ।।१२०३।।

अस्सजुद-सुक्क-अट्ठमि-अवरण्हे जम्म - भम्मि सम्मेदे ।
मुणिवर-सहस्स-सहिदो, सिद्धि - गदो पुप्फदंत - जिणो ।।१२०४।।

१००० ।

अर्थ :—पुष्पदन्त जिनेन्द्र आश्विन-शुक्ला अष्टमीके अपराह्णमें अपने जन्म (मूल) नक्षत्र के रहते सम्मेदशिखरसे एक हजार मुनियोंके साथ सिद्धिको प्राप्त हुए हैं ।।१२०४।।

कत्तिय - सुक्के पंचमि - पुव्वण्हे जम्म-भम्मि सम्मेदे ।
णिव्वाणं संपत्तो, सीयलदेवो सहस्स - जुदो ।।१२०५।।

१००० ।

---

१. द. ब. ज. उ. जुत्ता । २. द. ब. उ. संजुदो ।

अर्थ :—शीतलनाथ जिनेन्द्र कार्तिक-शुक्ला पंचमीके पूर्वाह्णमें अपने जन्म (पूर्वाषाढ़ा) नक्षत्रके रहते सम्मेदशिखरसे एक हजार मुनियोंके साथ निर्वाणको प्राप्त हुए हैं ।।१२०५।।

सावणय-पुण्णिमाए[1], पुव्वण्हे मुणि - सहस्स - संजुत्तो ।
सम्मेदे सेयंसो, सिद्धि पत्तो धणिट्ठासु ।।१२०६।।

। १००० ।

अर्थ :—भगवान् श्रेयांसनाथ श्रावण (शुक्ला) पूर्णिमाके पूर्वाह्णमे धनिष्ठा नक्षत्रके रहते सम्मेदशिखरसे एक हजार मुनियोंके साथ सिद्धिको प्राप्त हुए हैं ।।१२०६।।

फग्गुण - बहुले पंचमि - अवरण्हे अस्सिणीसु चंपाए ।
रूवाहिय-छ-सय-जुदो[2] सिद्धि - गदो वासुपुज्ज-जिणो ।।१२०७।।

। ६०१ ।

अर्थ :—वासुपूज्य जिनेन्द्र फाल्गुन-कृष्णा पंचमीके दिन अपराह्णमें अश्विनी नक्षत्रके रहते छहसौ एक मुनियोंके साथ चम्पापुरसे सिद्धिको प्राप्त हुए हैं ।।१२०७।।

सुक्कट्ठमी - पदोसे, आसाढे जम्म - भम्मि सम्मेदे ।
छस्सय - मुणि - संजुत्तो, मुत्ति पत्तो विमलसामी ।।१२०८।।

। ६०० ।

अर्थ :—विमलनाथ स्वामी आषाढ़-शुक्ला अष्टमी को प्रदोष काल (दिन और रात्रिके सन्धिकाल) में अपने जन्म (पूर्वभाद्रपद) नक्षत्रके रहते छहसौ मुनियोंके साथ सम्मेदशिखरसे मुक्त हुए ।।१२०८।।

चेत्तस्स किण्ह-पच्छिम-दिणप्पदोसम्मि जम्म-णक्खत्ते ।
सम्मेदम्मि अणंतो, सत्त - सहस्सेहि संपत्तो ।।१२०९।।

। ७००० ।

---

१. ब. क. उ. पुण्णमाए । २. द. ज. जुदा ।

अर्थ :—अनन्तनाथ स्वामी चैत्रमासके कृष्णपक्ष सम्बन्धी पश्चिम दिन (अमावस्या) को प्रदोष-कालमें अपने जन्म (रेवती) नक्षत्रमें सम्मेदशिखरसे सात हजार मुनियोंके साथ मोक्षको प्राप्त हुए हैं ॥१२०६॥

जेट्ठस्स किण्ह - चोद्दसि - पज्जूसे जम्म - भम्मि सम्मेदे ।
सिद्धो धम्म - जिणिंदो, रूवाहिय - अड - सएहिं जुदो ॥१२१०॥

। ८०१ ।

अर्थ :—धर्मनाथ जिनेन्द्र ज्येष्ठ-कृष्णा चतुर्दशीको प्रत्यूष (रात्रिके अन्तिम भाग-प्रभात) कालमें अपने जन्म (पुष्य) नक्षत्रके रहते आठ सौ एक मुनियोंके साथ सम्मेदशिखरसे सिद्ध हुए हैं ॥१२१०॥

जेट्ठस्स किण्ह[1]-चोद्दसि-पदोस-समयम्मि जम्म-णक्खत्ते ।
सम्मेदे संति - जिणो, णव-सय-मुणि-संजुदो[2] सिद्धो ॥१२११॥

। ९०० ।

अर्थ :—शान्तिनाथ जिनेन्द्र ज्येष्ठ-कृष्णा-चतुर्दशीको प्रदोषकालमें अपने जन्म (भरणी) नक्षत्रमें नौसौ मुनियोंके साथ सम्मेदशिखरसे सिद्ध हुए ॥१२११॥

वइसाह-सुक्क-पाडिव-पदोस-समयम्हि जम्म - णक्खत्ते ।
सम्मेदे कुंथु - जिणो, सहस्स - सहिदो गदो सिद्धिं ॥१२१२॥

। १००० ।

अर्थ :—कुन्थु जिनेन्द्र वैशाख-शुक्ला प्रतिपदाको प्रदोष-कालमें अपने जन्म (कृतिका) नक्षत्रके रहते एक हजार मुनियोंके साथ सम्मेदशिखरसे सिद्धिको प्राप्त हुए हैं ॥१२१२॥

चेत्तस्स बहुल-चरिमे, दिणम्मि[3] णिय जम्मि-भम्मि पज्जूसे ।
सम्मेदे अर - देवो, सहस्स - सहिदो गदो मोक्खं ॥१२१३॥

। १००० ।

---

१. द. ब. क. उ. किण्हपदोसे । २. द. ब. ज. उ. संजुदा सिद्धा । ३. द. क. ज. य. उ. दिणिम्मि ।

अर्थ :—अरनाथ भगवान्‌ने चैत्र-कृष्णा अमावस्याको प्रत्यूष-कालमें अपने जन्म (रोहणी) नक्षत्रके रहते एक हजार मुनियोंके साथ सम्मेदशिखरसे मोक्ष प्राप्त किया है ।।१२१३।।

पंचमि-पदोस-समए, फग्गुण-बहुलम्मि भरणि-णक्खत्ते ।
सम्मेदे मल्लिजिणो, पंच - सय[1] - समं गदो मोक्खं ।।१२१४।।

५००

अर्थ :—मल्लिनाथ तीर्थंकर फाल्गुन-कृष्णा पंचमीको प्रदोष समयमें भरणी नक्षत्रके रहते सम्मेदशिखरसे पाँचसौ मुनियोंके साथ मोक्षको प्राप्त हुए हैं ।।१२१४।।

फग्गुण-किण्हे बारसि-पदोस-समयम्मि जम्म-णक्खत्ते ।
सम्मेदम्मि विमुक्को, सुव्वद - देवो सहस्स जुत्तो ।।१२१५।।

। १००० ।

अर्थ :—मुनिसुव्रतजिनेन्द्र फाल्गुन-कृष्णा बारसको प्रदोष समयमें अपने जन्म (श्रवण) नक्षत्रके रहते एक हजार मुनियोंके साथ सम्मेदशिखरसे सिद्धिको प्राप्त हुए हैं ।।१२१५।।

वइसाह-किण्ह-चोद्दसि, पच्चूसे जम्म - भम्मि सम्मेदे ।
णिस्सेयसं पवण्णो, समं सहस्सेण णमि - सामी ।।१२१६।।

। १००० ।

अर्थ :—नमिनाथ स्वामी वैशाख-कृष्णा चतुर्दशीके प्रत्यूषकालमें अपने जन्म (अश्विनी) नक्षत्रके रहते सम्मेदशिखरसे एक हजार मुनियोंके साथ निःश्रेयस-पदको प्राप्त हुए हैं ।।१२१६।।

बहुलट्ठमी - पदोसे, आसाढे जम्म - भम्मि उज्जंते ।
छत्तीसाहिय - पण - सय - सहिदो णेमीसरो सिद्धो[2] ।।१२१७।।

। ५३६ ।

अर्थ :—नेमिनाथ जिनेन्द्र आषाढ़-कृष्णा अष्टमीको प्रदोष-कालमें अपने जन्म (चित्रा) नक्षत्रके रहते पाँच सौ छत्तीस मुनिराजोंके साथ ऊर्जयन्तगिरिसे सिद्ध हुए हैं ।।१२१७।।

---

१ द. ब. ज. य. उ. सयसममगदो । २. द. ब. सिद्धा ।

सिद-सत्तमी-पदोसे, सावण-मासम्मि जम्म - णक्खत्ते ।
सम्मेदे पासजिणो, छत्तीस - जुदो गदो मोक्खं ॥१२१८॥

। ३६ ।

अर्थ :—पार्श्वनाथ जिनेन्द्र श्रावण मासमें शुक्लपक्षकी सप्तमीके प्रदोष-कालमें अपने जन्म (विशाखा) नक्षत्रके रहते छत्तीस मुनियों सहित सम्मेदशिखरसे मोक्षको प्राप्त हुए हैं ॥१२१८॥

कत्तिय - किण्हे चोद्दसि, पच्चूसे सादि-णाम-णक्खत्ते ।
पावाए णयरीए, एक्को वीरेसरो सिद्धो ॥१२१९॥

१

अर्थ :—वीर जिनेश्वर कार्तिक कृष्णा चतुर्दशीके प्रत्यूष-कालमें स्वाति नामक नक्षत्रके रहते पावानगरीसे अकेले ही सिद्ध हुए हैं ॥१२१९॥

[तालिका : २९ अगले पृष्ठ ३५८-३५९ पर देखिये]

ऋषभादिजिनेन्द्रोंका योग-निवृत्ति काल—

उसहो चोद्दसि दिवसे, दु - दिणं वीरेसरस्स सेसाणं ।
मासेण य विणिवित्तो, जोगादो मुत्ति - संपण्णो ॥१२२०॥

अर्थ :—ऋषभजिनेन्द्रने चौदह दिन पूर्व, वीर जिनेन्द्रने दो दिन पूर्व और शेष तीर्थंकरोंने एक मास पूर्व योगसे निवृत्त होनेपर मोक्ष प्राप्त किया है ॥१२२०॥

तीर्थंकरोंके मुक्त होनेके आसन—

उसहो य वासुपुज्जो, णेमी पल्लंक - [1]बद्धया सिद्धा ।
काउस्सग्गेण जिणा, सेसा मुत्तिं समावण्णा ॥१२२१॥

१. द. उड्डया ।

अर्थ :—ऋषभनाथ, वासुपूज्य एवं नेमिनाथ पल्यङ्क-बद्ध-आसनसे तथा शेष जिनेन्द्र कायोत्सर्ग मुद्रासे मोक्षको प्राप्त हुए हैं ॥१२२१॥

मुक्तिफल याचना—

वसन्ततिलकम्—

घोरट्ठ-कम्म-णियरे दलिदूरण लद्धं-
णिस्सेयसा जिणवरा जगवंद - णिज्जा ।
सिद्धिं विसंतु तुरिदं सिरिबालचंदं-
[1]सिद्धंतियप्पहुदि-भव्व-जणाण सव्वे ॥१२२२॥

अर्थ :—जिन्होंने घोर अष्ट-कर्मोंके समूहको नष्ट करके निःश्रेयसपदको प्राप्त कर लिया है और जो जगत्के वन्दनीय हैं ऐसे वे सर्व जिनेन्द्र शीघ्र ही, श्री बालचन्द्र सैद्धान्तिक आदि भव्यजनोंको मुक्ति प्रदान करें ॥१२२२॥

ऋषभादिजिनेन्द्रोंके तीर्थमें अनुबद्ध केवलियोंकी संख्या—

दसमंते चउसीदी, कमसो अणुबद्ध - केवली होंति ।
बाहत्तरि चउवालं, सेयंसे वासुपुज्जे य ॥१२२३॥

८४ । से ७२ । वा ४४ ।

अर्थ :—आदिनाथसे शीतलनाथ पर्यन्त (प्रत्येक के) चौरासी तथा श्रेयांसनाथ और वासुपूज्यके क्रमशः बहत्तर एवं चवालीस अनुबद्ध केवली हुए हैं ॥१२२३॥

विमल-जिणे चालीसं, णवसु तदो चउ-विवज्जिदा कमसो ।
तिण्णि च्चिय पास-जिणे तिण्णि च्चिय वड्ढमाणम्मि ॥१२२४॥

। ४० । ३६ । ३२ । २८ । २४ । २० । १६ । १२ । ८ । ४ । ३ । ३ ।

अर्थ :—विमल जिनेन्द्रके चालीस, इसके पश्चात् नौ तीर्थंकरोंके क्रमशः उत्तरोत्तर चार-चार हीन, पार्श्वनाथके तीन और वर्धमान स्वामीके भी तीन ही अनुबद्ध केवली हुए हैं ॥१२२४॥

---

१. द. ब. ज. य. उ. सिद्धंतियं पहुविभव्वजणाण ।

आर्यिकाओं आदि की संख्या एवं तीर्थंकरों के निर्वाण-प्राप्ति निर्देश गाथा ११७७-१२१९											
क्रम	आर्यिकाओ की संख्या	प्रमुख आर्यिका	श्रावकों की संख्या	श्राविकाओं की संख्या	निर्वाण प्राप्ति						
					मास	पक्ष	तिथि	समय	नक्षत्र	स्थान	सह-मुक्त
१	३५००००	ब्राह्मी	३ लाख	५ लाख	माघ	कृष्ण	चतुर्दशी	पूर्वाह्न	उ.षा	कैलाश पर्वत	१०००
२	३२००००	प्रकुब्जा	३ लाख	५ लाख	चैत्र	शुक्ला	पंचमी	पूर्वाह्न	भरणी	सम्मेद शिखर	१०००
३	३३००००	धर्मश्री	३ लाख	५ लाख	चैत्र	शुक्ला	षष्ठी	अपराह्न	ज्येष्ठा	सम्मेद शिखर	१०००
४	३३०६००	मेरुषेणा	३ लाख	५ लाख	वैशाख	शुक्ला	सप्तमी	पूर्वाह्न	पुनर्वसु	,, ,,	१०००
५	३३००००	अनन्ता	३ लाख	५ लाख	चैत्र	शुक्ला	दशमी	पूर्वाह्न	मघा	,, ,,	१०००
६	४२००००	रतिषेणा	३ लाख	५ लाख	फाल्गुन	कृष्णा	चतुर्थी	अपराह्न	चित्रा	,, ,,	३२४
७	३३००००	मीना	३ लाख	५ लाख	फाल्गुन	कृष्णा	षष्ठी	पूर्वाह्न	अनु०	,, ,,	५००
८	३८००००	वरुणा	३ लाख	५ लाख	भाद्रपद	शुक्ला	सप्तमी	पूर्वाह्न	ज्येष्ठा	,, ,,	१०००
९	३८००००	घोषा	२ लाख	४ लाख	आश्विन	शुक्ला	अष्टमी	अपराह्न	मूल	,, ,,	१०००
१०	३८००००	धरणा	२ लाख	४ लाख	कार्तिक	कृष्णा	पंचमी	पूर्वाह्न	पू.षा	,, ,,	१०००
११	१३००००	चारणा	२ लाख	४ लाख	श्रावण	शुक्ला	पूर्णिमा	पूर्वाह्न	धनि	,, ,,	१०००
१२	१०६०००	वरसेना	२ लाख	४ लाख	फाल्गुन	कृष्णा	पंचमी	अपराह्न	अश्वि	चम्पापुर	६०१

१३	१०३०००	पद्मा	२ लाख	४ लाख	आषाढ़	शुक्ला	अष्टमी	प्रदोष	पू.भा.	सम्मेद शिखर	६००
१४	१०८०००	सर्वश्री	२ लाख	४ लाख	चैत्र	कृष्णा	अमावस	प्रदोष	रेवती	,, ,,	७०००
१५	६२४००	सुव्रता	२ लाख	४ लाख	ज्येष्ठ	कृष्णा	चतुर्दषी	प्रत्यूष	पुष्य	,, ,,	८०१
१६	६०३००	हरिषेणा	२ लाख	४ लाख	ज्येष्ठ	कृष्णा	चतुर्दशी	प्रदोष	भरणी	सम्मेद शिखर	९००
१७	६०३५०	भाविता	एक लाख	३ लाख	वैशाख	शुक्ला	प्रतिपदा	प्रदोष	कृति.	,, ,,	१०००
१८	६००००	कुथुसेना	१ लाख	३ लाख	चैत्र	कृष्णा	अमावस	प्रत्यूष	रोहणी	,, ,,	१०००
१९	५५०००	मधुसेना	१ लाख	३ लाख	फाल्गुन	कृष्ण	पंचमी	प्रदोष	भरणी	,, ,,	५००
२०	५००००	पुष्पदंता	१ लाख	३ लाख	फाल्गुन	कृष्ण	बारस	प्रदोष	श्रवण	,, ,,	१०००
२१	४५०००	मार्गिणी	१ लाख	३ लाख	वैशाख	कृष्ण	चतुर्दशी	प्रत्यूष	अश्वि.	,, ,,	१०००
२२	४००००	यक्षिणी (राजमती)	१ लाख	३ लाख	आषाढ़	कृष्ण	अष्टमी	प्रदोष	चित्रा	ऊर्जयन्त	५२६
२३	३८०००	सुलोका	१ लाख	३ लाख	श्रावण	शुक्ला	सप्तमी	प्रदोष	वि.	सम्मेद शिखर	३६
२४	३६०००	चन्दना	१ लाख	३ लाख	कार्तिक	कृष्णा	चतुर्दथ्शी	प्रत्यूष	स्वाति	पावापुरी	एकाकी
योग	५०५६२५०	४८०००००	९६०००००								

प्रकारान्तरसे—

आ सत्तममेक्क-सयं, उवरि-तिय णउदि णउदि चउसीदी ।
सेसेसु पुव्व - संखा, हवंति अणुबद्ध - केवली अहवा ।।१२२५।।

पत्तेयं १०० । १०० १०० । १०० । १०० । १०० । १०० । ९० । ९० । ९० । ९० ।
८४ । ४० । ३६ । ३२ । २८ । २४ । २० । १६ । १२ । ८ । ४ । ३ । ३ ।

अर्थ :—अथवा सातवें सुपार्श्वनाथ पर्यन्त एकसौ, आगे तीनके नब्बै, पुनः नब्बै, चौरासी एवं शेष तीर्थंकरोंके पूर्वोक्त संख्या प्रमाण ही अनुबद्ध केवली हुए हैं ।।१२२५।।

ऋषभादि तीर्थंकरोंके शिष्योंमेंसे अनुत्तर विमानोंमें जाने वालोंकी संख्या—

उसह-तियाणं सिस्सा, वीस - सहस्सा अणुत्तरेसु गदा[1] ।
कमसो पंच - जिणेसुं, तत्तो बारस - सहस्साणि ।।१२२६।।

२०००० । २०००० । २०००० । १२००० । १२००० । १२००० । १२००० । १२००० ।

तत्तो पंच - जिणेसुं, एक्कार - सहस्सयाणि पत्तेक्कं ।
पंचसु सामिसु तत्तो, एक्केक्के दस - सहस्साणि ।।१२२७।।

११००० । ११००० । ११००० । ११००० । ११००० । १०००० । १००००
। १०००० । १०००० । १०००० ।

अट्ठासीदि - सयाणि, कमेण सेसेसु जिणवरिंदेसुं ।
गयण-णभ-अट्ठ-सग-सग-दो-अंक-कमेण सव्व-परिमाणं ।।१२२८।।

८८०० । ८८०० । ८८०० । ८८०० । ८८०० । ८८०० ।। संमेलिदा २७७८०० ।।

। अणुत्तरं गद ।

अर्थ :—ऋषभादिक तीन जिनेन्द्रोंके क्रमशः बीस-बीस हजार, आगे पाँच तीर्थंकरोंके बारह-बारह हजार, आगे पाँच जिनेन्द्रोंमेंसे प्रत्येकके ग्यारह-ग्यारह हजार, फिर पाँच जिनेन्द्रोंमेंसे एक-एकके दस-दस हजार तथा शेष छह जिनेन्द्रोंके क्रमशः अठासी-अठासी सौ शिष्य अनुत्तर विमानोंमें

१. द. ब. ज. ठ. गदो ।

गये हैं। इन विमानों में जाने वाले सम्पूर्ण शिष्योंका प्रमाण अङ्क-क्रमसे शून्य, शून्य, आठ, सात, सात और दो (२७७८००) संख्याके बराबर है ॥१२२६-१२२८॥

। अनुत्तर विमानोंमें जाने वालोंका कथन समाप्त हुआ ।

ऋषभादिकोंके मुक्ति-प्राप्त यतिगणोंका प्रमाण—

सट्ठि-सहस्सा णव-सय-सहिया सिद्धि गदा जदीण गणा ।
उसहस्स अजिय-पहुणो, एक्क-सया सत्तहत्तरि - सहस्सा ॥१२२९॥

। ६०९०० । ७७१०० ।

अर्थ :—ऋषभजिनेन्द्रके साठ हजार नौ सौ और अजितप्रभुके सतत्तर हजार एकसौ यतिगण सिद्धिको प्राप्त हुए हैं ॥१२२९॥

सत्तरि-सहस्स-इगि-सय-संजुत्ता संभवस्स इगि - लक्खं ।
दो लक्खा एक्क-सयं, सीदि-सहस्साणि णंदण-जिणस्स ॥१२३०॥

। १७०१०० । २८०१०० ।

अर्थ :—सम्भवनाथके एक लाख सत्तर हजार एक सौ और अभिनन्दन जिनेन्द्रके दो लाख अस्सी हजार एक सौ यतिगण सिद्ध हुए हैं ॥१२३०॥

लक्खाणि तिण्णि सोलस-सएहिं जुत्ताणि सुमइ-सामिस्स ।
चोद्दस-सहस्स-सहिदा, पउमप्पह-जिणवरस्स [1]तिय-लक्खा ॥१२३१॥

। ३०१६०० । ३१४००० ।

अर्थ :—सुमतिनाथ स्वामीके तीन लाख सोलह सौ और पद्मप्रभ जिनेन्द्रके तीन लाख चौदह हजार मुनि सिद्ध हुए ॥१२३१॥

पंचासीदि - सहस्सा, दो लक्खा छस्सया सुपासस्स ।
चउतीस - सहस्स - जुदा, दो लक्खा चंदपह - पहुणो ॥१२३२॥

। २८५६०० । २३४००० ।

---

१. ब. उ. तिमयलक्खा ।

अर्थ :—सुपार्श्व-जिनेन्द्रके दो लाख पचासी हजार छह सौ और चन्द्रप्रभुके दो लाख चौंतीस हजार यति मुक्त हुए ॥१२३२॥

उणसीदि - सहस्साणिं, इगि - लक्खं छस्सयाणि सुविहिस्स ।
सीदि - सहस्सा[1] छस्सय, संजुत्ता[2] सीयलस्स देवस्स ॥१२३३॥

। १७९६०० । ८०६०० ।

अर्थ :—सुविधिनाथके एक लाख उन्यासी हजार छह सौ और शीतलदेवके अस्सी हजार छह सौ ऋषि मुक्तिको प्राप्त हुए ॥१२३३॥

पण्णट्ठि-सहस्साणि, सेयंस - जिणस्स छस्सयाणि पि ।
चउवण्ण - सहस्साइं, छच्च सया वासुपुज्जस्स ॥१२३४॥

। ६५६०० । ५४६०० ।

अर्थ :—श्रेयांस जिनेन्द्रके पैंसठ हजार छहसौ और वासुपूज्यके चौवन हजार छहसौ यति मोक्षको प्राप्त हुए ॥१२३४॥

एक्कावण्ण-सहस्सा, तिण्णि सयाणि पि विमल-णाहस्स ।
तेत्तिय - मेत्त - सहस्सा, तिय - सय - हीणा अणंतस्स ॥१२३५॥

। ५१३०० । ५१००० ।

अर्थ :—विमल जिनेन्द्रके इक्यावन हजार तीन सौ और अनन्तनाथके तीन सौ कम इतने ही अर्थात् इक्यावन हजार यति सिद्धपदको प्राप्त हुए ॥१२३५॥

उणवण्ण - सहस्साणिं, सत्त - सएहिं जुदाणि धम्मस्स ।
अडदाल - सहस्साइं, चत्तारि सदाणि संतिस्स ॥१२३६॥

। ४९७०० । ४८४०० ।

अर्थ :—धर्मनाथ जिनेन्द्रके उनचास हजार सात सौ और शान्तिनाथके अड़तालीस हजार चार सौ ऋषि सिद्धपदको प्राप्त हुए ॥१२३६॥

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. सहस्सं । २ द. ब. क. ज य. उ. जुत्ताहिं ।

छादाल - सहस्साणिं, अट्ठ - सदाणि च कुंथु-णाहस्स ।
सत्तत्तीस - सहस्सा, दो-सय-जुत्ता अर - जिणिंदस्स ॥१२३७॥

। ४६८०० । ३७२०० ।

अर्थ :—कुन्थुनाथके छयालीस हजार आठ सौ और अर-नाथ जिनेन्द्रके सैंतीस हजार दो सौ यति मुक्त हुए ॥१२३७॥

अट्ठावीस - सहस्सा, अट्ठ - सदाणिं पि मल्लिणाहस्स ।
उणवीस - सहस्साणिं, दोण्णि सया सुव्वय - जिणस्स ॥१२३८॥

। २८८०० । १९२०० ।

अर्थ :—मल्लिनाथके अट्ठाईस हजार आठ सौ और मुनिसुव्रत जिनेन्द्रके उन्नीस हजार दो सौ यति सिद्ध हुए ॥१२३८॥

णव य सहस्सा छस्सय-संजुत्ता णमि-जिणस्स सिस्स-गणा ।
णेमिस्स अड - सहस्सा, बासट्ठि - सयाणि पासस्स ॥१२३९॥

। ९६०० । ८००० । ६२०० ।

अर्थ :—नमिनाथ जिनेन्द्रके नौ हजार छह सौ, नेमिनाथके आठ हजार और पार्श्वनाथके बासठ सौ शिष्यगण मोक्ष गये हैं ॥१२३९॥

चउदाल - सया वीरेसरस्स सव्वाण मिलिद-परिमाणं ।
चउवीसदि-लक्खाणिं, चउसट्ठि-सहस्स-चउ-सयाणि त्ति ॥१२४०॥

४४०० । २४६४४०० ।

अर्थ :—वीर जिनेश्वरके चवालीससौ शिष्यगण मुक्तिको प्राप्त हुए। इन सर्व शिष्योंका सम्मिलित प्रमाण चौबीस लाख चौंसठ हजार चार सौ होता है ॥१२४०॥

ऋषभादिकोंके मुक्ति प्राप्त शिष्यगणोंका मुक्तिकाल—

उसहादि - सोलसाणं, केवलणाणप्पसूदि - दिवसम्मि ।
पढमं चिय सिस्स - गणा, णिस्सेयस - संपयं पत्ता ॥१२४१॥

कुंथु - पहुदीणं कमसो, इगि-दु-ति-छम्मास-समय-पेरंतं ।
णमि - पहुदि - जिणिदेसुं, इगि-दु-ति-छव्वास-संजाए ॥१२४२॥

मा १ । २ । ३ । ६ । वास १ । २ । ३ । ६ ।

अर्थ :—ऋषभादि सोलह तीर्थंकरोंको केवलज्ञान होनेके दिनसे ही (उनके) शिष्यगण मोक्ष-सम्पदाको प्राप्त हो गये थे । कुन्थुनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ और मुनिसुव्रतनाथ तीर्थंकरोंको केवलज्ञान होनेके क्रमशः एक माह दो माह, तीन माह और छह माहके समयमें ही तथा नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ एवं वीर जिनेन्द्रको केवलज्ञान होने के क्रमशः एक वर्ष, दो वर्ष, तीन वर्ष एवं ६ वर्षके मध्यमें ही उन-उनके शिष्यगण क्रमशः मुक्ति-पदको प्राप्त हो चुके थे ॥१२४१-१२४२॥

विशेषार्थ : —**ऋषभादिकोंके शिष्योंकी मुक्ति परम्पराका प्रारम्भ**—

ऋषभादि सोलह तीर्थंकरोंके शिष्यगण केवलज्ञान उत्पन्न होनेके दिनसे ही मोक्ष-सम्पदाको प्राप्त करने लगे । कुन्थुनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ और मुनिसुव्रतनाथ तीर्थंकरोंके शिष्यगण क्रमशः केवलज्ञान होनेके एक माह, दो माह, तीन माह और छह माहके उपरान्त तथा नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और वीर जिनेन्द्रके शिष्य क्रमशः केवलज्ञान होनेके एक वर्ष, दो वर्ष, तीन वर्ष एवं छह वर्षके पश्चात् मुक्ति पदको प्राप्त होने लगे ।

(तालिका ३० पृष्ठ ३६५ पर देखिये)

ऋषभादिकोंके सौधर्मादिकों को प्राप्त हुए शिष्योंकी संख्या—

सोहम्मादिय - उवरिम - गेवज्जा जाव उवगदा सग्गं ।
उसहादीणं सिस्सा, ताण पमाणं परूवेमो ॥१२४३॥

अर्थ :—ऋषभादिक जिनेन्द्रोंके जो मुनि (शिष्य) सौधर्मसे लेकर ऊर्ध्वग्रैवेयक पर्यन्त स्वर्गको प्राप्त हुए हैं, उनके प्रमाणका प्ररूपण करता हूँ ॥१२४३॥

तालिका : ३०

योग निवृत्तिकाल, आसन एवं अनुबद्ध केवली आदिकों का प्रमाण गा० १२२०-१२४२

क्र. संख्या	योग निवृत्ति काल गा० १२२०	मुक्त होने के आसन गा० १२२१	अनुबद्ध केवलियों का प्रमाण १२२३-११२४	प्रकारान्त से अनु.केवलियों का प्रमाण गा० १२२५	अनुत्तर वि० उत्पन्न होने वालों का प्रमाण १२२६-१२२८	मुक्तिप्राप्त यतिगणों की की संख्या १२२९-१२४०	शिष्यों की मुक्तिप्राप्ति का प्रारम्भ गा० काल १२४१-१२४२
१	१४ दिन पूर्व	पल्यंकासन	८४	१००	२०००००	६०९००	प्रथम दिन से
२	१ मास ”	कायोत्सर्ग	८४	१००	२०००००	७७१००	” ” ”
३	१ ” ”	”	८४	१००	२०००००	१७०१००	” ” ”
४	१ ” ”	”	८४	१००	१२०००	२८०१००	” ” ”
५	१ ” ”	”	८४	१००	१२०००	३०१६००	” ” ”
६	१ ” ”	”	८४	१००	१२०००	३१४०००	” ” ”
७	१ ” ”	”	८४	१००	१२०००	२८५६००	” ” ”
८	१ ” ”	”	८४	९०	१२०००	२३४०००	” ” ”
९	१ ” ”	”	८४	९०	११०००	१७९६००	” ” ”
१०	१ ” ”	”	८४	९०	११०००	८०६००	” ” ”
११	१ ” ”	”	७२	९०	११०००	६५६००	” ” ”
१२	१ ” ”	पल्यंकासन	४४	८४	११०००	५४६००	” ” ”
१३	१ ” ”	कायोत्सर्ग	४०	४०	११०००	५१३००	” ” ”
१४	१ ” ”	”	३६	३६	१००००	५१०००	” ” ”
१५	१ ” ”	”	३२	३२	१००००	४९७००	” ” ”
१६	१ ” ”	”	२८	२८	१००००	४८४००	” ” ”
१७	१ ” ”	”	२४	२४	१००००	४६८००	१ मास बाद
१८	१ ” ”	”	२०	२०	१००००	३७२००	२ मास बाद
१९	१ ” ”	”	१६	१६	८८००	२८८००	३ मास बाद
२०	१ ” ”	”	१२	१२	८८००	१९२०	६ मास बाद
२१	१ ” ”	”	८	८	८८००	९६००	१ वर्ष बाद
२२	१ ” ”	पल्यंकासन	४	४	८८००	८०००	२ वर्ष बाद
२३	१ ” ”	कायोत्सर्ग	३	३	८८००	६२००	३ वर्ष बाद
२४	२ दिन पूर्व	”	३	३	८८००	४४००	६ वर्ष बाद

इगि-सय तिण्णि-सहस्सा, णव-सय-अब्भहिय-दो-सहस्साणि ।
णव-सय-णवय-सहस्सा, णव-सय-संजुत्त-सग-सहस्साणि ॥१२४४॥

। ३१०० । २९०० । ९९०० । ७९०० ।

चउ-सय-छ-सहस्साणि, चाल-सया दो सहस्स चारि सया ।
चाल-सया पत्तेक्कं, चारि-सदेण[1] हि य णव अड सहस्सा ॥१२४५॥

६४०० । ४००० । २४०० । ४००० । ९४०० । ८४०० ।

चउ-सय-सत्त-सहस्सा, चउ-सय-अदिरित्त-छस्सहस्साणि ।
सग-सय-संखा-समहिय - पंच - सहस्सा पण - सहस्सा ॥१२४६॥

। ७४०० । ६४०० । ५७०० । ५००० ।

तिय-सय-चउस्सहस्सा, छस्सय-संजुत्त-तिय-सहस्साणि ।
दो-सय-जुद-ति-सहस्सा, अट्ठ-सयब्भहिय-दो-सहस्साणि ॥१२४७॥

४३०० । ३६०० । ३२०० । २८०० ।

चउ-सद-जुद-दु-सहस्सा, दु सहस्सा चेव सोलस-सयाणि ।
बारस - सया सहस्सं, अट्ठ - सयाणि जहा कमसो ॥१२४८॥

२४०० । २००० । १६०० । १२०० । १००० । ८०० ।

अर्थ :—तीन हजार एकसौ, नौसौ अधिक दो हजार (२९००), नौ हजार नौ सौ, सात हजार नौ सौ, छह हजार चार सौ चार हजार, दो हजार चार सौ, चार हजार, चारसौके साथ नौ हजार और चारसौ के साथ आठ हजार (९४००, ८४००), सात हजार चारसौ, चारसौ अधिक छह हजार, सातसौ संख्यासे अधिक पाँच हजार, पाँच हजार, चार हजार तीन सौ, छहसौ सहित तीन हजार, दो सौ सहित तीन हजार, आठ सौ अधिक दो हजार, चारसौ युक्त दो हजार, दो हजार, सोलहसौ, बारहसौ, एक हजार और आठ सौ, इस प्रकार क्रमशः ऋषभादिक चौबीस तीर्थंकरोंके ये शिष्य मुनि सौधर्मादिकको प्राप्त हुए ॥१२४३-१२४८॥

---

१. ब. उ. चारिसहस्सा पण सहस्सा ।

भाव-श्रमणोंकी संख्या—

लक्खं पंच-सहस्सा, अट्ठ-सयाणि[1] पि मिलिद-परिमाणं ।
विणय-सुद-णियम - संजम - भरिदाणं भाव - समणाणं ।।१२४६।।

। १०५८०० ।

अर्थ :—विनय, श्रुत, नियम एवं संयमसे परिपूर्ण इन सब भाव मुनियोंका सम्मिलित प्रमाण एक लाख, पांच हजार आठ सौ होता है ।।१२४६।।

विशेषार्थ :—प्रत्येक तीर्थंकरके ऋषियोंकी जो संख्या गा० ११०३-११०८ में बताई गई है वह सात गणोंमें विभक्त है । जिसकी तालिका गाथा संख्या ११७६ के बाद अंकित है ।

ऋषियोंकी यह संख्या सौधर्म से ऊर्ध्वग्रैवेयक, अनुत्तर और मोक्ष गमनकी अपेक्षा तीन भागोंमें विभक्त है । इनमें मोक्ष जाने वाले और अनुत्तर विमानोंमें उत्पन्न होने वाले तो भाव-ऋषि (श्रमण) थे ही किन्तु सौधर्मसे ऊर्ध्वग्रैवेयक तक जाने वाले ऋषि भी भाव श्रमण ही थे । यह सूचित करनेके लिए ही गाथा संख्या १२४६ में भावश्रमणोंका प्रमाण पृथक् दर्शाया गया है ।

(तालिका ३१ पृष्ठ ३६८ पर देखिये)

---

१. द. ब. य. सयाणं ।

तालिका : ३१ **ऋषभादि तीर्थंकरों के स्वर्ग और मोक्ष-प्राप्त शिष्यों की संख्या**

क्र०	नाम	सौधर्मसे ऊर्ध्वग्रै० गा. १२४४-१२४८	अनुत्तरोत्पन्न गा. १२२६-१२२८	मोक्ष-प्राप्त गा. १२२९-१२४०	कुल योग गा. ११०३-११०८
१	ऋषभनाथ	३१००+	२००००+	६०९००=	८४०००
२	अजितनाथ	२९००	२००००	७७१००=	१०००००
३	सम्भवनाथ	९९००	२००००	१७०१००=	२०००००
४	अभिनन्दनजी	७९००	१२०००	२८०१००=	३०००००
५	सुमतिनाथ	६४००	१२०००	३०१६००=	३२००००
६	पद्मप्रभु	४०००	१२०००	३१४०००=	३३००००
७	सुपार्श्वनाथ	२४००	१२०००	२८५६००=	३०००००
८	चन्द्रप्रभु	४०००	१२०००	२३४०००=	२५००००
९	पुष्पदन्त	९४००	११०००	१७९६००=	२०००००
१०	शीतलनाथ	८४००	११०००	८०६००=	१०००००
११	श्रेयांसनाथ	७४००	११०००	६५६००=	८४०००
१२	वासुपूज्य	६४००	११०००	५४६००=	७२०००
१३	विमलनाथ	५७००	११०००	५१३००=	६८०००
१४	अनन्तनाथ	५०००	१००००	५१०००=	६६०००
१५	धर्मनाथ	४३००	१००००	४९७००=	६४०००
१६	शान्तिनाथ	३६००	१००००	४८४००=	६२०००
१७	कुन्थुनाथ	३२००	१००००	४६८००=	६००००
१८	अरनाथ	२८००	१००००	३७२००=	५००००
१९	मल्लिनाथ	२४००	८८००	२८८००=	४००००
२०	मुनिसुव्रत	२०००	८८००	१९२००=	३००००
२१	नमिनाथ	१६००	८८००	९६००=	२००००
२२	नेमिनाथ	१२००	८८००	८०००=	१८०००
२३	पार्श्वनाथ	१०००	८८००	६२००=	१६०००
२४	वीरनाथ	८००+	८८०० +	४४००=	१४०००
	योग	१०५८००+	२७७८००+	२४६४४००=	२८४८०००

ऋषभनाथ और वीर जिनेन्द्रका सिद्धि-काल—

तिय-वासा[1] अड-मासा, पक्खं तह तदिय-काल-अवसेसे ।
सिद्धो उसह - जिणिंदो, वीरो तुरियस्स तेत्तिए सेसे ।।१२५०।।

। वा ३ । मा ८ । प १ । वा ३ । मा ८ । प १ ।

अर्थ :—ऋषभजिनेन्द्र तृतीयकालमें और वीर जिनेन्द्र चतुर्थकालमें तीन वर्ष, आठ मास और एक पक्ष अवशिष्ट रहनेपर सिद्ध पदको प्राप्त हुए ।।१२५०।।

विशेषार्थ :—गाथा संख्या ११८६ में ऋषभजिनेन्द्र को मोक्ष-तिथि माघ कृष्णा चतुर्दशी बताई गई है और यहाँ गा० १२५० में कहा गया है कि तृतीयकालके ३ वर्ष ८½ माह शेष रहने पर ऋषभदेव मोक्ष गये । युगका प्रारम्भ श्रावण कृष्णा प्रतिपदासे होता है और माघ कृ० चतुर्दशीसे श्रावण कृ० प्रतिपदा तक ५½ माह ही होते हैं । जो गा० १२५० की प्ररूपणाके बाधक हैं । यदि ऋषभनाथकी निर्वाण तिथि कार्तिक कृष्णा अमावस्या होती तो गा० १२५० का कथन यथार्थ बैठ सकता है । यह विषय विचारणीय है ।

ऋषभादि-तीर्थंकरोंके मुक्त होनेका अन्तर काल—

सिद्धिं गदम्मि उसहे, सायर - कोडीण पण्ण - लक्खेसुं ।
बोलीणेसुं अजियो, णिस्सेयस - संपयं [2]पत्तो ।।१२५१।।

। सा ५० ल को ।

अर्थ :—ऋषभजिनेन्द्रके मुक्त हो जानेके पचास लाख करोड़ सागर बाद अजितनाथ तीर्थंकरने निःश्रेयस-सम्पदाको प्राप्त किया ।।१२५१।।

उवहीसु तीस[3] दस-णव-लक्खेसुं कोडि-लक्ख-पहवेसुं[4] ।
तत्तो कमेण संभव - णंदण - सुमई गदा सिद्धिं ।।१२५२।।

। सा ३० ल को । सा १० ल को । सा ९ ल को ।

अर्थ :—इसके आगे तीस लाख करोड, दस लाख करोड़ और नौ लाख करोड सागरोंके व्यतीत हो जानेपर क्रमशः सम्भव, अभिनन्दन और सुमतिनाथ मोक्ष गये ।।१२५२।।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. वासो । २. द. ब. क. ज. उ. पत्ता । ३. द. ब. ज. य. उ. तीसं । ४. द. ब. क. ज. य. उ पहुदेसु ।

उवहि-उवमाण णउदी, णवसु सहस्सेसु कोडि-[1]पहुवेसु ।
तत्तो गदेसु कमसो, सिद्धा पउमप्पह[2] - सुपासा ।।१२५३।।

सा ९०००० को । सा ९००० को ।

अर्थ :—इसके पश्चात् नब्बे हजार करोड़ और नौ हजार करोड़ सागरोंके व्यतीत हो जाने पर क्रमशः पद्मप्रभ एवं सुपार्श्वनाथ तीर्थंकर सिद्ध हुए ।।१२५३।।

णव-सय-णउदि-णवेसुं, कोडि - हदेसुं समुद्द - उवमाणे ।
जादेसु[3] तदो सिद्धा, चंदप्पह - सुविहि - सीयलया[4] ।।१२५४।।

सा ९०० को । सा ९० को । सा ९ को ।

अर्थ :—इसके पश्चात् एक करोड़से गुणित नौसौ अर्थात् नौसौ करोड़ सागर, नब्बे करोड़ सागर और नौ करोड़ सागर व्यतीत हो जानेपर क्रमशः चन्द्रप्रभ, सुविधिनाथ और शीतलनाथ जिनेन्द्र सिद्ध हुए ।।१२५४।।

छब्बीस-सहस्साहिय-छ[5]-सट्ठि-लक्खेहि वस्स सायर-सएण ।
ऊणम्मि कोडि - सायर - काले सिद्धो य सेयंसो ।।१२५५।।

सा १ को रिण । सा १०० धरण ६६२६००० व ।

अर्थ :—छ्यासठ लाख छब्बीस हजार (६६२६००० वर्ष) और सौ सागर कम एक करोड़ सागर प्रमाण कालके चले जानेपर भगवान् श्रेयांसनाथ सिद्ध हुए ।।१२५५।।

चउवण्ण-तीस-णव-चउ - सायर - उवमेसु तह अदीदेसु ।
सिद्धो य वासुपुज्जो, कमेण विमलो अणंत - धम्मा[6] य ।।१२५६।।

। ५४ । ३० । ९ । ४ ।

अर्थ :—पश्चात् चौवन, तीस, नौ और चार सागरोपमोंके व्यतीत हो जाने पर क्रमशः वासुपूज्य, विमलनाथ, अनन्तनाथ और धर्मनाथ तीर्थंकर सिद्ध हुए ।।१२५६।।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. पहुवेसुं । २. द. ब. क. ज. य. उ. पउमप्पहा सुपासा य । ३. द. ब. क. ज. य. उ.जादे स । ४. द. ब. क. ज. उ. सुहहसी । ५. ब. उ. छासट्ठि, क.वासट्ठि । ६. ब. क. ज. य. उ.धम्मो य ।

तिय-सागरोपमेसुं, ति-चरण-पल्लोरिणवेसु संति-जिणो ।
पलिदोवमस्स अद्धे, तत्तो सिद्धि गदो कुंथू ॥१२५७॥

। सा ३ रिण प $\frac{3}{4}$ । कुं प $\frac{1}{2}$ ।

अर्थ :—इसके पश्चात् पौन पल्य कम तीन सागरोपमोंके व्यतीत हो जानेपर शान्तिनाथ जिनेन्द्र एवं फिर अर्धपल्य बीत जानेपर कुन्थु जिनेन्द्र मुक्तिको प्राप्त हुए ॥१२५७॥

पलिदोवमस्स पादे, इगि-कोडि-सहस्स-वस्स-परिहीणे ।
अरदेवो मल्लिजिणो, कोडि - सहस्सम्मि वासाणं ॥१२५८॥

अ प $\frac{1}{4}$ रिण वस्स १००० को । मल्लि वस्स १००० को ।

अर्थ :—पश्चात् एक हजार करोड़ वर्ष कम पाव पल्योपम व्यतीत हो जाने पर अरनाथ और एक हजार करोड़ वर्षोंके बाद मल्लिनाथ मोक्ष गए ॥१२५८॥

चउवण्ण - छक्क - पंचसु, लक्खेसुं वयगदेसु वासाणं ।
कमसो सिद्धि पत्ता[1], सुव्वय-णमि-णेमिजिण-णाहा[2] ॥१२५९॥

। वास ५४ ल । व ६ ल । व ५ ल ।

अर्थ :—इसके पश्चात् चौवन लाख, छह लाख और पाँच लाख वर्षोंके व्यतीत हो जाने पर क्रमशः मुनिसुव्रतनाथ, नमिनाथ और नेमिनाथ जिनेन्द्र मुक्तिको प्राप्त हुए ॥१२५९॥

तेसीदि - सहस्सेसुं, पण्णाधिय - सग - सएसु जादेसुं ।
तत्तो पासो सिद्धो, पण्णब्भहियम्मि दो - सए वीरो ॥१२६०॥

व ८३७५० । व २५० ।

। मोक्खंतरं गदं ।

अर्थ :—इसके पश्चात् तेरासी हजार सातसौ पचास वर्ष व्यतीत हो जानेपर पार्श्वनाथ और दो सौ पचास वर्ष व्यतीत हो जानेपर वीर जिनेन्द्र मोक्ष गये ॥१२६०॥

। मोक्षके अन्तराल कालका कथन समाप्त हुआ ।

---

१. द. ब क ज. य. उ. पत्तो । २. द. ब. क. ज. य. उ. जिणणाहं ।

ऋषभादिक-जिनेन्द्रोंका तीर्थप्रवर्तन काल—

पुव्वंगब्भहियाणि, सायर-उवमाण - कोडि - लक्खाणि ।
पण्णास तित्थवट्टण - कालो उसहस्स णिद्दिट्ठो[1] ॥१२६१॥

सा ५० ल को । पुव्वंग १ ।

अर्थ :—भगवान् ऋषभदेवका तीर्थप्रवर्तन-काल एक पूर्वाङ्ग अधिक पचास लाख करोड़ सागर-प्रमाण कहा गया है ॥१२६१॥

पुव्वंग-तय-जुदाइं, समुद्द - उवमाण कोडि - लक्खाणि ।
तीसं चिय सो कालो, अजिय - जिणिंदस्स णादव्वो ॥१२६२॥

सा ३० ल को । पुव्वंग ३ ।

अर्थ :—अजितनाथ जिनेन्द्रका तीर्थ-प्रवर्तनकाल तीन पूर्वांग सहित तीस लाख करोड़ सागरोपम-प्रमाण जानना चाहिए ॥१२६२॥

चउ-पुव्वंग-जुदाइं, समुद्द - उवमाण कोडि - लक्खाणि ।
दस - मेत्ताइं भणिदो, संभव - सामिस्स सो कालो ॥१२६३॥

सा १० ल को । पुव्वंग ४ ।

अर्थ :—सम्भवनाथ स्वामीका वह काल चार पूर्वाङ्ग सहित दस लाख करोड़ सागरोपम-प्रमाण कहा गया है ॥१२६३॥

चउ-पुव्वंग - जुदाइं, वारिधि-उवमाण-कोडि-लक्खाणि ।
णव - मेत्ताणि कहिदो, णंदण - सामिस्स सो समओ ॥१२६४॥

सा ९ ल को । पुव्वंग ४ ।

अर्थ :—अभिनन्दन स्वामीका वह काल चार पूर्वाङ्ग सहित नौ लाख करोड़ सागरोपम-प्रमाण कहा गया है ॥१२६४॥

---

१. द ब ज. उ. णिद्दिट्ठा ।

चउ - पुव्वंगब्भहिया, पयोहि-उवमाण-णउदि-मेत्ताणं ।
कोडि-सहस्सा हि पुढं, सो समओ सुमइ - सामिस्स ।।१२६५।।

सा ९०००० को । पुव्वंग ४ ।

अर्थ :—सुमतिनाथ स्वामीका वह काल चार पूर्वाङ्ग सहित नब्बै हजार करोड़ सागरोपम-प्रमाण कहा गया है ।।१२६५।।

चउ-पुव्वंगब्भहिया, णीरहि-उवमा सहस्स-णव-कोडी ।
तित्थ - पयट्टण - कालो, पउमप्पह - जिणवरिंदस्स ।।१२६६।।

सा ९००० को । पुव्वंग ४ ।

अर्थ :—पद्मप्रभ जिनेन्द्रका तीर्थप्रवर्तनकाल चार पूर्वाङ्ग अधिक नौ हजार करोड़ सागरोपम प्रमाण है ।।१२६६।।

चउ-पुव्वंग-जुदाओ, णव-सय-कोडीओ जलहि-उवमाणं ।
धम्म - पयट्टण - कालप्पमाणमेदं सुपासस्स ।।१२६७।।

सा ९०० को । पुव्वग ४ ।

अर्थ :—सुपार्श्वनाथ तीर्थंकरके धर्मप्रवर्तनकालका प्रमाण चार पूर्वाङ्ग सहित नौ सौ करोड़ सागरोपम प्रमाण है ।।१२६७।।

चउ-पुव्वंग-जुदाओ, रयणायर-उवम-णउदि-कोडीओ ।
णिस्सेय - पय - पयट्टण - कालो चंदप्पह - जिणस्स ।।१२६८।।

सा ९० को । पुव्वंग ४ ।

अर्थ :—चन्द्रप्रभ जिनेन्द्रका निःश्रेयस-पद-प्रवर्तनकाल चार पूर्वाङ्ग सहित नब्बै करोड़ सागरोपम-प्रमाण है ।।१२६८।।

अडवीस-पुव्वअंगाहिय - पल्ल - चउत्थभाग - हीणाओ ।
मयरायर - उवमाणं, णव - कोडीओ समहिआओ ।।१२६९।।

सा=९ को=रिण प ¼ पुव्वंग २८ ।

अदिरेगस्स पमाणं, पुव्वाणं लक्खमेक्क - परिमाणं ।
मोक्खस्सेणि[1] - पयट्टण - कालो सिरिपुप्फदंतस्स ॥१२७०॥

। धणं पुव्व १ ल ।

अर्थ :—श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्रका मोक्षमार्ग-प्रवर्तनकाल अट्ठाईस पूर्वाङ्ग अधिक पल्यके चतुर्थभागसे हीन नौ करोड़ सागरोपमोंसे अधिक है। इस अधिक कालका प्रमाण एक लाख पूर्व है ॥१२६९-१२७०॥

पलिदोवमद्ध-समहिय-तोयहि-उवमाण एक्क-सय-होणा ।
रयणायरुवम - कोडी, सीयलदेवस्स अदिरित्ता ॥१२७१॥

सा १ को रिण सा १०० । प $\frac{1}{2}$ ।

अदिरेगस्स पमाणं, पणुवीस - सहस्स होंति पुव्वाणि ।
छव्वीस सहस्साहिय-वच्छर-छावट्ठि-लक्ख - परिहीणा ॥१२७२॥

धणं पुव्वाणि २५००० । रिण व ६६२६००० ।

अर्थ :—शीतलनाथ जिनेन्द्रका तीर्थ-प्रवर्तनकाल अर्ध-पल्योपम और एक सौ सागर कम एक करोड़ सागरोपम प्रमाण कालसे अतिरिक्त है। इस अतिरिक्त कालका प्रमाण छ्यासठ लाख छब्बीस हजार वर्ष कम पच्चीस हजार पूर्व है ॥१२७१-१२७२॥

इगिवीस-लक्ख-वच्छर-विरहिद-पल्लस्स ति-चरणेणूणा ।
चउवण्ण-उवहि-उवमा, सेयंस-जिणस्स तित्थ - कत्तित्तं ॥१२७३॥

सा ५४ वा २१ ल । रिण प $\frac{3}{4}$ ।

अर्थ :—श्रेयांस जिनेन्द्रका तीर्थ-कर्तृत्वकाल इक्कीस लाख वर्ष कम एक पल्यके तीन चतुर्थांशसे रहित चौवन सागरोपम-प्रमाण है ॥१२७३॥

चउवण्ण-लक्ख-वच्छर-ऊणिय-पल्लेण विरहिदा होंति ।
तीस महण्णव - उवमा, सो कालो वासुपुज्जस्स ॥१२७४॥

। सा ३० व ५४ ल । रिण प १ ।

---

१. द. मोक्खस्सेण ।

अर्थ :—वासुपूज्यदेवका वह काल चौवन लाख वर्ष कम एक पल्यसे रहित तीस सागरोपम प्रमाण है ॥१२७४॥

पण्णरस-लक्ख-वच्छर-विरहिव-पल्लस्स ति - चरणेणूणा ।
णव - वारिहि - उवमाणा, सो कालो विमलणाहस्स ॥१२७५॥

। सा ९ व १५ ल । रिण प $\frac{3}{4}$ ।

अर्थ :—विमलनाथ तीर्थंकरका वह काल पन्द्रह लाख वर्ष कम पल्यके तीन चतुर्थांशसे हीन नौ सागरोपम-प्रमाण है ॥१२७५॥

पण्णास - सहस्साहिय - सग- लक्खेणूण-पल्ल-दल-मेसं ।
विरहिव - चउरो सायर - उवमाणि अणंत - सामिस्स ॥१२७६॥

। सा ४ व ७५०००० रिण प $\frac{1}{2}$ ।

अर्थ :—अनन्तनाथ स्वामीका तीर्थ-प्रवर्तनकाल सात लाख पचास हजार वर्ष कम अर्ध-पल्य-से रहित चार सागरोपम-प्रमाण है ॥१२७६॥

पण्णास-सहस्साहिय - दु-लक्ख - वासूण-पल्ल-परिहीणा ।
तिण्णि महण्णव-उवमा, धम्मे [1]धम्मोवदेसणा - कालो ॥१२७७॥

सा ३ व २५०००० रिण प १ ।

अर्थ :—धर्मनाथ स्वामीके धर्मोपदेशका काल दो लाख पचास हजार वर्ष कम एक पल्यसे हीन तीन सागरोपम-प्रमाण है ॥१२७७॥

बारस - सयाणि पण्णाहियाणि संवच्छराणि पल्लद्धं ।
मोक्खोवदेस - कालो, संति - जिणंदस्स णिद्दिट्ठं ॥१२७८॥

प $\frac{1}{2}$ व १२५० ।

अर्थ :—शान्तिनाथ जिनेन्द्रका मोक्षोपदेशकाल अर्धपल्य और बारहसौ पचास वर्ष-प्रमाण कहा गया है ॥१२७८॥

---

१. द. ब. क. ज य. उ धम्मोवदेसणो कालो ।

णभ-पण-दुग-सग-छक्क-ट्ठाणे णव-संख-वास - परिहीणा ।
पल्लस्स चउब्भागो, सो कालो कुंथुणाहस्स ।।१२७९।।

प ¼ रिण व ९९९९९९७२५० ।

अर्थ :—कुन्थुनाथ स्वामीका वह काल शून्य, पाँच, दो, सात और छह स्थानोंमें नौ, इन अङ्कोंसे निर्मित संख्या प्रमाण (९९९९९९७२५०) वर्षोंसे हीन पल्यके चतुर्थ भाग प्रमाण है ।।१२७९।।

कोडि-सहस्सा णव-सय-तेत्तीस-सहस्स-वरस-परिहीणा ।
णिव्वाण-पय-पयट्टण - काल - पमाणं अर - जिणस्स ।।१२८०।।

। ९९९९९६६१०० ।

अर्थ :—अरनाथ जिनेन्द्रके निर्वाण-पद-प्रवर्तनकालका प्रमाण तैतीस हजार नौसौ वर्ष कम एक हजार करोड़ वर्ष है ।।१२८०।।

पणवण्ण-लक्ख-वस्सा, बावण्ण-सहस्स-छस्सय-विहीणा ।
अपवग्ग-मग्ग[1]-पयडण - कालो सिरिमल्लि - सामिस्स ।।१२८१।।

वा ५४४७४०० ।

अर्थ :—श्रीमल्लिनाथ स्वामीका मोक्षमार्ग-प्रवर्तन-काल बावन हजार छहसौ वर्षोंसे रहित पचपन लाख वर्ष प्रमाण है ।।१२८१।।

पंच-सहस्स-जुदाणि, छ च्चिय संवच्छराणि लक्खाणि ।
णिस्सेय - पय - पयट्टण - कालो सुव्वय - जिणिंदस्स ।।१२८२।।

। वा ६०५००० ।

अर्थ :—मुनिसुव्रतजिनेन्द्रका निःश्रेयस-पद-प्रवर्तनकाल छह लाख पाँच हजार वर्ष प्रमाण है ।।१२८२।।

अडसय-एक्क-सहस्सब्भहिया संवच्छराण पण - लक्खा ।
तित्थावतार - वट्टण - काल - पमाणं णमि - जिणिंदस्स ।।१२८३।।

। व ५०१८०० ।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. सग्ग ।

अर्थ :—नमिनाथ जिनेन्द्रका तीर्थावतार-वर्तन-काल पाँच लाख एक हजार आठसौ वर्ष प्रमाण है ।।१२८३।।

चउरासीदि-सहस्सा, तिण्णि सया होंति बिगुण-चालीसा ।
वर-धम्म-पय - पयट्टण - कालो सिरिणेमि - णाहस्स ।।१२८४।।

व ८४३८० ।

अर्थ :—श्री नेमिनाथ जिनेशके धर्मपथ-प्रवर्तनका उत्कृष्ट काल चौरासी हजार तीनसौ और चालीसके दुगुने (८०) वर्ष प्रमाण है ।।१२८४।।

दोण्णि सया अडहत्तरि-जुत्ता वासाण पासणाहस्स ।
इगिवीस - सहस्साणि, दुदाल वीरस्स सो कालो ।।१२८५।।

वा २७८ । वास २१०४२ ।

अर्थ :—पार्श्वनाथस्वामीका वह तीर्थकाल दोसौ अठत्तर वर्ष और वीर भगवान्का इक्कीस हजार बयालीस वर्ष प्रमाण है ।।१२८५।।

तोडको[1]—

तित्थ - पयट्टण - काल - पमाणं,
दारुण - कम्म - विणास[2] **- ट्ठाणं ।**
जे णिसुणंति पढंति थुणंते,
ते अपवग्ग - सुहाइ लहंते ।।१२८६।।

अर्थ :—जो तीक्ष्ण-कर्मोंका नाश करनेवाले इस तीर्थप्रवर्तनकालके प्रमाणको सुनते हैं, पढ़ते हैं और स्तुति करते हैं, वे मोक्षसुखको प्राप्त करते हैं ।।१२८६।।

(तालिका : ३२ अगले पृष्ठ पर देखिए ।)

---

१. द. तोदिक, ब. क. उ. तोदक । २. द. ब. क. ज. य. उ. विणासणराणं ।

तालिका : ३२

मुक्तान्तर एवं तीर्थप्रवर्तनकाल

क्र०	तीर्थंकरों का निर्वाण अन्तरकाल	तीर्थप्रवर्तनकाल
१	ऋषभदेव की मुक्ति के	५० लाख कोटि सागर + १ पूर्वांग
२	५० लाख कोटि सागर बाद	३० लाख कोटि सागर + ३ पूर्वांग
३	३० लाख कोटि सागर	१० लाख कोटि सागर + ४ पूर्वांग
४	१० लाख कोटि सागर	९ लाख कोटि सागर + ४ पूर्वांग
५	९ लाख कोटि सागर	९०,००० कोटि सागर + ४ पूर्वांग
६	९०,००० कोटि सागर	९००० कोटि सागर + ४ पूर्वांग
७	९००० कोटि सागर	९०० कोटि सागर + ४ पूर्वांग
८	९०० कोटि सागर	९० कोटि सागर + ४ पूर्वांग
९	९० कोटि सागर	९ कोटी सागर–{(१/४ प. + २८ पूर्वांग) + १ ला पूर्व}
१०	९ कोटि सागर	१ को.सा.–{(१०० सा.+१/२ पल्य)+ (२५००० पूर्व-६६२६००० वर्ष)}
११	३३७३९०० सागर	(५४ सा. + २१ ला० वर्ष)-३/४ पल्य
१२	५४ सागर	(३० सा० + ५४ ला० वर्ष) – १ पल्य
१३	३० सागर	(९ सा० + १५ ला० वर्ष) – ३/४ पल्य
१४	९ सागर	(४ सा० + ७५०००० वर्ष) – १/२ पल्य
१५	४ सागर	(३ सा० + २५०००० वर्ष) – १ पल्य
१६	३ सागर– ३/४ पल्य	१/२ पल्य + १२५० वर्ष
१७	१/२ पल्य	१/४ पल्य–९९९९९९७२५० वर्ष
१८	१/४ पल्य-१०००००००००० वर्ष	९९९९९६६१०० वर्ष
१९	१०००००००००० वर्ष	५४४७४०० वर्ष
२०	५४००००० वर्ष	६०५००० वर्ष
२१	६००००० वर्ष	५०१८०० वर्ष
२२	५००००० वर्ष	८४३८० वर्ष
२३	८३७५० वर्ष	२७८ वर्ष
२४	२५० वर्ष बाद	२१०४२

दुषमसुषमा कालका प्रवेश—

उसह-जिणे णिव्वाणे, वास - तए अट्ठ - मास मासद्धे ।
वोलीणम्मि पविट्ठो, दुस्समसुसमो तुरिम - कालो ।।१२८७।।

वा ३, मा ८, दि १५ ।

अर्थ :—ऋषभजिनेन्द्रके मोक्ष-गमन पश्चात् तीन वर्ष, आठ मास और पन्द्रह दिन व्यतीत होनेपर दुषमसुषमा नामक चतुर्थकाल प्रविष्ट हुआ ।।१२८७।।

आयु आदिका प्रमाण—

तस्स य पढम - पएसे, कोडि पुव्वाणि आउ-उक्कस्सो ।
अडदाला पुट्ठट्ठी, पण - सय - पणुवीस - दंडया उदओ ।।१२८८।।

पु १ को । पु ४८ । उ द ५२५ ।

अर्थ :—उस चतुर्थकालके प्रथम प्रवेशमें उत्कृष्ट आयु एक पूर्वकोटि, पृष्ठ भागकी हड्डियां अड़तालीस और शरीरकी ऊँचाई पाँचसौ पच्चीस धनुष-प्रमाण थी ।।१२८८।।

धर्म-तीर्थकी व्युच्छित्ति—

उच्छण्णो सो धम्मो, सुविहि - प्पमुहेसु [1]सत्त-तित्थेसुं ।
सेसेसु सोलसेसुं, णिरंतरं धम्म - संताणं ।।१२८९।।

अर्थ :—सुविधिनाथको आदि लेकर (धर्मनाथ पर्यन्त) सात तीर्थोंमें उस धर्मकी व्युच्छित्ति हुई थी और शेष सोलह तीर्थोंमें धर्मकी परम्परा निरन्तर रही है ।।१२८९।।

पल्लस्स पादमद्धं, ति-चरण-पल्लं खु ति - चरणं अद्धं ।
पल्लस्स पाद - मेत्तं, वोच्छेदो धम्म - तित्थस्स ।।१२९०।।

प $\frac{१}{४}$ । प $\frac{१}{२}$ । प $\frac{३}{४}$ । प १ । प $\frac{३}{४}$ । प $\frac{१}{२}$ । प $\frac{१}{४}$ ।

अर्थ :—सात तीर्थोंमें क्रमशः पाव पल्य, अर्धपल्य, पौनपल्य, (एक) पल्य, पौन पल्य, अर्धपल्य और पाव पल्यप्रमाण धर्मतीर्थका विच्छेद रहा था ।।१२९०।।

---

१. द. संति, क. ज. य. उ. संत ।

हुंडावसप्पिणिस्स य, दोसेणं वेत्ति[1] सोत्ति विच्छेदे[2] ।
दिक्खाहिमुहाभावे, अत्थमिदो धम्म - वर - दीओ ॥१२९१॥

अर्थ :—हुण्डावसर्पिणी कालके दोषसे, वक्ताओं और श्रोताओंका विच्छेद होनेके कारण तथा दीक्षाके अभिमुख होने वालोंके अभावमें धर्म रूपी उत्तम दीपक अस्तमित हो गया था ॥१२९१॥

भक्तिमें आसक्त भरतादिक चक्रवर्तियोंका निर्देश—

$_1$भरहो $_2$सगरो $_3$मघवो, $_4$सणक्कुमारो य संति$_5$ कुंथु$_6$ $_7$अरो ।
कमसो सुभोम$_8$ $_9$पउमो[3], $_{10}$हरि-जयसेणा$_{11}$ य $_{12}$बम्हदत्तो य ॥१२९२॥

एदे बारस चक्की, पच्चक्ख - परोक्ख - वंदणासत्ता ।
णिब्भर - भत्ति - समग्गा, सव्वाणं तित्थ - कत्ताणं ॥१२९३॥

अर्थ :—भरत, सगर, मघवा, सनत्कुमार, शान्ति कुन्थु, अर, सुभौम, पद्म, हरिषेण, जयसेन और ब्रह्मदत्त, क्रमशः ये बारह चक्रवर्ती सर्व तीर्थङ्करोंकी प्रत्यक्ष एवं परोक्ष वन्दनामें आसक्त तथा अत्यन्त गाढ-भक्तिसे परिपूर्ण रहे हैं ॥१२९२-१२९३॥

तीर्थंकरोंसे चक्रवर्तियोंकी प्रत्यक्षता एवं परोक्षता—

रिसहेसरस्स भरहो, सगरो अजिएसरस्स पच्चक्खं ।
मघवा सणक्कुमारो, दो चक्की धम्म-संति-विच्चाले ॥१२९४॥

अह संति-कुंथु-अरजिण, तित्थयरा ते च चक्क-वट्टित्ते ।
एक्को सुभोम - चक्की, अर - मल्ली - अंतरालम्मि ॥१२९५॥

अह पउम - चक्कवट्टी, मल्ली-मुणिसुव्वयाण विच्चाले ।
सुव्वय - णमीण मज्झे, हरिसेणो णाम चक्कहरो ॥१२९६॥

जयसेण - चक्कवट्टी, णमि-णेमि-जिणाणमंतरालम्मि ।
तह बम्हदत्त - णामो, चक्कवई णेमि-पास-विच्चाले ॥१२९७॥

अर्थ :—भरत चक्रवर्ती ऋषभेश्वरके समक्ष, सगर चक्रवर्ती अजितेश्वरके समक्ष तथा मघवा और सनत्कुमार ये दो चक्रवर्ती धर्मनाथ एवं शान्तिनाथके अन्तरालमें हुए हैं । शान्तिनाथ,

१. द. ब. क. ज. य. उ. वत्ति । २. द. ब. क. ज. य. उ. विच्छेदो । ३. द. ब. क. ज. य. उ. पउमो ।

कुन्थुनाथ और अरनाथ, ये तीनों चक्रवर्ती तीर्थंकर भी थे। सुभौम चक्रवर्ती अरनाथ और मल्लिनाथ भगवान्‌के अन्तरालमें, पद्म चक्रवर्ती मल्लि और मुनिसुव्रतके अन्तरालमें, हरिषेण नामक चक्रधर मुनिसुव्रत और नमिनाथके मध्यकालमें, जयसेन चक्रवर्ती नमिनाथ और नेमिनाथ जिनके अन्तरालमें तथा ब्रह्मदत्त नामक चक्रवर्ती नेमिनाथ और पार्श्वनाथ तीर्थंकरके अन्तरालमें हुए हैं ॥१२९४-१२९७॥

तीर्थंकर एवं चक्रवर्तियोंके प्रत्यक्ष एवं परोक्षताको प्रदर्शित करनेवाली संदृष्टिका स्वरूप—

चोत्तीसाणं कोट्ठा, कादव्वा तिरिय - रूव - पंतीए ।
उड्ढेणं बे कोट्ठा, कादूणं पढम - कोट्ठेसुं ॥१२९८॥

पण्णरसेसु जिणिंदा, णिरंतरं दोसु सुण्णया तत्तो ।
तिण्णि जिणा दो सुण्णा[1], इगि जिण दो सुण्ण एक्क जिणो[2] ॥१२९९॥

दो सुण्णा[3] एक्क जिणो, इगि सुण्णो इगि जिणो य इगि सुण्णो ।
दोण्णि जिणा [4]इदि कोट्ठा, णिद्दिट्ठा तित्थ - कत्ताणं[5] ॥१३००॥

दो कोट्ठेसुं चक्की, सुण्णं तेरससु चक्किणो छक्के ।
सुण्ण तिय चक्कि सुण्णं, चक्की दो सुण्ण चक्कि [6]सुण्णो य ॥१३०१॥

चक्की दो सुण्णाइं, छक्खंड - वईण चक्कवट्टीणं ।
एदे कोट्ठा कमसो, संदिट्ठी एक्क - दो अंका ॥१३०२॥

१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
२	२	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

०	०	१	१	१	०	०	१	०	०	१	०	०
२	२	२	२	२	२	०	०	०	२	०	२	०

१	०	१	०	१	१
०	२	०	२	०	०

१. द. ब. क. ज. य. उ. सुण्णं । २. द. ब. क. ज. य. उ. जिणा । ३ द ब. क. ज. य. उ. सुण्णो । ४. द. ब. क. ज. य. उ. इगि । ५. द. कत्तोग । ६. द. ब. क. ज. य उ. सुण्णा । ७ द. ब. प्रत्योः प्रथमस्तन-कोष्ठेसु सर्वत्र २ स्थाने १ इति पाठः ।

अर्थ :—तिरछी पंक्तिके रूपमें चौंतीस कोठे और ऊर्ध्वरूपसे दो कोठे बनाकर इनमेंसे ऊपरके प्रथम पन्द्रह कोठोंमें निरन्तर तीर्थंकर इसके आगे दो कोठोंमें शून्य, तीन कोठोंमें तीर्थंकर, दोमें शून्य, एकमें तीर्थंकर, दोमें शून्य, एकमें तीर्थंकर, दोमें शून्य, एकमें तीर्थंकर, एक शून्य, एक तीर्थंकर, एक शून्य और दो तीर्थंकर, इस प्रकार ये तीर्थंकरोंके कोठे निर्दिष्ट किये गये हैं। इनसे नीचेके कोठोंमेंसे दो में चक्रवर्ती, तेरहमें शून्य, छहमें चक्रवर्ती, फिर तीन शून्य, चक्रवर्ती, शून्य, चक्रवर्ती, दो शून्य, चक्रवर्ती, शून्य, चक्रवर्ती और फिर दो शून्य, क्रमशः ये छह खण्डोंके अधिपति चक्रवर्तियोंके कोठे हैं। जिनमें संदृष्टिके लिए क्रमशः एक और दो के अङ्क ग्रहण किये गये हैं तथा शून्य अन्तराल का सूचक है ॥१२९८-१३०२॥

(संदृष्टि मूलमें देखिए)

भरतादिक चक्रवर्तियोंके शरीरकी ऊँचाई—

पंच सया पण्णाहिय - चउस्सया दोसु-हरिद-पणसीदी ।
दु - बिहित्ता चउसीदी, चालं पणतीस तीसं च ॥१३०३॥

दंड ५०० । ४५० । $\frac{८५}{२}$ । $\frac{८४}{२}$ । ४० । ३५ । ३० ।

अट्ठावीस दुवीसं, वीसं पण्णरस सत्त इय कमसो ।
दंडा चक्कहराणं, भरह - प्पमुहाण उस्सेहो ॥१३०४॥

२८ । २२ । २० । १५ । ७ ।

अर्थ :—भरतादिक चक्रवर्तियोंकी ऊँचाई क्रमशः पाँचसौ, पचास अधिक चारसौ (४५०), दोसे भाजित पचासी (४२½), दोसे भाजित चौरासी (४२), चालीस, पैंतीस, तीस, अट्ठाईस, बाईस, बीस, पन्द्रह और सात धनुष प्रमाण थी ॥१३०३-१३०४॥

चक्रवर्तियोंकी आयु आदिका प्रमाण कहने की प्रतिज्ञा—

आऊ कुमार-मंडलि-अरिजय-रज्जाण [1]संजम-ठिदीए ।
चक्कीण काल - माणं, वोच्छामि जहाणुपुव्वीए ॥१३०५॥

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. पज्जमविदीए ।

अर्थ :—अब मैं (श्री यतिवृषभाचार्य) अनुक्रमसे चक्रवर्तियोंकी आयु, कुमारकाल, मण्डलीककाल, दिग्विजय काल, राज्य काल और संयमकालका प्रमाण कहता हूँ ।।१३०५।।

चक्रवर्तियोंकी आयु—

चउरब्भहिया सीदी, बाहत्तरि पुव्वयाणि लक्खाणि ।
पंच तिय एक्क वच्छर-लक्खाणं पंच-णउदि चुलसीदी ।।१३०६।।

सट्ठी तीसं दस तिय, वास-सहस्साणि सत्त य सयाणि ।
कमसो भरहादीणं, चक्कीणं आउ - परिमाणं ।।१३०७।।

आउ पुव्व ८४ ल । पुव्व ७२ ल । वरिस ५ ल । ३ ल । १ ल । ९५००० । ८४००० ।
६०००० । ३०००० । १०००० । ३००० । ७०० ।

।। आऊ परिमाणं गदं ।।

अर्थ :—भरतादिक चक्रवर्तियोंकी आयुका प्रमाण क्रमशः चौरासीलाख पूर्व, बहत्तर लाख पूर्व, पाँच लाख वर्ष, तीन लाख वर्ष, एक लाख वर्ष, पंचानबै हजार, चौरासी हजार, साठ हजार, तीस हजार, दस हजार, तीन हजार और सातसौ वर्ष है ।।१३०६-१३०७।।

। आयु प्रमाण कालका कथन पूर्ण हुआ ।

कुमार-कालका प्रमाण—

सत्तत्तरि - लक्खाणि, पण्णास - सहस्सयाणि पुव्वाणं ।
पणुवीस - सहस्साइं, वासाणं ताइ - विगुणाइं ।।१३०८।।

पुव्व ७७ ल । पु ५०००० । वस्स २५००० । ५०००० ।

पणुवीस - सहस्साइं, तेवीस - सहस्स-सत्त - सय-पण्णा ।
इगिवीस - सहस्साणि, पंच - सहस्साणि पंच - सया ।।१३०९।।

२५००० । २३७५० । २१००० । ५००० । ५०० ।

पणुवीसाहिय-ति-सया, ति-सयाइं अट्ठवीस इय कमसो ।
भरहादिसु - चक्कीणं, कुमार - कालस्स परिमाणं ।।१३१०।।

३२५ । ३०० । २८ ।
। कुमार-कालं गदं ।

अर्थ :—भरतादिक चक्रवर्तियोंका कुमार-काल क्रमशः सतत्तर लाख पूर्व, पचास हजार पूर्व, पच्चीस हजार वर्ष, पचास हजार वर्ष, पच्चीस हजार वर्ष, तेईस हजार सात सौ पचास वर्ष, इक्कीस हजार वर्ष, पाँच हजार वर्ष, पाँचसौ वर्ष, तीन सौ पच्चीस वर्ष, तीनसौ वर्ष और अट्ठाईस वर्ष प्रमाण था ।।१३०८-१३१०।।

। कुमार-कालका कथन समाप्त हुआ ।

मण्डलीक-कालका प्रमाण—

एक्कं वास - सहस्सं, पण्णास - सहस्सयाणि पुव्वाणि ।
पणुवीस - सहस्साणि, पण्णास - सहस्साणि वासाणं ।।१३११।।

व १००० । पु ५०००० । व २५००० । ५०००० ।

पणुवीस - सहस्साणि, तेवीस-सहस्स-सत्त-सय-पण्णा ।
इगिवीस - सहस्साणि, पंच - सहस्साणि पंच - सया ।।१३१२।।

२५००० । २३७५० । २१००० । ५००० । ५००

पणुवीसाहिय-ति-सया, ति-सया छप्पण्ण इय-कमेण पुढं ।
मंडलि - काल - पमाणं, भरह - प्पमुहाण चक्कीणं ।।१३१३।।

३२५ । ३०० । ५६ ।

। मंडलिक-कालं गदं ।

अर्थ :—भरतादिक चक्रवर्तियोके मण्डलीक कालका पृथक्-पृथक् प्रमाण क्रमशः एक हजार वर्ष, पचास हजार पूर्व, पच्चीस हजार वर्ष, पचास हजार वर्ष, पच्चीस हजार वर्ष, तेईस हजार सातसौ पचास वर्ष, इक्कीस हजार वर्ष, पाँच हजार वर्ष, पाँचसौ वर्ष, तीनसौ पच्चीस वर्ष, तीन सौ वर्ष और ५६ वर्ष है ।।१३११-१३१३।।

। मण्डलीक-काल समाप्त हुआ ।

चक्ररत्नकी उपलब्धि एवं दिग्विजय प्रस्थान—

अह भरह-प्पमुहाणं, आयुध-सालासु भुवण - विम्हयरा ।
गद - जम्मंतर - कय - तव - बलेण उप्पज्जदे चक्कं ।।१३१४।।

अर्थ :—पूर्वजन्ममें किये गये तपके बलसे भरतादि चक्रवर्तियोंकी आयुधशालाओंमें लोकको आश्चर्य उत्पन्न करनेवाला चक्ररत्न उत्पन्न होता है ॥१३१४॥

चक्कुप्पत्ति - पहिट्ठा, पूजं कादूण जिणवरिंदाणं ।
पच्छा विजय - पयाणं, ते पुव्व - दिसाए कुव्वंति ॥१३१५॥

अर्थ :—चक्रकी उत्पत्तिसे अतिशय हर्षको प्राप्त हुए वे चक्रवर्ती जिनेन्द्रोंकी पूजा करके पश्चात् विजयके निमित्त पूर्व-दिशामें प्रयाण करते हैं ॥१३१५॥

सुरसिंधूए तीरं, परिकणं जंति पुव्व - दिब्भाए ।
मरुदेव - णाम - मण्णे, णो कालादो जावमुवजलहिं ॥१३१६॥

अर्थ :—वे (चक्रवर्ती) गङ्गानदीके तटका सहारा लेकर पूर्वदिशामें जाकर और वहाँ मरुदेव नामक देवको साधकर (वशमें करके) कुछ कालमें उपसमुद्र-पर्यन्त जाते हैं ॥१३१६॥

गंगा सम्बन्धी दिव्यवनमें पड़ाव—

अप्पविसिऊण गंगा - उववण - वेदीए तोरणद्दारे ।
उत्तर - मुहेण पविसिय, चउरंग - बलेण संजुत्ता ॥१३१७॥

गंतुं पुव्वाहिमुहं, दीओववणस्स वेदियादारे ।
सोवाणे चडिऊणं, गंगा - दारम्मि[1] गच्छंति ॥१३१८॥

अर्थ :—इसके आगे गङ्गानदी सम्बन्धी उपवन-वेदीमें प्रवेश न करके चतुरङ्गबलसे संयुक्त होते हुए वे चक्रवर्ती उत्तरद्वारसे तोरणद्वारमें प्रवेश करके पूर्वकी ओर जानेके लिए जम्बूद्वीप-सम्बन्धी उपवनवेदिकाके द्वारवाली सीढ़ियों पर चढ़कर गङ्गाद्वारमें होकर जाते हैं ॥१३१७-१३१८॥

गंतूणं लीलाए, तण्णिम्मग - रम्म - दिव्व - वण-मज्झे ।
पुव्वावर - आयामे, चउरंग - बलाणि अच्छंति ॥१३१९॥

अर्थ :—इसप्रकार लीलामात्रसे जाकर पूर्वसे पश्चिम पर्यन्त लम्बे नदी-सम्बन्धी रमणीय एवं दिव्य वनमें चतुरङ्गसेना सहित ठहर जाते हैं ॥१३१९॥

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. दारंति ।

जलस्तम्भिनी विद्याकी सिद्धि एवं समुद्र प्रवेश—

मंतीणं उवरोहे, जलथंभं साहयंति चक्कहरा।
दस-वर - तुरंग - धरिदे[1], अजिदंजय - णामधेय - रहे ॥१३२०॥

आरुहिऊणं गंगा - दारेणं पविसिदूण लवणुवहिं[2]।
बारस - जोयण - मेत्तं, सव्वे गच्छंति णो परदो ॥१३२१॥

अर्थ :—वहाँपर चक्रवर्ती मन्त्रियोंके आग्रहसे जलस्तम्भ (जलस्तम्भिनी) विद्या सिद्ध करते हैं। पुनः दस उत्तम घोड़ोंसे धारण किए गये अजितञ्जय नामक रथ पर चढ़कर और गङ्गा-द्वारसे प्रवेशकर वे सब लवणसमुद्रके तटानुसार बारह योजन प्रमाण जाते हैं, आगे नहीं ॥१३२०-१३२१॥

मागधदेवको वश करना—

मागहदेवस्स तदो, ओलगसालाए रयण-वर-कलसं।
विधंति सणामंकिद - बाणेण अमोघ - णामेण ॥१३२२॥

अर्थ :—फिर वहाँसे अपने नामसे अङ्कित अमोघ नामक बाण-द्वारा मागधदेवकी ओलग-शालाके रत्नमय उत्तम कलशको भेदते हैं ॥१३२२॥

सोदूण सर - णिणादं, [3]मागहदेवो वि कोहमुव्वहइ।
ताहे[4] तस्स य मंती, वारंते महुर - सद्देण ॥१३२३॥

अर्थ :– बाणके शब्दको सुनकर मागधदेव भी क्रोध धारण करता है किन्तु उस समय उसके मन्त्री उसे मधुर-शब्दों द्वारा (ऐसा करनेसे) रोकते हैं ॥१३२३॥

रयणमय - पडलिहाए, कंडं[5] घेत्तूण कुंडलादिं च।
दत्ता मागहदेवो[6], पणमइ चक्कीण पयमूले ॥१३२४॥

अर्थ :—तब वह मागधदेव रत्नमय पटलिका (पिटारी) में उस बाण और कुण्डलादिकको लेकर चक्रवर्तीको देता है और उनके चरणोंमें प्रणाम करता है ॥१३२४॥

---

१. क. ज. य. उ. धरिदं। २. द. ज. य. प्रवणुवहिं, क. प्रवउवहिं। उ. प्रणुउवहिं। ३. द. ब. क. ज. य. उ. मागधदेवा। ४. द. ब. क. ज. य. उ. तादे। ५. द. ब. क. उ. कद्दं। ६. द. ब. क. ज. य. उ. मागधदेवा।

ते तस्स अभय - वयणं, दादूण य मागहेण सह सव्वे ।
पविसिय [1]खंधावारं, विजय - पयाणाणि कुव्वंति ।।१३२५।।

अर्थ :—वे उसे अभय-वचन देकर और (उसी) मागधदेवके साथ वे सब कटकमें प्रवेश-कर विजयके लिए प्रस्थान करते हैं ।।१३२५।।

वरतनु एवं प्रभासदेवको वश करना—

तत्तो उववण - मज्झे, दीवस्स पदक्खिणेण ते जंति ।
जंबूदीवस्स पुढं, दक्खिण - वर - वइजयंत - दारंतं ।।१३२६।।

अर्थ :—फिर वे वहाँसे उपवनके बीचमें होकर द्वीपके प्रदक्षिणारूपसे जम्बूद्वीपके वैजयन्त-नामक उत्तम दक्षिणद्वारके समीप तक जाते हैं ।।१३२६।।

दारम्मि वइजयंते, पविसिय [2]लवणंबुहिम्मि चक्कहरा ।
पुव्वं व कुणंति वसं, वरतणु णामंकिय - सरेणं ।।१३२७।।

अर्थ :—वे चक्रवर्ती वैजयन्त द्वारसे लवण समुद्रमें प्रवेश कर पूर्वके सदृश ही अपने नामांकित बाणसे वरतनु नामक देवको वशमें करते हैं ।।१३२७।।

तत्तो आगंतूणं, खंधावारम्मि पविसिऊणं च ।
दीवोववण - प्पहेणं, गच्छंते सिंधु - वण - वेदिं ।।१३२८।।

अर्थ :—पुनः वहाँसे आकर और कटकमें प्रवेश कर द्वीपोपवनके मार्गसे सिन्धु नदी सम्बन्धी वन-वेदिका की ओर जाते हैं ।।१३२८।।

तीए [3]तोरण-दारं, पविसिय पुव्वं व लवण-जलरासिं ।
सिंधु - णदीए दारं, पविसिय साहंति ते पभाससुरं ।।१३२९।।

अर्थ :—उसके तोरण-द्वारमें प्रवेशकर और सिन्धु नदीके द्वारसे लवण समुद्र की जलराशिमें भीतर आकर वे चक्रवर्ती प्रभासदेवको सिद्ध करते हैं ।।१३२९।।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. खंधावारं । २. द. लवणंबुहम्मि । ३. द. ब. क. ज. य. उ. तोरणेहिं दारं ।

वैताढ्य देव एवं विद्याधरों पर विजय—

तत्तो पुव्वाहिमुहा, दीवोववणस्स दार - सोवाणं ।
चडिदूणं वण - मज्झे, चलंति उवजलहि - सीमंतं ॥१३३०॥

अर्थ :—वहाँसे पूर्वाभिमुख होकर द्वीपोपवनके द्वारकी सीढियोंपर चढ़कर वनके मध्यमेंसे उपसमुद्रकी सीमा तक जाते हैं ॥१३३०॥

तप्पणिधि-वेदि-दारे, पंचंग-बलाणि ताणि णिस्सरिया ।
सरि - तीरेण चलंते, वेयड्ढगिरिस्स जाव वण - वेदिं ॥१३३१॥

अर्थ :—समुद्रके समीपकी वेदीके द्वारसे वे पंचाङ्ग बल निकलकर विजयार्धगिरिकी वन-वेदिका तक नदीके किनारे-किनारे जाते हैं ॥१३३१॥

तत्तो तव्वण - वेदिं, चडिदूणं जंति पुव्व - विब्भाए ।
तग्गिरि-मज्झिम-कूड-प्पणिधिम्मि वेदि-दार-परियंतं ॥१३३२॥

अर्थ :—फिर इसके आगे उस वन-वेदीका आश्रय करके पूर्व-दिशामें उस पर्वतके मध्यम-कूटके समीप वेदी-द्वार-पर्यन्त जाते हैं ॥१३३२॥

तद्दारेणं पविसिय, वण - मज्झे जंति उत्तराहिमुहा ।
रजदाचल - तड - वेदिं, पाविय तीए वि चेट्ठंति ॥१३३३॥

अर्थ :—पश्चात् उस वेदी-द्वारसे प्रविष्ट होकर वनके मध्यमेंसे उत्तरकी ओर गमन करते हैं और विजयार्धके तटकी वेदी पाकर वहीं पर ठहर जाते हैं ॥१३३३॥

ताहे[1] तग्गिरि - मज्झिम - कूडे वेयड्ढ - वेंतरो णाम ।
आगंतुग - भय - वियलो, पणमिय चक्कीण पइसरइ ॥१३३४॥

अर्थ :—उस समय विजयार्धगिरिके मध्यम कूटपर रहने वाला वैताढ्य नामक व्यन्तरदेव आगन्तुक भयसे विकल होता हुआ प्रणाम करके चक्रवर्तियोंकी सेवा करता है ॥१३३४॥

तग्गिरि-दक्खिण-भागे, संठिय-पण्णास-णयर-खयर-गणा ।
साहिय आगच्छंते, पुव्विल्लय तोरण - द्दारा ॥१३३५॥

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. तावे ।

अर्थ :—उस पर्वतके दक्षिणभागमें स्थित पचास नगरोंके विद्याधर-समूहोंको सिद्ध करके पूर्वोक्त तोरण-द्वारसे वापिस आते हैं ।।१३३५।।

कृतमालको वश करना—

तत्तो तव्वण - वेदिं, चडिदूणं एदि पच्छिमाहिमुहा ।
सिंधुवण-वेदि-पासे, पविसंते तग्गिरिस्स दिव्व - वणं ।।१३३६।।

अर्थ :—इसके आगे उस वन-वेदीका आश्रय करके पश्चिमकी ओर जाते हैं और सिन्धुवन-वेदीके पासमें उस पर्वतके दिव्य वनमें प्रवेश करते हैं ।।१३३६।।

ताहे तग्गिरि - वासी, कदमालो णाम वेंतरो देवो ।
आगंतूणं वेयड्ढगिरि - दार - कवाड - फेडणोवायं ।।१३३७।।

अर्थ :—तब उस पर्वत पर रहनेवाला कृतमाल नामक व्यन्तरदेव आ-करके विजयार्ध-पर्वतके द्वार-कपाट खोलनेका उपाय [बतलाता है] ।।१३३७।।

तिमिस्रगुफा द्वार उद्घाटन—

तस्सुवदेस - वसेणं, सेणवई तुरग - रयण - मारुहिय ।
गहिऊण दंड - रयणं, णिस्सरदि[1] सडंग - बल - जुत्तो ।।१३३८।।

अर्थ :—उसके उपदेशसे सेनापति तुरग रत्नपर चढ़कर और दण्ड-रत्नको ग्रहणकर षडङ्ग-बल सहित निकलता है ।।१३३८।।

सिंधु-वण-वेदि-दारं, पविसिय गिरि-वेदि-तोरणद्दारे ।
गच्छिय तिमिसगुहाए, सोवाणे चडदि[2] बल - जुत्तो ।।१३३९।।

अर्थ :—वह सिन्धुवन-वेदीके द्वारमें प्रवेशकर पर्वतीय वेदीके तोरणद्वारमें होकर सैन्य-सहित तिमिस्रगुफाकी सीढ़ियोंपर चढ़ता है ।।१३३९।।

अवराहिमुहे गच्छिय, सोवाण - सएहिं दक्खिण-मुहेण ।
उत्तारिय[3] सयल-बलं, वच्चदि सरि - वणस्स मज्झेण ।।१३४०।।

---

१. ब. णिब्भरदि । २. द. ब. क. ज. य. उ. चलदि । ३. द. ब. क. ज. य. उ. उत्तोट्ठिय ।

अर्थ :—सो सीढ़ियोंसे पश्चिमकी ओर जाकर, फिर दक्षिणकी ओरसे सब सैन्यको उतार-कर वह सेनापति नदीवनके मध्यमें होकर जाता है ।।१३४०।।

तत्तो सेणाहिवई, करयल - धरिदेण दंड - रयणेण ।
पहणदि कवाड - जुगलं, आणाए चक्कवट्टीणं ।।१३४१।।

अर्थ :—तदनन्तर सेनाधिपति चक्रवर्तीकी आज्ञासे हस्ततलमें धारण किये हुए दण्डरत्नसे दोनों कपाटोंपर प्रहार करता है ।।१३४१।।

उग्घडिय - कवाड - जुगलब्भंतर-पसरंत-उण्ह-भीदीए ।
बारस - जोयण - मेत्तं, तुरंग - रयणेण लंघंति ।।१३४२।।

अर्थ :—(पश्चात् वह सेनापति) कपाट-युगलको उद्घाटितकर भीतर फैली हुई उष्णताके भयसे तुरङ्ग (घोडा) रत्न द्वारा बारह योजन-प्रमाण क्षेत्रको लांघता है । १३४२।।

म्लेच्छ-खण्डपर विजय—

गंतूण दक्खिणमुहो, सग-[1]पडवासिद-बलम्मि पविसेदि ।
पच्छा पच्छिममयणो, सेणावई गिरिवणं एदि ।।१३४३।।

अर्थ :—वह (सेनापति) दक्षिणकी ओर जाकर अपने प्रतिवासित सैन्यमें (पडावमें) प्रवेश करता है । पश्चात् वह सेनापति पश्चिमाभिमुख होकर पर्वतीय-वनको जाता है ।।१३४३।।

दक्खिणमुहेण तत्तो, गिरि - वण - वेदीए तोरणद्दारे ।
णिस्सरिय मेच्छखंडं, साहेदि[2] य वाहिणी जुत्तो ।।१३४४।।

अर्थ :—पश्चात् दक्षिणमुख होकर पर्वतीय वन-वेदीके तोरणद्वारमेंसे निकलकर सैन्यसे संयुक्त होता हुआ वह म्लेच्छखण्डको सिद्ध करता है ।।१३४४।।

सव्वे छम्मासेहिं, मेच्छ - णरिंदा वसम्मि कादूणं ।
एदि[3] हु पुव्व - पहेणं, वेयड्ढगुहाए बार - परियंतं ।।१३४५।।

---

१. ब. पडिवासिव, द. क. ज. य. उ. पडवासिदं । २. ब. क. उ. सासादि पदाहिणं, द. ज. य. सासोदि पदाहिणं । ३. द. ब. क. ज. ब. उ. एदे ।

अर्थ :—छह महिनोंमें सर्व म्लेच्छ राजाओंको वशमें करके सेनापति पूर्व-मार्ग द्वारा वैताढ्य-गुफाके द्वार-पर्यन्त जाता है ॥१३४५॥

कादूण दार-रक्खं, देव - बलं मेच्छराय - पडियरिओ ।
पविसिय खंधावारं, [1]पणमिय [2]चक्कीण पय - कमले ॥१३४६॥

अर्थ :—वहाँ पर देव-सेनाको द्वारका रक्षक (नियुक्त) कर म्लेच्छ-राजाओंसे परिवारित वह सेनापति अपने पड़ावमें प्रविष्ट होकर चक्रवर्तीके चरण-कमलोंमें नमस्कार करता है ॥१३४६॥

तिमिस्रगुफाके लिए प्रस्थान, उसमें प्रवेश एवं उसके उत्तर-द्वारसे निष्काशन—

इय दक्खिणम्मि भरहे, खंड - दुग्रं साहिदूण लीलाए ।
पविसंति हु चक्कहरा, सिंधुणईए वणं विउलं ॥१३४७॥

अर्थ :—इसप्रकार दक्षिणभरतमें दो खण्डोंको अनायाम ही सिद्ध करके चक्रवर्ती सिन्धु-नदीके विशाल वनमें प्रवेश करते हैं ॥१३४७॥

गिरि-तड-वेदी-दारे, पविसिय गिरि-दार-रयण-सोवाणे ।
आरुहिदूणं वच्चदि, सयल - बलं [3]तण्णईअ दो - तीरे ॥१३४८॥

अर्थ :—पुनः गिरितट-सम्बन्धी वेदीके द्वारमें प्रवेश करके और गिरिद्वारकी रत्नमय सीढ़ियों पर चढ़कर सम्पूर्ण सेना उस नदीके दोनों किनारों परसे जाती है ॥१३४८॥

दो - तीर - वीहि - रुंदं, दो-द्दो-जोयण-पमाणमेक्केक्कं[4] ।
तेसुं महंधयारे, ण सक्कदे तं[5] बलं गंतुं ॥१३४९॥

अर्थ :—दोनों तीरोंकी वीथियोंमेंसे प्रत्येकका विस्तार दो-दो योजन-प्रमाण है। उनमें घोर अन्धकार होनेसे चक्रवर्तीकी वह सेना आगे बढ़नेमें समर्थ नहीं होती है ॥१३४९॥

उवदेसेण सुराणं, काकिणि - रयणेण तुरिदमालिहियं ।
ससहर[6] - रवि - बिंबाणि, सेल-गुहा-उभय-भित्तीसुं ॥१३५०॥

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. पणम्मि । २. द. ब. क ज. य. उ. चक्कीय । ३ द. ब. क. ज. य. उ. तण्णई । ४. द. ज. य. उ. पमाणमेक्कंक्कं । ५. द. ब. तब्बलं भयभित्तीसु । ६. द. ब. क. ज. य. उ. ससिकर ।

अर्थ :—तब देवोंके उपदेशसे (विजयार्ध) पर्वतीय गुफाकी दोनों दीवालों पर काकिणी-रत्नसे शीघ्र ही चन्द्र और सूर्य-मण्डलोंके आलेख-चित्र बनाए गये ।।१३५०।।

एक्केक्क - जोयणंतर - लिहिदाणं ताण दिंति उज्जोवे ।
वच्चेदि सडंग - बलं, उम्मग्ग - णिमग्ग - परियंतं ।।१३५१।।

अर्थ :—एक-एक योजनके अन्तरालसे लिखित अर्थात् अंकित उन बिम्बोंके प्रकाश देनेपर षडङ्ग-बल (सेना) उन्मग्न-निमग्न नदियों तक जाता है ।।१३५१।।

ताण सरियाण गहिरं, जलप्पवाहं सुदूर - वित्थिण्णं ।
उत्तरिदुं पि ण सक्कइ, सयल - बलं चक्कवट्टीणं ।।१३५२।।

अर्थ :—उन नदियोंके दूर तक विस्तीर्ण और गहरे जलप्रवाहको (पार) उतरनेमें चक्रवर्तीकी सारी सेना समर्थ नहीं होती ।।१३५२।।

सुर-उवदेस-बलेणं, वड्ढइ - रयणेण रयव - संकमणे ।
आरुहदि सडंग - बलं, ताओ सरियाओ उत्तरदि ।।१३५३।।

अर्थ :—तब देवके उपदेशसे बढ़ई-रत्न द्वारा पुलकी रचना करने पर षडङ्ग-बल (सेना) पुल पर चढ़ता है और उन नदियोंको पार करता है ।।१३५३।।

सेल - गुहाए उत्तर - दारेणं णिस्सरेदि बल - सहिदो ।
णइ - पुव्व - वेदि - दारे, गंतुं गिरिणंदणस्स मज्झम्मि ।।१३५४।।

अर्थ :—इसप्रकार आगे गमन करते हुए नदीके पूर्व-वेदीद्वारसे पर्वत-वनके मध्यमें पहुँचनेके लिए चक्रवर्ती सैन्य-सहित विजयार्धकी गुफाके उत्तर द्वारसे निकलता है ।।१३५४।।

म्लेच्छ-खण्डोंपर विजय प्राप्त करते हुए सिन्धुदेवीको वश करना—

तत्थ य पसत्थ-सोहे, णाणातरु - संड - मंडले[1] विउले ।
णिवसहरे चक्कहरा, खंधावारं णिवेसंति ।।१३५५।।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. संडणे ।

अर्थ :--वहाँ चक्रवर्ती प्रशस्त शोभाको प्राप्त, विस्तृत एवं नाना वृक्षोंके समूहसे मण्डित वनमें सेनाको ठहराते हैं ।।१३५५।।

आणाए चक्कीणं, सेणवई अवरभाग - मेच्छ - महिं ।
साहिय छम्मासेहिं, खंधावारं समल्लियइ ।।१३५६।।

अर्थ :—पुनः चक्रवर्तीकी आज्ञासे सेनापति पश्चिम भागके म्लेच्छ खण्डको वशमें कर छह मासमें पड़ावमें सम्मिलित हो जाता है ।।१३५६।।

णिग्गच्छंते चक्की, गिरि - वण - वेदीए दार - मग्गेण ।
मज्झिम्मि मेच्छखंड - प्पसाहणट्ठं बलेण जुदा ।।१३५७।।

अर्थ :—पश्चात् मध्यम म्लेच्छखण्डको सिद्ध करनेके लिए चक्रवर्ती सेना सहित पर्वतीय वन-वेदीके द्वार-मार्गसे निकलते हैं ।।१३५७।।

मेच्छ - महि - पइट्ठेहिं[1], तेहिं सह मेच्छ-णरवई सव्वे ।
कुलदेवदा - बलेणं, जुज्झं कुव्वंति घोरयरं ।।१३५८।।

अर्थ :—उस समय म्लेच्छ-महीकी ओर प्रस्थित हुए उनके साथ सब म्लेच्छ राजा अपने कुलदेवताओंके बलसे प्रचण्ड युद्ध करते हैं ।।१३५८।।

जेत्तूण मेच्छराए, तत्तो सिंधूए तीर - मग्गेण ।
गंतूण उत्तरमुहा, सिंधूदेवीं कुणंति वसं ।।१३५९।।

अर्थ :—अनन्तर चक्रवर्ती म्लेच्छ राजाओंको जीतकर सिन्धुनदीके तटवर्ती मार्गसे उत्तरकी ओर जाकर सिन्धुदेवीको वशमें करते हैं ।।१३५९।।

हिमवान् देवको वश करना—

पुव्वाहिमुहा तत्तो, हिमवंत - वणस्स वेदि - मग्गेण ।
हिमवंत - कूड - पणिही - परियंतं जाव गंतूणं ।।१३६०।।
णिय-णामंकिद-इसुणा, चक्कहरा विंधिदूण साहंति ।
हिमवंत-कूड - संठिय - वेंतर - हिमवंत - णाम - सुरं ।।१३६१।।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ पहिगेहिं ।

अर्थ :—इसके पश्चात् पूर्वाभिमुख होते हुए हिमवान् पर्वत-सम्बन्धी वनके वेदी-मार्गसे हिमवान् कूटके समीप तक जाकर वे चक्रवर्ती अपने नामसे अंकित बाणके द्वारा वेधकर हिमवान् कूट-पर स्थित हिमवान् नामक व्यन्तर देवको सिद्ध करते हैं ।।१३६०-१३६१।।

वृषभगिरिपर प्रशस्ति लिखकर गङ्गादेवीको वश करना—

अह दक्खिण - भाएणं, वसहगिरिं जाव ताव वच्चंति ।
तग्गिरि - तोरणदारं, पविसंते णियय णाम - लिहणट्ठं ।।१३६२।।

अर्थ :—अनन्तर चक्रवर्ती दक्षिणभागसे वृषभगिरि-पर्यन्त जाकर अपना नाम लिखनेके लिए उस पर्वतके तोरणद्वारमें प्रवेश करते हैं ।।१३६२।।

बहु - विजय - पसत्थीहिं, गय-चक्कीणं णिरंतरं भरिदं ।
वसह - गिरिंदे सव्वे, पदाहिणेणं [1]विलोक्कंति ।।१३६३।।

अर्थ :—वहाँ जाकर वे गत चक्रवर्तियोंकी बहुतसी (अनेकों) विजय-प्रशस्तियोंसे निरन्तर भरे हुए वृषभगिरिको प्रदक्षिणा देते हुए देखते हैं ।।१३६३।।

णिय-णाम-लिहणठाणं[2], तिल - मेत्तं पव्वए[3] अपावंता ।
गलिद - विजयाभिमाणा, चक्की चिंताए चेट्ठंति ।।१३६४।।

अर्थ :—अपना नाम लिखनेके लिए पर्वत पर तिल-मात्र भी स्थान न पाकर चक्रवर्ती विजयाभिमानसे रहित होकर चिन्तायुक्त खड़े रह जाते हैं ।।१३६४।।

मंतीणं अमराणं, उवरोध - वसेण पुव्व - चक्कीणं ।
णामाणि एक्क - ठाणे, णिण्णासिय दंड - रयणेण ।।१३६५।।

लिहिदूणं णिय - णामं, तत्तो गंतूण उत्तर - मुहेण ।
पाविय गंगा - कूडं, गंगादेवीं कुणंति वसं ।।१३६६।।

अर्थ :—तब मन्त्रियों और देवताओंके आग्रहवश एक स्थानपर पूर्व चक्रवर्तियोंके नाम दण्डरत्नसे नष्ट करके और अपना नाम लिखकर वहाँसे उत्तरकी ओर जाते हुए गङ्गाकूटको पाकर गङ्गादेवीको वशमें करते हैं ।।१३६५-१३६६।।

---

१. द. ब. क. य. उ. पुद्धोवति । २ द. ब. क. ज. य. उ. लिहणराणं । ३. द. ब. क. ज. य. उ. पुव्वए ।

खण्डप्रपातगुफाका उद्घाटन एवं उत्तरभरतपर विजय—

अह दक्खिण - भाएणं, गंगा - सरियाए तीर - मग्गेण ।
गंतूणं चेट्ठंते, वेयड्ढ - वणम्मि चक्कहरा ॥१३६७॥

अर्थ :—इसके पश्चात् वे चक्रधर-गङ्गानदीके तटवर्ती मार्गसे दक्षिणकी ओर जाकर विजयार्ध-पर्वतके वनमें ठहर जाते हैं ॥१३६७॥

आणाए चक्कीणं, खंधगुहाए कवाड - जुगलं पि ।
उग्घाडिय सेणवई, पुव्वं पिव मेच्छखंडं पि ॥१३६८॥

साहिय तत्तो पविसिय, खंधावारं पसण्ण - भत्त - मणा ।
चक्कीण चरण - कमले, पणमिय चेट्ठंदि सेणवई ॥१३६९॥

अर्थ :—पुन: चक्रवर्तीकी आज्ञासे सेनापति खण्डप्रपातगुफाके दोनों कपाट खोलकर और पूर्व म्लेच्छ खण्डको भी वशमें करके वहाँसे कटकमें प्रवेश करता है तथा प्रसन्नमन एवं भक्तिमान होकर चक्रवर्तीके चरण-कमलोंमें प्रणाम करके ठहर जाता है ॥१३६८-१३६९॥

वेयड्ढ - उत्तर - दिसा-संठिय-णयराण खयररायाᐟ य ।
चक्कीण चलण - कमले, पणमंति कुणंति दासत्तं ॥१३७०॥

अर्थ :—विजयार्धकी उत्तरदिशामें स्थित नगरोंके विद्याधर राजा भी चक्रवर्तीके चरण-कमलोंमें नमस्कार करते हैं और उसका दासत्व स्वीकार कर लेते हैं ॥१३७०॥

इय उत्तरम्मि भरहे, भूचर - खचरादि साहिय समग्गं ।
वच्चंति बलेण जुदा, गंगाए जाव वण - वेदिं ॥१३७१॥

अर्थ :—इसप्रकार चक्रवर्ती उत्तर भरतमें सम्पूर्ण भूमिगोचरी (राजाओं) और विद्याधरोंको वशमें करके सैन्य सहित गङ्गाकी वन वेदी तक जाते हैं ॥१३७१॥

खण्डप्रपातगुफाके दक्षिणद्वारसे निष्काशन—

तव्वेदीए दारे, तीए उववण - खिदीसु लीलाए ।
पविसिय बलं समग्गं, णिक्कामदि दक्खिण - मुहेण ॥१३७२॥

---

१. द. ज उ. रायाए ।

अर्थ :—उस वेदीके द्वारसे उसकी उपवन-भूमियोंमें लीला-मात्रसे प्रवेश करके समस्त सैन्य दक्षिणमुखसे निकलता है ।।१३७२।।

गिरि-तड-वेदी-दारं, गच्छिय गुह-दार-रयण-सोवाणे ।
आरुहिय सडंग - बलं, वच्चदि णइ - उभय - तीरेसुं ।।१३७३।।

अर्थ :—तत्पश्चात् पर्वतकी तट-वेदीके द्वार तक जाकर और फिर गुफाद्वारके रत्न-सोपानों पर चढ़कर वह षडङ्ग-बल (सेना) नदीके दोनों तीरों परसे जाता है ।।१३७३।।

तग्गिरि-दारं पविसिय, दो - तीरेसुं णईए उभय-तडे ।
वच्चदि दो - हो जोयण-मेत्ते [1]हंवत्त - तीर - वीहीणं ।।१३७४।।

अर्थ :—उस पर्वतके द्वारमेंसे प्रवेश कर वह सैन्य नदीके दोनों ओर दो तीरोंपर दो-दो योजन विस्तारवाली तट-वीथियों परसे जाता है ।।१३७४।।

पुव्वं व गुहा - मज्झे, गंतूणं दक्खिणेण दारेण ।
णिक्कलिय सडंग - बलं, [2]गंगा - वण - मज्झमायादि ।।१३७५।।

अर्थ :—पूर्वके सदृश ही (खण्डप्रपात) गुफाके बीचमेंसे जाकर और दक्षिण-द्वारसे निकलकर वह षडङ्ग-बल गङ्गावनके मध्यमें आ पहुँचता है ।।१३७५।।

अन्तिम म्लेच्छ खण्ड पर विजय एवं नगर प्रवेश—

णइ-वण-वेदी-दारे, गंतूणं गिरि - वणस्स मज्झम्मि ।
चेट्ठंते चक्कहरा, खंधावारेण परियरिया ।।१३७६।।

अर्थ :—इसके पश्चात् सैन्यसे परिवारित चक्रवर्ती नदीकी वन-वेदीके द्वारमेंसे जाकर पर्वत-सम्बन्धी वनके मध्यमें ठहर जाते हैं ।।१३७६।।

अण्णाए चक्कीणं, सेणवई पुव्व - मेच्छखंडं पि ।
छम्मासेहिं साहिय, खंधावारं समल्लियदि ।।१३७७।।

---

१. [हंवुत्त] २. द. ब. क. ज. म. उ. गंतावण ।

अर्थ :–पुनः सेनापति चक्रवर्तीकी आज्ञासे छह मासमें पूर्व म्लेच्छखण्डको भी वश में करके स्कन्धावारमें आ मिलता है।। १३७७।।

तग्गिरि-वणवेदीए, तोरण - दारेण दक्खिण - मुहेण।
णिक्कलिय चक्कवट्टी, णिय - णिय - णयरेसु पविसंति।। १३७८।।

अर्थ :–अनन्तर चक्रवर्ती उस पर्वत की वन-वेदीके दक्षिणमुख तोरण-द्वार से निकलकर अपने-अपने नगरों में प्रवेश करते हैं।। १३६८।।

चक्रवर्तियोंका दिग्विजय काल–

सट्ठि तीसं दस, दस वास - सहस्सा सणक्कुमारंतं।
अड छच्चउ पणति - सया, कमेण तत्तो य पउमंतं ।। १३७९।।

६०००० । ३०००० । १०००० । १०००० । ८०० । ६०० । ४०० । ५०० । ३००

पण्णब्भहियं च सयं, सयमेक्कं सोलसं पि पत्तेयं।
हरिसेण - प्पमुहाणं, परिमाणं विजय - कालस्स।। १३८०।।

१५० । १०० । १६ ।

। एवं चक्कहराणं विजय-कालो[1] समत्तो।

अर्थ :–(भरत चक्रवर्तीसे) सनत्कुमार पर्यन्त विजय-कालका प्रमाण क्रमशः साठ हजार वर्ष, तीस हजार वर्ष, दस हजार वर्ष, दस हजार वर्ष तथा पद्म चक्रवर्ती पर्यन्त क्रमशः आठ सौ वर्ष, छह सौ वर्ष, चार सौ वर्ष, पाँच सौ वर्ष और तीन सौ वर्ष है। पुनः हरिषेणादिक चक्रवर्तियोंमेंसे प्रत्येक का क्रमशः एक सौ पचास वर्ष एक सौ वर्ष और सोलह वर्ष ही है।। १३७९-१३८०।।

। इस प्रकार चक्रधरों के विजयकालका वर्णन समाप्त हुआ।

चक्रवर्तियों के वैभव का निर्देश–

अह णिय-णिय-णयरेसु, चक्कीण रमंतयाण लीलाए।
विभवस्सर[2] य लव-मेत्तं, वोच्छामि जहाणुपुव्वीए।। १३८१।।

---

१. द.ब.क ज.य.द. काल समत्ता। २. द.ब.क.ज.य.उ वीभस्स।

अर्थ :—अब अपने-अपने नगरोंमें लीलासे रमण करते हुए उन चक्रवर्तियोंके वैभवका यहाँ अनुक्रमसे किंचित् मात्र कथन करता हूं ॥१३८१॥

आदिम-संहडण-जुदा, सव्वे तवणिज्ज-वण्ण-वर-देहा ।
सयल - सुलक्खण - भरिया[1], [2]समचउरस्संग-संठाणा ॥१३८२॥

अर्थ :—सर्व चक्रवर्ती आदिके वज्रवृषभनाराच संहनन सहित, सुवर्ण सदृश वर्ण वाले, उत्तम शरीरके धारक, सम्पूर्ण सुलक्षणोंसे समन्वित और समचतुरस्त्ररूप शरीर-संस्थानसे संयुक्त होते हैं ॥१३८२॥

सव्वाओ मण - हराओ, अहिणव-लावण्ण-रूव-रेहाओ ।
छण्णउदि - सहस्साइं, पत्तेक्कं होंति जुवदीओ ॥१३८३॥

९६०००

अर्थ :—प्रत्येक चक्रवर्तीके, मनको हरण करने वाली और अभिनव लावण्य-रूप रेखा-वाली कुल छयानबै हजार युवतियाँ (स्त्रियाँ) होती हैं ॥१३८३॥

तासुं अज्जाखंडे, बत्तीस - सहस्स - राजकण्णाओ ।
खेचरराज - सुदाओ, तेत्तिय - मेत्ताओ मेच्छ-धूवाओ ॥१३८४॥

। ३२००० । ३२००० । ३२००० ।

अर्थ :—उनमेसे बत्तीस हजार राजकन्याएँ आर्यखण्डकी इतनी (३२०००) ही सुताएँ विद्याधर राजाओंकी और इतनी (३२०००) ही म्लेच्छ-कन्याएँ होती हैं ॥१३८४॥

एक्केक्क - जुवइ - रयणं, एक्केक्काणं हवेदि चक्कीणं ।
भुंजंति हु तेहि समं, संकप्प - वसंगदं सोक्खं ॥१३८५॥

अर्थ :- प्रत्येक चक्रवर्तीके एक-एक युवति-रत्न होता है। वे उसके साथ संकल्पित (इच्छित) सुखोंको भोगते हैं ॥१३८५॥

---

१. द ब. क. ज. य. उ. भरिय । २. द ब. क. ज. य. उ. समचउरंगस्स ।

संखेज्ज - सहस्साइं, पुत्ता पुत्तीश्रो होंति चक्कीणं ।
गणबद्धदेव - णामा, बत्तीस - सहस्स ताण तणुरक्खा ॥१३८६॥

गण ३२०००

अर्थ :—प्रत्येक चक्रवर्तीके संख्यात हजार पुत्र-पुत्रियाँ होती है और बत्तीस हजार गणबद्ध नामक देव उनके अङ्गरक्षक होते हैं ॥१३८६॥

तणुवेज्ज[१]-महाणसिया, कमसो ति-सयाइ सट्ठि-जुत्ताइं ।
चोद्दस-वर-रयणाइं, जीवाजीवप्प - भेद - दु - विहाइं ॥१३८७॥

। ३६० । ३६० । १४ ।

अर्थ :—प्रत्येक चक्रवर्तीके चिकित्सक (वैद्य) तीनसौ साठ, महानसिक (रसोइये) तीनसौ साठ और उत्तमरत्न चौदह होते हैं। ये रत्न जीव और अजीवके भेदसे दो प्रकारके होते है ॥१३८७॥

ते तुरय-हत्थि-वड्ढइ, गिहवइ - सेणावइ त्ति रयणाइं ।
जुवइ-पुरोहिद-रयणा, सत्त जीवाणि ताण अभिहाणा ॥१३८८॥

पवणंजय-विजयगिरी, [२]भद्दमुहो तह य कामउट्ठी य ।
होंति अउज्झ सुभद्दा, बुद्धिसमुद्दो त्ति पत्तेयं ॥१३८९॥

अर्थ :—उनमेंसे अश्व, हाथी, बढ़ई, गृहपति, सेनापति, युवती और पुरोहित ये सात जीव-रत्न हैं। इनके नाम क्रमशः पवनञ्जय, विजयगिरि, भद्रमुख, कामवृष्टि, अयोध्य, सुभद्रा और बुद्धि-समुद्र हैं ॥१३८८-१३८९॥

तुरग-इभ-इत्थि-रयणा, विजयड्ढगिरिम्मि होंति चत्तारि ।
अवसेस - जीव - रयणा, णिय-णिय-णयरेसु जम्मंति ॥१३९०॥

अर्थ :—इन सात रत्नोंमेंसे तुरग, हाथी और स्त्री ये तीन रत्न विजयार्ध पर्वतपर तथा अवशिष्ट चार जीव-रत्न अपने-अपने नगरमें उत्पन्न होते हैं ॥१३९०॥

---

१. द. ब. क. ज. तणुसं ज, ज. य. तणुवं ज। २. द. ब. क. ज. य. उ. भद्दमहा।

छत्तासि-दंड-चक्का, काकिणि-चिंतामणि त्ति रयणाइं ।
चम्म - रयणं च सत्तम, इय णिज्जीवाणि रयणाणि ।।१३६१।।

अर्थ :—छत्र, असि, दण्ड, चक्र, काकिणी, चिन्तामणि और चर्म, ये सात रत्न निर्जीव होते हैं ।।१३६१।।

आदिम-रयण-चउक्कं, आयुह-सालाअ जायदे[1] तत्तो ।
तिण्णि वि रयणाइ पुढं, सिरिगिहे ताण णाम इमे ।।१३६२।।

अर्थ :—इनमेंसे आदिके चार रत्न आयुधशालामें और शेष तीन रत्न श्रीगृहमें उत्पन्न होते हैं. उन सातों रत्नोंके नाम इसप्रकार हैं ।।१३६२।।

सूरप्पह - भूदमुहो, पचंडवेगा सुदरिसणो तुरिमो ।
चिंताजणणी चूडामणि मज्झमओ त्ति पत्तेक्कं ।।१३६३।।

अर्थ :—सूर्यप्रभ (छत्र), भूतमुख (असि), प्रचण्डवेग (दण्ड), सुदर्शन (चक्र) चिन्ताजननी (काकिणी दीपिका), चूडामणि (चिन्तामणि) और मज्झमय (चर्मरत्न) ये क्रमश (नाम) कहे गये हैं ।।१३६३।।

जह जह जोग्गट्ठाणे, उप्पण्णा चोद्दसाइ रयणाइं ।
इदि केई आयरिया, णियम - सरूवं ण मण्णंति ।।१३६४।।

[पाठान्तरम्]

अर्थ :—ये चौदह रत्न यथायोग्य स्थानमें उत्पन्न होते हैं । इसप्रकार कोई-कोई आचार्य इनके नियम रूपको नहीं भी मानते हैं ।।१३६४।।

(पाठान्तर)

चक्कीस चामराणि, जक्खा बत्तीस विक्खिवंति तहा ।
आउट्ठा कोडीओ, पत्तेक्कं बंधु - कुल - माणं ।।१३६५।।

। ३२ । ३५००००००।

---

1. ब. उ. जपदे, ज. य. दो तत्तो, द. दे तत्तो ।

अर्थ :—चक्रवर्तियोंके चामरोंको बत्तीस यक्ष ढुराया करते हैं। तथा प्रत्येक (यक्ष) के बन्धुकुलका प्रमाण साढे तीन करोड़ होता है ॥१३६५॥

काल-महकाल-पंडू, माणव-संखा य पउम - णइसप्पा ।
पिंगल - णाणारयणा, णव - णिहिणो सिरिपुरे जादा ॥ १३९६॥

अर्थ :— काल, महाकाल, पाण्डु, मानव, शङ्ख, पद्म, नैसर्प, पिङ्गल और नानारत्न, ये नौ निधियाँ श्रीपुरमें उत्पन्न हुआ करती हैं ॥१३९६॥

काल-प्पमुहा णाणा - रयणंता ते णई - मुहे णिहिणो ।
उप्पज्जदि इदि केई, पुव्वाइरिया परूवेंति ॥१३९७॥

[पाठान्तरम्]

अर्थ :—कालनिधिको आदि लेकर नानारत्न-पर्यन्त वे निधियाँ नदी मुखमें उत्पन्न होती हैं, इसप्रकार भी कितने ही पूर्वाचार्य निरूपण करते हैं ॥१३९७॥

(पाठान्तर)

उडु-जोग्ग-दव्व-भायण-धण्णाउह-तूर-वत्थ - हम्माणि ।
आभरण-रयण-णियरा, णव - णिहिणो देंति[1] पत्तेयं ॥१३९८॥

अर्थ :—इन नौ निधियोंमेंसे प्रत्येक निधि क्रमशः ऋतुके योग्य द्रव्य, भाजन, धान्य, आयुध, वादित्र, वस्त्र, हर्म्य, आभरण और रत्नसमूहोंको दिया करती है ॥१३९८॥

दक्खिण-मुह-आवत्ता, चउवीस हवंति धवल-वर-संखा ।
एक्के - क्कोडी लक्खो, हलाणि पुढवी वि[2] छक्खंडा ॥१३९९॥

। सं २४ । हल को १ ल । ६ ।

अर्थ :—चक्रवर्तियोंके (अधिकारमें) चौबीस दक्षिणमुखावर्त धवल एवं उत्तम शङ्ख, एक लाख करोड़ (१००००००००००००) हल और छह खण्डरूप पृथिवी होती है ॥१३९९॥

---

१. द ज. य. दिति । २. य. उ. वित्थ ।

भेरी पडहा रम्मा, बारस पुह - पुह हवंति चक्कीणं ।
बारस जोयण - मेत्ते, देसे सुव्वरा - वर - सद्दा[1] ।।१४००।।

। भे = १२ । प = १२ ।

अर्थ :—चक्रवर्तियोंके रमणीय भेरी और पटह पृथक्-पृथक् बारह-बारह होते हैं, जिनका उत्तम शब्द देशमें बारह योजन प्रमाण सुना जाता है ।।१४००।।

कोडि - तियं गो-संखा, थालीओ एक्क-कोडि-मेत्ताओ ।
चुलसीदी लक्खाइं, पत्तेक्कं भद्द - वारण - रहाणि[2] ।।१४०१।।

को ३ । को १ । ८४ ल । ८४ ल ।

अर्थ :—उनकी गौओंकी संख्या तीन करोड़, थालियाँ एक करोड़ तथा भद्र-हाथी एवं रथोंमेंसे प्रत्येक चौरासी-चौरासी लाख प्रमाण होते हैं ।।१४०१।।

अट्ठारस कोडीओ, तुरया चुलसीदि-कोडि-वर-वीरा ।
खयरा बहु - कोडीओ, अडसीदि-सहस्स-मेच्छ-णरणाहा ।।१४०२।।

को १८ । को ८४ । ० । ८८००० ।

अर्थ :—उनके अठारह करोड़ घोड़े, चौरासी करोड़ उत्तम वीर, कई करोड़ विद्याधर और अठासी हजार म्लेच्छ राजा होते हैं ।।१४०२।।

सव्वाण मउडबद्धा, बत्तीस सहस्सयाणि पत्तेक्कं ।
तेत्तिय - मेत्ता णट्टयसाला संगीद - सालाओ ।।१४०३।।

३२००० । ३२००० । ३२००० ।

अर्थ :—सब चक्रवर्तियोंमेंसे प्रत्येकके बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजा, इतनी (३२०००) ही नाटयशालाएँ और इतनी (३२०००) ही सङ्गीत-शालाएँ भी होती हैं ।।१४०३।।

होंति पयाआणीया, दु-गुणिय-चउवीस-कोडि-परिमाणा ।
बत्तीस - सहस्साणि, देसा चक्कीण पत्तेयं ।।१४०४।।

को ४८ । ३२००० ।

---

१ द. ब. ज. क. उ. सद्द । २. द. ब. उ. बहाणि ।

अर्थ :—प्रत्येक चक्रवर्तीके पदातीक (पदाति) अड़तालीस करोड़ और देश बत्तीस हजार होते हैं ।।१४०४।।

छण्णउदि - कोडि गामा, णयराइं पंचहत्तरि - सहस्सा ।
अड - हद - दु - सहस्सारिंग, खेडा सव्वाण पत्तेक्कं ।।१४०५।।

को ९६ । ७५००० । १६००० ।

अर्थ :—सर्व चक्रवर्तियोंमेंसे प्रत्येकके छयानबै करोड़ ग्राम, पचहत्तर हजार नगर और आठसे गुणित दो (सोलह) हजार खेड़े (खेट) होते हैं ।।१४०५।।

चउवीस - सहस्सारिंग, कव्वड - णामा मडंब-णामा य ।
चत्तारि सहस्साइं, अडदाल - सहस्स - पट्टणाइं पि ।।१४०६।।

२४००० । ४००० । ४८००० ।

अर्थ :—कर्वट चौबीस हजार, मटंब चार हजार और पट्टन अड़तालीस हजार होते हैं ।।१४०६।।

णव - णउदि - सहस्साइं, संखा दोरणमुहाण चक्कीसु ।
संवाहणाणि चउदस - सहस्स - मेत्ता य पत्तेक्कं ।।१४०७।।

९९००० । १४०००

अर्थ :—प्रत्येक चक्रवर्तीके निन्यानबै हजार द्रोणमुख और चौदह हजार-प्रमाण संवाहन हुआ करते हैं ।।१४०७।।

छप्पण्णंतर दीवा, कुक्खि-णिवासा हवंति सत्त - सया ।
अडवीस - सहस्साइं, दुग्गाडवीयाणि सव्वेसु ।।१४०८।।

५६ । ७०० । २८००० ।

अर्थ :—सर्व चक्रवर्तियोंके छप्पन अन्तर्द्वीप, सात सौ कुक्षि निवास और अट्ठाईस हजार दुर्ग एवं वन आदि होते हैं ।।१४०८।।

दिव्वपुरं रयण-णिहि, [1]चमु-भायण-भोयणाइ सयणं च ।
आसण - वाहण - णट्टण, दसंग - भोगा इमे ताणं ।।१४०६।।

अर्थ :—उन चक्रवर्तियोंके १ दिव्यपुर, २ रत्न, ३ निधि, ४ सैन्य, ५ भाजन, ६ भोजन, ७ शय्या, ८ आसन, ६ वाहन और १० नाटच, ये दशाङ्ग भोग होते हैं ।।१४०६।।

तालिका : ३३

चक्रवर्तियोंकी नव–निधियोंका परिचय

क्र.	नाम	उत्पत्तिस्थान	प्रकारान्तरसे उत्पत्ति स्थान	क्या प्रदान करती हैं ?
१	काल	श्रीपुर	नदीमुख	ऋतुके अनुसार द्रव्य (फल, पुष्प आदि) ।
२	महाकाल	,,	,,	भाजन (बर्तन एवं धातुएँ) ।
३	पाण्डु	,,	,,	धान्य (अनाज एवं षट्रस) ।
४	मानव	,,	,,	आयुध (अनेक शस्त्र) ।
५	शङ्ख	,,	,,	वादित्र (बाजे) ।
६	पद्म	,,	,,	वस्त्र (कपड़े)
७	नैसर्प	,,	,,	हर्म्य (महल एवं प्रासाद आदि) ।
८	पिङ्गल	,,	,,	आभरण (गहने) ।
९	नानारत्न	,,	,,	रत्नसमूह (अनेक प्रकारके रत्न) ।

१. द. ब. क ज ग. उ चमुहभायण ।

तालिका : ३४

चक्रवर्तियोंके चौदह रत्नोंका परिचय

क्र०	नाम	क्या है	संज्ञा गाथा १३८६ एवं १३९३	जीव या अजीव	उत्पत्ति स्थान	कार्य
१	अश्व	घोड़ा	पवनञ्जय	जीव	विजयार्धपर	गुफा द्वार खुल जानेपर तुरंगरत्न द्वारा बारह यो. क्षेत्रको लांघना।
२	गज	हाथी	विजयगिरि	,,	,,	सवारी करना।
३	गृहपति	भण्डारी	भद्रमुख	,,	स्व नगरमें	भण्डार आदि की सम्हाल करना।
४	स्थपति	बढ़ई	कामवृष्टि	,,	,, ,,	उन्मग्ना-निमग्ना नदियोंपर पुल बनाना।
५	सेनापति	सेनाध्यक्ष	अयोध्य	,,	,, ,,	गुफाओंके द्वार खोलना एवं सेना संचालन।
६	पुरोहित	धर्मप्रेरक	बुद्धिसमुद्र	,,	,, ,,	धार्मिक अनुष्ठान कराना।
७	युवती	पटरानी	सुभद्रा	,,	विजयार्धपर	उपभोगका साधन।
८	चक्र	आयुध	सुदर्शन	अजीव	आयुधशाला	छह खण्ड विजयका प्रेरक साधन।
९	छत्र	छतरी	सूर्यप्रभ	,,	,,	वर्षासे कटककी रक्षा करना।
१०	असि	आयुध	भूतमुख	,,	,,	शत्रुसंहार।
११	दण्ड	अस्त्र	प्रचण्डवेग	,,	,,	गुफाओंके कपाट खोलना एवं वृषभाचल पर प्रशस्ति लिखना।
१२	काकिणी	,,	चिन्ताजननी	,,	श्रीगृह	दोनों गुफाओंमें प्रकाश करना।
१३	चिन्तामणि	रत्न	चूडामणि	,,	,,	मनोवाञ्छित कार्य सिद्धि करना।
१४	चर्मरत्न	तम्बू	मज्झमय	,,	,,	गंगादि नदियोंके जलसे कटककी रक्षा करना।

तालिका : ३५

चक्रवर्तीके वैभवका सामान्य परिचय–गा० १३८१ से १४०६ तक

क्र०	वैभव नाम	विशेषता एवं प्रमाण	क्र०	वैभव नाम	विशेषता एवं प्रमाण
१	शरीर-संहनन	वज्रवृषभनाराचसंहनन	२४	वीर (योद्धा)	८४ करोड़
२	शरीर-वर्ण	स्वर्ण–सदृश	२५	विद्याधर	अनेक करोड़
३	शरीराकार	समचतुरस्र-संस्थान	२६	म्लेच्छराजा	८८०००
४	रानियाँ	९६०००	२७	मुकुटबद्धराजा	३२०००
५	पटरानी	१	२८	नाट्यशालाएँ	३२०००
६	पुत्र-पुत्रियाँ	संख्यात हजार	२९	संगीतशालाएँ	३२०००
७	गणबद्ध नामक अंगरक्षक देव	३२०००	३०	पदातिक	४८ करोड़
			३१	देश	३२०००
८	वैद्य	३६०	३२	ग्राम	९६ करोड़
९	रसोइया	३६०	३३	नगर	७५०००
१०	उत्तम रत्न	१४	३४	खेड़े	१६०००
११	चामर ढोरनेवाले यक्ष	३२	३५	कर्वट	२४०००
१२	प्रत्येकके बन्धु-कुल	३५००००००	३६	मटंब	४०००
१३	निधियाँ	९	३७	पट्टन	४८०००
१४	शङ्ख	२४	३८	द्रोणमुख	९९०००
१५	हल	एक लाख करोड़	३९	संवाहन	१४०००
१६	पृथिवी	छह खण्ड	४०	अन्तर्द्वीप	५६
१७	भेरी	१२	४१	कुक्षिनिवास	७००
१८	पटह	१२	४२	दुर्ग एवं वनादि	२८०००
१९	गायें	३ करोड़	४३	दिव्य भोग	१० प्रकार
२०	थालियाँ	१ करोड़			
२१	भद्रहाथी	८४ लाख			
२२	रथ	८४ लाख			
२३	घोड़े	१८ करोड			

ग्राम नगरादिकोंके लक्षण—

वइ - परिवेढो[1] गामो, णयरं चउगोउरेहि रमणिज्जं ।
गिरि-सरिकद-परिवेढं[2], खेडं गिरि-वेढियं[3] च कव्वडयं ॥१४१०॥

अर्थ :—वृत्तिसे वेष्टित ग्राम, चार गोपुरोंसे रमणीय नगर, पर्वत एवं नदीसे घिरा हुआ खेट और पर्वतसे वेष्टित कर्वट कहलाता है ॥१४१०॥

पण-सय - पमाण - गाम - प्पहाणभूदं मडंब-णामं खु ।
वर - रयणाणं जोणी, पट्टण - णामं विणिद्दिट्ठं ॥१४११॥

अर्थ :– जो पांचसौ ग्रामोंमें प्रधानभूत होता है उसका नाम मटंब और जो उत्तम रत्नोंकी योनि (खान) होता है, उसका नाम पट्टन कहा गया है ॥१४११॥

दोणामुहाहिहाणं, सरिवइ - वेलाए [4]वेढियं जाण ।
संवाहणं ति बहु - विहरण्ण - महासेल - सिहरत्थं ॥१४१२॥

[। एवं विभवो समत्तो ।]

अर्थ :—समुद्रकी वेलासे वेष्टित द्रोणमुख और बहुत प्रकारके अरण्योंसे युक्त महापर्वतके शिखर पर स्थित संवाहन जानना चाहिए ॥१४१२॥

। इसप्रकार विभवका वर्णन समाप्त हुआ ।

चक्रवर्तियोंके राज्य-कालका प्रमाण—

भरहे छ-लक्ख-पुव्वा, इगिसट्ठि-सहस्स-वास-परिहीणा ।
तीस - सहस्सूणाणि, सत्तरि लक्खाणि पुव्व सगरम्मि ॥१४१३॥

। पु ६ ल । रिण वरिस ६१००० । सगर पुव्व ७० ल । रिण ३०००० ।

अर्थ :—भरत चक्रवर्तीके [राज्य-कालका प्रमाण] इकसठ हजार वर्ष कम छह लाख पूर्व और सगर चक्रवर्तीके राज्य-कालका प्रमाण तीस हजार वर्ष कम सत्तर लाख पूर्व प्रमाण है ॥१४१३॥

---

१. द. ब. क. ज. य उ. परिवेदो । २ द. ब. क. ज. य. उ. परिवेदं । ३. द. ब. ज. उ. वेदेदं, क. वेदिवं, य. वेददं । ४. द. ब. क. ज. य. उ. वेदिय ।

णउदि-सहस्स-जुदाणि, लक्खाणि तिण्णि मघव-णामम्मि ।
णउदि - सहस्सा वासं, सणक्कुमारम्मि चक्कहरे ।।१४१४।।

३९०००० । ९०००० ।

अर्थ :—मघवा नामक चक्रवर्तीका राज्यकाल तीन लाख नब्बे हजार वर्ष और सनत्कुमार चक्रवर्तीका राज्यकाल नब्बे हजार वर्ष प्रमाण है ।।१४१४।।

चउवीस - सहस्साणि, वासाणि वो - सयाणि संतिम्मि ।
तेवीस - सहस्साइं, इगि - सय - पण्णाहियाइ कुंथुम्मि ।।१४१५।।

२४२०० । २३१५० ।

अर्थ :—शान्तिनाथ चक्रवर्तीके राज्यकालका प्रमाण चौवीस हजार दोसौ वर्ष और कुन्थुनाथके राज्यकालका प्रमाण तेईस हजार एक सौ पचास वर्ष है ।।१४१५।।

वीस - सहस्सा वस्सा, छस्सय-जुत्ता अरम्मि चक्कहरे ।
उणवण्ण - सहस्साइं[1], पण - सय - जुत्ता सुभउमम्मि ।।१४१६।।

। २०६०० । ४९५०० ।

अर्थ :—अरनाथ चक्रधरका राज्यकाल बीस हजार छहसौ वर्ष और सुभौम चक्रवर्तीका राज्यकाल उनचास हजार पाँचसौ वर्ष प्रमाण है ।।१४१६।।

अट्ठरस - सहस्साणि, सत्त - सएहिं समं तहा पउमो ।
अट्ठ - सहस्सा अड - सय, पण्णब्भहिया य हरिसेणे ।।१४१७।।

। १८७०० । ८८५० ।

अर्थ :—पद्म चक्रवर्तीके राज्यकालका प्रमाण अठारह हजार सातसौ वर्ष और हरिषेण चक्रवर्तीके राज्यकालका प्रमाण आठसौ पचास अधिक आठ हजार वर्ष है ।।१४१७।।

उणवीस - सया वस्सा, जयसेणे बम्हदत्त - णामम्मि ।
चक्कहरे छ - सयाणि, परिमाणं रज्जकालस्स ।।१४१८।।

१९०० । ६०० ।

। एवं रज्जकालो समत्तो ।

---

१. द. सहस्सा ।

अर्थ :—जयसेन चक्रवर्तीके राज्यकालका प्रमाण उन्नीससौ वर्ष और ब्रह्मदत्त नामक चक्रधरके राज्यकालका प्रमाण छहसौ वर्ष है ॥१४१८॥

। इसप्रकार राज्यकालका कथन समाप्त हुआ ।

चक्रवर्तियोंका संयम-काल—

एक्केक्क-लक्ख-पुव्वा, पण्णास - सहस्स वच्छरा लक्खं ।
पणवीस - सहस्साणि, तेवीस-सहस्स-सत्त-सय-पण्णा ॥१४१९॥

पुव्व १ ल । पु १ ल । वस्स ५०००० । व १ ल । २५००० । २३७५० ।

इगिवीस - सहस्साइं, तत्तो सुण्णं च दस सहस्साइं ।
पण्णाहिय-तिण्णि-सया, चत्तारि सयाणि सुण्णं च ॥१४२०॥

। २१००० । सु । १०००० । ३५० । ४०० । सु ।

कमसो भरहादीणं, रज्ज - विरत्ताण चक्कवट्टीणं ।
णिव्वाण - लाह - कारण[1]-संजम - कालस्स परिमाणं ॥१४२१॥

अर्थ :—राज्यसे विरक्त भरतादिक चक्रवर्तियोंके निर्वाण-लाभके कारणभूत संयम-कालका प्रमाण क्रमशः एक लाख पूर्व, एक लाख पूर्व, पचास हजार वर्ष, एक लाख वर्ष, पच्चीस हजार वर्ष, तेईस हजार सातसौ पचास वर्ष, इक्कीस हजार वर्ष, फिर शून्य, दस हजार वर्ष, तीनसौ पचास वर्ष, चारसौ वर्ष और शून्य है ॥१४१९-१४२१॥

भरतादिक चक्रवर्तियोंकी पर्यायान्तर प्राप्ति—

अट्ठेव गया मोक्खं, बम्ह - सुभउमा[2] य सत्तमं पुढविं ।
मघवो सणक्कुमारो, सणक्कुमारं गओ कप्पं ॥१४२२॥

। एवं चक्कहराणं परूवणा समत्ता ।

---

१. द. ब. उ. कारणं । २. द. ब. क. ज. य. उ. सुभउमो ।

तालिका : ३६ **चक्रवर्तियों का परिचय**

क्रम संख्या	चक्रवर्तियों के नाम गाथा १२९२-१२९३	शरीर का उत्सेध गाथा १३०३-१३०४	आयु गाथा १३०६-१३०७	कुमार काल गाथा १३०८-१३१०	मण्डलीक काल गाथा १३११-१३१३	दिग्विजय काल गाथा १३७९-१३८०	राज्य काल गाथा १४१३-१४१८	संयम काल गाथा १४१९-१४२१	पर्यायान्तर गति गाथा १४२२
१	भरत	५०० धनुष	८४००००० पूर्व	७७००००० पूर्व	१००० वर्ष	६०००० वर्ष	६००००० पुर्व ६१००० वर्ष	१००००० पूर्व	मोक्ष
२	सगर	४५० धनुष	७२००००० पूर्व	५०००० पूर्व	५०००० पूर्व	३०००० पूर्व	७०००००० पूर्व ३०००० वर्ष	१००००० पूर्व	मोक्ष
३	मघवा	$४२\frac{१}{२}$ धनुष	५००००० वर्ष	२५००० वर्ष	२५००० वर्ष	१०००० वर्ष	३९०००० वर्ष	५०००० वर्ष	सानत्कुमार स्वर्ग
४	सनत्कुमार	४२ धनुष	३००००० वर्ष	५०००० वर्ष	५०००० वर्ष	१०००० वर्ष	९०००० वर्ष	१००००० वर्ष	सानत्कुमार स्वर्ग
५	शान्ति	४० धनुष	१००००० वर्ष	२५००० वर्ष	२५००० वर्ष	८०० वर्ष	२४२०० वर्ष	२५००० वर्ष	मोक्ष
६	कुन्थु	३५ धनुष	९५००० वर्ष	२३७५० वर्ष	२३७५० वर्ष	६०० वर्ष	२३१५० वर्ष	२३७५० वर्ष	मोक्ष
७	अर	३० धनुष	८४००० वर्ष	२१००० वर्ष	२१००० वर्ष	४०० वर्ष	२०६०० वर्ष	२१००० वर्ष	मोक्ष
८	सुभौम	२८ धनुष	६०००० वर्ष	५००० वर्ष	५००० वर्ष	५०० वर्ष	४९५०० वर्ष	०	सप्तम नरक
९	पद्म	२२ धनुष	३०००० वर्ष	५०० वर्ष	५०० वर्ष	३०० वर्ष	१८७०० वर्ष	१०००० वर्ष	मोक्ष
१०	हरिषेण	२० धनुष	१०००० वर्ष	३२५ वर्ष	३२५ वर्ष	१५० वर्ष	८८५० वर्ष	३५० वर्ष	मोक्ष
११	जयसेन	१५ धनुष	३००० वर्ष	३०० वर्ष	३०० वर्ष	१०० वर्ष	१९०० वर्ष	४०० वर्ष	मोक्ष
१२	ब्रह्मदत्त	७ धनुष	७०० वर्ष	२८ वर्ष	५६ वर्ष	१६ वर्ष	६०० वर्ष	०	सप्तम नरक

अर्थ :—इन बारह चक्रवर्तियोंमेंसे आठ चक्रवर्ती मोक्षको, ब्रह्मदत्त और सुभौम सातवीं पृथिवीको तथा मघवा एवं सनत्कुमार चक्रवर्ती सनत्कुमार नामक तीसरे कल्पको प्राप्त हुए हैं ।।१४२२।।

।। इसप्रकार चक्रवर्तियोंकी प्ररूपणा समाप्त हुई ।।

बलदेव, नारायण एवं प्रतिनारायणोंके नाम—

विजओ अचलो धम्मो, [1]सुप्पहणामो सुदंसणो णंदी ।
णंदिमित्तो य रामो, [2]पउमो णव होंति बलदेवा ।।१४२३।।

। ९ ।

अर्थ :—विजय, अचल, धर्म, सुप्रभ, सुदर्शन, नन्दी, नन्दिमित्र, राम और पद्म ये नौ बलदेव हुए हैं ।।१४२३।।

होंति तिविट्ठ-दुविट्ठा, सयंभु-पुरिसुत्तमा य पुरिससिंहो ।
पुरिसवर - पुंडरीओ[3], दत्तो णारायणो किण्हो ।।१४२४।।

। ९ ।

अर्थ :—त्रिपृष्ठ, द्विपृष्ठ, स्वयम्भू, पुरुषोत्तम, पुरुषसिंह, पुरुषपुण्डरीक, पुरुष-दत्त, नारायण (लक्ष्मण) और कृष्ण ये नौ नारायण हुए हैं ।।१४२४।।

अस्सग्गीवो तारग - मेरग - मधुकीटभा[4] णिसुंभो य ।
बलि - पहरणो य रावण - जरसंधा[5] णव य पडिसत्तू ।।१४२५।।

। ९ ।

अर्थ :—अश्वग्रीव, तारक, मेरक, मधुकैटभ, निशुम्भ, बलि, प्रहरण, रावण और जरासंध ये नौ प्रतिशत्रु (प्रतिनारायण) हुए हैं ।।१४२५।।

---

१. ब. उ. सुहप्पणामो । २. द. ब. क. ज. य. उ. पउमो एदे णव बलदेवा य विण्णेया । ३. द. ब. क. ज. य. उ. पुंडरीया । ४. ब. क. उ. मधुकीटगा । ५. द. ब. क. ज. य उ. जरसिंघू ।

बलदेव-वासुदेव-प्पडिसत्तूणं जाणावण्ट्ठं संदिट्ठी—

पंच जिणिंदे वंदंति, केसवा पंच आणुपुव्वीए।
सेयंससामि - पहुदिं, तिविट्ठ - पमुहा य पत्तेक्कं ॥१४२६॥

बलदेव, वासुदेव एवं प्रतिशत्रुओंको जाननेके लिए सदृष्टि—

अर्थ :—त्रिपृष्ठ आदिक पाँच नारायणोंमेंसे प्रत्येक नारायण क्रमशः श्रेयांसस्वामी आदिक पाँच तीर्थंकरोंकी वन्दना करते हैं (प्रारम्भके पाँच नारायण क्रमशः श्रेयांसनाथ आदि पाँच तीर्थंकरोंके कालमें ही हुए हैं) ॥१४२६॥

अर - मल्लि - अंतराले, णादव्वो पुंडरीय-णामो[1] सो।
मल्लि - मुणिसुव्वयाणं, विच्चाले दत्त - णामो[2] सो ॥१४२७॥

अर्थ :—अर और मल्लिनाथ तीर्थंकरके अन्तरालमें वह पुण्डरीक तथा मल्लि और मुनि-सुव्रतके अन्तरालमें दत्त नामक नारायण जानना चाहिए ॥१४२७॥

सुव्वय - णमि - सामीणं, मज्झे णारायणो समुप्पण्णो।
णेमि - समयम्मि किण्णो, एदे णव वासुदेवा य ॥१४२८॥

अर्थ :—मुनिसुव्रतनाथ और नमिनाथ स्वामीके मध्यकालमें नारायण (लक्ष्मण) तथा नेमिनाथ स्वामीके समयमें कृष्ण नामक नारायण उत्पन्न हुए थे। ये नौ वासुदेव भी कहलाते हैं ॥१४२८॥

दस सुण्ण पंच केसव, छस्सुण्णा केसि सुण्ण केसीओ।
तिय-सुण्णमेक्क-केसी, दो सुण्णं एक्क केसि तिय सुण्णं ॥१४२९॥

[संदृष्टि अगले पृष्ठ पर देखिये]

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. णामस्स। २. द. ब. क. ज. य. उ. णामस्स।

१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	०
२	२	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	२
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	३	३	३	३	३	०

०	१	१	१	०	०	१	०	०	१	०	०	१	०	१
२	२	२	२	२	०	०	०	२	०	२	०	०	२	०
०	०	०	०	०	३	०	३	०	०	०	३	०	०	३

०	१	१
२	०	०
०	०	०

अर्थ :—क्रमशः दस शून्य, पाँच नारायण, छह शून्य, नारायण, शून्य, नारायण, तीन शून्य, एक नारायण, दो शून्य, एक नारायण और अन्तमें तीन शून्य हैं। (इस प्रकार नौ नारायणोंकी संदृष्टिका क्रम जानना चाहिए। संदृष्टिमें अंक १ तीर्थंकर का, अंक २ चक्रवर्तीका, अंक ३ नारायण का और शून्य अन्तरालका सूचक है) ।।१४२९।।

नारायणादि तीनोंके शरीरका उत्सेध—

सीदी सत्तरि सट्ठी, पण्णा पणदाल ऊणतीसाणि।
बावीस - सोल - दस-धणु, केस्सीतिदयम्मि[1] उच्छेहो ।।१४३०।।

८० । ७० । ६० । ५० । ४५ । २९ । २२ । १६ । १० ।

। इदि उस्सेहो ।

अर्थ :—केशवत्रितय—नारायण, प्रतिनारायण एवं बलदेवोंके शरीरकी ऊँचाई क्रमशः अस्सी, सत्तर, साठ, पचास, पैंतालीस, उनतीस, बाईस, सोलह और दस धनुष प्रमाण थी ।।१४३०।।

। इसप्रकार उत्सेधका कथन समाप्त हुआ ।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. केसित्तदयम्मि ।

नारायणादि तीनोंकी आयु–

सगसीदी सत्तत्तरि सग - सट्ठी सत्तत्तीस सत्त - दसा
वस्सा लक्खाण - हदा, आऊ विजयादि - पंचण्हं ।।१४३१।।

। ८७ ल। ७७ ल। ६७ ल। ३७ ल। १७ ल।

सगसट्ठी सगतीसं, सत्तरस, - सहस्स बारस - सयाणि।
कमसो आउ - पमाणं, णंदि - प्पमुहा - चउक्कम्मि।।१४३२।।

। ६७००० । ३७००० । १७००० । १२०० ।

अर्थ :–विजयादिक पाँच बलदेवोंकी आयु क्रमशः सतासी-लाख वर्ष, सतत्तर लाख वर्ष, सड़सठ लाख वर्ष, सैंतीस लाख वर्ष और सत्तरह लाख वर्ष प्रमाण थी तथा नन्दि-प्रमुख चार बलदेवोंकी आयु क्रमशः सड़सठ हजार वर्ष, सैंतीस हजार वर्ष, सत्तरह हजार वर्ष और बारह सौ वर्ष-प्रमाद्य थी।।१४३२।।

चुलसीदी बाहत्तरि, सट्ठी तीसं दसं च लक्खाणि।
पणसट्ठि - सहस्साणि, तिविट्ठ - छक्के कमे आऊ।।१४३३।।

८४ ल। ७२ ल। ६० ल। ३० ल। १० ल। ६५०००।

बत्तीस - बारसेक्कं, सहस्समाऊणि दत्त - पहुदीणं।
पडिसत्तु-आउ-माणं[1], णिय-णिय-णारायणउ-समा[2]।।१४३४।।

३२०००। १२०००। १०००।

अर्थ :–त्रिपृष्ठादिक छह नारायणोंकी आयु क्रमशः चौरासी लाख वर्ष, बहत्तर लाख वर्ष साठ लाख वर्ष, तीस लाख वर्ष, दस लाख वर्ष और पैसंठ हजार वर्ष प्रमाण थी तथा दत्त-प्रभृति शेष तीन नाराणोंकी आयु क्रमशः बत्तीस हजार वर्ष बारह हजार वर्ष और एक हजार वर्ष प्रमाण थी। प्रतिशत्रुओंकी आयु का प्रमाण अपने-अपने नारायणोंकी आयुके सदृश है।।१४३४।।

प्रतिनारायणों की पर्यायान्तर-प्राप्ति–

एदे णव पडिसत्तु, णवाण हत्थेहि वासुदेवाणं
णिय - चक्केहि रणेसुं, समाहदा जंति णिरय - खिदिं।।१४३५।।

---

१. द ब क ज.य.उ. साणं। २. द.ब.क.ज.य.उ. उदयसमं।

अर्थ :—ये नौ प्रतिशत्रु युद्धमें क्रमशः नौ वासुदेवोंके हाथोंसे अपने ही चक्रोंके द्वारा मृत्युको प्राप्त होकर नरकभूमिमें जाते हैं ॥१४३५॥

नारायणोंका कुमार काल, मण्डलीक काल, विजयकाल और राज्यकाल—

पणुवीस - सहस्साइं, वासा कोमार - मंडलित्ताइं ।
पढम - हरिस्स कमेणं, वास - सहस्सं विजय - कालो ॥१४३६॥

। २५००० । २५००० । १००० ।

अर्थ :—प्रथम (त्रिपृष्ठ) नारायणका-कुमारकाल पच्चीस हजार वर्ष, मण्डलीक-काल पच्चीस हजार वर्ष और विजयकाल एक हजार वर्ष प्रमाण है ॥१४३६॥

तेसीदि लक्खाणि, उणवण्ण - सहस्स - संजुवाइं पि ।
वरिसाणि रज्जकालो, णिद्दिट्ठो पढम - किण्हस्स ॥१४३७॥

। ८३४९००० ।

अर्थ :—प्रथम नारायणका राज्य-काल तेरासी लाख उनचास हजार वर्ष प्रमाण निर्दिष्ट किया गया है ॥१४३७॥

कोमार-मंडलित्ते[1], ते च्चिय बिदिए जवो वि वास-सदं ।
इगिहत्तरि - लक्खाइं, उणवण्ण-सहस्स-णव-सया रज्जं ॥१४३८॥

। २५००० । २५००० । १०० । ७१४९९०० ।

अर्थ :—द्वितीय नारायणका कुमार और मण्डलीक-काल उतना ही (प्रथम नारायणके सदृश पच्चीस-पच्चीस हजार वर्ष, जयकाल सौ वर्ष) और राज्यकाल इकत्तर लाख उनचास हजार नौ सौ वर्ष प्रमाण कहा गया है ॥१४३८॥

बिदियादो[2] अद्धाइं, सयंभुकोमार - मंडलित्ताणि ।
विजओ णउदी रज्जं, तिय-काल-विहीण-सट्ठि-लक्खाइं ॥१४३९॥

। १२५०० । १२५०० । ९० । ५९७४९१० ।

---

१. ब. मंडलित्तो तच्चिय । २. द. ब. क. ज. य. उ. तिदियादो ।

अर्थ :–स्वयम्भूनारायणका कुमारकाल और मण्डलीक-काल द्वितीय नारायणसे आधा (बारह हजार पाँचसौ वर्ष), विजयकाल नब्बैवर्ष और राज्यकाल इन तीनों (कुमारकाल १२५०० + मण्डलीक काल १२५०० + विजय काल ९० = २५०९० वर्ष) कालों से रहित साठ लाख (६०००००० – २५०९० = ५९७४९१०) वर्ष कहा गया है।।१४३९।।

तुरिमस्स सत्त तेरस, सयाणि कोमार-मंडलित्ताणिं।
विजओ सादी रज्जं, तिय-काल-विहीण-तीस-लक्खाइं।।१४४०।।

। ७००। १३००। ८०। २९९७९२०।

अर्थ :–चतुर्थ नारायणका कुमार काल और मण्डलीककाल क्रमशः सात-सौ वर्ष और तेरहसौ वर्ष, विजयकाल अस्सी वर्ष तथा राज्यकाल इन तीनों (कुमारकाल ७०० + मण्डीककाल १३०० + विजयकाल ८० = २०८०) कालोंसे रहित तीस लाख (३०००००० – २०८० = २९९७९२०) वर्ष प्रमाण कहा गया है।।१४४०।।

कोमारो तिण्णिसया, बारस-सय-पण्ण मंडलीयत्तं।
पंचम विजयो सत्तरि, रज्जं तिय-काल-हीण-दह-लक्खा।।१४४१।।

।३००। १२५०। ७०। ९९८३८०।

अर्थ :–पाँचवें नारायणका कुमारकाल तीनसौ वर्ष, मण्डलीक-काल बारहसै पचास वर्ष, विजय-काल सत्तर वर्ष और राज्य-काल इन तीनों (कुमार काल ३०० + मण्डलीककाल १२५० + विजयकाल ७० = १६२०) कालों से रहित दस लाख (१०००००० – १६२० = ९९८३८०) वर्ष प्रमाण कहा गया है।।१४४१।।

कोमार - मंडलित्ते, कमसो छद्दे सपण्ण-दोण्णि-सया।
विजयो सट्ठी रज्जं, चउसट्ठि-सहस्स-चउसया तालं।।१४४२।।

। २५०। २५०। ६०। ६४४४०।

अर्थ :–छठे पुण्डरीक नारायणका कुमारकाल और मण्डलीककाल क्रमशः दो सौ पचास वर्ष, विजयकाल साठ वर्ष और राज्यकाल चौंसठ हजार चारसौ चालीस वर्ष प्रमाण है।।१४४२।।

कोमारो दोण्णि सया, बासा पण्णास मंडलीयत्तं ।
दत्ते विजयो पण्णा, इगितीस-सहस्स-सग-सया रज्जं ।।१४४३।।

। २०० । ५० । ५० । ३१७०० ।

अर्थ :—दत्त नारायणका कुमारकाल दोसौ वर्ष, मण्डलीककाल पचास वर्ष, विजयकाल पचास वर्ष और राज्यकाल इकतीस हजार सातसौ वर्ष प्रमाण कहा गया है ।।१४४३।।

अट्ठमए इगि - ति - सया, कमेण कोमार-मंडलीयत्तं ।
विजयं चालं रज्जं, एक्करस-सहस्स-पण-सया सट्ठी ।।१४४४।।

। १०० । ३०० । ४० । ११५६० ।

अर्थ :—आठवें नारायणका कुमार और मण्डलीककाल क्रमशः एकसौ और तीनसौ वर्ष, विजय-काल चालीस वर्ष और राज्यकाल ग्यारह हजार पाँचसौ साठ वर्ष प्रमाण है ।।१४४४।।

सोलस छप्पण्ण कमे, वासा कोमार - मंडलीयत्तं[1] ।
किण्हस्स अट्ठ विजओ, वीसाहिय - णव - सया - रज्जं ।।१४४५।।

१६ । ५६ । ८ । ९२० ।

अर्थ :—कृष्ण नारायणका कुमार-काल और मण्डलीककाल क्रमशः सोलह और छप्पन वर्ष, विजयकाल आठ वर्ष तथा राज्यकाल नौसौ बीस वर्ष प्रमाण है ।।१४४५।।

नारायण एवं बलदेवोंके रत्नोंका निर्देश—

सत्ती-कोवंड-गदा, चक्क - किवाणाणि संख - दंडाणि ।
इय सत्त महारयणा, सोहंते अद्धचक्कीणं ।।१४४६।।

। ७ ।

अर्थ :—शक्ति, धनुष, गदा, चक्र, कृपाण, शङ्ख एवं दण्ड ये सात महारत्न अर्ध-चक्रवर्तियों के पास शोभायमान रहते हैं ।।१४४६।।

---

1. द. ब. क. ज. य. उ. मंडलीयत्ता ।

मुसलाइं लंगलाइं, गदाइ रयणावलीओ चत्तारि ।
रयणाइं राजंते, बलदेवाणं णवाणं पि ॥१४४७॥

। ४ ।

अर्थ :—मूसल, लांगल (हल), गदा और रत्नावली (हार), ये चार रत्न सभी (नौ) बलदेवोंके यहाँ शोभायमान रहते हैं ॥१४४७॥

बलदेव आदि तीनोंकी पर्यायान्तर-प्राप्ति—

अणिदाण - गदा सव्वे, बलदेवा केसवा णिदाण-गदा ।
उड्ढंगामी सव्वे, बलदेवा केसवा अधोगामी ॥१४४८॥

अर्थ :—सब बलदेव निदान रहित और सब नारायण निदान सहित होते हैं । इसीप्रकार सब बलदेव ऊर्ध्वगामी (स्वर्ग और मोक्षगामी) तथा सब नारायण अधोगामी (नरक जाने वाले) होते हैं ॥१४४८॥

णिस्सेयसमट्ठ गया, [1]हलिणो चरिमो दु बम्हकप्प-गदो ।
तत्तो कालेण मदो, सिज्झदि किण्हस्स तित्थम्मि ॥१४४९॥

अर्थ :—आठ बलदेव मोक्ष और अन्तिम बलदेव ब्रह्मस्वर्गको प्राप्त हुए हैं । अन्तिम बलदेव स्वर्गसे च्युत होकर कृष्णके तीर्थमें (कृष्ण इसी भरतक्षेत्रमें आगामी चौबीसीके सोलहवें तीर्थंकर होंगे) सिद्धपदको प्राप्त होगा ॥१४४९॥

पढम - हरी सत्तमए, पंच च्छट्ठम्मि पंचमी एक्को ।
एक्को तुरिमे चरिमो, तदिए णिरए तहेव पडिसत्तू ॥१४५०॥

अर्थ :—प्रथम नारायण सातवें नरकमें, पाँच नारायण छठे नरकमें, एक पाँचवें नरकमें, एक (लक्ष्मण) चौथे नरकमें और अन्तिम नारायण (कृष्ण) तीसरे नरकमें गया है । इसीप्रकार प्रतिशत्रुओं की भी गति जाननी चाहिए ॥१४५०॥

(तालिका ३७ अगले पृष्ठ ४१९ पर देखिये)

---

१. द ज. य. हरिणो ।

तालिका : ३७

बलभद्रोंका परिचय

क्र०	नाम	उत्सेध	आयु	रत्न	पर्यायन्तर प्राप्ति
१	विजय	८० धनुष	८७ लाख वर्ष	मूसल, हल, गदा और रत्नावली हार सब बलदेवोंके पास रहते हैं।	मोक्ष
२	अचल	७० धनुष	७७ लाख वर्ष		मोक्ष
३	धर्म	६० धनुष	६७ लाख वर्ष		मोक्ष
४	सुप्रभ	५० धनुष	३७ लाख वर्ष		मोक्ष
५	सुदर्शन	४५ धनुष	१७ लाख वर्ष		मोक्ष
६	नन्दी	२९ धनुष	६७००० वर्ष		मोक्ष
७	नन्दिमित्र	२२ धनुष	३७००० वर्ष		मोक्ष
८	राम	१६ धनुष	१७००० वर्ष		मोक्ष
९	पद्म	१० धनुष	१२०० वर्ष		पाँचवाँ ब्रह्मस्वर्ग

तालिका : ३८

नारायणोंका परिचय

क्र०	नाम	उत्सेध	आयु	कुमारकाल	मण्डलीककाल	विजयकाल	राज्यकाल	रत्न	पर्यायान्तर प्राप्ति
१	त्रिपृष्ठ	८० धनुष	८४ लाख वर्ष	२५००० वर्ष	२५००० वर्ष	१००० वर्ष	८३४९००० वर्ष	शक्ति, धनुष, गदा, चक्र, कृपाण, शंख और दण्ड ये सब नारायणोंके पास रहते हैं।	सातवाँ नरक
२	द्विपृष्ठ	७० धनुष	७२ लाख वर्ष	२५००० वर्ष	२५००० वर्ष	१०० वर्ष	७१४९९०० वर्ष		छठा नरक
३	स्वयम्भू	६० धनुष	६० लाख वर्ष	१२५०० वर्ष	१२५०० वर्ष	९० वर्ष	५९७४९१० वर्ष		छठा नरक
४	पुरुषोत्तम	५० धनुष	३० लाख वर्ष	७०० वर्ष	१३०० वर्ष	८० वर्ष	२९९७९२० वर्ष		छठा नरक
५	पुरुषसिंह	४५ धनुष	१० लाख वर्ष	३०० वर्ष	१२५० वर्ष	७० वर्ष	९९८३८० वर्ष		छठा नरक
६	पुरुष पुण्डरीक	२९ धनुष	६५००० वर्ष	२५० वर्ष	२५० वर्ष	६० वर्ष	६४४४० वर्ष		छठा नरक
७	पुरुषदत्त	२२ धनुष	३२००० वर्ष	२०० वर्ष	५० वर्ष	५० वर्ष	३१७०० वर्ष		पाँचवाँ नरक
८	नारायण (लक्ष्मण)	१६ धनुष	१२००० वर्ष	१०० वर्ष	३०० वर्ष	४० वर्ष	११५६० वर्ष		चौथा नरक
९	कृष्ण	१० धनुष	१००० वर्ष	१६ वर्ष	५६ वर्ष	८ वर्ष	९२० वर्ष		तीसरा नरक

रुद्रोंके नाम एवं उनके तीर्थ निर्देश—

भीमावलि - जिवसत्तू, रुद्दो वइसाणलो य सुपइट्ठो ।
अचलो य पुंडरीओ, अजितंधर - अजियणाभी य ।।१४५१।।

पीढो सच्चइपुत्तो, अंगधरा तित्थकत्ति - समएसु ।
रिसहम्मि पढम-रुद्दो[1], जिवसत्तू होदि अजियसामिम्मि ।।१४५२।।

सुविहि - पमुहेसु रुद्दा, सत्तसु सत्त - क्कमेण संजादा ।
संति-जिणिंदे दसमो, सच्चइपुत्तो य वीर - तित्थम्मि ।।१४५३।।

अर्थ :—भीमावलि, जितशत्रु, रुद्र, वैश्वानर (विश्वानल), सुप्रतिष्ठ, अचल, पुण्डरीक, अजितन्धर, अजितनाभि, पीठ और सात्यकिपुत्र ये ग्यारह रुद्र अङ्गधर होते हुए, तीर्थंकर्ताओंके काल में हुए हैं। इनमेंसे प्रथम रुद्र ऋषभदेवके कालमें और जितशत्रु अजितनाथ स्वामीके कालमें हुआ है। इसके आगे सात रुद्र क्रमशः सुविधिनाथको आदि लेकर सात तीर्थंकरोंके समयमें हुए हैं। दसवाँ रुद्र शान्तिनाथ तीर्थंकरके समयमें और सात्यकि पुत्र वीर जिनेन्द्रके तीर्थमें हुआ है ।।१४५१-१४५३।।

रुद्रोंके नरक जानेका कारण—

सव्वे दसमे पुव्वे, रुद्दा भट्टा तवाउ विसयत्थं[2] ।
सम्मत्त - रयण - रहिदा, बुड्ढा घोरेसु णिरएसुं ।।१४५४।।

अर्थ :—सब रुद्र दसवें पूर्वका अध्ययन करते समय विषयोंके निमित्त तपसे भ्रष्ट होकर सम्यक्त्वरूपी रत्नसे रहित होते हुए घोर नरकोंमें डूब गये ।।१४५४।।

रुद्रोंका तीर्थ निर्देश—

दो रुद्द सुण्ण छक्का, सग रुद्दा तह य दोण्णि सुण्णाइं ।
रुद्दो पण्णरसाइं, सुण्णं रुद्दं च चरिमम्मि ।।१४५५।।

(संदृष्टि अगले पृष्ठ ४२२ पर देखिये)

---

१. द. ब. क. ज. उ. रुद्दा । २. द. ब. क. ज. य. उ. विसयत्तं .

१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	०	०	१	१	१	०	०	१	०	०	१	०	०	१	०	१	०	१	१
२	२	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	२	२	२	२	२	२	०	०	०	२	०	२	०	०	२	०	२	०	०
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	३	३	३	३	३	०	०	०	०	०	०	३	०	३	०	०	०	३	०	०	३	०	०	०
४	४	०	०	०	०	०	०	४	४	४	४	४	४	४	०	०	४	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	४

अर्थ :—क्रमशः दो रुद्र, छह शून्य, सात रुद्र, दो शून्य, रुद्र, पन्द्रह शून्य और अन्तिम कोठेमें एक रुद्र है। (इसप्रकार रुद्रोंकी संदृष्टि है संदृष्टिमें अंक १ तीर्थंकर, अंक २ चक्रवर्तीका, अंक ३ नारायण का, अंक ४ रुद्र का और शून्य अंतरालका सूचक है।) ॥१४५५॥

नोट :—वर्तमान चौबीसीके तीर्थकालीन प्रसिद्ध पुरुषों [गा० १२९८ से १३०२, १४२९ और १४५५ की मूल संदृष्टियों] का विवरण इस तालिका ३९ में निहित है—

(तालिका ३९ पृष्ठ ४२४-४२५ पर देखिये)

रुद्रोंके शरीरका उत्सेध—

पंच-सया पण्णाहिय-चउस्सया इगि - सयं च णउदी य।
सीदी सत्तरि सट्ठी, पण्णासा अट्ठवीसं पि ॥१४५६॥

चउवीस - च्चिय दंडा, भीमावलि-पहुदि-रुद्द-दसकस्स।
उच्छेहो णिद्दिट्ठो, सग हत्था सच्चइसुग्रस्स ॥१४५७॥

५०० । ४५० । १०० । ९० । ८० । ७० । ६० । ५० । २८ । २४ । ह ७ ।

अर्थ :—भीमावलि आदि दस रुद्रोंके शरीरकी ऊँचाई क्रमशः पाँचसौ, चारसौ पचास, एकसौ, नब्बे, अस्सी, सत्तर, साठ, पचास, अट्ठाईस और चौबीस धनुष तथा सात्यकिसुतकी ऊँचाई सात हाथ प्रमाण कही गई है ।।१४५६-१४५७।।

रुद्रोंकी आयुका प्रमाण—

तेसीदी इगिहत्तरि, दोण्णि एक्कं च पुव्व - लक्खाणि ।
चुलसीदि सट्ठि पण्णा, [1]चालिस - वस्साणि लक्खाणि ।।१४५८।।
वीस दस चेव लक्खा, वासा एक्कूण - सत्तरी कमसो ।
एक्कारस - रुद्दाणं, पमाणमाउस्स णिद्दिट्ठं ।।१४५६।।

पु ८३ ल । पु ७१ ल । पु २ ल । पु १ ल । व ८४ ल । व ६० ल । व ५० ल ।
४० ल । व २० ल । व १० ल । ६६ ।

अर्थ :—तेरासी लाख पूर्व, इकहत्तर लाख पूर्व, दो लाख पूर्व, एक लाख पूर्व, चौरासी लाख वर्ष, साठ लाख वर्ष, पचास लाख वर्ष, चालीस लाख वर्ष, बीस लाख वर्ष, दस लाख वर्ष और एक कम सत्तर वर्ष, यह क्रमशः ग्यारह रुद्रोंकी आयुका प्रमाण निर्दिष्ट किया गया है ।।१४५८-१४५६।।

रुद्रोंके कुमार-काल, संयमकाल और संयमभङ्ग कालका निर्देश—

सत्तावीसा लक्खा, छावट्ठि - सहस्सयाणि छच्च सया ।
छावट्ठी पुव्वाणि, कुमार - कालो पहिल्लस्स ।।१४६०।।

। पु २७६६६६६ ।

अर्थ :—प्रथम (भीमावलि) रुद्रका कुमारकाल सत्ताईस लाख छयासठ हजार छहसौ छयासठ पूर्व-प्रमाण है ।।१४६०।।

सत्तावीसं लक्खा, छावट्ठि - सहस्सयाणि छच्च सया ।
अडसट्ठी पुव्वाणि, [2]भीमावलि - संजमे कालो ।।१४६१।।

। पुव्व २७६६६६८ ।

---

१. द. ज. य. चालीसं वासाणि, ब. उ. चालीस वस्साणि, क. चालीस वासादि । २. ब. उ. भीमावलि ।

तालिका : ३६

वर्तमान चौबीसीके प्रसिद्ध पुरुष

क०	तीर्थंकर	चक्रवर्ती	बलदेव	नारायण	प्रतिनारायण	रुद्र
१	१ ऋषभ	१ भरत	०	०	०	१ भीमावलि
२	२ अजित	२ सगर	०	०	०	२ जितशत्रु
३	३ सम्भव	०	०	०	०	०
४	४ अभिनन्दन	०	०	०	०	०
५	५ सुमति	०	०	०	०	०
६	६ पद्मप्रभ	०	०	०	०	०
७	७ सुपार्श्व	०	०	०	०	०
८	८ चन्द्रप्रभ	०	०	०	०	०
९	९ पुष्पदन्त	०	०	०	०	३ रुद्र
१०	१० शीतल	०	०	०	०	४ वैश्वानर
११	११ श्रेयांस	०	१ विजय	१ त्रिपृष्ठ	१ अश्वग्रीव	५ सुप्रतिष्ठ
१२	१२ वासुपूज्य	०	२ अचल	२ द्विपृष्ठ	२ तारक	६ अचल
१३	१३ विमल	०	३ धर्म	३ स्वयम्भू	३ मेरक	७ पुण्डरीक
१४	१४ अनन्त	०	४ सुप्रभ	४ पुरुषोत्तम	४ मधुकैटभ	८ अजितन्धर
१५	१५ धर्म	०	५ सुदर्शन	५ पुरुषसिंह	५ निशुम्भ	९ अजितनाभि

१६	०	३ मघवा	०	०	०	०
१७	०	४ सनत्कुमार	०	०	०	०
१८	१६ शान्तिनाथ	५ शान्तिनाथ	०	०	०	१० पीठ
१९	१७ कुन्थुनाथ	६ कुन्थुनाथ	०	०	०	०
२०	१८ अरनाथ	७ अरनाथ	०	०	०	०
२१	०	८ सुभौम	०	०	०	०
२२	०	०	६ नन्दी	६ पुण्डरीक	६ बलि	०
२३	१९ मल्लिनाथ	०	०	०	०	०
२४	०	०	७ नन्दिमित्र	७ पुरुषदत्त	७ प्रहरण	०
२५	०	९ पद्म	०	०	०	०
२६	२० मुनिसुव्रत	०	०	०	०	०
२७	०	१० हरिषेण	०	०	०	०
२८	०	०	८ राम	८ लक्ष्मण	८ रावण	०
२९	२१ नमिनाथ	०	०	०	०	०
३०	०	११ जयसेन	०	०	०	०
३१	२२ नेमिनाथ	०	९ पद्म	९ कृष्ण	९ जरासंघ	०
३२	०	१२ ब्रह्मदत्त	०	०	०	०
३३	२३ पार्श्वनाथ	०	०	०	०	०
३४	२४ महावीर	०	०	०	०	११ सात्यकिपुत्र
	२४	१२	९	९	९	११

अर्थ :—भीमावलि रुद्रका संयमकाल सत्ताईस लाख छयासठ हजार छहसौ अड़सठ पूर्व-प्रमाण है ॥१४६१॥

सत्तावीसं लक्खा, छावट्ठि-सहस्स-छस्स-प्पब्भहिया ।
छावट्ठी पुव्वाणि, भीमावलि - भंग - तव - कालो ॥१४६२॥

पुव्व २७६६६६६

अर्थ :—भीमावलि रुद्रका भङ्ग-तप काल सत्ताईस लाख छयासठ हजार छहसौ छयासठ पूर्व-प्रमाण है ॥१४६२॥

तेवीस पुव्व - लक्खा, छावट्ठि-सहस्स-छसय-छावट्ठी ।
जिदसत्तू - कोमारो, तेत्तिय - मेत्तो य भंग-तव-कालो ॥१४६३॥

। पुव्व २३६६६६६ । २३६६६६६ ।

अर्थ :—जितशत्रु रुद्रका तेईस लाख छयासठ हजार छहसौ छयासठ पूर्व प्रमाण कुमार-काल और इतना ही भङ्ग-तप काल है ॥१४६३॥

तेवीस पुव्व - लक्खा, छावट्ठि-सहस्स-छसय-अडसट्ठी ।
संजम - काल - पमाणं, एदं जिदसत्तु - रुद्दस्स ॥१४६४॥

। पु २३६६६६८ ।

अर्थ :—जितशत्रु रुद्रके संयमकालका प्रमाण तेईस लाख छयासठ हजार छहसौ अड़सठ पूर्व है ॥१४६४॥

छावट्ठी - सहस्साइं, छावट्ठब्भहिय - छस्सयाइं पि ।
पुव्वाणं कोमारो, विणट्ठ - कालो य रुद्दस्स ॥१४६५॥

। पु ६६६६६ । ६६६६६ ।

अर्थ :—तृतीय रुद्र नामक रुद्रका कुमारकाल और विनष्ट-संयम काल छयासठ हजार छह सौ छयासठ पूर्व प्रमाण है ॥१४६५॥

छावट्ठि - सहस्साइं, पुव्वाणं छस्सयाणि अडसट्ठी ।
संजम - काल - पमाणं, तइज्ज - रुद्दस्स णिद्दिट्ठं ॥१४६६॥

। पु ६६६६८ ।

अर्थ :—तृतीय रुद्रके संयम कालका प्रमाण छ्यासठ हजार छहसौ अड़सठ पूर्व कहा गया है ।।१४६६।।

तेत्तीस - सहस्साणि, पुव्वाणि तिय - सयाणि तेत्तीसं ।
वइसाणरस्स कहिदो, कोमारो भंग - तव - कालो ।।१४६७।।

। पु ३३३३३ । ३३३३३ ।

अर्थ :—वैश्वानर (विश्वानल) का कुमार काल और भङ्ग-तप-काल तैंतीस हजार तीनसौ तैंतीस पूर्व-प्रमाण कहा गया है ।।१४६७।।

तेत्तीस-सहस्साणि, पुव्वाणि तिय - सयाणि चउतीसं[1] ।
संयम - समय - पमाणं, वइसाणल - णामधेयस्स ।।१४६८।।

। पु ३३३३४ ।[2]

अर्थ :—वैश्वानर (विश्वानल) नामक रुद्रके संयम-समयका प्रमाण तैंतीस हजार तीनसौ चौंतीस पूर्व कहा गया है ।।१४६८।।

अट्ठावीसं लक्खा, वासाणं सुप्पइट्ठ - कोमारो ।
तेत्तिय - मेत्तो संजम - कालो - तव - भट्ठ - समयस्स ।।१४६९।।

२८००००० । २८००००० । २८००००० ।

अर्थ :—सुप्रतिष्ठका कुमारकाल अट्ठाईस लाख वर्ष है, संयमकाल भी इतना (२८ लाख वर्ष) ही है और तप-भ्रष्ट काल भी इतना (२८ लाख वर्ष) ही कहा गया है ।।१४६९।।

वासाओ वीस-लक्खा, कुमार-कालो य अचल-णामस्स ।
तेत्तिय - मेत्तो[3] संजम - कालो तव - भट्ठ - कालो य ।।१४७०।।

। २०००००० । २०००००० । २०००००० ।

अर्थ :—अचल नामक रुद्रका कुमारकाल बीस लाख वर्ष, इतना (२० लाख वर्ष) ही संयमकाल और तप-भ्रष्ट-काल भी इतना ही है ।।१४७०।।

वासा सोलस - लक्खा, छाबट्ठि-सहस्स-छ-सय-छावट्ठी ।
कोमार - भंग - कालो, पत्तेयं पुंडरीयस्स ।।१४७१।।

। १६६६६६६ । १६६६६६६ ।

---

१. द. ज. य. छत्तीसं । २. द. य. ३३३३८ । ३. द. ब. क. ज. य. उ. मेत्ता ।

अर्थ :—पुण्डरीक रुद्रका कुमारकाल और भङ्ग-संयमकाल प्रत्येक सोलह लाख छ्यासठ हजार छहसौ छ्यासठ वर्ष-प्रमाण है ।।१४७१।।

वासा सोलस - लक्खा, छावट्ठि-सहस्स-छ-सय-अडसट्ठी ।
जिणदिक्ख - गमण - काल - प्पमाणयं पुंडरीयस्स ।।१४७२।।

। १६६६६६८ ।

अर्थ :—पुण्डरीक रुद्रके जिनदीक्षा गमन अर्थात् संयम कालका प्रमाण सोलह लाख छ्यासठ हजार छहसौ अड़सठ वर्ष कहा गया है ।।१४७२।।

तेरस - लक्खा वासा, तेत्तीस-सहस्स-ति-सय-तेत्तीसा ।
अजियंधर - कोमारो, जिणदिक्खा - भंग - कालो य ।।१४७३।।

। १३३३३३३ । १३३३३३३ ।

अर्थ :—अजितन्धर रुद्रका कुमार और जिनदीक्षा-भङ्गकाल प्रत्येक तेरह लाख तेंतीस हजार तीनसौ तेंतीस वर्ष-प्रमाण कहा गया है ।।१४७३।।

वासा तेरस - लक्खा, तेत्तीस-सहस्स-ति-सय-चोत्तीसा ।
अजियंधरस्स एसो, जिणिंद - दिक्खग्गहण - कालो ।।१४७४।।

। १३३३३३४ ।

अर्थ :—तेरह लाख तेंतीस हजार तीनसौ चौंतीस वर्ष, यह अजितन्धर रुद्रका जिनदीक्षा ग्रहण काल है ।।१४७४।।

वासाणं लक्खा छह, [1]छासट्ठि-सहस्स-छ-सय-छावट्ठी ।
कोमार - भंग - कालो, पत्तेयं अजिय - णाभिस्स ।।१४७५।।

। ६६६६६६ । ६६६६६६ ।

अर्थ :—अजितनाभिका कुमार काल और भङ्ग-संयमकाल प्रत्येक छह लाख छ्यासठ हजार छहसौ छ्यासठ वर्ष प्रमाण है ।।१४७५।।

छल्लक्खा वासाणं, छावट्ठि-सहस्स-छ - सय - अडसट्ठी ।
जिणरूव - धरिय - कालो, परिमाणो अजियणाभिस्स ।।१४७६।।

। ६६६६६८ ।

---

१. द. ज. छावट्ठि, ब. क. उ. बासट्ठि ।

अर्थ :—अजितनाभिका जिनदीक्षा धारणकाल छह लाख छयासठ हजार छहसौ अड़सठ वर्ष प्रमाण है ।।१४७६।।

वरिसाणि तिण्णि लक्खा, तेत्तीस-सहस्स-ति-सय-तेत्तीसा ।
कोमार - भट्ठ - समया, कमसो पीढाल - रुद्दस्स ।।१४७७।।

। ३३३३३३ । ३३३३३३ ।

अर्थ :—पीटाल (पीठ) रुद्रका कुमार काल और तप-भ्रष्ट काल क्रमशः तीन लाख तेंतीस हजार तीनसौ तेंतीस वर्ष प्रमाण है ।।१४७७।।

तिय-लक्खाणि वासा, तेत्तीस-सहस्स-ति-सय-चोत्तीसा ।
संजम - काल - पमाणं, णिद्दिट्ठं दसम - रुद्दस्स ।।१४७८।।

। ३३३३३४ ।

अर्थ :—दसवें (पीठ) रुद्रके संयम-कालका प्रमाण तीन लाख तेंतीस हजार तीनसौ चौंतीस वर्ष निर्दिष्ट किया गया है ।।१४७८।।

सग - वासं कोमारो, संजम - कालो हवेदि चोत्तीसं ।
अडवीस भंग - कालो, एयारसमस्स रुद्दस्स ।।१४७६।।

। ७ । ३४ । २८ ।

अर्थ :—ग्यारहवें (सात्यकिपुत्र) रुद्रका कुमार-काल सात वर्ष, संयम काल चौंतीस वर्ष और संयम-भङ्ग-काल अट्ठाईस वर्ष प्रमाण है ।।१४७९।।

रुद्रोंकी पर्यायान्तर प्राप्ति—

दो रुद्दा सत्तमए, पंच य छट्ठम्मि पंचमे एक्को ।
दोण्णि चउत्थे पडिदा, एक्करसो तदिय - णिरयम्मि ।।१४८०।।

। रुद्दा-गदा ।

अर्थ :—इन ग्यारह रुद्रोंमेंसे दो रुद्र सातवें नरकमें, पाँच छठेमें, एक पाँचवेंमें, दो चौथेमें और अन्तिम (ग्यारहवाँ) रुद्र तीसरे नरकमें गया है ।।१४८०।।

। इसप्रकार रुद्रोंका कथन समाप्त हुआ ।

तालिका : ४०

रुद्रोंका परिचय-गाथा १४५६-१४८०

क्र०	नाम	उत्सेध	आयु	कुमारकाल	संयम-काल	संयम भ्रष्टकाल	पर्यायान्तर प्राप्ति
१	भीमावलि	५०० धनुष	८३ लाख पूर्व	२७६६६६६ पूर्व	२७६६६६८ पूर्व	२७६६६६६ पूर्व	सातवाँ नरक
२	जितशत्रु	४५० धनुष	७१ लाख पूर्व	२३६६६६६ पूर्व	२३६६६६८ पूर्व	२३६६६६६ पूर्व	सातवाँ नरक
३	रुद्र	१०० धनुष	२ लाख पूर्व	६६६६६ पूर्व	६६६६८ पूर्व	६६६६६ पूर्व	छठा नरक
४	वैश्वानल	९० धनुष	१ लाख पूर्व	३३३३३ पूर्व	३३३३४ पूर्व	३३३३३ पूर्व	छठा नरक
५	सुप्रतिष्ठ	८० धनुष	८४ लाख वर्ष	२८ लाख वर्ष	२८ लाख वर्ष	२८ लाख वर्ष	छठा नरक
६	अचल	७० धनुष	६० लाख वर्ष	२० लाख वर्ष	२० लाख वर्ष	२० लाख वर्ष	छठा नरक
७	पुण्डरीक	६० धनुष	५० लाख वर्ष	१६६६६६६ वर्ष	१६६६६६८ वर्ष	१६६६६६६ वर्ष	छठा नरक
८	अजितन्धर	५० धनुष	४० लाख वर्ष	१३३३३३३ वर्ष	१३३३३३४ वर्ष	१३३३३३३ वर्ष	पाँचवाँ नरक
९	अजितनाभि	२८ धनुष	२० लाख वर्ष	६६६६६६ वर्ष	६६६६६८ वर्ष	६६६६६६ वर्ष	चौथा नरक
१०	पीठाल पीठ	२४ धनुष	१० लाख वर्ष	३३३३३३ वर्ष	३३३३३४ वर्ष	३३३३३३ वर्ष	चौथा नरक
११	सात्यकिपुत्र	७ हाथ	६९ वर्ष	७ वर्ष	३४ वर्ष	२८ वर्ष	तीसरा नरक

नारदोंका निर्देश–

भीम-महभीम-रुद्दा, महरुद्दो दोण्णि काल – महकाला।

दुम्मुह – णिरयमुहाधेमुह – णामा णव य णारद्दा।। १४८१।।

अर्थ :–भीम, महाभीम, रुद्र, महारुद्र, काल, महाकाल, दुर्मुख, नरकमुख और अधोमुख ये नौ नारद हुए हैं।। १४८१।।

रुद्दा इव अहरुद्दा, पाव – णिहाणा हवंति सव्वे दे।

कलह – महाजुज्झ – पिया, अधोगया वासुदेव व्व।। १४८२।।

अर्थ :—रुद्रोंके सदृश अतिरौद्र ये सब नारद पापके निधान होते हैं कलह-प्रिय एवं युद्ध-प्रिय होनेसे वासुदेवोंके समान ही ये भी नरकको प्राप्त हुए हैं ॥१४८२॥

उस्सेह - आउ - तित्थयरदेव - पच्चक्ख-भाव-पहुदीसुं ।
एदाण णारदाणं, उवएसो अम्ह उच्छिण्णो ॥१४८३॥

। णारदा गदा ।

अर्थ :—इन नारदोंकी ऊँचाई, आयु और तीर्थंकर देवोंके (प्रति) प्रत्यक्ष-भावादिकके विषयमें हमारे लिए उपदेश नष्ट हो चुका है ॥१४८३॥

। नारदोंका कथन समाप्त हुआ ।

कामदेवोंका निर्देश—

कालेसु जिणवराणं, चउवीसाणं हवंति चउवीसा ।
ते बाहुबलि - प्पमुहा, कंदप्पा णिरुवमायारा ॥१४८४॥

। कामदेवं गदं ।

अर्थ :—चौबीस तीर्थंकरोके कालमें अनुपम आकृतिके धारक वे बाहुबलि-प्रमुख चौबीस कामदेव होते हैं ॥१४८४॥

॥ कामदेवोंका कथन समाप्त हुआ ॥

१६० महापुरुषोंका मोक्षपद निर्देश—

तित्थयरा तग्गुरओ, चक्की-बल - केसि - रुद्द-णारद्दा ।
अंगज - कुलयर - पुरिसा, भव्वा सिज्झंति णियमेण ॥१४८५॥

अर्थ :—तीर्थंकर (२४), उनके गुरुजन (माता-पिता २४+२४), चक्रवर्ती (१२), बलदेव (९), नारायण (९), रुद्र (११), नारद (९), कामदेव (२४) और कुलकर (१४) ये सब (१६०) भव्य पुरुष नियमसे सिद्ध होते हैं ॥१४८५॥

दुषमा कालका प्रवेश एवं उसमें आयु आदिका प्रमाण—

णिव्वाणे वीर - जिणे, वास - तिये अट्ठ-मास-पक्खेसुं ।
गदेसुं पंचमओ, दुस्सम - कालो समल्लियदि ॥१४८६॥

अर्थ :—वीर जिनेन्द्रका निर्वाण होनेके पश्चात् तीन वर्ष, आठ मास और एक पक्ष व्यतीत हो जाने पर दुःषमाकाल प्रवेश करता है ॥१४८६॥

तप्पढम-[1]पवेसम्मि य, वीसाहिय-इगि-सयं पि परमाऊ ।
सग - हत्थो उस्सेहो, णराण चउवीस पुट्ठट्ठी ॥१४८७॥

आ १२० । ७ । २४ ।

अर्थ :—इस दुःषमाकालके प्रथम प्रवेशमें मनुष्योंकी उत्कृष्ट आयु एक सौ बीस वर्ष, ऊँचाई सात हाथ और पृष्ठ भागकी हड्डियाँ चौबीस होती हैं ॥१४८७॥

गौतमादि अनुबद्ध केवलियोंका निर्देश—

जादो सिद्धो वीरो, तद्दिवसे गोदमो परम - णाणी ।
जादो तस्सिं सिद्धे, सुधम्मसामी तदो जादो ॥१४८८॥
तम्मि कद-कम्म-णासे, जंबूसामि त्ति केवली जादो ।
तत्थ वि सिद्धि - पवण्णे, केवलिणो णत्थि अणुबद्धा ॥१४८९॥

अर्थ :—जिस दिन भगवान् महावीर सिद्ध हुए उसी दिन गौतम-गणधर केवलज्ञानको प्राप्त हुए। पुनः गौतमके सिद्ध होने पर सुधर्मस्वामी केवली हुए। सुधर्मस्वामीके कर्मनाश करने (मुक्त होने) पर जम्बूस्वामी केवली हुए। जम्बूस्वामीके सिद्ध होनेके पश्चात् फिर कोई अनुबद्ध केवली नहीं हुआ ॥१४८८–१४८९॥

गौतमादि अनुबद्ध केवलियोंका धर्म-प्रवर्तनकाल—

बासट्ठी वासाणि, गोदम - पहुदीण णाणवंताणं ।
धम्म - पयट्टण - काले, परिमाणं पिंड - रूवेणं ॥१४९०॥

। व ६२ ।

अर्थ :—गोतमादिक (गौतम गणधर, सुधर्मस्वामी और जम्बूस्वामी) केवलियोंके धर्म-प्रवर्तन-कालका प्रमाण पिण्डरूपसे बासठ वर्ष प्रमाण है ॥१४९०॥

अन्तिम केवली, चारण ऋद्धिधारी, प्रज्ञाश्रमण और अवधिज्ञानी आदिका निरूपण—

कुंडलगिरिम्मि चरिमो, केवलणाणीसु सिरिधरो सिद्धो ।
चारणरिसीसु चरिमो, सुपासचंदाभिहाणो य ॥१४९१॥

---

१. द. व. क. ज. य. पवेमि सव्विय । य. पवे सोव्वय ।

अर्थ :- केवलज्ञानियोंमें अन्तिम केवली श्रीधर कुण्डलगिरिसे सिद्ध हुए और चारण-ऋषियोंमें सुपार्श्वचन्द्र नामक ऋषि अन्तिम हुए ॥१४९१॥

पण्ण-समणेसु चरिमो, वइरजसो णाम ओहि-णाणीसु[1] ।
चरिमो सिरि - णामो सुद-विणय-सुसीलादि-संपण्णो ॥१४९२॥

अर्थ :—प्रज्ञाश्रमणोंमें वज्रयश अन्तिम हुए और अवधिज्ञानियोंमें श्रुत, विनय एवं सुशीलादिसे सम्पन्न श्री नामक ऋषि अन्तमें हुए हैं ॥१४९२॥

मउड-धरेसुं चरिमो, जिणदिक्खं [2]धरदि चंदगुत्तो य ।
तत्तो मउडधरा [3]दु - प्पव्वज्जं णेव गेण्हंति ॥१४९३॥

अर्थ :—मुकुटधरोंमें अन्तिम जिनदीक्षा चन्द्रगुप्तने धारण की । इसके पश्चात् किसी मुकुटधारीने प्रव्रज्या ग्रहण नहीं की ॥१४९३॥

चौदहपूर्व-धारियोंके नाम एवं उनके कालका प्रमाण—

णंदी य णंदिमित्तो, बिदियो [4]अवराजिदो तइज्जो य ।
गोवद्धणो चउत्थो, पंचमओ भद्दबाहु त्ति ॥१४९४॥
पंच इमे पुरिसवरा, चोद्दसपुव्वी जगम्मि विक्खादा ।
ते बारस - अंगधरा, तित्थे सिरिवड्ढमाणस्स ॥१४९५॥

अर्थ :—प्रथम नन्दी, द्वितीय नन्दिमित्र, तृतीय अपराजित, चतुर्थ गोवर्धन और पञ्चम भद्रबाहु, इसप्रकार ये पाँच पुरुषोत्तम जगमें "चौदह पूर्वी" इस नामसे विख्यात हुए। बारह अंगोंके धारक ये पाँचों श्रुतकेवली श्रीवर्धमान स्वामीके तीर्थमें हुए हैं ॥१४९४-१४९५॥

पंचाणं मिलिदाणं, काल - पमाणं हवेदि वास-सदं ।
वीदम्मि[5] य पंचमए, भरहे सुदकेवली णत्थि ॥१४९६॥

। १०० ।

। चोद्दसपुव्वी गदा ।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. णाणिस्स । २ द. धरिदि । ३ द. ब. क. ज. य. उ. दो । ४. द. ब. उ. अवराजिदं तइं जाइं, क. अवराजिदं तइं जाया, य. अवराजिद तइज्जाया । ५. द. ब. क. ज. य. उ. वीरम्मि ।

अर्थ :—इन पाँचों श्रुतकेवलियोंका सम्पूर्ण काल मिला देनेपर सौ वर्ष होता है। पाँचवें श्रुतकेवलीके पश्चात् भरतक्षेत्रमें फिर कोई श्रुतकेवली नहीं हुआ ॥१४९६॥

। चौदह पूर्वधारियोंका कथन समाप्त हुआ ।

दसपूर्वधारी एवं उनका काल—

पढमो विसाहणामो, पोट्ठिल्लो खत्तिओ जओ णागो ।
सिद्धत्थो धिदिसेणो, विजओ बुद्धिल्ल - गंगदेवा य ॥१४९७॥

एक्करसो य सुधम्मो, दसपुव्वधरा इमे सुविक्खादा ।
पारंपरिओवगदो[1], तेसीदि सयं च ताण वासाणि ॥१४९८॥

। १८३ ।

अर्थ :—(प्रथम) विशाख, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जय, नाग, सिद्धार्थ, धृतिषेण, विजय, बुद्धिल, गङ्गदेव और सुधर्म, ये ग्यारह आचार्य दस पूर्वधारी विख्यात हुए हैं। परम्परासे प्राप्त इन सबका काल एकसौ तेरासी वर्ष प्रमाण है ॥१४९७-१४९८॥

सव्वेसु वि काल - वसा, तेसु अदीदेसु भरह - खेत्तम्मि ।
वियसंत-भव्व-कमला[2], ण संति दसपुव्वि - दिवसयरा ॥१४९९॥

। दसपुव्वी गदा ।

अर्थ :—कालके वश उन सब श्रुतकेवलियोंके अतीत हो जाने पर भरतक्षेत्रमें भव्यरूपी कमलोंको विकसित करने वाले दस पूर्वधररूप सूर्य फिर नहीं (उदित) रहे ॥१४९९॥

। दसपूर्वियोंका कथन समाप्त हुआ ।

ग्यारह-अङ्गधारी एवं उनका काल—

णक्खत्तो जयपालो, पंडुय[3]- धुवसेण - कंस- आइरिया ।
एक्कारसंगधारी, पंच इमे वीर - तित्थम्मि ॥१५००॥

अर्थ :—नक्षत्र, जयपाल, पाण्डु, ध्रुवसेन और कंस, ये पाँच आचार्य वीर जिनेन्द्रके तीर्थमें ग्यारह अङ्गके धारी हुए हैं ॥१५००॥

---

१. ब. क. ज. य. उ. पारंपरिओदगमदो । २. ब. उ. कमलाणि । ३. द. पडमधुसेण, ब. उ. पंडुसधुसेण, क. ज. य. पंडु मधुसेण ।

दोण्णि सया वीस-जुदा, वासाणं ताण पिंड - परिमाणं ।
तेसु अदीदे णत्थि हु, भरहे एक्कारसंगधरा ।।१५०१।।

। २२० ।

। एक्कारसंगं गदं ।

अर्थ :—इनके कालका प्रमाण पिण्डरूपसे दो सौ बीस वर्ष है। इनके स्वर्गस्थ होनेपर फिर भरतक्षेत्रमें कोई ग्यारह अंगोंका धारक भी नहीं रहा ।।१५०१।।

। ग्यारह अंगोंके धारकोंका कथन समाप्त हुआ ।

आचाराङ्गधारी एवं उनका काल—

पढमो सुभद्दणामो, जसभद्दो तह य होदि जसबाहू ।
तुरिमो य [1]लोह - णामो, एदे आयार - अंगधरा ।।१५०२।।

अर्थ :—प्रथम सुभद्र फिर यशोभद्र, यशोबाहु और चतुर्थ लोहार्य, ये चार आचार्य आचाराङ्गके धारक हुए हैं ।।१५०२।।

सेसेक्करसंगाणं[2], चोद्दस - पुव्वाणमेक्कदेसधरा ।
एक्कसयं अट्ठारस - वास - जुदं ताण परिमाणं ।।१५०३।।

। ११८ ।

। आचारंगं गदं ।

अर्थ :—उक्त चारों आचार्य आचाराङ्गके अतिरिक्त शेष ग्यारह अङ्गों और चौदह पूर्वोंके एकदेशके धारक थे। इनके कालका प्रमाण एकसौ अठारह वर्ष है ।।१५०३।।

। आचाराङ्ग-धारियोंका वर्णन समाप्त हुआ ।

गौतम गणधरसे लोहार्य पर्यन्तका सम्मिलित काल प्रमाण—

तेसु अदीदेसु तदा, आचारधरा ण होंति भरहम्मि ।
गोदम - मुणि - पहुदीणं, वासाणं छस्सयाणि तेसीदी ।।१५०४।।

। ६८३ ।

---

१. द.ब.क.उ. लोय । २. द.ब.क.ज.य.उ. संगाणि ।

अर्थ :—इनके स्वर्गस्थ होनेपर भरतक्षेत्रमें फिर कोई आचाराङ्ग-ज्ञानके धारक नहीं हुए हैं। गौतम मुनिको आदि लेकर (आचार्य लोहार्य पर्यन्तके) सम्पूर्ण कालका प्रमाण छह सौ तेरासी वर्ष होता है ॥१५०४॥

श्रुततीर्थके नष्ट होनेका समय—

वीस-सहस्सं ति - सदा, सत्तारह वच्छराणि सुद-तित्थं ।
धम्म - पयट्टण - हेदू, वोच्छिस्सदि काल - दोसेण ॥१५०५॥

। २०३१७ ।

अर्थ :—काल दोषसे धर्मप्रवर्तनके कारणभूत श्रुततीर्थका बीस हजार तीनसौ सत्तरह वर्षों बाद व्युच्छेद हो जावेगा ॥१५०५॥

विशेषार्थ :—दुःषमा नामक पंचमकाल २१००० वर्षका है, जिसमें ६८३ वर्ष पर्यन्त आचाराङ्गादि श्रुतकी धारा क्रमशः क्षीण होती हुई प्रवाहित होती रही। पश्चात् (२१०००—६८३=) २०३१७ वर्ष पर्यन्त श्रुततीर्थका प्रवाह हीयमान रूपसे प्रवाहित होता रहेगा, तत्पश्चात् धर्मप्रवर्तन करने वाले इस श्रुततीर्थका सर्वथा व्युच्छेद हो जावेगा।

चातुर्वर्ण्य संघका अस्तित्व काल—

तेत्तिय - मेत्ते काले, जम्मिस्सदि चाउवण्ण - संघाओ ।
अविणीदो दुम्मेधो[1], असूयको तह य पाएणं ॥१५०६॥
सत्त-भय-अड-मदेहिं, संजुत्तो[2] सल्ल - गारव[3]- तएहिं ।
कलह - पियो [4]रागिट्ठो, कूरो कोहालुओ[5] लोओ[6] ॥१५०७॥

। सुदितित्थ-कहणं समत्तं ।

अर्थ :—इतने मात्र समय पर्यन्त चातुर्वर्ण्य सङ्घ जन्म लेता रहेगा। किन्तु लोक प्रायः अविनीत, दुर्बुद्धि, असूयक (ईर्ष्यालु), सात भयों, आठ मदों, तीन शल्यों एवं तीन गारवों सहित, कलहप्रिय, रागिष्ठ, क्रूर एवं क्रोधी होगा ॥१५०६-१५०७॥

। श्रुततीर्थका कथन समाप्त हुआ ।

---

१. द. ब. क. ज य. उ. दुम्मेधा। २. द. ब. क. ज. य. उ. संजुत्ता। ३. द. गारववरे एहिं, ब. क. ज. उ. गारववरे एहिं। ४. ब. उ. रागट्ठो। ५ द. ब. क. उ. कोहादुओ, ज. य. कोहादिओ। ६. द. ब. क. ज. य. उ. लोहो।

शक राजाकी उत्पत्तिका समय—

वीर-जिणे[1] सिद्धि-गदे, चउ-सय-इगिसट्ठि-वास-परिमाणे[2] ।
कालम्मि अदिक्कंते[3], उप्पण्णो एत्थ सक - राओ ।।१५०८।।

। ४६१ ।

अर्थ :—वीर जिनेन्द्रके मुक्ति प्राप्त होनेके चारसौ इकसठ वर्ष प्रमाण कालके व्यतीत होनेपर यहाँ शक राजा उत्पन्न हुआ ।।१५०८।।

अहवा वीरे सिद्धे, सहस्स - णवकम्मि सग-सयब्भहिए ।
पणसीदिम्मि यतीदे, पणमासे सक - णिओ [4]जादो ।।१५०९।।

९७८५ मास ५

पाठान्तरम् ।

अर्थ :—अथवा, वीरभगवान्के सिद्ध होनेके नौ हजार सातसौ पचासी वर्ष और पाँच मास व्यतीत हो जानेपर शक नृप उत्पन्न हुआ ।।१५०९।।

पाठान्तर ।

चोद्दस-सहस्स-सग-सय-ते णवदी-वास - काल - विच्छेदे ।
वीरेसर[5] - सिद्धीदो, उप्पण्णो सग - णिओ अहवा ।।१५१०।।

। १४७९३ ।

पाठान्तरम ।

अर्थ :—अथवा, वीर भगवान्की मुक्तिके चौदह हजार सातसौ तेरानबै वर्ष व्यतीत हो जानेपर शक नृप उत्पन्न हुआ ।।१५१०।।

पाठान्तर ।

णिव्वाणे वीरजिणे, छव्वास - सदेसु पंच - वरिसेसु ।
पण - मासेसु गदेसु, संजादो सग - णिओ अहवा ।।१५११।।

। ६०५ मा ५ ।

पाठान्तरम् ।

---

१. द. ब. क ज उ. जिणं । २. द. ब. उ. परिमाणो । ३ द. ज. अदिक्कंतो । ४. द. ब. क. ज. उ. सकनिजजादा । ५ द. क. ज वीरेसरस्स ।

अर्थ :—अथवा, वीर भगवान्‌के निर्वाण जानेके छहसौ पाँच वर्ष और पाँच मास व्यतीत हो जानेपर शक नृप उत्पन्न हुआ ।।१५११।।

पाठान्तर ।

आयुकी क्षय-वृद्धि एवं शक नृपके समयकी उत्कृष्ट-आयु निकालनेका विधान—

वीसुत्तर - वास - सदे, वीसवि वासाणि सोहिऊण तदो ।
इगिवीस - सहस्सेहिं, भजिदे आऊण खय - वड्ढी ।।१५१२।।

| $\frac{१}{२१०}$ |[1]

अर्थ :—एकसौ बीस वर्षोंमेंसे बीस वर्ष घटा देनेपर जो शेष रहे, उसमें इक्कीस हजारका भाग देनेपर आयुकी क्षय-वृद्धिका प्रमाण आता है ।।१५१२।।

यथा :–(१२० — २०) ÷ २१००० वर्ष = $\frac{१}{२१०}$ वर्ष हानि-वृद्धिका प्रमाण । अर्थात् आयुका प्रतिदिन की हानि-वृद्धि का प्रमाण ६ मिनट ५२ सेकेण्ड है ।

सक-णिव-वास-जुदाणं, चउ-सद-इगिसट्ठि-वास-पहुदीणं ।
दस-जुद-दो-सय-भजिदे, लद्धं सोहेज्ज विगुण - सट्ठीए ।।१५१३।।
तस्सिं[2] जं अवसेसं, तच्चेव पयट्टमाण - जेट्ठाऊ ।
पाठंतरेसु[3] एसा, जुत्ती सव्वेसु पत्तेक्कं ।।१५१४।।

अर्थ :—शक नृपके वर्षों सहित चारसौ इकसठ आदि वर्षोंको दोसौ दससे भाजित करे, जो लब्ध प्राप्त हो उसे एकसौ बीसमेंसे कम करने पर जो अवशिष्ट रहे उतना उसके समयमें प्रवर्तमान उत्कृष्ट आयुका प्रमाण था । यह युक्ति एतत् सम्बन्धी पाठान्तरोंमेंसे प्रत्येकके समयमें भी जानना चाहिए ।।१५१३-१५१४।।

विशेषार्थ :—प्रकारान्तरोंसे शक नृप वीर-निर्वाणके ४६१ वर्ष, या ९७८५$\frac{५}{१२}$ वर्ष, या १४७९३ वर्ष या ६०५$\frac{५}{१२}$ वर्ष पश्चात् उत्पन्न हुआ और उस (शकों) का राज्य २४२ वर्ष पर्यन्त रहा अतः प्रत्येक शक राज्यके अन्तमें उत्कृष्ट आयुका प्रमाण इसप्रकार जानना चाहिए—

(१) १२० — { (४६१ + २४२) ÷ २१० } = ११६$\frac{१३७}{२१०}$ वर्ष इस शक राज्यके अन्तमें उत्कृष्टायु ।

---

१. द. २१०, ब. क. ज. य. उ. २१००० । २. द. ब. उ. तिस्सज्जं । ३. द. ब. क. ज. य. उ. पारंतरेसु ।

(२) १२० — { (९७८५$\frac{५}{९३}$ + २४२) ÷ २१० } = ७२$\frac{१}{३}\frac{३}{६}\frac{१}{२}\frac{}{७}$ वर्ष उत्कृष्टायु ।

(३) १२० — { (१४७९३ + २४२) ÷ २१० } = ४८$\frac{१}{४}\frac{१}{३}$ वर्ष उत्कृष्टायु ।

(४) १२० — { (६०५$\frac{५}{९३}$ + २४२) ÷ २१० } = ११५$\frac{१}{२}\frac{४}{५}\frac{३}{३}\frac{१}{७}$ वर्ष उत्कृष्टायु ।

शकराजाकी उत्पत्ति एवं उसके वंशका राज्यकाल—

णिव्वाण - गदे वीरे, चउ-सय-इगिसट्ठि-वास-विच्छेदे ।
जादो य सग - णरिंदो, रज्जं वंसस्स[1] [2]दु-सय-बादाला ।।१५१५।।

। ४६१ । २४२ ।

अर्थ :– वीर जिनेन्द्रके निर्वाणके चारसौ इकसठ वर्ष बीत जाने पर शक नरेन्द्र उत्पन्न हुआ । इस वंशके राज्यकालका प्रमाण दोसौ बयालीस वर्ष है ।।१५१५।।

गुप्तोंका और चतुर्मुखका राज्यकाल—

दोण्णि सया पणवण्णा, गुत्ताणं[3] चउमुहस्स बादालं ।
सव्वं होदि सहस्सं, केई एवं परूवेंति ।।१५१६।।

। २५५ । ४२ ।

अर्थ :—गुप्तोंके राज्यकालका प्रमाण दो सौ पचपन वर्ष और चतुर्मुखके राज्यका प्रमाण बयालीस वर्ष है, इन सबको मिलाने पर (४६१ + २४२ + २५५ + ४२ =) १००० (एक हजार) वर्ष होते हैं, कितने ही आचार्य ऐसा भी निरूपण करते हैं ।।१५१६।।

पालक नामक अवन्तिसुतका राज्याभिषेक—

जक्काले[4] वीरजिणो, णिस्सेयस - संपयं समावण्णो ।
तक्काले अभिसित्तो, पालय - णामो अवंतिसुदो ।।१५१७।।

अर्थ :—जिस कालमें वीर जिनेन्द्रने निःश्रेयस-सम्पदाको प्राप्त किया था, उसी समय पालक नामक अवन्तिसुतका राज्याभिषेक हुआ ।।१५१७।।

पालक, विजय एवं मुरण्डवंशो तथा पुष्यमित्रका राज्यकाल—

पालक-रज्जं सट्ठीं, इगि-सय-पणवण्ण विजय-वंसभवा ।
चालं मुरुंड[5] - वंसा, तीसं वस्साणि पुस्समित्तम्मि ।।१५१८।।

६० । १५५ । ४० । ३० ।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. वस्सस्स । २. द. दुय । ३. ब. जुत्ताणं । ४. द. ब. ज. य. उ. जं कारे, क. जं काले । ५. द. मुरुद, ज. य. तुरुदय ।

अर्थ :—(अवन्ति पुत्र) पालकका राज्य साठ वर्ष, विजय वंशियोंका एकसौ पचपन वर्ष, मुरुण्ड-वंशियोंका चालीस वर्ष और पुष्यमित्रका राज्य तीस वर्ष पर्यन्त रहा।। १५१८।।

वसुमित्र-अग्निमित्र, गन्धर्व, नरवाहन, भृत्यवंश और गुप्तवंशियों का राज्यकाल—

वसुमित्त - अग्गिमित्तो, सट्ठी गंधव्वया वि सयमेक्कं।
णरवाहणो य चालं, तत्तो भत्थट्ठणा जादा।। १५१९।।

६०। १००। ४०।

अर्थ :—इसके पश्चात् वसुमित्र-अग्निमित्र साठ वर्ष, गन्धर्व सौ वर्ष और नरवाहन चालीस वर्ष पर्यन्त राज्य करते रहे। पश्चात् भृत्यवंशकी उत्पत्ति हुई।। १५१९।।

भत्थट्ठणाण कालो, दोण्णि सयाइं हवंति बादाला।
तत्तो गुत्ता ताणं, रज्जे दोण्णि य सयाणि१ इगितीसा।। १५२०।।

। २४२। २३१।

अर्थ :—इन भृत्य (कुषाण) वंशियोंका काल दो सौ बयालीस वर्ष है, इसके पश्चात् फिर गुप्तवंशी हुए जिनके राज्यकालका प्रमाण दोसौ इकतीस वर्ष पर्यन्त रहा है।। १५२०।।

कल्कीकी आयु एवं उसका राज्यकाल—

तत्तो कक्की जादो, इंदपुरे तस्स चउमुहो - णामो।
सत्तरि वरिसा आऊ, बिगुणिय - इगिवीस-रज्जं२ च।। १५२१।।

। ७०। ४२।

अर्थ :—फिर इसके पश्चात् इन्द्रपुर में कल्की उत्पन्न हुआ। इसका नाम चतुर्मुख, आयु सत्तर वर्ष एवं राज्यकाल बयालीस वर्ष प्रमाण रहा।। १५२१।।

विशेषार्थ : (१) पालक का राज्यकाल ६० वर्ष, (२) विजय वंश का १५५ वर्ष, (३) मुरुण्ड वंश का ४० वर्ष, (४) पुष्यमित्र का ३० वर्ष, (५) वसुमित्र + अग्निमित्र का ६० वर्ष, (६) गन्धर्व का १०० वर्ष, (७) नरवाहन का ४० वर्ष, (८) भृतय कुषाण वश का २४२ वर्ष, (९) गुप्तवंश का २३१ वर्ष और चतुर्मुख का ४२ इस प्रकार—

६० + १५५ + ४० + ३० + ६० + १०० + ४० + १४२ + २३१ + ४२ = १००० वर्ष

कल्की का पट्टबन्ध—

आयारंग - धरादो, पणहत्तरि - जुत्त दु-सय - वासेसुं।
बोलीणेसुं बद्धो, पट्टो कक्किस्स णर - वइणो।। १५२२।।

---

१ ब सयामि, द.क ज.य.उ. सयाभि। २. द.ब.क ज.उ रज्जत्तो, य, रज्जुत्ता।

अर्थ :—आचाराङ्गधरोंके पश्चात् दोसौ पचत्तर वर्षोंके व्यतीत हो जाने पर नरपतिको पट्ट बाँधा गया था ॥१५२२॥

। ६८३ + २७५ + ४२ = १००० वर्ष ।

दिगम्बर मुनिराजों पर शुल्क (टेक्स) एवं उन्हें अवधिज्ञान—

अह साहिऊण कक्की, णिय - जोग्गे[1] जणपदे पयत्तेण ।
सुक्कं [2]जाचदि लुद्धो, पिंडग्गं[3] जाव समणाओ ॥१५२३॥

अर्थ :—तदनन्तर वह कल्की प्रयत्न-पूर्वक अपने योग्य जनपदोंको सिद्ध करके लोभको प्राप्त होता हुआ मुनिराजोंके आहारमेंसे भी अग्र-पिण्ड (प्रथम ग्रास) को शुल्क (कर) स्वरूप मांगने लगा ॥१५२३॥

दादूणं पिडग्गं, समणा कादूण अंतरायं पि ।
गच्छंति ओहिणाणं, उप्पज्जदि तेसु एक्कस्सि[4] ॥१५२४॥

अर्थ :—तब श्रमण (मुनि) अग्रपिण्ड देकर और अन्तराय करके [निराहार] चले जाते हैं । उस समय उनमेंसे किसी एक श्रमण को अवधिज्ञान उत्पन्न होता है ॥१५२४॥

कल्कीकी मृत्यु एवं उसके पुत्रको राज्य पद—

अह को वि असुरदेवो[5], ओहीदो मुणि-गणाण उवसग्गं ।
णादूणं तं कक्किं, मारेदि हु धम्मदोहि त्ति ॥१५२५॥

अर्थ :—इसके पश्चात् कोई असुरदेव अवधिज्ञानसे मुनिगणोंके उपसर्गको जानकर एवं उस कल्कीको धर्म-द्रोही मानकर मार डालता है ॥१५२५॥

कक्कि-सुदो [6]अजिदंजय-णामो रक्ख त्ति णमदि तच्चरणे ।
तं रक्खदि असुरदेओ, धम्मे रज्जं करेज्ज त्ति ॥१५२६॥

अर्थ :—तब अजितञ्जय नामक उस कल्कीका पुत्र 'रक्षा करो' इस प्रकार कहकर उस देवके चरणोंमें नमस्कार करता है और वह देव 'धर्म पूर्वक राज्य करो' इस प्रकार कहकर उसकी रक्षा करता है ॥१५२६॥

---

१. ब. क. ज. य. उ. जोग्गो । २. द. ब. क. ज. उ. जाचदि । ३. द. ब. क. ज. य. उ. पियर्क । ४. द. ब. क. ज. य. उ. एक्कंपि । ५. द. ब. क. ज. उ. असुरदेवा । ६. द. ब. क. ज. य. उ. अविदंजयणामो ।

धर्म प्रवृत्तिमें हानि—

तत्तो थोवे वासे[1], सम्मद्धम्मो पयट्टदि जणाणं ।
कमसो दिवसे दिवसे, काल - महप्पेण हाएदे ॥१५२७॥

अर्थ :—इसके पश्चात् कुछ वर्षों तक लोगोंमें समीचीन धर्मकी प्रवृत्ति रहती है। फिर क्रमशः कालके माहात्म्यसे वह प्रतिदिन हीन होती जाती है ॥१५२७॥

कल्की एवं उपकल्कियोंका समय एवं प्रमाण—

एवं वस्स - सहस्से, पुह - पुह कक्की हवेदि एक्केक्को ।
पंच - सय - वच्छरेसुं, [2]एक्केक्को तह य उवकक्की ॥१५२८॥

अर्थ :—इसप्रकार एक-एक हजार वर्षोंके पश्चात् पृथक्-पृथक् एक-एक कल्की तथा पाँच-पाँचसौ वर्षोंके पश्चात् एक-एक उपकल्की होता है ॥१५२८॥

पञ्चम कालके दुष्प्रभावोंका संक्षिप्त निर्देश प्रत्येक कल्कीके समय साधुको अवधिज्ञान एवं चातुर्वर्ण्य संघका प्रमाण—

कक्किं पडि एक्केक्के, दुस्सम - साहुस्स ओहिणाणं पि ।
संघा य चादुवण्णा, थोवा जायंति तक्काले ॥१५२९॥

अर्थ :—प्रत्येक कल्कीके प्रति दुःषमाकालवर्ती एक-एक साधुको अवधिज्ञान होता है और उसके समयमें चातुर्वर्ण्य संघ भी अल्प हो जाते हैं ॥१५२९॥

नाना प्रकारके उपसर्ग—

दुसमम्मी ओसहिओ, जायंते णीरसाओ सव्वाओ ।
बहु - वाओ चोर-राउल अरि - मारी घोर - उवसग्गा ॥१५३०॥

अर्थ :—दुःषम काल (के प्रारम्भ) में सभी औषधियाँ (वनस्पतियाँ) नीरस हो जाती हैं तथा चोर, राजकुल, शत्रु, मारी आदि अनेक प्रकारके घोर उपसर्ग होने लगते हैं ॥१५३०॥

दुःख प्राप्तिका कारण—

इन्द्रवज्रा—

सीलेण लज्जेण बलेण बोहुप्पत्तीए तेएण कुलक्कमेणं ।
इच्चेवमादीहि गुणेहि मुक्का, सेवंति णिच्चं ण सुहं लहंते ॥१५३१॥

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. वासो । २. ब. उ. हवे इक्केक्को ।

अर्थ :—इस कालमें मनुष्य कुल क्रमागत शील, सत्य, बल, तेज तथा यथार्थ ज्ञान आदि गुणोंसे हीन पुरुषोंकी सेवा करते हैं अतः सुख प्राप्त नहीं करते ।।१५३१।।

उच्चकुलको भी दूषित करना—

मिच्छत्त-मोहे विसमम्मि तत्तो, मायाए भीदीए णरा य णारी ।
मज्जाद-लज्जादि ण ते गणंते, गोत्ताइ तुंगाइ विदूसयंते ।।१५३२।।

अर्थ :—इस विषम कालमें मिथ्यात्व और मोहमें ग्रस्त नर-नारी माया एवं भयके कारण मर्यादा और लज्जा को भी नहीं गिनते हैं और इसी कारणसे वे अपने उच्चगोत्र को भी दूषित करते हैं ।।१५३२।।

असहिष्णुताकी मूर्ति—

रागेण दंभेण मदोदयेण, संजुत्त - चिंता विणयेण हीणा ।
कोहेण लोहेण किलिस्समाणा, कीवाणदा होंति असूय-काया ।।१५३३।।

अर्थ :—इस कालमें विनयसे हीन एवं चिन्तासे युक्त मनुष्य राग, दम्भ, मद, क्रोध एवं लोभसे क्लेशित होते हुए निर्दयता एवं ईर्ष्या की ही मूर्ति होते हैं ।।१५३३।।

चारित्रका परित्याग—

संगेण णाणाविह - संकिलेसुं, वेगेण घोरेण परिग्गहेणं ।
अच्चंत-मोहेण व मज्जमाणा, चरित्त-मुज्झंति मदेण केई ।।१५३४।।

अर्थ :—परिग्रहको तीव्र आसक्तिसे तथा अत्यन्त मोहसे एवं मदके वेगसे अनेक प्रकारके संक्लेशोंमें डूबते हुए कितने ही जीव चारित्रको छोड़ देते हैं ।।१५३४।।

उत्सेध एवं आयु आदिकी हीनता—

उच्छेहमाऊ-बल-वीरियादिं, सव्वं पि हाएदि कमेण ताणं ।
पायेण जीवंति विवेक-हीणा, सेयं णसेयं ण विचारयंति ।।१५३५।।

अर्थ :—इस दुषमाकालमें मनुष्योंका उत्सेध, आयु, बल एवं वीर्य आदि सभी क्रमशः हीन-हीन होते जाते हैं तथा विवेकहीन प्राणी श्रेय-अश्रेयका विचार नहीं करते हैं और पापसे ही जीते हैं। अर्थात् पापाचरण करते हुए ही जीवन यापन करते हैं ।।१५३५।।

कुल हीन राजा—

अणाण-जुत्ता कुल-हीण-राजा, पालंति भूमिं परदार-रत्ता ।
सव्वेण धम्मेण विमुच्चमाणा, कालस्स दोसेण य दुस्समस्स ।।१५३६।।

अर्थ :—दुःषमा कालके दोषसे सभी धर्मोंका परित्याग करते हुए अज्ञान युक्त, परदारासक्त और कुल-हीन राजा प्रजाका पालन करते हैं ।।१५३६।।

देवादिकोंके आनेका निषेध—

अस्तो चारण - मुणिणो, देवा विज्जाहरा य णायंति ।
संजम - गुणाहियाणं, मणुयाण विराम दोसेण ।।१५३७।।

अर्थ :—इस दुःषमाकालमें संयम-गुणसे विशिष्ट मनुष्योंके विराम दोष (उनके अभाव) के कारण चारणऋद्धिधारी मुनि, देव और विद्याधर भी नहीं आते हैं ।।१५३७।।

जनपदमें उत्पन्न होने वाली बाधाएँ—

अइविट्ठि - अणाविट्ठि, तक्कर-परचक्क-सलभ-पहुदीहिं ।
सव्वाण जणपदाणं, बाधा उप्पज्जदे विसमा ।।१५३८।।

अर्थ :—(इस दुषमा-कालमें) अतिवृष्टि, अनावृष्टि, चोर, परचक्र (शत्रु) एवं (खेतमें हानि पहुँचाने वाले) कीडों आदिसे सभी जनपदोंके लिए विषम बाधा उत्पन्न होती जाती है ।।१५३८।।

पापी-प्रभृति मनुष्योंकी बहुलता—

चंडाल-सबर-पाणा, पुलिंद-णाहल-चिलाद[1] - पहुदीओ ।
दीसंति णरा बहवा, पुव्व - णिबद्धेहिं पावेहिं ।।१५३९।।
दीणाणाहा कूरा, णाणाविह - वाहि - वेयणा - जुत्ता ।
खप्पर - करंक - हत्था, देसंतर - गमेण संतत्ता ।।१५४०।।

अर्थ :—उस समय पूर्वमें बाँधे हुए पापोंके उदयसे चण्डाल, शबर, श्वपच, पुलिन्द, लाहल (म्लेच्छ विशेष) और किरात आदि; दीन, अनाथ, क्रूर और नाना प्रकारकी व्याधि एवं वेदनासे युक्त; हाथोंमें खप्पर तथा भिक्षापात्र लिए हुए और देशान्तर-गमनसे सन्तप्त बहुतसे मनुष्य दिखते हैं ।।१५३९-१५४०।।

अन्तिम कल्की एवं अन्तिम चतुर्विधसंघका निर्देश—

एवं दुस्सम - काले, हीयंते धम्म - आउ - उदयादी ।
अंते विसम - सहाओ, उप्पज्जदि एक्कवीसमो कक्की ।।१५४१।।

---

१. द. चिलाए, ब. क. ज. उ. चिलाए, य. विउल ।

अर्थ :—इसप्रकार दुषमा-कालमें धर्म, आयु और ऊँचाई आदि कम होती जाती है. पश्चात् (कालके) अन्तमें विषम स्वभाववाला (जलमन्थन नामक) इक्कीसवाँ कल्की उत्पन्न होता है ।।१५४१।।

वीरंगजाभिधाणो,[1] तक्काले मुणिवरो भवे एक्को ।
सव्वसिरी तह विरदी, सावय-जुग-मग्गिलोत्ति[2]-पंगुसिरी ।।१५४२।।

अर्थ :—उस कल्कीके समयमें वीराङ्गज नामक एक मुनि, सर्वश्री नामकी आर्यिका तथा अग्निल और पंगुश्री नामक श्रावक युगल (श्रावक-श्राविका) होते हैं ।।१५४२।।

कल्की राजा एवं मन्त्री की वार्ता—

आणाए कक्किणिओ, णिय-जोग्गे साहिऊण जणपवए ।
सो कोइ णत्थि मणुओ, जो मम ण वस त्ति [3]मंतिवरे ।।१५४३।।

अर्थ :—वह कल्की आज्ञासे अपने योग्य जनपदोंको सिद्ध (जीत) कर कहता है कि हे मन्त्रिवर ! ऐसा कोई पुरुष तो नहीं है जो मेरे वशमें (आधीन) न हो ? ।।१५४३।।

अह विण्णवंति मंती, सामिय[4] एक्को मुणी वसो णत्थि ।
तत्तो भणेदि कक्की, कहह रिसी [5]केरिसायारो ।।१५४४।।
सचिवा[6] चवंति सामिय, सयल-अहिंसावदाण आधारो ।
संतो विमोक्क - संगो, [7]तणुट्ठाण - कारणेण मुणी ।।१५४५।।
पर - घर[8]- दुवारएसुं, मज्झण्हे काय-दरिसणं किच्चा ।
पासुयमसणं[9] भुंजदि, पाणिपुडे विग्घ[10] - परिहीणं ।।१५४६।।

अर्थ :--तब मन्त्री निवेदन करते हैं कि हे स्वामिन् ! एक मुनि आपके वशमे नहीं है। तब कल्की कहता है कि कहो उस ऋषिका कैसा स्वरूप है ? तब सचिव (मन्त्री) कहते हैं कि हे स्वामिन् ! सकल-अहिंसाव्रतोंका आधारभूत वह मुनि परिग्रहसे रहित होता हुआ शरीरकी स्थिति (आहारके) निमित्त दूसरोंके घर-द्वारों पर शरीरको दिखाकर मध्याह्न-कालमें अपने हस्तपुटमें विघ्न-रहित प्रासुक आहार ग्रहण करता है ।।१५४४-१५४६।।

---

१. द. ब. ज. उ. भिधाणा । २. द. ब. मग्गिदत्ति, क. ज. य. उ. मग्गिदात्ति । ३. द. मंतिपुरो, ब. क. ज. य. उ. मंतिपुरे । ४. द. ब. क. ज. य. सामय । ५. द. ज. य. केविमाओ, ब. क. उ. केविणीआओ । ६ द. ब. क. ज. य. उ. सचिवो । ७. द. ब. क. ज य. उ. तणुवाण । ८. द. ब. क. ज. य. उ. पर । ९. द. ज. य. मसणं हि, ब. क. उ. मसणंहि । १०. द. ब. क. ज. य. उ. विप्पु ।

कल्की द्वारा मुनिराजसे शुल्क ग्रहण, उन्हें अवधिज्ञानकी प्राप्ति एवं संघको कालावसानका संकेत—

सोदूण मंति - वयणं, भणेदि कक्की अहिंसवदधारी ।
कहिं[1] सो वच्चदि पावो, अप्पं जो [2]हणदि सव्वभंगीहिं ।।१५४७।।

तं तस्स अग्ग - पिंडं, सुक्कं [3]गेण्हेह अप्प - घादिस्स ।
अह जाचिदम्मि पिंडे, दादूणं मुणिवरो तुरिदं ।।१५४८।।

कादूणमंतरायं, गच्छदि पावेदि ओहिणाणं पि ।
हक्कारिय अग्गिलयं, पंगुसिरी - विरदि - सव्वसिरी[4] ।।१५४९।।

भासइ पसण्ण-हिदओ, दुस्सम - कालस्स जादमवसाणं ।
तुम्हम्ह[5] ति - दिणमाऊ, एसो अवसाण - कक्की हु ।।१५५०।।

अर्थ :—इस प्रकार मन्त्रीके वचन सुनकर वह कल्की कहता है कि—सब प्रकारसे जो अपनी आत्माका घात करता है ऐसा वह अहिंसाव्रतधारी पापी कहाँ जाता है ? सो कहो और उस आत्मघाती मुनिका प्रथम पिण्ड शुल्क रूपमें ग्रहण करो। तत्पश्चात् (कल्कीकी आज्ञानुसार) प्रथम पिण्ड (ग्रास) मांगे जानेपर मुनीन्द्र तुरन्त ग्रास देकर एवं अन्तराय करके वापिस चले जाते हैं तथा अवधिज्ञान भी प्राप्त कर लेते हैं। उस समय वे मुनीन्द्र अग्निल श्रावक, पंगुश्री श्राविका और सर्वश्री आर्यिकाको बुलाकर प्रसन्नचित्त होते हुए कहते हैं कि अब दुःषमाकालका अन्त आचुका है, हमारी और तुम्हारी आयु मात्र तीन दिनकी अवशेष है और यह अन्तिम कल्की है ।।१५४७-१५५०।।

अन्तिम चतुर्विध संघका सन्यास ग्रहण एवं समाधिमरण—

ताहे चत्तारि जणा, चउविह - आहार - संग - पहुदीणं ।
जावज्जीवं छंडिय, सण्णासं करंति[6] भत्तीए ।।१५५१।।

अर्थ :—तब वे चारों (मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका) जन चारों प्रकारके आहार और परिग्रहादिको जीवन भर के लिए छोडकर संन्यास ग्रहण कर लेते हैं ।।१५५१।।

---

१. द ज. य. कह सो वच्चदि, ब क उ. कह सो वच्चदि। २. द. ब. क ज. उ. जायणादि। ३. द. ब क. ज. य. उ. गेण्हेव। ४. द. ब. क. ज. य. उ सव्वसिद्धीहिं। ५ द. य. तुम्हम्हि। ६. द. ब. क. ज. य. उ. करंतीए।

धर्म-व्यवस्थाका विनाश—

कत्तिय - बहुलस्संते, सादीसुं दिणयरम्मि उग्गमिए ।
किय - सण्णासा[1] सव्वे, पावंति समाहिमरणाइं ॥१५५२॥

अर्थ :—वे सब कार्तिक मासके कृष्णपक्षके अन्तमें (अमावस्याके दिन) सूर्यके स्वाति नक्षत्रके ऊपर उदित रहते संन्यास पूर्वक समाधिमरण प्राप्त करते हैं ॥१५५२॥

पर्यायान्तर-प्राप्ति—

उवहिउवमाउ [2]जुत्तो, सोहम्मे मुणिवरो[3] तदो जादो ।
तम्मि य ते तिण्णि जणा, साहिय-पलिदोवमाउ-जुदा[4] ॥१५५३॥

अर्थ :—समाधिमरणके पश्चात् वीराङ्गद मुनिराज एक सागरोपम आयुसे युक्त होते हुए सौधर्मस्वर्गमें उत्पन्न होते हैं और वे तीनों जन भी एक पल्योपमसे कुछ अधिक आयु लेकर वहीं पर (सौधर्म स्वर्गमें) उत्पन्न होते हैं ॥१५५३॥

राज्य (राजा) एवं समाज (अग्नि) व्यवस्थाका विनाश—

तद्दिवसे मज्झण्हे, कय - कोहो को वि असुर-वर-देवो ।
मारेदि कक्किरायं, अग्गी णासेदि दिणयरत्थमये ॥१५५४॥

अर्थ :—उसी दिन मध्याह्नमें असुरकुमार जातिका कोई क्रुद्ध हुआ उत्तम देव उस कल्की राजाको मारता है और सूर्यास्त समयमें अग्नि नष्ट हो जाती है ॥१५५४॥

सर्व कल्की एवं उपकल्कियोंकी पर्यायान्तर प्राप्ति—

एवमिगिवीस कक्की, उवकक्की तेत्तिया य घम्माए ।
जम्मंति धम्म - दोहा, जलणिहि - उवमाण-आउ-जुवा ॥१५५५॥

अर्थ :—इस प्रकार इक्कीस कल्की और इतने ही उपकल्की धर्मका विद्रोह करने के कारण एक सागरोपम आयुसे युक्त होकर घर्मा पृथिवी (पहले नरक) में जन्म लेते हैं ॥१५५५॥

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. सण्णासो । २. द. ब. क. ज. य. उ. जुत्ता । ३. द. ब. क. ज. य. उ. मुणिवरे । ४. द. ब. क. ज. य. जुदो ।

अतिदु:षमा कालका प्रवेश और उसके उत्सेध आदिका प्रमाण—

वास-तए अड - मासे, पक्खे गलिदम्मि पविसदे तत्तो ।
सो अदिदुस्सम - णामो, छट्ठो कालो महाविसमो ।।१५५६।।

। वा ३, मा ८, दि १५ ।

अर्थ :—इसके पश्चात् तीन वर्ष, आठ मास और एक पक्षके बीत जाने पर महाविषम वह अतिदु:षमा नामक छठा काल प्रविष्ट होता है ।।१५५६।।

तस्स पढम - प्पवेसे [1]ति-हत्थ - देहो अहुट्ठ - हत्थो य ।
तह बारह पुट्ठट्ठी, परमाऊ वीस वासाणि ।।१५५७।।

। ३ । $\frac{7}{2}$ । १२ । २० ।

अर्थ :—उसके प्रथम प्रवेशमें शरीरकी ऊँचाई तीन हाथ अथवा साढे तीन हाथ, पृष्ठभाग-की हड्डियाँ बारह और उत्कृष्ट आयु बीस वर्ष प्रमाण होती है ।।१५५७।।

इस कालके मनुष्योंका आहार एवं उनका स्वरूप चित्रण—

मूलप्फल - मच्छादी, सव्वाणं माणुसाण आहारो ।
ताहे[2] वासा वच्छा, गेह - प्पहुदी णरा ण दीसंति ।।१५५८।।

तत्तो णग्गा सव्वे, भवण - विहीणा वणेसु हिंडंता ।
सव्वंग - धूम - वण्णा[3], गो धम्म - परायणा कूरा ।।१५५९।।

बहिरा अंधा काणा, मूका दारिद्द - कूड - परिपुण्णा ।
दीणा वाणर - रूवा, अइमेच्छा[4] हुंडसंठाणा ।।१५६०।।

कुज्जा वामण-तणुणो[5], णाणाविह-वाहि-वेयणा-वियला[6] ।
बहु - कोह - लोह - मोहा, पउराहारा सहाव-पाविट्ठा ।।१५६१।।

संबद्ध-सजण-बंधव-धण-पुत्त-कलत्त - मित्त - परिहीणा ।
फुडिदंग - फुडिद - केसा, जूवा - लिक्खाहि संछण्णा ।।१५६२।।

---

१. द. ज. य. दुहत्थदेहओ, ब. उ. तिहत्थदेहओ । २. द. ज. य. थावे, क. ब. उ. थादे । ३. द. ब. क. ज. य. उ. वण्णो । ४. द. ब क. ज. य. उ. अइमेछा । ५. द. ब. क. ज. य. उ. तणुणा । ६. ब. क. उ. विउला ।

अर्थ :—उस कालमें सभी मनुष्योंका आहार मूल, फल और मत्स्यादि होते हैं। उस समयके मनुष्योंको वस्त्र, वृक्ष और मकान आदि दिखाई नहीं देते, इसलिए सब मनुष्य नङ्गे और मकानोंसे रहित होते हुए वनोंमें घूमते हैं। वे मनुष्य सर्वाङ्ग धूम्रवर्ण (काले रंगके), गोधर्मपरायण (पशुओं सदृश आचरण करने वाले), क्रूर, बहरे, अन्धे, काणे, गूंगे, दरिद्रता एवं कुटिलतासे परिपूर्ण, दीन बन्दर-सदृश रूपवाले, अतिम्लेच्छ, हुण्डकसंस्थान युक्त, कुबड़े, बौने शरीरवाले, नानाप्रकारकी व्याधियों एवं वेदनाओंसे विकल, बहुत क्रोध, लोभ तथा मोहसे युक्त, खूब खानेवाले, स्वभावसे ही पापिष्ठ; सम्बन्धी, स्वजन, बान्धव, धन, पुत्र, कलत्र और मित्रोंसे विहीन; जूं एवं लीख आदिसे आच्छन्न दुर्गन्ध युक्त शरीर एवं दूषित केशोंवाले होते हैं ।।१५५८-१५६२।।

गति-आगति—

णारय-तिरिय-गदीदो, आगद - जीवा हु एत्थ जम्मंति ।
मरिदूण य अइघोरे, णिरए तिरियम्मि जायंते ।।१५६३।।

अर्थ :—इस कालमें नरक और तिर्यञ्च गतिसे आये हुए जीव ही यहाँ जन्म लेते हैं तथा यहाँसे मरकर वे अत्यन्त घोर नरक एवं तिर्यञ्च गतिमें उत्पन्न होते हैं ।।१५६३।।

उच्छेह-आउ-विरिया, दिवसे दिवसम्मि ताण हीयंते ।
दुक्खाण ताण कहिदुं, को सक्कइ एक्क जीहाए ।।१५६४।।

अर्थ :—उन जीवोंकी ऊँचाई, आयु और वीर्य (शक्ति) दिन-प्रतिदिन हीन होते जाते हैं। उनके दुःखोंको एक जिह्वासे कहनेमें भला कौन समर्थ हो सकता है ? (अर्थात् कोई नहीं) ।।१५६४।।

प्रलय-प्रवृत्तिका समय—

उणवण्ण-दिवस-विरहिद-इगिवीस-सहस्स-वस्स-विच्छेदे[1] ।
जंतु - भयंकर - कालो, पलयो त्ति पयट्टदे घोरो[2] ।।१५६५।।

अर्थ :—उनचास दिन कम इक्कीस हजार वर्षोंके बीत जानेपर जन्तुओं (प्राणियों) को भयोत्पादक घोर प्रलयकाल प्रवृत्त होता है ।।१५६५।।

संवर्तक वायुका प्रभाव एवं उसकी प्रक्रिया—

ताहे गरुव - गभीरो, पसरदि पवणो रउद्द-संवट्टो[3] ।
तरु-गिरि-सिल-पहुदीणं, कुणेदि चुण्णाइ सत्त - दिणे ।।१५६६।।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. विच्छेदो। २. द. ब. घोरे। ३. द. ब. क. ज. य. उ. संवट्टा।

अर्थ :—उस समय महागम्भीर एवं भीषण संवर्तक वायु चलती है, जो सात दिन तक वृक्ष, पर्वत और शिला आदिकको चूर्ण कर देती है ।।१५६६ ।

तरु-गिरि-भंगेहि णरा, तिरिया य लहंति गुरुव-दुक्खाइं ।
इच्छंति [1]सरण - ठाणं, विलवंति बहुप्पयारेणं ।।१५६७।।

अर्थ :—वृक्षों और पर्वतोंके टूटनेसे मनुष्य एवं तिर्यंच महादुःख प्राप्त करते हैं तथा शरण-योग्य स्थानकी अभिलाषा करते हुए बहुत प्रकारसे विलाप करते हैं ।।१५६७।।

गंगा - सिन्धु - णदीणं, वेयड्ढ - वणंतरम्मि पविसंति ।
पुह - पुह संखेज्जाइं, बाहत्तरि सयल - जुयलाइं ।।१५६८।।

अर्थ :—इस समय पृथक्-पृथक् संख्यात एवं सम्पूर्ण बहत्तर युगल गङ्गा-सिन्धु नदियोंकी वेदी और विजयार्ध-वनके मध्य प्रवेश करते हैं ।।१५६८।।

देवा विज्जाहरया, कारुण्ण - परा णराण तिरियाणं ।
संखेज्ज - जीव - रासिं, खिवंति तेसुं पएसेसुं ।।१५६९।।

अर्थ :—देव और विद्याधर दयार्द्र होकर मनुष्य और तिर्यंचोंमेंसे संख्यात जीव-राशिको उन प्रदेशोंमें ले जाकर रखते हैं ।।१५६९।।

उनचास दिन पर्यन्त कुवृष्टि—

ताहे गभीर - गज्जी, [2]मेघा मुंचंति तुहिण-खार-जलं ।
विस - सलिलं पत्तेक्कं, पत्तेक्कं सत्त दिवसाणि ।।१५७०।।

अर्थ :—उस समय गम्भीर गर्जना सहित मेघ शीतल एवं क्षार जल तथा विष-जलमेंसे प्रत्येकको सात-सात दिन पर्यन्त बरसाते हैं ।।१५७०।।

धूमो धूली वज्जं, जलंत - जाला कला य [3]दुप्पेच्छे ।
वरिसंति जलद - णिवहा, एक्केक्कं सत्त दिवसाणि ।।१५७१।।

अर्थ :—इसके अतिरिक्त मेघोंके वे समूह धूम, धूलि, वज्र एवं जलते हुए दुष्प्रेक्ष्य ज्वाला समूह, इनमेंसे प्रत्येकको सात-सात दिन पर्यन्त बरसाते हैं ।।१५७१।।

---

१. ब. उ. वसणट्ठाणं । २. द. ब. क. ज. य. उ. मेघो । ३. द. ब. दुपेच्छे, क. ज. य. दुपेच्छो ।

कुवृष्टियोंके पश्चात् आर्यखण्डका स्वरूप—

एवं कमेण भरहे, अज्जा - खंडम्मि जोयणं एक्कं ।
चित्ताए उवरि ठिदा, दज्झइ वड्ढि - गदा भूमी ।।१५७२।।

अर्थ :—इसप्रकार क्रमशः भरतक्षेत्रके मध्य आर्यखण्डमें चित्रा-पृथिवीके ऊपर स्थित वृद्धिङ्गत एक योजनकी भूमि जलकर नष्ट हो जाती है ।।१५७२।।

वज्ज-महग्गि-बलेणं, अज्जा - खंडस्स वड्ढिदया[1] भूमी ।
पुव्विल्ल - खंध - रूवं, मोत्तूणं जादि लोयंतं ।।१५७३।।

अर्थ :—वज्र और महा-अग्निके बलसे आर्यखण्डकी बढ़ी हुई भूमि अपने पूर्ववर्ती स्कन्ध स्वरूपको छोड़कर लोकान्त पर्यन्त पहुँच जाती है ।।१५७३।।

ताहे[2] अज्जा - खंडं, दप्पणतल-तुलिद-कंति-सम-पुट्ठं ।
गय - धूलि - पंक - कलुसं, होदि समं सेस - भूमीहिं ।।१५७४।।

अर्थ :—उस समय आर्यखण्ड शेष भूमियोंके समान दर्पणतलके सदृश कान्तिसे युक्त, पुष्ट और धूलि एवं कीचड़ आदिकी कलुषतासे रहित हो जाता है ।।१५७४।।

उपस्थित मनुष्योंका उत्सेध आदि—

तत्थुवत्थिद - णराणं, [3]हत्थं उदओ य सोलसं वस्सा ।
अहवा पण्णरसाऊ, विरियादी तदणुरूवा य ।।१५७५।।

अर्थ :—(उस समय) वहाँ उपस्थित मनुष्योंकी ऊँचाई एक हाथ, आयु सोलह वर्ष अथवा पन्द्रह वर्ष प्रमाण तथा शक्ति आदि भी तदनुसार ही होती हैं ।।१५७५।।

उत्सर्पिणी कालका प्रवेश और उसके भेद—

तत्तो पविसदि रम्मो, कालो उस्सप्पिणि त्ति विक्खादो ।
पढमो अइदुस्समओ, बुइज्जओ दुस्समाणामा ।।१५७६।।
दुस्समसुसमो तदिओ, चउत्थओ सुसमदुस्समो[4] णामा ।
पंचमओ तह सुसमो, अप्पिओ सुसमसुसमओ छट्ठो ।।१५७७।।

---

१. द. ब. वड्ढिदका, क. ज. य. उ. वट्टिका । २. द. ब. क. ज. य. उ. तहे । ३. ब. क. उ. हत्थं । ४. क. दुस्समाणस्थ ।

अर्थ :—इसके पश्चात् उत्सर्पिणी (-इस) नामसे विख्यात रमणीय काल प्रवेश करता है। इसके छह भेदोंमेंसे प्रथम अतिदुषमा, द्वितीय दुषमा, तृतीय दुषमसुषमा, चतुर्थ सुषमदुषमा, पाँचवाँ सुषमा और छठा जनोंको प्रिय सुषमसुषमा है ॥१५७६-१५७७॥

उत्सर्पिणी कालका कालमान –

एदाण कालमाणं, अवसप्पिणि - काल - माण-सारिच्छं।
उच्छेह - आउ - पहुदी, दिवसे दिवसम्मि वड्ढंते ॥१५७८॥

अइदुस्समकाल वास २१००० । दु वास २१००० ।
दुसमसुसम सा १ को को रिण वास ४२००० ।
सुसमदुसम सा २ को को । सु सा ३ को को ।
सु सु सा ४ को को ।

अर्थ :—इनका काल प्रमाण अवसर्पिणी कालके प्रमाण सदृश ही होता है। उत्सर्पिणी कालमें (शरीरकी) ऊँचाई और आयु आदिक दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जाती हैं ॥१५७८॥

विशेषार्थ :—अवसर्पिणीकाल सदृश उत्सर्पिणीकालके अतिदु:षमाकालका प्रमाण २१००० वर्ष, दु:षमाकालका २१००० वर्ष, दु:षमासुषमा कालका प्रमाण ४२००० वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागर, सुषमादु:षमाका दो कोड़ाकोड़ी सागर, सुषमाकालका तीन कोड़ाकोड़ी सागर और सुषमासुषमाकालका प्रमाण चार कोड़ाकोड़ी सागर है।

सुवृष्टि निर्देश—

पुक्खर-मेघा सलिलं, वरिसंति दिणाणि सत्त सुह-जणणं।
वज्जग्गिदाए दड्ढा, भूमी सयला वि सीयलो होदि ॥१५७९॥

अर्थ :—उत्सर्पिणी कालके प्रारम्भमें पुष्कर-मेघ सात दिन पर्यन्त सुखोत्पादक जल बरसाते हैं, जिससे वज्राग्निसे जली हुई सम्पूर्ण पृथिवी शीतल हो जाती है ॥१५७९॥

वरिसंति खीर-मेघा, खीर - जलं तेत्तियाणि दिवसाणि।
खीर - जलेहिं भरिदा, सच्छाया होदि सा भूमी ॥१५८०॥

अर्थ :—क्षीर-मेघ उतने (सात) ही दिन पर्यन्त क्षीरजलकी वर्षा करते हैं। इसप्रकार क्षीरजलसे भरी हुई यह पृथिवी उत्तम कान्ति युक्त हो जाती है ॥१५८०॥

तत्तो अमिद-पयोदा, अमिदं वरिसंति सत्त दिवसाणि ।
अमिदेणं[1] सित्ताए, महिए जायंति [2]वल्लि - गुम्मादी ॥१५८१॥

अर्थ :—इसके पश्चात् सात दिन पर्यन्त अमृतमेघ अमृतकी वर्षा करते हैं। इसप्रकार अमृतसे अभिषिक्त भूमि पर लता एवं गुल्म आदि उगने लगते हैं ॥१५८१॥

ताहे रस - जलवाहा, दिव्व-रसं पवरिसंति सत्त-दिणे ।
दिव्वरसेणाउण्णा, रसवंता होंति ते सव्वे ॥१५८२॥

अर्थ :—उस समय रस-मेघ सात दिन पर्यन्त दिव्य-रसकी वर्षा करते हैं। इस दिव्य-रससे परिपूर्ण वे सब (लता-गुल्म आदि) रसवाले हो जाते हैं ॥१५८२॥

सृष्टि रचनाका प्रारम्भ—

विविह-रसोसहि-भरिदा, भूमी सुस्साद-परिणदा होदि ।
तत्तो सीयल-गंधं, णादित्ता[3] णिस्सरंति णर - तिरिया ॥१५८३॥

अर्थ :—विविध रसपूर्ण औषधियोंसे भरी हुई भूमि सुस्वाद रूप परिणत हो जाती है। पश्चात् शीतल गन्धको ग्रहणकर वे मनुष्य और तिर्यञ्च गुफाओंसे बाहर निकल आते हैं ॥१५८३॥

उस कालका रहन-सहन एवं आहार—

फल-मूल-दल-प्पहुदिं, छुहिदा[4] खादंति मत्त - पहुदीणं ।
णग्गा गो - धम्मपरा, णर - तिरिया वण - पएसेसुं ॥१५८४॥

अर्थ :—उस समय स्त्री, मनुष्य और तिर्यंच नग्न रहकर पशुओं जैसा आचरण करते हुए क्षुधित होकर वन-प्रदेशोंमें मत्त (धतूरे) आदि वृक्षोंके फल, मूल एवं पत्ते आदि खाते हैं ॥१५८४॥

आयु आदिकका प्रमाण एवं उनकी वृद्धि—

तक्काल-पढम - भागे, आऊ पण्णरस सोलस समा वा ।
उच्छेहो इगि - हत्थं, वड्ढंते आउ - पहुदीणि ॥१५८५॥

अर्थ :—उस कालके प्रथम भागमें आयु पन्द्रह अथवा सोलह-वर्ष और ऊँचाई एक हाथ प्रमाण होती है। इसके आगे आयु आदि बढ़ती ही जाती है ॥१५८५॥

---

१. ज. य. अमिदोणं । २. ब उ. वलि । ३. द. ब. क. ज य. उ. णादित्ते । ४. द. ब. क. ज. य. उ. छुविदं ।

आऊ तेजो बुद्धी, बाहुबलं तह य देह - उच्छेहो ।
खंति - धिदि - प्पहुदीओ, काल - सहावेण वड्ढंति ॥१५८६॥

अर्थ :—आयु, तेज, बुद्धि, बाहु (भुजा) बल, देहकी ऊँचाई क्षमा एवं धृति (धैर्य) आदिक सब काल-स्वभावसे उत्तरोत्तर बढ़ते जाते हैं ॥१५८६॥

अतिदुषमा कालकी परिसमाप्ति—

एवं वोलीणेसुं, इगिवीस - सहस्स - संख - वासेसुं ।
पूरेदि भरहखेत्ते, कालो अदिदुस्समो णाम ॥१५८७॥

। अदिदुस्सम-कालं समत्तं ।

अर्थ :—इसप्रकार इक्कीस हजार संख्या-प्रमाण वर्ष व्यतीत हो जानेपर भरतक्षेत्रमें अति-दुःषमा नामक काल पूर्ण होता है ॥१५८७॥

। अतिदुषमाकाल समाप्त हुआ ।

दुःषमाकालका प्रवेश और आहार—

ताहे दुस्सम-कालो, पविसदि तस्सि च मणुव-तिरियाणं ।
आहारो पुव्वं[1] चिय, वीस - सहस्सावहिं जाव ॥१५८८॥

। २०००० ।

अर्थ :—तब दुःषमा कालका प्रवेश होता है । इस कालमें मनुष्य-तिर्यञ्चोंका आहार बीस हजार वर्ष पर्यन्त पहलेके ही सदृश रहता है ॥१५८८॥

आयु आदिका प्रमाण—

तस्स य पढम - पवेसे, वीसं वासाणि होदि परमाऊ[2] ।
उदओ य तिण्णि हत्था, आउठ[3]- हत्था चवंति परे ॥१५८९॥

। २० । ३ । $\frac{7}{2}$ ।

अर्थ :—इस कालके प्रथम प्रवेशमें उत्कृष्ट आयु बीस वर्ष और ऊँचाई तीन हाथ प्रमाण होती है । दूसरे आचार्य ऊँचाई साढे तीन हाथ प्रमाण कहते हैं ॥१५८९॥

---

१. द. ब. ज. य. उ. पुव्वच्चिय, क. पुव्वव्विय । २. ज. य. परमाओ । ३. द. ब. क. ज. य. उ. आउट्ठहत्या ।

कुलकरोंकी उत्पत्तिका निर्देश—

वास - सहस्से सेसे, उप्पत्ती कुलकराण भरहम्मि ।
अह चोद्दसाण ताणं, कमेण णामाणि वोच्छामि ॥१५६०॥

अर्थ :—इस कालके एक हजार वर्ष अवशेष रहने पर भरत क्षेत्रमें चौदह कुलकरों की उत्पत्ति होने लगती है । अब (मैं) उन कुलकरोंके नाम क्रमशः कहता हूं ॥१५६०॥

चौदह कुलकरोंके नाम एवं उनका उत्सेध—

कणओ कणयप्पह-कणयराय-कणयद्धजा कणयपुंखो ।
[1]णलिणो णलिणप्पह-णलिणराय[2]-णलिणद्धजा णलिणपुंखो ॥१५६१॥

पउमपह - पउमराजा, पउमद्धज-पउमपुंख-णामा य ।
आदिम - कुलकर - उदओ, चउ-हत्थो अंतिमस्स सत्तेव ॥१५६२॥

।४।७।

अर्थ :—कनक, कनकप्रभ, कनकराज, कनकध्वज, कनकपुंख (कनकपुङ्गव), नलिन, नलिनप्रभ, नलिनराज, नलिनध्वज, नलिनपुंख (नलिन पुङ्गव), पद्मप्रभ, पद्मराज, पद्मध्वज और पद्मपुंख (पद्मपुङ्गव), क्रमशः ये उन चौदह कुलकरोंके नाम हैं । इनमेंसे प्रथम कुलकरके शरीर की ऊँचाई चार हाथ और अन्तिम कुलकरकी ऊँचाई सात हाथ प्रमाण होती है ॥१५६१-१५६२॥

सेसाणं उस्सेहे[3], संपदि अम्हाण णत्थि उवदेसो ।
कुलकर - पहुदी णामा, एदाणं होंति गुणणामा ॥१५६३॥

अर्थ :—शेष कुलकरोंकी ऊँचाईके विषयमें हमारे पास इस समय उपदेश नहीं है । इनके जो कुलकर आदि नाम हैं, वे गुण (सार्थक) नाम हैं ॥१५६३॥

कुलकरोंका उपदेश—

ताहे बहुविह-ओसहि-जुदाए[4] पुढवीए पावको णत्थि ।
तह कुलकरा णराणं[5], उवदेसं देंति[6] विणय - जुत्ताणं ॥१५६४॥

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. वोलीणो । २. द. ब. क. ज. उ. णलिणप्पह णराय । ३. द. ब. क. ज. य. उ. उस्सेहो । ४. द. ब. ज. क. य. उ. जुवाय । ५ द. ब. क. ज. ब. णठाणं । ६. द. दिंति, ज. दंति ।

अर्थ :—उस समय विविध प्रकारकी औषधियोंके रहते हुए भी पृथिवी पर अग्नि नहीं रहती, तब कुलकर विनयसे युक्त मनुष्योंको उपदेश देते हैं ।।१५६४।।

मथिदूरण कुणह अग्गिं, पचेह अण्णाणि भुंजह जहिच्छं ।
[1]करह विवाहं बंधव - पहुदिहारेण सोक्खेणं ।।१५६५।।

अर्थ :—मथकर आग उत्पन्न करो और अन्न (भोजन) पकाओ । विवाह करो और बान्धवादिकके निमित्तसे इच्छानुसार सुखोंका उपभोग करो ।।१५६५।।

अइमेच्छा ते पुरिसा, जे सिक्खावेंति कुलकरा इत्थं ।
णवरि विवाह - विहीओ, वट्टंते पउमपुंखाओ ।।१५६६।।

। दुस्समकालो[2] समत्तो ।

अर्थ :—जिन्हें कुलकर इसप्रकारकी शिक्षा देते हैं, वे पुरुष अत्यन्त म्लेच्छ होते हैं । विशेष यह है कि पद्मपुङ्ख कुलकरके समयसे विवाह-विधियाँ प्रचलित हो जाती हैं ।।१५६६।।

। इसप्रकार दुःषमाकालका वर्णन समाप्त हुआ ।

दुःषमसुषम कालका प्रवेश, उत्सेध आदिका प्रमाण एवं मनुष्योंका स्वरूप—

तत्तो दुस्समसुसमो, कालो पविसेदि तस्स पढमम्मि ।
सग - हत्था उस्सेहो, वीसब्भहियं सयं आऊ ।।१५६७।।

। ७ । १२० ।

अर्थ :—इसके पश्चात् दुःषमसुषमाकालका प्रवेश होता है । इसके प्रारम्भमें ऊँचाई सात हाथ और आयु एकसौ बीस वर्ष प्रमाण होती है ।।१५६७।।

पुट्ठट्ठी चउवीसं, मणुवा तह पंच - वण्ण - देह - जुदा ।
मज्जाय - विणय - लज्जा, [3]संतुट्ठा होंदि संपण्णा ।।१५६८।।

। २४ ।

अर्थ :—इस समय पृष्ठभागकी हड्डियाँ चौबीस होती हैं तथा मनुष्य पाँच वर्णवाले शरीरसे युक्त; मर्यादा, विनय एवं लज्जा सहित; सन्तुष्ट और सम्पन्न होते हैं ।।१५६८।।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ करग । २. द. ब. क. काला सम्मत्ता, ज. य. काल सम्मत्ता । ३ द. ब. क. ज. य. उ. सत्तुच्छा ।

विदेह-सदृश वृत्तिका निर्देश—

तक्काले तित्थयरा, चउवीस हवंति ताण पढम-जिणो[1] ।
अंतिल्ल - कुलकर - सुदो, विदेहवत्ती तदो होदि ॥१५९९॥

अर्थ :—इस कालमें भी तीर्थंकर चौबीस होते हैं। उनमेंसे प्रथम तीर्थंकर अन्तिम कुलकर का पुत्र होता है। उस समयसे यहाँ विदेहक्षेत्र सदृश वृत्ति होने लगती है ॥१५९९॥

चौबीस तीर्थंकरोंके नाम निर्देश—

महपउमो सुरदेवो, सुपास - णामो सयंपहो तह य ।
सव्वपहो देवसुदो, कुलसुद - उदका य पोट्ठिलओ ॥१६००॥

। ९ ।

जयकित्ती मुणिसुव्वय-अरय-अपापा य णिक्कसायाओ ।
विउलो णिम्मल - णामा, अ चित्तगुत्तो समाहिगुत्तो य ॥१६०१॥

। ९ ।

उणवीसमो सयंभू, अणिअट्टी जयो य विमल-णामो य ।
तह देवपाल - णामा, अणंतविरिओ अ होदि चउवीसो ॥१६०२॥

। ६ ।

अर्थ :—१ महापद्म, २ सुरदेव, ३ सुपार्श्व, ४ स्वयंप्रभ, ५ सर्वप्रभ (सर्वात्मभूत), ६ देवसुत, ७ कुलसुत, ८ उदक (उदङ्क), ९ प्रोष्ठिल, १० जयकीर्ति, ११ मुनिसुव्रत, १२ अर, १३ अपाप, १४ निष्कषाय, १५ विपुल, १६ निर्मल, १७ चित्रगुप्त, १८ समाधिगुप्त, १९ स्वयम्भू, २० अनिवृत्ति (अनिवर्तक), २१ जय, २२ विमल, २३ देवपाल और २४ अनन्तवीर्य ये चौबीस तीर्थंकर होते हैं ॥१६००-१६०२॥

इन तीर्थंकरोंकी ऊँचाई, आयु और तीर्थंकर प्रकृति बंधके भव सम्बन्धी नाम—

आदिम-जिण-उदयाऊ, सग - हत्था सोलसुत्तरं च सदं ।
चरिमस्स पुव्वकोडी, आऊ पण-सय - धणूणि उस्सेहो ॥१६०३॥

। ७ । ११६ । पुको १ । ५०० ।

---

१. द. ब. क. ज. उ. जिणा ।

अर्थ :—इनमेंसे प्रथम तीर्थंकरके शरीरकी ऊँचाई सात हाथ और आयु एकसौ सोलह वर्ष तथा अन्तिम तीर्थंकरकी आयु एक पूर्वकोटि और ऊँचाई पाँचसौ धनुष प्रमाण होती है ॥१६०३॥

उच्छेहाऊ - पहुदिसु, सेसाणं णत्थि अम्ह उवएसो ।
एदे तित्थयर - जिणा, तदिय-भवे तिभुवणस्स खोहकरं ॥१६०४॥

तित्थयर - णामकम्मं, बंधंते ताण ते इमे णामा ।
सेणिग - सुपास - णामा, [1]उदंक - पोट्ठिल्ल - कदसूया ॥१६०५॥

। ५ ।

[2]खत्तिय-पाविल-संखा, य णंद-सुणंदा ससंक - सेवगया ।
[3]पेमगतोरण-रेवद-किण्हा सिरी-भगलि-विगलि-णामा य ॥१६०६॥

। १४ ।

दीवायण - माणवका, णारद - णामा सुरूवदत्तो य ।
सच्चइ - पुत्तो चरिमो, णरिंद - वंसम्मि ते जादा ॥१६०७॥

। ५ ।

अर्थ :—शेष तीर्थंकरोंकी ऊँचाई और आयु इत्यादिके विषयमें हमारे पास उपदेश नहीं है । ये तीर्थंकर जिनेन्द्र तृतीय भवमें तीनों लोकोंको आश्चर्य उत्पन्न करनेवाले तीर्थंकर नामकर्मको बांधते हैं । उनके उस समयके वे नाम ये हैं—

१ श्रेणिक, २ सुपार्श्व, ३ उदङ्क, ४ प्रोष्ठिल, ५ कृतसूर्य (कटप्रू), ६ क्षत्रिय, ७ पाविल (श्रेष्ठी), ८ शङ्ख, ९ नन्द, १० सुनन्द, ११ शशाङ्क, १२ सेवक, १३ प्रेमक, १४ अतोरण, १५ रैवत, १६ कृष्ण, १७ सीरी (बलराम), १८ भगलि, १९ विगलि, २० द्वीपायन, २१ माणवक, २२ नारद, २३ सुरूपदत्त और अन्तिम २४ सात्यकिपुत्र । ये सब राजवंशमें उत्पन्न हुए थे ॥१६०४-१६०७॥

भविष्यत् कालीन चक्रवर्तियोंके नाम—

तित्थयराणं काले, चक्कहरा होंति ताण णामाइं ।
भरहो अ दिग्घदंतो, मुत्तदंतो य गूढदंतो य ॥१६०८॥

---

१. ब. क. उ. उद्दंक । २ द. उ. खंभिय, ब. खंमिय । ३. द. ब. क. उ. पेमगरो णाम वदकिण्हा, ज. पेमथरो णाम वदकिण्हा । य. मेमथरो णाम वदकिण्हा ।

सिरिसेणो सिरिभूदी, सिरिकंतो पउमणाभ-महपउमा ।
तह चित्तवाहणो विमलवाहणो रिट्ठसेण - णामा य ।।१६०९।।

अर्थ :—(उपर्युक्त) तीर्थंकरोंके समयमें जो चक्रवर्ती होते है, उनके नाम ये हैं—भरत, दीर्घदन्त, मुक्तदन्त, गूढदन्त, श्रीषेण, श्रीभूति, श्रीकान्त, पद्मनाभ, महापद्म, चित्रवाहन, विमलवाहन और अरिष्टसेन ।।१६०८-१६०९।।

भविष्यत् कालीन बलदेव, नारायण और प्रतिनारायणोंके नाम—

चंदो[1] य महाचंदो, चंदधरो चंदसिह [2]वरचंदा ।
हरिचंदो सिरिचंदो, सुपुण्णचंदो सुचंदो य ।।१६१०।।

पुव्वभवे अणिदाणा, एदे जायंति पुण्ण - पाकेहिं ।
अणुजा कमसो णंदी, तह णंदि - मित्त - सेणा य ।।१६११।।

तुरिमो य णंदिभूदी, बल-महबल-अदिबला[3] तिविट्ठो य ।
णवमो दिविट्ठ - णामो, ताणं जायंति णवम पडिसत्तू ।।१६१२।।

सिरि[4]-हरि-णीलकंठा, अस्सकंठा - सुकंठ - सिखिकंठा ।
अस्सग्गीव - हयग्गीव, [5]मउरगीवा य पडिसत्तू ।।१६१३।।

अर्थ :—१ चन्द्र, २ महाचन्द्र, ३ चन्द्रधर (चक्रधर), ४ चन्द्रसिंह, ५ वरचन्द्र, ६ हरिचन्द्र, ७ श्रीचन्द्र, ८ पूर्णचन्द्र और ९ सुचन्द्र (शुभचन्द्र) ये नव बलदेव पुण्यके उदयसे होते हैं क्योंकि ये पूर्वभवमें निदानबंध नहीं करते । १ नन्दी, २ नन्दिमित्र, ३ नन्दिषेण, ४ नन्दिभूति, ५ बल, ६ महाबल, ७ अतिबल, ८ त्रिपृष्ठ और ९ द्विपृष्ठ, ये नव नारायण क्रमशः उन बलदेवोंके अनुज होते हैं। इन नौ नारायणोंके प्रतिशत्रु क्रमशः १ श्रीकण्ठ, २ हरिकण्ठ, ३ नीलकण्ठ, ४ अश्वकण्ठ, ५ सुकण्ठ, ६ शिखिकण्ठ, ७ अश्वग्रीव, ८ हयग्रीव और ९ मयूरग्रीव हैं ।।१६१०-१६१३।।

---

१. द. ब. क. ज. य. द. चंदा । २. द. ब. क. ज. य. उ. चंदो य । ३. द. ब. क. ज. य. उ. महबलादिबलो तिविच्छाह । ४. द. ब. णीलंलंकंठाय-सकठासुकंठ, क. सिरिहरिहरिणीलकं कंठाय सकंठाय सुकंठा, ज. सिरिहरिहरिणीलंकं कठाय सकणय सुकंठ, य. सिरिहरिहरि णीलकं कंठाय सुकंठ, उ. सिरिहरिहरि णीलकं कंठाय सकंठा सुकंठा । ५. द. ब. क. ज. य. उ. महुरग्गीवा ।

तालिका : ४१

भावी शलाका–

कुलकर		तीर्थंकर		पूर्वले तीसरे भवके	
क्र.	नाम गा० १५६१–६२	क्र.	नाम गा० १६००–१६०२	क्र.	नाम गा० १६०५–१६०७
१	कनक	१	महापद्म	१	श्रेणिक
२	कनकप्रभ	२	सुरदेव	२	सुपार्श्व
३	कनकराज	३	सुपार्श्व	३	उदङ्क
४	कनकध्वज	४	स्वयंप्रभ	४	प्रोष्ठिल
५	कनक पुंख (पुंगव)	५	सर्वप्रभ (सर्वात्मभूत)	५	कृतसूर्य (कटप्रू)
६	नलिन	६	देवसुत	६	क्षत्रिय
७	नलिनप्रभ	७	कुलसुत	७	पाविल (श्रेष्ठी)
८	नलिनराज	८	उदक (उदङ्क)	८	शङ्ख
९	नलिनध्वज	९	प्रोष्ठिल	९	नन्द
१०	नलिनपुंख (पुंगव)	१०	जयकीर्ति	१०	सुनन्द
११	पद्मप्रभ	११	मुनिसुव्रत	११	शशाङ्क
१२	पद्मराज	१२	अर	१२	सेवक
१३	पद्मध्वज	१३	अपाप	१३	प्रेमक
१४	पद्मपुंख (पुंगव)	१४	निष्कषाय	१४	अतोरण
		१५	विपुल	१५	रैवत
		१६	निर्मल	१६	कृष्ण
		१७	चित्रगुप्त	१७	सीरी (बलराम)
		१८	समाधिगुप्त	१८	भगलि
		१९	स्वयम्भू	१९	विगलि
		२०	अनिवृत्ति (अनिवर्तक)	२०	द्वीपायन
		२१	जय	२१	माणवक
		२२	विमल	२२	नारद
		२३	देवपाल	२३	सुरूपदत्त
		२४	अनन्तवीर्य	२४	सात्यकिपुत्र

पुरुष—

चक्रवर्ती		बलभद्र		नारायण		प्रति ना०	
क्र.	नाम गा.१६०८-१६०९	क्र.	नाम गा. १६१०	क्र.	नाम गा. १६११-१२	क्र.	नाम गा १६१३
१	भरत	१	चन्द्र	१	नन्दी	१	श्रीकण्ठ
२	दीर्घदन्त	२	महाचन्द्र	२	नन्दिमित्र	२	हरिकण्ठ
३	मुक्तदन्त	३	चन्द्रधर (चक्रधर)	३	नन्दिषेण	३	नीलकण्ठ
४	गूढदन्त	४	चन्द्रसिंह	४	नन्दिभूति	४	अश्वकण्ठ
५	श्रीषेण	५	वरचन्द्र	५	बल	५	सुकण्ठ
६	श्रीभूति	६	हरिचन्द्र	६	महाबल	६	शिखिकण्ठ
७	श्रीकान्त	७	श्रीचन्द्र	७	अतिबल	७	अश्वग्रीव
८	पद्मनाभ	८	पूर्णचन्द्र	८	त्रिपृष्ठ	८	हयग्रीव
९	महापद्म	९	सुचन्द्र (शुभचन्द्र)	९	द्विपृष्ठ	९	मयूरग्रीव
१०	चित्रवाहन						
११	विमलवाहन						
१२	अरिष्टसेन						

शलाका पुरुषोंकी उत्पत्तिका समय —

एदे तेसट्ठि - णरा, सलाग - पुरिसा तइज्ज-कालम्मि ।
उप्पज्जंति हु कमसो, एक्कोवहि - उवम-कोडकोडीओ ॥१६१४॥

सा १ को को ।

अर्थ :—ये तिरेसठ (२४ तीर्थं० + १२ चक्र० + ९ + ९ + ९) शलाका पुरुष एक कोड़ाकोड़ी सागर-प्रमाण इस तृतीयकालमें क्रमशः उत्पन्न होते हैं ॥१६१४॥

इस कालके अन्तमें आयु आदिका प्रमाण—

एक्को णवरि विसेसो, बादाल-सहस्स-वास-परिहीणो[1] ।
तच्चरिमम्मि णराणं, आऊ इगि-पुव्वकोडि-परिमाणं ॥१६१५॥

पणवीसब्भहियाणि[2], पंच सयाणि धणूणि उच्छेहो ।
चउसट्ठी पुट्ठट्ठी, णर - णारी देव - अच्छर - सरिच्छा ॥१६१६॥

। दुस्समसुसमो समत्तो ।

अर्थ :—यहाँ विशेषता यह है कि यह काल एक कोडाकोड़ी सागरोपम कालमेंसे बयालीस हजार वर्ष हीन होता है। इस कालके अन्तमें मनुष्योंकी आयु एक पूर्वकोटि प्रमाण ऊँचाई पाँचसौ पच्चीस धनुष और पृष्ठ भागकी हड्डियाँ चौंसठ होती हैं। इस समय नर-नारी देवों एवं अप्सराओंके सदृश होते हैं ॥१६१५-१६१६॥

। दुःषमसुषमा कालका वर्णन समाप्त हुआ ।

चतुर्थकालका प्रवेश और प्रवेश कालमें आयु आदिका प्रमाण—

तत्तो पविसदि तुरिमो, णामेणं सुसमदुस्समो कालो ।
तप्पढमम्मि णराणं, आऊ वासाण पुव्वकोडीओ ॥१६१७॥

ताहे ताणं उदया, पणुवीसब्भहिय पंचसय चावा ।
कमसो आऊ - उदया, काल - बलेणं [3]पवड्ढंति ॥१६१८॥

अर्थ :—इसके पश्चात् सुषमदुःषमा नामक चतुर्थकाल प्रविष्ट होता है। इसके प्रारम्भमें मनुष्योंकी आयु एक पूर्वकोटि प्रमाण और ऊँचाई पाँचसौ पच्चीस धनुष प्रमाण होती है। पश्चात् कालके प्रभावसे आयु और ऊँचाई प्रत्येक उत्तरोत्तर क्रमशः बढ़ती ही जाती हैं ॥१६१७-१६१८॥

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. परिहीणा। २. द. ब. क. ज. य. उ. हियाए। ३. ब. पवदते, क. ज. पवट्टंते, य. उ. पवड्ढंते।

जघन्य भोगभूमिका प्रवेश एवं मनुष्योंकी आयु आदिका प्रमाण—

ताहे एसा[1] वसुहा, वण्णिज्जइ अवर - भोगभूमि त्ति ।
तच्चरिमम्मि णराणं, एक्कं पल्लं हवे आऊ ।।१६१९।।

अर्थ :—उस समय यह पृथिवी जघन्य भोगभूमि कही जाती है। इस कालके अन्तमें मनुष्योंकी आयु एक पल्य प्रमाण होती है ।।१६१९।।

उदएण एक्क - कोसं, सव्व - णरा ते पियंगु-वण्ण-जुदा ।
तत्तो पविसदि कालो, पंचमओ सुसम - णामेणं ।।१६२०।।

अर्थ :—उस समय वे सब मनुष्य एक कोस ऊँचे और प्रियंगु जैसे वर्णसे युक्त होते हैं। इसके पश्चात् पाँचवां सुषमा नामक काल प्रविष्ट होता है ।।१६२०।।

सुषमा नामक मध्यमभोगभूमिके मनुष्योंकी आयु आदि—

तस्स पढम-प्पवेसे, आउ - प्पहुदीणि होंति पुव्वं[2] वा ।
काल - सहावेण तहा, वड्ढंते मणुव - तिरियाणं ।।१६२१।।

अर्थ :—उस कालके प्रथम प्रवेशमें मनुष्य-तिर्यञ्चोंकी आयु आदि पूर्वके ही समान होती है, परन्तु काल-स्वभावसे वह उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है ।।१६२१।।

ताहे एसा खोणी, मज्झिम - भोगावणित्ति विक्खादा ।
तच्चरिमम्मि णराणं, आऊ दो - पल्ल परिमाणं ।।१६२२।।

अर्थ :—उस समय यह पृथिवी मध्यम-भोगभूमिके नामसे प्रसिद्ध हो जाती है। इस काल के अन्तमें मनुष्योंकी आयु दो पल्य प्रमाण होती है ।।१६२२।।

दो कोसा उच्छेहो, णारि - णरा पुण्णिमिंदु-सरिस-मुहा ।
बहुविणय - सीलवंता, बिगुणिय - चउसट्ठि - पुट्ठट्ठी ।।१६२३।।

। सुसमो समत्तो[3] ।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. तादे हेसा । २. द. ब. क. ज. य. उ. पुव्वण्हं । ३. द. ब. उ. सुसमसुस्सम समत्ता ।

अर्थ :—(उस समयके) नर-नारी दो कोस ऊँचे, पूर्ण चन्द्रसदृश मुखवाले, बहुत विनय एवं शीलसे सम्पन्न और पृष्ठभागकी एकसौ अट्ठाईस हड्डियों सहित होते हैं ।।१६२३।।

। सुषमाकालका कथन समाप्त हुआ ।

सुषमासुषमाकालका प्रवेश एवं उसका स्वरूप—

सुसमसुसमाभिधाणो, ताहे पविसेदि छुट्ठमो कालो ।
तस्स पढमे पएसे, आऊ - पहुदीणि पुव्वं व ।।१६२४।।

अर्थ : तदनन्तर सुषमसुषमा नामक छठा काल प्रविष्ट होता है । उसके प्रथम प्रवेशमें आयु आदिके प्रमाण पूर्वके सदृश ही होते हैं ।।१६२४।।

काल-सहाव-बलेणं, वड्ढंते ताइ मणुव - तिरियाणं ।
ताहे एस धरित्ती, उत्तमभोगावणि त्ति सुपसिद्धो ।।१६२५।।

अर्थ :—काल स्वभावके प्रभावसे मनुष्य और तिर्यंचोंकी आयु आदिक क्रमशः वृद्धिङ्गत होती जाती है । उस समय यह पृथिवी उत्तम-भोगभूमिके नामसे सुप्रसिद्ध हो जाती है ।।१६२५।।

तच्चरिमम्मि णराणं, आऊ पल्लत्तय - प्पमाणं च ।
उदएण तिण्णि कोसा, उदय - दिणिवुज्जल - सरीरा ।।१६२६।।

अर्थ :—उस कालके अन्तमें मनुष्योंकी आयु तीन पल्य-प्रमाण और ऊँचाई तीन कोस होती है तथा मनुष्य उदित होते हुए सूर्य सदृश उज्ज्वल शरीर वाले होते हैं ।।१६२६।।

बे - सय - छप्पण्णाइं, पुट्ठट्ठी होंति ताण मणुवाणं ।
बहु - परिवार - विगुव्वण - समत्थ - सत्तीहि संजुत्ता ।।१६२७।।

अर्थ :—उन मनुष्योंके पृष्ठ-भागकी हड्डियाँ दोसौ छप्पन होती हैं, तथा वे मनुष्य बहुत परिवारकी विक्रिया करनेमें समर्थ ऐसी शक्तियोंसे सहित होते हैं ।।१६२७।।

पुनः अवसर्पिणीका प्रवेश—

ताहे पविसदि णियमा, कमेण अवसप्पिणि त्ति सो कालो ।
एवं अज्जा - खंडे, परियट्टंते दु - काल - चक्काणि ।।१६२८।।

अर्थ :—इसके पश्चात् पुनः नियमसे वह अवसर्पिणीकाल प्रवेश करता है । इसप्रकार आर्यखण्डमें उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी रूपी कालचक्र प्रवर्तित होता रहता है ।।१६२८।

नोट—कालचक्रको दर्शाने वाला चित्र गाथा ३२३ के बाद अंकित है ।

पाँच म्लेच्छखण्ड और विद्याधर श्रेणियोंमें प्रवर्तमान कालका नियम—

पण-मेच्छ-खयरसेढिसु, अवसप्पुस्सप्पिणीए तुरिमम्मि ।
तदियाए हाणि - चयं, कमसो पढमाद् चरिमो त्ति ॥१६२९॥

अर्थ :—पाँच म्लेच्छ खण्डों और विद्याधर-श्रेणियोंमें अवसर्पिणी एवं उत्सर्पिणीकालमें क्रमशः चतुर्थ और तृतीय कालके प्रारम्भसे अन्त-पर्यन्त हानि एवं वृद्धि होती रहती है। (अर्थात् इन स्थानोंमें अवसर्पिणीकालमें चतुर्थकालके प्रारम्भसे अन्त-पर्यन्त हानि और उत्सर्पिणीमें तृतीय कालके प्रारम्भसे अन्त तक वृद्धि होती रहती है। यहाँ अन्य कालोंकी प्रवृत्ति नहीं होती) ॥१६२९॥

उत्सर्पिणीके अतिदुषमा आदि तीन कालोंमें जीवों की संख्यावृद्धिका क्रम—

उस्सप्पिणीए अज्जाखंडे अदिदुस्समस्स पढम - खणे ।
होंति हु णर - तिरियाणि, जीवा सव्वाणि थोवाणि ॥१६३०॥

अर्थ :—आर्यखण्डमें उत्सर्पिणीकालके अतिदुःषमाकालके प्रथम क्षणमें मनुष्यों और तिर्यञ्चोंमें सब जीव अल्प होते हैं ॥१६३०॥

तत्तो कमसो बहवा, मणुवा तेरिच्छ-सयल-वियलक्खा ।
उप्पज्जंति हु जाव य, दुस्समसुसमस्स चरिमो त्ति ॥१६३१॥

अर्थ :—इसके पश्चात् पुनः क्रमशः दुःषमसुषमाकालके अन्त पर्यन्त बहुतसे मनुष्य तथा सकलेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय तिर्यञ्च जीव उत्पन्न होते हैं ॥१६३१॥

एक समयमें विकलेन्द्रियोंका नाश एवं कल्पवृक्षोंकी उत्पत्ति—

णासंति एक्क-समए, वियलक्खा-अंगि-[1]णिवह-कुल-भेया ।
तुरिमस्स पढम - समए, कप्पतरूणं पि उप्पत्ती ॥१६३२॥

अर्थ :—तत्पश्चात् एक समयमें विकलेन्द्रिय प्राणियोंके समूह एवं कुलभेद नष्ट हो जाते हैं तथा चतुर्थकालके प्रथम समयमें कल्पवृक्षोंकी भी उत्पत्ति हो जाती है ॥१६३२॥

पविसंति मणुव-तिरिया, जेत्तिय-मेत्ता जहण्ण-भोगखिदिं ।
तेत्तिय - मेत्ता होंति हु, छक्काले भरह - एरवदे ॥१६३३॥

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. णिवह।

अर्थ :—जितने मनुष्य और तिर्यञ्च (चतुर्थकाल स्वरूप) जघन्य भोगभूमिमें प्रवेश करते हैं उतने ही जीव छह कालोंके भीतर भरत ऐरावत क्षेत्रोंमें होते हैं ।।१६३३।।

विशेषार्थ :— अवसर्पिणीके अतिदुःषमाकालके अन्तिम ४६ दिनोंमें अशुभ वर्षा होती है । उस समय विद्याधर और देव, मनुष्य एवं तिर्यंचोंके कुछ युगलोंको विजयार्ध और गंगा-सिन्धुकी वेदी स्थित गुफाओंमें रख देते हैं (गा० १५६६) । उत्सर्पिणीके अतिदुःषम कालके प्रारम्भमें सुवृष्टि होनेके बाद वे जीव वहाँसे बाहर निकलते हैं (गा० १५८३), जो संख्यामें अति-अल्प होते हैं, इसी कारण उस समय भरत-ऐरावत क्षेत्रोंके आर्यखण्डोंमें मनुष्यों और तिर्यंचोंकी संख्या अति-अल्प होती है (गा० १६३०) । उसके बाद अतिदुःषमा, दुःषमा और दुःषमसुषमा अर्थात् पहले, दूसरे और तीसरे कालके अन्त-पर्यन्त मनुष्यों तथा सकलेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीवोंका यह प्रमाण बढ़ता जाता है । अर्थात् दुःषमसुषमाके अन्त तक इनकी उत्पत्ति होती रहती है (गा० १६३१) । इसके पश्चात् सुषमदुःषमा नामक चतुर्थ कालके प्रथम समयमें ही विकलेन्द्रिय प्राणियोंका विनाश हो जाता है और कल्पवृक्षोंकी उत्पत्ति हो जाती है (गा० १६३२) क्योंकि उस समय कर्मभूमिका तिरोभाव और भोगभूमिका प्रादुर्भाव हो जाता है ।

भरत-ऐरावत क्षेत्रोंके आर्यखण्डोंमें चतुर्थकाल स्वरूप इस जघन्य भोगभूमिमें जितनी संख्या प्रमाण मनुष्य और तिर्यंच प्रवेश करते हैं, उतने ही जीव उत्सर्पिणी सम्बन्धी १ सुषमदुःषमा, २ सुषमा और ३ सुषमसुषमा तथा अवसर्पिणी सम्बन्धी ४ सुषमसुषमा, ५ सुषमा और ६ सुषमदुःषमा इन छह कालोंमें रहते हैं (गा० १६३३) । इन छह कालोंमें अर्थात् १८ कोड़ाकोड़ी सागर पर्यन्त इन जीवों-की संख्यामें हानि-वृद्धि नहीं होती है कारण कि उस समय मनुष्य और तिर्यंच युगल रूपमें ही जन्म लेते हैं और युगलरूपमें ही मरते हैं ।

विकलेन्द्रिय जीवोंकी उत्पत्ति एवं वृद्धि—

अवसप्पिणीए दुस्समसुसम - पवेसस्स पढम समयम्मि ।
विर्यालदिय - उप्पत्ती, वड्ढी जीवाण थोव - कालम्मि ।।१६३४।।

अर्थ :—अवसर्पिणी कालमें दुःषमसुषमा (चतुर्थ) कालके प्रारम्भिक प्रथम समयमें ही विकलेन्द्रिय जीवोंकी उत्पत्ति तथा थोड़े ही समयके भीतर उनकी वृद्धि होने लगती है ।।१६३४।।

विशेषार्थ :—भोगभूमि सम्बन्धी उपर्युक्त तीन-तीन अर्थात् छह काल व्यतीत हो जानेके बाद दुःषमसुषम (चतुर्थ) कालके प्रारम्भिक समयमें ही विकलेन्द्रिय जीवों की उत्पत्ति हो जाती है ।

कमसो वड्ढंति हु तिय-काले मणुव-तिरियाणमवि[1] संखा ।
तत्तो उस्सप्पिणिए, तदिए वड्ढंति पुव्वं वा ।।१६३५।।

अर्थ :—इस प्रकार तीन कालोंमें मनुष्य और तिर्यंच जीवोंकी संख्या क्रमशः बढ़ती ही रहती है। फिर इसके पश्चात् उत्सर्पिणीके तीन अर्थात् अतिदुःषमा, दुःषमा और दुःषमसुषमा कालोंमें भी पहलेके सदृश ही वे जीव वर्तमान रहते हैं ।।१६३५।।

अवसर्पिणी-उत्सर्पिणीकालोंका प्रमाण—

अवसप्पिणि-उस्सप्पिणि-काल-च्चिय रहट-घटियणाएणं ।
होंति अणंताणंता, भरहेरावद - खिदिम्मि पुढं ।।१६३६।।

अर्थ :—भरत और ऐरावत क्षेत्रमें रँहट-घटिका-न्यायसे अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल अनन्तानन्त होते हैं। (अर्थात् जैसे रँहटकी घड़ियाँ चक्रवत् घूमती हुई बार-बार ऊपर एवं नीचे आती-जाती हैं, उसीप्रकार अवसर्पिणीके बाद उत्सर्पिणी और उत्सर्पिणीके बाद अवसर्पिणी इस क्रमसे सदा इन कालोंका परिवर्तन होता ही रहता है) ।।१६३६।।

हुण्डावसर्पिणी कालका निर्देश एवं उसके चिह्न—

अवसप्पिणि-उस्सप्पिणि-काल-सलाया गदे असंखाणि ।
हुंडावसप्पिणी[2]सा, एक्का जाएदि तस्स चिण्हमिमं ।।१६३७।।

अर्थ :—असंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी कालकी शलाकाएँ बीत जानेपर प्रसिद्ध एक हुण्डावसर्पिणी आती है; उसके चिह्न ये हैं ।।१६३७।।

[3]तस्सि पि सुसमदुस्सम-कालस्स [4]ठिदिम्मि थोव-अवसेसे ।
णिवडदि पाउस-पहुदी, विगलिंदिय - जीव - उप्पत्ती ।।१६३८।।

अर्थ :—इस हुण्डावसर्पिणी कालमें सुषमदुःषम (तृतीय) कालकी स्थितिमें कुछ कालके अवशिष्ट रहने पर भी वर्षा आदिक पड़ने लगती है और विकलेन्द्रिय जीवोंकी उत्पत्ति होने लगती है ।।१६३८।।

कप्पतरूण विरामो, वावारो होदि कम्मभूमीए ।
तक्काले जायंते, पढम - जिणो पढम - चक्की य ।।१६३९।।

---

१. द. ज. तिरियपवि, ब. क. उ. तिरियमवि । २. द. ब. क. ज. य. उ. मो । ३. द. ब. क. ज. य. उ. तस्सं । ४. द. ब. क. ज. य. उ. विदिम्मि ।

अर्थ :—इसी कालमें कल्पवृक्षोंका अन्त और कर्मभूमिका व्यापार प्रारम्भ हो जाता है तथा प्रथम तीर्थंकर और प्रथम चक्रवर्ती भी उत्पन्न हो जाते हैं ।।१६३९।।

चक्किस्स विजय-भंगो, णिव्वुइ-गमणं च थोव-जीवाणं ।
चक्कधराउ[1] दिजाणं, हवेदि वंसस्स उप्पत्ती ।।१६४०।।

अर्थ :—चक्रवर्तीका विजय-भङ्ग और (तृतीय कालमें ही) थोड़ेसे जीवोंका मोक्ष गमन होता है, तथा चक्रवर्ती द्वारा द्विजोंके वंश (ब्राह्मण वर्ण) की उत्पत्ति भी होती है ।।१६४०।।

दुस्समसुसमे काले, अट्ठावण्णा सलाय - पुरिसा य ।
णवमादि - सोलसंते, सत्तसु तित्थेसु धम्म - वोच्छेदो ।।१६४१।।

अर्थ :—दु:षमासुषमा कालमें अट्ठावन ही शलाका पुरुष होते हैं और नौवेंसे सोलहवें तीर्थंकर पर्यन्त सात तीर्थोंमें धर्मकी व्युच्छित्ति होती है ।।१६४१।।

विशेषार्थ :— प्रत्येक उत्सर्पिणी अवसर्पिणी कालमें ६३ जीव तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, नारायण और प्रतिनारायण पदको धारण करनेवाले शलाका पुरुष होते हैं ।

※ वर्तमान हुण्डावसर्पिणी कालके चतुर्थकालमें शलाका पुरुषोंकी संख्या ५८ है । भगवान् आदिनाथ तीसरे कालमें ही मोक्ष चले गए थे और शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ तथा अरनाथके जीव एक ही समयमें तीर्थंकर भी थे और चक्रवर्ती भी थे तथा प्रथम नारायण त्रिपृष्ठका जीव ही अन्तिम तीर्थंकर महावीर हुआ । इसप्रकार शलाका जीवोंकी संख्या ५८ हुई ।

※ वर्तमान हुण्डावसर्पिणीकालमें तीन तीर्थंकर एक ही समयमें दो पदधारी हुए तथा भगवान् महावीरका जीव नारायण और तीर्थंकर इन दो पदोंका धारक हुआ । इसप्रकार इस कालमें चार जीव दो पदोंके धारक होनेसे शलाका जीवोंकी संख्या ५९ हुई ।

※ यदि आदिनाथ भगवान्के तीसरे कालमें मोक्ष-गमनकी विवक्षा न की जाय और भगवान् महावीरके पूर्वभव (त्रिपृष्ठ नारायण) की विवक्षा भी न की जाय तो इस हुण्डावसर्पिणी-कालमें केवल तीन तीर्थंकर दो पदधारी होनेसे शलाका पुरुषोंकी संख्या ६० हुई ।

एक्करस होंति रुद्दा, कलह-पिया णारदा य णव-संखा ।
सत्तम - तेवीसंतिम - तित्थयराणं च उवसग्गो ।।१६४२।।

अर्थ :—ग्यारह रुद्र और कलह-प्रिय नौ नारद होते हैं तथा सातवें, तेईसवें और अन्तिम तीर्थंकर पर उपसर्ग भी होता है ।।१६४२।।

---

१. ब. क. उ. चक्कधराओ जिदाणं ।

तदिय - चदु - पंचमेसुं, कालेसुं परम-धम्म-णासयरा ।
विविह - कुदेव - कुलिंगी, दीसंते [1]दुट्ठ - पाविट्ठा ॥१६४३॥

चंडाल-सबर-पाणा, पुलिंद-णाहल-चिलाद[2]-पहुदि-कुला ।
दुस्समकाले कक्की, उवकक्की होंति बादाला ॥१६४४॥

अर्थ :—तृतीय, चतुर्थ एवं पंचम कालमें उत्तम धर्मको नष्ट करने वाले विविध प्रकारके दुष्ट, पापिष्ठ, कुदेव और कुलिङ्गी भी दिखने लगते हैं, चाण्डाल, शबर, पाण (श्वपच), पुलिन्द, लाहल और किरात आदि जातियाँ उत्पन्न होती हैं, तथा दुःषमा कालमें बयालीस कल्की एवं उपकल्की होते हैं ॥१६४३-१६४४॥

अइवुट्ठि - अणावुट्ठी, भूवड्ढी वज्ज-अग्गि-पमुहा य ।
इह णाणाविह - दोसा, विचित्त - भेदा हवंति पुढं ॥१६४५॥

। एवं काल-विभागो समत्तो ।

॥ एवं भरहखेत्त-परूवणं[3] समत्तं ॥

अर्थ :—अतिवृष्टि, अनावृष्टि, भूवृद्धि और वज्राग्नि आदिका गिरना, इत्यादि विचित्र भेदों सहित नानाप्रकारके दोष इस हुण्डावसर्पिणी-कालमें हुआ करते हैं ॥१६४५॥

। इसप्रकार काल विभागका कथन समाप्त हुआ ।

[भरतक्षेत्र का चित्र पृष्ठ ४७० पर देखिये]

। इसप्रकार भरतक्षेत्रका प्ररूपण समाप्त हुआ ।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. कट्ठ । २. ब. क. उ. चिलास, द. ज. य. चिलाल । ३. द. ब. क. ज. य. उ. सरूवणं ।
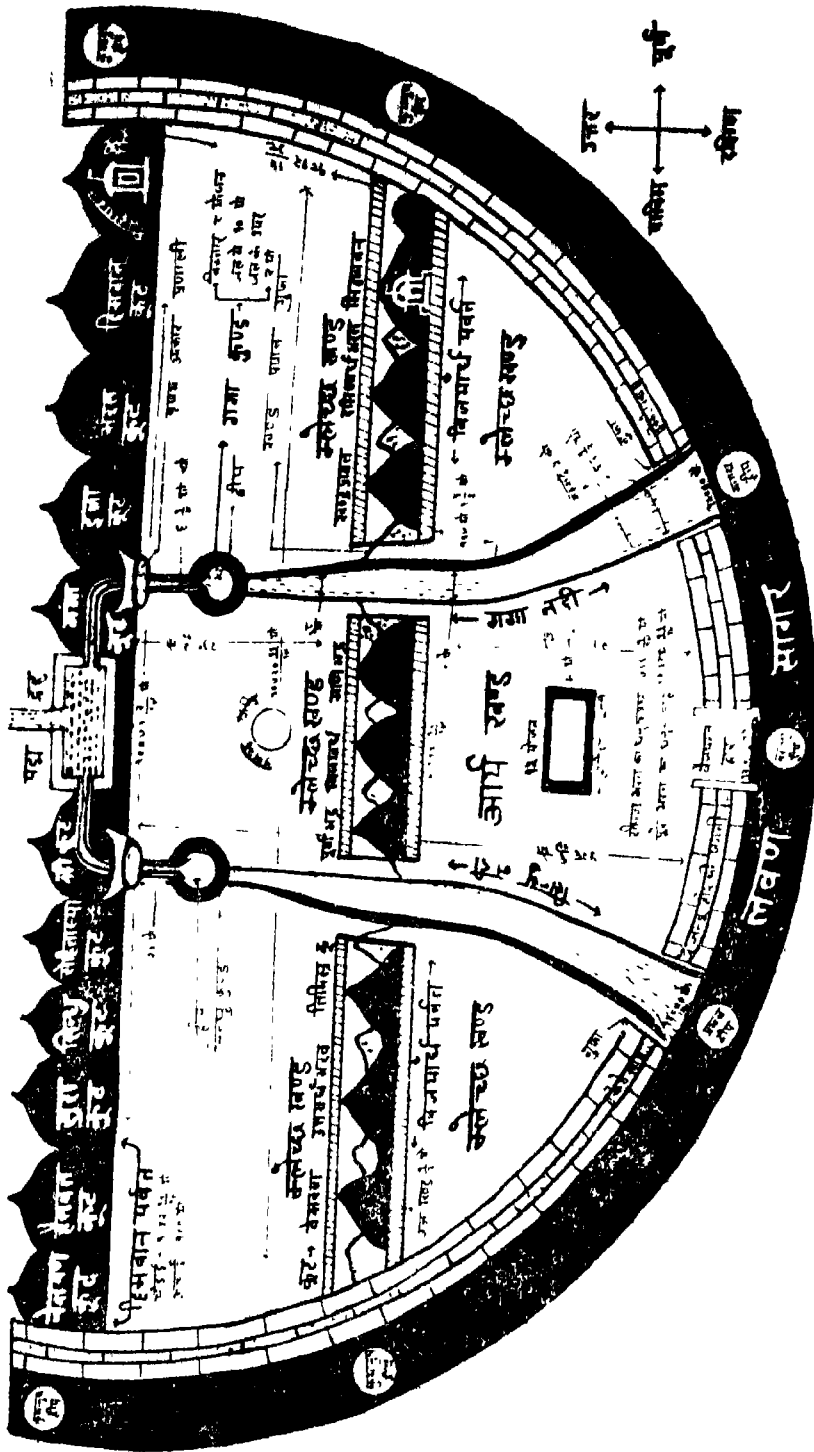
हिमवान् पर्वतका उत्सेध, अवगाह एवं विस्तार—

सयमुच्छेहं हिमवं, खुल्लो पणुवीस - जोयणुव्वेहो[1] ।
विक्खंभेण सहस्सं, बावण्णा बारसेहि [2]भागेहिं ॥१६४६॥

। १०० । २५ । १०५२$\frac{१२}{१९}$ ।

अर्थ :—क्षुद्र हिमवान् पर्वतकी ऊँचाई सौ योजन, अवगाह पच्चीस योजन और विस्तार एक हजार बावन योजन तथा एक योजनके उन्नीस भागोंमेंसे बारह-भाग अधिक है ॥१६४६॥

हिमवान् पर्वतकी उत्तर-जीवाका प्रमाण—

तस्स य उत्तरजीवा, चउवीस-सहस्स-णव-सयाइं पि ।
बत्तीसं एक्क - कला, सव्व - समासेण णिद्दिट्ठा ॥१६४७॥

। २४९३२$\frac{१}{१९}$ ।

अर्थ :– उस हिमवान् पर्वतकी उत्तरजीवा सब मिलाकर चौबीस हजार नौसौ बत्तीस योजन और योजनके उन्नीस भागोंमेंसे एक भाग-प्रमाण है ॥१६४७॥

हिमवान्के उत्तरमें धनुष पृष्ठका प्रमाण—

खुल्ल - हिमवंत - सेले, उत्तरभागम्मि होदि धणुपट्ठं ।
पणुवीस-सहस्साइं, दोण्णि-सया तीस [3]चउ-कलब्भहिया ॥१६४८॥

। २५२३०$\frac{४}{१९}$ ।

अर्थ :—क्षुद्र हिमवान् पर्वतका धनुषपृष्ठ उत्तरभागमें पच्चीस हजार दोसौ तीस योजन और एक योजनके उन्नीस-भागोंमेंसे चार भाग अधिक है ॥१६४८॥

हिमवान् पर्वतकी चूलिकाका प्रमाण—

तस्स य चूलिय-माणं, पंच - सहस्साणि जोयणाणि पि ।
तीसाहिय-दोण्णि-सया, सत्त - कला अद्ध - अदिरित्ता ॥१६४९॥

। ५२३०$\frac{१५}{३८}$ ।

अर्थ :—उस पर्वतकी चूलिकाका प्रमाण पाँच हजार दोसौ तीस योजन और एक योजनके उन्नीस भागोंमेंसे साढ़े सात भाग अधिक है ॥१६४९॥

---

१. द. ब. क. ज. उ. जोयणोवेदो । य. जायणोवेदो । २. द. ब. क. ज. य. उ. भागो व ।
३. द. चव ।

हिमवान् पर्वतकी पार्श्वभुजाका प्रमाण—

पंच-सहस्सा ति - सया, पण्णासा जोयणाणि श्रद्ध-जुदा ।
पण्णारस य कलाओ, पस्सभुजा खुल्ल - हिमवंते ॥१६५०॥

। ५३५० $\frac{31}{38}$ ।

श्रर्थ :—क्षुद्र हिमवान् पर्वतकी पार्श्वभुजाका प्रमाण पाँच हजार तीन सौ पचास योजन और एक योजनके उन्नीस भागोंमेंसे साढ़े पन्द्रह-भाग अधिक है ॥१६५०॥

पर्वतको तट-वेदियाँ एवं उनका प्रमाण—

हिमवंत-सरिस-दीहा, [1]तड-वेदी दोण्णि होंति [2]भूमितले ।
बे कोसा उत्तुंगा, पंच-धणुस्सद-पमाण-वित्थिण्णा ॥१६५१॥

। को २ । दं ५०० ।

श्रर्थ :—भूमितलपर हिमवान् पर्वतके सदृश लम्बी उसकी दो तट-वेदियाँ हैं। ये वेदियाँ दो कोस ऊँची और पाँचसौ धनुष प्रमाण विस्तार वाली हैं ॥१६५१॥

पर्वतके पार्श्वभागोंमें वनखण्ड एवं वेदी—

जोयण-दल-विक्खंभो, उभए पासेसु होदि वण - संडो ।
बहु-तोरण-दार-जुदा, वेदी पुव्विल्ल-वेदिएहिं समा[3] ॥१६५२॥

। वण जो $\frac{1}{2}$ ।

श्रर्थ :- पर्वतके दोनों पार्श्वभागोंमें अर्ध योजन-प्रमाण विस्तारसे युक्त वन-खण्ड हैं तथा पूर्वोक्त वेदियोंके समान बहुत तोरण-द्वारोंसे संयुक्त एक वेदी है ॥१६५२॥

खुल्ल-हिमवंत-सिहरे, समंतदो पउम - वेदिया दिव्वा ।
वण - वणवेदी - सव्वं, पुव्वं पिव एत्थ वत्तव्वं ॥१६५३॥

श्रर्थ :—क्षुद्र हिमवान् पर्वतके शिखर पर चारों ओर पद्मरागमणिमय दिव्य वेदिका है। वन और वनवेदी आदि सबका कथन, पूर्वके सदृश यहाँ पर भी करना चाहिए ॥१६५३॥

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. तद । २. द. ज. य. भूमियले । ३. द. ब. क. ज. य. उ. समो ।

हिमवान् पर्वतस्थ कूटोंके नाम—

सिद्ध-हिमवंत-कूडा, भरह-इला-गंगकूड - सिरिणामा[1] ।
रोहीवासा सिंधू, सुर - हेमवदं च वेसमणं ।।१६५४।।

। ११ ।

अर्थ :—हिमवान् पर्वतके ऊपर सिद्ध, हिमवान्, भरत, इला, गङ्गा, श्री, रोहिनास्या, सिन्धु, सुरा, हैमवत और वैश्रवण ये ग्यारह कूट हैं ।।१६५४।।

कूटोंका विस्तार आदि—

उदयं भू-मुह-वासं, मज्झं पणुवीस तत्तियं दलिदं ।
मुह - भूमि - जुदस्सद्धं, पत्तेक्कं जोयणाणि कूडाणं ।।१६५५।।

। २५ । २५ । $\frac{२५}{२}$ । १८$\frac{३}{४}$ ।

अर्थ :—इनमेंसे प्रत्येक कूटकी ऊँचाई पच्चीस योजन, भू-विस्तार भी पच्चीस योजन, मुख विस्तार साढ़े बारह योजन और मध्यविस्तार भूमि एवं मुखका अर्ध ($\frac{२५}{१}+\frac{२५}{२}=\frac{७५}{२\times२}$ अर्थात् १८$\frac{३}{४}$ यो०) भाग प्रमाण है ।।१६५५।।

प्रथम कूट पर अवस्थित जिन-भवनका निरूपण—

एक्कारस पुव्वावी, सम - वट्टा वेदिएहि रमणिज्जा ।
वेंतर - पासाद - जुदा, पुव्वे कूडम्मि जिण - भवणं ।।१६५६।।

अर्थ :—पूर्वादि दिशाओंमें क्रमशः स्थित ये ग्यारह कूट समान गोल हैं, वेदियोंसे रमणीय हैं और व्यन्तर देवोंके भवनोंसे संयुक्त हैं । इनमेंसे पूर्व कूटपर जिन-भवन है ।।१६५६।।

आयामो पण्णासं, वित्थारो तद्दलं च जोयणया ।
पणहत्तरि-दल-मुदओ, ति-द्दार-जुदस्स जिण-णिकेदस्स ।।१६५७।।

। ५० । २५ । $\frac{७५}{२}$ । ३ ।

अर्थ :—तीन द्वारों वाले इस जिन-भवनकी लम्बाई पचास योजन, विस्तार पच्चीस योजन और ऊँचाई साढ़े सैंतीस योजन है ।।१६५७।।

पुव्व - मुह - दार - उदओ, जोयणया अट्ठ तद्दलं रुंदं ।
रुंद - समं तु पवेसं, ताणद्धं दक्खिणुत्तर - दुवारे ।।१६५८।।

। ८ । ४ । ४ । ४ । २ । २ ।

---

१. ब. उ. सिरिणामाणा ।

अर्थ :—(उपर्युक्त तीन द्वारोंमेंसे) पूर्वमुख द्वारकी ऊँचाई आठ योजन, विस्तार चार योजन और विस्तारके सदृश प्रवेश भी चार योजन प्रमाण है। शेष दक्षिण और उत्तर द्वारकी लम्बाई आदि पूर्व-द्वारसे आधी है ॥१६५८॥

अट्ठेव य दीहत्तं, दीहच्चउभाग - तत्थ - वित्थारं ।
चउ - जोयण - उच्छेहो, [1]देवच्छंदो जिण - णिवासे ॥१६५६॥

अर्थ :—जिन भवनमें आठ योजन लम्बा, लम्बाईके चतुर्थ भाग (दो योजन) प्रमाण चौड़ा और चार योजन ऊँचा देवच्छन्द है ॥१६५६॥

सिंहासणादि-सहिया, चामर-कर-णाग-जक्ख-मिहुण-जुदा ।
पुरु - जिण - तुंगा - पडिमा, अट्ठुत्तर-सय-पमाणाओ ॥१६६०॥
सिरिदेवी सुदवेवी, सव्वाण - सणक्कुमार - जक्खाणं ।
रूवाणि अट्ठ - मंगल - देवच्छंदम्मि चेट्ठंति ॥१६६१॥

अर्थ :—सिंहासनादि सहित, हाथमें चमर लिए हुए नाग-यक्ष-युगलसे संयुक्त, वृषभ जिनेन्द्र सदृश उत्तुङ्ग, एकसौ आठ संख्या प्रमाण जिन प्रतिमाएँ तथा श्रीदेवी, श्रुतदेवी, सर्वाह्लदेव और सनत्कुमार यक्षोंकी मूर्तियाँ एवं आठ मङ्गलद्रव्य देवच्छन्दकपर स्थित हैं ॥१६६०-१६६१॥

लंबंत - कुसुम - दामा, पारावय-मोर-कंठणिह-वण्णा ।
मरगय - पवाल - वण्णा, विदाण - णिवहा विरायंति ॥१६६२॥

अर्थ :—वहाँपर लटकती हुई पुष्पमालाओं सहित कबूतर एवं मयूरके कण्ठ तथा मरकत और ⁊ गा सदृश वर्ण वाले चँदोवोंके समूह शोभायमान हैं ॥१६६२॥

भंभा[2]-मुवंग-मद्दल-जयघंटा-कंसताल - तिवलि - जुदा ।
पडुपडह - संख - काहल - सुरदुंदुहि - सद्द - गंभीरा ॥१६६३॥
जिणपुर - दुवार - पुरदो, पत्तेक्कं वदणमंडवा दिव्वा ।
पणवीस - जोयणाइं, वासो बिउणाइ आयामो ॥१६६४॥

। २५ । ५० ।

अर्थ :—प्रत्येक जिनपुर-द्वारके आगे भम्भा (भेरी), मृदङ्ग, मर्द्दल, जयघण्टा, कांस्यताल और तिवलीसे संयुक्त तथा पटुपटह, शङ्ख, काहल और देवदुन्दुभि आदि बाजोंके शब्दोंसे गम्भीर ऐसे

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. देवच्छंदा। २. द. ब क. ज. य उ. भंबा।

दिव्य मुख-मण्डप हैं। इन मण्डपोंका विस्तार पच्चीस योजन और लम्बाई पचास योजन प्रमाण है ॥१६६३-१६६४॥

अट्ठ ज्जिय जोयणया, अदिरित्ता होदि ताण उच्छेहो ।
अभिसेय-गीद-अवलोयणाण वर - मंडवा य तप्पुरदो ॥१६६५॥

अर्थ :—इन मण्डपोंकी ऊँचाई आठ योजनसे अधिक है। इनके आगे अभिषेक, गीत और अवलोकनके उत्तम मण्डप हैं ॥१६६५॥

चउगोउराणि सालत्तिदयं वीहीसु माणथंभा य ।
णव-थूहा तह [1]वण-धय-चित्तक्खोणीओ जिण-णिवासेसु ॥१६६६॥

अर्थ :—जिन भवनोंमें चार गोपुर, तीन प्राकार, वीथियोंमें मानस्तम्भ, नौ स्तूप, वनभूमि, ध्वज-भूमि और चैत्यभूमि होती हैं ॥१६६६।

सव्वे गोउर - दारा, रमणिज्जा पंच-वण्ण-रयणमया ।
बोउल - तोरण - जुत्ता, णाणाविह - मत्तवारणया ॥१६६७॥

अर्थ :—पांच वर्णके रत्नोंसे निर्मित सब गोपुरद्वार, पुतली-युक्त तोरणों सहित और नाना-प्रकारके मत्तवारणों (टोडियों) से रमणीय हैं ॥१६६७॥

बहु-सालभंजियाहिं, सुर-कोकिल-बरिहिणादि-पक्खीहिं ।
महुर - रवेहिं सहिदा, णच्चंताणेय - धय[2] - वडायाहिं ॥१६६८॥

अर्थ :—(ये गोपुरद्वार) बहुतसी शालभंजिकाओं (पुतलियों) एवं मधुर शब्द करने-वाले सुरकोकिल और मयूर आदि पक्षियों सहित तथा नाचती हुई अनेक ध्वजा-पताकाओं सहित हैं ॥१६६८॥

एला-तमाल-लवली-लवंग-कंकोल - [3]कदलि - पहुदीहिं ।
णाणातरु - रयणेहिं, उज्जाण - वणा विराजंति ॥१६६९॥

अर्थ :—वहांके उद्यानवन इलायची, तमाल, लवली, लोंग, कंकोल (शीतल चीनीका वृक्ष) और केला आदि नाना उत्तम वृक्षोंसे शोभायमान हैं ॥१६६९॥

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. वण। २. द. ब. उ. धयवडाणाइं, ज. य. धयवडाणाइं। ३. द. ज. य. कदलि, क. कटलि।

कल्हार-कमल-कंवल-णीलुप्पल-कुमुद-कुसुम - संछण्णा ।
जिण-उज्जाण-वणेसुं, पोक्खरणी - वावि - वर-[1]कूवा ॥१६७०॥

अर्थ :—जिनगृहके उद्यान-वनोंमें कल्हार, कमल-कन्दल, नीलकमल और कुमुदके फूलोंसे व्याप्त पुष्करिणी, वापी और उत्तम कूप हैं ॥१६७०॥

णंदादीश्र ति-मेहल, ति-पीढ-पुव्वाणि धम्म-चक्काणि ।
चउ-वण-मज्झ - गयाणिं, चेदिय - रुक्खाणि सोहंति ॥१६७१॥

अर्थ :—चारों वनोके मध्यमें तीन मेखला-युक्त नन्दादिक वापिकाएँ, तीन पीठों वाले धर्मचक्र और चैत्यवृक्ष शोभायमान हैं ॥१६७१॥

शेष कूटोंपर स्थित व्यन्तर-नगरोंका निरूपण—

सेसेसुं कूडेसुं, वेंतर - देवाण होंति पासादा ।
चउ-तोरण-वेदि-जुदा, णाणाविह - रयण - णिम्मविदा ॥१६७२॥

अर्थ :—शेष कूटोंपर चार तोरण-वेदियों सहित और नानाप्रकारके रत्नोंसे निर्मित व्यन्तर देवोंके भवन हैं ॥१६७२॥

हेमवद - भरह - हिमवंत - वेसवण - णामधेय-कूडेसुं ।
णिय - कूड - णाम - देवा, सेसे णिय-कूड-णाम-देवीओ ॥१६७३॥

अर्थ :—हैमवत, भरत, हिमवान् और वैश्रवण नामक कूटोंपर अपने-अपने कूटोंके नाम धारक देव तथा शेष कूटोंपर अपने-अपने कूटोंके नामकी देवियाँ रहती है ॥१६७३॥

बहु - परिवारेहिं जुदा, चेट्ठंते तेसु देव - देवीओ ।
दस-धणु-उच्छेह-तणू, सोहम्मिदस्स ते य परिवारा ॥१६७४॥

अर्थ :—इन कूटों पर बहुत परिवार सहित और दस-धनुष प्रमाण ऊँचे शरीरसे युक्त जो देव-देवियाँ स्थित हैं, वे सौधर्मइन्द्रके परिवार स्वरूप हैं ॥१६७४॥

ताणं वर - पासादा, सकोस - इगितीस जोयणा-रुंदा[2] ।
दो - कोस - सट्ठि - जोयण - उदया सोहंति रयणमया ॥१६७५॥

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. कूडा । २. द. ब. ज. य. उ. रुंदो ।

अर्थ :—इन व्यन्तर देव-देवियोंके रत्नमय भवन विस्तारमें इकतीस योजन एक कोस और ऊँचाईमें बासठ योजन दो कोस प्रमाण होते हुए शोभायमान हैं ॥१६७५॥

पायार-वलहि-गोउर-धवलामल - वेदियाहि परियरिया ।
देवाण होंति णयरा, दसप्पमाणेसु कूड - सिहरेसुं ॥१६७६॥

अर्थ :—दस कूटोंके शिखरों पर प्राकार, वलभी (छज्जा) गोपुर और धवल-निर्मल वेदिकाओंसे व्याप्त देवोंके नगर हैं ॥१६७६॥

धुव्वंत-धय-वडाया, गोउर - दारेहि सोहिदा विउला ।
वर-वज्ज-कवाड-जुदा, उववण-पोक्खरणि-वावि-रमणिज्जा ॥१६७७॥

अर्थ :—देवोंके ये नगर उड़ती हुई ध्वजा-पताकाओं सहित गोपुरद्वारोंसे शोभित; विशाल, उत्तम वज्रमय कपाटोंसे युक्त और उपवन, पुष्करिणी एवं वापिकाओंसे रमणीय हैं ॥१६७७॥

कमलोदर-वण्ण-णिहा, तुसार-ससिकिरण-हार-संकासा ।
वियसिय-चंपय-वण्णा, णीलुप्पल-[1]रत्त-कमल-वण्णा य ॥१६७८॥

अर्थ :—(इन नगरोंमेंसे कितने ही नगर) कमलोदर सदृश, (कितने ही) तुषार, चन्द्र-किरण एवं हार सदृश, (कितने ही) विकसित चम्पक और (कितने ही) नील तथा रक्त कमल सदृश वर्णवाले हैं ॥१६७८॥

वज्जिदणील - मरगय - कक्केयण - पउमराय-संपुण्णा ।
जिण - भवणेहि सणाहा, को सक्कइ वण्णिदुं सयलं ॥१६७९॥

अर्थ :—वे नगर वज्रमणि (हीरा), इन्द्रनीलमणि, मरकतमणि, कर्केतन और पद्मराग मणियोंसे परिपूर्ण हैं तथा जिन-भवनों सहित हैं । इनका सम्पूर्ण वर्णन करनेमें कौन समर्थ हो सकता है ? ॥१६७९॥

हिमवान् पर्वतस्थ पद्मद्रहका वर्णन—

हिमवंतयस्स मज्झे, पुव्वावरमायदो य पउमदहो ।
पण-सय - जोयण - रुंदो[2], तद्दुगुणायाम - सोहिल्लो ॥१६८०॥

। ५०० । १००० ।

१. द. ब. क. ज. य. उ. रत्त । २. द. ब. क. ज. उ. रुदा ।

अर्थ :—हिमवान् पर्वतके मध्यमें पूर्व-पश्चिम लम्बायमान, पाँचसौ योजन विस्तृत और एक हजार योजन प्रमाण लम्बाईसे शोभायमान पद्म नामक द्रह है ॥१६८०॥

दस-जोयणाणि गहिरो, चउ-तोरण-वेदि-णंदण-वणेहिं ।
सोवाणेहिं सहिदो, सुह - संचर - रयण - रचिदेहिं ॥१६८१॥

अर्थ :—यह पद्मद्रह दस योजन गहरा तथा चार तोरणों, वेदियों, नन्दनवनों और अच्छी तरहसे गमन करने योग्य, उत्तम रत्नोंसे विरचित सोपानों सहित है ॥१६८१॥

वेसवण - णाम - कूडो, ईसाणे होदि [1]पंकय - दहस्स ।
सिरिणिचय-णाम-कूडो, सिहि-दिस-भागम्हि णिद्दिट्ठो ॥१६८२॥

अर्थ :—इस पद्मद्रहके ईशानकोणमें वैश्रवण नामक कूट और आग्नेयमें श्रीनिचय नामक कूट कहा गया है ॥१६८२॥

खुल्ल-हिमवंत-कूडो, णइरिदि-भागम्मि तस्स णिद्दिट्ठो ।
पच्छिम - उत्तर - भागे, कूडो एरावदो णाम ॥१६८३॥

अर्थ :—उसके नैऋत्य भागमें क्षुद्रहिमवान् कूट और पश्चिमोत्तर भागमें ऐरावत नामक कूट कहा गया है ॥१६८३॥

सिरिसंचय - कूडो तह, भाए पउम - द्दहस्स उत्तरए ।
एदेहिं कूडेहिं, हिमवंतो पंच - सिहरि - णाम - जुदो ॥१६८४॥

अर्थ :—पद्मद्रहके उत्तरभागमें श्रीसञ्चय नामक कूट स्थित है। इन पाँच कूटोंसे हिमवान् पर्वत 'पंचशिखरी' नामवाला है ॥१६८४॥

उववण-वेदी-जुत्ता, वेंतर - णयरेहिं होंति रमणिज्जा ।
सव्वे कूडा एदे, णाणाविह - रयण - णिम्मविदा ॥१६८५॥

अर्थ :—नाना प्रकारके रत्नोंसे निर्मित ये सब कूट उपवन-वेदियों सहित, व्यन्तरोंके नगरोंसे रमणीय हैं ॥१६८५॥

उत्तरदिसा-विभागे, जलम्मि पउम - द्दहस्स जिण-कूडो ।
सिरिणिचयं वेरुलियं, अंकमयं अंबरीय - रुचगं च ॥१६८६॥

---

१. द. ब. क. ज. उ. कप्पयदहस्स, य. कप्पयदुहस्स ।

सिहरी-उप्पल-कूडा, पदाहिणा होंति तस्स सलिलम्मि ।
तड[1] - वण - वेदीहि जुदा, वेंतर - णयरेहि[2] सोहिल्ला ।।१६८७।।

अर्थ :—पद्मद्रहके जलमें उत्तरदिशाकी ओरसे प्रदक्षिणरूपमें जिनकूट, श्रीनिचय, वेडूर्य, अङ्कमय, अम्बरीक, रुचक, शिखरी और उत्पलकूट, ये कूट उसके जलमें तट-वेदियों और वन-वेदियों सहित व्यन्तर-नगरोंसे शोभायमान हैं ।।१६८६-१६८७।।

उदयं भू - मुहवासं, मज्झं पणवीस तत्तियं दलिदं ।
मुह - भूमि - जुदस्सद्धं, पत्तेक्कं जोयणाणि कूडाणं ।।१६८८।।

। २५ । २५ । $\frac{25}{2}$ । $\frac{75}{4}$ ।

अर्थ :—उन कूटोंमेंसे प्रत्येक कूटकी ऊँचाई पच्चीस योजन, भूविस्तार भी पच्चीस योजन, मुख-विस्तार साढ़े बारह योजन और मध्य विस्तार भूमि एवं मुखके जोडका अर्धभाग [{ (२५ + १२½) ÷ २ = } $\frac{75}{4}$ अर्थात् १८¾ योजन] प्रमाण है ।।१६८८।।

पद्मद्रहमें स्थित कमलका निरूपण—

दह - मज्झे अरविंदय - णालं बादाल - कोसमुव्विद्धं ।
इगि - कोसं बाहल्लं, तस्स मुणालं ति रजदमयं ।।१६८९।।

। को ४२ । बा को १ ।

अर्थ :—सरोवरके मध्यमें बयालीस कोस ऊँचा और एक कोस मोटा कमल-नाल है। इसका मृणाल रजतमय और तीन कोस विस्तृत है ।।१६८९।।

कंदो[3] अरिट्ठ-रयणं, णालो वेरुलिय-रयण-णिम्मविदो ।
तस्सुवरिं वर - वियसिय - पउमं चउ - कोसमुव्विद्धं ।।१६९०।।

। को ४ ।

अर्थ :—उस कमलका कन्द अरिष्टरत्नसे और नाल वैडूर्यमणिसे निर्मित है। इसके ऊपर चार कोस ऊँचा एक किंचित् विकसित पद्म है ।।१६९०।।

चउ-कोस-रुंद-मज्झं, अंते दो-कोस-महल चउ - कोसा ।
पत्तेक्कं इगिकोसं, उस्सेहायाम - कण्णिया तस्स ।।१६९१।।

। को ४ । को २ । को ४ । को १ ।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. तद । २. द. ब. णयरेसु । ३. द. ब. क. ज. य. उ. कंदा ।

अर्थ :—उसके मध्यमें चार कोस और अन्तमें दो अथवा चार कोस विस्तार है। उसकी कर्णिकाकी ऊँचाई एक कोस और उसका आयाम भी एक कोस प्रमाण है ॥१६६१॥

अहवा दो-दो कोसा, एक्कार - सहस्स - पत्त - संजुत्ता ।
तक्कण्णिकाय[1] उर्वार, वेरुलिय - कवाड - संजुत्ता ॥१६६२॥

। को २ । को २ । प ११००० ।

कूडागार[2]-महारिह-भवणो वर-फलिह-रयण-णिम्मिविओ ।
आयाम-वास-तुंगा, कोसं कोसद्ध - ति - चरणा कमसो ॥१६६३॥

। को १ । $\frac{1}{2}$ । $\frac{3}{4}$ ।

अर्थ :—अथवा, कर्णिकाकी ऊँचाई दो कोस और लम्बाई दो कोस प्रमाण है। यह कमल कर्णिका ग्यारह हजार पत्तोंसे संयुक्त है। इस कर्णिकाके ऊपर वैडूर्यमणिमय कपाटोंसे संयुक्त और उत्तम स्फटिकमणिसे निर्मित कूटागारोंमें श्रेष्ठ भवन है। इस भवनकी लम्बाई एक कोस, विस्तार अर्धकोस और ऊँचाई एक कोसके चार भागोंमेंसे तीन भाग ($\frac{3}{4}$ कोस) प्रमाण है ॥१६६२-१६६३॥

कमलमें स्थित श्रीदेवीका निरूपण—

तम्मि[3] ठिया सिरिदेवी, भवणे पलिदोवमप्पमाणाऊ ।
दस[4] चावाणि तुंगा, सोहम्मिंदस्स सा - देवी ॥१६६४॥

अर्थ :—इस भवनमें स्थित श्री नामक देवी पल्योपम प्रमाण आयुकी धारक और दस धनुष ऊँची है। वह सौधर्मइन्द्रकी देवी (आज्ञाकारिणी) है ॥१६६४॥

सिरिदेवीए होंति हु, देवा सामाणिया[5] य तणुरक्खा ।
परिसत्तिदयाणीया, पइण्ण - अभियोग - किब्बिसिया ॥१६६५॥

अर्थ :—श्रीदेवीके सामानिक, तनुरक्षक, तीनों प्रकारके पारिषद, अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्विषिक जातिके देव होते हैं ॥१६६५॥

ते सामाणिय - देवा, [6]विविहुज्जल-भूसणेहि कयसोहा ।
सुपसत्थ - विउल - काया, [7]चउस्सहस्सा - पमाणा य ॥१६६६॥

। ४००० ।

---

१. द. ब. क. ज. उ. तक्कण्णिकया। २. द. ब. क. ज. य. उ. कूडागारामहरिह। ३. द. ब. क. ज. य. उ. तंसिरिया। ४. द. ब. जस हेवाणि। ५. द. सामाणिय तणुरक्खा। ६. द. ब. विहुजण। य. उ. बिहिहंजण। ७. द. ब. चउस्सद वि या पमाणाय, क. चउस्सहस्सयपमाणा य. ज. य. उ. चउस्साद विया पमाणाय।

अर्थ :—अनेक प्रकारके उज्ज्वल आभूषणोंसे शोभायमान तथा सुप्रशस्त एवं विशाल कायवाले वे सामानिक देव चार हजार प्रमाण हैं ॥१६६६॥

ईसाण[1]-सोम-मारुद-दिसाणवि-भागेसु पउम-उवरिम्मि ।
सामाणियाण भवणा, होंति सहस्साणि चत्तारि ॥१६६७॥

। ४००० ।

अर्थ :—ईशान, सोम (उत्तर) और वायव्य दिशाओंके भागोंमें पद्मोंके ऊपर उन सामानिक देवोंके चार हजार भवन हैं ॥१६६७॥

सिरिदेवी - तणुरक्खा, देवा सोलस - सहस्सया ताणं ।
पुव्वादिसु पत्तेक्कं, चत्तारि - सहस्स - भवणाणि ॥१६६८॥

। १६००० ।

अर्थ :—श्रीदेवीके तनुरक्षक देव सोलह हजार हैं। पूर्वादिक दिशाओंमेंसे प्रत्येक दिशामें इनके चार-चार हजार भवन हैं ॥१६६८॥

अब्भंतर - परिसाए[2], [3]आइच्चो णाम सुर-वरो होदि ।
बत्तीस - सहस्साणं, देवाणं अहिवई धीरो ॥१६६९॥

अर्थ : --अभ्यन्तर परिषद्में बत्तीस हजार देवोंका अधिपति आदित्य नामक धैर्यशाली उत्तम देव है ॥१६६९॥

पउमद्दह - पउमोवरि, अग्गि - दिसाए हवंति भवणाइं ।
बत्तीस - सहस्साइं, ताणं वर - रयण - रइदाइं ॥१७००॥

। ३२००० ।

अर्थ :—पद्मद्रहके कमलोंके ऊपर आग्नेय दिशामें उन देवोंके उत्तम रत्नोंसे रचित बत्तीस हजार भवन हैं ॥१७००॥

पउमम्मि चंद-णामो, मज्झिम - परिसाए अहिवई देओ ।
चालीस - सहस्साणं[4], सुराण [5]बहु - सत्थ - हत्थाणं ॥१७०१॥

। ४०००० ।

---

१. ब. दहण, द. क. ज य. उ. रहण। २. ज. य. परिएसा। ३. द क. ज. य. उ. अइच्चा। ४. द. ब. क. ज. उ. सहस्साइं। ५. द. ज. बहुसत्थाणं, क. उ. बहुयाण सत्थाणं।

अर्थ :—पद्मद्रह पर मध्यम परिषद्में बहुश्लाघनीय हाथों वाले चालीस हजार देवोंका अधिपति चन्द्र नामक देव है ॥१७०१॥

चालीस सहस्साणि, पासादा ताण दिव्व-मणि-घडिदा ।
दक्खिण - दिसाए जलगय - विय - सत्त-सरोज-गब्भेसु ॥१७०२॥

। ४०००० ।

अर्थ :—दिव्य-मणियों (रत्नों) से घड़े गये अर्थात् बनाए गए उन (देवों) के चालीस हजार प्रासाद हैं, जो सात जलगत कमलोंके मध्य दक्षिण दिशामें स्थित हैं ॥१७०२॥

अडदाल-सहस्साणं[1], सुराण सामी समुग्गय - पयाओ ।
बाहिर - परिसाए जदु[2], णामो सेवेदि सिरिदेवि[3] ॥१७०३॥

। ४८००० ।

अर्थ :—बाह्य परिषद्के अड़तालीस हजार देवोंका स्वामी प्रतापशाली जतु नामक देव श्रीदेवी की सेवा करता है ॥१७०३॥

णइरिदविसाम्र ताणं, अडदाल - सहस्स - संख-पासादा ।
पउमद्दह - मज्झम्मि य, सुतुंग-तोरण-दुवार-रमणिज्जा ॥१७०४॥

। ४८००० ।

अर्थ :—नैऋत्य-दिशामें उन देवोंके उन्नत तोरणद्वारोंसे रमणीय अड़तालीस हजार भवन पद्मद्रहके मध्यमें स्थित हैं ॥१७०४॥

कुंजर - तुरय - महारह[4] - गोवइ-गंधव्व-णट्ट-दासाणं ।
सत्त अणीया सत्तहि, कच्छाहि तत्थ संजुत्ता ॥१७०५॥

अर्थ :—कुञ्जर, तुरङ्ग, महारथ, बैल, गन्धर्व, नर्तक और दास इनकी सात सेनाएँ हैं। इनमेंसे प्रत्येक सेना सात-सात कक्षाओं सहित है ॥१७०५॥

पढमाणीय - पमाणं, सरिसं सामाणियाण संखेसुं ।
बिगुणा - बिगुणा संखा, छस्सु अणीएसु पत्तेयं ॥१७०६॥

---

१. द ब. क. ज. य. उ. सहस्साणि। २. ब. जहदुणाणो, द. क. ज. य उ. जहदुणायो। ३. द. क. ज. य. उ. देवो। ४. द ब. क. ज. य. उ. मुहारह।

अर्थ :—प्रथम अनीकका प्रमाण सामानिक देवोंके सदृश है। शेष छह सेनाओंमेंसे प्रत्येक सेनाका प्रमाण उत्तरोत्तर दूना-दूना है ।।१७०६।।

कुंजर-पहुदि-तणूहिं, देवा विकरंति विमल-सत्ति-जुदा।
माया - लोह - विहीणा, णिच्चं सेवंति सिरिदेविं[1] ।।१७०७।।

अर्थ :—निर्मल शक्तिसे संयुक्त देव, हाथी आदिके शरीरोंकी विक्रिया करते हैं और माया एवं लोभसे रहित होकर नित्य ही श्रीदेवीकी सेवा करते हैं ।।१७०७।।

सत्ताणीयाण घरा[2], पउमद्दह - पच्छिम[3] - प्पएसम्मि।
कमल-कुसुमाण उवरिं, सत्त च्चिय कणय - णिम्मविदा ।।१७०८।।

अर्थ :—सात अनीक देवोंके सात घर पद्मद्रहके पश्चिम-प्रदेशमें कमल-कुसुमोंके ऊपर स्वर्णसे निर्मित हैं ।।१७०८।।

अट्ठुत्तर - सय - मेत्तं, पडिहारा मंतिणो य दूदा यं।
बहुविह-वर-परिवारा, उत्तम - रूवाइं विणय-जुत्ताइं ।।१७०९।।

अर्थ :—उत्तम रूप एवं विनयसे संयुक्त और बहुत प्रकारके उत्तमोत्तम परिवार सहित ऐसे एकसौ आठ प्रतीहार, मन्त्री एवं दूत हैं ।।१७०९।।

अट्ठुत्तर - सय - संखा, पासादा ताण पउम - गब्भेसु।
दिस-विदिस-विभाग-ठिदा[4], दह-मज्झे अहिय-रमणिज्जा ।।१७१०।।

अर्थ :—उनके अतिशय रमणीय एक सौ आठ भवन द्रहके मध्यमें कमलों पर दिशा और विदिशाके विभागोंमें स्थित हैं ।।१७१०।।

होंति पइण्णय-पहुदी, ताणं भवणं[5] वि पउम-पुप्फेसु[6]।
उच्छिण्णो[7] काल - वसा, तेसुं परिमाण - उवएसो ।।१७११।।

अर्थ :—पद्म पुष्पों पर स्थित जो प्रकीर्णक आदिक देव हैं उनके भवनोंके प्रमाणका उपदेश कालवश नष्ट हो गया है ।।१७११।।

---

१. द. क. ज. य. उ. देवी। २ द ब. क. ज. य. उ. सुरा। ३. द. ब. पच्छिमंपएसंति। ४. द. क. ज. य. उ. रिसा। ५. द. क. ज. ब. उ. चउणाणि, ब. चउणा वि। ६. द. ब. क. ज. य. उ. पुप्फेसु। ७. द. उच्छण्णो।

कमला अकिट्टिमा ते, पुढवि-मया सुंदरा य इगिलक्खा ।
चालीस - सहस्साणि, एक्क - सयं सोलसेहि जुदं ॥१७१२॥

। १४०११६ ।

अर्थ :– वे सब अकृत्रिम, पृथिवीमय सुन्दर कमल एक लाख चालीस हजार एकसौ सोलह हैं ॥१७१२॥

एवं महा - पुराणं, परिमाणं ताण होदि कमलेसुं ।
खुल्लय - पुर - संखाणं, को सक्कइ कादुमखिलाणं ॥१७१३॥

अर्थ :—इसप्रकार कमलोंके ऊपर स्थित उन महानगरोंका प्रमाण (एक लाख चालीस हजार एकसौ सोलह) है। (इनके अतिरिक्त) क्षुद्र (लघु) पुरोंकी पूर्ण-रूपेण गणना करनेमें कौन समर्थ हो सकता है ॥१७१३॥

पउम - वहे पुव्वमुहा, उत्तम - गेहा हवंति सव्वे वि ।
ताणाभिमुहा[1] सेसा, खुल्लय - गेहा जहाजोग्गं ॥१७१४॥

अर्थ :—पद्मद्रहमें (वे १४०११६) सर्व ही उत्तम गृह पूर्वाभिमुख हैं और शेष क्षुद्र-गृह यथायोग्य उनके सम्मुख स्थित हैं ॥१७१४।
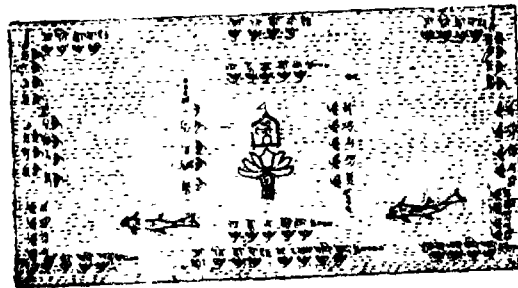
कमल पुष्पस्थित भवनोंमें जिनमन्दिर—

कमल - कुसुमेसु तेसुं, पासादा जेत्तिया समुद्दिट्ठा ।
तेत्तिय-मेत्ता होंति हु, जिण - गेहा विविह - रयणमया ॥१७१५॥

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. ताणभिमहाभिसेसा ।

अर्थ :—उन कमल-पुष्पोंपर जितने भवन कहे गये हैं, वहाँ विविध प्रकारके रत्नोंसे निर्मित जिनगृह भी उतने ही होते हैं ।।१७१५।।

भिंगार - कलस - दप्पण - बुब्बुव-घंटा-धयादि-संपुण्णा ।
जिणवर - पासादा[1] ते, णाणाविह - तोरण - दुवारा ।।१७१६।।

अर्थ :—वे जिनेन्द्र-प्रासाद नाना-प्रकारके तोरण-द्वारों सहित और झारी, कलश, दर्पण बुद्बुद्, घण्टा एवं ध्वजा-आदिकसे परिपूर्ण हैं ।।१७१६।।

वर-चामर - भामंडल - छत्तत्तय-कुसुम-वरिस-पहुदीहिं ।
संजुत्ताओ तेसुं, जिणवर - पडिमाओ राजंते ।।१७१७।।

अर्थ :—उन जिन-भवनोंमें उत्तम चमर, भामण्डल, तीन छत्र और पुष्पवृष्टि आदिसे संयुक्त जिनेन्द्र-प्रतिमाएँ शोभायमान हैं ।।१७१७।।

रोहितास्या नदीका निर्देश—

पउम[2] - द्दहादु उत्तर - भागेणं रोहिदास-णाम-णदी ।
उग्गच्छइ छावत्तरि, जोयण - दु - सयाइ अविरित्ता ।।१७१८।।
। २७६$\frac{6}{19}$ ।

अर्थ :—पद्मद्रहके उत्तर-भागसे रोहितास्या नामक उत्तम नदी निकलकर दो सौ छिहत्तर योजनसे कुछ अधिक दूर तक (पर्वतके ऊपर) जाती है ।।१७१८।।

रुंदावगाढ - तोरण - अंतर - कूड - प्पणालिया-ठाणा ।
धारा[3] - रुंदा कुंडद्दीवाचल - कूड[4] - रुंद - पहुदीओ ।।१७१९।।
तत्थ य तोरण - दारे, तोरण - थंभा अ तीए सरिदाए ।
गंग - णईए सरिसा, णवरि वासादिएहिं ते बिगुणा ।।१७२०।।
। हिमवंतं गयं ।

अर्थ :—इस नदीका विस्तार, गहराई, तोरणोंका अन्तर, कूट प्रणालिका-स्थान, धारा-का विस्तार, कुण्ड, द्वीप, अचल और कूटका विस्तार आदि तथा वहाँ पर तोरणद्वारमें तोरण-स्तम्भ आदि सबका वर्णन गङ्गा नदीके सदृश ही जानना चाहिए। विशेष यह है कि यहाँ पर इन सबका विस्तार गङ्गा-नदीकी अपेक्षा दूना-दूना है ।।१७१९-१७२०।।

।। हिमवान् पर्वतका कथन समाप्त हुआ ।।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. पासादे । २. द. ब. क. ज. उ. पउम द्दहाउद्दुत्तर । ३. द. ब. क. ज. य. उ. दाराइंदा कूडं । ४. द. ब. क. उ. कुंड, ज. य. कुंड ।
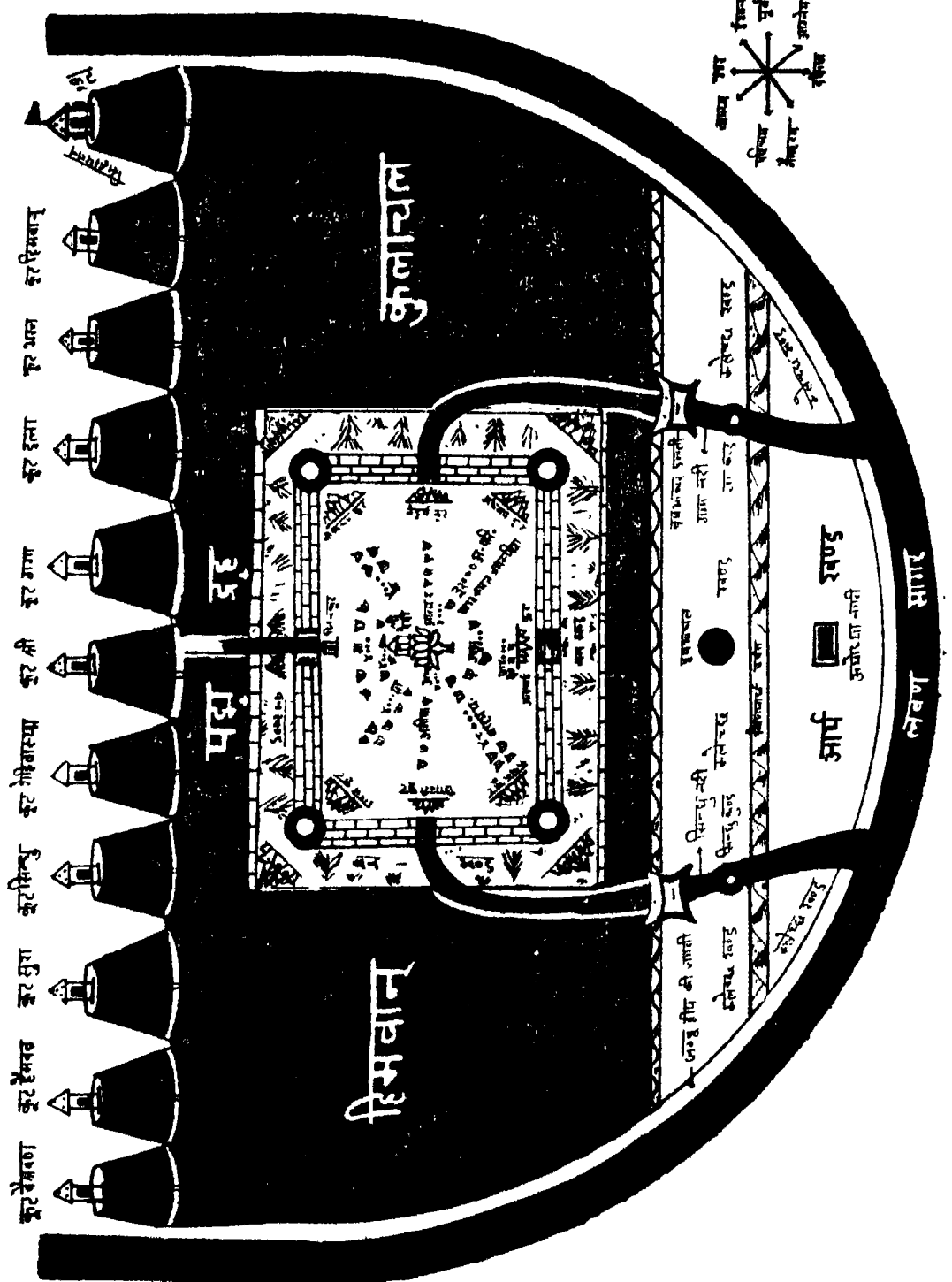
हैमवत क्षेत्रका निरूपण–

हेमवदस्स य रुंदा, चाल-सहस्सा य ऊणवीस - हिदा ।
तस्स य उत्तर - बाणो[1], भरह - सलागादु सत्त - गुणो ।।१७२१।।

$\frac{४००००}{१९}$

अर्थ :– हैमवत क्षेत्रका विस्तार उन्नीससे भाजित चालीस हजार योजन और उसका उत्तर-बाण भरतक्षेत्रकी शलाकासे सात गुणा है अर्थात् ३६८४$\frac{४}{१९}$ योजन है ।।१७२१।।

सत्तत्तीस - सहस्सा, छच्च सया सत्तरी य चउ-अहिया ।
किंचूण - सोलस - कला हेमवदे उत्तरे जीवा ।।१७२२।।

। ३७६७४$\frac{१६}{१९}$ ।

अर्थ :—हैमवतक्षेत्रके उत्तर-भागमें जीवा सैंतीस हजार छहसौ चौहत्तर योजन और कुछ कम सोलह कला प्रमाण है अर्थात् ३७६७४$\frac{१६}{१९}$ योजन है ।।१७२२।।

अट्ठतीस[2] - सहस्सा, सत्त - सया जोयणाणि चालीसं ।
दसय - कला णिद्दिट्ठं, हेमवदस्सुत्तरं[3] चावं ।।१७२३।।

। ३८७४०$\frac{१०}{१९}$ ।

अर्थ :– हैमवत क्षेत्रका उत्तर-धनुष अड़तीस हजार सातसौ चालीस योजन और दस-कला मात्र निर्दिष्ट किया गया है अर्थात् ३८७४०$\frac{१०}{१९}$ योजन है ।।१७२३।।

इगिहत्तरि - जुत्ताइं, तेसट्ठि - सयाइं जोयणाणं पि ।
सत्त - कला [4]दल - अहिया, हेमवदा चूलिया एसा ।।१७२४।।

। यो ६३७१ । क $\frac{१५}{३८}$ ।

अर्थ :—हैमवत क्षेत्रकी चूलिकाका प्रमाण तिरेसठसौ इकहत्तर योजन और साढ़े सात कला (६३७१$\frac{१५}{३८}$ योजन) ही निर्दिष्ट किया गया है ।।१७२४।।

---

१. द. क. ज. हीणो । २. द. ब. अड़तीस । ३. द. ब. क. ज. य. सुत्तरा चावा । ४. द. ब. दस ।

पस्स - भुजा तस्स हुवे, छच्च सहस्साइ जोयणाणं पि ।
सत्त - सया पणवण्णब्भहिया तिण्णि च्चिय कलाओ ।।१७२५।।

। ६७५५ । क $\frac{3}{19}$ ।

अर्थ :—उसकी पार्श्व-भुजा छह हजार सातसौ पचपन योजन और तीन कला (६७५५$\frac{3}{19}$ योजन) प्रमाण है ।।१७२५।।

अवसेस - वण्णणाओ, सरिसाओ सुसमदुस्समेणं पि ।
णवरि [1]अवट्ठिद - रूवं, परिहीणं हाणि - वड्ढीहिं ।।१७२६।।

अर्थ :—इस क्षेत्रका शेष वर्णन सुषमदुःषमा कालके सदृश है । विशेषता केवल यह है कि वह क्षेत्र हानि-वृद्धिसे रहित होता हुआ एक सदृश (अवस्थित) रहता है ।।१७२६।।

हैमवत क्षेत्रस्थ शब्दवान् नाभिगिरिका प्ररूपण—

तक्खेत्ते बहुमज्झे, चेट्ठदि सद्दावदि त्ति णाभिगिरी ।
जोयण - सहस्स - उदग्रो, तेत्तिय-वासो सरिस - वट्टो ।।१७२७।।

। १००० । १००० ।

अर्थ :—इस क्षेत्रके बहुमध्यभागमें एक हजार योजन ऊँचा और इतने (१००० यो०) ही विस्तार-वाला, सदृश-गोल श्रद्धावान् (शब्दवान्) नामक नाभिगिरि स्थित है ।।१७२७।।

सव्वत्थ तस्स परिही, इगितीस - सयाइ तह य बासट्ठी ।
सो पल्ल-सरिस-ठाणो, कणयमओ[2] [3]वट्ट - विजयड्ढो ।।१७२८।।

अर्थ :—उस सम्पूर्ण पर्वतकी परिधि इकतीससौ बासठ योजन प्रमाण है तथा वह दृढ़ विजयार्ध पल्यके सदृश आकारवाला है और कनकमय है ।।१७२८।।

एक्क - सहस्सं पण-सयमेक्क-सहस्सं च सग-सया पण्णा ।
उदओ मुह[4] - भू - मज्झिम - विस्थारा तस्स धवलस्स ।।१७२९।।

। १००० । ५०० । १००० । ७५० ।

पाठान्तरम्

---

१. ब. अवट्ठिद । २. द. ब. क. ज. य. मदी । ३. ब. वट्ट । ४. द. ब. ज. य. मुमुह ।

अर्थ :—उस धवल पर्वतकी ऊँचाई, मुख-विस्तार, भूविस्तार और मध्यविस्तार क्रमशः एक हजार, पाँचसौ, एक हजार और सातसौ पचास योजन प्रमाण है ॥१७२९॥

मूलोवरि - भाएसुं, सो सेलो वेदि - उववणेहि - जुदो ।
वेदी - वणाण रुंदा, हिमवंत - णग व्व णादव्वा ॥१७३०॥

अर्थ :—वह पर्वत मूल और उपरिम भागोंमें वेदियों एवं उपवनों सहित है। वेदी और नोंका विस्तार हिमवान् पर्वतके सदृश ही जानना चाहिए ॥१७३०॥

बहु-तोरणदार-जुदा, तव्वण - वेदी विचित्त - रयणमई ।
चरियट्टालिय - विउला, [1]णच्चंताणेय-धय-वडाला वा ॥१७३१॥

अर्थ :—उस पर्वतकी वन-वेदी बहुत तोरणद्वारोंसे संयुक्त, विचित्र रत्नमयी, मार्गों एवं अट्टालिकाओंसे प्रचुर तथा नाचती हुई अनेक ध्वजा-पताकाओंसे युक्त है ॥१७३१॥

तग्गिरि-उवरिमभागे, बहु-मज्झे होदि दिव्व-जिण-भवणं ।
चउ - तोरण - वेदि - जुदं, पडिमाहिं सुंदराहि संजुत्तं ॥१७३२॥

अर्थ :—उस पर्वतके ऊपर बहु-मध्यभागमें चार तोरणों एवं वेदियोंसे युक्त तथा सुन्दर प्रतिमाओं सहित दिव्य जिनभवन हैं ॥१७३२॥

उच्छेह - प्पहुदीसुं, संपहि अम्हाण णत्थि उवदेसो ।
तस्स य चउद्दिसासुं, पासादा होंति रयणमया ॥१७३३॥

अर्थ :—इस जिनभवनकी ऊँचाई आदिके विषयमें इससमय हमारे पास उपदेश नहीं है। जिन-भवनके चारों ओर रत्नमय प्रासाद हैं ॥१७३३॥

सत्तट्ठ - प्पहुदीहिं, भूमीहिं भूसिदा विचित्ताहिं ।
धुव्वंत - धय[2] - वडाया, णाणाविह - रयणकय-सोहा ॥१७३४॥

अर्थ :—ये प्रासाद सात-आठ आदि विचित्र भूमियोंसे विभूषित, फहराती हुई ध्वजा-पताकाओंसे संयुक्त और नाना-प्रकारके रत्नोंसे शोभायमान हैं ॥१७३४॥

---

१. द. ब. णच्चंताणेरयवडालोया। २. द ब. धयवदालोया, ज. य. रयवडालोया।

बहु-परिवारेहि जुदो[1], साली - णामेण वेंतरो[2] देवो ।
दस - धणु - तुंगो चेट्ठदि, पल्लमिदाऊ महातेओ[3] ॥१७३५॥

अर्थ :—वहाँपर दस-धनुष ऊँचा, एक पल्य-प्रमाण आयुवाला और महान् तेजस्वी '**शाली**' नामक व्यन्तरदेव बहुत परिवारसे युक्त होकर रहता है ॥१७३५॥

हैमवतक्षेत्रमें प्रवाहित रोहितास्या नदीका वर्णन—

पउम[4]- द्दहाओ उत्तर - भागेसु रोहिदास णाम णदी ।
दो - कोसेहि अपाविय, णाभिगिरिं पच्छिमे वलइ ॥१७३६॥

अर्थ :—रोहितास्या नामक नदी पद्मद्रहके उत्तरभागसे निकलकर (शब्दवान्) नाभिगिरि पहुँचनेसे दो कोस पूर्व ही पश्चिमकी ओर मुड़ जाती है ॥१७३६॥

बे कोसेहि अपाविय, [5]वेयड्ढं वलय - पच्छिमाहिमुहा ।
उत्तर-मुहेण तत्तो, कुडिल - सरूवेण एत्ति[6] सा सरिया ॥१७३७॥
गिरि-बहु-मज्झ-पदेसं, णिय-मज्झ - पदेसयं च कादूणं ।
पच्छिम - मुहेण गच्छइ, परिवार - णदीहि परियरिया ॥१७३८॥

अर्थ :—यह नदी दो कोससे पर्वतको न पाकर अर्थात् दो कोस पूर्व ही रहकर पश्चिमाभिमुख हो जाती है । इसके पश्चात् फिर उत्तराभिमुख होकर कुटिल-रूपसे आगे जाती है और पर्वतके बहुमध्य प्रदेशको अपना मध्यप्रदेश करके परिवार-नदियोंसे युक्त होती हुई पश्चिमकी ओर चली जाती है ॥१७३७-१७३८॥

अट्ठावीस - सहस्सा, परिवार - णदीण होदि परिमाणं ।
दीवस्स य जगदि-बिलं, पविसिय पविसेदि लवण-वारिणिहि ॥१७३९॥

। २८००० ।

। हेमवदो गदो ।

अर्थ :—इसकी परिवार नदियोंका प्रमाण अट्ठाईस हजार है । इसप्रकार यह नदी जम्बूद्वीपकी जगतीके बिलमें होकर लवणसमुद्रमें प्रवेश करती है ॥१७३९॥

। हैमवत क्षेत्रका वर्णन समाप्त हुआ ।

---

१. द. ब. जुदा । २. द. ब. ज. वेंतरा । ३. द. महादेवो । ४. ब. पउमदहाउत्तर । ५. द. ब. धवयं दं वलय, ज. य. धवेयदं चलय । ६. द य. तत्थि तरिया, ब. क. ज. तत्ति म तरिया ।

महाहिमवान् कुलाचलका निरूपण—

भरहावणि - रुंदादो, अड-गुण-रुंदो य दुसय उच्छेहो ।
होदि महाहिमवंतो, हिमवंत - वियं [1]वणेहि कयसोहा ।।१७४०।।

| रु $\frac{८००००}{१९}$ | उ २०० |

अर्थ :—महाहिमवान् पर्वतका विस्तार भरतक्षेत्रसे आठ गुणा (४२१०६$\frac{१०}{१९}$ यो०) है और ऊँचाई दोसौ (२००) योजन प्रमाण है । वह हिमवन्तके समान ही वनोंसे शोभायमान है ।।१७४०।।

पण्णसय[2]-सहस्साणि, उणवीस-हिदाणि[3] जोयणाणि पि ।
भरहाउ उत्तरंतं, तग्गिरि - बाणस्स परिमाणं ।।१७४१।।

| $\frac{१५००००}{१९}$ |

अर्थ :—भरतक्षेत्रसे उत्तर तक इस पर्वतके बाणका प्रमाण उन्नीससे भाजित एकसौ पचास हजार (७८९४$\frac{१४}{१९}$) योजन है ।।१७४१।।

तेवण्ण - सहस्साणि, णव य सया एक्कतीस - संजुत्ता ।
छ-च्चिय कलाओ जीवा, उत्तर - भागम्मि तग्गिरिणो ।।१७४२।।

। ५३९३१$\frac{६}{१९}$ ।

अर्थ : - उस पर्वतके उत्तर-भागमें जीवाका प्रमाण तिरेपन हजार नौसौ इकतीस योजन और छह कला (५३९३१$\frac{६}{१९}$ योजन) है ।।१७४२।।

सत्तावण्ण - सहस्सा, दु-सया तेणउदि दस कलाओ य ।
तत्थ महाहिमवंते, जीवाए होदि धणुपुट्ठं ।।१७४३।।

। ५७२९३$\frac{१०}{१९}$ ।

अर्थ :—महाहिमवान् पर्वतकी जीवाका धनुपृष्ठ सत्तावन हजार दोसौ तेरानबै योजन और दस कला मात्र (५७२९३$\frac{१०}{१९}$ यो०) है ।।१७४३।।

---

१. द ब. क. ज. य रमणेहि । २. द. ब. क. ज. य. पण्णरस । ३. द. ब. ज. वदाणि, क. बदाण ।

णव य सहस्सा दु-सया, छाहत्तरि जोयणाणि भंगा य ।
अडतीस[1] - हिदुणवीसा, महहिमवंतम्मि पस्सभुजा ॥१७४४॥

। ९२७६ $\frac{१९}{३८}$ ।

अर्थ :—महाहिमवान् पर्वतकी पार्श्वभुजा नौ हजार दो सौ छिहत्तर योजन और अड़तीससे भाजित उन्नीस कला प्रमाण (९२७६ $\frac{१९}{३८}$ यो०) है ॥१७४४॥

जोयण अट्ठ - सहस्सा, एक्कसयं अट्ठवीस - संजुत्तं ।
पंच - कलाओ [2]एदं, तग्गिरिणो चूलिया - माणो ॥१७४५॥

। ८१२८ $\frac{५}{१९}$ ।

अर्थ :– उस पर्वतकी चूलिकाका प्रमाण आठ हजार एकसौ अट्ठाईस योजन और पाँच कला (८१२८ $\frac{५}{१९}$ योजन) है ॥१७४५॥

महहिमवंते दोसुं, पासेसुं उववणाणि रम्माणि ।
गिरि - सम - दीहत्ताणि, वासादीणं च हिमवगिरिं ॥१७४६॥

अर्थ :—महाहिमवान् पर्वतके दोनों पार्श्वभागोंमें रमणीय उपवन हैं । इनकी लम्बाई इसी पर्वतकी लम्बाईके बराबर और विस्तारादिक हिमवान् पर्वतके सदृश है ॥१७४६॥

सिद्ध[3] - महाहिमवंता, हेमवदो रोहिदो य हरि-णामो ।
हरिकंतो [4]हरिवरिसो, वेरुलिओ अड इमे कूडा ॥१७४७॥

अर्थ :—इस पर्वतके ऊपर सिद्ध, महाहिमवान्, हैमवत, रोहित्, हरि, हरिकान्त, हरिवर्ष और वैडूर्य इस प्रकार ये आठ कूट हैं ॥१७४७॥

हिमवंत-पव्वदस्स य, कूडादो उदय - वास - पहुदीणि ।
एदाणं कूडाणं, दुगुण - सरूवाणि सव्वाणि ॥१७४८॥

अर्थ :—हिमवान् पर्वतके कूटोंसे इन कूटोंकी ऊँचाई और विस्तार आदि सब दुगुने-दुगुने हैं ॥१७४८॥

जं णामा ते कूडा, तं णामा वेंतरा सुरा होंति ।
अणुवम - रूव - सरीरा, बहुविह - परिवार - संजुत्ता ॥१७४९॥

---

१ द. ज. य. अट्ठतीस । २. द. ब. एहं । ३. द. मध्व । ४. द. हर ।

अर्थ :—जिन नामोंके वे कूट हैं, उन्हीं नामवाले व्यन्तरदेव उन कूटोंपर रहते हैं। ये देव अनुपम रूप युक्त शरीरके धारक और बहुत प्रकारके परिवारसे संयुक्त हैं ।।१७४९।।

महापद्मद्रह, कमल एवं ह्रीदेवी आदिका निरूपण—

पउम-द्दहाउ दुगुणो, [1]वासायामेहि गहिर - भावेणं ।
होदि महाहिमवंते[2], महपउमो णाम दिव्व - दहो ।।१७५०।।

। वा १००० । आ २००० । गा २० ।

अर्थ :—महाहिमवान् पर्वत पर स्थित महापद्म नामक द्रह पद्मद्रहकी अपेक्षा दुगुने विस्तार, लम्बाई एवं गहराई वाला है। अर्थात् १००० योजन विस्तार, २००० यो० आयाम और २० योजन गहराई वाला है ।।१७५०।।

तद्दह - पउमस्सोवरि, पासादे चेट्ठदे य हिरिदेवी ।
बहुपरिवारेहि जुदा, सिरियादेवि व्व वण्णिय-गुणोघा ।।१७५१।।

अर्थ :—उस तालाबमें कमलके ऊपर स्थित प्रासादमें बहुतसे परिवारसे संयुक्त तथा श्रीदेवीके सदृश वर्णित गुण-समूहसे परिपूर्ण ह्री देवी रहती है ।।१७५१।।

णवरि विसेसो एसो, दुगुणा परिवार-पउम-परिसंखा ।
जेत्तिय - मेत्ता - पउमा[3], जिणभवणा तेत्तिया[4] रम्मा ।।१७५२।।

अर्थ :—यहाँ विशेषता केवल यह है कि ह्री देवीके परिवार और पद्मोंकी संख्या श्रीदेवीकी अपेक्षा दूनी है। इस तालाबमें जितने पद्म हैं, उतने ही रमणीय जिन-भवन भी हैं ।।१७५२।।

द्रह सम्बन्धी कूटोंका निर्देश

ईसाण - दिसा - भागे, वेसमणो णाम सुंदरो कूडो ।
दक्खिण-दिसा-विभागे, कूडो सिरिणिचय णामो य ।।१७५३।।
णइरिदि-भागे कूडो, महहिमवंतो विचित्त-रयणमओ ।
पच्छिम - उत्तरभागे, कूडो एरावदो णाम ।।१७५४।।
सिरिसंचओ[5] त्ति कूडो, उत्तर - भागे दहस्स चेट्ठदि ।
एदेहिं कूडेहिं, महहिमवंतो य पंचासि[illegible] त्ति ।।१७५५।।

---

१. द. ब. क. ज. य. यामोहि । २. द. ब. क. ज. य. महाहिमवंतो । ३. द. ब. पवेसा, ज. य. पवेसा । ४. द. ब. क. ज. य. तत्ति मू । ५. द. ब. क सवदं । ज. य. संचद ।

अर्थ :—इस तालाबके ईशानदिशा-भागमें सुन्दर वैश्रवण नामक कूट, दक्षिणदिशाभागमें श्रीनिचय नामक कूट, नैऋत्यदिशामें विचित्र रत्नोंसे निर्मित महाहिमवान् कूट, पश्चिमोत्तर भागमें ऐरावत नामक कूट और उत्तरभागमें श्रीसंचय नामक कूट स्थित है। इन कूटोंसे महाहिमवान् पर्वत 'पंच-शिखर' कहलाता है ।।१७५३-१७५५।।

एदे सव्वे कूडा, वेंतर - णयरेहि[1] परम - रमणिज्जा ।
उववण-वेदी-जुत्ता, उत्तर - पासे जलम्मि जिण - कूडो ।।१७५६।।

अर्थ :—ये सब कूट व्यन्तर नगरोंसे परम-रमणीय और उपवन-वेदियोंसे संयुक्त हैं। तालाबके उत्तरपार्श्वभागमें जलमें जिनेन्द्र कूट है ।।१७५६।।

सिरिणिचयं वेरुलियं, अंकमयं अंबरीय - रुजगाइं ।
उप्पल - सिहरी कूडा, सलिलम्मि पदाहिणा होंति ।।१७५७।।

अर्थ :—श्रीनिचय, वैडूर्य, अङ्कमय, अम्बरीक, रुचक, उत्पल और शिखरी, ये कूट (महापद्मके) जलमें प्रदक्षिणरूपसे स्थित हैं ।।१७५७।।

रोहित महानदी—

तद्दह-दक्खिण-दारे, रोहि-णदी णिस्सरेदि विउल-जला ।
दक्खिण-मुहेण वच्चदि, पण-हद-इगिवीस-ति-सयमदिरित्तं ।।१७५८।।

। १६०५ $\frac{५}{१९}$ ।

अर्थ :—प्रचुर-जल-सयुक्त रोहित नदी इस तालाबके दक्षिणद्वारसे निकलती है और पर्वत पर पाँचसे गुणित तीनसौ इक्कीस योजनसे अधिक (३२१ × ५ + $\frac{५}{१९}$ = १६०५ $\frac{५}{१९}$ योजन) दक्षिण की ओर जाती है ।।१७५८।।

रोहीए रुंदादी, सारिच्छो होदि रोहिदासाए ।
णाहि - प्पदाहिणेणं, हेमवदे जादि पुव्वमुहा ।।१७५९।।

अर्थ :—रोहित् नदीका विस्तार आदि रोहितास्याके सदृश है। यह नदी हैमवत क्षेत्रमें नाभिगिरिकी प्रदक्षिणा करती हुई पूर्वाभिमुख होकर आगे जाती है ।।१७५९।।

---

१. ज. माणोहिं, य. माणेहिं ।

तत्तिसदि-बहु-मज्झेणं, [1]गच्छिय दीवस्स जगदि-बिल-दारे ।
पविसेदि लवण-जलहिं, अडवीस-सहस्स-वाहिणी-सहिदा ।।१७६०।।

। २८००० ।

। [2]महहिमवंतो गदो ।

अर्थ :—इसप्रकार यह नदी उस हैमवत क्षेत्रके बहुमध्यभागमें द्वीपकी वेदीके बिलद्वारमें जाकर अट्ठाईस हजार नदियों सहित लवण समुद्रमें प्रवेश करती है ।।१७६०।।

। महाहिमवान् पर्वतका वर्णन समाप्त हुआ ।

हरिक्षेत्रका निरूपण—

भरहावणीय बाणे[3], इगितीस - हदम्मि होदि जं लद्धं ।
हरिवरिसस्स य बाणं, तं उवहि - तडादु[4] णादव्वं ।।१७६१।।

$\left| \frac{३१००००}{१९} \right|$

अर्थ :—भरतक्षेत्रके बाणको इकतीससे गुणा करने पर जो गुणनफल ($\frac{१००००}{१९}$ × ३१= $\frac{३१००००}{१९}$) प्राप्त हो उतना समुद्रके तटसे हरिवर्ष क्षेत्रका बाण (१६३१५$\frac{१५}{१९}$ यो०) जानना चाहिए ।।१७६१।।

एक्कं[5] जोयण - लक्खं, सट्ठि-सहस्साणि भागहारो य ।
उणवीसेहिं एसो, हरिवरिस - खिदीए विस्थारो ।।१७६२।।

$\left| \frac{१६००००}{१९} \right|$

अर्थ :—हरिवर्ष क्षेत्रका विस्तार उन्नीससे भाजित एक लाख साठ हजार (८४२१$\frac{१}{१९}$) योजन प्रमाण है ।।१७६२।।

तेहत्तरी - सहस्सा, एक्कोत्तर-णव-सयाणि जोयणया ।
सत्तारस य कलाओ, हरिवरिसस्सुत्तरे जीवा ।।१७६३।।

। ७३९०१ । $\frac{१७}{१९}$ ।

---

१. द. ब. गच्छय । २. द. ब. क. ज. य. महहिमवंत । ३. द. ब. क. ज. य. बाणो । ४. द. ब. तडादो, क. ज. य. तदादो । ५. द. ब. एक्कि ।

अर्थ :—हरिवर्ष क्षेत्रकी उत्तर जीवा तिहत्तर हजार नौसौ एक योजन और सत्तरह कला (७३९०१ $\frac{१७}{१९}$ यो०) प्रमाण है ॥१७६३॥

चुलसीदि-सहस्साणिं, तह सोलह - जोयणाणि चउरंसा ।
एदस्सिं[1] जीवाए, धणुपुट्ठं होदि हरिवरिसे ॥१७६४॥

। ८४०१६ $\frac{४}{१९}$ ।

अर्थ :—हरिवर्षक्षेत्रमें इस जीवाका धनुपृष्ठ चौरासी हजार सोलह योजन और चार भाग (८४०१६ $\frac{४}{१९}$ यो०) प्रमाण है ॥१७६४॥

जोयण-णव-णउदि-सया, पणसीदी होंति अडतीस-हिदा ।
एक्करस - कला - अहिया, हरिवरिसे चूलियामाणं ॥१७६५॥

। ९८८५ $\frac{११}{३८}$ ।

अर्थ :– हरिवर्ष क्षेत्रकी चूलिकाका प्रमाण नौ हजार नौ सौ पचासी योजन और अड़तीस से भाजित ग्यारह कलाओंसे अधिक (९८८५ $\frac{११}{३८}$ यो०) है ॥१७६५॥

तेरस सहस्सयाणिं, तिण्णि सया जोयणाइ इगिसट्ठी ।
अडतीस-हरिय-तेरस-कलाओ हरिवरिस - पस्स - भुजा ॥१७६६॥

। १३३६१ । $\frac{१३}{३८}$ ।

अर्थ :—हरिवर्ष क्षेत्रकी पार्श्वभुजा तेरह हजार तीन सौ इकसठ योजन और अड़तीससे भाजित तेरह कला (१३३६१ $\frac{१३}{३८}$ यो०) प्रमाण है ॥१७६६॥

अवसेस - वण्णणाओ, सुसमस्स व होंति [2]तस्स खेत्तस्स ।
णवरि अवट्ठिद - रूवं, परिहीणं हाणि - वड्ढीहिं ॥१७६७॥

अर्थ :—उस क्षेत्रका अवशेष वर्णन सुषमाकालके सदृश है। विशेष यह है कि वह क्षेत्र हानि-वृद्धिसे रहित होता हुआ संस्थित रूप अर्थात् एकसा ही रहता है ॥१७६७॥

तक्खेत्ते बहुमज्झे, चेट्ठदि विजयावदित्ति णाभिगिरी ।
सव्व - दिव्व - वण्णण - जुत्ता इह किर चारणा देवा ॥१७६८॥

---

१. द. ब. एदंसं, क. य. एदेसं । २. द ब क. तस्सु ।

अर्थ :—इस क्षेत्रके बहुमध्यभागमे विजयवान् नामक नाभिगिरि स्थित है। यहाँ सर्व दिव्य वर्णनसे युक्त चारणदेव रहते हैं ।।१७६८।।

हरिकान्ता नदीका निरूपण—

महपउम - दहाउ णदी, उत्तरभागेण तोरणद्दारे ।
णिस्सरिदूणं वच्चदि, पव्वद - उवरिम्मि हरिकंता ।।१७६६।।

अर्थ :—हरिकान्तानदी महापद्म-द्रहके उत्तरभाग सम्बन्धी तोरणद्वारसे निकलकर पर्वतके ऊपरमे जाती है ।।१७६६।।

सा गिरि-उवरिं गच्छइ, एक्क-सहस्सं पणुत्तरा छ-सया ।
जोयणया पंच कला, पणालिए पडदि कूडम्मि ।।१७७०।।

। १६०५ $\frac{५}{१९}$ ।

अर्थ :—वह नदी एक हजार छहसौ पांच योजन और पाँच कला (१६०५ $\frac{५}{१९}$ यो०) प्रमाण पर्वतके ऊपर जाकर नालीके द्वारा कुण्डमे गिरती है ।।१७७०।।

बे - कोसेहिमपाविय, णाभि - गिरिंदं पदाहिणं कादुं ।
पच्छिम - मुहेण वच्चदि, रोहीदो बिगुण - वासादी ।।१७७१।।

अर्थ :—पश्चात् वह (नदी) नाभिगिरिसे दो कोस दूर (इधर) ही रहकर अर्थात् उसे न पाकर, उसकी (अर्ध) प्रदक्षिणा करके रोहित्-नदीकी अपेक्षा दुगुने विस्तारादि सहित होती हुई पश्चिमकी ओर जाती है ।।१७७१।।

छप्पण्ण - सहस्सेहिं, परिवार - तरंगिणीहि परियरिया ।
दीवस्स य जगदि-बिलं, पविसिय पविसेइ लवणम्मिहि ।।१७७२।।

। ५६००० ।

। हरिवरिसो गदो ।

अर्थ :—इसप्रकार वह नदी छप्पन हजार परिवार नदियों सहित द्वीपके जगती-द्वारमें (बिलमें) प्रवेश कर अनन्तर लवणसमुद्रमें प्रवेश करती है ।।१७७२।।

। हरिवर्ष-क्षेत्रका वर्णन समाप्त हुआ ।

निषधपर्वतका निरूपण—

सोलस-सहस्स-अड-सय-बादाला दो कला णिसह - रुंदं ।
उणवीस - हिदा य इसू, [1]तीस - सहस्साणि छल्लक्खं ।।१७७३।।

। १६८४२ $\frac{२}{१९}$ । $\frac{६३००००}{१९}$ ।

अर्थ :—निषधपर्वतका विस्तार सोलह हजार आठसौ बयालीस योजन और दो कला (१६८४२ $\frac{२}{१९}$ योजन) तथा बाण उन्नीससे भाजित छह लाख तीस हजार (३३१५७ $\frac{१७}{१९}$) योजन प्रमाण है ।।१७७३।।

अहवा गिरि-वरिसाणं, बिगुणिय-वासम्मि भरह-इसु-माणे ।
अवणीदे जं सेसं, णिय - णिय - बाणाण तं माणं[2] ।।१७७४।।

अर्थ :— अथवा, पर्वत और क्षेत्रके दूने विस्तारमेंसे भरतक्षेत्र सम्बन्धी बाण-प्रमाणके कम कर देनेपर जितना शेष रहे उतना अपने-अपने बाणोंका प्रमाण होता है ।।१७७४।।

$\frac{३२००००}{१९}$ × २ — $\frac{१००००}{१९}$ = $\frac{६३००००}{१९}$ = ३३१५७ $\frac{१७}{१९}$ निषधका बाण ।

चउ-णउदि-सहस्साणि, जोयण छप्पण्ण-अहिय-एक्क-सया ।
दोण्णि कलाओ अहिया, [3]णिसह - गिरिस्सुत्तरे जीवा ।।१७७५।।

। ९४१५६ $\frac{२}{१९}$ ।

अर्थ :— निषधपर्वतकी उत्तरजीवाका प्रमाण चौरानवे हजार एकसौ छप्पन योजन और दो कला अधिक है ।।१७७५।।

एक्कं जोयण-लक्खं, चउवीस-सहस्स-ति-सय-छादाला ।
णव - भागा अविरित्ता, णिसहे जीवाए धणुपुट्ठं ।।१७७६।।

। १२४३४६ $\frac{९}{१९}$ ।

अर्थ :—निषधपर्वतकी जीवाके धनुपृष्ठका प्रमाण एक लाख चौबीस हजार तीनसौ छयालीस योजन और नौभाग-अधिक (१२४३४६ $\frac{९}{१९}$ यो०) है ।।१७७६।।

सत्तावीसब्भहियं, एक्क - सयं दस - सहस्स जोयणया ।
दोण्णि कलाओ णिसहे, णिद्दिट्ठं चूलिया माणं ।।१७७७।।

। जो १०१२७ $\frac{२}{१९}$ ।

---

१. द. ज. बीस । २. ब. परिमाणं । ३. ज. य. उसह । क. णिउसह ।

अर्थ :—निषधपर्वतकी चूलिकाका प्रमाण दस हजार एक सौ सत्ताईस योजन और दो कला (१०१२७ $\frac{२}{१९}$ यो०) कहा गया है ॥१७७७॥

जोयण वीस - सहस्सं, एक्क - सयं पंच-समहिया सट्ठी ।
अड्ढाइज्ज - कलाओ, पस्स - भुजा णिसह - सेलस्स ॥१७७८॥

। २०१६५ $\frac{५}{३८}$ ।

अर्थ :—निषध पर्वतकी पार्श्वभुजा बीस हजार एक सौ पैंसठ योजन और ढाई कला (२०१६५ $\frac{५}{३८}$ यो०) प्रमाण है ॥१७७८॥

उपवन-खण्डोंका वर्णन—

तग्गिरि-दो-पासेसुं, उववण - संडाणि होंति रमणिज्जा ।
बहुविह - वर - रुक्खाणि, सुक-कोकिल-मोर-जुत्ताणि ॥१७७९॥

अर्थ :—इस पर्वतके दोनों पार्श्वभागोंमें बहुत प्रकारके उत्तम वृक्षों और तोता, कोयल एवं मयूर पक्षियोंसे युक्त रमणीय उपवन खण्ड है ॥१७७९॥

उपवण - संडा सव्वे, पव्वद - दीहत्त-सरिस-दीहत्ता ।
वर - वावी - कूव - जुदा, पुव्वं चिय वण्णणा सव्वा ॥१७८०॥

अर्थ :—वे सब उपवन-खण्ड पर्वतकी लम्बाई सदृश लम्बे और उत्तम वापियों एवं कूपोंसे संयुक्त हैं। इनका सब वर्णन पूर्वके ही सदृश है ॥१७८०॥

निषधपर्वतस्थ कूट—

कूडो [1]सिद्धो णिसहो, हरिवस्सो तह विदेह-हरि-विजया ।
सीदोदपरविदेहा, [2]रुजगो य हवेदि णिसह - उवरिम्मि ॥१७८१॥

अर्थ :—निषधपर्वतके ऊपर सिद्ध, निषध, हरिवर्ष, विदेह, हरि, विजय, सीतोदा, अपर-विदेह और रुचक, ये नौ कूट स्थित हैं ॥१७८१॥

ताणं उदय - प्पहुदी, सव्वे हिमवंत - सेल - कूडादो ।
चउ-गुणिया णवरि इमे, कूडोवरि [3]जिणपुरा सरिसा ॥१७८२॥

---

१. द. ज. ब. णिसहे। २. क. ज. य. रुजगा। ३. द. जिणवरा।

अर्थ :—इन कूटोंकी ऊँचाई आदि सब हिमवान्-पर्वतके कूटोंसे चौगुनी है। विशेषता केवल यह है कि कूटोंपर स्थित ये जिनपुर हिमवान्-पर्वत सम्बन्धी जिनपुरोंके सदृश हैं ॥१७८२॥

जं णामा ते कूडा, तं णामा वेंतरा सुरा तेसुं।
बहु - परिवारेहि जुदा, पल्लाऊ दस - धणुत्तुंगा ॥१७८३॥

अर्थ :—ये कूट जिस नामवाले हैं, उसी नामवाले व्यन्तरदेव उन कूटोंपर निवास करते हैं। बहुत परिवारोंसे युक्त ये देव एक पल्य प्रमाण आयु वाले और दस धनुष ऊँचे हैं ॥१७८३॥

पउमद्दहाउ चउ - गुण-रुंद-प्पहुदी हवेदि दिव्व - दहो।
तिगिच्छो[1] विक्खादो, बहु - मज्झे णिसह - सेलस्स ॥१७८४॥

वा २००० । आ ४००० । गा ४० । प संखा ५६०४६४ ।
[2]उ ४ । वा ४ । उ ४२ । उ १ । वा १ । आ ४ को । वा २ को उ ३ को ।

अर्थ :—निषधपर्वतके बहुमध्यभागमें पद्म-द्रहकी अपेक्षा चौगुने विस्तारादि सहित और तिगिञ्छ-नामसे प्रसिद्ध एक दिव्य तालाब है ॥१७८४॥

तालाबका व्यास २००० योजन, आयाम ४००० यो० और अवगाह ४० योजन प्रमाण है। सम्पूर्ण कमलोंका प्रमाण ५६०४६४ है। कमलका उत्सेध ४ योजन और व्यास भी ४ यो० है। कमल-नाल की ऊँचाई ४२ योजन है। (जलमग्न ४० योजन और जलके ऊपर २ यो० है।) कमल-कर्णिका का उत्सेध १ योजन और व्यास १ योजन है। कमल-कर्णिका पर स्थित प्रत्येक भवन की लम्बाई ४ कोस, चौड़ाई २ कोस और ऊँचाई ३ कोस है।

धृतिदेवी निर्देश—

तद्दह - पउमस्सोवरि, [3]पासादे चेट्ठदे य धिदिदेवी।
बहु - परिवारेहि जुदा, णिरुवम - लावण्ण - संपुण्णा ॥१७८५॥

अर्थ :—उस द्रह सम्बन्धी कमलके ऊपर स्थित भवनमें बहुत परिवारसे संयुक्त और अनुपम लावण्यसे परिपूर्ण धृतिदेवी निवास करती है ॥१७८५॥

इगि - पल्ल - पमाणाऊ, णाणाविह-रयण-भूसिय-सरीरा।
अइरम्मा वेंतरिया, सोहम्मिदस्स सा देवी ॥१७८६॥

---

१. द. तीगिञ्छे, ब. तिगिञ्छे। २. द. ब. वा २, मंबु वा २, उ ३, प ४, मज्झि ४। ३. द. ब. क. य. ज. पासादा।

अर्थ :—एक पल्य आयुकी धारक और नाना प्रकारके रत्नोंसे विभूषित शरीर-वाली अतिरमणीय वह व्यन्तरिणी सौधर्मेन्द्रकी देवकुमारी (आज्ञाकारिणी) है ।।१७८६।।

द्रहमें जिनभवन एवं कूट—

जेत्तिय - मेत्ता तस्सि, पउम-गिहा तेत्तिया जिणिदपुरा ।
भव्वाणाणंदयरा[1], सुर - किण्णर - मिहुण - संकिण्णा ।।१७८७।।

अर्थ :—उस तालावमें जितने पद्मगृह हैं, भव्यजनोंको आनन्दित करने वाले किन्नर देवोंके युगलोंसे संकीर्ण जिनेन्द्रपुर भी उतने ही हैं ।।१७८७।।

ईसाण - दिसा - भागे, वेसमणो णाम मणहरो कूडो ।
दक्खिण - दिसा - विभागे, कूडो सिरिणिचय-णामो य ।।१७८८।।

णइरदि-दिसा-विभागे, णिसहो णामेण सुंदरो कूडो ।
अइरावदो[2] त्ति कूडो, तिगिंछि - पच्छिमुत्तर[3]-विभागे ।।१७८६।।

उत्तर-दिसा-विभागे, कूडो सिरिसंचयो त्ति णामेण ।
एदेहिं कूडेहिं, णिसहगिरी पंच - सिहरि त्ति ।।१७९०।।

अर्थ :—तिगिञ्छ तालाबकी ईशानदिशामें वैश्रवण नामक मनोहर कूट है, दक्षिणदिशा-भागमें श्रीनिचय नामक कूट, नैऋत्य दिशामें निषध नामक सुन्दर कूट, पश्चिमोत्तर कोणमें ऐरावत कूट और उत्तर दिशा भागमें श्रीसञ्चय नामक कूट है। इन कूटोंके कारण निषध-पर्वत 'पंचशिखरी' नामसे भी प्रसिद्ध है ।।१७८८-१७९०।।

वर-वेदियाहिं जुत्ता, वेंतर-णयरेहिं परम - रमणिज्जा ।
एदे कूडा उत्तर - पासे सलिलम्मि जिण - कूडो[4] ।।१७९१।।

अर्थ :—ये कूट उत्तम वेदिकाओं सहित है और व्यन्तर नगरोंसे अतिशय-रमणीय हैं। इन कूटोंके उत्तर पार्श्वभागमें जलमें जिनेन्द्र कूट हैं ।।१७९१।।

---

१. द. ब. क. ज. य. भवणाणंदयरा । २. द. ब. क. ज. य. अइरावदा । ३. ब. ज. य. तिगिञ्छी-मुत्तर । ४. द. ब. क. ज. य. कूडा ।

सिरिणिचयं वेरुलियं, अंकमयं अंबरीय - रुचगाइं ।
सिहरी उप्पल - कूडो, तिगिञ्छ - दहस्स [1]सलिलम्मि ॥१७६२॥

अर्थ :—तिगिञ्छ तालाबके जलमें श्रीनिचय, वैडूर्य, अङ्कमय, अम्बरीक, रुचक, शिखरी और उत्पल कूट हैं ॥१७६२॥

हरित् नदीका निर्देश—

तिगिंछादो दक्खिण - दारेणं हरि-णदी [2]विणिक्कंता ।
सत्त-सहस्सं चउ-सय-इगिवीसा इगि-कला य गिरि-उवरिं ॥१७६३॥

। ७४२१ । $\frac{1}{19}$ ।

आगच्छिय हरि-कुंडे[3], पडिऊणं हरि-णदी विणिस्सरदि[4] ।
णाहि - प्पदाहिणेणं, हरिवरिसे जादि [5]पुव्वमुही ॥१७६४॥

अर्थ :—हरित् नदी तिगिञ्छ द्रहके दक्षिणद्वारसे निकलकर सात हजार चारसौ इक्कीस योजन एवं एक कला (७४२१$\frac{1}{19}$ यो०) प्रमाण पर्वतके ऊपर आकर और हरित् कुण्डमें गिरकर वहाँसे निकलती है तथा हरिवर्ष क्षेत्रमें नाभिगिरिकी प्रदक्षिणा-रूपसे पूर्वकी ओर जाती है ॥१७६३-१७६४॥

छप्पण्ण - सहस्सेहिं, परिवार - णिमग्गगाहि संजुत्ता ।
दीवस्स य जगदि-बिलं, पविसिय पविसेदि लवणणिहिं ॥१७६५॥

। ५६००० ।

अर्थ :—वह नदी छप्पन हजार (५६०००) परिवार नदियोंसे संयुक्त होकर द्वीपकी जगतीके बिलमें प्रवेश करती हुई लवणसमुद्रमें प्रवेश करती है ॥१७६५॥

हरिकंता - सारिच्छा, हरि-णामा-वास-गाह[6]-पहुदीओ ।
भोगवणीण णदीओ, सर - पहुदी जलयर - बिहीणा ॥१७६६॥

। णिसहो[7] गदो ।

---

1. द. ब. दहम्मसिलम्मि । 2. द. विदिक्कता । 3. द. ब. क. ज. य. कूडे । 4. द. ब. क. ज. य. विणिस्सरस्रो । 5. द. ब. क. ज. य. पुव्वमुहे । 6. द. क. ज. य. ब. गाहि । 7. द. ब. णिसह ।

अर्थ :—हरित् नदीका विस्तार एवं गहराई आदि हरिकान्ता नदीके सदृश है। भोग-भूमियोंकी नदियाँ एवं तालाब आदिक जलचर जीवोंसे रहित होते हैं ॥१७९६॥

। निषध-पर्वतका वर्णन समाप्त हुआ ।

महाविदेह-क्षेत्रका वर्णन—

णिसहस्सुत्तर - भागे, दक्खिण - भागम्मि णीलवंतस्स ।
वरिसो महाविदेहो, मंदर - सेलेण पविहत्तो ॥१७९७॥

अर्थ :—निषधपर्वतके उत्तरभागमें और नील-पर्वतके दक्षिण-भागमें मन्दरमेरुसे विभक्त महाविदेह-क्षेत्र है ॥१७९७॥

तेत्तीस-सहस्साइं, छ-सया चउसीदिआ य चउ - अंसा ।
तो महविदेह - रुंदं, जोयण - लक्खं मज्झगद - जीवा ॥१७९८॥

। ३३६८४ । $\frac{४}{१९}$ । १००००० ।

अर्थ :—उस महाविदेह-क्षेत्रका विस्तार तैंतीस हजार छह सौ चौरासी योजन और चार भाग (३३६८४$\frac{४}{१९}$ यो०) प्रमाण, तथा मध्यगत जीवा एक लाख योजन प्रमाण है ॥१७९८॥

भरहस्स इसु-पमाणे[1], पंचाणउदीहि ताडि दम्मि पुढं ।
रयणायर - तीरादो[2], विदेह - अद्धो त्ति सो वाणो ॥१७९९॥

अर्थ :—भरतक्षेत्रके बाणको पचानबेसे गुणा करने पर जो (भरतका बाण $\frac{१००००}{१९}$ × ९५ = $\frac{९५००००}{१९}$ = ५०००० योजन) गुणनफल प्राप्त हो उतना समुद्रके तीरसे अर्ध विदेह-क्षेत्रके बाणका प्रमाण है ॥१७९९॥

अट्ठावण्ण - सहस्सा, इगि - लक्खा तेरसुत्तरं च सयं ।
सग - कोसाणं अद्धं, महाविदेहस्स धणुपुट्ठं ॥१८००॥

। १५८११३ । $\frac{७}{२}$ ।

अर्थ :—महाविदेहका धनुपृष्ठ एक लाख अट्ठावन हजार एकसौ तेरह योजन और साढ़े तीन कोस (१५८११३ यो० ३$\frac{१}{२}$ कोस) प्रमाण है ॥१८००॥

---

१. द. ब. क. ज. य. पमाणो । २. द. ब. क. ज. य. तीरुढो ।

जोयण [1]उणतीस - सया, इगिवीसं अट्ठरस तहा भागा ।
एवं महाविदेहे, णिद्दिट्ठं चूलिया - माणं ॥१८०१॥

। २९२१ १८/१९ ।

अर्थ :—महाविदेह क्षेत्रकी चूलिकाका प्रमाण उनतीससौ इक्कीस योजन तथा अठारह भाग (२९२१ १८/१९ यो०) है ॥१८०१॥

सोलस-सहस्सयाणि, अट्ठ - सया जोयणाणि तेसीदी ।
अद्धाहिय - अट्ठ - कला, महाविदेहस्स पस्स - भुजा ॥१८०२॥

। १६८८३ १७/३८ ।

अर्थ :—महाविदेहकी पार्श्व-भुजा सोलह हजार आठसौ तेरासी योजन और साढे आठ कला (१६८८३ १७/३८ यो०) प्रमाण है ॥१८०२॥

[तालिका ४२ पृष्ठ ५०५ पर देखिये]

---

१. द. उणवीस ।

तालिका : ४२

पर्वत एवं क्षेत्रोंके विस्तार, बाण, जीवा, धनुष आदिका प्रमाण

क्र.	पर्वत और क्षेत्रों के नाम	अवगाह	उत्सेध	विस्तार	बाण	उत्तर जीवा	धनुष	चूलिका	पार्श्वभुजा
		योजन	योजन	योजन	योजन	योजन	योजन	योजन	योजन
१	हिमवान्	२५	१००	१०५२ १२/१९	१५७८ १८/१९	२४९३२ १/१९	२५२३० ४/१९	५२३० १५/३८	५३५० ३१/३८
२	हैमवतक्षेत्र	×	×	२१०५ ५/१९	३६८४ ४/१९	३७६७४ १६/१९	३८७४० १०/१९	६३७१ १५/३८	६७५५ ३/१९
३	महाहिमवान्	५०	२००	४२१० १०/१९	७८९४ ८/१९	५३९३१ ६/१९	५७२९३ १०/१९	८१२८ ५/१९	९२७६ १९/३८
४	हरिक्षेत्र	×	×	८४२१ १/१९	१६३१५ १५/१९	७३९०१ १७/१९	८४०१६ ४/१९	९९८५ ११/१९	१३३६१ १३/३८
५	निषध	१००	४००	१६८४२ २/१९	३३१५७ १७/१९	९४१५६ २/१९	१२४३४६ ९/१९	१०१२७ २/१९	२०१६५ ५/३८
६	दक्षिणविदेह	×	×	१६८४२ २/१९	५००००	१०००००	१५८११३ [illegible]	२९२१ १६/१९	१६८८३ १३/३८
७	उत्तरविदेह	×	×	१६८४२ २/१९	५००००	१०००००	१५८११३ [illegible]	२९२१ १६/१९	१६८८३ १३/३८

मन्दर महामेरुका निरूपण—

वरिसे महाविदेहे, बहुमज्झे मंदरो महासेलो।
जम्माभिसेय - पीढो, सव्वाणं तित्थ - कत्ताणं ॥१८०३॥
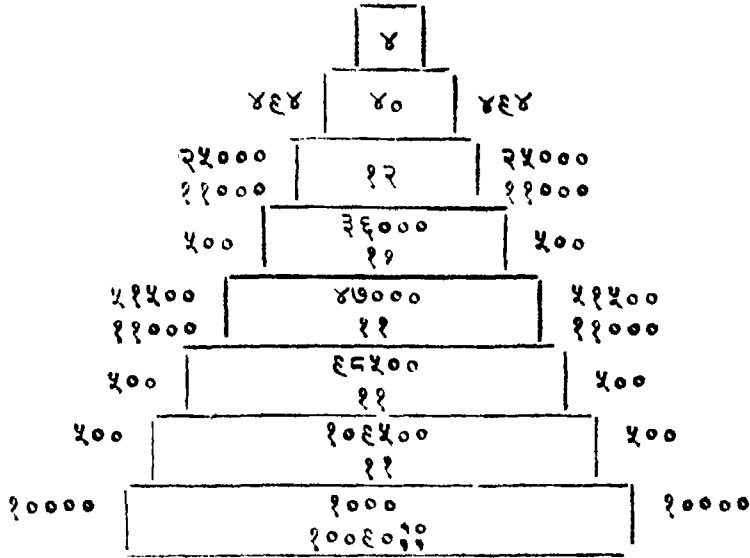
अर्थ :—महाविदेहक्षेत्रके बहु-मध्यभागमें सब तीर्थंकरोंके जन्माभिषेकका आसनरूप मन्दर (सुदर्शन) नामक महापर्वत है ॥१८०३॥

नोट—गाथा १८०३ की मूल संदृष्टिका भाव 'सुमेरु' के चित्रसे स्पष्ट हो रहा है।

(सुमेरु पर्वत का चित्र अगले पृष्ठ पर देखिये)
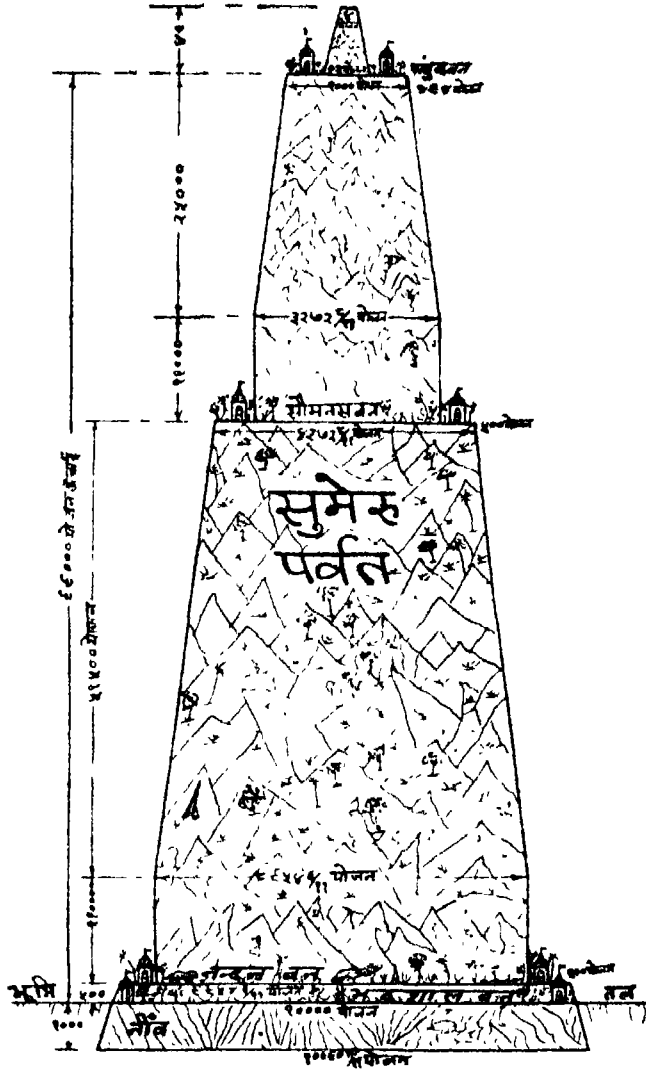
जोयण-सहस्स-गाढो, णव-णवदि-सहस्स-मेत्त-उच्छेहो ।
बहुविह-वण-संड-जुदो णाणावर - रयण - रमणिज्जो ।।१८०४।।

। १००० । ९९००० ।

अर्थ :—यह महापर्वत एक हजार (१०००) योजन गहरा (नींव), निन्यानबै (९९०००) हजार योजन ऊँचा, बहुत प्रकारके वन-खण्डोंसे युक्त और अनेक उत्तम रत्नोंसे रमणीय है ।।१८०४।।

दस य सहस्सा णउदी, जोयणया दस-कलेक्करस-भागा ।
पायाल - तले रुंदं, समवट्ट - तणुस्स मेरुस्स ॥१८०५॥

। १००९० । $\frac{१०}{११}$ ।

अर्थ :—इस समान गोल शरीरवाले मेरु-पर्वतका विस्तार पाताल-तलमें दस हजार नब्बै योजन और एक योजनके ग्यारह भागोंमेसे दस भाग (१००९०$\frac{१०}{११}$ यो०) प्रमाण है ॥१८०५॥

कम - हाणीए उवरिं, धरणी - पट्ठम्मि दस-सहस्साणि ।
जोयण - सहस्समेक्कं, वित्थारो सिहर - भूमीए ॥१८०६॥

। १०००० । १००० ।

अर्थ :—फिर क्रमशः हानिरूप होनेसे उसका विस्तार पृथिवीके ऊपर दस हजार (१००००) योजन और शिखर-भूमि पर एक हजार (१०००) योजन प्रमाण है ॥१८०६॥

सरसमय-जलद-[1]णिग्गद-दिणयर - बिंबं व सोहए मेरू ।
विविह-वर-रयण-मंडिय - वसुमइ - मउडो व्व उत्तुंगो ॥१८०७॥

अर्थ :—वह उन्नत मेरुपर्वत शरत्कालीन बादलोंमेंसे निकलते हुए सूर्यमण्डलके सदृश और विविध उत्तम रत्नोंसे मण्डित पृथिवीके मुकुट सदृश शोभायमान होता है ॥१८०७॥

जम्माभिसेय-सुर-रइद[2]-दुंदुही[3]-भेरि-तूर - णिग्घोसो ।
जिण-महिम-जणिद-विक्कम-सुरिंद - संदोह - रमणिज्जो ॥१८०८॥

अर्थ :—वह मेरु पर्वत जन्माभिषेकके समय देवोंसे रचे गये दुंदुभि, भेरी एवं तूर्यके निर्घोष सहित और जिन - माहात्म्यसे उत्पन्न हुए पराक्रमवाले सुरेन्द्र - समूहोंसे रमणीय होता है ॥१८०८॥

ससि-हार-हंस-धवलुच्छलंत[4]-खीरंबु-रासि - [5]सलिलोघो ।
सुर - किण्णर - मिहुणाणं, णाणाविह - कीडणेहिं जुदो ॥१८०९॥

अर्थ :—चन्द्रमा, हार एवं हंस सदृश धवल तथा उछलते हुए क्षीरसागरके जल-समूहसे युक्त वह मेरु पर्वत किन्नर-जातिके देव-युगलोंकी नाना प्रकारकी क्रीड़ाओंसे सुशोभित होता है ॥१८०९॥

---

१. द. ब. क. ज. य. णिग्गह। २. ब. क. य. रइ। ३. द. क. य. दुंदुहिभेरीतूरणादणिग्घोसो। ज. तूरणाविणिग्घोसो। ४. द. क. ज. य. धवलुच्छलंतखीरं। ५. द. ज. ब. सलिलाघो।

घणघर[1]-कम्म-महासिल-संचूरण-जिणवरिंद-भवणोघो ।
विविह-तरु-कुसुम-पल्लव-फल-णिवह-सुगंध - भू - भागो ॥१८१०॥

अर्थ :—अतिसघन कर्मरूपी महाशिलाओंको चूर्ण करनेवाले जिनेन्द्र-भवनसमूहसे युक्त वह मेरुपर्वत अनेक प्रकारके वृक्ष-फूल-पल्लव और फलोंके समूहसे पृथिवी-मण्डलको सुगन्धित करने वाला है ॥१८१०॥

मेरु पर्वतके विस्तारमें हीनाधिकता—

भूमीदो पंच - सया, कम - हाणीए तदुवरि गंतूणं ।
तट्ठाणे संकुलिदो, पंच - सया सो गिरी जुगवं ॥१८११॥

अर्थ :—वह मेरुपर्वत क्रमशः हानिरूप होता हुआ पृथिवीसे पाँचसौ योजन ऊपर जाकर उस स्थानमें युगपत् पाँचसौ योजन प्रमाण संकुचित हो गया है ॥१८११॥

सम-विरथारो उवरिं, एक्करस-सहस्स-जोयण - पमाणं ।
तत्तो कम - हाणीए, इगिवण्ण-सहस्स-पण-सया गंतुं ॥१८१२॥

। ११००० । ५१५०० ।

जुगवं [2]समंतदो सो, संकुलिदो जोयणाणि पंच - सया ।
सम - रुंदं उवरि - तले[3], एक्करस - सहस्स-परिमाणं ॥१८१३॥

। ५०० । ११००० ।

अर्थ :—पश्चात् इससे ऊपर ग्यारह हजार (११०००) योजन पर्यन्त समान विस्तार है। वहाँसे पुनः क्रमशः हानि-रूप होकर इक्यावन हजार पाँच-सौ (५१५००) योजन प्रमाण ऊपर जाने पर वह पर्वत सब ओरसे युगपत् पाँच-सौ योजन फिर संकुचित हो गया है। इसके आगे ऊपर ग्यारह हजार (११०००) योजन पर्यन्त उसका विस्तार समान है ॥१८१२-१८१३॥

उड्ढं कम - हाणीए, पणवीस - सहस्स - जोयणा गंतुं ।
जुगवं संकुलिदो सो, चत्तारि सयाइ चउ - णउवी ॥१८१४॥

। २५००० । ४९४ ।

अर्थ :—फिर ऊपर क्रमशः हानिरूप होकर पच्चीस हजार (२५०००) योजन जानेपर वह पर्वत युगपत् चारसौ चौरानवै योजन प्रमाण संकुचित हो गया है ॥१८१४॥

---

१. द. ब. क. ज. य. घणहर। २. द. ब. समंतदे। ३. द. ब. तमो।

एवं जोयण - लक्खं, उच्छेहो सयल - पव्वद - पहुस्स ।
णिलयस्स सुर - वराणं, अणाइ - णिहणस्स मेरुस्स ।।१८१५।।

अर्थ :—इसप्रकार सम्पूर्ण पर्वतोंके प्रभु तुल्य और उत्तम देवोंके आलय-स्वरूप उस अनादि-निधन मेरु-पर्वतकी ऊँचाई एक लाख योजन प्रमाण है ।।१८१५।।

१००० + ५०० + ११००० + ५१५०० + ११००० + २५००० = १००००० योजन ऊँचाई ।

मुह-भूमि-सेसमद्धिय, [1]वग्ग - कदं उदय - वग्ग-संजुत्तं ।
जं तस्स [2]वग्ग - मूलं, [3]पव्वदरायस्स तस्स पस्सभुजा ।।१८१६।।

अर्थ :—भूमिमेंसे मुख घटाकर तथा उसका आधा कर (उस अर्ध-भागका) वर्ग करना चाहिए और इसमें (पर्वतकी) ऊँचाईका वर्ग मिला देनेपर उसका जो वर्गमूल हो वही पर्वतराजकी पार्श्वभुजाका प्रमाण है ।।१८१६।।

यथा—

$$\sqrt{\left(\frac{१०००० - १०००}{२}\right)^{२} + \left(९९०००\right)^{२}} = \sqrt{२०२५०००० + ९८०१००००००}$$

= ९९१०२ योजन मेरु पर्वतकी पार्श्वभुजाका प्रमाण ।

णव-णउदि-सहस्साणि, एक्क-सयं दोण्णि जोयणाणि तहा ।
सविसेसाइं[4] एसा, मंदर - सेलस्स पस्स - भुजा ।।१८१७।।

। ९९१०२ ।

अर्थ :—मन्दर पर्वतकी पार्श्वभुजाका प्रमाण निन्यानवै हजार एक सौ दो योजन (९९१०२ $\frac{३६३३}{१६५१७}$ योजन या ९९१०२ $\frac{२}{९}$ योजन) से कुछ अधिक है ।।१८१७।।

चालीस - जोयणाइं, मेरुगिरिंदस्स चूलिया - माणं ।
बारह तब्भू - वासं, चत्तारि हवेदि मुह - वासं ।।१८१८।।

। ४० । १२ । ४ ।

अर्थ :—मेरु पर्वतकी चूलिकाका प्रमाण चालीस योजन, भू-विस्तार बारह योजन और मुख विस्तार चार योजन है ।।१८१८।।

---

१. द. ज. य. मग्गगदं । २. द. ज. य. मग्गमूल । ३. द. ब. क. ज. य. ठ. पवहुदयसमस्स ।
४. द. ब क. ठ. सविसेसेइं, ज. य सविमोसयं ।

मुह-भूमीण विसेसे, उच्छेह - हिदम्मि भू - मुहाहितो ।
हाणि - चयं णिद्दिट्ठं, तस्स पमाणं हु [1]पंचंसो ।।१८१९।।

। $\frac{1}{5}$ ।

अर्थ :—भूमिमेंसे मुखका प्रमाण घटाकर उत्सेधका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो वह भूमिकी अपेक्षा हानि और मुखकी अपेक्षा वृद्धिका प्रमाण कहा गया है। वह हानि वृद्धिका प्रमाण यहाँ योजनका पाँचवां भाग ($\frac{1}{5}$ यो०) है ।।१८१९।।

(भू० वि० १२ यो० — ४ यो० मुख वि० ÷ ४० यो० उत्सेध) = (१२ — ४) ÷ ४० = $\frac{8}{40}$ = $\frac{1}{5}$ हानि—वृद्धिका प्रमाण ।

जत्थिच्छसि विक्खंभं, चूलिय-सिहराउ समवदिण्णाणं ।
तं[2] पंचेहि विहत्तं, चउ - जुत्तं तत्थ तव्वासं ।।१८२०।।

अर्थ :—चूलिकाके शिखरसे नीचे उतरते हुए जितने योजनपर विष्कम्भ जाननेकी इच्छा हो उतने योजनोंको पाँचसे विभक्त करनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसमें चार अङ्क और जोड़ देनेपर वहाँका विस्तार निकलता है ।।१८२०।।

उदाहरण :—चूलिका-शिखरसे नीचे २० योजन पर विष्कम्भका प्रमाण जानना हो तो— २० ÷ ५ + ४ = ८ योजन विष्कम्भ होगा ।

तं मूले सगतीसं, मज्झे पणुवीस जोयणाणं पि ।
उड्ढे बारस अहिया, परिही वेरुलिय - मइयाए ।।१८२१।।

। ३७ । २५ । १२ ।

अर्थ :—वैडूर्यमणिमय उस शिखरकी परिधि मूलमें सैंतीस योजन, मध्यमें पच्चीस योजन और ऊपर बारह योजनसे अधिक है ।।१८२१।।

जत्थिच्छसि विक्खंभं, मंदर - सिहराउ समवदिण्णाणं ।
तं एक्कारस-भजिदं, सहस्स - सहिदं च तत्थ वित्थारं ।।१८२२।।

अर्थ :—सुमेरुपर्वतके शिखरसे नीचे उतरते हुए जितने योजनपर उसका विष्कम्भ जाननेकी इच्छा हो उतने योजनोंमें ग्यारहका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उसमें एक हजार योजन और मिला देनेपर वहाँका विस्तार आ जाता है ।।१८२२।।

---

१. द. ब. क. ज. य. ठ. पंचंसा । २. तप्पंचे विविहत्थं ।

उदाहरण—चूलिकाके शिखरसे नीचे ३३००० योजनोंपर विष्कम्भका प्रमाण—
३३०००÷११+१०००=४००० योजन ।

जस्सि इच्छसि वासं, उवरिं मूलाउ तेत्तिय - पदेसं ।
एक्कारसेहि भजिदं, भू - वासे सोहिदम्मि तव्वासं ॥१८२३॥

अर्थ :—मूलसे ऊपर जिस स्थानपर मेरुका विस्तार जाननेकी इच्छा हो, उतने प्रदेशमें ग्यारहका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उसे भूमिके विस्तारमेंसे घटा देनेपर शेष वहाँका विस्तार होता है ॥१८२३॥

एक्कारसे पदेसे, एक्क - पदेसा दु [1]मूलदो हाणी ।
एवं पाद - करंगुल - कोस - प्पहुदीहिं णादव्वं ॥१८२४॥

अर्थ :—मेरुके विस्तारमें मूलसे ऊपर ग्यारह प्रदेशोंपर एक प्रदेशकी हानि हुई है । इसी प्रकार पाद, हस्त, अंगुल और कोस आदिककी ऊँचाई पर भी स्वयं जानना चाहिए ॥१८२४॥

मेरुकी छह परिधियाँ एवं उनका प्रमाण—

हरिदालमई[2] परिही, वेरुलिय-मणी य रयण-वज्जमई ।
उड्ढम्मि य पउममई, तत्तो उवरिम्मि पउमरायमई ॥१८२५॥

अर्थ :—इस पर्वतकी परिधि नीचेसे क्रमशः हरितालमयी, वैडूर्यमणिमयी, रत्न (सर्वरत्न) मयी, वज्रमयी, इसके ऊपर पद्ममयी और इससे भी ऊपर पद्मरागमयी है ॥१८२५॥

सोलस - सहस्सयाणि, पंच - सया जोयणाणि पत्तेक्कं ।
ताणं छप्परिहीणं, मंदर - सेलस्स परिमाणं ॥१८२६॥

। १६५०० ।

अर्थ :—मन्दर-पर्वतकी इन छह परिधियोंमेंसे प्रत्येक परिधिका प्रमाण सोलह हजार पाँचसौ योजन है ॥१८२६॥

सातवीं परिधिमें ग्यारह वन—

सत्तमया[3] तप्परिही, णाणाविह-तरु-गणेहिं परियरिया[4] ।
एक्कारस - भेय - जुदा, बाहिरदो भणमि तब्भेदे[5] ॥१८२७॥

---

१. द. ब. क. ज. य. ठ. मूलदा । २. द. ब. हरिदालमही । ३. द. ब. क. ज. य. ठ. सत्तमया । ४. द. ब. य. परियाय । ५. द. ब. क. ज. य. ठ. तब्भेदो ।

अर्थ :—उस पर्वतकी सातवीं परिधि नाना प्रकारके वृक्ष-समूहोंसे व्याप्त है और बाहरसे ग्यारह प्रकारकी है। मैं उन भेदोंको कहता हूँ ॥१८२७॥

णामेण भद्दसालं, मणुसुत्तर - देव - णाग - रमणाइं।
भूदारमणं पंचम - भेदाइं भद्दसाल - वणे ॥१८२८॥

अर्थ :—भद्रशालवनमें नामसे भद्रशाल, मानुषोत्तर, देवरमण, नागरमण और भूतरमण ये पाँच वन हैं ॥१८२८॥

णंदण - पहुदीएसुं, णंदणमुवणंदणं[1] च सोमणसं।
उवसोमणसं पंडू, [2]उवपंडु - वणाणि दो - द्दो दु ॥१८२९॥

अर्थ :—नन्दनादिक वनोंमें नन्दन और उपनन्दन, सौमनस और उपसौमनस तथा पाण्डुक और उपपाण्डुक इसप्रकार दो-दो वन हैं ॥१८२९॥

मेरुके मूलभागादिककी वज्रादि-रूपता—

सो मूले वज्जमओ, एक्क - सहस्सं च जोयण-पमाणो।
मज्झे वर - रयणमओ, इगिसट्ठि - सहस्स - परिमाणो ॥१८३०॥

। १००० । ६१००० ।

उवरिम्मि कंचणमओ, अडतीस-सहस्स-जोयणाणं पि।
मंदर - सेलस्स - सिरे[3], पंडु - वणं णाम रमणिज्जं ॥१८३१॥

। ३८००० ।

अर्थ :—वह सुमेरुपर्वत मूलमें एक हजार (१०००) योजन प्रमाण वज्रमय, मध्यमें इकसठ हजार (६१०००) योजन प्रमाण उत्तम रत्नमय और ऊपर अड़तीस हजार (३८०००) योजन - प्रमाण स्वर्णमय है। इस मन्दर - पर्वतके शीश पर रमणीय पाण्डु नामक वन है ॥१८३०-१८३१॥

मेरु सम्बन्धी चार वन—

सोमणसं णाम वणं साणुपदेसेसु णंदणं तह य।
तत्थ चउत्थं चेट्ठदि, भूमीए भद्दसाल - वणं ॥१८३२॥

---

१. द. ब. णादणमुहणंदणं। २. ब. क. ठ. उवसंपडू। ३. द. ब. क. ज. य. ठ. सेलस्स सीमं।

अर्थ :—सौमनस तथा नन्दनवन मेरु-पर्वतके सानुप्रदेशोंमें और चौथा भद्रशालवन भूमि पर स्थित है ।।१८३२।।

मेरु-शिखरका विस्तार एवं परिधि—

जोयण - सहस्समेक्कं, मेरुगिरिंदस्स सिहर - वित्थारं ।
एक्कत्तीस - सयाणि, बासट्ठी समहिया य तप्परिही ।।१८३३।।

। १००० । ३१६२ ।

अर्थ :—मेरु महापर्वतके शिखरका विस्तार एक हजार (१०००) योजन और उसकी परिधि तीन हजार एकसौ बासठ योजनसे कुछ अधिक (३१६२[illegible] योजन) प्रमाण है ।।१८३३।।

मेरुशिखरस्थ पाण्डुक वनका वर्णन—

पंडु - वणे अइरम्मा, समंतदो होदि दिव्व - तड - वेदी ।
चरिअट्टालय[1]-विउला, णाणाविह-धय-वडेहि[2] संजुत्ता ।।१८३४।।

अर्थ :—पाण्डुवनमें चारों ओर मार्ग एवं अट्टालिकाओंसे विशाल और नाना प्रकारकी ध्वजा-पताकाओंसे संयुक्त अतिरमणीय दिव्य तट-वेदी है ।।१८३४।।

तीए तोरणदारे, जमल - कवाडा हवंति वज्जमया ।
विविह-वर-रयण-खचिदा, अकट्टिमा णिरुवमायारा ।।१८३५।।

अर्थ :—उस वेदीके तोरण-द्वारपर नाना प्रकारके उत्तम रत्नोंसे जटित, अनुपम आकार-वाले वज्रमयी अकृत्रिम युगल-कपाट (किवाड़) हैं ।।१८३५।।

धुव्वंत - धय - वडाया, रयणमया गोउराण पासादा ।
सुर-किण्णर-मिहुण-जुदा, बरिहिण[3]-पहुदीहि विविह वण-संडा ।।१८३६।।

अर्थ :—(पाण्डुक वनमें) फहराती हुई ध्वजा-पताकाओंसे युक्त गोपुरोंके रत्नमय प्रासाद सुर-किन्नर युगलोंसे युक्त हैं तथा मयूरादि पक्षियों सहित अनेक वन-खण्ड हैं ।।१८३६।।

उच्छेहो बे कोसा, वेदीए पण - सयाणि दंडाणं ।
वित्थारो भुवणत्तय - विम्हय - संभाव[4] - जणणीए ।।१८३७।।

। को २ । दं ५०० ।

---

१. द. ब. क. ज. य. बरिअट्टालय । २. द. वदेहिं । ३. द. पिरिहस, क. ज. य. ठ. परिहिस । ४. क. सुत्ताव, उ. ज. य. ठ. सत्ताव ।

अर्थ :—भुवनत्रयको विस्मित और लुब्ध करने वाली इस वेदीकी ऊँचाई दो कोस और विस्तार पाँचसौ (५००) धनुष प्रमाण है ।।१८३७।।

तीए[1] मज्झिमभागे, पंडू णामेण दिव्व - वण - संडो ।
सेलस्स चूलियाए, समंतदो दिण्ण - परिवेढो ।।१८३८।।

अर्थ :—उस वेदीके मध्यभागमें पर्वतकी चूलिकाको चारों ओरसे घेरा डाले हुए पाण्डु नामक दिव्य वन-खण्ड है ।।१८३८।।

कप्पूर-रुक्ख-पउरा, तमाल-हिंताल-ताल-कयलि-जुदा ।
लवली[2] - लवंग - ललिदा-दाडिम-पणसेहि[3] [4]संछण्णा ।।१८३९।।
सयवत्ति - मल्लि - साला - चंपय-णारंग-माहुलिंगेहिं ।
पुण्णाय - णाय - कुज्जय - असोय-पहुदीहि रमणिज्जा ।।१८४०।।
कोइल-कलयल-भरिदा, मोराणं विविह-कीडणेहि [5]जुदा ।
सुक[6]-रव - सद्दा - इण्णा, खेचर-सुर-मिहुण-कीडयरा ।।१८४१।।

अर्थ :—(ये पाण्डु नामक वनखण्ड) प्रचुर कर्पूर वृक्षोंसे संयुक्त, तमाल, हिंताल, ताल और कदली वृक्षोंसे युक्त, लवली एवं लवङ्गसे सुशोभित, दाडिम तथा पनसवृक्षोंसे आच्छादित, सप्तपत्री (सप्तच्छद), मल्लि, शाल, चम्पक, नारङ्ग, मातुलिङ्ग, पुन्नाग, नाग, कुब्जक और अशोक आदि वृक्षोंसे रमणीय, कोयलोंके कलकल शब्दसे भरे हुए मयूरोंकी विविध क्रीड़ाओंसे युक्त, तोतोंके शब्दोंसे शब्दायमान और विद्याधर एवं देवयुगलोंकी क्रीड़ाके स्थल हैं ।।१८३९-१८४१।।

पाण्डुक शिलाका वर्णन—

पंडु[7]-वणब्भंतरए, ईसाण - दिसाए होदि[8] पंडुसिला ।
तड[9]-वण - वेदी - जुत्ता, अद्धेंदु - सरिच्छ - संठाणा ।।१८४२।।

अर्थ :—पाण्डुवनके भीतर (वनखण्डकी) ईशान दिशामें तट-वनवेदीसे संयुक्त और अर्ध-चन्द्र सदृश आकारवाली पाण्डुकशिला है ।।१८४२।।

---

१ क. ज. य. तीसए। २. द. ब. क. ज. य. ठ. अवली। ३. द. ब. ज. ब. पनसेहिं, क. ठ. फलसेहिं। ४. द. ज य. ठ. संवण्णो, क. संवुण्णो। ५. क. ज. य. उ. जुदो। ६. द. ब. क. ठ. सुरकरिवर-सद्दण्णो। ७. द. ब. उ. पंडुवण, क. पंडुवण होदि पंडसिला, ज. य. पंडुवणं भरतरऐदाहेण पंडुसिला। ८. द. ब. उ. होदे। ९. क ज य. उ. तद।

पुव्वावरेसु जोयण - सद - दीहा दक्खिणुत्तरंसेसुं ।
पण्णासा बहुमज्झे, कम - हाणी तीए उभय - पासेसु ।।१८४३।।

अर्थ :—(यह पाण्डुक शिला) पूर्व-पश्चिममें सौ योजन लम्बी और दक्षिणोत्तर दिशागत बहु-मध्यभागमें पचास योजन विस्तार सहित है । (अर्धचन्द्राकार होनेसे) यह अपने मध्य भागसे दोनों पार्श्वोंकी ओर क्रमशः हानि को प्राप्त हुई है ।।१८४३।।

जोयण - अट्ठुच्छेहो[1], सव्वत्थं होदि[2] कणयमइया सा ।
सम-वट्टा उवरिम्मि य, वण - वेदी - पहुदि - संजुत्ता ।।१८४४।।

अर्थ :—सर्वत्र स्वर्णमयी वह पाण्डुक शिला आठ योजन ऊँची, ऊपर समवृत्ताकार और वन-वेदी आदिसे संयुक्त है ।।१८४४।।

चउ-जोयण-उच्छेहं, पण - सय - दीहं तदद्ध - वित्थारं ।
सग्गायणि - आइरिया, एवं भासंति पंडुसिलं ।।१८४५।।

। ४ । ५०० । २५० ।

पाठान्तरम् ।

अर्थ :—यह पाण्डुकशिला चार योजन ऊँची, पाँचसौ (५००) योजन लम्बी और इससे अर्ध (२५०) योजन प्रमाण विस्तार युक्त है । इसप्रकार सग्गायणी आचार्य निरूपण करते हैं ।।१८४५।।

पाठान्तर ।

तीए[3] बहुमज्झ-देसे[4], तुंगं[5] सीहासणं विविह - सोहं ।
सरसमय - तरणि - मंडल - संकास - फुरंत-किरणोघं ।।१८४६।।

अर्थ :—पाण्डुक शिलाके बहुमध्य स्थानमें शरत्कालीन सूर्य-मण्डलके समान फैलती हुई किरणोंके समूहसे अद्भुत शोभायमान सिंहासन है ।।१८४६।।

सिंहासणस्स दोसुं, पासेसुं दिव्व - रयण - रइदाइं ।
भद्दासणाइ णिब्भर - फुरंत - वर - किरण-णिवहाणि ।।१८४७।।

---

१. द. ब अद्धच्छेहो, क. अट्ठ उच्छेहो । २. द. ब. उ. होहि । ३. द. तीर । ४. ब. ज. क उ. बहुमज्झे । ५. द ब. क. ज. उ. तुंगा ।

अर्थ :—सिंहासनके दोनों पार्श्व-भागोंमें अत्यन्त प्रकाशमान उत्तम किरण-समूहसे संयुक्त एवं दिव्य रत्नोंसे रचे गये भद्रासन विद्यमान हैं ।।१८४७।।

पुह पुह पीढ-तयस्स य, उच्छेहा पण - सयाणि कोदंडा ।
तेत्तिय - मेत्तो मूलो, वासो सिहरे अ तस्सद्धं ।।१८४८।।

। ५०० । ५०० । २५० ।

अर्थ :—तीनों पीठोंकी पृथक्-पृथक् ऊँचाई पाँच सौ धनुष है । मूल विस्तार भी इतने ही (५००) धनुष है तथा शिखर पर पीठोंका विस्तार इससे आधा (२५० धनुष) है ।।१८४८।।

धवलादवत्त - जुत्ता, ते पीढा पायपीढ - सोहिल्ला ।
मंगल - दव्वेहि जुदा, चामर - घंटा - पयारेहिं ।।१८४९।।

अर्थ :— पादपीठोंसे शोभायमान वे पीठ धवल-छत्र एवं चामर घंटा आदि अनेक प्रकारके मङ्गल-द्रव्योंसे संयुक्त है ।।१८४९।।

सव्वे पुव्वाहिमुहा, पीढ - वरा तिहुवणस्स विम्हयरा ।
एक्क-मुह - एक्क - जीहो, को सक्कइ वण्णिदुं ताणि ।।१८५०।।

अर्थ :—पूर्वाभिमुख स्थित वे सब उत्तम पीठ तीनों लोकोंको विस्मित करनेवाले हैं । इन पीठोंका वर्णन करनेमें एक मुख और एक जिह्वावाला कौन समर्थ हो सकता है ? ।।१८५०।।

बाल-तीर्थंकरका जन्माभिषेक—

भरहक्खेत्ते जादं, तित्थयर - कुमारकं गहेदूणं[1] ।
सक्कप्पहुदी इंदा, णेंति विभूदीए विविहाए ।।१८५१।।

अर्थ :—सौधर्मादिक इन्द्र भरतक्षेत्रमें उत्पन्न हुए तीर्थंकर कुमारको ग्रहणकर विविध प्रकारकी विभूतिके साथ (मेरु पर्वतपर) ले जाते हैं ।।१८५१।।

मेरु - प्पदाहिणेणं, गच्छिय पंडू - सिलाए उवरिम्मि ।
मज्झिय - सिंहासणए, वइसाविय भत्ति - राएण ।।१८५२।।

अर्थ :— (वे इन्द्र) मेरु की प्रदक्षिणा करते हुए पाण्डुक शिलापर जाकर बीचके सिंहासन पर भक्तिराग पूर्वक (उन्हें) बैठाते हैं ।।१८५२।।

---

१. ज. य. उ. गहिदूण ।

दक्खिण - पीढे सक्को, ईसाणिंदो वि उत्तरा - पीढे ।
बइसिय अभिसेयाइं, कुव्वंति महाविसोहीए ।।१८५३।।

अर्थ :—सौधर्मेन्द्र दक्षिण पीठ पर और ईशानेन्द्र उत्तम पीठ पर बैठकर महती विशुद्धिसे अभिषेक करते हैं ।।१८५३।।

पंडूकंबल णामा, रजदमई सिहि-दिसा-मुहम्मि सिला ।
उत्तर - दक्खिण - दीहा, पुव्वावर - भाय - विच्छिण्णा ।।१८५४।।

अर्थ :—आग्नेय-दिशामें उत्तर-दक्षिण दीर्घ (लम्बी) और पूर्व-पश्चिम भागमें विस्तीर्ण (चौड़ी) रजतमयी पाण्डुकम्बला नामक शिला स्थित है ।।१८५४।।

उच्छेह - वास - पहुदी, पंडुसिलाए जहा तहा तीए ।
अवर - विदेह - जिणाणं, अभिसेयं तत्थ कुव्वंति ।।१८५५।।

अर्थ :—ऊँचाई एवं विस्तारादिक जिस प्रकार पाण्डुकशिलाका है उसीप्रकार उस (पाण्डुकम्बला) शिलाका भी है । इस शिलाके ऊपर इन्द्र अपर (पश्चिम) विदेहके तीर्थंकरोंका अभिषेक करते हैं ।।१८५५।।

णइरिदि-दिसा-विभागे, रत्तसिला णाम होदि कणयमई ।
पुव्वावरेसु दीहं, वित्थारो दक्खिणुत्तरे तीए ।।१८५६।।

अर्थ :—नैऋत्य-दिशाभागमें रक्तशिला नामक स्वर्णमयी शिला है, जो पूर्व-पश्चिम दीर्घ और उत्तर-दक्षिण विस्तृत है ।।१८५६।।

पंडुसिला - सारिच्छा, तीए वित्थार - उदय - पहुदीओ ।
एरावदय - जिणाणं, अभिसेयं तत्थ कुव्वंति ।।१८५७।।

अर्थ :—इसका विस्तार एवं ऊँचाई आदि पाण्डुकशिलाके सदृश है । यहाँ पर इन्द्र ऐरावत क्षेत्रमें उत्पन्न हुए तीर्थंकरोंका अभिषेक करते हैं ।।१८५७।।

पवण - दिसाए होदि हु, रुहिरमई रत्तकम्बला णाम ।
उत्तर - दक्खिण-दीहा, पुव्वावर - भाग - विच्छिण्णा ।।१८५८।।

अर्थ :— वायव्य दिशामें उत्तर-दक्षिण दीर्घ और पूर्व-पश्चिम भागमें विस्तीर्ण रक्तकम्बला नामक रुधिरमयी (लालमणिमयी) शिला है ।।१८५८।।

पंडुसिलाप्र समाणा, विस्थारुच्छेह - पहुदिया तीए ।
पुव्व - विदेह - जिणाणं, अभिसेयं तत्थ कुव्वंति ।।१८५९।।

अर्थ :—इसका विस्तार और ऊँचाई आदिक पाण्डुक-शिलाके सदृश है। यहाँ पर इन्द्र पूर्वविदेहमें उत्पन्न हुए तीर्थंकरोंका अभिषेक करते हैं ।।१८५९।।
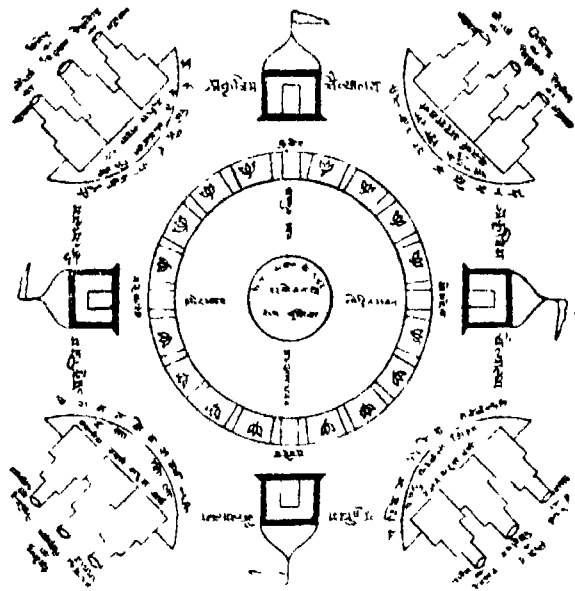
पाण्डुकवनस्थ प्रासादों आदिका वर्णन—

पुव्व-दिसाए चूलिय - पासे पंडुग - वणम्मि पासादो ।
लोहिद - णामो वट्टो, वास - जुदो[1] तीस-[2]कोसाणि ।।१८६०।।

। ३० ।

अर्थ :—पाण्डुक-वनमें चूलिकाके पास पूर्व-दिशामें तीस कोस प्रमाण विस्तारवाला लोहित नामक वृत्ताकार प्रासाद है ।।१८६०।।

पण्णास[3]-कोस-उदओ, तप्परिही णउदि-कोस-परिमाणा ।
विविह - वर - रयण-खचिदो, णाणाविह-धूव-गंधड्ढो ।।१८६१।।

---

१. द. ब क. ज. य. उ. जुदा। २. द. ब. क. ज. य. उ. कोसाणं। ३. द. ज. य. पुण्णासे।

अर्थ :—विविध उत्तम रत्नोंसे खचित और नाना प्रकारके धूपोंके गन्धसे व्याप्त यह पूर्व-मुख प्रासाद पचास कोस ऊँचा है तथा उसकी परिधि नब्बे (९०) कोस प्रमाण है ।।१८६१।।

सयणाणि आसणाणि, अमलाणि णीरजाणि [1]मउगाणि ।
वर - पास - संजुदाणि, पउराणि तत्थ चेट्ठंति ।।१८६२।।

अर्थ :—(उस प्रासादमें) उत्तम पार्श्वभागोंसे युक्त, स्वच्छ, रज-विहीन एवं मृदुल शय्यायें तथा आसन प्रचुर परिमाणमें हैं ।।१८६२।।

तम्मंदिर-बहुमज्झे, कीडण-सेलो[2] विचित्त-रयणमओ ।
सक्कस्स लोयपालो, सोमो कीडेदि पुव्व - दिस-णाहो ।।१८६३।।

अर्थ :—उस भवनके बहुमध्य-भागमें अद्भुत रत्नमय एक क्रीड़ा-शैल है। इस पर्वतपर पूर्व-दिशाका स्वामी सौधर्म-इन्द्रका सोम नामक लोकपाल क्रीड़ा करता है ।।१८६३।।

आउट्ठ - कोडिआहिं[3], कप्पज-इत्थीहि परिउदो सोमो ।
अड्डिय - पण - पल्लाऊ, रमदि सयंपह - विमाण-पहू ।।१८६४।।

। ३५००००० । पल्ल $\frac{५}{२}$ ।

अर्थ :—अढ़ाई पल्यप्रमाण आयुवाला, स्वयम्प्रभ विमानका स्वामी, सोम नामक लोकपाल साढ़े तीन करोड़ प्रमाण कल्पवासिनी स्त्रियोंसे परिवृत होता हुआ यहाँ रमण करता है ।।१८६४।।

छल्लक्खा छासट्ठी, सहस्सया छस्सयाइ छासट्ठी ।
सोमस्स विमाणाइं, सयंपहे होंति परिवारा ।।१८६५।।

। ६६६६६६ ।

अर्थ :—स्वयम्प्रभ विमानमें सोम लोकपालके विमानोंका परिवार छह लाख, छयासठ हजार छहसौ छयासठ संख्या प्रमाण है ।।१८६५।।

वाहण-वत्थाभरणा, कुसुमा गंधा विमाण - सयणाइं ।
सोमस्स समग्गाइं, हवंति [4]अविरत्त - वण्णाणि ।।१८६६।।

---

१ ब. मउणाणि, क. पउगाणि, ज य. पउणाणि । २. द. ब. क. ज. य. उ. सेला । ३. क. कोडिआहिं, ब. क. ज. य. उ. कोडितार्हि । ४ द. ब. उ. हति अविरित्त, क. ज. य. हवंति अविरित्त ।

अर्थ :— सोम लोकपालके वाहन, वस्त्र, आभरण, कुसुम, गन्धचूर्ण, विमान और शयनादिक सब अत्यन्त (गहरे) रक्तवर्णके होते हैं ॥१८६६॥

पंडुग-वणस्स मज्झे, चूलिय-पासम्मि दक्खिण-विभागे ।
अंजण - णामो भवणो, वासप्पहुदीहि पुव्वं व ॥१८६७॥

अर्थ :—पाण्डुकवनके मध्यमें चूलिकाके पास दक्षिण दिशाकी ओर अञ्जन नामक भवन है । इसका विस्तारादिक पूर्वोक्त भवनके ही सदृश है ॥१८६७॥

जम-णाम-लोयपालो[1], अंजण - भवणस्स चेट्ठदे मज्झे ।
किण्हंबर-पहुदि-जुदो[2], अरिट्ठ - णामे पहू विमाणम्मि ॥१८६८॥

अर्थ :—अञ्जन भवनके मध्यमें अरिष्ट नामक विमानका प्रभु यम नामक लोकपाल काले रंगकी वस्त्रादिक सामग्री सहित रहता है ॥१८६८॥

छल्लक्खा छासट्ठी, सहस्सया छस्सयाइ छासट्ठी ।
तत्थारिट्ठ - विमाणे, होंति विमाणाणि परिवारा ॥१८६९॥

। ६६६६६६ ।

अर्थ :—वहाँ अरिष्ट विमानके परिवार-विमान छह लाख छयासठ हजार छहसौ छयासठ है ॥१८६९॥

आउट्ठ-कोडि-संखा, कप्पज - इत्थीओ णिरुवमायारा ।
होंति जमस्स पियाओ, अड्ढिय-पण - पल्ल - आउस्स[3] ॥१८७०॥

३५००००००। प $\frac{५}{२}$ ।

अर्थ :—साढ़े तीन करोड़ (३५००००००) संख्या प्रमाण अनुपम आकृतिवाली कल्पवासिनी देवियाँ यम नामक लोकपालकी प्रियायें हैं । इस लोकपालकी आयु अर्धित पाँच (अढ़ाई) पल्य-प्रमाण होती है ॥१८७०॥

पंडुग-वणस्स मज्झे, चूलिय - पासम्मि पच्छिम-विभाए ।
हारिद्दो पासादो वास - प्पहुदीहि पुव्वं वा ॥१८७१॥

---

१. द. ब. क. ज. य उ. लोयपाला । २ द. ब. क. ज. य. उ. जुदा । ३. द. ब. क. ज. य. उ. पाऊ तो ।

अर्थ :—पाण्डुकवनके मध्यमें चूलिकाके पास पश्चिम-दिशामें पूर्वोक्त भवनके सदृश व्यासादि सहित हारिद्र नामक प्रासाद है ।।१८७१।।

वरुणो त्ति लोयपालो, पासादे तत्थ चेट्ठदे णिच्चं ।
किंचूण - ति - पल्लाऊ, जलपह-णामे पहू बिमाणम्मि ।।१८७२।।

अर्थ :—उस प्रासादमें सदैव कुछ कम तीन पल्य प्रमाण आयुका धारक जलप्रभ नामक विमानका प्रभु वरुण नामक लोकपाल रहता है ।।१८७२।।

छल्लक्खा छावट्ठी, सहस्सया छस्सयाणि छासट्ठी ।
परिवार - विमाणाइं, होंति जलप्पह - विमाणस्स ।।१८७३।।

। ६६६६६६ ।

अर्थ :—जलप्रभ विमानके परिवार-विमान छह लाख छयासठ हजार छहसौ छयासठ संख्या प्रमाण हैं ।।१८७३।।

वाहण-वत्थ-विभूसण-कुसुम-प्पहुदीणि हेम - वण्णाणि ।
वरुणस्स होंति कप्पज - पियाउ आउट्ठ - कोडीओ ।।१८७४।।

। ३५०००००० ।

अर्थ :—वरुण लोकपालके वाहन, वस्त्र, भूषण और कुसुमादिक सभी पदार्थ स्वर्ण (सुनहले) वर्णवाले होते है। इसके साढे तीन करोड़ (३५००००००) कल्पवासिनी प्रियायें होती हैं ।।१८७४।।

तव्वण - मज्झे चूलिय - पासम्मि य उत्तरे विभायम्मि ।
पंडुग - णामो णिलओ, वास - प्पहुदीहि पुव्वं वा ।।१८७५।।

अर्थ :—उस पाण्डुक वनके मध्यमें चूलिकाके पास उत्तर-विभागमें पूर्वोक्त भवनके सदृश विस्तारादिवाला पाण्डुक नामक प्रासाद है ।।१८७५।।

तस्सि कुबेर - णामा, पासाद - [1]वरम्मि चेट्ठदे देवो ।
किंचूण - ति - पल्लाऊ, सामी वग्गुप्पहे विमाणम्मि ।।१८७६।।

अर्थ :—उस उत्तम प्रासादमें कुछ कम तीन पल्यप्रमाण आयुका धारक एवं वल्गुप्रभ विमानका प्रभु कुबेर नामक देव रहता है ।।१८७६।।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. वणम्मि ।

छल्लक्खा छावट्ठी, सहस्सया छस्सयाइ छासट्ठी।
परिवार - विमाणाइं, वग्गुपहे वर - विमाणम्मि ॥१८७७॥

। ६६६६६६ ।

अर्थ :—वल्गुप्रभ नामक उत्तम विमानके परिवार-विमान छह लाख छयासठ हजार छह सौ छयासठ संख्या प्रमाण हैं ॥१८७७॥

वाहण-वत्थ-प्पहुवी, धवला[1] उत्तर - दिसाहि-णाहस्स।
कप्पज - वर - इत्थीओ, पियाओ आउट्ठ - कोडीओ ॥१८७८॥

। ३५००००००।

अर्थ :—उत्तर-दिशाके स्वामी उस कुबेरके वाहन-वस्त्रादिक धवल होते हैं और साढ़े तीन करोड़ (३५००००००) कल्पज उत्तम स्त्रियाँ उसकी प्रियायें होती हैं ॥१८७८॥

पाण्डुक वनस्थ जिनेन्द्र-प्रासाद वर्णन—

तव्वण - मज्झे चूलिय - पुव्व-दिसाए जिणिंद-पासादो।
उत्तर - दक्खिण - दीहो, कोस - सयं पंचहत्तरी उदओ ॥१८७९॥

। कोस १०० । ७५ ।

अर्थ :—उस वनके मध्यमें चूलिकासे पूर्वकी ओर सौ कोस-प्रमाण उत्तर-दक्षिण-दीर्घ और पचहत्तर कोस-प्रमाण ऊँचा जिनेन्द्र-प्रासाद है ॥१८७९॥

पुव्वावर - भागेसुं, कोसा पण्णास तत्थ वित्थारो।
कोसद्धं अवगाढो, अकट्टिमो णिहण - परिहीणो ॥१८८०॥

। को ५० । गा ½ ।

अर्थ :—पचासकोस विस्तृत और अर्धकोस अवगाह वाले ये अकृत्रिम एवं अविनाशी (अनादिनिधन) जिनेन्द्र-प्रासाद पूर्व-पश्चिम-भागोंमें हैं ॥१८८०॥

एसो पुव्वाहिमुहो, चउ - जोयण जेट्ठ-दार-उच्छेहो।
दो जोयण तव्वासो, वास - समाणो पवेसो य ॥१८८१॥

। ४ । २ । २ ।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. धवलं ।

अर्थ :—यह जिन-भवन पूर्वाभिमुख है। इसके ज्येष्ठ द्वारकी ऊँचाई चार योजन, विस्तार दो योजन और प्रवेश भी विस्तारके सदृश ही दो योजन प्रमाण है ॥१८८१॥

उत्तर-दक्खिण-भागे, खुल्लय-दाराणि दोण्णि चेट्ठंति ।
तद्दल - परिमाणाणि, वर - तोरण - थंभ - जुत्ताणि ॥१८८२॥

। २ । १ । १ ।

अर्थ :—उत्तर-दक्षिण-भागमें दो क्षुद्र (लघु) द्वार स्थित हैं, जो ज्येष्ठ द्वारकी अपेक्षा अर्धभाग-प्रमाण ऊँचाई आदि सहित और उत्तम तोरण-स्तम्भोंसे युक्त हैं ॥१८८२॥

संखेंदु-कुंद-धवलो, मणि-किरण-कलावणासिय-तमोघो ।
जिणवर-पासाद-वरो, तिहुवण - तिलओ त्ति णामेणं ॥१८८३॥

अर्थ :—शङ्ख, चन्द्रमा एवं कुन्दपुष्पके सदृश धवल और मणियोंके किरण-कलापसे अन्धकार समूहको नष्ट करनेवाला यह उत्तम जिनेन्द्र-प्रासाद 'त्रिभुवन-तिलक' नामसे विख्यात है ॥१८८३॥

दार-सरिच्छुस्सेहा, वज्ज-कवाडा विचित्त - वित्थिण्णा ।
जमला तेसु समुज्जल, मरगय - कक्केयणादि जुदा ॥१८८४॥

अर्थ :—इन द्वारोंमें द्वारोंके सदृश ऊँचाई वाले, विचित्र एवं विस्तीर्ण सर्व युगल वज्र-कपाट अति-उज्ज्वल मरकत तथा कर्केतनादि मणियोंसे संयुक्त हैं ॥१८८४॥

विम्हयकर - रूवाहिं[1], णाणाविह-सालभंजियाहिं जुदा ।
पण - वण्ण - रयण - रइदा, थंभा [2]तस्सिं विराजंति ॥१८८५॥

अर्थ :—उस जिनेन्द्रप्रासादमें विस्मय-जनक रूपवाली नानाप्रकारकी शालभञ्जिकाओंसे युक्त और पाँच वर्णके रत्नोंसे रचे गये स्तम्भ विराजमान हैं ॥१८८५॥

भित्तीओ विविहाओ, णिम्मल-वर-फलिह[3]-रयण-रइदाओ ।
चित्तेहिं[4] विचित्तेहिं, विम्हय - जणणेहिं जुत्ताओ ॥१८८६॥

अर्थ :—निर्मल एवं उत्तम स्फटिक-रत्नोंसे रची गई विविध प्रकारकी भित्तियाँ विचित्र और विस्मय जनक चित्रोंसे युक्त हैं ॥१८८६॥

---

१. द. ब. क. ज. उ. रूवाइं, य. रूवावे। २. द. तरिसें, ब. क. ज. य. उ. तरिसे। ३. क. ज. उ. पलिह, य. पविह। ४. द. ब. ज. उ. चेत्तेहिं।

थंभाण मज्झ - भूमी, समंतदो पंच - वण्ण - रयणमई ।
तणु - मण - णयणाणंदण - संजणणी णिम्मला विरजा ॥१८८७॥

अर्थ :— खम्भोंकी मध्यभूमि चारों ओर पाँच वर्णोंके रत्नोंसे निर्मित, शरीर, मन एवं नेत्रोंको आनन्ददायक, निर्मल और धूलिसे रहित है ॥१८८७॥

बहुविह - विदाणएहिं, मुत्ताहल - दाम - चामर जुदेहिं ।
वर - रयण - भूसणेहिं, संजुत्तो सो जिणिंद - पासादो ॥१८८८॥

अर्थ :—वह जिनेन्द्र-प्रासाद मोतियोंकी मालाओं तथा चामरोंसे युक्त है एवं उत्तम रत्नोंसे विभूषित बहुत प्रकारके वितानोंसे संयुक्त है ॥१८८८॥

गर्भ-गृहमें स्थित देवच्छन्दका वर्णन—

वसहीए [1]गब्भगिहे, देवच्छंदो दु - जोयणुच्छेहो ।
इगि - जोयण - वित्थारो, चउ - जोयण-दीह-संजुत्तो ॥१८८९॥

। जो २ । १ । ४ ।

अर्थ :—वसतिकामें गर्भगृहके भीतर दो योजन ऊँचा, एक योजन विस्तारवाला और चार योजन प्रमाण लम्बाईसे संयुक्त देवच्छन्द है ॥१८८९॥

सोलस - कोसुच्छेहं, समचउरस्सं तदद्ध - वित्थारं ।
लोयविणिच्छय - कत्ता, देवच्छंदं परूवेइ[2] ॥१८९०॥

। को १६ । ८ ।

पाठान्तरम् ।

अर्थ :—लोकविनिश्चयके कर्ता देवच्छन्दको समचतुष्कोण, सोलह कोस ऊँचा और इससे आधे (८ कोस) विस्तारसे संयुक्त बतलाते हैं ॥१८९०॥

पाठान्तर ।

लंबंत - कुसुम - दामो, पारावय-मोर-कंठ-वण्ण-णिहो ।
मरगय - पवाल - वण्णो, कक्केयण - इंदणीलमओ ॥१८९१॥
चोसट्ठ - कमल - मालो, चामर-घंटा-पयार-रमणिज्जो ।
गोसीर - मलय - चंदण - कालागरु - धूव - गंधड्ढो ॥१८९२॥

---

१. द. ब. ज. य. उ. गब्भगिहो, क. गब्भगेहो । २ द. ब. क. ज. उ. परूवेउ ।

भिंगार-कलस-दप्पण-णाणाविह-धय-वडेहिं[1] सोहिल्लो ।
देवच्छंदो रम्मो, जलंत - वर - रयण - दीव - जुदो ।।१८८३।।

अर्थ :—लटकती हुई पुष्पमालाओं सहित, कबूतर एवं मोरके कण्ठगत वर्ण सदृश, मरकत एवं प्रवाल जैसे वर्णसे संयुक्त, कर्केतन एवं इन्द्रनील मणियोंसे निर्मित, चौंसठ कमल-मालाओंसे शोभायमान, नानाप्रकारके चँवर एवं घण्टाओंसे रमणीय, गोशीर, मलयचन्दन एवं कालागरु धूपके गन्धसे व्याप्त, झारी, कलश, दर्पण तथा नाना प्रकारकी ध्वजा-पताकाओंसे सुशोभित और देदीप्यमान उत्तम रत्नदीपकोंसे युक्त रमणीय देवच्छन्द है ।।१८८१-१८८३।।

सिंहासन, जिनेन्द्र-प्रतिमाओंका माप, प्रमाण एवं स्वरूप—

अट्ठुत्तर - सय-संखा, जिणवर-पासाद-मज्झ-भागम्मि ।
सिंहासणाणि तुंगा[2], सपायपीढा य [3]फलिहमया ।।१८८४।।

अर्थ :—जिनेन्द्र-प्रासादोंके मध्यभागमें पाद-पीठों सहित स्फटिक-मणिमय एकसौ आठ उन्नत सिंहासन हैं ।।१८८४।।

सिंहासणाण[4] उवरिं, जिण-पडिमाओ अणाइ-णिहणाओ ।
अट्ठुत्तर - सय - संखा, पण - सय - चावाणि तुंगाओ ।।१८८५।।

अर्थ :—सिंहासनोंके ऊपर पाँचसौ धनुष - प्रमाण ऊँची एकसौ आठ अनादि-निधन जिन-प्रतिमाएँ विराजमान हैं ।।१८८५।।

भिण्णिद - णीलमणिमय - कुंतल-भुवग्गदिण्ण-सोहाओ ।
फलिहिंद[5]- णील - णिम्मिद-धवलासिद-णेत्त-जुयलाओ ।।१८८६।।
वज्जमय - दंतपंती - पहाओ पल्लव-सरिच्छ-अधराओ ।
हीरमय - वर - णहाओ, पउमारुण - पाणि-चरणाओ ।।१८८७।।
अट्ठब्भहिय - सहस्स - प्पमाण-वंजण-समूह-सहिदाओ ।
बत्तीस - लक्खणेहिं, जुत्ताओ जिणेस - पडिमाओ ।।१८८८।।

अर्थ :—ये जिनेन्द्र-प्रतिमाएँ विभिन्न इन्द्रनीलमणिमय कुन्तल तथा भ्रुकुटियोंके अग्रभागसे शोभाको प्रदान करने वाली, स्फटिकमणि एवं इन्द्रनीलमणिसे निर्मित धवल और कृष्ण नेत्र-युगल

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. ठ. वलेहिं । २. द. ब. क. ज. य. उ. ठ तुंगो । ३. द. क. ज. य. उ. ठ. पलिह । ४. द. ब. क. ज. य. उ. ठ. सिंहासणाणि । ५. द. क. ज. य. पलिंहिदणी, ठ. उ. पलिंहिदणी ।

सहित, वज्रमय दन्तपंक्तिकी प्रभासे संयुक्त, पल्लव सदृश अधरोष्ठसे सुशोभित, हीरे सदृश उत्तम नखोंसे विभूषित, कमल सदृश लाल हाथ-पैरोंसे विशिष्ट एक हजार आठ व्यञ्जन-समूहों और बत्तीस लक्षणोंसे युक्त हैं ।।१८९६-१८९८।।

जीहा-सहस्स - जुग-जुद-धरणिंद-सहस्स-कोडि-कोडीओ ।
ताणं ण वण्णणेसु, सक्काओ माणुसाण का सत्ती ।।१८९९।।

अर्थ :—जब सहस्र युगलोंसे युक्त धरणेन्द्रों की सहस्रों, कोड़ाकोड़ी जिह्वाएँ भी उन प्रतिमाओंका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हो सकतीं, तब मनुष्योंकी तो शक्ति ही क्या है ।।१८९९।।

पत्तेक्कं सव्वाणं, चउसट्ठी देव - मिहुण - पडिमाओ ।
वर - चामर - हत्थाओ, सोहंति जिणिंद - पडिमाणं ।।१९००।।

अर्थ :—सब जिनेन्द्र-प्रतिमाओंमेंसे प्रत्येक प्रतिमाके समीप, हाथमें उत्तम चँवरोंको लिए हुए चौंसठ देवयुगलोंकी प्रतिमाएँ शोभायमान हैं ।।१९००।।

छत्तत्तयादि - जुत्ता, पलियंकासण - समण्णिदा णिच्चं ।
समचउरस्सायारा, जयंतु जिणणाह - पडिमाओ ।।१९०१।।

अर्थ :—तीन छत्रादि सहित, पल्यङ्कासन समन्वित और समचतुरस्र आकारवाली वे जिननाथ प्रतिमाएँ नित्य जयवन्त हैं ।।१९०१।।

खेयर - सुररायेहिं, भत्तीए णमिय - चरण-जुगलाओ ।
बहुविह - विभूसिदाओ, जिण - पडिमाओ णमस्सामि ।।१९०२।।

अर्थ :—जिनके चरण-युगलोंको विद्याधर एवं देवेन्द्र भी भक्तिसे नमस्कार करते हैं, बहुत प्रकारसे विभूषित उन जिन-प्रतिमाओंको मैं नमस्कार करता हूँ ।।१९०२।।

ते सव्वे उवयरणा, घंटा - पहुदीओ तह य दिव्वाणि ।
मंगल - दव्वाणि पुढं, जिणिंद - पासेसु रेहंति ।।१९०३।।

अर्थ :—घण्टा आदि वे सब उपकरण तथा दिव्य मङ्गल-द्रव्य पृथक्-पृथक् जिनेन्द्र-प्रतिमा के पासमें सुशोभित होते हैं ।।१९०३।।

अष्ट-मङ्गल द्रव्य—

भिंगार-कलस-दप्पण-चामर-धय-वियण-छत्त - सुपइट्ठा ।
अट्ठुत्तर - सय - संखा, पत्तेक्कं मंगला तेसुं ।।१९०४।।

अर्थ :—भृङ्गार, कलश, दर्पण, चँवर, ध्वजा, बीजना, छत्र और सुप्रतिष्ठ (ठोना) ये आठ मङ्गल द्रव्य हैं। इनमेंसे वहाँ प्रत्येक एकसौ आठ-एकसौ आठ होते हैं ॥१९०४॥
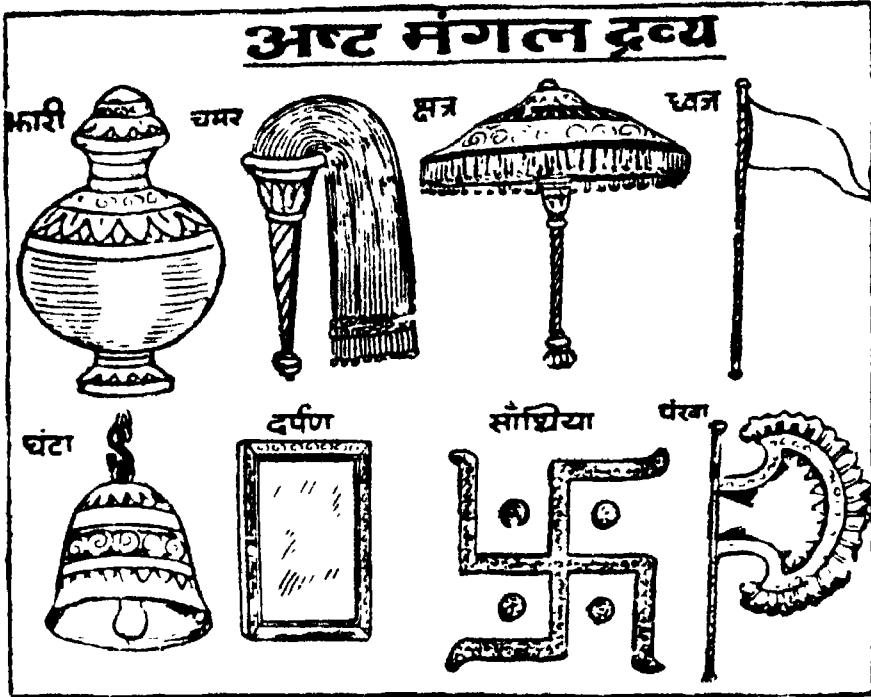
यक्षादिसे युक्त जिनेन्द्रप्रतिमाएँ—

सिरिसुद-देवीण तहा[1], [2]सव्वाण्ह-सणक्कुमार-जक्खाणं ।
रूवाणि पत्तेक्कं, पडिमा - वर - रयण - रइदाणि[3] ॥१९०५॥

अर्थ :—प्रत्येक प्रतिमा उत्तम रत्नादिकोंसे रचित है तथा श्रीदेवी, श्रुतदेवी तथा सर्वाह्ण एवं सनत्कुमार यक्षोंकी मूर्तियोंसे युक्त है ॥१९०५॥

देवच्छन्द एवं ज्येष्ठद्वार आदिकी शोभा सामग्री—

देवच्छंदस्स पुरो, णाणाविह - रयण - कुसुम-मालाओ ।
फुरिदक्किरण[4] - कलाओ, लंबंताओ[5] विरायंते ॥१९०६॥

---

१. द. ब. क. ज य. उ. ठ. सहा। २. द. ब. क. ज. उ. य. ठ. सव्वाण। ३ क. ज. य. उ. रयदाणो, क. रयदाणि। ४. द. ज य. पुरिदक्किरणवलीओ, क. पुरिदकिरणकिलाओ, उ. ठ. पुरिदकिरण कलाओ। ५. द. ब. क ज. य. ठ उ. अब्भनाओ।

अर्थ :—देवच्छन्दके सम्मुख नाना प्रकारके रत्नों और पुष्पोंकी मालायें प्रकाशमान किरण-समूह सहित लटकती हुई विराजमान हैं ॥१९०६॥

बत्तीस-सहस्साणि, कंचण-रजदेहि[1] णिम्मिदा विउला ।
सोहंति पुण्ण-कलसा, खचिदा वर - रयण - णियरेहिं ॥१९०७॥

। ३२००० ।

अर्थ :—स्वर्ण एवं चाँदीसे निर्मित और उत्तम रत्नसमूहोंसे खचित बत्तीस हजार (३२०००) प्रमाण विशाल एवं पवित्र कलश सुशोभित हैं ॥१९०७॥

चउवीस-सहस्साणि, धूव-घडा कणय-रजद[2]-णिम्मिविदा ।
कप्पूरागुरु - चंदण - पहुदि - समुद्धंत - धूव - गंधड्ढा ॥१९०८॥

। २४००० ।

अर्थ :—कर्पूर, अगुरु और चन्दनादिकसे उत्पन्न हुई धूपकी गन्धसे व्याप्त और स्वर्ण एवं चाँदीसे निर्मित चौबीस हजार (२४०००) धूप-घट हैं ॥१९०८॥

भिंगार-रयण-दप्पण-बुब्बुद[3]-वर-चमर-चक्क-कय-सोहं[4] ।
घंटा - पडाय[5] - पउरं, जिणिंद - भवणं [6]णिरुवमाणं ॥१९०९॥

अर्थ :—झारी, रत्नदर्पण, बुद्बुद, उत्तम चमर और चक्रसे शोभायमान तथा प्रचुर घण्टा और पताकाओंसे युक्त वह जिनेन्द्र भवन अनुपम है ॥१९०९॥

जिण - पासादस्स पुरो, जेट्ठा - दारस्स दोसु पासेसुं ।
पुह चत्तारि - सहस्सा, लंबंते[7] रयण - मालाओ ॥१९१०॥

। ४००० ।

अर्थ —जिन-प्रासादके सम्मुख ज्येष्ठ द्वारके दोनों पार्श्वभागोंमें पृथक्-पृथक् चार हजार (४०००) रत्नमालाएँ लटकती हैं ॥१९१०॥

---

१. द. ज. य. रउदेहिं, ब. क. ठ. उ. रइदेहिं । २. द. रजबि । ३. द. बवुद । ४. द. क. ज ठ. य. सोहो । ५. द. ब. क. ज. य. उ. ठ. पिदाय । ६. द. ब. क. ज. य. उ. ठ. निरूबमाणाओ । ७. द. ब. क. ज. य. उ. ठ. अब्भंते ।

ताणं पि अंतरेसुं, अकट्टिमाओ [1]फुरंत - किरणाओ ।
बारस - सहस्स - संखा, लंबंते[2] कणय - मालाओ ॥१९११॥

। १२००० ।

अर्थ :—इनके भी बीचमें प्रकाशमान किरणों सहित बारह-हजार अकृत्रिम स्वर्णमालाएँ लटकती हैं ॥१९११॥

अट्ठट्ठ - सहस्साणि, धूव - घडा दार - अग्गभूमीसुं ।
अट्ठट्ठ - सहस्साओ, ताण पुरे कणय - मालाओ ॥१९१२॥

। धू ८००० । ८००० । मा ८००० । ८००० ।

अर्थ :—द्वारकी अग्र-भूमियोंमे आठ-आठ हजार धूप-घट और उन धूप-घटोंके आगे आठ-आठ हजार स्वर्ण-मालाएँ हैं ॥१९१२॥

पुह खुल्लय - दारेसुं, ताणद्धं होंति रयण-मालाओ ।
कंचण - मालाओ तह, धूव - घडा कणय - मालाओ ॥१९१३॥

अर्थ :—लघु-द्वारोंमे पृथक्-पृथक् इससे आधी रत्नमालाएँ, कञ्चन-मालाएँ, धूप-घट तथा स्वर्ण-मालाएँ हैं ॥१९१३॥

चउवीस-सहस्साणि, जिणपुर-पुट्ठीए कणय - मालाओ ।
ताणं च अंतरेसुं, अट्ठ - सहस्साणि रयण - मालाओ ॥१९१४॥

अर्थ :—जिनपुरके पृष्ठ भागमें चौबीस हजार कनक (स्वर्ण) मालाएँ और इनके बीचमें आठ हजार रत्नमालाएँ हैं ॥१९१४॥

मुख-मण्डपका वर्णन—

मुह-मंडओ[3] य रम्मो, जिणवर-भवणस्स अग्ग-भागम्मि ।
सोलस - कोसुच्छेहो, सयं च पण्णास - दीह - वासाणि ॥१९१५॥

---

१. द. क. ज. य. उ. ठ. पुरंद । २. द. ब. क. ज. य. उ. ठ. अच्छंते । ३. द. ब. क. ज. य. ठ. उ. मुहमंडवेहिं ।

कोसद्धो अवगाढो[1], णाणा-वर[2]-रयण-णियर-णिम्मविदो।
धुव्वंत - धय - वडाओ, किं बहुणा सो णिरुवमाणो ॥१६१६॥

अर्थ :—जिनेन्द्र भवनके अग्रभागमें सोलह कोस ऊँचा, सौ कोस लम्बा और पचास कोस-प्रमाण विस्तार युक्त रमणीय मुखमण्डप है, जो आधा कोस अवगाहसे युक्त, नाना प्रकारके उत्तम रत्न-समूहोंसे निर्मित और फहराती हुई ध्वजा-पताकाओं सहित है। बहुत वर्णनसे क्या, वह मण्डप निरुपम है ॥१६१५-१६१६॥

अवलोकनादिमंडप एवं सभापुरादिका प्रमाण—

मुह-मंडवस्स पुरदो, अवलोयण - मंडओ परम-रम्मो।
अहिया सोलस-कोसा, उदओ रुंदो[3] सयं - सयं दीहं[4] ॥१६१७॥

अर्थ :—मुख-मण्डपके आगे सोलह कोससे अधिक ऊँचा, सौ कोस विस्तृत और सौ कोस लम्बा परम-रमणीय अवलोकन-मण्डप है ॥१६१७॥

णिय - जोग्गुच्छेह - जुदो, तप्पुरदो चेट्ठदे अहिट्ठाणो[5]।
कोसासीदी वासो, तेत्तिय - मेत्तस्स दीहत्तं ॥१६१८॥

। ८० ।

अर्थ :—उसके आगे अपने योग्य ऊँचाईसे युक्त अधिष्ठान स्थित है। इसका विस्तार अस्सी कोस है और लम्बाई भी इतनी (८० कोस) ही है ॥१६१८॥

तस्स बहु - मज्झ - देसे, सभापुरं दिव्व-रयण-वर-रइदं।
अहिया सोलस उदओ, कोसा चउसट्ठि दीह - वासाणि ॥१६१९॥

। १६ । ६४ । ६४ ।

अर्थ :—उसके बहुमध्यभागमें उत्तम दिव्य रत्नोंसे रचा गया सभापुर है, जिसकी ऊँचाई सोलह कोससे अधिक और लम्बाई एवं विस्तार चौंसठ कोस प्रमाण है ॥१६१९॥

पीठका वर्णन—

सीहासण-भद्दासण-वेत्तासण-पहुदि - विविह - पीढाणि।
वर - रयण - णिम्मिदाणि, सभापुरे परम - रम्माणि ॥१६२०॥

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. ठ. अगाढो। २. ज. य. विह। ३. द. ब. क. ज. य. उ. ठ. वंदा। ४. ब. उ. दीहिं। ५. द. ब. क. ज. य. उ. ठ. अधिट्ठाणो।

अर्थ :—सभापुरमें उत्तम रत्नोंसे निर्मित परम-रमणीय सिंहासन, भद्रासन और वेत्रासन आदि नाना प्रकारके पीठ हैं ।।१६२०।।

होदि सभापुर - पुरदो, पीढो चालीस-कोस-उच्छेहो ।
णाणाविह - रयणमओ, उच्छण्णो तस्स वास-उवएसो ।।१६२१।।

। ४० को ।

अर्थ :—सभापुरके आगे नाना प्रकारके रत्नोंसे निर्मित चालीस (४०) कोस ऊँचा एक पीठ है । इसके विस्तारका उपदेश नष्ट हो गया है ।।१६२१।।

पीढस्स चउ - दिसासुं, बारस वेदीओ होंति भूमियले ।
वर - गोउराओ तेत्तिय - मेत्ताओ पीढ - उड्ढम्मि ।।१६२२।।

अर्थ :—पीठके चारों ओर उत्तम गोपुरोंसे युक्त बारह वेदियाँ पृथिवीतलपर और इतनी ही (वेदियाँ) पीठके ऊपर हैं ।।१६२२।।

स्तूपोंका वर्णन—

पीढोवरि बहुमज्झे, समवट्टो चेट्ठदे रयण - थूहो ।
वित्थारुच्छेहेहिं, कमसो कोसाणि चउसट्ठी ।।१६२३।।

। को ६४ । ६४ ।

अर्थ :—पीठके ऊपर बहुमध्य-भागमें एक समवृत्त रत्नस्तूप स्थित है, जो क्रमशः चौंसठ (६४) कोस विस्तृत और चौंसठ (६४) कोस ही ऊँचा है ।।१६२३।।

छत्ता-छत्तादि-सहिओ, कणयमओ पज्जलंत-मणि-किरणो ।
थूहो अणाइ - णिहणो, जिण-सिद्ध-पडिम-पडिपुण्णो ।।१६२४।।

अर्थ :—छत्रके ऊपर छत्रसे संयुक्त, देदीप्यमान मणि-किरणोंसे विभूषित और जिन (अरिहन्त) एवं सिद्ध प्रतिमाओंसे परिपूर्ण अनादिनिधन स्वर्णमय स्तूप है ।।१६२४।।

तस्स य पुरदो पुरदो, अड-थूहा[1] तस्सरिच्छ - वासादी ।
ताणं अग्गे दिव्वं, पीढं चेट्ठेदि कणयमयं ।।१६२५।।

अर्थ :—इसके आगे-आगे सदृश विस्तारादि सहित आठ स्तूप हैं । इन स्तूपोंके आगे स्वर्णमय दिव्य आठ पीठ स्थित हैं ।।१६२५।।

---

१. द. ब. त्थहो, क. ज. य. थूहो ।

तं रुंदायामेहिं[1], दोण्णि सया जोयणाणि पण्णासा ।
पीढस्स [2]उदयमाणे, उवएसो ग्रम्ह उच्छण्णो ।।१६२६।।

। २५० । २५० । ० ।

अर्थ :—इस पीठका विस्तार एवं लम्बाई दो सौ पचास (२५०) योजन है। इसकी ऊँचाईके प्रमाणका उपदेश हमारे लिए नष्ट हो गया है ।।१६२६।।

पीढस्स चउ - दिसासुं, बारस-वेदीओ होंति भूमियले ।
वर - गोउराओ तेत्तिय - मेत्तिओ पीढ - उड्ढम्मि ।।१६२७।।

अर्थ :—पीठके चारों ओर उत्तम गोपुरोंसे युक्त बारह वेदियाँ भूमितलपर और इतनी ही (वेदियाँ) पीठके ऊपर हैं ।।१६२७।।

चैत्यवृक्षका वर्णन—

पीढस्सुवरिम[3] - भागे, सोलस-[4]गव्वूदिमेत्त - उच्छेहो ।
सिद्धंतो णामेणं, चेत्त - दुमो दिव्व - वर - तेओ ।।१६२८।।

। को १६ ।

अर्थ :—पीठके उपरिम भागपर सोलह कोस प्रमाण ऊँचा दिव्य उत्तम तेजको धारण करने वाला सिद्धार्थ नामक चैत्यवृक्ष है ।।१६२८।।

खंधुच्छेहो[5] कोसो, चत्तारो बहुलमेक्क - [6]गव्वूदी ।
बारस - कोसा साहा - दीहत्तं चेय विच्चालं ।।१६२९।।

। को ४ । १ । १२ । १२ ।

अर्थ :—चैत्यवृक्षके स्कन्धकी ऊँचाई चार कोस, बाहल्य एक कोस और शाखाओंकी लम्बाई बारह कोस तथा उनका परस्पर अन्तराल भी बारह कोस प्रमाण है ।।१६२९।।

इगि - लक्खं चालीसं, सहस्सया इगि-सयं च वीस-जुदं ।
तस्स परिवार - रुक्खा, पीढोवरि तप्पमाण - धरा[7] ।।१६३०।।

। १४०१२० ।

---

१. द. क. ब. य. ठ. रुंदा यामेहिं, उ. रुदा यामेहि । २. द. ब.क. ज. य. उ ठ. उदयमाणो । ३. द. ब. क. ज. य. उ. ठ पीढोवरिम । ४. द. ब. क. ज. य. उ. ठ. गम्मादि । ५ द. क. ज. य. उ. ठ. खंधुच्छेहो । ६ द. ब. क. ज. य. ठ. गम्मादो । ७. द. ब. क. ज. य. उ. ठ. धरो ।

अर्थ :—पीठके ऊपर इसी प्रमाणको धारण करने वाले एक लाख चालीस हजार एकसौ बीस (१४०१२०) इसके परिवार-वृक्ष हैं ।।१६३०।।

विविह-वर-रयण-साहा[1], मरगय-पत्ता य पउमराय-फला ।
चामीयर - रजदमया - कुसुम - जुदा सयल - कालं ते ।।१६३१।।

अर्थ :—वे (वृक्ष) विविध प्रकारके उत्तम रत्नोंसे निर्मित शाखाओं, मरकतमणिमय-पत्तों, पद्मरागमणिमय फलों और स्वर्ण एवं चाँदीसे निर्मित पुष्पोंसे सदैव संयुक्त रहते हैं ।।१६३१।।

सव्वे अणाइ-णिहणा, पुढविमया दिव्व-चेत्त-वर-रुक्खा ।
जीवुप्पत्ति - लयाणं, कारण - भूदा सइं हवंति ।।१६३२।।

अर्थ :—वे सब उत्तम दिव्य चैत्यवृक्ष अनादि-निधन और पृथिवीरूप होते हुए जीवोंकी उत्पत्ति और विनाशके स्वयं कारण होते हैं ।।१६३२।।

रुक्खाण चउ-दिसासुं, पत्तेक्कं विविह-रयण-रइदाओ ।
जिण - सिद्धप्पडिमाओ, जयंतु चत्तारि चत्तारि ।।१६३३।।

अर्थ :—(इन वृक्षोंमें) प्रत्येक वृक्षकी चारों दिशाओंमें विविध प्रकारके रत्नोंसे रचित जिन (अरिहन्तों) और सिद्धोंकी चार-चार प्रतिमाएँ (विराजमान हैं) । (ये प्रतिमाएँ) जयवन्त हों ।।१६३३।।

चेत्त - तरूणं पुरदो, दिव्वं पीढं हवेदि कणयमयं ।
उच्छेह - दीह - वासा, तस्स य उच्छण्ण - उवएसो ।।१६३४।।

अर्थ :—चैत्यवृक्षोंके सामने स्वर्णमय दिव्य पीठ है । इसकी ऊँचाई, लम्बाई और विस्तारादिकका उपदेश नष्ट हो गया है ।।१६३४।।

पीढस्स चउ - दिसासुं, बारस वेदी य होंति भूमियले ।
चरियट्टालय - गोउर - दुवार - तोरण - विचित्ताओ ।।१६३५।।

अर्थ :—पीठके चारों ओर भूमितलपर मार्गों, अट्टालिकाओं, गोपुरद्वारों और तोरणोंसे (युक्त) अद्भुत बारह वेदियाँ हैं ।।१६३५।।

चउ-जोयण-उच्छेहा, उवरिं पीढस्स कणय-वर-खंभा ।
विविह-मणि-रयण - खचिदा, चामर-घंटा-पयार-जुदा ।।१६३६।।

---

१ द. ब. क. ज. य. ठ. सोहा ।

अर्थ :—पीठके ऊपर विविध प्रकारके मणियों एवं रत्नोंसे खचित और अनेक प्रकारके चमरों एवं घण्टाओंसे युक्त चार योजन ऊँचे स्वर्णमय खम्भे हैं ॥१९३६॥

सव्वेसुं थंभेसुं, महाधया विविह - वण्ण - रमणिज्जा ।
णामेण महिंदधया, छत्ताराय - सिहर - सोहिल्ला ॥१९३७॥

अर्थ :—सब खम्भोंके ऊपर अनेक प्रकारके वर्णोंसे रमणीय और शिखररूप तीन छत्रोंसे सुशोभित महेन्द्र नामकी महाध्वजाएँ हैं ॥१९३७॥

पुरदो[1] महाधयाणं, मयर - प्पमुहेहि मुक्क-सलिलाओ ।
चत्तारो वावीओ, कमलुप्पल - कुमुद - छण्णाओ ॥१९३८॥

अर्थ :—महाध्वजाओंके सम्मुख मगर आदि जल-जन्तुओंसे रहित, जल-युक्त और कमल, उत्पल एवं कुमुदोंसे व्याप्त चार वापिकाएँ हैं ॥१९३८॥

पण्णास - कोस - वासा, पत्तेयं होंति दुगुण - दिग्घंता ।
दस कोसा अवगाढा, वावीओ वेदियादि - जुत्ताओ ॥१९३९॥

। को ५० । १०० । गा १० ।

अर्थ :—वेदिकादि सहित प्रत्येक वापिका पचास कोस विस्तृत, सौ (१००) कोस लम्बी और दस कोस गहरी है ॥१९३९॥

जिनेन्द्र भवन, क्रीड़ा भवन एवं प्रासादोंका वर्णन—

वावीणं बहुमज्झे, चेट्ठदि एक्को जिणिंद - पासादो ।
विप्फुरिद-रयण - किरणो, किं बहुसो सो णिरुवमाणो ॥१९४०॥

अर्थ :—वापियोंके बहुमध्यभागमें प्रकाशमान रत्नकिरणोंवाला एक जिनेन्द्र-प्रासाद स्थित है । बहुत कथनसे क्या ? वह जिनेन्द्र-प्रासाद निरुपम है ॥१९४०॥

तत्तो दहाउ पुरदो, पुव्वुत्तर - दक्खिणेसु भागेसुं ।
पासादा रयणमया, देवाणं कीडणा होंति ॥१९४१॥

अर्थ :—पश्चात् वापिकाओंके आगे पूर्व, उत्तर और दक्षिण भागोंमें देवोंके रत्नमय क्रीड़ा-भवन हैं ॥१९४१॥

---

१. ब. क. ठ. उ. पुरदो महावहाणं, द. अ. य. पुरदा महादहाणं ।

पण्णास-कोस - उदया, कमसो पणुवीस रुंद - दीहत्ता ।
धूव - घडेहिं जुत्ता, ते णिलया विविह - वण्ण - धरा ॥१६४२॥

। को ५० । २५ । २५ ।

अर्थ :—विविध वर्णोंको धारण करने वाले वे भवन पचास कोस ऊँचे हैं, पच्चीस कोस विस्तृत हैं और पच्चीस ही कोस लम्बे है तथा धूप-घटोंसे संयुक्त हैं ॥१६४२॥

वर - वेदियाहि रम्मा, वर-कंचण-तोरणेहि परियरिया ।
वर - वज्ज - णील - मरगय-णिम्मिद-भित्तीहि सोहंते ॥१६४३॥

अर्थ :—उत्तम वेदिकाओंसे रमणीय और उत्तम स्वर्णमय तोरणोंसे युक्त वे भवन उत्कृष्ट वज्र, नीलमणि और मरकत मणियोंसे निर्मित भित्तियोंसे शोभायमान हैं ॥१६४३॥

ताण भवणाण पुरदो, तेत्तिय-माणेण दोण्णि पासादा ।
धुव्वंत - धय - वडाया, फुरंत - वर - रयण-किरणोहा ॥१६४४॥

। ५० । २५ । २५ ।

अर्थ :—उन भवनोंके आगे इतने ही (५० कोस ऊँचे, २५ कोस चौड़े और २५ कोस लम्बे) प्रमाणसे संयुक्त, फहराती हुई ध्वजा-पताकाओं सहित और प्रकाशमान उत्तम रत्नोंके किरण-समूहसे सुशोभित दो प्रासाद हैं ॥१६४४॥

तत्तो विचित्त-रूवा, पासादा दिव्व-रयण णिम्मिविदा ।
कोस-सय-मेत्त-उदया, कमेण पण्णास-दीह-वित्थिण्णा ॥१६४५॥

। को १०० । ५० । ५० ।

अर्थ :—इसके आगे दिव्य रत्नोंसे निर्मित सौ कोस ऊँचे और क्रमशः पचास कोस लम्बे एवं पचास कोस चौड़े अद्भुत सुन्दर प्रासाद हैं ॥१६४५॥

जे जेट्ठ-दार-पुरदो, दिव्वमुहा[1]- मंडवादिया कहिदा ।
ते खुल्लय - दारेसुं, हवंति अद्ध - प्पमाणेहिं ॥१६४६॥

अर्थ :—ज्येष्ठ द्वारके आगे जो दिव्य मुख-मण्डपादिक कहे जा चुके हैं, उनसे अर्ध प्रमाण वाले (मुख-मण्डपादिक) लघु-द्वारोंमें भी हैं ॥१६४६॥

---

१. द. ज. मुहमंदवादिकहिदा ये, ब. मुहरुंदवादिकहिदा ये, क. ठ. उ. मुहरुंदवादिकहिदा ते, य. मुहरुंदवाहि कहिदा ते ।

तत्तो पुरदो वेदी, एदाणि वेढिदूण[1] सव्वाणि ।
चेट्ठदि चरियट्टालय - गोउर - दारेहि कणयमई ।।१९४७।।

अर्थ :—इसके आगे मार्गों, अट्टालिकाओं और गोपुर-द्वारों सहित स्वर्णमयी वेदी इन सबको वेष्टित करके स्थित है ।।१९४७।।

तीए पुरदो वरिया, तुंगेहिं कणय - रयण - थंभेहिं ।
चेट्ठंति चउ-दिसासुं, दस-प्पयारा धया णिरुवमाणा ।।१९४८।।

अर्थ :—इस वेदीके आगे चारों दिशाओंमें स्वर्ण एवं रत्नमय उन्नत खम्भों सहित दस प्रकारकी श्रेष्ठ अनुपम ध्वजाएँ स्थित हैं ।।१९४८।।

हरि-करि-वसह-खगाहिव-सिहि-ससि-रवि-हंस-कमल-चक्क-धया ।
अट्ठुत्तर - सय - संखा, पत्तक्कं तेत्तिया खुल्ला ।।१९४९।।

अर्थ:—सिंह, हाथी, बैल, गरुड़, मोर, चन्द्र, सूर्य, हंस, कमल और चक्र, इन चिह्नोंसे युक्त ध्वजाओंमेंसे प्रत्येक एकसौ आठ-एकसौ आठ हैं और इतनी ही लघु-ध्वजाएँ भी हैं ।।१९४९।।

चामीयर - वर - वेदी, एदाणि वेढिदूण[2] चेट्ठेदि ।
विप्फुरिद-रयण - किरणा, चउ-गोउर-दार-रमणिज्जा ।।१९५०।।

अर्थ :—प्रकाशमान रत्नकिरणोंसे संयुक्त और चार गोपुरद्वारोंसे रमणीय स्वर्णमय उत्तम वेदी इनको वेष्टित करके स्थित है ।।१९५०।।

बे कोसाणि तुंगा[3], विस्थारेणं धणूणि पंच - सया ।
विप्फुरिद-धय-वडाया[4], फलिहमयाणेय - वर - भित्ती ।।१९५१।।

। को २ । दं ५०० ।

अर्थ :—दो कोस ऊँची, पाँचसौ धनुष चौड़ी, फहराती हुई ध्वजा-पताकाओं सहित यह वेदी स्फटिक मणिमय अनेक उत्तम भित्तियोंसे संयुक्त है ।।१९५१।।

---

१. द. ब. क. ठ. उ. वेदिदूण, य. ज. चेदिदूण । २. द. ब. क. ठ. उ. वेदिदूण, ज. य. चेदिदूण । ३. द. ब. क. ज. य. उ. ठ. तुंगो । ४. द. ज. य. वय वहाया, क. वय वडाया, ब. ठ. उ. धय वदेहा ।

कल्पवृक्ष, मानस्तम्भ एवं जिन-भवन आदिका वर्णन—

तीए पुरदो दसविह - कप्पतरू ते समंतदो होंति ।
जिण - भवणेसुं तिहुवण - विम्हय - जणणेहि रूवेहिं ॥१९५२॥

अर्थ :—इसके आगे जिन-भवनोंमें चारों ओर तीनों लोकोंको आश्चर्य उत्पन्न करनेवाले स्वरूपसे संयुक्त वे दस प्रकारके कल्पवृक्ष हैं ॥१९५२॥

गोमेदयमय - खंधा, कंचणमय-कुसुम-णियर-रमणिज्जा ।
मरगयमय-पत्त - धरा, विद्दुम-वेरुलिय-पउमराय-फला ॥१९५३॥

सव्वे अणाइणिहणा, अकट्टिमा कप्प-पादव -पयारा ।
मूलेसु चउ - दिसासुं, चत्तारि जिणिंद - पडिमाओ ॥१९५४॥

अर्थ :—सभी कल्पवृक्ष गोमेदमणिमय स्कन्धसे युक्त, स्वर्णमय कुसुम-समूहसे रमणीय, मरकतमणिमय पत्तोंको धारण करनेवाले, मूंगा, नीलमणि एवं पद्मरागमणिमय फलोंसे संयुक्त, अकृत्रिम और अनादि-निधन हैं। इनके मूलमें चारों ओर चार-चार जिनेन्द्र प्रतिमाएँ हैं ॥१९५३-१९५४॥

तप्फलिह - वोहि-मज्झे, वेरुलियमयाणि माणथंभाणि ।
वीहिं पडि पत्तेयं, विचित्त - रूवाणि रेहंति ॥१९५५॥

अर्थ:—उन स्फटिकमणिमय वीथियोंके मध्यमेंसे प्रत्येक वीथीके प्रति अद्‌भुत रूपवाले वैडूर्यमणिमय मानस्तम्भ सुशोभित हैं ॥१९५५॥

चामर-घंटा-किंकिणि-केतण - पहुदीहि उवरि संजुत्ता ।
सोहंति माणथंभा, चउ - वेदी - दार - तोरणेहि जुदा ॥१९५६॥

अर्थ:—चार वेदीद्वारों और तोरणोंसे युक्त ये मानस्तम्भ ऊपर चँवर, घण्टा, किंकिणी और ध्वजा इत्यादिसे संयुक्त होते हुए शोभायमान होते हैं ॥१९५६॥

ताणं मूले उवरिं, जिणिंद - पडिमाओ चउदिसं तेसु ।
वर-रयण - णिम्मिदाओ, जयंतु जय-थुणिद-चरिदाओ ॥१९५७॥

अर्थ :—इन मानस्तम्भोंके नीचे और ऊपर चारों दिशाओंमें विराजमान, उत्तम रत्नोंसे निर्मित और जगमे कीर्तित चरित्रसे संयुक्त जिनेन्द्र-प्रतिमाएँ जयवन्त हों ॥१९५७॥

---

१. द. ज. य. पायग पयारा, क. ठ. उ. वायपारा ।

कप्पमहिं परिवेढिय, साला वर-रयण-णियर-णिम्मविदा[1] ।
वेट्ठदि चरियट्टालय - णाणाविह - धय - वडाओ वा ॥१६५८॥

अर्थ :—मार्गों एवं अट्टालिकाओंसे युक्त, नाना प्रकारकी ध्वजा-पताकाओंके आटोपसे सुशोभित और श्रेष्ठ रत्नसमूहसे निर्मित कोट इस कल्पमहीको वेष्टित करके स्थित है ॥१६५८॥

चूलिय-दक्खिण-भागे, पच्छिम-भायम्मि उत्तर-विभागे ।
एक्केक्कं जिण - भवणं, पुव्वम्हि व वण्णणेहि जुदं ॥१६५९॥

अर्थ :—चूलिकाके दक्षिण, पश्चिम और उत्तर-भागमें भी पूर्व-दिशावर्ती जिनभवनके सदृश वर्णनोंसे संयुक्त एक-एक जिन-भवन है ॥१६५९॥

एवं संखेवेणं, पंडुग - वण - वण्णणाओ[2] भणिदाओ ।
वित्थार - वण्णणेसुं, सक्को वि ण सक्कदे तस्स ॥१६६०॥

अर्थ :—इसप्रकार यहाँ संक्षेपसे पाण्डुक वनका वर्णन किया है। उसका विस्तारसे वर्णन करनेके लिए तो इन्द्र भी समर्थ नहीं हो सकता है ॥१६६०॥

सोमनस-वनका निरूपण—

पंडुग - वणस्स हेट्ठे, छत्तीस - सहस्स - जोयणा गंतुं ।
सोमणसं णाम वणं, मेरुं परिवेढिदूण चेट्ठेदे ॥१६६१॥

। ३६००० ।

अर्थ :—पाण्डुकवनके नीचे छत्तीस हजार (३६०००) योजन जाकर सोमनस नामक वन मेरुको वेष्टित करके स्थित है ॥१६६१॥

पण-सय-जोयण - रुंदं, चामीयर-वेदियाहि परियरियं ।
चउ - गोउर - संजुत्तं, खुल्लय - दारेहिं रमणिज्जं ॥१६६२॥

अर्थ :—यह सौमनस वन पाँचसौ योजन-प्रमाण विस्तार सहित, स्वर्णमय वेदिकाओंसे वेष्टित, चार गोपुरोंसे संयुक्त और लघु-द्वारोंसे रमणीय है ॥१६६२॥

---

१. द ब. ज. उ. ठ. णिम्मविदो । २. द. ब. क. ज. य. उ. ठ. वण्णणाणि ।

चत्तारि सहस्साणि, बाहत्तरि - जुत्त - दु-सय-जोयणया ।
एक्करस - [1]हिदट्ठ - कला, विक्खंभो बाहिरो तस्स ॥१९६३॥

। ४२७२ । $\frac{८}{११}$ ।

अर्थ :—उसका बाह्य-विस्तार चार हजार दोसौ बहत्तर योजन और ग्यारहसे भाजित आठ कला (४२७२$\frac{८}{११}$ योजन) प्रमाण है ॥१९६३॥

तेरस - सहस्स - जुत्ता, पंच सया जोयणाणि एक्करसं ।
एक्करसहिं[2] हिद - छंसा, सोमणसे परिरय - पमाणं ॥१९६४॥

। १३५११ । $\frac{६}{११}$ ।

अर्थ :—सौमनस-वनकी परिधिका प्रमाण तेरह हजार पाँचसौ ग्यारह योजन और ग्यारहसे भाजित छह अंश (१३५११$\frac{६}{११}$ योजन) प्रमाण है ॥१९६४॥

सोमणसं करिकेसर - तमाल-हिंताल-कदलि-बकुलेहिं[3] ।
लवली - लवंग - चंपय - पणस - प्पहुदीहि संछण्णं ॥१९६५॥

सुक-कोकिल-महुर-रवं, मोरादि - विहंगमेहि रमणिज्जं ।
खेयर - सुर - मिहुणेहिं, संकिण्णं विविह - वावि - जुदं ॥१९६६॥

अर्थ :—यह सौमनस वन नागकेशर, तमाल, हिंताल, कदली, बकुल, लवली, लवङ्ग, चम्पक और कटहल आदि वृक्षोंसे व्याप्त है; तोतों एवं कोयलोंके मधुर शब्दोंसे मुखरित है, मोर आदि पक्षियोंसे रमणीय है, विद्याधर युगलों एवं देवयुगलोंसे संकीर्ण है और अनेक वापियोंसे युक्त है ॥१९६५-१९६६॥

तम्मि वणे पुव्वादिसु, मंदर - पासे पुराइ चत्तारि ।
वज्जं[4] वज्ज - पहक्खं, सुवण्ण - णामं सुवण्ण - पहं ॥१९६७॥

अर्थ :—इस वनमें मन्दर (सुमेरु) के पास पूर्वादिक दिशाओंमें (क्रमशः) वज्र, वज्रप्रभ, स्वर्ण और स्वर्णप्रभ नामक चार पुर हैं ॥१९६७॥

---

१. ब. हिद अट्ठ । २. द क ज. य. एक्करसहिदो छस्सा, ब. उ. ठ. एक्करसहिं छंसा । ३. द. क. ज. य. ठ बकुलाहिं । ४. द. वज्जं वज्जपहक्खं जमहक्ख सुव्वणाणाम । ज. य. वज्जं वज्जपहक्खं मुवण्णाणामं । क. उ. वज्जं वज्जपहक्खं जहसुव्वणाम । ब. उ. वज्जपहक्खं । ठ. वज्ज पहक्खं णाम ।

पंडु - वण - पुराहिंतो, एदाणि वास-पहुदि-दुगुणाणि ।
वर - रयण - विरइदाइं, कालागरु - धूव - सुरहीणि ॥१९६८॥

अर्थ :—ये पुर पाण्डुकवनके पुरोंकी अपेक्षा दुगुने विस्तारादि सहित, उत्तम रत्नोंसे विरचित और कालागरु-धूपकी सुगन्धसे व्याप्त हैं ॥१९६८॥

तेच्चेय लोयपाला[1], तेत्तिय - मेत्ताहि सुंदरीहि जुदा ।
एदाणं मज्झेसुं, विविह - विणोदेण कीडंति ॥१९६९॥

अर्थ :—इन पुरोंके मध्यमें वे ही (पूर्वोक्त) लोकपाल उतनी ही सुन्दरियोंसे युक्त होकर नाना विनोद पूर्वक क्रीड़ा करते हैं ॥१९६९॥

उप्पलगुम्मा णलिणा, उप्पल-णामा य उप्पलुज्जलया ।
तव्वण - अग्गि - दिसाए, पोक्खरणीओ हवंति चत्तारि ॥१९७०॥

अर्थ :—उस वनकी आग्नेय-दिशामें उत्पलगुल्मा, नलिना, उत्पला और उत्पलोज्ज्वला नामकी चार वापिकायें हैं ॥१९७०॥

पणवीसद्धिय - रुंदा, रुंदादो दुगुण - जोयणायामा ।
पण - जोयणावगाढा[2], पत्तेक्कं ताओ सोहंति ॥१९७१॥

। २५/२ । २५ । ५ ।

अर्थ :—उनमेंसे प्रत्येक वापिका पच्चीसके आधे (१२½) योजन प्रमाण विस्तार सहित, विस्तारकी अपेक्षा दुगुनी लम्बाई (२५ यो०) और पांच योजन प्रमाण गहराईसे संयुक्त होती हुई शोभायमान होती है ॥१९७१॥

जलयर-चत्त-जलोहा, वर - वेदी-तोरणेहि परियरिया ।
कद्दम - रहिदा ताओ, हीणाओ हाणि - वड्ढीहि ॥१९७२॥

अर्थ :—वे पुष्करिणियाँ जलचर जीवोंसे रहित जलसमूहको धारण करनेवाली हैं, उत्तम वेदी एवं तोरणोंसे वेष्टित हैं, कीचड़से रहित हैं और हानि-वृद्धिसे हीन हैं ॥१९७२॥

---

१. द. ब. ज. ठ. य. उ. लोयपालो । २. द. ब. क. ज. य. उ. ठ. जोयणावगाढो ।

पोक्खरणीणं मज्झे, सक्कस्स हुवे विहार - पासादो ।
पण - घण - कोसुत्तुंगो[1] तद्दल - दंदो णिरुवमाणो ॥१९७३॥

। १२५ । १२५/२ ।

अर्थ :—पुष्करिणियोंके बीचमें एकसौ पच्चीस (१२५) कोस ऊँचा और इससे आधे (६२½ कोस) विस्तारवाला सौधर्मइन्द्रका अनुपम विहार-प्रासाद है ॥१९७३॥

एक्कं कोसं गाढो, सो णिलओ विविह-केदु-रमणिज्जो ।
तस्सायाम - पमाणे[2], उवएसो णत्थि अम्हाणं ॥१९७४॥

अर्थ :—वह प्रासाद एक कोस गहरा और विविध प्रकारकी ध्वजाओंसे रमणीय है उसकी लम्बाईके प्रमाणका उपदेश हमारे पास नहीं है ॥१९७४॥

सौधर्मइन्द्रका सिंहासन और उनके परिवार देवोंके आसन—

सीहासणमइरम्मं, सोहम्मिदस्स भवण मज्झम्मि ।
तस्स य चउसु दिसासु, चउपीढा लोयपालाणं ॥१९७५॥

अर्थ :—उस भवनके मध्यमें सौधर्म इन्द्रका अतिरमणीय सिंहासन है और इसके चारों ओर लोकपालोंके चार सिंहासन हैं ॥१९७५॥

सोहम्मिदासणदो[3], दक्खिण-भायम्मि कणय-णिम्मविदं ।
सिंहासणं विरायदि, मणि - गण - खचिदं पडिंदस्स ॥१९७६॥

अर्थ :—सौधर्म इन्द्रके आसनके दक्षिण-भागमें स्वर्णसे निर्मित और मणि-समूहसे खचित प्रतीन्द्रका सिंहासन विराजमान है ॥१९७६॥

सिंहासणस्स पुरदो, अट्ठाणं होंति अग्ग - महिसीणं ।
बत्तीस - सहस्साणि, वियाण पवराइ पीढाइं ॥१९७७॥

। ८ । ३२००० ।

अर्थ :—सिंहासनके आगे आठ अग्रमहिषियोंके (आठ) सिंहासन होते हैं । इसके अतिरिक्त बत्तीस हजार प्रवर पीठ जानना चाहिए ॥१९७७॥

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. ठ. कोसुत्तुंगा तद्दलरुंदा । २. द. ब. क. ज. य. उ. ठ. पमाणं । ३. द. ज. य सोहम्मिदमणदा ।

पवणीसाण - दिसासुं, पासे सिंहासणस्स चुलसीदी ।
लक्खाणि वर - पीढा, हवंति सामाणिय - सुराणं ॥१९७८॥

। ८४००००० ।

अर्थ :—सिंहासनके पास वायव्य और ईशान दिशामें सामानिक देवोंके चौरासी लाख (८४०००००) उत्तम आसन हैं ॥१९७८॥

तस्सग्गि-दिसा-भागे, बारस - लक्खाणि पढम-परिसाए ।
पीढाणि होंति कंचण - रइदाणि रयण - खचिदाणि ॥१९७९॥

। १२००००० ।

अर्थ :—उस सिंहासनकी आग्नेय दिशामें स्वर्ण निर्मित और रत्न-खचित बारह लाख (१२०००००) आसन प्रथम (अभ्यन्तर) पारिषद देवोंके हैं ॥१९७९॥

दक्खिण-दिसा-विभागे, मज्झिम-परिसामराण पीढाणि ।
रम्माइं रायंते, चोद्दस - लक्ख - प्पमाणाणि ॥१९८०॥

। १४००००० ।

अर्थ :—दक्षिणदिशा-भागमें मध्यम पारिषद देवोंके स्वर्ण एवं रत्नमय चौदह लाख (१४०००००) प्रमाण आसन हैं ॥१९८०॥

णइरिदि-दिसा-विभागे, बाहिर - परिसामराण पीढाणि ।
कंचण - रयण - मयाणि, सोलस - लक्खाणि चेट्ठंति ॥१९८१॥

। १६००००० ।

अर्थ :—नैऋत्य दिशा-विभागमें बाह्य पारिषद देवोंके स्वर्ण एवं रत्नमय सोलह लाख (१६०००००) प्रमाण आसन स्थित हैं ॥१९८१॥

तत्थ य दिसा - विभागे, तेत्तीस-सुराण होंति तेत्तीसा ।
वर - पीढाणि णिरंतर-फुरंत-मणि-किरण-णियराणि ॥१९८२॥

। ३३ ।

अर्थ :—उसी (नैऋत्य) दिशा-विभागमें त्रायस्त्रिंशदेवोंके निरन्तर प्रकाशमान मणि-किरण-समूहसे सहित तैंतीस उत्तम आसन हैं ॥१९८२॥

सिंहासणस्स पच्छिम - भागे चेट्ठंति सत्त पीढाणि ।
छक्कं महत्तराणं, महत्तरीए हवे एक्कं ॥१९८३॥

। ७ ।

अर्थ :—सिंहासनके पश्चिमभागमें महत्तरोंके छह और महत्तरीका एक, इसप्रकार सात आसन स्थित हैं ॥१९८३॥

सिंहासणस्स चउसु वि - दिसासु चेट्ठंति अंग-रक्खाणं ।
चउरासीदि - सहस्सा, पीढाणि विचित्त - रूवाणि ॥१९८४॥

। ८४००० ।

अर्थ :—सिंहासनके चारों ओर अङ्गरक्षक देवोंके अद्भुत सौन्दर्यवाले चौरासी हजार (८४०००) आसन स्थित हैं ॥१९८४॥

सिंहासणम्मि तस्सि, पुव्वमुहे बइसिदूण सोहम्मो ।
विविह - विणोदेण जुदो, पेच्छइ सेवागदे देवे[1] ॥१९८५॥

अर्थ :—सौधर्मइन्द्र उस पूर्वाभिमुख सिंहासन पर बैठकर विविध प्रकारके विनोदसे युक्त होता हुआ सेवार्थ आये हुए देवोंकी ओर देखता है ॥१९८५॥

भिंगा[2] भिंगणिहक्खा, कज्जलआ कज्जलप्पहा तत्थ ।
णइरिदि - दिसा - विभागे, पुव्व - पमाणाओ वावीओ ॥१९८६॥

अर्थ :—(सौमनस वनके भीतर) नैऋत्य दिशामें भृङ्गा, भृङ्गनिभा, कज्जला और कज्जलप्रभा ये चार वापिकाएँ पूर्व वापिकाओंके सदृश प्रमाणादि सहित हैं ॥१९८६॥

चउ-वावी - मज्झ - पुरे[3], सोहम्मो भत्ति - उवगदे देवे ।
पेच्छइ अत्था-णिरदे[4], चामर - छत्तादि - परियरिओ ॥१९८७॥

अर्थ :—इन चार वापिकाओंके मध्यमें स्थित पुर (भवन) में चँवर छत्रादिसे वेष्टित सौधर्मइन्द्र भक्तिसे समीप आये हुए एवं आदरमें निरत देवोंको देखता है ॥१९८७॥

---

१. द. ब. क. य. उ. ठ. देवइ, ज. गदो देवइ । २. द. ब. य. भिंगारभिंगणिहिक्खा । ३. द. ब. ज. क. य. उ. ठ. पुरी । ४. द. ब. क. ज. य. उ. ठ. णिरिदा ।

५० योजन
पश्चिम
अंगरक्षकों के
८४००० आसन
सेनानायक
के ७ आसन
वरुण
सौधर्मेन्द्र
का
आसन
शची
पद्मा
शिवा
श्यामा
सोम
अंगरक्षकों के -
८४००० आसन
पूर्व
उत्तर
१०० योजन
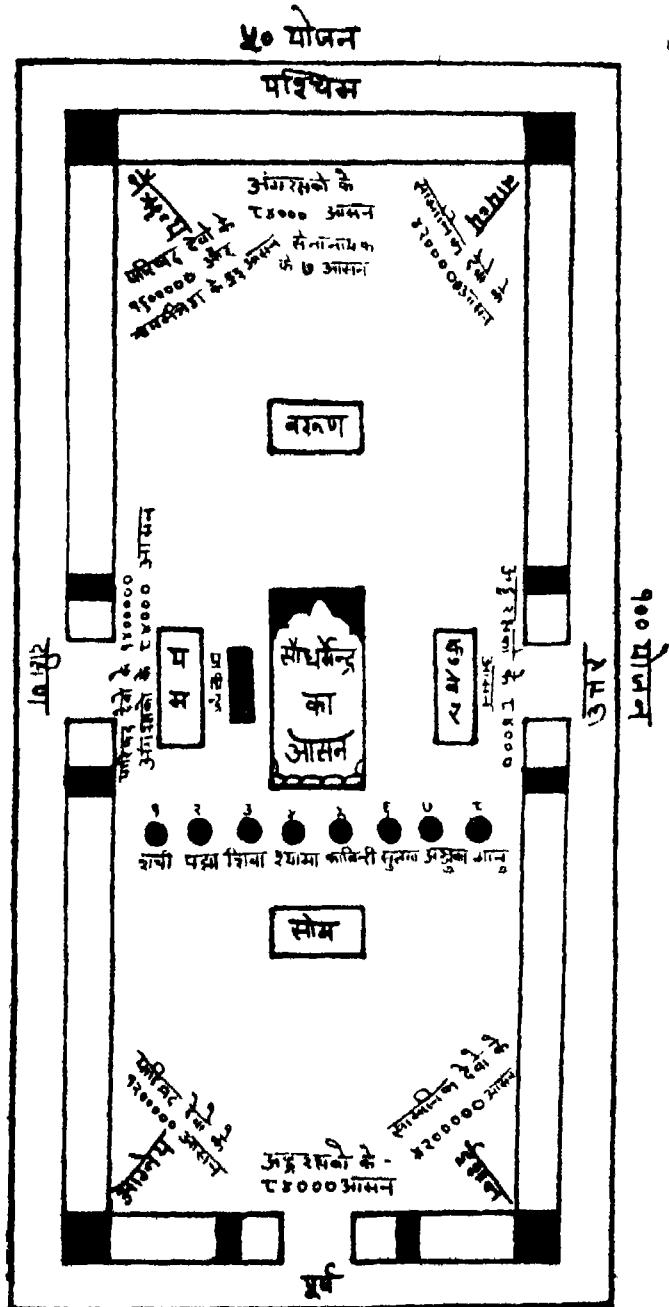
सौधर्मेन्द्र की सभा

ईशानेन्द्रके प्रासाद आदि—

सिरिभद्दा सिरिकंता, सिरिमहिदा मरु-दिसाए सिरिणिलया ।
पुक्खरणीओ होंति हु, तेसुं मज्झम्मि [1]पासादो ॥१९८८॥

अर्थ :—वायव्य दिशामें श्रीभद्रा, श्रीकान्ता, श्रीमहिता और श्रीनिलया, ये चार पुष्करिणियाँ हैं। उनके मध्यमें एक प्रासाद है ॥१९८८॥

तस्सि पासाद - वरे, ईसाणिदो सुहाणि भुंजेदि ।
बहु - छत्त - चमर - जुत्तो, विविह-विणोदेहि कीडंतो ॥१९८९॥

अर्थ :—उस उत्कृष्ट भवनमें बहुत छत्रों एवं चँवरोंसे युक्त ईशानेन्द्र विविध विनोद पूर्वक क्रीड़ा करता हुआ सुखोंको भोगता है ॥१९८९॥

णलिणा य णलिणगुम्मा[2], कुमुदा कुमुदप्पह त्ति वावीओ ।
ईसाण - दिसा - भागे, तेसुं मज्झम्मि पासादो ॥१९९०॥

अर्थ :—ईशान-दिशा-भागमें नलिना, नलिनगुल्मा, कुमुदा और कुमुदप्रभा, ये चार वापियाँ हैं। उनके मध्यमें एक प्रासाद है ॥१९९०॥

तस्सि पासाद - वरे, ईसाणिदो सुहेण कीडेदि ।
णाणा - विणोद - सत्तो, रज्जालंकार सोहिल्लो ॥१९९१॥

अर्थ :—इस उत्तम भवनमें नानाप्रकारके आनन्दसे युक्त सुन्दर आभूषणोंसे सुशोभित ईशानेन्द्र सुखसे क्रीड़ा करता है ॥१९९१॥

सोमणसब्भंतरए, चउसु दिसासुं हवंति चत्तारो ।
जिण - पासादा पंडुग - जिण-भवण-सरिच्छ-वण्णणया ॥१९९२॥
पंडुग-भवणाहि तो, वास - प्पहुदीणि ताणि दुगुणाणि ।
पुव्वं व सयल - वण्णण - वित्थारो तेसु णादव्वो ॥१९९३॥

अर्थ :—सौमनस वनके भीतर पूर्वादिक चारों दिशाओंमें चार जिन-मन्दिर हैं। इनका सम्पूर्ण वर्णन पाण्डुक वन स्थित जिन-भवनोंके सदृश जानना चाहिए। इतनी ही विशेषता है कि पाण्डुकवन स्थित भवनोंसे इनका व्यास आदि दुगुना है। शेष सम्पूर्ण वर्णनका विस्तार पूर्ववत् ही जानना चाहिए ॥१९९२-१९९३॥

---

१. द. ब. क. ज. य. ठ उ. पासादा। २. द. ब. क. ज. य. ठ. उ. णलिणगुम्मं।

पत्तेक्कं जिणमंदिर - सालाणं बाहिरम्मि चेट्ठंति ।
दो पासेसुं दो - दो, कूडा णामा वि ताण इमे ।।१९९४।।

णंदण-णामा मंदर-णिसह-हिमा रजद-रुजग-णामा य ।
सायरचित्तो वज्जो, पुव्वादि - कमेण अट्ठ[1] - कूडा ।।१९९५।।

अर्थ :—प्रत्येक जिनमन्दिर सम्बन्धी कोटके बाहर दोनों पार्श्वभागोंमें जो दो-दो कूट स्थित हैं उनके नाम नन्दन मन्दर, निषध, हिमवान् रजत, रुचक, सागरचित्र और वज्र हैं। ये आठ कूट पूर्वादि-क्रमसे कहे गये हैं ।।१९९४-१९९५।।

पणवीसब्भहिय-सयं, वासो[2] सिहरम्मि दुगुणिदो[3] मूले ।
मूल - समो उच्छेहो, पत्तेक्कं ताण कूडाणं ।।१९९६।।

। १२५ । २५० । २५० ।

अर्थ : उन कूटोंमेंसे प्रत्येकका विस्तार शिखरपर एकसौ पच्चीस (१२५) योजन और मूलमें इससे दुगुना (२५० योजन) है। मूल विस्तारके सदृश ही ऊँचाई भी दोसौ पचास (२५०) योजन प्रमाण है ।।१९९६।।

कूडाणं मूलोवरि - भागेसुं वेदियाओ दिव्वाओ ।
वर - रयण - विरइदाओ, पुव्वं पिव वण्णण-जुदाओ ।।१९९७।।

अर्थ :—कूटोंके मूलमें एवं उपरिम भागोंमें उत्तम रत्नोंसे रचित और पूर्वके सदृश वर्णन सहित दिव्य वेदियाँ हैं ।।१९९७।।

कूडाण उवरि - भागे, चउ-वेदी-तोरणेहि रमणिज्जा ।
णाणाविह - पासादा, चेट्ठंते णिरुवमायारा ।।१९९८।।

अर्थ :—कूटोंके उपरिम भागमें चार वेदी-तोरणोंसे रमणीय अनुपम आकार वाले नाना प्रकारके प्रासाद स्थित हैं ।।१९९८।।

पण्णरस-सया दंडा, उदओ रुंदं पि कोस-चउ-भागो ।
तद्दुगुणं दीहत्तं, पुह - पुह सव्वाण भवणाणं ।।१९९९।।

---

१. क. ज. उ. ठ. अट्ठट्ठा। २. द. ब. क. ज य. उ. ठ. वासा। ३. द. ब. क. ज. य. उ. ठ. दुगुणिदे।

। १५०० । को $\frac{1}{4}$ । $\frac{1}{2}$ ।

अर्थ :—सब भवनोंकी ऊँचाई पृथक्-पृथक् पन्द्रहसौ (१५००) धनुष है, विस्तार एक कोसका चतुर्थभाग ($\frac{1}{4}$ कोस) है और दीर्घता इससे दुगुनी ($\frac{1}{2}$ कोस) प्रमाण है ॥१९९९॥

वासो पण-घण-कोसा, तद्दुगुणो [1]मंदिराण उच्छेहो ।
लोयविणिच्छय - कत्ता, एवं माणे णिरूवेदि ॥२०००॥

। १२५ । २५० ।

(पाठान्तरम्)

अर्थ :—मन्दिरोंका विस्तार पाँचके घन (१२५ कोस) प्रमाण और ऊँचाई इससे दुगुनी (२५० कोस) है । लोकविनिश्चयके कर्ता इनके प्रमाणका निरूपण इस प्रकार करते हैं ॥२०००॥

(पाठान्तर)

कुंडेसुं देवीओ, कण्ण - कुमारीओ दिव्व - रूवाओ ।
मेघंकर - मेघवदी, सुमेघया मेघमालिणी तुरिमा ॥२००१॥

तोयंधरा विचित्ता, पुप्फयमाला[2] अणिंदिदा चरिमा ।
पुव्वादिसु कूडेसुं, कमेण चेट्ठंति एदाओ ॥२००२॥

अर्थ :—पूर्वादिक कूटोंपर क्रमशः मेघङ्करा, मेघवती, सुमेघा, मेघमालिनी, तोयन्धरा, विचित्रा, पुष्पमाला और अनिन्दिता, इसप्रकार दिव्य रूपवाली ये (आठ) कन्याकुमारी देवियाँ स्थित हैं ॥२००१-२००२॥

वलभद्रकूटका विवेचन—

बलभद्द - णाम - कूडो, ईसाण - दिसाए तव्वणे होदि ।
जोयण - सय - मुत्तुंगो, मूलम्मि य तेत्तिओ वासो ॥२००३॥

। १०० । १०० ।

अर्थ :—सौमनस-वनके भीतर ईशान दिशामें एकसौ योजन-प्रमाण ऊँचा और मूलमें इतने ही (१०० यो०) विस्तारवाला बलभद्र नामक कूट है ॥२००३॥

---

१. द. ब क. ज. य. उ ठ. मंदराण । २. द. ब. क. ज. य. उ. ठ. पुप्फयमाली ।

पण्णास - जोयणाइं, सिहरे कूडस्स होदि वित्थारो ।
मुह - भूमी - मिलिदद्धं, मज्झिम - वित्थार[1]-परिमाणं ॥२००४॥

। जो ५० । ७५ ।

अर्थ :—उस कूटका विस्तार शिखर पर पचास (५०) योजन और मध्यमें, मुख एवं भूमिके (१००+५०=१५०) सम्मिलित विस्तार प्रमाणसे आधा (१५०÷२=७५ यो०) है ॥२००४॥

एस बलभद्द - कूडो, सहस्स-जोयण - पमाण - उच्छेहो ।
तेत्तिय - रुंद - पमाणो, दिणयर - बिंबं व समवट्टो ॥२००५॥

। १००० । १००० ।

(पाठान्तरम्)

अर्थ :—यह बलभद्रकूट हजार (१०००) योजन-प्रमाण ऊँचा और इतने (१००० योजन) ही विस्तार-प्रमाण सहित सूर्यमण्डलके सदृश समवृत्त (गोल) है ॥२००५॥

(पाठान्तर)

सोमणसस्स य वासं, णिस्सेसं रुंभिदूण सो सेलो[2] ।
पंच - सय - जोयणाइं, तत्तो रुंभेदि आयासं ॥२००६॥

(पाठान्तरम्)

अर्थ :—वह शैल सौमनस-वनके सम्पूर्ण विस्तारको रोककर पुनः पाँचसौ योजन-प्रमाण आकाशको रोकता है ॥२००६॥

(पाठान्तर)

दस - विंदं भू - वासो, पंच-सया जोयणाणि मुह-वासो ।
एवं लोयविणिच्छय - सग्गायणिएसु दीसेइ ॥२००७॥

। १००० । ५०० ।

(पाठान्तरम्)

अर्थ :—उसका भूविस्तार दसके घनरूप (१००० योजन) और मुख-विस्तार पाँचसौ (५००) योजन प्रमाण है। इसप्रकार लोकविनिश्चय एवं सग्गायणीमें दर्शाया गया है ॥२००७॥

(पाठान्तर)

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. ठ. वित्थारस्स । २. द. क. ज. उ. ठ. सेला ।

मूलोवरि सो कूडो, चउवेदी - तोरणेहिं संजुत्तो ।
उवरिम - भागे तस्स य, पासादा विविह - रयणमया ।।२००८।।

अर्थ :—वह कूट मूलमें एवं ऊपर चार वेदो-तोरणोंसे संयुक्त है । उसके उपरिम भागपर नानाप्रकारके रत्नमय प्रासाद हैं ।।२००८।।

मंदिर - सेलाहिवई[1], बलभद्दो णाम वेंतरो देवो ।
अच्छदि[2] तेसु पुरेसुं, बहु - परिवारेहिं संजुत्तो ।।२००९।।

अर्थ :—उन पुरोंमें बहुत परिवारसे संयुक्त मन्दिर और शैलका अधिपति बलभद्र नामक व्यन्तर देव रहता है ।।२००९।।

सौमनस-वनका विस्तार आदि—

तिण्णि सहस्सा दु-सया, बाहत्तरि जोयणाणि अट्ठ-कला ।
एक्करस - हिदा वासो[3], सोमणसब्भंतरे होदि ।।२०१०।।

। ३२७२ । ८/११ ।

अर्थ :—सौमनसवनके अभ्यन्तर भागमें तीन हजार दोसौ बहत्तर योजन और ग्यारहसे भाजित आठ कला प्रमाण (३२७२ ८/११ योजन) विस्तार है ।।२०१०।।

दस य सहस्सा ति-सया, उणवण्णा जोयणाणि बे-अंसा ।
एक्करस[4] - हिदा परिही, सोमणसब्भंतरे भागे ।।२०११।।

। १०३४९ । २/११ ।

अर्थ :—सौमनस-वनके अभ्यन्तर भागमें परिधिका प्रमाण दस हजार तीनसौ उनंचास योजन और ग्यारहसे भाजित दो भाग (१०३४९ २/११ योजन) प्रमाण है ।।२०११।।

एवं संखेवेणं, सोमणसं वर - वणं मए भणिदं ।
वित्थार वण्णणासुं, तस्स ण सक्केदि सक्को[5] वि ।।२०१२।।

अर्थ :—इसप्रकार सौमनस नामक उत्तम वनका वर्णन मैंने संक्षेपमें किया है । उसका विस्तार पूर्वक वर्णन करनेमें तो इन्द्र भी समर्थ नहीं है ।।२०१२।।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. ठ. ईवहि । २. द. ब. क. ज. य. उ. ठ. अच्छहि । ३. द. ब. क. ज. य. उ. ठ. वासा । ४. द ब. क. ज. उ. ठ. एक्कारसहिद । ५. द. क. उ. य. सक्काओ, ब. ज. ठ. सक्काऊ ।

नन्दन-वनका निर्देश—

पंच - सएहिं जुत्ता, बासट्ठि - सहस्स - जोयणा गंतुं ।
सोमणसादो हेट्ठे, होदि वणं णंदणं णाम ।।२०१३।।

। ६२५०० ।

अर्थ :—सौमनस वनसे बासठ हजार पाँचसौ (६२५००) योजन प्रमाण नीचे जाकर नन्दन नामक वन है ।।२०१३।।

पण-सय-जोयण-रुंदं, चामीयर - वेदियाहि परियरियं[1] ।
चउ - तोरण - दार - जुदं, खुल्लय-दारेहि णंदणं रम्मं ।।२०१४।।

। ५०० ।

अर्थ :—वह रमणीक नन्दन वन पाँचसौ (५००) योजन विस्तृत है; स्वर्णमय वेदिकाओंसे वेष्टित है तथा लघु-द्वारोंके साथ चार तोरणद्वारोंसे संयुक्त है ।।२०१४।।

णव य सहस्सा णव-सय-चउवण्णा जोयणाणि छब्भागा ।
एक्करसेहिं[2] हिदा णं, णंदण-बाहिरए होदि विक्खम्भो ।।२०१५।।

। ९९५४ । $\frac{6}{11}$ ।

अर्थ :—नन्दन वनके बाह्य भागमें नौ हजार नौसौ चौवन योजन और ग्यारहसे भाजित छह भाग (९९५४$\frac{6}{11}$ योजन) प्रमाण विस्तार है ।।२०१५।।

एक्कत्तीस - सहस्सा, चउस्सया जोयणाणि उणसीदी ।
णंदणवणस्स परिही, बाहिर - भागम्मि अदिरित्ता ।।२०१६।।

। ३१४७९ ।

अर्थ :—नन्दन वनके बाह्य भागमें परिधिका प्रमाण इकतीस हजार चारसौ उन्यासी (३१४७९) योजनसे अधिक है ।।२०१६।।

---

१. द ब. क. ज. य. उ. ठ. परियरिया । २. द. ब. क. ज. य. उ. ठ. एक्करसेहिदा ।

अट्ठ - सहस्सा णव-सय-चउवण्णा जोयणाणि छब्भागा ।
एक्करस[1] - हिदा वासो, णंदणवण - वरहिदो होदि ॥२०१७॥

। ८९५४ । ६/११ ।

अर्थ :—नन्दनवनसे रहित मेरुका विस्तार आठ हजार नौसौ चौवन योजन और ग्यारहसे भाजित छह भाग (८९५४ ६/११ योजन) प्रमाण है ॥२०१७॥

अट्ठावीस-सहस्सा, ति-सया सोलस-जुदा य अट्ठ - कला ।
एक्करस[2] - हिदा परिही, णंदणवण-विरहिदा अहिया ॥२०१८॥

। २८३१६ । ८/११ ।

अर्थ :—नन्दन वनसे रहित मेरुकी परिधि अट्ठाईस हजार तीनसौ सोलह योजन और ग्यारहसे भाजित आठ कला अधिक (२८३१६ ८/११ योजन) है ॥२०१८॥

नन्दनवनस्थ भवन—

माणक्ख - चारणक्खा, णिलया गंधव्व-चित्त-णामा य ।
णंदण - वणम्मि मंदर - पासे चत्तारि पुव्वादी ॥२०१९॥

अर्थ :—नन्दनवनके भीतर सुमेरुके पास क्रमशः पूर्वादिक दिशाओंमें मानाक्ष, चारणाक्ष, गन्धर्व और चित्र नामक चार भवन भी हैं ॥२०१९॥

विक्खंभायामेहिं, णंदण - भवणाणि होंति दुगुणाणि ।
सोमणस - पुराहितो, पुव्वं पिव वण्णण - जुदाणि ॥२०२०॥

अर्थ :—पूर्वोक्त वर्णनसे संयुक्त ये नन्दन-भवन विस्तार एवं लम्बाईमें सौमनस-वनके भवनोंसे दुगुने हैं ॥२०२०॥

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. ठ. एक्कारसहिद । २. द. ब. क. ज. य. उ. ठ. एक्कारस ।

सक्कस्स लोयपाला[1], सोम - प्पहुदी वसंति एदेसुं ।
तेत्तिय - देवीहिं जुदा, बहुविह कोडाउ कुणमाला[2] ।।२०२१।।

अर्थ :—इन भवनोंमें उतनी ही देवियोंसे संयुक्त होकर विविध प्रकारकी क्रीड़ाओंको करनेवाले सौधर्म इन्द्रके सोमादिक लोकपाल निवास करते हैं ।।२०२१।।

नन्दन-वनस्थ बलभद्र कूट—

बलभद्द-णाम-कूडो, ईसाण - दिसाए णंदण - वणम्मि ।
तस्सुच्छेह - प्पहुदी, सरिसा सोमणस - कूडेणं ।।२०२२।।

अर्थ :—नन्दनवनके भीतर ईशान-दिशामें बलभद्र नामक कूट है। इस कूटकी ऊँचाई आदि सौमनस-सम्बन्धी (बलभद्र) कूटके सदृश ही है ।।२०२२।।

जिणमंदिर - कूडाणं, वावी - पासाद - देवदाणं च ।
णामाइं विण्णासो, सोहम्मीसाण - दिस - विभागो य ।।२०२३।।

इय-पहुदि णंदण-वणे, सोमणस-वणं व होदि णिस्सेसं ।
णवरि विसेसो एक्को, वास - प्पमुहाणि दुगुणाणि ।।२०२४।।

अर्थ :—नन्दनवनमें जिनमन्दिर, कूट, वापी, प्रासाद एवं देवताओंके नाम, विन्यास और सौधर्म एवं ईशानेन्द्रकी दिशाओंका विभाग इत्यादिक सब सौमनस-वनके ही सदृश है। विशेषता केवल यह है कि उनके विस्तार आदिके प्रमाण दुगुने-दुगुने हैं ।।२०२३-२०२४।।

एवं संखेवेणं, णंदण - णामं वणं मए भणिदं ।
एक्क-मुह - एक्क - जीहो, को सक्कइ वित्थरं भणिदुं ।।२०२५।।

अर्थ :—इसप्रकार संक्षेपसे मैंने नन्दन नामक वनका वर्णन किया है। एक मुख और एक ही जिह्वावाला कौनसा मनुष्य उसका विस्तारसे वर्णन करनेमें समर्थ है? (अर्थात् कोई नहीं) ।।२०२५।।

भद्रशाल-वनका वर्णन—

णंदण - वणाउ हेट्ठे, पंच - सया जोयणाणि गंतूणं ।
अट्ठासीदि - वियप्पं, चेट्ठदि सिरिभद्दसाल - वणं ।।२०२६।।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. ठ. लोयपालो । २. द. ब. क. ज. य. उ. ठ. कुणमाणो ।

अर्थ :—नन्दनवनसे पाँचसौ (५००) योजन प्रमाण नीचे जाकर अठासी विकल्पों सहित श्रीभद्रशालवन स्थित है ॥२०२६॥

विशेषार्थ :—सुमेरु सम्बन्धी भद्रशालवनकी पूर्व-पश्चिम चौड़ाई २२००० योजन है, इसको ८८ से विभक्त करने पर दक्षिणोत्तर चौड़ाई प्राप्त होती है। शायद इसीलिए गाथामें भद्रशाल-वनको अठासी विकल्पोंसे युक्त कहा गया है।

बावीस - सहस्साणि, कमसो पुव्वावरेसु वित्थारो।
तह दक्खिणुत्तरेसुं, दु - सया पण्णास तम्मि वणे ॥२०२७॥

। २२००० । २२००० । २५० । २५० ।

अर्थ :—उस वनका विस्तार पूर्वमें (२२००० यो०) पश्चिममें बाईस हजार (२२०००) योजन तथा दक्षिण (२५० यो०) और उत्तरमें दोसौ पचास (२५०) योजन प्रमाण है ॥२०२७॥

मेरु-महीधर-पासे, पुव्व - दिसे दक्खिणवर - उत्तरए।
एक्केक्कं जिणभवणं, होदि वरं भद्दसाल - वणे ॥२०२८॥

अर्थ :—भद्रशाल-वनमें मेरुपर्वतके पार्श्वमें पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशामें एक-एक जिन-भवन है ॥२०२८॥

पंडु-वण-पुराहिंतो, चउगुण - वासस्स उदय - पहुदीओ।
जिणवर - पासादाणं, पुव्वं पिव वण्णणं सव्वं ॥२०२९॥

अर्थ :—इन जिनभवनोंका विस्तार एवं ऊँचाई आदि पाण्डुक-वनके जिन-भवनोंकी अपेक्षा चौगुना है। शेष सम्पूर्ण वर्णन पूर्वके ही सदृश है ॥२०२९॥

तम्मि वणे वर-तोरण-सोहिद-वर-दार-णिवह-रमणिज्जा।
अट्टालयादि - सहिया, समंतदो कणयमय - वेदी ॥२०३०॥

अर्थ :—उस वनके चारों ओर उत्तम तोरणोंसे शोभित, श्रेष्ठ द्वार-समूहसे रमणीय एवं अट्टालिकादि सहित स्वर्णमय वेदी है ॥२०३०॥

वेदीए उच्छेहो, जोयणमेक्कं समंतदो होदि।
कोदंडाण - सहस्सं, वित्थारो भद्दसालम्मि ॥२०३१॥

। जो १ । दंड १००० ।

अर्थ :—भद्रशालवनमें चारों ओर वेदीकी ऊँचाई एक योजन और विस्तार एक हजार (१०००) धनुष प्रमाण है ॥२०३१॥

सिरिखंड-अगरु-केसर-असोय-कप्पूर-तिलय - कदलीहिं ।
अइमुत्त - मालईआ - हालिद्द - पहुदीहि संछण्णं ॥२०३२॥

पोक्खरणी-रमणिज्जं, सर-वर-पासाद-णिवह[1]-सोहिल्लं ।
कूडेहि जिणपुरेहिं, विराजदे भद्दसाल - वणं ॥२०३३॥

अर्थ :—श्रीखण्ड, अगरु, केशर, अशोक, कर्पूर, तिलक, कदली, अतिमुक्त, मालती और हारिद्र आदि वृक्षोंसे व्याप्त; पुष्करिणियोंसे रमणीय तथा उत्तम सरोवर एवं भवनोंके समूहसे शोभायमान यह भद्रशालवन कूटों और जिनपुरोंसे शोभायमान है ॥२०३२-२०३३॥

मोर - सुक - कोकिलाणं, सारस-हंसाण महुर-सद्दड्ढं ।
विविह - फल - कुसुम-भरिदं, सुरम्मियं भद्दसाल-वणं ॥२०३४॥

अर्थ :—यह सुरम्य भद्रशालवन मोर, शुक, कोयल, सारस और हंस आदिके मधुर शब्दोंसे व्याप्त है तथा विविध प्रकारके फल-फूलोंसे परिपूर्ण है ॥२०३४॥

वावीस - सहस्साणि, अडसीदि - हिदाणि वासमेक्केक्के ।
पुव्वावर - भागेसुं, [2]वणम्मि सिरिभद्दसालस्स ॥२०३५॥

अर्थ :—पूर्व-पश्चिम भागोंमेंसे प्रत्येक भागमें श्रीभद्रशालवनका विस्तार अठासीसे विभाज्य बाईस हजार (२२०००) योजन प्रमाण है ॥२०३५॥

दोण्णि सया पण्णासा, अट्ठासीदी - विहत्तया रुंदा ।
दक्खिण - उत्तर - भागे, एक्केक्के वणस्स भद्दसालम्मि ॥२०३६॥

अर्थ :—दक्षिण-उत्तर भागोंमेंसे प्रत्येक भागमें भद्रशालवनका विस्तार अठासीसे विभक्त (बाईस हजार योजन अर्थात्) दोसौ पचास (२५०) योजन प्रमाण है ॥२०३६॥

गजदन्त-पर्वतोंका वर्णन—

वारण-दंत-सरिच्छा, सेला चत्तारि मेरु - विदिसासुं ।
चक्खार त्ति पसिद्धो, अणाइ - णिहणा महारम्मो ॥२०३७॥

---

१. द. ब क. ज. य. उ. ठ. णिवह । २. द. ब. क. ज. य उ. ठ. वणम्मि ।

अर्थ :—मेरुपर्वतकी विदिशाओंमें हाथीदांतके (आकार) सदृश, अनादिनिधन और महारमणीय 'वक्षार' (गजदन्त) नामसे प्रसिद्ध चार पर्वत हैं ॥२०३७॥

णीलद्द - णिसह् - पव्वद - मंदर-सेलाण होंति संलग्गा ।
बंक - सरूवायामा, ते चत्तारो महासेला[1] ॥२०३८॥

अर्थ :—तिरछेरूपसे आयत वे चारों महाशैल नील, निषध और मन्दरशैलसे संलग्न हैं ॥२०३८॥

उत्तर-दक्खिण-भागे, मंदर - सेलस्स मज्झ - देसम्मि ।
एक्केण पदेसेणं, एक्केक्कं तेण लग्गंति ॥२०३९॥

अर्थ :—उनमेंसे प्रत्येक पर्वत उत्तर-दक्षिण-भागमें मन्दर-पर्वतके मध्य देशमें एक-एक प्रदेशसे (उससे) संलग्न है ॥२०३९॥

मंदर-अणल-दिसादो, सोमणसो णाम विज्जुपह-णामो ।
कमसो महागिरी णं, गंधमादणो मालवंतो य ॥२०४०॥

अर्थ :—मन्दर-पर्वतकी आग्नेय दिशासे लेकर क्रमशः सौमनस, विद्युत्प्रभ, गन्धमादन और माल्यवान् नामक चार महापर्वत हैं ॥२०४०॥

ताणं रुप्पय-तवणिय-कणयं वेलुरिय - सरिस-वण्णाणं ।
उववण - वेदि - प्पहुदी, सव्वं पुव्वोदिदं होदि ॥२०४१॥

अर्थ —क्रमशः चाँदी, तपनीय, कनक और वैडूर्यमणिके सदृश वर्णवाले उन पर्वतोंकी उपवन-वेदी आदिक सब पूर्वोक्त ही हैं ॥२०४१॥

पंच - सय - जोयणाणि, वित्थारो ताण दंत - सेलाणं ।
सव्वत्थ होदि सुंदर - कप्पतरुप्पण्ण - सोहाणं ॥२०४२॥

अर्थ :—सुन्दर कल्पवृक्षोंसे उत्पन्न हुई शोभासे संयुक्त उन दन्तशैलोंका विस्तार सर्वत्र पाँचसौ योजन प्रमाण है ॥२०४२॥

णील-णिसहद्दि-पासे, चत्तारि सयाणि जोयणा होदि ।
तत्तो पदेस - वड्ढी, पत्तेक्कं मेरु - सेलंतं ॥२०४३॥

---

१. द. ब. ज. य. उ. ठ. महासेलो ।

पासम्मि मेरु-गिरिणो, पंच-सया जोयणाणि उच्छेहो ।
णिरुवम - रूव - धराणं, ताणं वक्खार - सेलाणं ।।२०४४।।

अर्थ :—नील और निषध-पर्वतके पासमें इन (गजदन्तों) की ऊँचाई चारसौ योजन-प्रमाण है । इसके आगे मेरु-पर्वत पर्यन्त प्रत्येक (गजदन्त) की प्रदेश-वृद्धि होती गई है । इसप्रकार प्रदेश-वृद्धिके होनेपर अनुपम रूपको धारण करनेवाले उन वक्षार-पर्वतोंकी ऊँचाई मेरुपर्वतके समीप पाँचसौ योजन-प्रमाण हो गई है ।। २०४३-२०४४।।

गजदन्तोंकी जीवा एवं बाण आदिका प्रमाण—

दुगुणम्मि भद्दसाले, मेरु - गिरिंदस्स खिवसु[1] विक्खंभं ।
दो-सेल-मज्झ-जीवा, तेवण्ण-सहस्स - जोयणा होंति ।।२०४५।।

। ५३००० ।

अर्थ :—[वक्षार (गजदन्त) के विस्तारसे रहित] भद्रशालवनके विस्तारको दुगुना करके उसमें मेरु-पर्वतके विस्तारको मिला देनेपर दोनों पर्वतोंके मध्यमें जीवाका प्रमाण तिरेपन हजार (५३०००) योजन आता है ।।२०४५।। (२२००० —५००)×२+१००००=५३००० ।

अद्धिय विदेह-रुंदं, पंच - सहस्साणि तत्थ अवणिज्जं ।
दो - वक्खार - गिरीणं, जीवा - बाणस्स परिमाणं ।।२०४६।।

अर्थ :—विदेहके विस्तारको आधाकर उसमेंसे पाँच हजार कम कर देनेपर दो वक्षार-पर्वतोंकी जीवाके बाणका प्रमाण प्राप्त होता है ।।२०४६।।

यथा—६४००००/१९ ÷ २—५००० = २२५०००/१९ ।

पणवीस - सहस्सेहिं, अब्भहिया जोयणाणि दो लक्खा ।
उणवीसेहि विहत्ता, बाणस्स पमाण - मुद्दिट्ठं ।।२०४७।।

। २२५००० / १९ ।

अर्थ :—उपर्युक्त बाणका प्रमाण उन्नीससे भाजित दो लाख पच्चीस हजार (२२५०००/१९ या ११८४२ २/१९) योजन कहा गया है ।।२०४७।।

---

१. द. ब. क. ब. ज. ठ. खिवसु, क खिरसु ।

जोयण - सट्ठि - सहस्सा, चत्तारि सया य अट्ठरस-जुत्ता ।
उणवीस-हरिद-बारस - कलाओ वक्खार - धणु - पुट्ठं ॥२०४८॥

| ६०४१८ $\frac{१२}{१९}$ |

अर्थ :—वक्षार (गजदन्तों) पर्वतोंका धनुपृष्ठ साठ हजार चारसौ अठारह योजन और उन्नीससे भाजित बारह कला (६०४१८$\frac{१२}{१९}$ योजन) प्रमाण है ॥२०४८॥

जोयण-तीस-सहस्सा, [1]णव-उत्तर दो सया य छब्भागा ।
उणवीसेहि विहत्ता, ताणं सरिसायदाण[2] दीहत्तं ॥२०४९॥

| ३०२०९ $\frac{६}{१९}$ |

अर्थ :—उन सदृश आयत वक्षार-पर्वतोंकी लम्बाई तीस हजार दोसौ नौ योजन और उन्नीससे विभक्त छह भाग (३०२०९$\frac{६}{१९}$ यो०) प्रमाण है ॥२०४९॥

जीवाए जं वग्गं, चउगुण - बाण - प्पमाण - पविहत्तं ।
इसु - संजुत्तं ताणं, अब्भंतर - वट्ट - विक्खंभो[3] ॥२०५०॥

एक्कत्तरि सहस्सा, इगि-सय-तेदाल - जोयणा य कला ।
णव-गुणिदुणवीस - हिदा, सग - तीसा वट्ट - विक्खंभे ॥२०५१॥

| ७११४३ $\frac{३७}{१७१}$ |

अर्थ :—जीवाके वर्गमें चौगुणे बाणका भाग देकर लब्धराशिमें बाणके प्रमाणको मिला देनेपर उनके अन्तर्वृत्त क्षेत्रका विष्कम्भ निकलता है। यह वृत्त-विष्कम्भ इकहत्तर हजार एकसौ तैंतालीस योजन और नौसे गुणित उन्नीस (१७१) से भाजित सैंतीस कला (७११४३$\frac{३७}{१७१}$ यो०) प्रमाण है ॥२०५०-२०५१॥

यथा—$५३०००^२ \div \left(\frac{२२५०००\times४}{१९}\right) + \frac{२२५०००}{१९} = ७११४३\frac{३७}{१७१}$ योजन ।

---

१. द. ब. णउत्ता, क. ज. य. ठ. णउत्तरा । २. द. ब. क. ज. य. ड. ठ. सुविसायदाण । ३. द. क. ज. य. ठ विक्खंभा ।

णील-णिसहद्दि - पासे, पण्णासब्भहिय-दु-सय-जोयणया ।
तत्तो पदेस - वड्ढी, पत्तेक्कं मेरु - मेलंतं ।।२०५२।।

। २५० ।

ताणं च मेरु-पासे, पंच - सया जोयणाणि वित्थारो ।
लोयविणिच्छय - कत्ता, एवं णियमा णिरूवेदि ।।२०५३।।

। ५०० ।

(पाठान्तरम्)

अर्थ :—नील और निषध पर्वतके पास इन (गजदन्त) पर्वतोंका विस्तार दोसौ पचास (२५०) योजन प्रमाण है । इसके आगे मेरु पर्वत पर्यन्त प्रत्येकमें प्रदेशवृद्धि होनेसे मेरुके पास उनका विस्तार पाँचसौ योजन-प्रमाण हो गया है । लोकविनिश्चयके कर्ता नियमसे इसप्रकार निरूपण करते हैं ।।२०५२-२०५३।।

(पाठान्तर)

सिरिभद्दसाल - वेदी, वक्खार - गिरीण अंतर-पमाणं[1] ।
पंच - सय - जोयणाणिं, सग्गायणियम्मि णिद्दिट्ठं ।।२०५४।।

। ५०० ।

(पाठान्तरम्)

अर्थ :—श्रीभद्रशाल वेदी और वक्षार-गिरियोंका अन्तर पाँचसौ (५००) योजन प्रमाण सग्गायणीमें कहा गया है ।।२०५४।।

(पाठान्तर)

गजदन्तोंकी नींव एवं उनके कूटोंका निरूपण—

गयदंताणं गाढा, णिय-णिय-उदय-प्पमाण-चउ-भागा ।
सोमणस - गिरिस्सोवरि, चेट्ठंते सत्त कूडाणि ।।२०५५।।

सिद्धो सोमणसक्खो, देवकुरू मंगलो विमल - णामो ।
कंचण - वसिट्ठ - कूडा, णिसहंता मंदर - प्पहुदी ।।२०५६।।

---

1. द. ब. क. ज. य. उ. ठ. समाणं ।

अर्थ :—गजदन्तोंकी गहराई अपनी-अपनी ऊँचाईके चतुर्थांश प्रमाण है। सौमनस गजदन्तके ऊपर सिद्ध, सौमनस, देवकुरु, मङ्गल, विमल, काञ्चन और वशिष्ठ, ये सात कूट मेरुसे लेकर निषध पर्वत पर्यन्त स्थित हैं ॥२०५५-२०५६॥

सोमणस-सेल-उदए[1], चउ - भजिदे होंति कूड-उदयाणि ।
वित्थारायामेसुं, कूडाणं णत्थि उवएसो ॥२०५७॥

अर्थ :—सौमनस गजदन्तकी ऊँचाईमें चारका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतनी इन कूटोंकी ऊँचाई है। इन कूटोंके विस्तार और लम्बाईके विषयमें उपदेश नहीं है ॥२०५७॥

भूमिए मुहं [2]विसोहिय, उदय-हिदं भू-मुहाउ-खय-वड्ढी ।
मुह-सय पण-घण भूमी, उदओ इगि[3]-हीण-कूड-परिसंखा ॥२०५८॥

। १०० । १२५ । ६ ।

अर्थ :—भूमिमेंसे मुख कम करके उदयका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतना भूमिकी अपेक्षा हानि और मुखकी अपेक्षा वृद्धिका प्रमाण होता है। यहाँ मुखका प्रमाण सौ (१००) योजन, भूमिका पाँचके घन (१२५) योजन और उदय एक कम कूट-संख्या (७ — १=६) प्रमाण है ॥२०५८॥

खय-वड्ढीण पमाणं, पणुवीसं जोयणाणि छब्भजिदं ।
भूमि - मुहेसुं हीणाहियम्मि कूडाण उच्छेहो ॥२०५९॥

$\left| \frac{२५}{६} \right|$

अर्थ :—वह क्षय-वृद्धिका प्रमाण छहसे भाजित पच्चीस योजन है। इसको भूमिमेंसे कम करने और मुखमें जोड़ने पर कूटोंकी ऊँचाईका प्रमाण प्राप्त होता है ॥२०५९॥

अहवा इच्छा-गुणिदा-खय-वड्ढी खिदि-विसुद्ध-मुह-जुत्ता ।
कूडाण होइ उदओ, तेसुं पढमस्स पण - विंदं ॥२०६०॥

। १२५ ।

---

१. द. ब. क. ज. य. ठ. उवओ, उ. उदऊ। २. ब. क. ज. य. ठ. उ. मुहम्मि सोधिय। द. मुहं सोधिय। ३. द. ज. य. समाण, ब. छम्माण, क. उ. ठ. आमास।

अर्थ :—अथवा, इच्छा राशिसे गुणित क्षय-वृद्धिको भूमिमेंसे कम करने और मुखमें मिला देने पर कूटोंकी ऊँचाई प्राप्त हो जाती है। इनमेंसे प्रथम कूटकी ऊँचाई पाँचके घन (१२५ योजन) प्रमाण है ॥२०६०॥

बिदियस्स बीस - जुत्तं, सयमेक्कं[1] छब्भिहत्त-पंच-कला ।
सोलस-सहिदं च सयं, दोण्णि कला तिय-हिदा तइज्जस्स ॥२०६१॥

। १२० । $\frac{5}{6}$ । । ११६ । $\frac{2}{3}$ ।

अर्थ :—द्वितीय कूटकी ऊँचाई एकसौ बीस योजन और छहसे विभक्त पाँच कला (१२०$\frac{5}{6}$ योजन) प्रमाण तथा तृतीय कूटकी ऊँचाई एकसौ सोलह योजन और तीनसे भाजित दो कला (११६$\frac{2}{3}$ यो०) प्रमाण है ॥२०६१॥

बारस-अब्भहिय-सयं, जोयणमद्धं च तुरिम - कूडस्स ।
जोयण-ति-भाग-जुत्तं, पंचम - कूडस्स अट्ठ - सहिद-सयं ॥२०६२॥

। ११२ । $\frac{1}{2}$ । । १०८ । $\frac{1}{3}$ ।

अर्थ :—चतुर्थ कूटकी ऊँचाई एकसौ साढ़े बारह (११२$\frac{1}{2}$) योजन और पाँचवें कूट की ऊँचाई एकसौ आठ (१०८$\frac{1}{3}$) योजन तथा एक योजनके तीसरे भागसे अधिक है ॥२०६२॥

चउ-जुत्त-जोयण-सयं, छब्भिहत्ता इगि-कला य छट्ठस्स ।
एक्क - सय - जोयणाइं, सत्तम - कूडस्स उच्छेहो ॥२०६३॥

। १०४ । $\frac{1}{6}$ । १०० ।

अर्थ :—छठे कूटकी ऊँचाई एकसौ चार योजन और छहसे भाजित एक कला (१०४$\frac{1}{6}$ यो०) प्रमाण तथा सातवें कूटकी ऊँचाई एकसौ (१००) योजन प्रमाण है ॥२०६३॥

सोमणस-णाम-गिरिणो, आयामे सग-हिदम्मि जं लद्धं ।
कूडाणमंतरालं, तं चिय णादव्वि पत्तेक्कं ॥२०६४॥

अर्थ :—सौमनस नामक पर्वतकी लम्बाईमें सातका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतना प्रत्येक कूटके अन्तरालका प्रमाण होता है ॥२०६४॥

---

१. ब. सयमेत्तं ।

चत्तारि सहस्साइं, तिण्णि सया जोयणाणि पण्णरसा ।
तेत्तीसहिय - सएणं, भाजिद - बासीदि - कल - संखा ॥२०६५॥

। ४३१५ । $\frac{८२}{१३३}$ ।

अर्थ :—यह अन्तराल चार हजार तीनसौ पन्द्रह योजन और एकसौ तैंतीससे भाजित बयासी कला (४३१५$\frac{८२}{१३३}$ योजन) प्रमाण है ॥२०६५॥

आदिम - कूडोवरिमे, जिण-भवणं तस्स वास-उच्छेहो ।
दोहं च वण्णणाओ, पंडुग - वण - जिणपुर - सरिच्छा ॥२०६६॥

अर्थ :—प्रथम कूटके ऊपर एक जिन-भवन है। उसके विस्तार, ऊँचाई और लम्बाई आदिका वर्णन पाण्डुकबन-सम्बन्धी जिनपुरके सदृश है ॥२०६६॥

सेसेसु कूडेसु, वेंतर - देवाण होंति पासादा ।
वेदी-तोरण-जुत्ता, कणयमया रयण - वर - खचिदा ॥२०६७॥

अर्थ :—शेष कूटोंपर वेदी एवं तोरण सहित एवं उत्तम रत्नोंसे खचित ऐसे व्यन्तर देवोंके स्वर्णमय प्रासाद हैं ॥२०६७॥

कंचण-कूडे णिवसइ, सुवच्छ-देवि[१] त्ति एक्क - पल्लाऊ ।
सिरिवच्छ - मित्तदेवी, कूडवरे विमल - णामम्मि ॥२०६८॥

अर्थ :—काञ्चनकूट पर एक पल्यप्रमाण आयुसे युक्त सुवत्सादेवी (सुमित्रा देवी) और विमलनामक श्रेष्ठ कूटपर श्रीवत्समित्रा देवी निवास करती है ॥२०६८॥

अवसेसेसु चउसु, कूडेसु वाण - वेंतरा देवा[२] ।
णिय-कूड-सरिस - णामा, विविह - विणोदेहि कोडंति ॥२०६९॥

अर्थ :—शेष चार कूटोंपर अपने-अपने कूट सदृश नामवाले व्यन्तरदेव विविध प्रकारके विनोद पूर्वक क्रीड़ा करते हैं ॥२०६९॥

विद्युत्प्रभगजदन्तोंके कूटोंका वर्णन -

विज्जुप्पहस्स उवरिं, णव कूडा होंति णिरुवमायारा ।
सिद्धो विज्जुपहक्खो, देवकुरु-पउम-तवण-सत्थिकया ॥२०७०॥

---

१ द. ब. क उ. ठ. देवी, ज देवे । २ द ब देवो ।

सयउज्जल-सीतोदा, हरि त्ति णामेहि भुवण-विक्खादा ।
एदाणं उच्छेहो, णिय - सेलुच्छेह - चउ - भागो ।।२०७१।।

अर्थ :—विद्युत्प्रभ पर्वतके ऊपर सिद्ध, विद्युत्प्रभ, देवकुरु, पद्म, तपन, स्वस्तिक, शतोज्ज्वल (शतज्वाल), सीतोदा और हरि, इन नामोंसे त्रैलोक्यमें विख्यात तथा अनुपम आकार-वाले नौ कूट हैं । इन कूटोंकी ऊँचाई अपने पर्वतकी ऊँचाईके चतुर्थ भाग प्रमाण है ।।२०७०-२०७१।।

दीहत्ते वित्थारे[1], उवएसो ताण संपइ पणट्ठो ।
आदिम - कूडुच्छेहो[2], पणवीस-जुदं च जोयणाण सयं ।।२०७२।।
एक्कं चिय होदि सयं, अंतिम - कूडस्स उदय-परिमाणं ।
उभय - विसेसे [3]अड-हिद-पंचकदी हाणि - वड्ढीओ ।।२०७३।।

अर्थ :—उन कूटोंकी लम्बाई एवं विस्तार-विषयक उपदेश इस समय नष्ट हो चुका है । इनमेंसे प्रथम कूटकी ऊँचाई एकसौ पच्चीस (१२५) योजन है और अन्तिम कूटकी ऊँचाईका प्रमाण एकसौ (१००) योजन है । प्रथम कूटकी ऊँचाईमेंसे अन्तिम कूटकी ऊँचाई घटाकर शेष पाँचके वर्ग (१२५ — १००=२५) में आठका भाग देनेसे हानि-वृद्धिका प्रमाण ($\frac{२५}{८}$ या ३ $\frac{१}{८}$ यो०) निकलता है ।।२०७२-२०७३।।

इच्छाए गुणिदाओ[4], हाणि-वड्ढीओ खिदि-विसुद्धाओ ।
मुह - जुत्ताओ कमसो, कूडाणं होदि उच्छेहो ।।२०७४।।

अर्थ :—इच्छासे गुणित हानि-वृद्धिके प्रमाणको भूमिमेंसे कम करने अथवा मुखमें जोड़ देने पर क्रमशः कूटोंकी ऊँचाई प्राप्त होती है ।।२०७४।।

पणवीसब्भहिय - सयं, पमाणमुदओ पहिल्लए सेसे ।
उप्पण्णुप्पण्णेसुं, पणुवीसं समवणेज्ज अट्ठ - हिदं ।।२०७५।।

। १२५ । १२१ । $\frac{७}{८}$ । ११८ । $\frac{३}{४}$ । ११५ । $\frac{५}{८}$ । ११२ । $\frac{४}{८}$ । १०९ । $\frac{३}{८}$ । १०६ । $\frac{१}{४}$ ।
१०३ । $\frac{१}{८}$ । १०० ।

---

१. द. ब. क. ठ. उ. वि वियादे, ज. वियादे । २ द. ज. य कूडाणिवहो, ब. क. ठ. उ. कूडाणुदयो । ३. द. ज. य. अदहिद, ब. क. उ. ठ. अट्ठहिद । ४ द. गुणिदादिय-वड्ढीओ खिदि-महाविसुंदाओ । ठ. क. ब. गुणिदाहिय वड्ढीओ खिदि-महाविसुद्धाओ । य. गुणिदादिय वड्ढीओ खिदि-महावसुदाओ । ज. गुणि दाहिय वड्ढीओ खिदि-महावसंदाओ ।

अर्थ :—प्रथम कूटकी ऊँचाई एकसौ पच्चीस (१२५) योजन प्रमाण है। शेष कूटोंकी ऊँचाई जाननेके लिए उत्तरोत्तर उत्पन्न प्रमाणमेंसे आठसे भाजित पच्चीस (३$\frac{१}{८}$) योजन कम करते जाना चाहिए ॥२०७५॥

यथा—प्र० कूटकी १२५ यो०, द्वि० १२१$\frac{७}{८}$ यो०, तृ० ११८$\frac{६}{८}$ यो०, च० ११५$\frac{५}{८}$ यो०, पं० ११२$\frac{४}{८}$ यो०, ष० १०९$\frac{३}{८}$ यो०, स० १०६$\frac{२}{८}$ यो०, अ० १०३$\frac{१}{८}$ यो० और नवम कूट की १०० योजन ऊँचाई है।

विज्जुपह-णाम-गिरिणो, आयामे णव-हिदम्मि जं लद्धं ।
कूडाणमंतरालं, तं चिय जाएदि पत्तेक्कं ॥२०७६॥

अर्थ :—विद्युत्प्रभ नामक पर्वतकी लम्बाईमें नौ (९) का भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतना प्रत्येक कूटके अन्तरालका प्रमाण होता है ॥२०७६॥

तिण्णि सहस्सा ति-सया, छप्पण्णा जोयणा कलाणं पि ।
एक्कत्तरि[1] - अहियसए, अवहिद - एक्कोत्तर - सयाइं ॥२०७७॥

| ३३५६ | $\frac{१०१}{१७१}$ |

अर्थ :—यह अन्तराल-प्रमाण तीन हजार तीन सौ छप्पन योजन और एकसौ इकहत्तरमे भाजित एकसौ एक कला (३३५६$\frac{१०१}{१७१}$ यो०) प्रमाण है ॥२०७७॥

जिण - भवण - प्पहुदीणं, सोमणसे पव्वयं व एदस्सि ।
णवरि विसेसो एसो, देवीणं अण्ण - णामाणि ॥२०७८॥

अर्थ :—इस पर्वतपर जिन-भवनादिक सौमनस-पर्वतके ही सदृश हैं। विशेष केवल यह है कि यहाँ देवियोंके नाम अन्य हैं ॥२०७८॥

सोत्थिक - कूडे चेट्ठदि, वेंतरदेवी बल त्ति णामेणं ।
कूडम्मि तपण - णामे, देवी वर - वारिसेण त्ति ॥२०७९॥

अर्थ :—स्वस्तिक कूटपर बला नामक व्यन्तरदेवी एवं तपनकूटपर वारिषेणा नामक उत्तम देवी रहती है ॥२०७९॥

---

१. द. ज य. एक्कत्तर।

मंदर-गिरिदो गच्छिय, ओयरणमद्धं गिरिम्मि विज्जुपहे ।
चेट्ठेदि गुहा[1] रम्मा, पव्वद - वासो व आयामा ।।२०८०।।

अर्थ :—मन्दर पर्वतसे आधा योजन जाकर विद्युत्प्रभपर्वतमें पर्वतके विस्तार सदृश एक लम्बी रमणीय गुफा है ।।२०८०।।

तीए दो - पासेसुं, दारा णिय-जोग्ग-उदय-वित्थारा[2] ।
होंति अकिट्टिम - रूवा, णाणावर-रयण - रमणिज्जा ।।२०८१।।

अर्थ :—इसके दोनों पार्श्वभागोंमें अपने योग्य ऊँचाई एवं विस्तार सहित तथा अनेक उत्तम रत्नोंसे रमणीय अकृत्रिमरूप द्वार हैं ।।२०८१।।

गन्धमादन पर्वतके कूटों आदिका वर्णन —

कूडाणि गंधमादण - गिरिस्स उवरिम्मि सत्त चेट्ठंति ।
सिद्धक्ख - गंधमादण - देवकुरू - गंधवास - लोहिदया ।।२०८२।।
फलिहाणंदा[3] ताणं, सत्ताणि इमाणि होंति णामाणि ।
एदाणं उदयादी, सोमणस - णगं व णादव्वा ।।२०८३।।

अर्थ :—गन्धमादनपर्वतके ऊपर सात कूट स्थित हैं । सिद्ध, गन्धमादन, देवकुरु, गन्धव्यास (गन्धमालिनी ?) लोहित, स्फटिक और आनन्द ये उन सात कूटोंके नाम हैं । इन कूटोंकी ऊँचाई आदिक सौमनस पर्वतके सदृश ही जाननी चाहिए ।।२०८२-२०८३।।

णवरि विसेसो एसो, लोहिद - कूडे वसेदि भोगवदी ।
भोगंकरा[4] य देवी, कूडे फलिहाभिधाणम्मि ।।२०८४।।

अर्थ :—विशेष यह है कि लोहित कूटपर भोगवती एवं स्फटिक नामक कूटपर भोगङ्करा-देवी निवास करती है ।।२०८४।।

माल्यवान् पर्वतके कूटों आदिका वर्णन—

णव कूडा चेट्ठंते, उवरिम्मि गिरिस्स मालवंतस्स ।
सिद्धक्ख - मालमुत्तरकुरु[5]-कच्छा सागरं[6] हि रजदक्खा ।।२०८५।।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. ठ. गुणारम्भे । २. द ब. क. ज. य. उ. ठ. वित्थारो । ३. द. क. ज. य. उ. ठ. पलिहाणदा राणं । ४. द. ब. क. ज. य. उ. ठ. भोगंकहि । ५. द. ब. क. ज. य. उ. ठ. मतर । ६. द. ब. क. ज. य. उ. ठ. मागरंमि ।

तह पुण्णभद्द - सीदा, हरिसह - णामा इमाण कूडाणं ।
वित्थारोदय - पहुदी, विज्जुप्पह - कूड - सारिच्छा ॥२०८६॥

अर्थ :—माल्यवान् पर्वतके ऊपर नौ कूट स्थित हैं। सिद्ध, माल्यवान्, उत्तरकुरु, कच्छ, सागर, रजत, पूर्णभद्र, सीता और हरिसह, ये इन कूटोंके नाम हैं। इनका विस्तार एवं ऊँचाई आदिक विद्युत्प्रभ पर्वतके कूटोंके सदृश ही जानना चाहिए ॥२०८५-२०८६॥

एक्को णवरि विसेसो, सागर-कूडेसु भोगवदि - णामा ।
णिवसेदि रजद - कूडे, णामेणं भोगमालिणी देवी ॥२०८७॥

अर्थ :—विशेषता केवल यह है कि सागर कूटपर भोगवती एवं रजतकूट पर भोगमालिनी नामक देवी निवास करती है ॥२०८७॥

मंदर-गिरिदो गच्छिय, जोयणमद्धं गिरिम्मि एदस्सि ।
सोहेदि [1]गुहा पव्वय - वित्थार - सरिच्छ - दीहत्ता ॥२०८८॥

अर्थ :—मन्दर पर्वतसे आधा योजन आगे जाकर इस पर्वतके ऊपर पर्वतीय विस्तारके सदृश लम्बी गुफा कही जाती है ॥२०८८॥

तीए दो - पासेसुं, दारा णिय-जोग्ग-उदय-वित्थारा ।
फुरिद-वर-रयण-किरणा, अकिट्टिमा ते णिरुवमाणा ॥२०८९॥

अर्थ :—उसके दोनों पार्श्वभागोंमें अपने योग्य उदय एवं विस्तार सहित तथा प्रकाशमान उत्तम रत्नकिरणोंसे संयुक्त वे अकृत्रिम एवं अनुपम द्वार हैं ॥२०८९॥

[चित्र अगले पृष्ठ पर देखिये]

---

१. द. ब. क. ज. उ. ठ. गुणा ।

सीतोदा नदीका सविस्तर वर्णन—

णिसह-धराहर-उवरिम-तिगिंछ-दहस्स उत्तर - दुवारे ।
णिग्गच्छदि दिव्व - णदी, सीदोदा भुवण - विक्खादा ।।२०६०।।

अर्थ :—निषध-पर्वतके ऊपर (स्थित) तिगिञ्छ-द्रहके उत्तर-द्वारमे लोक विख्यात दिव्य सीतोदा महानदी निकलती है ।।२०६०।।

जोयण सत्त - सहस्से, चउस्सदे एक्कवीस अदिरित्तं ।
णिसहस्सोवरि वच्चदि, सीदोदा उत्तर - मुहेणं ॥२०६१॥

। ७४२१ । $\frac{१}{१९}$ ।

अर्थ :—यह सीतोदा नदी उत्तरमुख होकर सात हजार चारसौ इक्कीस योजनसे कुछ अधिक (७४२१$\frac{१}{१९}$ योजन) निषधपर्वतके ऊपर जाती है ॥२०६१॥

आगंतूण तत्तो सा, पडिसीदोद - णाम - कुंडम्मि ।
पडिदूणं णिग्गच्छदि, तस्सुत्तर - तोरण - दुवारे ॥२०६२॥
णिग्गच्छिय सा गच्छदि, उत्तर-मग्गेण जाव मेरु-गिरिं ।
दो - कोसेहिमपाविय, णिवत्तदे पच्छिम - मुहेणं ॥२०६३॥

अर्थ :—पश्चात् वह नदी पर्वत परसे आकर और प्रतिसीतोद नामक कुण्डमें गिरकर उसके उत्तर-तोरणद्वारसे निकलती हुई उत्तर-मार्गसे मेरु-पर्वत पर्यन्त जाती है। पुनः दो कोससे मेरु पर्वतको न प्राप्तकर अर्थात् दो कोस दूरसे ही पश्चिमकी ओर मुड़ जाती है ॥२०६२–२०६३॥

विज्जुप्पहस्स गिरिणो, गुहाए उत्तर - मुहेण पविसेदि ।
वच्चेदि[1] भद्दसाले[2], वंकस - रूवेण तेत्ति - अंतरिदा ॥२०६४॥

अर्थ :—अनन्तर वह नदी उतने (दो कोस) प्रमाण अन्तर सहित कुटिलरूपसे विद्युत्प्रभ-पर्वतकी गुफाके उत्तरमुखमें प्रवेशकर भद्रशाल वनमें जाती है ॥२०६४॥

मेरु-बहु-मज्झ-भागं, णिय-मज्झ-प्पणिधियं पि [3]कादूणं ।
पच्छिम - मुहेण गच्छदि, विदेह - विजयस्स बहु-मज्झे ॥२०६५॥

अर्थ :—मेरुके बहुमध्य भागको अपना मध्य-प्रणिधि करके वह नदी पश्चिम मुखसे विदेहक्षेत्रके बहुमध्यमें होकर जाती है ॥२०६५॥

देवकुरु - खेत्त - जादा, णदी सहस्सा हवंति चुलसीदी ।
सीतोदा - पडितीरं, पविसंति सहस्स चावालं ॥२०६६॥

। ८४००० ।

---

१. द. क. ज. य. उ. ठ. पविसेदि । २. द. सहसाले, ब. उ. भद्दसालो । ३. द. ब. क. ज. य. उ. ठ कूडाण ।

अर्थ :—देवकुरु-क्षेत्रमें उत्पन्न हुई चौरासी हजार (८४०००) नदियाँ हैं। इनमेंसे बयालीस हजार नदियाँ सीतोदाके दोनों तीरोंमेंसे प्रत्येक तीरमें प्रवेश करती है ।।२०९६।।

अवर-विदेह-समुब्भव-णदो समग्गा हवंति चउ - लक्खा ।
अडदालं च सहस्सा, अडतीसा पविसंति सीदोदं ।।२०९७।।

। ४४८०३८ ।

अर्थ :—अपर विदेहक्षेत्रमें उत्पन्न हुई कुल नदियाँ चार लाख अड़तालीस हजार अड़तीस (४४८०३८) हैं, जो सीतोदामें प्रवेश करती हैं ।।२०९७।।

जंबूदीवस्स तदो, जगदी - बिल - दारएण संचरियं ।
पविसइ लवणंबुणिहि, परिवार - णईहि जुत्ता सा ।।२०९८।।

अर्थ :—पश्चात् जम्बूद्वीपकी जगतीके बिल-द्वारमेंसे जाकर वह नदी परिवार-नदियोंसे युक्त होती हुई लवण-समुद्रमें प्रवेश करती है ।।२०९८।।

रुंदावगाढ - पहुदी, हरिकंताबो हवंति दो - गुणिदा ।
तीए बे - तड - वेदी - उववण - संडाहि - रम्माए ।।२०९९।।

अर्थ :– दो तट-वेदियों और उपवन-खण्डोंसे रमणीय उस सीतोदा नदीका विस्तार एवं गहराई आदि हरिकान्ता नदीसे दूना है ।।२०९९।।

यमक पर्वतोंका वर्णन—

जोयण - सहस्समेक्कं, णिसह - गिरिदस्स उत्तरे गंतुं ।
चेट्ठंति जमग - सेला, सीदोदा - उभय - पुलिणेसुं ।।२१००।।

अर्थ :—निषध-पर्वतके उत्तरमें एक हजार योजन जाकर सीतोदा-नदीके दोनों किनारों पर यमक शैल स्थित हैं ।।२१००।।

णामेण जमग - कूडो, पुव्वम्मि तडे णदीए चेट्ठेदि ।
अवरे मेघं कूडो, फुरंत - वर - रयण - किरणोहो ।।२१०१।।

अर्थ :—प्रकाशमान उत्तम रत्नोंके किरण-समूह सहित यमक कूट सीतोदा नदीके पूर्व तट पर है और मेघकूट पश्चिम तटपर है ।।२१०१।।

दोण्हं पि अंतरालं, पंच - सया जोयणाणि सेलाणं ।
दोण्णि सहस्सा जोयण - तुंगा मूले सहस्स - विस्थारो ॥२१०२॥

। ५०० । २००० । १००० ।

अर्थ :—इन दोनों पर्वतोंका अन्तराल पांचसौ (५००) योजन प्रमाण है। प्रत्येक पर्वतकी ऊँचाई दो हजार (२०००) योजन तथा मूल विस्तार एक हजार (१०००) योजन प्रमाण है ॥२१०२॥

सत्त - सया पण्णासा, पत्तेक्कं ताण मज्झ - विस्थारो ।
पंच - सय - जोयणाणि, सिहर - तले रुंद - परिमाणं ॥२१०३॥

। ७५० । ५०० ।

अर्थ :—उनमेंसे प्रत्येक पर्वतका मध्य-विस्तार सातसौ पचास (७५०) योजन है और शिखरतलमें विस्तारका प्रमाण पाँचसौ (५००) योजन है ॥२१०३॥

एदाणं परिहीओ, विस्थारे ति - गुणिदम्मि अदिरित्तो ।
अवगाढो जमगाणं, णिय - णिय - उच्छेह - चउभागो ॥२१०४॥

अर्थ :—इन (पर्वतों) की परिधियाँ तिगुने विस्तारसे अधिक हैं। यमक-पर्वतोंकी गहराई अपनी-अपनी ऊँचाईके चतुर्थभाग प्रमाण है ॥२१०४॥

यमक पर्वतोंपर स्थित प्रासाद—

जमगोवरि बहु - मज्झे, पत्तेक्कं होंति [1]दिव्व-पासादा ।
पण - घण - कोसायामा, तद्दुगुणुच्छेह - संपण्णा ॥२१०५॥

। १२५ । २५० ।

अर्थ :—प्रत्येक यमक-पर्वतके ऊपर बहुमध्यभागमें एकसौ पच्चीस (१२५) कोस लम्बा और इससे दूनी (२५० कोस) ऊँचाईसे सम्पन्न दिव्य प्रासाद है ॥२१०५॥

उच्छेह-अद्ध - वासा, सव्वे तवणिज्ज-रजद-रयणमया ।
धुव्वंत - धय - वडाया, वर - तोरणदार - रमणिज्जा ॥२१०६॥

। १२५ ।

---

१. ब. उ. ठ. दव्व ।

अर्थ :—स्वर्ण, चाँदी एवं रत्नोंसे निर्मित, फहराती हुई ध्वजा-पताकाओंसे संयुक्त और उत्तम तोरण-द्वारोंसे रमणीय ये सब प्रासाद अपनी-अपनी ऊँचाईके अर्धभाग (१२५ कोस) प्रमाण विस्तारवाले हैं ।।२१०६।।

जमग - गिरीणं उवरिं, अवरे वि हवंति दिव्व-पासादा ।
उच्छेह - वास - पहुदिसु, उच्छिण्णो ताण उवएसो ।।२१०७।।

अर्थ :—यमक-पर्वतोंके ऊपर और भी (अन्य) दिव्य प्रासाद हैं। उनकी ऊँचाई एवं विस्तारादिका उपदेश नष्ट हो गया है ।।२१०७।।

उववण - संडेहि जुदा, पोक्खरणी-कूव-वावि-आरम्मा ।
फुरिद - वर - रयण - दीवा, ते पासादा विरायंते ।।२१०८।।

अर्थ :—उपवन-खण्डों सहित; पुष्करिणी, कूप एवं वापिकाओंसे रमणीय और प्रकाशमान उत्तम रत्नदीपकोंसे संयुक्त वे प्रासाद शोभायमान हैं ।।२१०८।।

पव्वद - सरिच्छ - णामा, वेंतरदेवा वसंति एदेसुं ।
दस - कोदंडुत्तुंगा, पत्तेक्कं एक्क - पल्लाऊ ।।२१०९।।

अर्थ :—इन प्रासादोंमें पर्वतोंके सदृश नामवाले व्यन्तरदेव निवास करते हैं। इनमेंसे प्रत्येक देव दस धनुष ऊँचा और एक पल्यप्रमाण आयुवाला है ।।२१०९।।

सामाणिय-तणुरक्खा, सत्ताणीयाणि परिस - तिदयं च ।
किब्बिसि-अभियोगा तह, पइण्णया ताण होंति पत्तेक्कं ।।२११०।।

अर्थ :—उनमेंसे प्रत्येकके सामानिक, तनुरक्ष, सप्तानीक, तीनों पारिषद, किल्बिषिक, आभियोग्य और प्रकीर्णक देव होते हैं ।।२११०।।

सामाणिय - पहुदीणं, पासादा कणय-रजद-रयणमया ।
तद्देवीणं भवणा, सोहंति हु णिरुवमायारा ।।२१११।।

अर्थ :—स्वर्ण, चाँदी एवं रत्नोंसे निर्मित सामानिक आदि देवोंके प्रासाद और उनकी देवियोंके अनुपम आकारवाले भवन शोभायमान हैं ।।२१११।।

जिनभवन एवं द्रहोंका वर्णन—

जमगं मेघसुराणं, [1]भवणेहिंतो दिसाए [2]पुव्वाए ।
एक्केक्कं जिणगेहा, पंडुग - जिणगेह - सारिच्छा ।।२११२।।

अर्थ :—यमक और मेघ देवोंके भवनोंसे पूर्वदिशामें पाण्डुक-वनके जिनमन्दिर सदृश एक-एक जिन भवन है ।।२११२।।

पंडुग-जिण - गेहाणं, मुहमंडव-पहुदि-वण्णणा सव्वा ।
जा पुव्वंसि भणिदा, सा जिण - भवणाण एदाणं ।।२११३।।

अर्थ :—पाण्डुकवनमें स्थित जिन भवनोंके मुखमण्डप आदिका जो सम्पूर्ण वर्णन पूर्वमें किया है, वही वर्णन इन जिन-भवनोंका भी है ।।२११३।।

जमगं मेघ - गिरीदो, पंच - सया जोयणाणि गंतूणं ।
पंच - दहा[3] पत्तेक्कं, सहस्स - दल - जोयणंतरिदा ।।२११४।।

। ५०० ।

अर्थ :—यमक और मेघगिरिसे पाँचसौ योजन आगे जाकर पांच द्रह हैं, जिनमें प्रत्येकके बीच अर्धसहस्र (५००) योजनका अन्तराल है ।।२११४।।

उत्तर - दक्खिण - दीहा, सहस्समेक्कं हवंति पत्तेक्कं ।
पंच - सय - जोयणाइं, [4]रुंदा दस - जोयणवगाढा ।।२११५।।

। १००० । ५०० । १० ।

अर्थ :—प्रत्येक द्रह एक हजार प्रमाण उत्तर-दक्षिण लम्बा, पाँचसौ योजन चौड़ा और दस योजन गहरा है ।।२११५।।

णिसह-कुरु-सूर-सुलसा, विज्जू - णामेहि होंति ते पंच ।
पंचाणं बहुमज्झे, सीदोदा सा गदा[5] सरिया ।।२११६।।

---

१. ब. भवणेहिंते । २. द. क. ज. य. उ. ठ. पुव्वाय । ३. द. पंचवहो, क. ज. य. उ. ठ. पंचदहो । ४. द. ब. क. ज. य. उ. ठ. रुंदं । ५. द. ब. क. ज. य. उ. ठ. रवा ।

अर्थ :—निषध, कुरु (देवकुरु), सूर, सुलस और विद्युत्, ये उन पांच द्रहोंके नाम हैं। इन पांचों द्रहोंके बहुमध्य-भागमेंसे सीतोदा नदी गई है ।।२११६।।

होंति दहाणं मज्झे, अंबुज - कुसुमाण दिव्व - भवणेसुं ।
णिय - णिय - दह-णामाणं[1], णागकुमाराए देवीओ[2] ।।२११७।।

अर्थ :— द्रहोंके मध्यमें कमल-पुष्पोंके दिव्य भवनोंमें अपने-अपने द्रहके नामवाले नागकुमार देव एवं देवियोंके निवास हैं ।।२११७।।

अवसेस-वण्णणाओ, जाओ[3] पउम - द्दहम्मि भणिदाओ ।
ताओ च्चिय एदेसुं, णादव्वाओ वर - दहेसुं ।।२११८।।

अर्थ :—अवशेष वर्णनाएँ जो पद्मद्रहके विषयमें कही गई हैं, वे ही इन उत्तम द्रहोंके विषयमें भी जाननी चाहिए ।।२११८।।

कांचन शैलोंका वर्णन—

एक्केक्कस्स दहस्स य, पुव्व-दिसाए य अवर - दिब्भागे ।
दह-दह कंचण-सेला, जोयण - सय - मेत्त - उच्छेहा[4] ।।२११९।।

। १०० ।

अर्थ :—प्रत्येक द्रहके पूर्व एवं पश्चिम दिग्-भागमें सौ-सौ योजन ऊँचे दस-दस काञ्चन-शैल (कनक पर्वत) है ।।२११९।।

रुंदं मूलम्मि सदं, पण्णत्तरि जोयणाणि मज्झम्मि ।
पण्णासा सिहर - तले, पत्तेक्कं कणय[5] - सेलाणं ।।२१२०।।

। १०० । ७५ । ५० ।

अर्थ :—प्रत्येक कनक-पर्वतका विस्तार मूलमें सौ (१००) योजन, मध्यमें पचहत्तर (७५) योजन और शिखरतलमें पचास (५०) योजन प्रमाण है ।।२१२०।।

---

१ द. ब क. ज य. णामाओ, उ. ठ. णामाउ । २. ब. णासा, द. क. ज. य. उ. ठ. णामा । ३. द. ब. उ. जादो पवद्दहम्मि । ४. द. ब. क. ज. उ. ठ. उच्छेहो । ५. द. क. ज. य. जणय, ब. उ. ठ. जाणय ।

पणवीस - जोयणाइं, अवगाढा ते फुरंत-मणि-किरणा ।
ति-गुणिद-णिय-विस्थारा, अदिरित्ता ताण परिहीओ ।।२१२१।।

। २५ ।

अर्थ :—प्रकाशमान मणि-किरणों सहित वे पर्वत पच्चीस योजन गहरे हैं। इनकी परिधियोंका प्रमाण अपने-अपने विस्तारसे कुछ अधिक तिगुना है ।।२१२१।।

चउ-तोरण-वेदीहिं, मूले उवरिम्मि उववण - वणेहिं ।
पोक्खरणीहिं रम्मा, कणयगिरी मणहरा सव्वे ।।२१२२।।

अर्थ :—ये सब मनोहर कनकगिरि मूलमें एवं ऊपर चार तोरण-वेदियों, वन-उपवनों और पुष्करिणियोंसे रमणीक हैं ।।२१२२।।

कणय-गिरीणं[1] उवरिं, पासादा कणय-रजद-रयणमया ।
णच्चंत - धय - वडाया, कालागरु - धूव - गंधड्ढा ।।२१२३।।

अर्थ :—कनकगिरियों पर स्वर्ण-चाँदी एवं रत्नोंसे निर्मित नाचती हुई ध्वजा-पताकाओं सहित और कालागरु धूपकी गन्धसे व्याप्त प्रासाद हैं ।।२१२३।।

जमगं मेघगिरी व्व, कंचण - सेलाण वण्णणं सेसं ।
णवरि विसेसो कंचण - णाम[2] - वेंतराण वासेदे ।।२१२४।।

अर्थ :—काञ्चन शैलोंका शेष वर्णन यमक और मेघगिरिके सदृश है। विशेषता केवल इतनी है कि ये पर्वत काञ्चन नामक व्यन्तर देवोंके निवास हैं ।।२१२४।।

दिव्य-वेदी—

दु-सहस्स-जोयणाणि, बाणउदी दो कलाउ पविहत्ता ।
उणवीसेहिं गच्छिय, [3]विज्जु - दहादो य उत्तरे भागे ।।२१२५।।

। २०९२ । क $\frac{२}{१९}$ ।

---

१. द. ज. य. कणयमवीणं, ब. क. ठ. कणयमईणं । २. द. ब. णामावेंतरं पि, क. ज. य. णामा वितरं पि, ठ. उ. णामा वेंतरं मि । ३. द. ब. क. ज. य. उ. ठ. उज्जुदहादो ।

चेट्ठेदि दिव्व-वेदी, जोयण-कोसद्ध - उदय - वित्थारा ।
पुव्वावर - भागेसुं, संलग्गा गयदंत - सेलाणं ॥२१२६॥

। जो १ । को $\frac{1}{2}$ ।

अर्थ :—विद्युत्द्रहसे उत्तरकी ओर दो हजार बानबै योजन और उन्नीससे विभक्त दो कला (२०९२$\frac{2}{19}$ योजन) प्रमाण जाकर एक योजन ऊँची, आधा ($\frac{1}{2}$) कोस चौड़ी और पूर्व-पश्चिम भागोंमें गजदन्त-पर्वतोंसे जुड़ी हुई दिव्य वेदी स्थित है ॥२१२५-२१२६॥

चरियट्टालय - विउला[1], बहु-तोरण-दार-संजुदा रम्मा ।
दारोवरिम - तलेसुं, सा जिण - भवणेहिं संपुण्णा ॥२१२७॥

अर्थ :—वह वेदी विपुल मार्गों एवं अट्टालयों सहित, बहुत तोरण-द्वारोंसे संयुक्त और द्वारोंके उपरिम-भागोंमें स्थित जिन-भवनोंसे परिपूर्ण है ॥२१२७॥

दिग्गजेन्द्र पर्वतोंका वर्णन--

पुव्वावर - भागेसुं, सीदोद - णदीए भद्दसाल - वणे ।
सत्थिक - अंजण - सेला, णामेणं [2]दिग्गइंदित्ति ॥२१२८॥

अर्थ :—भद्रशालवनके भीतर सीतोदा नदीके पूर्व-पश्चिम भागमें स्वस्तिक और अञ्जन नामक दिग्गजेन्द्र पर्वत हैं ॥२१२८॥

जोयण - सयमुत्तुंगा, तेत्तिय-परिमाण-मूल-वित्थारा ।
उच्छेह - तुरिम - गाढा, पण्णासा सिहर - विक्खंभो ॥२१२९॥

। १०० । १०० । २५ । ५० ।

अर्थ :—ये पर्वत एक सौ (१००) योजन ऊँचे, मूलमें इतने (१०० यो०) ही प्रमाण विस्तारसे युक्त और ऊँचाईके चतुर्थ भाग (२५ यो०) प्रमाण नींव तथा पचास (५०) योजन प्रमाण शिखर-विस्तार सहित हैं ॥२१२९॥

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. ठ. विरदा । २. द. ब. दिग्गिरिंदित्ति ।

पुव्वं पिव वण - संडा, मूले उवरिम्मि दिग्गजाणं[1] पि ।
वर - वेदी - दार - जुदा, समंतदो सुंदरा होंति ।।२१३०।।

अर्थ :—इन दिग्गज-पर्वतोंके ऊपर एवं मूलमें पूर्व वर्णन के ही सदृश उत्तम वन-वेदी-द्वारोंसे संयुक्त और चारों ओर से सुन्दर वन-खण्ड हैं ।।२१३०।।

एदाणं परिहीओ, वासेणं ति - गुणिदेण अहियाओ ।
ताण उवरिम्मि दिव्वा, पासादा कणय - रयणमया ।।२१३१।।

अर्थ :—इनकी परिधियाँ तिगुणे विस्तारसे कुछ अधिक हैं । उन पर्वतों के ऊपर स्वर्ण और रत्नमय दिव्य प्रासाद हैं ।।२१३१।।

पण-घण-कोसायामा, तद्दल - वासा हवंति पत्तेक्कं ।
सव्वे सरिसुच्छेहा, वासेण दिवड्ढ - गुणिदेण ।।२१३२।।

। १२५ । $\frac{१२५}{२}$ । $\frac{३७५}{४}$ ।

अर्थ :—इन सबमें प्रत्येक प्रासाद पाँचके घन (१२५ कोस) प्रमाण लम्बा, इससे आधे (६२$\frac{1}{2}$ कोस) प्रमाण चौड़ा और डेढ़-गुणा (९३$\frac{3}{4}$ कोस) ऊँचा है ।।२१३२।।

एदेसुं भवणेसुं, कीडेदि जमो त्ति वाहणो देवो ।
सक्कस्स विकुव्वंतो, एरावद - हत्थि - रूवेणं ।।२१३३।।

अर्थ :—इन भवनोंमें सौधर्म इन्द्रका यम नामक वाहन देव क्रीड़ा किया करता है । यह देव ऐरावत हाथीके रूपसे विक्रिया करता है ।।२१३३।।

जिनेन्द्र-प्रासाद—

तत्तो सीदोदाए, पच्छिम - तीरे जिणिंद - पासादो[2] ।
मंदर - दक्खिण - भागे, तिहुवण - चूडामणी णामो ।।२१३४।।

अर्थ :—इसके आगे मन्दर-पर्वतके दक्षिण भागमें सीतोदा नदीके पश्चिम किनारे पर त्रिभुवन चूड़ामणि नामक जिनेन्द्र-प्रासाद है ।।२१३४।।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. ठ. दिग्गदाण । २. द. ब. क. ज. य. उ. ठ. पासादा ।

उच्छेह - वास - पहुदिं, पंडुग-जिणणाह[1]- मंदिराहिंतो ।
मुहमंडवाहिठाण[2] - प्पहुदीओ चउ - गुणो तस्स ॥२१३५॥

अर्थ :—उस जिनेन्द्रप्रासादकी ऊँचाई एवं विस्तार आदि तथा मुखमण्डप एवं अधिष्ठान आदिक पाण्डुकवनके जिनेन्द्रमन्दिरोंसे चौगुणे विस्तारवाले हैं ॥२१३५॥

मंदर - पच्छिमभागे, सोदोव - णदीए उत्तरे तीरे ।
चेट्ठदि जिणिंद[3] - भवणं, पुव्वं पिव वण्णणेहि जुदं ॥२१३६॥

अर्थ :—मन्दर-पर्वतके पश्चिम-भागमें सीतोदा नदीके उत्तर किनारेपर पूर्व कथित वर्णनोंसे युक्त जिनेन्द्र-भवन स्थित है ॥२१३६॥

शैलोंका वर्णन—

सीदोद-वाहिणीए, दक्खिण - तीरम्मि भद्दसाल - वणे ।
चेट्ठदि कुमुद - सेलं, उत्तर - तीरे पलासगिरो ॥२१३७॥

अर्थ :—भद्रशालवनमें सीतोदा नदीके दक्षिण किनारे पर कुमुद-शैल और उत्तर किनारे-पर पलाश-गिरि स्थित है ॥२१३७॥

एदाओ वण्णणाओ, सयलाओ दिग्गइंद - सरिसाओ ।
णवरि विसेसो तेसु, वरुणसुरो उत्तरिंदस्स ॥२१३८॥

अर्थ :—ये सम्पूर्ण वर्णनाएँ दिग्गजेन्द्र-पर्वतोंके सदृश हैं। विशेष केवल यह है कि यहाँ उत्तरेन्द्रके वरुण नामक लोकपालका निवास है ॥२१३८॥

भद्रशालकी वेदी एवं उसका प्रमाण -

तत्तो पच्छिम - भागे, कणयमया भद्दसाल-वण-वेदी ।
णील - णिसहाचलाणं, उववण वेदीए[4] संलग्गा ॥२१३९॥

अर्थ :—इसके आगे पश्चिम भागमें नील एवं निषध पर्वतकी उपवन वेदीसे संलग्न स्वर्ण-मय भद्रशाल-वन-वेदी है ॥२१३९॥

---

१. द. ब. क. ज. य. ठ. उ. जिणणाम। २. क. ज. उ. मुहमंडलमदिवासं पहुदि। द. मुहमडण-मदिवासं पहुदि। य. मुहमंडणमहिवासं पहुदि। ३. द जिणद। ४. ब. वेदीओ।

तेत्तीस - सहस्साइं, जोयणया छस्सयाइ चुलसीदी ।
उणवीस - हिदाओ चउ - कलाओ वेदीए दीहत्तं ॥२१४०॥

। ३३६८४ । $\frac{४}{१९}$ ।

अर्थ :—वेदीकी लम्बाई तेंतीस हजार छह सौ चौरासी योजन और उन्नीससे भाजित चार कला (३३६८४$\frac{४}{१९}$ योजन) प्रमाण है ॥२१४०॥

सीता नदीका वर्णन—

उवरिम्मि णील-गिरिणो, दिव्व-दहो केसरि त्ति विक्खादो ।
तस्स य दक्खिण - दारे, णिग्गच्छइ वरणई सीदा ॥२१४१॥

अर्थ :—नील पर्वतके ऊपर केसरी नामसे प्रसिद्ध दिव्य द्रह है । उसके दक्षिण-द्वारसे सीता नामक उत्तम नदी निकलती है ॥२१४१॥

सीदोदये सरिच्छा, पडिऊणं सीद - कुंड[1] - उवरिम्मि ।
तद्दक्खिण - दारेणं, णिक्कामदि दक्खिण - मुहेणं ॥२१४२॥

अर्थ :—सीतोदाके सदृश ही सीतानदी सीता कुण्डमें गिरकर दक्षिण-मुख होती हुई उसके दक्षिण द्वारसे निकलती है ॥२१४२॥

णिक्कमिदूणं वच्चदि, दक्खिण-भागेण जाव मेरुगिरिं ।
दो-कोसेहिमपाविय, पुव्वमुहो वलदि तत्ति - अंतरिदा ॥२१४३॥

अर्थ :—वह नदी कुण्डसे निकलकर मेरु पर्वत तक दक्षिणकी ओरसे जाती हुई दो कोससे उस मेरु-पर्वतको न पाकर उतने मात्र (२ कोस) अन्तर सहित पूर्वकी ओर मुड़ जाती है ॥२१४३॥

सेलम्मि[2] मालवंते, गुहाए दक्खिण - मुहाए पविसेदि ।
णिस्सरिदूणं गच्छदि, [3]कुडिला मेरुस्स मज्झंतं ॥२१४४॥

अर्थ :—वह सीता नदी माल्यवंत पर्वतको दक्षिणमुखवाली गुफामें प्रवेश करती है। पश्चात् उस गुफामेंसे निकलकर कुटिलरूपसे मेरु-पर्वतके मध्यभाग तक जाती है ॥२१४४॥

---

१. द. ब. क. ज. य. उ ठ. सीदकूड । २. द. ब. क. ज. य. उ. ठ. सीलम्मि । ३ ब. क. ज. उ. ठ. कुटिलाया ।

तग्गिरि-मज्झ-पदेसं, णिय-मज्झ-पदेस-पणिधियं कादुं[1] ।
पुव्व - मुहेणं गच्छइ, पुव्व - विदेहस्स बहुमज्झे ॥२१४५॥

अर्थ :—उस पर्वतके मध्यभागको अपना मध्यप्रदेश-प्रणधि करके वह सीतानदी पूर्व विदेहके ठीक मध्यमेंसे पूर्वकी ओर जाती है ॥२१४५॥

जंबूदीवस्स तदो, जगदी - बिल - दारएण संचरियं ।
परिवार - णदीहि जुदा, पविसदि लवणण्णवं सीदा ॥२१४६॥

अर्थ :—अनन्तर जम्बूद्वीपकी जगतीके बिल-द्वारमेंसे निकलकर वह सीता नदी परिवार-नदियोंसे युक्त होती हुई लवणसमुद्रमें प्रवेश करती है ॥२१४६॥

रुंदावगाढ - पहुदिं, तड वेदी - उववणादिकं सव्वं ।
सीदोदा - सारिच्छं, सीद - णदीए वि णादव्वं ॥२१४७॥

अर्थ :—सीता नदीका विस्तार एवं गहराई आदि तथा उसके तट एव वेदी और उपवनादिक सब सीतोदाके सदृश ही जानने चाहिए । २१४७॥

यमकगिरि एवं द्रहोंका वर्णन—

णीलाचल - दक्खिणदो, एक्कं गंतूण जोयण - सहस्सं ।
सीदादो - पासेसुं, चेट्ठंते दोण्णि जमकगिरी ॥२१४८॥

। १००० ।

अर्थ :—नील पर्वतके दक्षिणमें एक हजार योजन जाकर सीताके दोनों पार्श्वभागोंमें दो यमकगिरि स्थित हैं ॥२१४८॥

पुव्वम्मि [2]चित्तणगो, पच्छिम-भाए विचित्त - कूडो[3] य ।
जमगं मेघगिरिंदा सव्वं चिय वण्णणं ताणं ॥२१४९॥

अर्थ :—सीतानदीके पूर्वभागमें चित्रनग और पश्चिम भागमें विचित्रकूट है । इनका सब वर्णन यमक गिरीन्द्र और मेघगिरीन्द्रके सदृश ही समझना चाहिए ॥२१४९॥

---

१ द. ब. क. ज. य. उ. ठ. कूडो । २. द. ब. क. ज. य. उ. ठ. चेत्तणगो । ३. द. ब. क. ज. य. उ. ठ. कूडा ।

जमगगिरिदाहितो, पंच - सया जोयणाणि गंतूणं ।
पंच दहा पत्तेक्कं, सहस्स - दल - जोयणंतरिदा ॥२१५०॥

। ५०० ।

अर्थ :—यमक-पर्वतोंके आगे पाँचसौ (५००) योजन जाकर पाँच द्रह हैं, जिनमेंसे प्रत्येक द्रह अर्धसहस्र (५००) योजन प्रमाण दूरी पर है ॥२१५०॥

णील - कुरु[1] - चंद - एरावदा य णामेहि मालवंतो य ।
ते दिव्व[2] - दहा णिसह-द्दहादि - वर - वण्णणेहि जुदा ॥२१५१॥

अर्थ :—नील, कुरु (उत्तर कुरु), चन्द्र, ऐरावत और माल्यवन्त, ये उन दिव्य द्रहोंके नाम हैं। ये दिव्य द्रह निषध-द्रहादिकके उत्तम वर्णनोंसे युक्त हैं ॥२१५१॥

दु - सहस्सा बाणउदी-जोयण-दोभाग-ऊणवीस-हिदा ।
चरिम-दहादो दक्खिण-भागे[3] गंतूण होदि वर - वेदी ॥२१५२॥

। २०९२$\frac{२}{१९}$ ।

अर्थ :—अन्तिम द्रहसे दो हजार बानबै योजन और उन्नीससे भाजित दो भाग (२०९२$\frac{२}{१९}$ योजन) प्रमाण जाकर दक्षिण भागमें उत्तम वेदी है ॥२१५२॥

पुव्वावर - भाएसुं, सा गयदंताचलाण संलग्गा ।
इगि जोयणमुत्तुंगा, जोयण - अट्ठंस[4] - वित्थारा ॥२१५३॥

। जो १ । दं १०००[5] ।

अर्थ :—पूर्व-पश्चिम-भागोंमें गजदन्त-पर्वतोंसे संलग्न वह वेदी एक योजन ऊँची और एक योजनके आठवें भाग (१००० दण्ड) प्रमाण विस्तार सहित है ॥२१५३॥

चरियट्टालय[6]-पउरा, सा वेदी विविह-धय-वडेहि जुदा ।
दारोवरिम - ठिदेहिं, जिणिंद - भवणेहि रमणिज्जा ॥२१५४॥

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. ठ. कुरुद्दहएरावदा । २. ब. क. ज. य. उ. ठ. ते ह्दिव्व । ३. द. ब. क. ज. य. ठ. उ. भागा । ४. द. ब. क. ठ. उ. मद्धंस । ५. क. ब. ठ. उ., दं ४००० । ६. ब. वरियट्टालय । ७ द. ज. य. दारोवरिमरिदेहिं, क. दारोवरिमतलेहिं, ब. उ. दारोपरमतलेहिं ।

अर्थ :—प्रचुर मार्गों एवं अट्टालिकाओं सहित और नाना प्रकारकी ध्वजा-पताकाओंसे संयुक्त वह वेदी द्वारोंके उपरिमभागोंमें स्थित जिनेन्द्र-भवनोंसे रमणीय है ।।२१५४।।

वर-भद्दसाल - मज्झे, सीता-दु-तडेसु दिग्गइंद - गिरी ।
रोचणवतंस[1] - कूडे, सत्थिय - गिरि - वण्णणेहि जुवा ।।२१५५।।

अर्थ :—उत्तम भद्रशालके मध्यमें सीतानदीके दोनों किनारों पर स्वस्तिक [एवं अञ्जन] गिरिके समान वर्णनोंसे युक्त रोचन एवं अवतंसकूट नामक दिग्गजेन्द्रगिरि हैं ।।२१५५।।

णवरि विसेसो एक्को, ईसाणिदस्स [2]वाहणो देवो ।
णामेणं वइसमणो, तेसुं लीलाए चेट्ठेदि ।।२१५६।।

अर्थ :—विशेषता केवल (एक) यही है कि उन भवनोंमें ईशानेन्द्रका वैश्रवण नामक वाहनदेव लीला पूर्वक निवास करता है ।।२१५६।।

जिन-भवन निर्देश—

सीदा - तरंगिणीए, पुव्वम्मि तडे जिणिंद - पासादो ।
मंदर - उत्तर - पासे, गयदंतब्भंतरे होदि ।।२१५७।।

अर्थ :—गजदन्तके अभ्यन्तरभागमें सीतानदीके पूर्व तटपर और मन्दरपर्वतके उत्तर-पार्श्वभागमें जिनेन्द्र-प्रासाद स्थित है ।।२१५७।।

सीदाए दक्खिणए, जिण-भवणं भद्दसाल - वण - मज्झे ।
मंदर - पुव्व - दिसाए, पुव्वोदिद - वण्णणा - [3]जुदं ।।२१५८।।

अर्थ :—भद्रशालवनके मध्यमें सीतानदीकी दक्षिण दिशामें और मन्दरकी पूर्व दिशामें पूर्वोक्त विवरण युक्त जिनभवन हैं ।।२१५८।।

पद्मोत्तर एवं नीलगिरि—

सीदा - णदिए तत्तो, उत्तर - तीरम्मि दक्खिणे तीरे ।
पुव्वोदिद-कम-जुत्ता, पउमोत्तर - णील - दिग्गइंदा य ।।२१५९।।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. रोचणतवस्स कूडेसट्ठिगिरि । २. द. ब. क. ज. ब. उ. वाहणा । ३. द. ब. क. ज. य. उ. जुत्ता ।

अर्थ :—इसके आगे सीतानदीके उत्तर और दक्षिण किनारोंपर पूर्वोक्त क्रमसे युक्त पद्मोत्तर और नील नामक दिग्गजेन्द्र पर्वत स्थित हैं ॥२१५९॥

णवरि विसेसो एक्को, सोमो णामेण चेट्ठदे तेसुं।
सोहम्मिंदस्स तहा, वाहणदेओ जमो णाम ॥२१६०॥

अर्थ :—यहाँ एक विशेषता यह है कि उन पर्वतोंपर सौधर्म इन्द्रके सोम और यम नामक वाहनदेव रहते हैं ॥२१६०॥

मतान्तरसे पाँच द्रहोंका निर्देश—

मेरुगिरि-पुव्व - दक्खिण - पच्छिमए उत्तरम्मि पत्तेक्कं।
सीदा - सीदोदाए, पंच दहा केइ इच्छंति ॥२१६१॥

[पाठान्तरं]

अर्थ :—कितने ही (आचार्य) मेरुपर्वतके पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर, इनमेंसे प्रत्येक दिशामें सीता तथा सीतोदा नदीके पाँच द्रहोंको स्वीकार करते हैं ॥२१६१॥ [पाठान्तर]

काञ्चन शैल—

ताणं उवदेसेण य, एक्केक्क - दहस्स दोसु तीरेसुं।
पण - पण कंचणसेला, पत्तेक्कं होंति णियमेणं ॥२१६२॥

[पाठान्तरं]

अर्थ :—उनके उपदेशसे एक-एक द्रहके दोनों किनारोंमेंसे प्रत्येक किनारेपर नियमसे पाँच-पाँच काञ्चन शैल हैं ॥२१६२॥ (पाठान्तर)

देवकुरु क्षेत्रकी स्थिति एवं लम्बाई आदि—

मंदरगिरिंद-दक्खिण - विभागगद - भद्दसाल - वेदीदो।
दक्खिण - भायम्मि पुढं, णिसहस्स य उत्तरे भागे ॥२१६३॥

विज्जुप्पह - पुव्वस्सि, सोमणसादो य पच्छिमे भागे।
पुव्वावर - तीरेसुं, सीदोदे होदि देवकुरू ॥२१६४॥

अर्थ :—मन्दरपर्वतके दक्षिणभागमें स्थित भद्रशालवेदीके दक्षिण निषधके उत्तर, विद्युत्प्रभके पूर्व और सौमनसगजदन्तके पश्चिमभागमें सीतोदाके पूर्व-पश्चिम किनारोंपर देवकुरु (उत्तम भोगभूमि) है ।।२१६३-२१६४।।

णिसह - वणवेदि - पासे, तस्स य पुव्वावरेसु दीहत्तं ।
तेवण्ण - सहस्साणि, जोयण - माणं विणिद्दिट्ठं ।।२१६५।।

। ५३००० ।

अर्थ :—निषधपर्वतकी वनवेदीके पार्श्वमें उस (देवकुरु) की पूर्व-पश्चिम लम्बाई तिरेपन हजार (५३०००) योजन प्रमाण बतलाई गई है ।।२१६५।।

अट्ठ - सहस्सा चउ-सय-चउतीसा मेरु-दक्खिण-दिसाए ।
सिरिभद्दसाल - वेदिय - पासे तक्खेत्त - दीहत्तं ।।२१६६।।

। ८४३४ ।

अर्थ :—मेरुकी दक्षिणदिशामें श्री भद्रशालवेदीके पास उस क्षेत्रकी लम्बाई आठ हजार चारसौ चौंतीस (८४३४) योजनप्रमाण है ।।२१६६।।

एक्करस-सहस्साणि, पंच - सया जोयणाणि बाणउदी ।
उणवीस - हिदा दु - कला, तस्सुत्तर-दक्खिणे रुंदो ।।२१६७।।

११५९२ । $\frac{२}{१९}$ ।

अर्थ :—उत्तर-दक्षिणमें उसका विस्तार ग्यारह हजार पाँचसौ बानबे योजन और उन्नीससे भाजित दो कलाप्रमाण अर्थात् ११५९२$\frac{२}{१९}$ योजन प्रमाण है ।।२१६७।।

पणुवीस-सहस्साणि, णव-सय-इगिसीदि-जोयणा रुंदो ।
दो - गयदंत - समीवे, वंक - सरूवेण णिद्दिट्ठं ।।२१६८।।

२५९८१ ।

अर्थ :—दोनों गजदन्तोंके समीप उसका विस्तार वक्ररूपसे पच्चीस हजार नौसौ इक्यासी (२५९८१) योजन प्रमाण निर्दिष्ट किया गया है ।।२१६८।।

णिसह-वणवेदि-वारण-दंताचल-पास-कुंड - णिस्सरिदा ।
चउसीदि - सहस्साणि, णदीउ पविसंति[1] सीदोदं ॥२१६९॥

८४००० ।

अर्थ :—निषधपर्वतकी वनवेदी और गजदन्त-पर्वतोंके पार्श्वमें स्थित कुण्डोसे निकली हुई चौरासी हजार (८४०००) नदियाँ सीतोदा नदीमें प्रवेश करती हैं ॥२१६९॥

सुसमसुसमम्मि काले, जा भणिदा वण्णणा विचित्तयरा ।
सा हाणीए विहीणा, [2]एदस्सिं णिसह - सेले य ॥२१७०॥

अर्थ :—सुषमसुषमा-कालके विषयमें जो अद्‌भुत वर्णन किया गया है, वही वर्णन बिना किसी प्रकारकी कमीके इस निषध शैलसे परे देवकुरुके सम्बन्धमें भी समझना चाहिए ॥२१७०॥

शाल्मली वृक्षके स्थल आदिकोंका निर्देश—

णिसहस्सुत्तर-पासे, पुव्वाए दिसाए विज्जुपह-गिरिणो ।
सीदोद - बाहिरणीए, पच्छिल्ल - दिसाए भागम्मि ॥२१७१॥

मंदर-गिरिंद-णइरिदि-भागे खेत्तम्मि देवकुरु - णामे ।
सम्मलि[3] - रुक्खाण थलं, रजदमयं चेट्ठदे रम्मं ॥२१७२॥

अर्थ :—देवकुरुक्षेत्रके भीतर निषधपर्वतके उत्तर-पार्श्वभागमें, विद्युत्प्रभ पर्वतकी पूर्व दिशामें, सीतोदा नदीकी पश्चिमदिशामें और मन्दरगिरिके नैऋत्यभागमें शाल्मलीवृक्षोंका रजतमय रमणीय स्थल स्थित है ॥२१७१-२१७२॥

पंच - सय - जोयणाणि, हेट्ठतले तस्स होदि वित्थारो ।
पण्णरस - सया परिही, एक्कासीदी जुदा अहिआ ॥२१७३॥

। ५०० । १५८१ ।

अर्थ :—उस स्थलका विस्तार नीचे पाँचसौ (५००) योजन है और उसकी परिधि पन्द्रहसौ इक्यासी (१५८१) योजनसे अधिक है ॥२१७३॥

---

१. द. ब. उ. पविसत्त, क. ज. पविसत्ति । २. द. ब. क. ज. य. उ. एदासिं । ३. द. संबलि ।

मज्झिम-उदय-पमाणं, अट्ठ' चिय जोयणाणि एदस्स ।
सव्वंतेसुं उदओ, दो - दो' कोसं पुढं होदि ॥२१७४॥

८ । २ ।

अर्थ :—इस स्थलकी मध्यम ऊँचाईका प्रमाण आठ योजन और सबके अन्तमें पृथक्-पृथक् दो-दो कोस प्रमाण है ॥२१७४॥

सम्मलि-रुक्खाण थलं, तिण्णि वणा वेढिदूण चेट्ठंति ।
विविह-वर-रुक्ख-छण्णा, देवासुर - मिहुण - संकिण्णा ॥२१७५॥

अर्थ :—विविध उत्तम वृक्षोंसे युक्त और सुरासुर-युगलोंसे सङ्कीर्ण तीन वन शाल्मलीवृक्षोंके स्थलको वेष्टित किए हुए हैं ॥२१७५॥

उवरिं थलस्स चेट्ठदि, समंतदो वेदिया सुवण्णमई ।
दारोवरिम - तलेसुं, जिणिंद - भवणेहिं संपुण्णा ॥२१७६॥

अर्थ :—उस स्थलपर चारों ओर द्वारोंके उपरिमभागमें स्थित जिनेन्द्रभवनोंसे परिपूर्ण स्वर्णमय वेदिका स्थित है ॥२१७६॥

अड-जोयण-उत्तुंगो, बारस-चउ-मूल-उड्ढ-वित्थारो ।
समवट्टो रजतमओ, पीढो वेदीए मज्झम्मि ॥२१७७॥

८ । १२ । ४ ।

अर्थ :—इस वेदीके मध्यभागमें आठ योजन ऊँचा, मूलमें बारह योजन तथा ऊपर चार योजनप्रमाण विस्तारवाला समवृत्त (वृत्ताकार) रजतमय पीठ है ॥२१७७॥

शाल्मली वृक्षका वर्णन—

तस्स बहु-मज्झ-देसे, सपाद - पीढो य सम्मली-रुक्खो[2] ।
सुप्पह - णामो बहुविह - वर - रयणुज्जोय - सोहिल्लो ॥२१७८॥

अर्थ :—उस पीठके बहुमध्यभागमें पादपीठ-सहित और बहुत प्रकारके उत्कृष्ट रत्नोंके उद्योतसे सुशोभित सुप्रभ नामक शाल्मलीवृक्ष स्थित है ॥२१७८॥

---

१. द. ज. य. दो-द्दो । २. द. क. ज. य. उ. रुक्खा ।

उच्छेहु - जोयणेणं, अट्ठं चिय जोयणाणि उत्तुंगो ।
तस्सावगाढ - भागो, वज्जमओ दोण्णि कोसाणि ॥२१७९॥

८ । २ ।

अर्थ :—वह वृक्ष उत्सेध-योजनसे आठ योजन ऊँचा है। उसका वज्रमय अवगाढ़भाग दो कोस प्रमाण है ॥२१७९॥

सोहेदि तस्स [1]खंधो, फुरंत-वर-किरण-पुस्सरागमओ ।
इगि - कोस - बहल - जुत्तो, जोयण-जुग-मेत्त-उत्तुंगो ॥२१८०॥

को १ । २ ।

अर्थ :—उस वृक्षका स्कन्ध एक कोस बाहल्यसे युक्त, दो योजन ऊँचा, पुष्यरागमय (पुखराजमय) और प्रकाशमान उत्तम किरणोंसे शोभायमान है ॥२१८०॥

जेट्ठाओ साहाओ, चत्तारि हवंति चउदिसा - भागे ।
छज्जोयण - दीहाओ, तेत्तिय - मेत्तंतराउ पत्तेक्कं ॥२१८१॥

६ । ६ ।

अर्थ :—इस वृक्षकी चारों दिशाओंमें चार महाशाखाएँ हैं। इनमेंसे प्रत्येक शाखा छह योजन लम्बी और इतने ही अन्तराल सहित है ॥२१८१॥

साहासुं पत्ताणि, मरगय - वेरुलिय - णीलइंदाणि ।
विविहाइं कक्केयण - चामीयर - विद्दुममयाणि ॥२१८२॥

अर्थ :—शाखाओंमें मरकत, वैडूर्य, इन्द्रनील, कर्केतन, स्वर्ण और मूंगेसे निर्मित विविध प्रकारके पत्ते हैं ॥२१८२॥

सम्मलि-तरुणो अंकुर-कुसुम-फलाणि विचित्त-रयणाणि ।
पण - वण्ण - सोहिदाणि, णिरुवम - रूवाणि रेहंति ॥२१८३॥

अर्थ :—शाल्मलीवृक्षके अंकुर, फूल एवं फल पाँच वर्णोंसे शोभित हैं, अनुपम रूपवाले हैं तथा अद्भुत रत्नस्वरूपसे शोभायमान हैं ॥२१८३॥

---

१. द. ब. क. ज. उ. खंदा ।

जीउप्पत्ति-लयाणं, कारण - भूदो अणाइणिहणो[1] सो ।
सम्मलि - रुक्खो[2] चामर-किंकिणि-[3]घंटादि-कय-सोहो ॥२१८४॥

अर्थ :--(पृथ्वीकायिक) जीवोंकी उत्पत्ति एवं नाशका कारण होते हुए भी स्वयं अनादि-निधन रहकर वह शाल्मली वृक्ष चामर, किंकिणी और घण्टादिसे सुशोभित है ॥२१८४॥

जिनभवन एवं प्रासाद—

तद्दक्खिण-साहाए, जिणिंद-भवणं विचित्त - रयणमयं ।
चउ-हिद-ति-कोस-उदयं, कोसायामं तदद्ध - वित्थारं ॥२१८५॥

$\frac{3}{4}$ । को १ । $\frac{1}{2}$ ।

अर्थ :—उस वृक्षकी दक्षिण शाखापर चारसे भाजित तीन ($\frac{3}{4}$) कोस प्रमाण ऊँचा, एक कोस लम्बा और आधे ($\frac{1}{2}$) कोस विस्तारवाला अद्भुत-रत्नमय जिनभवन है ॥२१८५॥

जं पंडुग - जिणभवणे, भणियं णिस्सेस-वण्णणं किं पि ।
एदस्सिं[4] णादव्वं, सुर - दुंदुहि - सद्द - गहिरयरे[5] ॥२१८६॥

अर्थ :—पाण्डुकवनमे स्थित जिनभवनके विषयमें जो कुछ भी वर्णन किया गया है वही सम्पूर्ण वर्णन देवदुन्दुभियोंके शब्दोंसे अतिशय गम्भीर इस जिनेन्द्रभवनके विषयमें भी जानना चाहिए ॥२१८६॥

सेसासुं साहासुं, कोसायामा तदद्ध - विक्खंभा[6] ।
पादोण - कोस - तुंगा, हवंति एक्केक्क - पासादा ॥२१८७॥

को १ । $\frac{1}{2}$ । $\frac{3}{4}$ ।

अर्थ :—अवशिष्ट शाखाओंपर एक कोस लम्बे, आधाकोस चौड़े और पौन कोस ऊँचे एक-एक प्रासाद हैं ॥२१८७॥

चउ-तोरण-वेदि-जुदा, रयणमया विविह-दिव्व-धूव-घडा ।
पजलंत - रयण - दीवा, ते सव्वे धय - वदाइण्णा ॥२१८८॥

---

१. द. ब. णिहणा । २. द. ब. रुक्खा । ३. द. ब. किंकिणिघारादिकय सोहा । ४. द. ब. एदेसिं । ५. द. ब. क. गहिरयरो । ६. द. ब क. ज. य. उ. विक्खंभो ।

अर्थ :—वे सब रत्नमय प्रासाद चार तोरण-वेदियों सहित हैं, विविध प्रकारके दिव्य धूप-घटोंसे संयुक्त हैं, जलते हुए रत्नदीपकोंसे प्रकाशमान हैं और ध्वजा-पताकाओंसे व्याप्त हैं ।।२१८८।।

सयणासण-पमुहाणि, भवणेसुं णिम्मलाणि विरजाणि ।
पकिदि-मउवाणि तणु - मण - णयणाणंदण-सरूवाणि ।।२१८९।।

अर्थ :—इन भवनोंमें धूलिसे रहित, शरीर, मन एवं नयनोंको आनन्ददायक और स्वभावसे मृदुल निर्मल शय्यायें एवं आसनादिक स्थित हैं ।।२१८९।।

भवनोंमें निवास करनेवाले देवोंका वर्णन—

चेट्ठदि तेसु पुरेसुं, वेणू णामेण वेंतरो देओ ।
बहुविह - परिवार - जुदो, दुइज्जओ वेणुधारि त्ति ।।२१९०।।

अर्थ :—उन पुरोंमें बहुत प्रकारके परिवारसे युक्त वेणु एवं वेणुधारी नामके व्यन्तर देव रहते हैं ।।२१९०।।

सम्मद्दंसण - सुद्धा, सम्माइट्ठीण वच्छला दोण्णि ।
ते दस - चाउत्तुंगा, पत्तेक्कं एक्क - पल्लाऊ ।।२१९१।।

अर्थ :—सम्यग्दर्शनसे शुद्ध और सम्यग्दृष्टियोंसे प्रेम करनेवाले उन दोनों देवोंमेंसे प्रत्येक दस धनुष ऊंचा एवं एक पल्य प्रमाण आयुवाला है ।।२१९१।।

वेदियोंका निरूपण—

सम्मलि-दुमस्स बारस, समंतदो होंति दिव्व - वेदीओ ।
चउ-गोउर - जुत्ताओ, फुरंत - वर - रयण - सोहाओ ।।२१९२।।

अर्थ :—शाल्मलीवृक्षके चारों ओर चार गोपुरोंसे युक्त और प्रकाशमान उत्तम रत्नोंसे सुशोभित बारह दिव्य वेदियाँ हैं ।।२१९२।।

उस्सेध[1] - गाउवेणं, बे - गाउदमेत्त - उस्सिदा ताओ ।
पंच - सया चावाणि, रुंदेणं होंति वेदीओ ।।२१९३।।

---

१. द. क. ज. य. उस्सेण गाउदेणं । ब. उ. उस्सेण गाउदोणं ।

अर्थ :—वे वेदियाँ उत्सेधकोससे दो कोस प्रमाण ऊँची और पाँचसौ धनुष प्रमाण विस्तार वाली हैं ॥२१९३॥

कुलगिरि - सरिया मंदर-कुंड-प्पहुदीण दिव्व-वेदीओ ।
उच्छेह - प्पहुदीहिं, सम्मलि - तल - वेदि सरिसाओ ॥२१९४॥

अर्थ :—कुलाचल, सरिता, मन्दर, कुण्ड आदि की (स्थित) दिव्य-वेदियोंका उत्सेधादि शाल्मलीवृक्षकी तल-वेदीके सदृश समझना चाहिए ॥२१९४॥

पढमाए भूमीए, सुप्पह - णामस्स सम्मलि - दुमस्स ।
चेट्ठदि उववण - संडो अण्णेणं[१] सु सम्मलि - दुमस्स ॥२१९५॥

अर्थ :—सुप्रभ-नामक शाल्मली वृक्षकी प्रथम-भूमिमें अन्य शाल्मली वृक्षोंसे युक्त उपवन-खण्ड हैं ॥२१९५॥

तत्तो बिदिया भूमी, उववण - संडेहि विविह-कुसुमेहिं ।
पोक्खरणी - वावीहिं, सारस - पहुदीहि रमणिज्जा ॥२१९६॥

अर्थ :—इसके आगे द्वितीय भूमि विविध प्रकारके फूलोंवाले उपवन-खण्डों, पुष्करिणियों, वापियों एवं सारस आदिकों (पक्षियों) से रमणीय है ॥२१९६॥

बिदियं व तदिय-भूमी, णवरि विसेसो विचित्त-रयणमया ।
अट्ठुत्तर - सय - सम्मलि - रुक्खा तीए समंतेणं ॥२१९७॥

अर्थ :—दूसरी भूमिके सदृश तीसरी भूमि भी है । किन्तु विशेषता केवल यह है कि तीसरी भूमिमें चारों ओर विचित्र रत्नोंसे निर्मित एकसौ आठ शाल्मलीवृक्ष हैं ॥२१९७॥

अद्धेण पमाणेहिं, ते सव्वे होंति सुप्पहाहिंतो ।
एदेसुं चेट्ठंते, वेणुदुगाणं महामण्णा[२] ॥२१९८॥

अर्थ :—वे सब वृक्ष सुप्रभवृक्षके (प्रमाणसे) आधे प्रमाणवाले हैं । इनके ऊपर वेणु और वेणुधारी (नामके दो) महामान्य देव निवास करते हैं ॥२१९८॥

तदियं व तुरिम-भूमी, चत्तारो णवरि सम्मली-रुक्खा ।
पुव्व - दिसाए तेसुं, चउ - देवीओ य वेणु - जुगलस्स ॥२१९९॥

४ । २ । २ ।

१ द. ब. क. ज. य. उ. मदा अण्णेण । २. द. ब. क. ज. य. उ. महारण्णा ।

अर्थ :—तीसरी भूमि सदृश ही चौथी भूमि है। विशेषता यह है कि इसकी पूर्व दिशामें चार शाल्मलीवृक्ष हैं। जिनपर वेणु एवं वेणुधारी देवोंकी चार देवियाँ रहती हैं ।।२१९९।।

तुरिमं व [1]पंचम-मही, णवरि विसेसो ण सम्मली-रुक्खा [1]।
तत्थ हुवंति विचित्ता, वावोग्रो विविह - रूवाग्रो [2] ।।२२००।।

अर्थ :—चौथी भूमिके सदृश पाँचवीं भूमि भी है। विशेषता केवल यह है कि इस भूमिमें शाल्मलीवृक्ष नहीं हैं, परन्तु विविध रूपवाली अद्भुत वापियाँ हैं ।।२२००।।

छट्ठीए वण - संडो, सत्तम - भूमीए चउ - दिसाभागे ।
सोलस - सहस्स - रुक्खा, वेणु - जुगस्संग - रक्खाणं ।।२२०१।।

८००० । ८००० ।

अर्थ :—छठी भूमिमें वनखण्ड हैं और सातवीं भूमिके भीतर चारों दिशाओंमें वेणु एवं वेणुधारी देवोंके अङ्गरक्षक देवोंके सोलह हजार अर्थात् आठ-आठ हजार (८०००-८०००) वृक्ष हैं ।।२२०१।।

सामाणिय - देवाणं, चत्तारो होंति सम्मलि - सहस्सा ।
पवणेसाण-दिसासु [3], उत्तर - भागम्मि वेणु - जुगलस्स ।।२२०२।।

२००० । २००० ।

अर्थ :—[आठवीं भूमिमें] वायव्य, ईशान और उत्तरदिशा भागमें वेणु एवं वेणुधारीके सामानिक देवोंके चार हजार अर्थात् एक-एक देवके दो-दो हजार (२०००-२०००) शाल्मली वृक्ष हैं ।।२२०२।।

बत्तीस-सहस्साणि, सम्मलि-रुक्खाणि अग्गल - दिब्भाए ।
भूमीए णवमीए, अब्भंतर - देव - परिसाणं ।।२२०३।।

। १६००० । १६००० ।

अर्थ :—नवीं भूमिके भीतर आग्नेय दिशामें अभ्यन्तर पारिषद देवोंके बत्तीस हजार (१६०००, १६०००) शाल्मलीवृक्ष हैं ।।२२०३।।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. पंचमहिव । २. द. ब. क. ज. य. उ. रुक्खं । ३ द. रूवाणि ।

पुह पुह बीस-सहस्सा, सम्मलि-रुक्खाण दक्खिणे भागे ।
दसम-खिदीए मज्झिम - परिस - सुराणं च वेणु - जुगे ॥२२०४॥

२०००० । २०००० ।

अर्थ :—दसवीं पृथिवीके दक्षिणभागमें वेणु एवं वेणुधारी सम्बन्धी मध्यम पारिषद देवोंके पृथक्-पृथक् बीस-बीस हजार (२००००-२००००) शाल्मलीवृक्ष हैं ॥२२०४॥

पुह चउवीस-सहस्सा, सम्मलि-रुक्खाण णइरिदि-विभागे ।
एक्कारसम - महीए, बाहिर - परिसामराण दोण्णं पि ॥२२०५॥

२४००० । २४००० ।

अर्थ :—ग्यारहवीं भूमिके नैऋत्य-दिग्विभागमें उक्त दोनों देवोंके बाह्य पारिषद देवोंके पृथक्-पृथक् चौबीस-चौबीस हजार (२४०००-२४०००) शाल्मलीवृक्ष हैं ॥२२०५॥

सत्तेसु य अणिएसुं, अहिवइ - देवाण सम्मली - रुक्खा ।
बारसमाए महीए, सत्त - च्चिय पच्छिम - दिसाए ॥२२०६॥

७ । ७ ।

अर्थ :—बारहवीं भूमिकी पश्चिमदिशामें सात अनीकोंके अधिपति देवोंके सात ही शाल्मली वृक्ष हैं ॥२२०६॥

लक्खं चाल - सहस्सा, वीसुत्तर-सय-जुदा य ते सव्वे ।
रम्मा अणाइणिहणा, संमिलिदा[1] सम्मली - रुक्खा ॥२२०७॥

१४०१२० ।

अर्थ :—रमणीय और अनादि-निधन वे शाल्मली वृक्ष सब मिलकर एक लाख चालीस हजार एकसौ बीस (१४०१२०) हैं ॥२२०७॥

तोरण - वेदी - जुत्ता, सपाद - पीढा अकिट्टिमायारा ।
वर-रयण-खचिद-साहा, सम्मलि - रुक्खा विरायंति ॥२२०८॥

---

१. द. ब. क. ज. य. उ संमेलिदा ।

अर्थ :—तोरण-वेदियोंसे युक्त, पादपीठों सहित, उत्तम-रत्न-खचित शाखाओंसे संयुक्त अकृत्रिम आधारवाले वे सब शाल्मली वृक्ष विशेष सुशोभित हैं ॥२२०८॥

वज्जिद - णील - मरगय - रविकंत-मयंककंत-पहुदीहिं ।
णिण्णासि - अंधयारं, सुप्पह - रुक्खस्स भादि [1]थलं ॥२२०९॥

अर्थ :—सुप्रभवृक्षका स्थल वज्र, इन्द्रनील, मरकत, सूर्यकान्त और चन्द्रकान्त आदिक मणिविशेषोंसे अन्धकारको नष्ट करता हुआ सुशोभित होता है ॥२२०९॥

सुप्पह[2]-थलस्स विउला, समंतदो तिण्णि होंति वण-संडा ।
विविह-फल-कुसुम-पल्लव-सोहिल्ल-विचित्त-तरु - छण्णा ॥२२१०॥

अर्थ :—सुप्रभवृक्षके स्थलके चारों ओर विविध प्रकारके फल, फूल और पत्तोंसे सुशोभित नाना प्रकारके वृक्षोंसे व्याप्त विस्तृत तीन वन-खण्ड हैं ॥२२१०॥

प्रासाद, पुष्करिणी एवं कूटोंका वर्णन—

तेसुं पढमम्मि वणे, चत्तारो चउ - दिसासु पासादा ।
चउ-हिद-ति-कोस-उदया, कोसायामा तदद्ध-विस्थारा ॥२२११॥

$\frac{3}{4}$ । १ । $\frac{1}{2}$ ।

अर्थ :—उनमेंसे प्रथम वनके भीतर चारों दिशाओंमें पौन ($\frac{3}{4}$) कोस ऊँचे, एक कोस लम्बे और आधा ($\frac{1}{2}$) कोस विस्तारवाले चार प्रासाद हैं ॥२२११॥

भवणाणं विदिसासुं, पत्तेक्कं होंति दिव्व - रूवाणं ।
चउ चउ पोक्खरणीओ, दस - जोयण-मेत्त-गाढाओ ॥२२१२॥

अर्थ :—दिव्यरूप वाले इन भवनोंमेंसे प्रत्येककी विदिशाओंमें दस योजन प्रमाण गहरी चार-चार पुष्करिणियाँ हैं ॥२२१२॥

पणवीस - जोयणाइं, रुंदं पण्णास ताण दीहत्तं ।
विविह-जल-णिवह[3]-मंडिद-कमलुप्पल - कुमुद - संछण्णं ॥२२१३॥

२५ । ५० ।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. तवं । २. द. सुप्पहरुक्खस्स, ब. क. उ. सुप्पहुवलस्स । ३. द. ब. क. ज. य. उ. विविह ।

अर्थ :—जल समूहसे मण्डित, विविध प्रकारके कमल, उत्पल, और कुमुदोंसे व्याप्त उन पुष्करिणियोंका विस्तार पच्चीस (२५) योजन एवं लम्बाई पचास योजन प्रमाण है ।।२२१३।।

मणिमय-सोवाणाओ[1], जलयर-चत्ताओ[2] ताओ सोहंति ।
अमर - मिहुणाण कुंकुम - पंकेणं पिंजर - जलाओ ।।२२१४।।

अर्थ :—जलचर जीवोंसे रहित वे पुष्करिणियाँ मणिमय सोपानोंसे शोभित हैं और देव-युगलोंके कुंकुम-पङ्कसे पीत जलवाली हैं ।।२२१४।।

पुह पुह पोक्खरणीणं, समंतदो होंति अट्ठ कूडाणि ।
एदाण - उदय - पहुदिसु, उवएसो संपइ पणट्ठो ।।२२१५।।

अर्थ :—पुष्करिणियोंके चारों ओर पृथक्-पृथक् आठ कूट हैं। इन कूटोंकी ऊँचाई आदिका उपदेश इस समय नष्ट हो चुका है ।।२२१५।।

वण-पासाद-समाणा, पासादा होंति ताण उवरिम्मि ।
एदेसुं चेट्ठंते, परिवारा वेणु - जुगलस्स ।।२२१६।।

अर्थ :—उन कूटोंके ऊपर वन-प्रासादोंके सदृश प्रासाद हैं। इनमें वेणु एवं वेणुधारी देवोंके परिवार रहते हैं ।।२२१६।।

उत्तरकुरुका निर्देश—

मंदर-उत्तर-भागे, दक्खिण - भागम्मि णील - सेलस्स ।
सीदाए दो - तडेसु, पच्छिम - भागम्मि मालवंतस्स ।।२२१७।।

पुव्वाए गंधमादण - सेलस्स विसाए होदि रमणिज्जा ।
णामेण उत्तरकुरू, विक्खादो भोगभूमि त्ति ।।२२१८।।

अर्थ :—मन्दरपर्वतके उत्तर, नीलशैलके दक्षिण, माल्यवन्तके पश्चिम और गन्धमादन-शैलके पूर्व दिग्विभागमें सीतानदीके दोनों किनारोंपर 'भोगभूमि' के रूपमें विख्यात रमणीय उत्तरकुरु नामक क्षेत्र है ।।२२१७-२२१८।।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. सोहाणाओ । २. द. ब. क. ज. य. उ. चत्तारि ।

देवकुरु - वण्णणाहिं, सरिसाओ वण्णणाओ एदस्स ।
णवरि विसेसो सम्मलि-तरु - वरण्फदी तत्थ ण हुवंति ।।२२१६।।

अर्थ :—इसका सम्पूर्ण वर्णन देवकुरुके वर्णनके ही सदृश है । विशेषता केवल यह है कि यहाँ शाल्मलीवृक्षके परिवार (वनस्पति) नहीं है ।।२२१६।।

जम्बूवृक्ष—

मंदर - ईसाणदिसाभागे णीलस्स दक्खिणे पासे ।
सीदाए पुव्व - तडे, पच्छिम - भागम्मि मालवंतस्स ।।२२२०।।
जंबू - रुक्खस्स [1]थलं, कणयमयं होदि पीढ - वर-जुत्तं ।
विविह-वर-रयण-खचिदा, जंबू - रुक्खा हुवंति एदम्मि ।।२२२१।।

अर्थ :—मन्दरपर्वतके ईशानदिशाभागमें, नीलगिरिके दक्षिणपार्श्वभागमें और माल्यवन्तके पश्चिमभागमें सीतानदीके पूर्व तटपर उत्तम पीठ युक्त जम्बूवृक्षका स्वर्णमय स्थल है । इस स्थल पर विविध प्रकारके उत्कृष्ट रत्नोंसे खचित जम्बूवृक्ष हैं ।।२२२०-२२२१।।

सम्मलि-रुक्ख-सरिच्छं, जंबू - रुक्खाण वण्णणं सयलं ।
णवरि विसेसा वेंतरदेवा चेट्ठंति अण्णण्णा ।।२२२२।।

अर्थ :—जम्बूवृक्षोंका सम्पूर्ण वर्णन शाल्मलीवृक्षोंके ही सदृश है । विशेषता केवल इतनी है कि यहाँ अन्य-अन्य व्यन्तरदेव रहते हैं ।।२२२२।।

तेसुं पहाण - रुक्खे, जिणिद - पासाद - भूसिदे रम्मे ।
आदर - अणादरक्खा, णिवसंते वेंतरा देवा ।।२२२३।।

अर्थ :—उनमें रमणीय जिनेन्द्रप्रासादसे विभूषित प्रधान जम्बूवृक्षपर आदर एवं अनादर नामक व्यन्तरदेव निवास करते हैं ।।२२२३।।

सम्मद्दंसण - सुद्धा, सम्माइट्ठीण वच्छला दोण्णि ।
सयलं जंबूदीवं, भुंजंते एक्क - छत्तीणं ।।२२२४।।

अर्थ :—सम्यग्दर्शनसे शुद्ध और सम्यग्दृष्टियोंके प्रेमी वे दोनों देव सम्पूर्ण जम्बूद्वीपको एक छत्र सम्राट्के सदृश भोगते हैं ।।२२२४।।
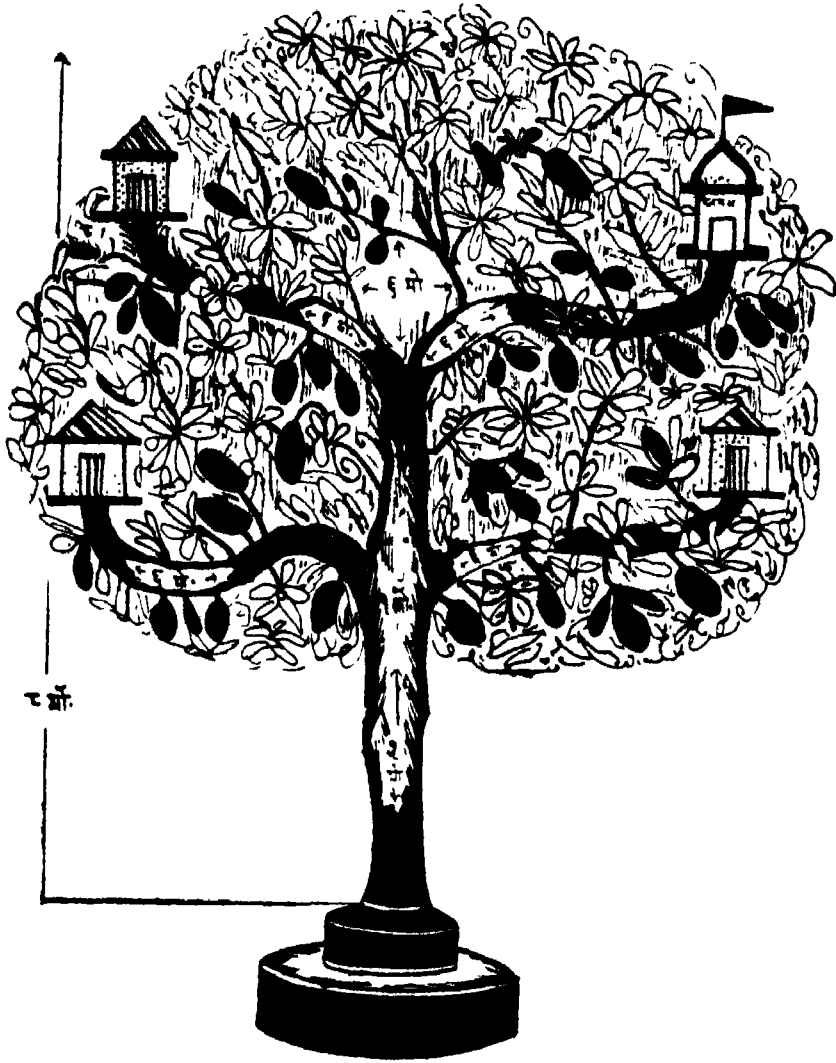
---

१. द. ब. क. ज. य. उ तल ।

पूर्वापर विदेहोंमें क्षेत्रोंका विभाजन—

पुव्वावर - भागेसुं, मंदर - सेलस्स सोल - सव्वेय[1] ।
विजयाणि[2] पुव्वावर - विदेह - णामाणि चेट्ठंति ॥२२२५॥

१६ ।

१ ब. ब. क. ज य. उ. सव्वेय । २. द. ब. य. विजयाणं ।

अर्थ :—मन्दरपर्वतके पूर्व-पश्चिमभागोंमें पूर्व-अपर-विदेह नामक सोलह क्षेत्र स्थित हैं ।।२२२५।।

सीदाए उभएसुं, पासेसुं अट्ठ अट्ठ कय - सीमा ।
चउ-चउ-वक्खारेहिं, विजया तिहि-तिहि विभंग-सरियाहिं ।।२२२६।।

अर्थ :—सीतानदीके दोनों पार्श्वभागोंमें चार-चार वक्षार पर्वत और तीन-तीन विभंग-नदियोंसे सीमित आठ-आठ क्षेत्र हैं ।।२२२६।।

पुव्व - विदेहस्संते, जंबूदीवस्स जगदि - पासम्मि ।
सीदाए दो - तडेसुं, देवारण्णं ठिदं रम्मं ।।२२२७।।

अर्थ :—पूर्व विदेहके अन्तमें जम्बूद्वीपकी जगतीके पार्श्वमें सीतानदीके दोनों किनारोंपर रमणीय देवारण्य स्थित हैं ।।२२२७।।

सीदोदाए दोसुं, पासेसुं अट्ठ - अट्ठ कय - सीमा ।
चउ-चउ-वक्खारेहिं, विजया तिहि-तिहि विभंग-सरियाहिं ।।२२२८।।

अर्थ :—सीतोदाके दोनों पार्श्वभागोंमें, चार-चार वक्षारपर्वत और तीन-तीन विभंग-नदियोंसे सीमित आठ-आठ क्षेत्र हैं ।।२२२८।।

अवर - विदेहस्संते, जंबूदीवस्स जगदि - पासम्मि ।
सीदोदादु - तडेसुं, भूदारण्णं पि चेट्ठेदि ।।२२२९।।

अर्थ :—अपर विदेहके अन्तमें जम्बूद्वीपकी जगतीके पार्श्वमें सीतोदानदीके दोनों किनारों-पर भूतारण्य भी स्थित हैं ।।२२२९।।

दोसुं पि विदेहेसुं, वक्खारगिरी विभंग - सिंधूओ ।
चेट्ठंते एक्केक्कं, अंतरिदूणं सहावेणं ।।२२३०।।

अर्थ :—दोनों ही विदेहोंमें स्वभावसे एक-एकको व्यवहित करके वक्षारगिरि और विभंग नदियाँ स्थित हैं ।।२२३०।।

सीदाए उत्तर - तडे, पुव्वंस्सि भद्दसाल - वेदीदो ।
णीलस्स दक्खिणंते, पदाहिणेणं हवंति ते विजया ।।२२३१।।

अर्थ :—वे क्षेत्र सीतानदीके उत्तर किनारेसे भद्रशालवेदीके पूर्व और नीलपर्वतके दक्षिणान्तमें प्रदक्षिणरूपसे स्थित हैं ॥२२३१॥

विदेहस्थ बत्तीस क्षेत्रोंके नाम—

कच्छा सुकच्छा महाकच्छा तुरिमा कच्छकावदी ।
आवत्ता लंगलावत्ता पोक्खला पोक्खलावदी ॥२२३२॥

वच्छा सुवच्छा महावच्छा तुरिमा वच्छकावदी ।
रम्मा सुरम्मगा वि य, रमणिज्जा मंगलावदी ॥२२३३॥

पम्मा सुपम्मा महापम्मा तुरिमा पम्मकावदी ।
संखा णलिणा णामा, कुमुदा सरिदा तहा ॥२२३४॥

वप्पा सुवप्पा महावप्पा तुरिमा वप्पकावदी ।
गंधा सुगंध - णामा, य गंधिला गंधमालिणी ॥२२३५॥

अर्थ :—१ कच्छा, २ सुकच्छा, ३ महाकच्छा, ४ कच्छकावती ५ आवर्ता, ६ लांगलावर्ता, ७ पुष्कला, ८ पुष्कलावती; १ वत्सा, २ सुवत्सा, ३ महावत्सा, ४ वत्सकावती, ५ रम्या, ६ सुरम्यका, ७ रमणीया, ८ मंगलावती; १ पद्मा, २ सुपद्मा, ३ महापद्मा, ४ पद्माकावती, ५ शङ्खा, ६ नलिना, ७ कुमुदा, ८ सरित्; १ वप्रा, २ सुवप्रा, ३ महावप्रा, ४ वप्रकावती, ५ गन्धा, ६ सुगन्धा, ७ गन्धिला और ८ गन्धमालिनी; इस प्रकार क्रमशः ये उन आठ-आठ क्षेत्रोंके नाम हैं ॥२२३२-२२३५॥

पूर्वविदेहस्थ आठ गजदन्तोंके नाम—

णामेण चित्तकूडो, पढमो बिदिओ हवे णलिणकूडो ।
तदिओ वि पउमकूडो, चउत्थओ एक्क - सेलो य ॥२२३६॥

पंचमओ वि तिकूडो, छट्ठो वेसमण - कूड - णामो य ।
सत्तमओ तह अंजणसेलो आवंजण[1] त्ति अट्ठमओ ॥२२३७॥

एदे गयवंतगिरी पुव्वविदेहम्मि अट्ठ चेट्ठंते ।
सव्वे पदाहिणेणं, उववण - पोक्खरणि - रमणिज्जा ॥२२३८॥

---

१. द. ब. क. ज. य. उ आवस्सण ।

अर्थ :—नामसे प्रथम चित्रकूट, द्वितीय नलिनकूट, तृतीय पद्मकूट, चतुर्थ एकशैल, पाँचवाँ त्रिकूट, छठा वैश्रवणकूट, सातवाँ अञ्जनशैल तथा आठवाँ आत्माञ्जन, इसप्रकार उपवन एवं वापिकाओंसे रमणीय ये सब आठ गजदन्तपर्वत पूर्वविदेहमें प्रदक्षिणरूपसे स्थित हैं ।।२२३६-२२३८।।

अपर विदेहस्थ आठ गजदन्त—

सद्धावदि[1]-विजडावदि-आसीविसया सुहावहो तुरिमो ।
चंदगिरि - सूर - पव्वद - णागगिरी देवमालो त्ति ।।२२३९।।

एदे अवर - विदेहे, वारणदंताचला ठिदा अट्ठ ।
सव्वे पदाहिणेणं, उववण - वेदी - पहुदि - जुत्ता ।।२२४०।।

अर्थ :—श्रद्धावान्, विजटावान्, आशीविषक, सुखावह, चन्द्रगिरि सूर्यपर्वत नागगिरि एवं देवमाल, इसप्रकार उपवन-वेदी-आदिसे संयुक्त ये सब आठ गजदन्तपर्वत प्रदक्षिण रूपसे अपर-विदेहमें स्थित हैं ।।२२३९-२२४०।।

पूर्वापर विदेहस्थ विभंगनदियोंके नाम—

दह - गह - पंकवदीओ, तत्तजला पंचमी य मत्तजला ।
उम्मत्तजला छट्ठी, पुव्वविदेहे विभंगणई ।।२२४१।।

अर्थ :—द्रहवती, ग्राहवती, पङ्कवती, तप्तजला, मत्तजला और उन्मत्तजला, ये छह विभंग-नदियाँ पूर्वविदेहमें हैं ।।२२४१।।

खीरोदो सीदोदा, ओसहवाहिणि - गभीरमालिणिया ।
फेणुम्मिमालिणीओ अवर - विदेहे विभंग - सरियाओ ।।२२४२।।

अर्थ :—क्षीरोदा, सीतोदा, औषधवाहिनी (स्रोतवाहिनी), गभीरमालिनी, फेनमालिनी और ऊर्मिमालिनी ये छह विभंगनदियाँ अपरविदेहमें स्थित हैं ।।२२४२।।

[चित्र अगले पृष्ठ पर देखिये]

---

१ द. ब. क. ज. उ संडावदि विजडावदि ।

पश्चिम
विदेह
पूर्व विदेह
उत्तर
दक्षिण
सुदर्शन मेरु
मंगलावती
सुवप्रा
महावप्रा
सुगन्धा
गन्धमालिनी
पद्मकावती
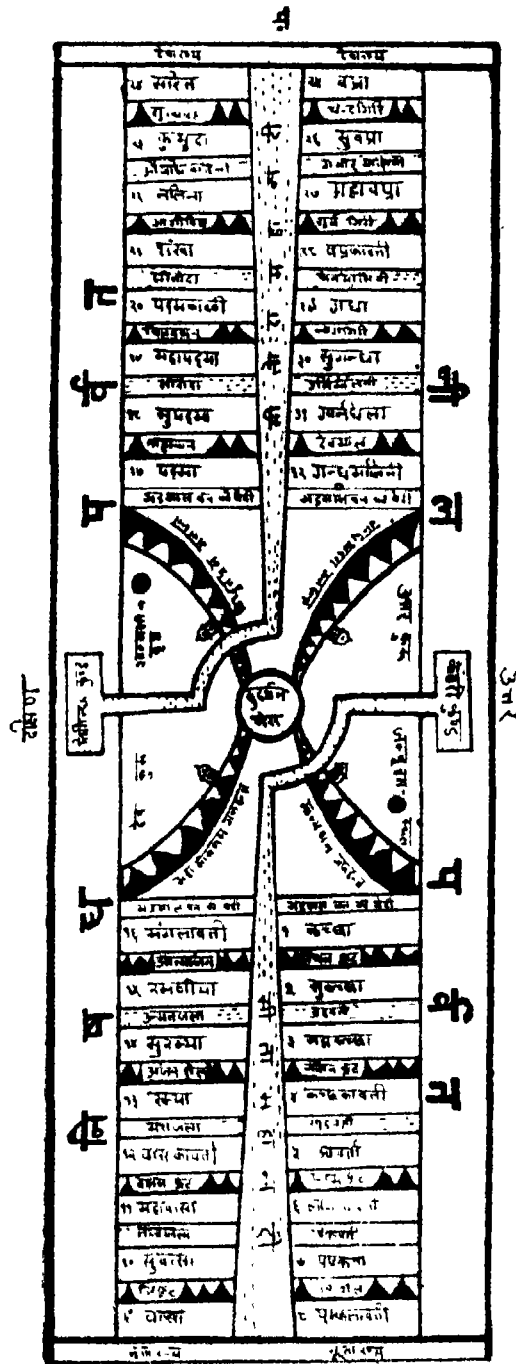
कच्छादि क्षेत्रोंका विस्तार—

दोण्णि सहस्सा दु-सया, बारस-जुत्ता सगंस अट्ठ - हिदा ।
पुव्वावरेण रुंदो [1]एक्केक्के होदि विजयम्मि ॥२२४३॥

२२१२ । $\frac{७}{८}$ ।

अर्थ :—प्रत्येक क्षेत्रका पूर्वापर (पूर्वसे पश्चिम तकका) विस्तार दो हजार दोसौ बारह योजन और आठसे भाजित सात अंश (२२१२$\frac{७}{८}$ योजन) प्रमाण है ॥२२४३॥

वक्षार पर्वत और विभंगा नदियोंका विस्तार—

पंच-सय-जोयणाणि, पुह पुह वक्खार-सेल-विक्खंभो ।
णिय - णिय - कुंडुप्पत्ती, ठाणे कोसाणि पण्णासा ॥२२४४॥

५०० । को ५० ।

वासो विभंग - कल्लोलिणीण[2] सव्वाण होदि पत्तेक्कं ।
सीदा - सीदोद - णई - पवेस - देसम्मि पंच-सय-कोसा ॥२२४५॥

५०० ।

अर्थ :—वक्षारशैलोंका पृथक्-पृथक् विस्तार पाँचसौ (५००) योजन और सब विभंग-नदियोंमेंसे प्रत्येकका विस्तार अपने-अपने कुण्डके पास उत्पत्तिस्थानमें पचास (५०) कोस तथा सीता-सीतोदा नदियोंके पास प्रवेश स्थानमे पाँचसौ (५००) कोस प्रमाण है ॥२२४४-२२४५॥

वनोंका विस्तार—

पुव्वावरेण जोयण, उणतीस - सयाणि तह य बावीसं ।
रुंदो देवारण्णे, भूदारण्णे य पत्तेक्कं ॥२२४६॥

२९२२ ।

अर्थ :– देवारण्य और भूतारण्यमेंसे प्रत्येकका पूर्वापर विस्तार दो हजार नौ सौ बाईस (२९२२) योजन प्रमाण है ॥२२४६॥

---

१. द. ब. क ज. य. उ. एंक्केक्को । २. द. ब. कत्तो णिलीण, ब. क. य. उ. तत्तो णदीण ।

क्षेत्र आदिकोंके प्रमाण निकालनेके नियम—

विजय-गयदंत-सरिया, देवारण्णाणि भद्दसाल - वणं ।
णिय-णिय-फलेहिं गुणिदा, कादव्वा मेरु - फल-जुत्ता ॥२२४७॥

एदाणं रचिदूणं, पिंडफलं जोयणेक्क - लक्खम्मि ।
सोहिय णियंक - भजिदे, जं लब्भइ तस्स सो वासो ॥२२४८॥

अर्थ :—विजय (क्षेत्र), गजदन्त, नदी, देवारण्य और भद्रशाल, इनको अपने-अपने फलोंसे (क्रमशः १६, ८, ६, २, २ से) गुणा करके मेरु फलमें जोड़ें, पश्चात् इनको जोड़नेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसको एक लाख योजनमेंसे घटाकर अपने-अपने अंकोंका भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उतना उस क्षेत्रका विस्तार होता है ॥२२४७-२२४८॥

विशेषार्थ :—जिस मेरु, क्षेत्र, गजदन्त, विभंगा नदी, देवारण्यवन एवं भद्रशाल आदिका पूर्व-पश्चिम व्यास प्राप्त करना हो उसे छोड़कर अन्य सभीके अपने-अपने व्यासोंको अपने-अपने गुणाकार (क्षेत्र व्यास $२२१२\frac{७}{८}$ यो० × १६, वक्षार व्यास ५०० यो० × ८, विभंगा व्यास १२५ यो० × ६, देवारण्य २९२२ यो० × २ और भद्रशालका व्यास २२००० यो० × २) से गुणाकर मेरुव्यास १०००० योजन में जोड़ें और योगफलको जम्बूद्वीपके व्यासमेंसे घटानेपर जो अवशेष रहे उसे विवक्षित क्षेत्र आदिके प्रमाणसे भाजित करनेपर इष्ट क्षेत्र आदिका व्यास प्राप्त हो जाता है ।

क्षेत्रविस्तार—

चउ-णव-पण-चउ-छक्का सोहिय अंकक्कमेण वासादो ।
सेसं सोलस - भजिदं, विजयाणं जाण विक्खंभो ॥२२४९॥

६४५६४ । $२२१२\frac{७}{८}$ ।

अर्थ :—चार, नौ, पाँच, चार और छह इस अङ्क क्रमसे उत्पन्न हुई (६४५६४) संख्याको जम्बूद्वीपके विस्तारमेंसे कम करके जो शेष रहे उसमें सोलहका भाग देनेपर जो प्राप्त हो उसे क्षेत्रोंके विस्तारका ($२२१२\frac{७}{८}$ यो०) प्रमाण जानना चाहिए ॥२२४९॥

विशेषार्थ :—इस गाथामें विदेहस्थ सोलह क्षेत्रोंमेंसे एक क्षेत्रका विस्तार निकालनेकी प्रक्रिया दर्शाई गयी है । यथा—

[(वक्षार व्यास ५०० × ८ स्व संख्या) = ४०००] + [(विभंगा व्यास १२५ × ६) = ७५०] + [(दे० व्या० २९२२ × २) = ५८४४] + [(भ० व्या० २२००० × २) = ४४०००] + मेरु व्यास १०००० यो०—६४५१४ यो०) [(जम्बूद्वीपका व्यास १००००० यो०—६४५१४ यो०) ÷ १६] = २२१२$\frac{९}{१६}$ योजन प्रत्येक क्षेत्रका व्यास ।

वक्षारविस्तार—

छण्णउदि - सहस्साणि, वासादो जोयणाणि अवणिज्जं ।
सेसं अट्ठ - विहत्तं, वक्खारगिरीण विक्खंभो ॥२२५०॥

९६००० । ५०० ।

अर्थ :—जम्बूद्वीपके विस्तारमेंसे छ्यानबै हजार (९६०००) योजन कम करके शेषको आठसे विभक्त करनेपर (५०० योजन) वक्षार पर्वतोंका विस्तार निकलता है ॥२२५०॥

विशेषार्थ :—[(२२१२$\frac{९}{१६}$ × १६) + (१२५ × ६) + (२९२२ × २) + (२२००० × २) + १००००] = ९६००० योजन ।

$= \frac{१००००० — ९६०००}{८}$ = ५०० योजन विस्तार प्रत्येक वक्षार पर्वतका प्राप्त हुआ ।

विभंग-विस्तार—

णवणउदि-सहस्साणि, विक्खंभादो[१] य दु-सय पण्णासा ।
सोहिय विभंग - सरिया - वासो सेसस्स छब्भागे ॥२२५१॥

९९२५० । १२५ ।

अर्थ :—जम्बूद्वीपके विस्तारमेंसे निन्यानबै हजार दोसौ पचास (९९२५० यो०) कम करके शेषके छह भाग करने पर विभंगनदियोंका विस्तार—(१२५ यो०) प्रमाण जाना जाता है ॥२२५१॥

विशेषार्थ :—[(२२१२$\frac{९}{१६}$ × १६) + (५०० × ८) + (२९२२ × २) + (२२००० × २) + १००००] = ९९२५० योजन ।

$= \frac{१००००० — ९९२५०}{६}$ = १२५ योजन व्यास ।

---

१. द. विक्खंभोदवे, ज. य. विक्खंभोदाये ।

देवारण्य विस्तार—

चउणउवि-सहस्साणि, सोहिय वासा छप्पण्ण-एक्क-सयं ।
सेसस्स अद्धमेसं, देवारण्णाण विक्खंभो ॥२२५२॥

९४१५६ । २९२२ ।

अर्थ :—जम्बूद्वीपके विस्तारमेंसे चौरानबै हजार एकसौ छप्पन (९४१५६ यो०) घटाकर शेषके अर्धभाग प्रमाण देवारण्योंका विस्तार है ॥२२५२॥

विशेषार्थ :—[($२२१२\frac{७}{८}$ × १६ = ३५४०६) + (५०० × ८ = ४०००) + (१२५ × ६ = ७५०) + २२००० × २ = ४४०००) + १००००] = ९४१५६ योजन ।

$= \frac{१००००० - ९४१५६}{२}$ = २९२२ योजन व्यास ।

भद्रशालका विस्तार—

छप्पण्ण - सहस्साणि, सोहिय वासाओ जोयणाणं च ।
सेसं दोहि विहत्तं, विक्खंभो भद्दसालस्स ॥२२५३॥

५६००० । २२००० ।

अर्थ :—जम्बूद्वीपके विस्तारमेंसे छप्पन हजार (५६०००) योजन कम करके शेषको दोसे विभक्त करने पर जो प्राप्त हो उसे भद्रशालवनके विस्तारका (२२००० यो०) प्रमाण जानना चाहिए ॥२२५३॥

अर्थ :—[($२२१२\frac{७}{८}$ × १६ = ३५४०६) + (५०० × ८ = ४०००) + (१२५ × ६ = ७५०) + (२९२२ × २ = ५८४४) + १००००] = ५६००० योजन

$= \frac{१००००० - ५६०००}{२}$ = २२००० योजन व्यास ।

सुदर्शनमेरुका मूल विस्तार—

विक्खंभादो सोहिय, णउदि - सहस्साणि जोयणाणं च ।
अवसेसं जं लद्धं, सो मंदर - मूल - विक्खंभो ॥२२५४॥

९०००० । १०००० ।

अर्थ :—जम्बूद्वीपके विस्तारमेंसे नब्बै हजार (९००००) योजन कम कर देने पर जो शेष रहे उतना मन्दरपर्वतका मूलमें विस्तार समझना चाहिए ।।२२५४।।

विशेषार्थ :—(२२१२$\frac{७}{८}$ × १६)+(५०० × ८)+(१२५ × ६)+(२९२२ × २) + (२२००० × २)=९०००० योजन ।

=१००००० — ९००००=१०००० योजन सुमेरुका मूल व्यास ।

पूर्वापर विदेहका विस्तार—

चउवण्ण - सहस्साणि, सोहिय दीवस्स[1] वास-मज्झम्मि ।
सेसद्धं पुव्वावर - विदेह - माणं तु पत्तेक्कं ।।२२५५।।

५४००० । २३००० ।

अर्थ :—जम्बूद्वीपके विस्तारमेंसे चौवन हजार (५४०००) घटाकर शेषको आधा करनेपर पूर्वापर विदेहमेंसे प्रत्येकका प्रमाण (२३००० यो०) निकलता है ।।२२५५।।

विशेषार्थ :—भद्रशालका विस्तार (२२००० × २)=४४०००+१०००० मेरुका मूल विस्तार=५४००० योजन ।

$$=\frac{१००००० — ५४०००}{२}$$ =२३००० योजन पूर्व अथवा अपर विदेहका विस्तार ।

क्षेत्र, वक्षार और विभंगाकी लम्बाईका प्रमाण—

सीता - रुंदं सोहिय, विदेह - रुंदम्मि सेस - दलमेत्तो ।
आयामो विजयाणं, वक्खार - विभंग - सरियाणं ।।२२५६।।

सोलस-सहस्सयाणि, बाणउदी समहिया य पंच - सया ।
दो भागा पत्तेक्कं, विजय - प्पहुदीण दीहत्तं ।।२२५७।।

१६५९२ । क $\frac{२}{१९}$ ।

---

१ द. ब. क. ज. य. उ. दिव्वस्स ।

अर्थ :—विदेहके विस्तारमेंसे सीतानदीका विस्तार घटा देनेपर शेषके अर्धभाग प्रमाण क्षेत्र, वक्षार पर्वत और विभंगा नदियोंकी लम्बाईका प्रमाण होता है। इन क्षेत्रादिकमेंसे प्रत्येककी लम्बाई सोलह हजार पाँचसौ बानबै योजन और एक योजनके उन्नीस भागोंमेंसे दो भाग अधिक है ॥२२५६-२२५७॥

विशेषार्थ :—पूर्वापर विदेहक्षेत्रोंका पृथक्-पृथक् विस्तार (दक्षिणोत्तर चौड़ाई) $३३६८४\frac{४}{१९}$ योजन है। इन क्षेत्रोंमें सीता-सीतोदा नामकी दो प्रमुख नदियाँ बहती हैं। द्रहके समीप निर्गमस्थान पर इनकी चौड़ाई ५० योजन और समुद्र प्रवेशकी चौड़ाई ५०० योजन है। विदेह विस्तारमेंसे नदी विस्तार घटाकर शेषको आधा करनेपर $= \frac{३३६८४\frac{४}{१९} - ५००}{२} = १६५९२\frac{२}{१९}$ योजन प्राप्त होते हैं, जो विदेह स्थित ३२ नगर, १६ वक्षारगिरि, १२ विभंग नदियाँ और देवारण्य आदि वनोंकी लम्बाई है। अर्थात् इन क्षेत्रादिकमेंसे प्रत्येककी लम्बाईका प्रमाण $१६५९२\frac{२}{१९}$ योजन है।

विभंग नदीकी परिवार नदियाँ—

अट्ठावीस - सहस्सा, एक्केक्काए विभंग - सिंधूए।
परिवार - वाहिणीओ, विचित्त - रूवाओ रेहंति ॥२२५८॥

२८००० ।

अर्थ :—एक-एक विभंगनदीकी विचित्ररूपवाली अट्ठाईस हजार (२८०००) परिवार नदियाँ शोभायमान हैं ॥२२५८॥

कच्छा देशका निरूपण—

सीदाए उत्तर - तडे, पुव्वंसे भद्दसाल - वेदीदो।
णीलाचल - दक्खिणदो, पच्छिमदो चित्त - कूडस्स ॥२२५९॥

चेट्ठदि कच्छ-णामो, [1]विजयो वण-गाम-णयर-खेडेहिं।
कव्वड - मडंब - पट्टण - दोणामुह - पहुदिएहि जुदो[2] ॥२२६०॥

---

१ द. ब. क. ज. य. उ विजया। २. द. ब. क. ज. य. उ. जदा।

दुग्गाडवीहि[1] जुत्तो, अंतरदीवेहि कुच्छिवासेहि ।
सेसासमंत - रम्मो, सो रयणायर - मंडिदो विजग्रो ।।२२६१।।

अर्थ :—भद्रशालवेदीके पूर्व, नीलपर्वतके दक्षिण और चित्रकूटके पश्चिममें स्थित सीता-नदीके उत्तर तटपर कच्छा नामक देश स्थित है। यह रमणीय कच्छादेश, वन, ग्राम, नगर, खेट, कर्वट, मटंब, पत्तन एवं द्रोणमुखादिसे युक्त, दुर्गाटवियों, अन्तरद्वीपों एवं कुक्षिवासों सहित समन्ततः रमणीय और रत्नाकरोंसे अलंकृत है ।।२२५६-२२६१।।

गामाणं छण्णउदी - कोडीओ रयण-भवण-भरिदाणं ।
परिदो [2]कुक्कुड - लंघण - पमाण - विच्चाल-भूमीणं ।।२२६२।।

९६००००००० ।

अर्थ :—उसके चारों ओर रत्नमय भवनोंसे परिपूर्ण और कुक्कुटके उड़ने प्रमाण अन्तराल-भूमियोंसे युक्त छयानबे करोड़ (९६०००००००) ग्राम हैं ।।२२६२।।

णयराणि पंचहत्तरि-सहस्स-मेत्ताणि विविह-भवणाणि ।
खेडाणि सहस्साणि, सोलस रमणिज्ज - णिलयाणि ।।२२६३।।

७५००० । १६००० ।

अर्थ :—प्रत्येक क्षेत्रमें विविध भवनोंसे युक्त पचत्तर हजार (७५०००) नगर और रमणीय आलयोंसे विभूषित सोलह हजार (१६०००) खेट होते हैं ।।२२६३।।

चउतीस - सहस्साणि, कव्वडया होंति तह मडंबाणं ।
चत्तारि सहस्साणि, अडदाल - सहस्स पट्टणया ।।२२६४।।

३४००० । ४००० । ४८००० ।

अर्थ :—इसके अतिरिक्त चौंतीस हजार (३४०००) कर्वट, चार हजार (४०००) मटंब और अड़तालीस हजार (४८०००) पत्तन होते हैं ।।२२६४।।

---

१. ब. ज. ठ. दुग्गडवीहिं । २. द. ब. क. ज. ठ. ब. कुंकोडलं पुण ।

णवणउदि - सहस्साणि, हवंति दोणामुहा सुहावासा ।
चोद्दस - सहस्स - मेत्ता, संवाहणया परम - रम्मा ॥२२६५॥

९९००० । १४००० ।

अर्थ :—सुखके स्थानभूत निन्यानबे हजार (९९०००) द्रोणमुख और चौदह हजार (१४०००) प्रमाण परम-रमणीय संवाहन होते हैं ॥२२६५॥

अट्ठावीस - सहस्सा, हवंति दुग्गाडवीओ छप्पण्णं ।
अंतरदीवा सत्त य, सयाणि कुक्खी - णिवासाणं ॥२२६६॥

२८००० । ५६ । ७०० ।

अर्थ :—अट्ठाईस हजार (२८०००) दुर्गाटवियाँ, छप्पन (५६) अन्तरद्वीप और सात सौ (७००) कुक्षि-निवास होते हैं ॥२२६६॥

छव्वीस - सहस्साणि, हवंति रयणायरा विचित्तेहिं ।
परिपुण्णा रयणेहिं, फुरंत - वर - किरण - जालेहिं ॥२२६७॥

२६००० ।

अर्थ :—देदीप्यमान उत्तम किरणोंके समूहसे संयुक्त तथा विचित्र रत्नोंसे परिपूर्ण छब्बीस हजार (२६०००) रत्नाकर होते हैं ॥२२६७॥

सीदा-तरंगिणी - जल-संभव - खुल्लंबुरासि - तीरम्मि ।
दिप्पंत - कणय - रयणा, पट्टण - दोणामुहा होंति ॥२२६८॥

अर्थ :—सीतानदीके जलसे उत्पन्न हुए क्षुद्र-समुद्रके किनारे पर देदीप्यमान सुवर्ण तथा रत्नोंवाले पत्तन और द्रोणमुख होते हैं ॥२२६८॥

सीदा - तरंगिणीए, उत्तर - तीरम्मि उवसमुद्दम्मि ।
छप्पण्णंतर - दीवा, समंत - वेदी - पहुदि - जुत्ता ॥२२६९॥

अर्थ :—सीतानदीके उत्तरतटपर उपसमुद्रमें चारों ओर वेदी आदि सहित छप्पन अन्तरद्वीप होते हैं ॥२२६९॥

अर्थ :—वह देश पाखण्ड सम्प्रदायोंसे रहित है और सम्यग्दृष्टि जनोंके समूहसे व्याप्त है। विशेष इतना है कि यहाँ किन्हीं-किन्हीं जीवोंके भाव-मिथ्यात्व विद्यमान रहता है ॥२२७९॥

उपसमुद्रका वर्णन—

मागध-वरतणुवेहि य, पभास - दीवेहि कच्छ-विजयस्स ।
सोहेदि उवसमुद्दो, वेदी - चउ - तोरणेहि जुदो ॥२२८०॥

अर्थ :—वेदी और चार तोरणोंसे युक्त कच्छादेशका उपसमुद्र मागध, वरतनु एवं प्रभास द्वीपोंसे शोभायमान है ॥२२८०॥

कच्छादेशगत मनुष्योंकी आयु और उत्सेधादि—

अंतोमुहुत्तमवरं, कोडी पुव्वाण होदि उक्कस्सं ।
आउस्स य परिमाणं, णराण णारीण कच्छम्मि ॥२२८१॥

पुव्व १०००००००।

अर्थ :—कच्छादेशमें नर-नारियोंकी आयुका प्रमाण जघन्यरूपसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट रूपसे पूर्वकोटि (१०००००००) है ॥२२८१॥

उच्छेहो दंडाणि, पंच - सया विविह - वण्णमावण्णं ।
चउसट्ठी पुट्ठट्ठी, अंगेसु णराण णारीणं ॥२२८२॥

५०० । ६४ ।

अर्थ :—वहाँपर विविध वर्णोंसे युक्त नर-नारियोंके शरीरकी ऊँचाई पाँचसौ (५००) धनुष और पृष्ठभागकी हड्डियाँ चौंसठ (६४) होती हैं ॥२२८२॥

कच्छादेशगत विजयार्धका वर्णन—

कच्छस्स य बहुमज्झे, सेलो णामेण दीह - [1]विजयड्ढो ।
जोयण - सयद्ध - वासो, सम - दीहो वेद - वासेणं ॥२२८३॥

५० । २२१२ । ३/८ ।

१. द. ब. क. ज. ब. य. विजयड्ढो ।

अर्थ :—कच्छादेशके बहुमध्यभागमें पचास (५०) योजन विस्तारवाला और देश-विस्तार समान (२२१२$\frac{7}{8}$ योजन) लम्बा 'दीर्घविजयार्ध' नामक पर्वत है ॥२२८३॥

सव्वाओ वण्णणाओ, भणिदा वर-भरहखेत्त-विजयड्ढे ।
एदस्सि णादव्वा, णवरि विसेसं णिरूवेमि ॥२२८४॥

अर्थ :—उत्तम भरतक्षेत्र सम्बन्धी विजयार्धके विषयमें जैसा विवरण कहा गया है, वैसा ही सम्पूर्ण विवरण इस विजयार्धका भी समझना चाहिए । उक्त पर्वतकी अपेक्षा यहाँ जो कुछ विशेषता है उसका निरूपण करता हूँ ॥२२८४॥

विज्जाहराण तस्सि, पत्तेक्कं दो - तडेसु णयराणि ।
पंचावण्णा होंति हु, कूडाण य अण्ण - णामाणि ॥२२८५॥

अर्थ :—इस पर्वतके दोनों तटोंमेंसे प्रत्येक तटपर विद्याधरोंके पचपन नगर हैं । यहाँ कूटोंके नाम भरतक्षेत्रके विजयार्धके कूटोंसे भिन्न हैं ॥२२८५॥

सिद्धत्थ-कच्छ-खंडा, पुण्णा-विजयड्ढ-माणि-तिमिसगुहा ।
कच्छो वेसमणो णव, णामा एदस्स कूडाणं ॥२२८६॥

अर्थ :—सिद्ध, कच्छा, खण्डप्रपात, पूर्णभद्र, विजयार्ध, माणिभद्र, तिमिस्रगुह, कच्छा और वैश्रवण ये क्रमशः इस विजयार्धके ऊपर स्थित नौ कूटोंके नाम हैं ॥२२८६॥

सव्वेसुं कूडेसुं, मणिमय - पासाद - सोहमाणेसुं ।
चेट्ठंति अट्ठकूडे, ईसाणिदस्स वाहणा देवा ॥२२८७॥

अर्थ :—मणिमय प्रासादोंसे शोभायमान इन सब कूटोंमेंसे आठ कूटोंपर ईशानेन्द्रके वाहन-देव रहते हैं ॥२२८७॥

कच्छादेशमें छह-खण्डोंका विभाजन—

णीलाचल - दक्खिणदो, उववण-वेदीए[1] दक्खिणे पासे ।
कुंडाणि[2] दोण्णि वेदी - तोरण - जुत्ताणि चेट्ठंति ॥२२८८॥

---

१. द. ब. क. ज. वेदीए । २. द. ब. क. ज. य. उ. कुण्डाणं ।

अर्थ :—नीलपर्वतसे दक्षिणकी ओर उपवनवेदीके दक्षिण-पार्श्वभागमें वेदी-तोरणयुक्त दो कुण्ड स्थित हैं ॥२२८८॥

ताणं दक्खिण - तोरण - दारेणं णिग्गदा दुवे सरिया ।
रत्ता - रत्तोदक्खा, पुह पुह गंगाए सारिच्छा ॥२२८९॥

अर्थ :—उन कुण्डोंके दक्षिण तोरणद्वारसे गंगानदीके सदृश पृथक्-पृथक् रक्ता और रक्तोदा नामकी दो नदियाँ निकली हैं ॥२२८९॥

रत्ता - रत्तोदाहिं, वेयड्ढ - णगेण कच्छ - विजयम्मि ।
सव्वत्थ समाणाओ, छक्खंडा णिम्मिदा एदे ॥२२९०॥

अर्थ :—रक्ता-रक्तोदा नदियों और विजयार्धपर्वतसे कच्छादेशमें सर्वत्र समान छह खण्ड निर्मित हुए हैं ॥२२९०॥

रक्ता-रक्तोदाकी परिवार नदियाँ—

रत्ता - रत्तोदाओ, जुदाओ चोद्दस - सहस्समेत्ताहिं ।
परिवार - वाहिणीहिं, णिच्चं पविसंति सीदोदं ॥२२९१॥

१४००० ।

अर्थ :—चौदह हजार (१४०००) प्रमाण परिवार-नदियोंसे युक्त ये रक्ता-रक्तोदा नदियाँ नित्य सीतानदीमें प्रवेश करती हैं ॥२२९१॥

कच्छादेशगत आर्यखण्ड—

सीदाए उत्तरदो, विजयड्ढ - गिरिस्स दक्खिणे भागे ।
रत्ता - रत्तोदाणं, अज्जाखंडं भवेदि विच्चाले ॥२२९२॥

अर्थ :—सीतानदीके उत्तर और विजयार्धगिरिके दक्षिणभागमें रक्ता-रक्तोदाके मध्य आर्यखण्ड है ॥२२९२॥

णाणा - जणवद - णिचिदो, अट्ठारस-देस-भास-संजुत्तो ।
कुंजर - तुरगादि - जुदो, णर - णारी - मंडिदो रम्मो ॥२२९३॥

अर्थ :—अनेक जनपदों सहित, अठारह देशभाषाओंसे संयुक्त, हाथी एवं अश्वादिकोंसे युक्त और नर-नारियोंसे मण्डित यह आर्यखण्ड रमणीय है ।।२२९३।।

क्षेमा-नगरी—

खेमा - णामा णयरी, अज्जाखंडस्स होदि मज्झम्मि ।
एसा अणाइ-णिहणा, वर - रयणा खचिद - रमणिज्जा ।।२२९४।।

अर्थ :—आर्यखण्डके मध्यमें क्षेमा नामक नगरी है । यह अनादि-निधन है और उत्तम रत्नोंसे खचित रमणीय है ।।२२९४।।

कणयमओ पायारो, समंतदो तीए होदि रमणिज्जो[1] ।
चरियट्टालय - चारू, विविह - पदाया कलप्प - जुदो[2] ।।२२९५।।

अर्थ :—इसके चारों ओर मार्गों एवं अट्टालयोंसे सुन्दर और विविध पताकाओंके समूहसे संयुक्त रमणीय सुवर्णमय प्राकार है ।।२२९५।।

कमल - वण - मंडिदाए, संजुत्तो खादियाहि विउलाए ।
कुसुम - फल - सोहिदेहिं, सोहिल्लं बहुविह - वणेहिं ।।२२९६।।

अर्थ :—यह प्राकार कमल-वनोंसे मण्डित विस्तृत खाईसे संयुक्त है और फूल तथा फलोंसे शोभित बहुत प्रकारके वनोंसे शोभायमान है ।।२२९६।।

तीए पमाण - जोयण, णवमेत्तं वर - पुरीअ वित्थारो ।
बारस - जोयण - मेत्तं, दीहत्तं दक्खिणुत्तर - दिसासु ।।२२९७।।

९ । १२ ।

अर्थ :—उस उत्तम पुरीका विस्तार प्रमाण-योजनसे नौ योजन प्रमाण और दक्षिण-उत्तर दिशाओंमें लम्बाई बारह योजन प्रमाण है ।।२२९७।।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. रमणिज्जा । २. द. ब. क. ज. य. उ. जुदा ।

एक्केक्क-दिसा-भागे, वणसंडा विविह-कुसुम-फल-पुण्णा ।
सट्ठि-जुद[1]-ति-सय-संखा, पुरीए कीडंत - वर - मिहुणा ॥२२९८॥

३६० ।

अर्थ :—उस नगरीके प्रत्येक दिशा-भागमें विविध प्रकारके फल-फूलोंसे परिपूर्ण और क्रीड़ा करते हुए उत्तम (स्त्री-पुरुषोंके) युगलों सहित तीन सौ साठ (३६०) संख्या प्रमाण वनसमूह स्थित हैं ॥२२९८॥

एक्क - सहस्सं गोउर - दाराणं चक्कवट्टि - णयरीए ।
वर - रयण - णिम्मिदाणं, खुल्लय - दाराण पंच-सया ॥२२९९॥

१००० । ५०० ।

अर्थ :—चक्रवर्तीकी (उस क्षेमा) नगरीमें उत्कृष्ट रत्नोंसे निर्मित एक हजार (१०००) गोपुरद्वार और पाँचसौ (५००) लघु द्वार हैं ॥२२९९॥

बारस - सहस्स - मेत्ता, वीहीओ वर - पुरीए रेहंति ।
एक्क - सहस्स - पमाणा, चउ - हट्टा सुहव - संचारा ॥२३००॥

१२००० । १००० ।

अर्थ :—उस उत्कृष्ट पुरीमें सुख पूर्वक गमन करने योग्य बारह हजार (१२०००) प्रमाण वीथियाँ और एक हजार (१०००) प्रमाण चतुष्पथ हैं ॥२३००॥

फलिह-प्पवाल-मरगय-चामीयर-पउमराय - पहुदिमया ।
वर - तोरणेहि रम्मा, पासादा तत्थ वित्थिण्णा ॥२३०१॥

अर्थ :—वहाँपर स्फटिक, प्रवाल, मरकत, सुवर्ण एवं पद्मरागादिसे निर्मित और उत्तम तोरणोंसे रमणीय विस्तीर्ण प्रासाद हैं ॥२३०१॥

पोक्खरणी - वावीहिं, कमलुप्पल-कुमुद-गंध-सुरही सा ।
संपुण्णा णयरी णं, णच्चंत - विचित्त - धय - माला ॥२३०२॥

---

१. द. ज. य. जुदतीमसंखा, ब. क. उ. जुदतीयसंखा ।

अर्थ :- नृत्य करती हुई विचित्र ध्वजाओंके समूहसे युक्त वह नगरी निश्चय ही कमल, उत्पल और कुमुदोंकी गन्धसे सुगन्धित पुष्करिणियों तथा वापिकाओंसे परिपूर्ण है ।।२३०२।।

पंडुगवण-जिण-मंदिर-रमणिज्जा तीए होंति जिण-भवणा ।
उच्छेह - वास - पहुदिसु, उच्छण्णा ताण उवएसो ।।२३०३।।

अर्थ :-(उस नगरीके) जिन-भवन पाण्डुकवनके जिन-मन्दिरोंके सदृश रमणीय हैं । उनके उत्सेध-विस्तार आदिका उपदेश विच्छिन्न हो गया है ।।२३०३।।

णर - णारी - णिवहेहिं, वियक्खणेहिं विचित्त - रूवेहिं ।
वर - रयण - भूसणेहिं, णिवहेहिं सोहिदा णयरी ।।२३०४।।

अर्थ :-वह नगरी अद्भुत सौन्दर्य-सम्पन्न है और उत्तम रत्नाभूषणोंसे भूषित अनेक प्रकारके विचक्षण नर-नारियोंके समूहोंसे सुशोभित है ।।२३०४।।

[चित्र अगले पृष्ठ पर देखिए]

विदेह का कच्छा क्षेत्र
उत्तर
पूर्व
दक्षिण
नील पर्वत
सिन्धु कुण्ड
गंगा कुण्ड
म्लेच्छ खण्ड
वृषभ
गिरि
म्लेच्छ खण्ड
पर्वत
विजयार्द्ध
पर्वत
आर्य खण्ड
म्लेच्छ खण्ड
क्षेमा
नगरी
म्लेच्छ खण्ड
सिन्धु
गंगा
सीता
वरतनु
नदी
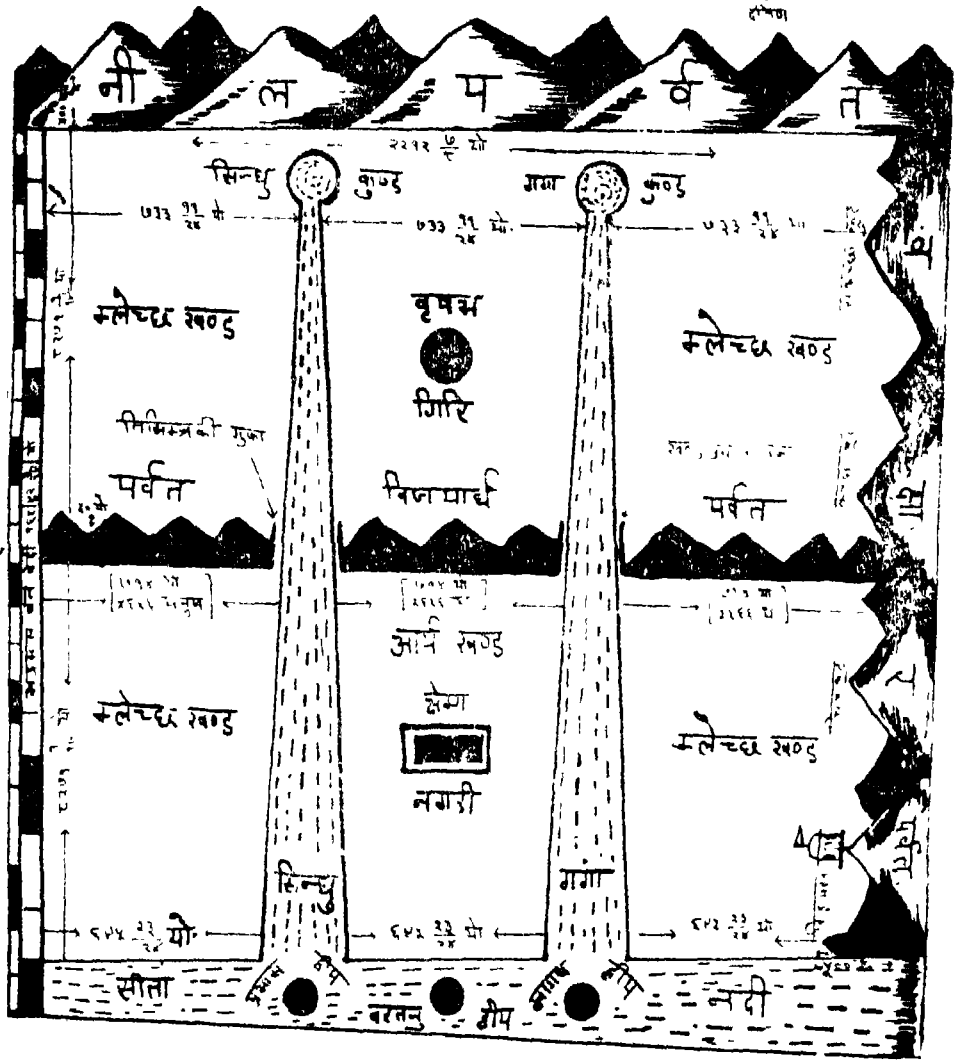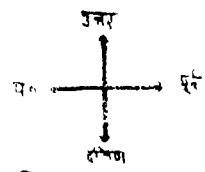
क्षेमा नगरी स्थित चक्रवर्ती –

णयरीए चक्कवट्टी, तीए चेट्ठेदि विविह-गुण-खाणी ।
आदिम - संहणण - जुदो, समचउरस्संग - संठाणो[1] ॥२३०५॥

कुंजर-कर-थोर-[2]भुवो, रवि[3]-व्व-वर-तेय-पसर-संपुण्णो ।
इंदो विव आणाए, सोहग्गेणं च मयणो[4] व्व ॥२३०६॥

धणदो[5] विव दाणेणं, धीरेणं मंदरो व्व सोहेदि ।
जलही विव अक्खोभो, पुह-पुह-विक्किरिय-सत्ति-जुदो[6] ॥२३०७॥

अर्थ :—उस नगरीमें अनेक गुणोंकी खानिस्वरूप चक्रवर्ती निवास करता है । वह आदिके वज्रर्षभनाराच-संहनन सहित, समचतुरस्ररूप शरीर-संस्थानसे संयुक्त, हाथीके शुण्डादण्ड सदृश स्थूल भुजाओंसे शोभित, सूर्य सदृश उत्कृष्ट तेजके विस्तारसे परिपूर्ण, आज्ञामें इन्द्र तुल्य, सुभगतामें मानो कामदेव, दानमें कुबेर सदृश, धैर्य गुणमें सुमेरुपर्वतके समान, समुद्रके सदृश अक्षोभ्य और पृथक्-पृथक् विक्रियाशक्तिसे युक्त शोभित होता है ॥२३०५-२३०७॥

पंच-सय - चाव - तुंगो, सो चक्की पुव्व-कोडि-संखाऊ ।
दस - विह - भोगेहिं जुदो, सम्माइट्ठी विसाल - मई ॥२३०८॥

अर्थ :—वह चक्रवर्ती पाँचसौ धनुष ऊँचा, पूर्वकोटि प्रमाण आयुवाला, दस प्रकारके भोगोंसे युक्त, सम्यग्दृष्टि और विशाल (उदार) बुद्धि सम्पन्न होता है ॥२३०८॥

तीर्थंकर—

अज्जाखंडम्मि ठिदा, तित्थयरा पाडिहेर - संजुत्ता ।
पंच - महाकल्लाणा, चोत्तीसादिसय - संपण्णा ॥२३०९॥

सयल-सुरासुर-महिया, णाणाविह - लक्खणेहिं संपुण्णा ।
चक्कहर - णमिद - चलणा, तिलोक्क - णाहा पसीदंतु ॥२३१०॥

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. संठाणा । २. द. ब. क. ज. य. उ. भुवा । ३. द. ब. क. ज. य. उ. रविंद-वर .... संपुण्णा । ४. द. ब. ज. य. उ. मयणव्व, क. मयणं च । ५. द. ब. क. ज. य. उ. धणदा पिव । ६. द. ब. क. ज. उ. जुदा ।

अर्थ :—आर्यखण्डमें स्थित, प्रातिहार्योंसे संयुक्त, पाँच महाकल्याणक सहित, चौंतीस अतिशयोंसे सम्पन्न, सम्पूर्ण सुरासुरोंसे पूजित, नाना प्रकारके लक्षणोंसे परिपूर्ण, चक्रवर्तियोंसे नमस्कृत चरणवाले और तीनों लोकोंके अधिपति तीर्थंकर परमदेव प्रसन्न होवें ॥२३०६-२३१०॥

गणधरदेव एवं चातुर्वर्ण्य संघ—

अमर-णर-णमिद-चलणा, भव्व-जणाणंदणा पसण्ण-मणा ।
अट्ठ - विह - रिद्धि - जुत्ता, गणहरदेवा ठिदा तस्सि ॥२३११॥

अर्थ :—जिनके चरणोंमें देव और मनुष्य नमस्कार करते हैं तथा जो भव्यजनोंको आनन्ददायक हैं और आठ प्रकारकी ऋद्धियोंसे युक्त हैं, ऐसे प्रसन्नचित्त गणधरदेव उस आर्यखण्डमें स्थित रहते हैं ॥२३११॥

अणगार-केवलि-मुणी[1]-वरड्ढि-सुदकेवली तदा तस्सि ।
चेट्ठदि चाउव्वण्णो, तस्सि संघो गुण - गणड्ढो ॥२३१२॥

अर्थ :—उस आर्यखण्डमें अनगार, केवली, मुनि, परमर्द्धिप्राप्त-ऋषि और श्रुतकेवली तथा गुणसमूहसे युक्त चातुर्वर्ण्य संघ स्थित रहता है ॥२३१२॥

बलदेव, अर्धचक्री एवं राजा आदि—

बलदेव - वासुदेवा, पडिसत्तू तत्थ होंति ते सव्वे ।
अण्णोण्ण - बद्ध - मच्छर - पयट्ट - घोरयर - संगामा ॥२३१३॥

अर्थ :—वहाँपर बलदेव, वासुदेव और प्रतिशत्रु (प्रतिवासुदेव) होते हैं। ये सब परस्पर बाँधे हुए मत्सरभावसे घोरतर संग्राममें प्रवृत्त रहते हैं ॥२३१३॥

रायाधिराय - वसहा, तत्थ विरायंति ते महाराया ।
छत्त - चमरेहि जुत्ता, अद्ध[2]-महा - सयल - मंडलिया ॥२३१४॥

। अज्जखंड-परूवणा समत्ता ।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. मुणिवरा । २. द. ब. क. ज. य. उ. अट्ठ ।

अर्थ :—वहाँ श्रेष्ठ राजा, अधिराज, महाराज और छत्र-चमरोंसे युक्त अर्धमण्डलीक, महामण्डलीक एवं सकलमण्डलीक विराजमान रहते हैं ॥२३१४॥

। आर्यखण्डकी प्ररूपणा समाप्त हुई ।

म्लेच्छखण्ड एवं उनमें रहने वाले जीव—

णामेण मेच्छखंडा, अवसेसा होंति पंच खंडा ते ।
बहुविह - भाव - कलंका, जीवा मिच्छागुणा तेसुं ॥२३१५॥

अर्थ :—शेष पाँच खण्ड नामसे म्लेच्छखण्ड हैं। उनमें स्थित जीव मिथ्यागुणोंसे युक्त होते हैं और बहुत प्रकारके भाव-कलङ्कसे (पाप-परिणामों) सहित होते हैं ॥२३१५॥

णाहल - पुलिंद - बब्बर-किराय-पहुदीण सिंघलादीणं ।
मेच्छाण कुलेहि जुदा, भणिदा ते मेच्छखंडा त्ति ॥२३१६॥

अर्थ :—ये म्लेच्छखण्ड नाहल, पुलिंद, बर्बर, किरात तथा सिंहलादिक म्लेच्छोंके कुलोंसे युक्त कहे गए हैं ॥२३१६॥

वृषभगिरि—

णीलाचल-दक्खिणदो, [1]वक्खारगिरिदस्स पुव्व - दिब्भागे ।
रत्ता - रत्तोदाणं, मज्झम्मि य मेच्छखंड - बहुमज्झे ॥२३१७॥
चक्कहर-माण-मथणो, णाणा-चक्कीण णाम - संछण्णो ।
अत्थि वसह त्ति सेलो, भरहक्खिदि - वसह-सारिच्छो ॥२३१८॥

अर्थ :—नीलाचलके दक्षिण और वक्षार पर्वतके पूर्व-दिग्भागमें रक्ता-रक्तोदाके मध्य म्लेच्छखण्डके बहुमध्यभागमें चक्रधरोंके मानका मर्दन करनेवाला और नाना चक्रवर्तियोंके नामोंसे व्याप्त भरतक्षेत्र सम्बन्धी वृषभगिरिके सदृश वृषभ नामक पर्वत है ॥२३१७-२३१८॥

शेष क्षेत्रोंका संक्षिप्त वर्णन—

एवं कच्छा - विजओ, वास-समासेहि [2]वण्णिदो एत्थ ।
सेसाणं विजयाणं, वण्णणमेवंविहं जाण ॥२३१९॥

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. पव्वगिरिदस्स । २. द. ब. क. ज. उ. वण्णिदा ।

अर्थ :—इसप्रकार यहाँ संक्षेपमें कच्छादेशके विस्तारादिका वर्णन किया गया है। शेष क्षेत्रोंका वर्णन भी इसीप्रकार जानना चाहिए ॥२३१६॥

णवरि विसेसो एक्को, ताणं णयरीण अण्ण - णामा य ।
खेमपुरी रिट्ठक्खा, रिट्ठपुरी खग्ग - मंजुसा दोण्णि ॥२३२०॥
ओसहणयरी तह पुण्डरीकिणी एवमेत्थ णामाणि ।
सत्ताणं णयरीणं, सुकच्छ - पमुहाण विजयाणं ॥२३२१॥

अर्थ :—यहाँ एक विशेषता यह है कि उन क्षेत्रोंकी नगरियोंके नाम भिन्न हैं—क्षेमपुरी, रिष्टा, अरिष्टपुरी, खड्गा, मञ्जूषा, औषधनगरी और पुण्डरीकिणी, इसप्रकार ये यहाँ सुकच्छा आदि सात देशोंकी सात नगरियोंके नाम है ॥२३२०-२३२१॥

अट्ठाणं एक्क - समो, वच्छ - प्पमुहाण होदि विजयाणं ।
णवरि विसेसो सरिया - णयरीणं अण्ण - णामाणि ॥२३२२॥

अर्थ :—वत्सा आदि आठ देशोंमें समानता है। परन्तु विशेष यही है कि यहाँ नदियों और नगरियोंके नाम भिन्न हैं ॥२३२२॥

गंगा-सिन्धू-णामा, पडि - विजयं वाहिणीए चिट्ठंति ।
भरहक्खेत्त - पवण्णिद - गंगा - सिंधूहि सरिसाओ ॥२३२३॥

अर्थ :—यहाँ प्रत्येक क्षेत्रमें भरतक्षेत्रमें कही गई गंगा-सिन्धुके सदृश गंगा और सिन्धु नामक नदियाँ स्थित है ॥२३२३॥

णयरीओ सुसीम - कुंडलाओ अवराजिदा - पहंकरया ।
अंका पउमवदीया, ताण सुभा रयणसंचया कमसो ॥२३२४॥

अर्थ :—सुसीमा, कुण्डला, अपराजिता, प्रभंकरा, अंका, पद्मावती, शुभा और रत्नसंचया ये क्रमशः उन देशोंकी नगरियोंके नाम हैं ॥२३२४॥

अपर (पश्चिम) विदेहका संक्षिप्त वर्णन—

पुव्व - विदेहं व कमो, अवर - विदेहे वि एस [1]दट्ठव्वो ।
णवरि विसेसो एक्को, णयरीणं अण्ण - णामाणि ॥२३२५॥

---

१ द. ब. क. ज. य. उ. दट्ठाओ ।

अर्थ :—पूर्व विदेहके सदृश ही अपर-विदेहमें भी ऐसा ही क्रम जानना चाहिए। एक विशेषता यह है कि यहाँ भी नगरियोंके नाम भिन्न हैं ।।२३२५।।

अस्सपुरी सिंहपुरी, महापुरी तह य होदि विजयपुरी ।
अरजा [1]विरजासोकाउ, वीदसोक त्ति पउम - पहुदीणं ।।२३२६।।

अर्थ :—अश्वपुरी, सिंहपुरी, महापुरी, विजयपुरी, अरजा, विरजा, अशोका और वीतशोका, इसप्रकार ये पद्मादिक देशोंकी प्रधान नगरियोंके नाम हैं ।।२३२६।।

विजया य वइजयंता, पुरी जयंतावराजिताओ वि ।
चक्कपुरी खग्गपुरी, अउज्झणामा [2]अवज्झ त्ति ।।२३२७।।
कमसो वप्पादीणं, विजयाणं अड - पुरीण णामाणि ।
एक्कत्तीस - पुरीणं, खेमा - सरिसा पसंसाओ ।।२३२८।।

अर्थ :—विजया, वैजयन्ता, जयन्ता, अपराजिता, चक्रपुरी, खड्गपुरी, अयोध्या और अवध्या, इसप्रकार ये क्रमशः वप्रादिक (आठ) देशोंकी आठ नगरियोंके नाम हैं। उक्त इकतीस नगरियोंकी प्रशंसा क्षेमापुरीके सदृश ही जाननी चाहिए ।।२३२७-२३२८।।

इगिगि[4]-विजय-मज्झत्थ-दीहा-विजयड्ढ - णवसु कूडेसुं ।
दक्खिण - पुव्वं बिदिओ, णिय-णिय-विजयक्खमुव्वहइ ।।२३२९।।
उत्तर-पुव्वं दुचरिम - कूडो तं चेय धरइ सेसा य ।
सग - कूडा णामेहिं, हवंति कच्छम्मि भणिदेहिं ।।२३३०।।

अर्थ :—प्रत्येक देशके मध्यमें स्थित लम्बे विजयार्ध पर्वतके ऊपर जो नौ-नौ कूट हैं, उनमें से दक्षिण-पूर्वका द्वितीय कूट अपने-अपने देशके नामको और उत्तर-पूर्वका द्विचरम कूट भी उसी देशके नामको धारण करता है। शेष सात कूट कच्छादेशमें कहे गये नामोंसे युक्त हैं ।।२३२९-२३३०।।

रत्ता - रत्तोदाओ, सीदा - सीदोदयाण दक्खिणए ।
भागे तह उत्तरए, गंगा - सिंधू य के वि भासंति ।।२३३१।।

पाठान्तरम् ।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ विरजासोकोउ। २. द. ब. क ज. य. उ. यउज्झ। ३. ब. द. क. ज. य. उ. पदि। ४. द. ब. इगिविजयमज्झत्थं दोहा।

अर्थ :—कितने ही आचार्य सीता-सीतोदाके दक्षिण भागमें रक्ता-रक्तोदा और उसीप्रकार उत्तर-भागमें गंगा-सिन्धु-नदियोंका भी निरूपण करते हैं ।।२३३१।।

पाठान्तर ।

सीता-सीतोदाके किनारोंपर तीर्थस्थान—

पत्तेक्कं पुव्वावर - विदेह - विजएसु अज्जखंडम्मि ।
सीदा - सीदोदाणं, दु - तडेसुं जिणिंद - पडिमाओ ।।२३३२।।

चेट्ठंति तिण्णि तिण्णि य, पणमिय-चलणा तियंस-णिवहेहिं ।
सव्वाओ छण्णउदी, तित्थ - ट्ठाणाणि मिलिदाओ ।।२३३३।।

अर्थ :—पूर्वापर विदेहक्षेत्रोंमेंसे प्रत्येक क्षेत्रके आर्यखण्डमें सीता-सीतोदाके दोनों किनारों पर देवोंके समूह द्वारा नमस्करणीय चरणोंवाली तीन-तीन जिनेन्द्र-प्रतिमाएँ स्थित हैं। ये सर्व तीर्थ-स्थान मिलकर छियानबै हैं ।।२३३२-२३३३।।

सोलह वक्षार-पर्वतोंका वर्णन—

वक्खारगिरी सोलस, सीदा - सीदोदयाण तीरेसुं ।
पण-सय-जोयण-उदया, कुलगिरि-पासेसु एक्क-सय-हीणा ।।२३३४।।

५०० । ४०० ।

अर्थ :—सोलह वक्षारपर्वत सीता-सीतोदाके किनारोंपर पाँचसौ (५००) योजन और कुलाचलोंके पार्श्वभागोंमें एकसौ योजन कम अर्थात् चार सौ (४००) योजन ऊँचे हैं ।।२३३४।।

वक्खाराणं दोसुं, पासेसुं होंति दिव्व - वणसंडा ।
पुह पुह गिरि-सम-दीहा, जोयण - दलमेत्त - वित्थारा ।।२३३५।।

अर्थ :—वक्षार-पर्वतोंके दोनों पार्श्वभागोमें पृथक्-पृथक् पर्वत समान लम्बे और अर्ध योजन प्रमाण विस्तार वाले दिव्य वनखण्ड हैं ।।२३३५।।

सव्वे वक्खारगिरी, तुरंग - खंधेण होंति सारिच्छा ।
उवरिम्मि ताण कूडा, चत्तारि हवंति पत्तेक्कं ।।२३३६।।

अर्थ :—सब वक्षार पर्वत घोड़ेके स्कन्ध सदृश आकारके होते हैं। इनमेंसे प्रत्येक पर्वतपर चार कूट हैं ।।२३३६।।

सिद्धो[1] वक्खारुड्ढाधोगद - विजय - णाम - कूडा य ।
ते सव्वे रयणमया, पव्वय - चउभाग - उच्छेहा[2] ॥२३३७॥

अर्थ :—इनमेंसे प्रथम सिद्धकूट, दूसरा वक्षारके सदृश नामवाला और शेष दो कूट वक्षारोंके उपरिम और अधस्तन क्षेत्रोंके नामोंसे युक्त हैं। वे सब रत्नमय कूट अपने पर्वतकी ऊँचाईके चतुर्थभाग प्रमाण ऊँचे हैं ॥२३३७॥

सीदा-सीदोदाणं, पासे एक्को जिणिंद - भवण - जुदो ।
सेसा य तिण्णि कूडा, वेंतर - णयरेहिं रमणिज्जा ॥२३३८॥

अर्थ :—सीता-सीतोदाके पार्श्वभागमें एक कूट जिनेन्द्र-भवनसे युक्त है और शेष तीन कूट व्यंतर-नगरोंसे रमणीय हैं ॥२३३८॥

विशेषार्थ :—वक्षार पर्वत १६ हैं और प्रत्येक वक्षार पर चार-चार कूट हैं। इनमेंसे सीता-सीतोदा महानदियोंकी ओर स्थित प्रथम कूटोंपर जिनमन्दिर हैं और शेष तीन-तीन कूटोंपर व्यन्तर देवोंके नगर हैं। इन ६४ कूटोंके नाम इस प्रकार हैं—

[तालिका : ४३ अगले पृष्ठ पर देखिए]

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. सिद्धा वक्खारओवरविजओ णाम णाम कूडा। २. द. ब. क ज. य. उच्छेहो।

तालिका : ४३

वक्षार	कूटोंके नाम	वक्षार	कूटोंके नाम	वक्षार	कूटोंके नाम	वक्षार	कूटोंके नाम
१. चित्रकूट	१. सिद्धकूट २. चित्रकूट ३. कच्छाकूट ४. सुकच्छाकूट	५. त्रिकूट	१. सिद्ध २. त्रिकूट ३. वत्सा ४. सुवत्सा	९. श्रद्धावान्	१. सिद्ध २. श्रद्धावान् ३. पद्मा ४. सुपद्मा	१३. चन्द्रगिरि	१. सिद्ध २. चन्द्रगिरि ३. वप्रा ४. सुवप्रा
२. नलिनगिरि	१. सिद्ध २. नलिन ३. महाकच्छा ४. कच्छकावती	६. वैश्रवण	१. सिद्ध २. वैश्रवण ३. महावत्सा ४. वत्सकावती	१०. विजटावान्	१. सिद्ध २. विजटावान् ३. महापद्मा ४. पद्मकावती	१४. सूर्यगिरि	१. सिद्ध २ सूर्यगिरि ३. महावप्रा ४. वप्रकावती
३. पद्म	१. सिद्धकूट २. पद्म ३. आवर्ता ४. लांगला	७. अञ्जन	१. सिद्ध २. अञ्जन ३. रम्या ४ सुरम्या	११. आशीविष	१. सिद्ध २. आशीविष ३. शंखा ४. नलिना	१५. नागगिरि	१. सिद्ध २ नागगिरि ३. गन्धा ४. सुगन्धा
४. एकशैल	१. सिद्ध २. एकशैल ३. पुष्कला ४. पुष्कलावती	८. आत्मांजन	१. सिद्ध २. आत्मांजन ३. रमणीया ४. मंगलवती	१२. सुखावह	१. सिद्ध २. सुखावह ३ कुमुदा ४. सरित् कूट	१६. देवमाल	१. सिद्ध २. देवमाल ३. गन्धिला ४. गन्धमालिनी

बारह विभंगा-नदियोंका वर्णन—

रोहीए सम बारस-विभंग-सरियाओ वास - पहुदीहिं ।
परिवार - णईओ तह, दोसु विदेहेसु पत्तेक्कं ॥२३३९॥

२८००० ।

अर्थ :—दोनों विदेहोंमें रोहित्के सदृश विस्तारादिवाली बारह विभंग-नदियाँ हैं । इनमेंसे प्रत्येक नदीकी परिवार नदियाँ रोहित्के ही सदृश अट्ठाईस हजार (२८०००) प्रमाण हैं ॥२३३९॥

कंचण-सोवाणाओ, सुगंध-बहु-विमल-सलिल भरिदाओ ।
उववण - वेदी - तोरण - जुदाओ णच्चंत - उम्मीओ ॥२३४०॥

तोरण-दारा उवरिम-ठाण-ट्ठिद-जिण-णिकेद-णिचिदाओ ।
सोहंति णिरुवमाणा, सयलाओ विभंग - सरियाओ ॥२३४१॥

अर्थ :—(सम्पूर्ण विभंग-नदियाँ) सुवर्णमय सोपानों सहित, सुगन्धित निर्मल जलसे परिपूर्ण, उपवन, वेदी एवं तोरणोंसे संयुक्त, नृत्य करती हुई लहरों सहित, तोरण द्वारोंके उपरिम प्रदेशमें स्थित जिनभवनोंसे युक्त और उपमासे रहित होती हुई शोभायमान होती हैं ॥२३४०-२३४१॥

देवारण्य-वनका निरूपण—

सीताए उत्तरदो, दीओववणस्स वेदि - पच्छिमदो ।
णीलाचल - दक्खिणदो, पुव्वंते पोक्खलावदी - विसए ॥२३४२॥

चेट्ठदि देवारण्णं, णाणा - तरु - संड - मंडिदं रम्मं ।
पोक्खरणी - वावीहिं, कमलुप्पल - परिमलिल्लाहिं ॥२३४३॥

अर्थ :—सीतानदीके उत्तर, द्वीपोपवन-सम्बन्धी वेदीके पश्चिम, नीलपर्वतके दक्षिण और पुष्कलावती देशके पूर्वान्तमें नाना वृक्षोंके समूहोंसे मण्डित तथा कमलों एवं उत्पलोंकी सुगन्धसे संयुक्त ऐसी पुष्करिणी और वापिकाओंसे रमणीक देवारण्य नामक वन स्थित है ॥२३४२-२३४३॥

तस्सि देवारण्णे, पासादा कणय - रयण - रजदमया ।
वेदी - तोरण - धय - वड - पहुदीहिं मंडिदा विउला ॥२३४४॥

अर्थ :—उस देवारण्यमें सुवर्ण, रत्न एवं चांदीसे निर्मित तथा वेदो, तोरण और ध्वज-पटादिकोंसे मण्डित विशाल प्रासाद हैं ।।२३४४।।

उप्पत्ति - मंदिराइं[१], अहिसेयपुरा य मेहुण[२] - गिहाइं ।
कीडण - सालाओ सभा - सालाओ जिण - णिकेदेसु ।।२३४५।।

अर्थ :—इन प्रासादोंमें उत्पत्तिगृह, अभिषेकपुर, मैथुनगृह, क्रीडन-शाला, सभाशाला और जिन-भवन स्थित हैं ।।२३४५।।

चउ - विदिसासु गेहा, ईसाणिदस्स अंग - रक्खाणं ।
दिप्पंत - रयण - दीवा, बहुविह-धुव्वंत - धय - माला ।।२३४६।।

अर्थ :—चारों विदिशाओंमें ईशानेन्द्रके अंगरक्षक देवोंके प्रदीप्त रत्नदीपकोंवाले और बहुत प्रकारका फहराती हुई ध्वजाओंके समूहोंसे सुशोभित गृह हैं ।।२३४६।।

दक्खिण-दिसा-विभागे, तिप्परिसाणं [३]पुराणि विविहाणि ।
सत्ताणमणीयाणं[४] पासादा पच्छिम - दिसाए ।।२३४७।।

अर्थ :—दक्षिणदिशा-भागमें तीनों पारिषददेवोंके विविध भवन और पश्चिम दिशामें सात अनीक देवोंके प्रासाद हैं ।।२३४७।।

किब्बिस - अभियोगाणं, सम्मोह-सुराण तत्थ दिब्भागे ।
कंदप्पाण सुराणं, होंति विचित्ताणि भवणाणि ।।२३४८।।

अर्थ :—उसी दिशामें किल्विष, आभियोग्य, समोहसुर और कन्दर्प देवोंके अद्भुत भवन हैं ।।२३४८।।

एदे सव्वे देवा, तेसु कीडंति बहु - विणोदेहिं ।
रम्मेसु मंदिरेसु, ईसाणिदस्स परिवारा ।।२३४९।।

अर्थ :—ईशानेन्द्रके परिवार-स्वरूप ये सब देव उन रमणीक भवनोंमें बहुत प्रकारके विनोदोंसे क्रीडा करते हैं ।।२३४९।।

---

१ द. ब. क. ज. य. उ. मंडिदाइं । २. द. ब. क. ज य. उ. मिहुणगिहाहिं । ३. द. ब. क. ज. य. उ. पुराण विविहाण । ४. द. ब. क. ज. य. उ. सत्ताणं आणीयाणं ।

सीदाए दक्खिण-तडे, दीवोववणस्स वेदि - पच्छिमदो ।
णिसहाचल - उत्तरदो, पुव्वाए दिसाए वच्छस्स ॥२३५०॥

देवारण्णं अण्णं, चेट्ठदि पुव्वस्स सरिस - वण्णणयं ।
णवरि विसेसो देवा, सोहम्मिदस्स परिवारा ॥२३५१॥

अर्थ :—द्वीपोपवन-सम्बन्धी वेदीके पश्चिम, निषधाचलके उत्तर और वत्सादेशकी पूर्व-दिशामें सीता नदीके दक्षिण तटपर पूर्वोक्त देवारण्यके सदृश वर्णनवाला दूसरा देवारण्य भी स्थित है। विशेष केवल इतना है कि इस वनमें सौधर्म-इन्द्रके परिवार देव क्रीड़ा करते हैं ॥२३५०-२३५१॥

भूतारण्यका निरूपण—

सीदोदा - दु - तडेसुं, दीवोववणस्स वेदि - पुव्वाए ।
णील - णिसहद्दि-मज्झे, अवर-विदेहस्स अवर-दिब्भाए ॥२३५२॥

बहु - तरु - रमणीयाइं, भूदारण्णाइं दोण्णि सोहंति ।
देवारण्ण - समाणं, सव्वं च्चिय वण्णणं ताणं ॥२३५३॥

। एवं विदेह-विजय-वण्णणा समत्ता ।

अर्थ :—द्वीपोपवन-सम्बन्धी वेदीके पूर्व और अपर-विदेहके पश्चिम दिग्भागमें नील-निषध-पर्वतके मध्य सीतोदाके दोनों तटोंपर बहुतसे वृक्षोंसे रमणीय भूतारण्य-नामक दो वन शोभित हैं। इनका समस्त वर्णन देवारण्योंके ही सदृश है ॥२३५२-२३५३॥

। इसप्रकार विदेह क्षेत्रका कथन समाप्त हुआ ।

नीलगिरिका वर्णन—

णीलगिरी णिसहो पिव, उत्तर - पासम्मि दो-विदेहाणं ।
णवरि विसेसो[1] अण्णे, कूडाणं देव - देवि - दह - णामा ॥२३५४॥

अर्थ :—दोनों विदेहोंके उत्तर पार्श्वभागमें निषधके ही सदृश नीलगिरी भी स्थित है। विशेष इतना है कि इस पर्वतपर स्थित कूटों, देव-देवियों और द्रहोंके नाम अन्य ही हैं ॥२३५४॥

---

१. ब. उ. विसेसो एसो अण्णे ।

नीलगिरि स्थित कूटोंका वर्णन—

सिद्धक्खो णीलक्खो, पुव्व - विदेहो त्ति सीद-कित्तीओ ।
णारी अवर - विदेहो, रम्मक - णामावदंसणो कूडो ।।२३५५।।

अर्थ :—सिद्धाख्य, नीलाख्य, पूर्व-विदेह, सीता, कीर्ति, नारी, अपर-विदेह, रम्यक और अपदर्शन, इसप्रकार इस पर्वतपर ये नौ कूट स्थित हैं ।।२३५५।।

एदेसु पढम - कूडे, जिणिंद - भवणं विचित्त-रयणमयं ।
उच्छेह - प्पहुदीहिं, सोमणसि जिणालय - पमाणं ।।२३५६।।

अर्थ :—इनमेंसे प्रथम कूटपर सौमनसस्थ जिनालयके प्रमाण सदृश ऊँचाई आदि वाले रत्नमय अद्भुत जिनेन्द्र-भवन स्थित हैं ।।२३५६।।

सेसेसुं कूडेसुं, वेंतर - देवाण होंति णयरीओ ।
णयरीसुं पासादा, विचित्त - रूवा णिरुवमाणा ।।२३५७।।

अर्थ :—शेष कूटोंपर व्यन्तर-देवोंकी नगरियाँ हैं और उन नगरियोंमें विचित्र रूपवाले अनुपम प्रासाद हैं ।।२३५७।।

वेंतर - देवा सव्वे णिय - णिय - कूडाभिधाण-संजुत्ता ।
बहु - परिवारा दस - धणु - तुंगा पल्ल - प्पमाणाऊ ।।२३५८।।

अर्थ :—सब व्यन्तरदेव अपने-अपने कूटोंके नाम वाले हैं, बहुत परिवारों सहित हैं, दस धनुष ऊँचे हैं और एक पल्य-प्रमाण आयुवाले हैं ।।२३५८।।

कीर्तिदेवीका वर्णन—

उवरिम्मि णील-गिरिणो, केसरि-णामे दहम्मि दिव्वम्मि ।
चेट्ठदि कमल - भवणे, देवी कित्ति त्ति विक्खादा ।।२३५९।।

अर्थ :—नीलगिरिपर स्थित केसरी नामक दिव्य द्रहके मध्यमें रहनेवाले कमल-भवनपर कीर्ति नामसे विख्यात देवी स्थित है ।।२३५९।।

धिदि - देवीय समाणो, तीए सोहेदि सव्व - परिवारो ।
दस - चावाणि तुंगा, णिरुवम - लावण्ण - संपुण्णा ।।२३६०।।

अर्थ :—उस देवीका सब परिवार धृतिदेवीके सदृश ही शोभित है। यह देवी दस धनुष ऊँची और अनुपम लावण्यसे परिपूर्ण है ॥२३६०॥

आदिम-संठाण-जुदा, बर-रयण-बिभूसणेहि विविहेहिं।
सोहिद - सुंदर - मुत्ती[1], ईसाणिंदस्स सा देवी ॥२३६१॥

। णीलगिरि-वण्णणा समत्ता ।

अर्थ :—आदिम अर्थात् समचतुरस्र संस्थानवाली, विविध प्रकारके उत्तम रत्नोंके भूषणोंसे सुशोभित सौम्य-मूर्ति वह (कीर्तिदेवी) ईशानेन्द्रकी देवी है ॥२३६१॥

। इसप्रकार नीलगिरिका वर्णन समाप्त हुआ ।

रम्यक क्षेत्रका वर्णन—

रम्मक-विजओ[2] रम्मो, हरि-वरिसो [3]व वर-वण्णणा-जुत्तो ।
णवरि विसेसो एक्को, णाभि - णगे अण्ण - णामाणि ॥२३६२॥

अर्थ :—रमणीय रम्यक-विजय (क्षेत्र) भी हरिवर्ष क्षेत्रके सदृश उत्तम वर्णनासे युक्त है। विशेषता केवल यही है कि यहाँ नाभिपर्वतका नाम दूसरा है ॥२३६२॥

रम्मक-भोग-खिदीए, बहु - मज्झे होदि पउम - णामेण ।
णाभिगिरी रमणिज्जो, णिय - णाम - जुदेहिं देवेहिं ॥२३६३॥

अर्थ :—रम्यक-भोगभूमिके बहु-मध्यभागमें अपने नामवाले देवोंसे युक्त रमणीय पद्म नामक नाभिगिरि स्थित है ॥२३६३॥

केसरि - दहस्स उत्तर - तोरण-दारेण णिग्गदा दिव्वा ।
णरकंता णाम णदी, सा गच्छिय उत्तर - मुहेण ॥२३६४॥

णरकंत-कुंड-मज्झे, णिवडिय[4] णिस्सरदि उत्तर-दिसाए ।
तत्तो णाभि - गिरिंदं, कादूण पदाहिणं पि पुव्वं व ॥२३६५॥

---

१. द. ज. मूही, ब. क. य. उ. मुही। २. ब. विजट्ठो, द. ज. उ. विजदो, क. विजदो। ३. द. ब. क. ज. उ. वि। ४. द. ज. य. णिवलिय।

गंतूणं सा मज्झं, रम्मक - विजयस्स पच्छिम - मुहेण ।
पविसेदि लवण - जलहिं, परिवार - णदीहि संजुत्ता ॥२३६६॥

। रम्मक-विजयस्स परूवणा समत्ता ।

अर्थ :—केसरी द्रहके उत्तर तोरणद्वारसे निकली हुई दिव्य नरकान्ता नामक प्रसिद्ध नदी उत्तरकी ओर गमन करती हुई नरकान्त-कुण्डमें गिरकर उत्तरकी ओरसे निकलती है। पश्चात् वह नदी पहलेके ही सदृश नाभिपर्वतकी प्रदक्षिणा करके रम्यक क्षेत्रके मध्यसे जाती हुई पश्चिम मुख होकर परिवार-नदियोंके साथ लवण समुद्रमें प्रवेश करती है ॥२३६४-२३६६॥

। रम्यकक्षेत्रका वर्णन समाप्त हुआ ।

रुक्मिगिरिका वर्णन—

रम्मक - भोगखिदीए, उत्तर-भागम्मि होदि रुम्मिगिरी ।
महहिमवंत - सरिच्छं, सयलं चिय वण्णणं तस्स ॥२३६७॥

अर्थ :—रम्यक-भोगभूमिके उत्तरभागमें रुक्मि-पर्वत है। उसका सम्पूर्ण-वर्णन महाहिमवान्‌के सदृश समझना चाहिए ॥२३६७॥

णवरि य ताणं[1] कूड-द्दह-सुर-देवीण अण्ण - णामाणि ।
सिद्धो रुम्मी - रम्मक - णरकंता - बुद्धि - रुप्पो त्ति ॥२३६८॥

हेरण्णवदो मणिकंचण - कूडो[2] रुम्मियाण तहा ।
कूडाण इमा णामा, तेसुं जिणमंदिरं पढम - कूडे ॥२३६९॥

सेसेसुं कूडेसुं, वेंतर - देवाण होंति णयरीओ ।
विक्खादा ते देवा, णिय - णिय - कूडाण णामेहिं ॥२३७०॥

अर्थ :—विशेष इतना है कि यहाँ उन कूट, द्रह, देव और देवियोंके नाम भिन्न हैं। सिद्ध, रुक्मि, रम्यक, नरकान्ता, बुद्धि, रूप्यकूला, हैरण्यवत और मणिकाञ्चन, ये रुक्मिपर्वतपर स्थित उन आठ कूटोंके नाम हैं। इनमेंसे प्रथम कूटपर जिन-मन्दिर और शेष कूटोंपर व्यन्तरदेवोंकी नगरियाँ हैं। वे देव अपने-अपने कूटोंके नामोंसे विख्यात हैं ॥२३६८-२३७०॥

---

१. द ब. क. ज य. उ. णाम । २. द. ब. क ज. य. उ. कूडा रुप्पिया तहा णवधू ।

रुम्मि - गिरिंदस्सोवरि, बहुमज्झे होदि पुंडरीय-दहो ।
फुल्लंत - कमल - पउरो, तिगिंछ - द्दहस्स परिमाणो ।।२३७१।।

अर्थ :—रुक्मि-पर्वतपर बहु-मध्यभागमें फूले हुए प्रचुर कमलोंसे युक्त तिगिञ्छद्रहके सदृश प्रमाणवाला पुण्डरीक द्रह है ।।२३७१।।

तद्दह - कमल - णिकेदे, देवी णिवसेदि बुद्धि - णामेणं ।
तीए हवेदि अद्धो, परिवारो कित्ति - देवीदो ।।२३७२।।

अर्थ :—उस द्रह-सम्बन्धी कमल-भवनमें बुद्धि नामक देवी निवास करती है । इसका परिवार कीर्तिदेवीकी अपेक्षा आधा है ।।२३७२।।

णिरुवम-लावण्ण-तणू, वर-रयण-विभूसणेहिं रमणिज्जा ।
विविह - विणोदा - कीडदि, ईसाणिंदस्स सा देवी ।।२३७३।।

अर्थ :—अनुपम लावण्यमय शरीरसे संयुक्त और उत्तम रत्नोंके भूषणोंसे रमणीक ईशानेन्द्रकी वह देवी विविध विनोद पूर्वक क्रीड़ा करती है ।।२३७३।।

तद्दह - दक्खिण - तोरण - दारेणं णिग्गदा णई णारी ।
णारी - णामे कुंडे, णिवडदि गंतूण [1]थोव - मही ।।२३७४।।

तद्दक्खिण - दारेणं, णिस्सरिदूणं च दक्खिण-मुही सा ।
तत्तो णाभिगिरिंदं, कादूण पदाहिणं हरिणाइं व ।।२३७५।।

रम्मक-भोगखिदीए, बहु - मज्झेणं पयादि पुव्व - मुही ।
पविसेदि लवण - जलहिं, परिवार - तरंगिणीहि जुदा ।।२३७६।।

। रुम्मिगिरि-वण्णणा समत्ता ।

अर्थ :—उस द्रहके दक्षिण-तोरणद्वारसे निकली हुई नारी नदी अल्प-विस्तार होकर नारी-नामक कुण्डमें गिरती है । पश्चात् वह (कुण्डके) दक्षिण-द्वारसे निकलकर दक्षिणमुख होती हुई

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. थोवमुही ।

हरित् नदीके सदृश ही नाभिगिरिकी प्रदक्षिणा करके रम्यक-भोगभूमिके बहुमध्यभागमेंसे पूर्वकी ओर जाती हुई परिवार-नदियोंसे युक्त होकर लवणसमुद्रमें प्रवेश करती है ।।२३७४-२३७६।।

।। रुक्मिपर्वतका वर्णन समाप्त हुआ ।।

हैरण्यवत क्षेत्रका निरूपण --

विजओ हेरण्णवदो, हेमवदो व्व प्पवण्णणा - जुत्तो[1] ।
णवरि विसेसो एक्को, [2]णाभीण-णईण अण्ण-णामाणि ।।२३७७।।

अर्थ :—हैरण्यवतक्षेत्र हैमवतक्षेत्रके सदृश वर्णनसे युक्त है । एक विशेषता केवल यही है कि यहाँ नाभिगिरि और नदियोंके नाम भिन्न हैं ।।२३७७।।

तस्स बहु - मज्झ-भागे, विजयड्ढो होदि गंधवंतो त्ति ।
तस्सोवरिम - णिकेदे, पभास - णामो ठिदो देवो ।।२३७८।।

अर्थ :—उस क्षेत्रके बहुमध्य-भागमें गन्धवान् नामक विजयार्ध (नाभिगिरि) है । उसपर स्थित भवनमें प्रभास नामक देव रहता है ।।२३७८।।

पुंडरिय - दहाहिंतो, उत्तर - दारेण रुप्पकूल - णई ।
णिस्सरिदूणं णिवडदि, कुंडे सा रुप्पकूलम्मि ।।२३७९।।

तस्सुत्तर - दारेणं, णिस्सरिदूणं च उत्तर - मुही सा ।
णाभिगिरिं कादूणं, पदाहिणं रोहि - सरिय व्व ।।२३८०।।

पच्छिम - मुहेण गच्छिय, परिवार-तरंगिणीहि संजुत्ता ।
दीव - जगदी - बिलेणं, पविसदि कल्लोलिणी - [3]णाहं ।।२३८१।।

। हेरण्णवद-विजय-वण्णणा समत्ता ।

अर्थ :—रूप्यकूलानदी पुण्डरीक द्रहके उत्तर-द्वारसे निकलकर रूप्यकूल नामक कुण्डमें गिरती है । तत्पश्चात् वह नदी उस कुण्डके उत्तर-द्वारसे निकलकर उत्तरकी ओर गमन करती हुई

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. जुत्ता । २. द. वेणभीण ब. क. उ. देवणाभीण । ३. द. ब. क. ज. य. उ कल्लोलिणि णाम ।

रोहित् नदीके सदृश नाभिगिरिकी प्रदक्षिणा करके पश्चिमकी ओर जाती है। पुनः परिवार-नदियोंसे संयुक्त होकर वह नदी जम्बूद्वीपकी जगतीके बिलमें होकर लवणसमुद्रमें प्रवेश करती है ॥२३७९-२३८१॥

। हैरण्यवतक्षेत्रका वर्णन समाप्त हुआ ।

शिखरीगिरिका निरूपण—

तक्खिज-उत्तर-भागे, सिहरी - णामेण चरम - कुलसेलो ।
हिमवंतस्स सरिच्छं, सयलं चिय वण्णणं तस्स ॥२३८२॥

अर्थ :—इस क्षेत्रके उत्तर-भागमें शिखरी-नामक अन्तिम कुल-पर्वत स्थित है। इस पर्वतका सम्पूर्ण वर्णन हिमवान् पर्वतके सदृश है ॥२३८२॥

णवरि विसेसो कूडद्दहाण[1] देवाण देवि - सरियाणं ।
अण्णाइं णामाइं, तस्सि सिद्धो पढम - कूडो ॥२३८३॥

सिहरी हेरण्णवदो, रसदेवी - रत्त - लच्छि-कंचणया ।
रत्तवदी गंधवदी, रेवद - मणिकंचणं कूडं ॥२३८४॥

एक्कारस - कूडाणं, पुह पुह पणुवीस जोयणा उदओ ।
तेसुं पढमे कूडे[2], जिणिद - भवणं परम - रम्मं ॥२३८५॥

सेसेसं कूडेसुं, णिय - णिय - कूडाण णाम - संजुत्ता ।
वेंतर - देवा मणिमय - पासादेसुं विरायंति ॥२३८६॥

अर्थ :—विशेष यह है कि यहाँ कूट, द्रह, देव, देवी और नदियोंके नाम भिन्न हैं। उस (शिखरी) पर्वतपर प्रथम सिद्ध कूट, शिखरी, हैरण्यवत, रसदेवी, रक्ता, लक्ष्मी, काञ्चन, रक्तवती, गन्धवती, रेवत (ऐरावत) और मणिकाञ्चनकूट, इसप्रकार ये ग्यारह कूट स्थित हैं। इन ग्यारह कूटोंकी ऊँचाई पृथक्-पृथक् पच्चीस योजन प्रमाण है। इनमेंसे प्रथम कूटपर परम-रमणीय जिनेन्द्र-भवन और शेष कूटोंपर स्थित मणिमय प्रासादोंमें अपने-अपने कूटोंके नामोंसे संयुक्त व्यन्तर देव विराजमान हैं ॥२३८३-२३८६॥

---

१. द. ब. क. उ. कूडद्दहावि, ज. य. कूडद्दहादि। २. द. ब. क. य. उ. कूडो।

महपुंडरीय-णामा, दिव्व - दहो सिहरि-सेल-सिहरम्मि ।
पउमद्दह - सारिच्छो, वेदी - पहुदीहि कय - सोहो ॥२३८७॥

अर्थ :—इस शिखरी-शैलके शिखरपर पद्मद्रहके सदृश वेदी आदिसे शोभायमान महा-पुण्डरीक नामक दिव्य द्रह है ॥२३८७॥

तस्स [1]सयवत्त-भवणे, लच्छिय - णामेण णिवसदे देवी ।
सिरिदेवीए सरिसा, ईसाणिंदस्स सा देवी ॥२३८८॥

अर्थ :—उस तालाबके कमल-भवनमें श्रीदेवीके सदृश जो लक्ष्मी नामक देवी निवास करती है, वह ईशानेन्द्रकी देवी है ॥२३८८॥

तद्दह-दक्खिण-तोरण-दारेण सुवण्णकूल - णाम - णदी ।
णिस्सरिय दक्खिण-मुही, णिवडेदि सुवण्णकूल-कुंडम्मि ॥२३८९॥
तद्दक्खिण - दारेणं, णिस्सरिदूणं च दक्खिण-मुही सा ।
णाभिगिरिं कादूणं, पदाहिणं रोहि - सरिय व्व ॥२३९०॥
हेरण्णवदब्भंतर - भागे गच्छिय दिसाए पुव्वाए ।
दीव - जगदी - बिलेणं, पविसेदि तरंगिणी - णाहं ॥२३९१॥

। एवं सिहरिगिरि-वण्णणा समत्ता[2] ।

अर्थ :—उस द्रहके दक्षिण-तोरण-द्वारसे निकलकर सुवर्णकूला नामक नदी दक्षिणमुखी होकर सुवर्णकूल-कुण्डमें गिरती है। तत्पश्चात् उस कुण्डके दक्षिण-द्वारसे निकलकर वह नदी दक्षिण-मुखी होकर रोहित् नदीके सदृश नाभिगिरिकी प्रदक्षिणा करती हुई हैरण्यवतक्षेत्रके अभ्यन्तर भागमेंसे पूर्व दिशाकी ओर जाकर जम्बूद्वीप-सम्बन्धी जगतीके बिलमेंसे समुद्रमें प्रवेश करती है ॥२३८९-२३९१॥

। इसप्रकार शिखरीपर्वतका वर्णन समाप्त हुआ ।

ऐरावतक्षेत्रका निरूपण—

सिहरिस्सुत्तर - भागे, जंबूदीवस्स जगदि - दक्खिणदो ।
एरावदो त्ति वरिसो, चेट्ठदि भरहस्स सारिच्छो ॥२३९२॥

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. पवत्तशुभवणे, ज. य. यवत्तमु भवणे, द. यवत्तभवण । २. ब. क. ज. य. उ. सम्मत्ता ।

अर्थ :—शिखरीपर्वतके उत्तर और जम्बूद्वीपकी जगतीके दक्षिणभागमें भरतक्षेत्रके सदृश ऐरावतक्षेत्र स्थित है ।।२३६२।।

णवरि विसेसो तस्सि[1], सलाग - पुरिसा हवंति जे केई ।
ताणं णाम - प्पहुदिसु, उवदेसो संपइ पणट्ठो ।।२३६३।।

अर्थ :—विशेष यह कि उस क्षेत्रमें जो कोई शलाका-पुरुष होते हैं, उनका नामादि-विषयक उपदेश इस समय नष्ट हो चुका है ।।२३६३।।

अण्णण्णा [2]एदस्सिं, णामा विजयड्ढ - कूड-सरियाणं[3] ।
सिद्धो[4] रेवद - खंडो, माणी विजयड्ढ - पुण्णा य ।।२३६४।।

तिमिसगुहो रेवद - वेसमणं णामाणि होंति कूडाणं ।
सिहरि-गिरिंदोवरि महपुंडरिय - दहस्स पुव्व - दारेणं ।।२३६५।।

रत्ता[5] णामेण णदी, णिस्सरिय पडेदि रत्त-कुंडम्मि ।
गंगाणइ - सारिच्छा, पविसइ लवणंबु - रासिम्मि ।।२३६६।।

अर्थ :—उस क्षेत्रमें विजयार्धपर्वतपर स्थित कूटों और नदियोंके नाम भिन्न हैं। सिद्ध, ऐरावत, खण्डप्रपात, माणिभद्र, विजयार्ध, पूर्णभद्र तिमिस्रगुह, ऐरावत और वैश्रवण ये नौ कूट यहाँ विजयार्ध पर्वतपर हैं। शिखरी पर्वतपर स्थित महापुण्डरीक द्रहके पूर्व द्वारसे निकलकर रक्ता नामक नदी रक्तकुण्डमें गिरती है। पुनः वह गङ्गानदीके सदृश लवणसमुद्रमें प्रवेश करती है ।।२३६४-२३६६।।

तद्दह - पच्छिम - तोरण - दारेणं णिस्सरेदि रत्तोदा ।
सिंधु - णईए सरिसा, णिवडदि रत्तोद - कुंडम्मि ।।२३६७।।

पच्छिम-मुहेण तत्तो, णिस्सरिदूणं अणेय-सरि-सहिदा ।
दीव - जगदी - बिलेणं, लवण - समुद्दम्मि पविसेदि ।।२३६८।।

अर्थ :—उसी द्रहके पश्चिम तोरण-द्वारसे रक्तोदानदी निकलती है और सिन्धुनदीके सदृश रक्तोदकुण्डमें गिरती है। पश्चात् वह उस कुण्डसे निकलकर पश्चिममुख होती हुई अनेक नदियोंके साथ जम्बूद्वीपकी जगतीके बिलसे लवणसमुद्रमें प्रवेश करती है ।।२३६७-२३६८।।

---

१. द. ब. य. उ. तेस्सि। २. द. ब. क. उ. एदेसि। ३. द. ब. क. ज. य. उ. सरिसाण। ४. द. ब. क. ज. य. उ. सिद्धा। ५ द. ब. क. उ. रत्तो।

गंगा - रोही - हरिया, सीदा - णारी-सुवण्ण-कूलाओ ।
रत्त त्ति सत्त सरिया, पुव्वाए दिसाए वच्चंति ॥२३९९॥

अर्थ :—गङ्गा, रोहित्, हरित्, सीता, नारी, सुवर्णकूला और रक्ता ये सात नदियाँ पूर्व-दिशामें जाती हैं ॥२३९९॥

पच्छिम-दिसाए गच्छदि, सिंधुणई रोहिदास-हरिकंता ।
सीदोदा णरकंता, रुप्पकूला सत्तमी य रत्तोदा ॥२४००॥

। एवं एरावद-खेत्तस्स वण्णणा समत्ता ।

अर्थ :—सिन्धुनदी, रोहितास्या, हरिकान्ता, सीतोदा, नरकान्ता, रूप्यकूला और सातवीं रक्तोदा ये सात नदियाँ पश्चिम-दिशामें जाती हैं ॥२४००॥

॥ इसप्रकार ऐरावतक्षेत्रका वर्णन समाप्त हुआ ॥

धनुषाकार क्षेत्रके क्षेत्रफल निकालनेका विधान—

इसु-पाद-गुणिद-जीवा, गुणिदव्वा दस - पदेण जं वग्गं ।
मूलं चावायारे, खेत्तेत्थं होदि सुहुम - फलं ॥२४०१॥

अर्थ :—बाणके चतुर्थ भागसे गुणित जीवाका जो वर्ग हो उसको दससे गुणाकर प्राप्त गुणनफलका वर्गमूल निकालनेपर धनुषके आकार क्षेत्रका सूक्ष्म क्षेत्रफल जाना जाता है ॥२४०१॥

भरतक्षेत्रका सूक्ष्म क्षेत्रफल—

पंच-ति-ति-एक्क-दुग-णभ-छक्का अंकक्कमेण जोयणया ।
एक्क-छ-ति-हरिद-चउ-णव-दुग-भागा भरहखेत्त - फलं । २४०२॥

६०२१३३५ । $\frac{२९४}{३६१}$ ।

अर्थ :—पाँच, तीन, तीन, एक, दो, शून्य और छह, इस अंक क्रमसे जो संख्या निर्मित हो उतने योजन और तीनसौ इकसठसे भाजित दोसौ चौरानबें ($\frac{२९४}{३६१}$) भाग प्रमाण भरतक्षेत्रका सूक्ष्म क्षेत्रफल है ॥२४०२॥

विशेषार्थ :—भरतक्षेत्रका बाण $५२६\frac{६}{१९}$ अथवा $\frac{१००००}{१९}$ योजन और जीवा (गा० १९१) $१४४७१\frac{५}{१९} = \frac{२७४९५४}{१९}$ योजन है। अतएव गाथा २४०१ के नियमानुसार भरतक्षेत्रका सूक्ष्मक्षेत्रफल—

$$\sqrt{\left(\frac{१००००}{१९} \times \frac{१}{४} \times \frac{२७४९५४}{१९}\right)^२ \times १०} = \sqrt{\left(\frac{६८७३८५०००}{३६१}\right)^२ \times १०}$$

$$= \sqrt{\frac{४७२४९८१३८२२५०००००००}{३६१ \times ३६१}}$$

$= ६०२१३३५\frac{३२४}{३६१}$ योजन।

नोट :—वर्गमूल निकालते समय जो अवशेष बचे थे वे छोड़ दिए गए हैं।

हिमवान् पर्वतका सूक्ष्म-क्षेत्रफल—

णव-छच्चउ-णभ-गयणं, एक्कं पण-दोण्णि जोयणा भागा।
पंचावण - एक्क- सया, हिमवंत - गिरिम्मि खेत्तफलं ॥२४०३॥

२५१००४६९ | $\frac{१५५}{३६१}$ |

अर्थ :—नौ छह, चार, शून्य, शून्य, एक, पाँच और दो, इस अंक क्रमसे जो संख्या निर्मित हो उतने योजन और तीनसौ इकसठसे भाजित एकसौ पचपन भाग ($२५१००४६९\frac{१५५}{३६१}$ योजन) प्रमाण हिमवान् पर्वतका सूक्ष्मक्षेत्रफल है ॥२४०३॥

हैमवतक्षेत्रका सूक्ष्मक्षेत्रफल—

छण्णव-छण्णभ-एक्कं, छग्ग-अट्ठ-सत्तं कमेण भागा य।
दु-रहिद-तिण्णि-सयाइं, हिमवद - खिदिम्मि खेत्तफलं ॥२४०४॥

७८६१०६९६ | $\frac{२९८}{३६१}$ |

अर्थ :—छह, नौ, छह, शून्य, एक, छह, आठ और सात, इस अंक क्रमसे जो संख्या निर्मित हो उतने योजन और तीनसौ इकसठसे भाजित दोसौ अट्ठानबे भाग ($७८६१०६९६\frac{२९८}{३६१}$ यो०) प्रमाण हैमवत-क्षेत्रका सूक्ष्म क्षेत्रफल है ॥२४०४॥

नोट :—महाहिमवान् पर्वतके सूक्ष्म-क्षेत्रफलको दर्शानेवाली गाथा कीड़ों द्वारा खाई जा चुकी है।

हरिवर्षक्षेत्रका सूक्ष्म-क्षेत्रफल—

छक्कं छप्पण-णव-तिय, छच्छ-इगि-छक्कं कमेण भागा य ।
बाहत्तरि-दोण्णि-सया, हरि-वरिस - खिदिम्मि खेत्तफलं ।।२४०५।।

६१६६३९५६६ | २७२/३६१ |

अर्थ :—छह, छह, पाँच, नौ, तीन, छह, छह, एक और छह इस अंक क्रमसे जो संख्या निर्मित हो उतने योजन और एक योजनके तीन सौ इकसठ भागोंमेंसे दो सौ बहत्तर भाग (६१६६३९५६६ $\frac{२७२}{३६१}$ यो०) प्रमाण हरिवर्षक्षेत्रका सूक्ष्म क्षेत्रफल है ।।२४०५।।

निषधपर्वतका सूक्ष्म-क्षेत्रफल—

तिय-एक्कंबर-णव-दुग-णव-चउ-इगि-पंच-एक्क-अंसा य ।
तिण्णि - सय - बारसाइं, खेत्तफलं णिसह - सेलस्स ।।२४०६।।

१५१४९२९०१३ | ३१२/३६१ |

अर्थ :—तीन, एक, शून्य, नौ, दो, नौ, चार, एक, पाँच और एक इस अंक क्रमसे जो संख्या निर्मित हो उतने योजन और एक योजनके तीनसौ इकसठ भागोंमेंसे तीन सौ बारह भाग (१५१४९२९०१३ $\frac{३१२}{३६१}$ यो०) प्रमाण निषध-पर्वतका सूक्ष्म-क्षेत्रफल है ।।२४०६।।

विदेहक्षेत्रका सूक्ष्म-क्षेत्रफल—

दु-ख-णव-णव-चउ-तिय-णव-छण्णव-दुग-जोयणेक्क-पत्तीए ।
भागा तिण्णि सया इगि-छत्तिय-हरिदा विदेह - खेत्तफलं ।।२४०७।।

२९६९३४९९०२ | ३००/३६१ |

अर्थ :—दो, शून्य, नौ, नौ, चार, तीन, नौ, छह, नौ और दो इस अंक क्रमको एक पंक्तिमें रखनेसे जो संख्या निर्मित हो उतने योजन और तीनसौ इकसठसे भाजित तीनसौ भाग (२९६९३४९९०२ $\frac{३००}{३६१}$ यो०) प्रमाण विदेहका क्षेत्रफल है ।।२४०७।।

नीलान्त ऐरावतक्षेत्रादिका क्षेत्रफल—

भरहादी णिसहंता, जेत्तियमेत्ता हवंति खेत्तफलं ।
तं सव्वं वत्तव्वं, एरावद - पहुदि - णीलंतं ।।२४०८।।

अर्थ :—भरतक्षेत्रसे लेकर निषधपर्वत तक जितना क्षेत्रफल है, वह सब ऐरावतक्षेत्रसे लेकर नीलपर्वत पर्यन्त भी कहना चाहिए ।।२४०८।।

जम्बूद्वीपका क्षेत्रफल—

अंबर-पण-एक्क-चऊ-णव-छप्पण्ण-सुण्ण-णवय सत्तं च ।
अंक - कमे परिमाणं, जंबूदीवस्स खेत्तफलं ।।२४०९।।

७९०५६९४१५० ।

अर्थ :—शून्य, पांच, एक, चार, नौ, छह, पांच, शून्य, नौ और सात इस अंक क्रमसे जो संख्या निर्मित हो, उतने योजन प्रमाण जम्बूद्वीपका क्षेत्रफल है ।।२४०९।।

दृष्टव्य :—इसी अधिकारकी गाथा ९ के नियमानुसार जम्बूद्वीपका सूक्ष्मक्षेत्रफल गाथा ५९ से ६५ पर्यन्त दर्शाया गया है ।

जम्बूद्वीपस्थ नदियोंकी संख्या—

अट्ठावीस - सहस्सा, भरहस्स तरंगिणीओ दुग-सहिदा ।
ते दुगुणा [1]दुग - रहिदा, हेमवद - क्खेत्त - सरिया णं ।।२४१०।।

२८००२ । ५६००२ ।

अर्थ :—भरतक्षेत्रकी नदियां अट्ठाईस हजार दो (२८००२) और हैमवतक्षेत्रकी नदियाँ दो कम इससे दूनी अर्थात् छप्पन हजार दो (५६००२) हैं ।।२४१०।।

हेमवद - वाहिणीणं, दुगुणिय - संखा य दुग-विहीणा य ।
हरिवरिसम्मि पमाणं, तरंगिणीणं च [2]णादव्वं ।।२४११।।

११२००२ ।

---

१. द. दुगणारहिदा । २. द. ब. क. ज. उ. णादव्वा ।

अर्थ :—हरिवर्षक्षेत्रमें भी नदियोंका प्रमाण हैमवतक्षेत्रकी नदियोंसे दो कम दुगुनी संख्या रूप अर्थात् एक लाख बारह हजार दो (११२००२) जानना चाहिए ।।२४११।।

एदाण ति - खेत्ताणं, सरियाओ मेलिदूण दुगुण - कदा ।
जायंति बारसोत्तर, बाणउदि - सहस्स तिय - लक्खा ।।२४१२।।

३९२०१२ ।

अर्थ :—इन तीन क्षेत्रोंकी नदियोंको मिलाकर दूना करनेसे तीन लाख बानबे हजार बारह (३९२०१२) होता है ।।२४१२।।

विशेषार्थ :—भरतक्षेत्रकी २८००२+५६००२ हैमवतक्षेत्रकी+११२००२ नदियाँ हरिवर्ष की=१९६००६ नदियाँ हुईं । रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत क्षेत्रोंमें भी नदियोंका प्रमाण यही है अत: १९६००६×२=३९२०१२ नदियाँ छह क्षेत्रोंकी हुईं ।

अट्ठासट्ठि - सहस्सब्भहियं[1] एक्कं तरंगिणी - लक्खं ।
देवकुरुम्मि य खेत्ते, णादव्वं उत्तरकुरुम्मि ।।२४१३।।

१६८००० ।

अर्थ :—देवकुरु और उत्तरकुरुमें इन नदियोंकी संख्या एक लाख अड़सठ हजार (१६८०००) प्रमाण जाननी चाहिए ।।२४१३।।

अट्ठत्तरि - संजुत्ता, चोद्दस - लक्खाणि होंति दिव्वाओ ।
सव्वाओ पुव्वावर - विदेह - विजयाण सरियाओ ।।२४१४।।

१४०००७८ ।

अर्थ :—पूर्व और पश्चिम विदेहक्षेत्रोंकी सब दिव्य नदियाँ चौदह लाख अठहत्तर (१४०००७८) है ।।२४१४।।

सत्तरस-सयसहस्सा, बाणउदि-सहस्सया य णउदि-जुदा ।
सव्वाओ वाहिणीओ, जंबूदीवम्मि मिलिदाओ ।।२४१५।।

१७९२०९० ।

---

१ द ब. क. ज. य. उ. सहस्सं बहियं ।

णदी-संखा—बिदे० सीतासीतोदा २, क्षेत्रनदी ६४, बिभंगा १२, सीतासीतोदा-परिवार १६८०००, क्षे. न. प. ८९६०००, बि. परि. ३३६०००, एक्त्र १४०००७८। भरतादि ३९२०१२। १७९२०९०।

अर्थ :—इसप्रकार सब मिलकर जम्बूद्वीपमें सत्तरह लाख बानबे हजार नब्बे (१७९२०९०) नदियाँ हैं ॥२४१५॥

[तालिका ४४ अगले पृष्ठ पर देखिये]

जम्बूद्वीपमें परिवार नदियाँ १७९२००० हैं और प्रमुख नदियाँ ९० हैं। उन ९० प्रमुख नदियोंका चित्रण निम्नप्रकार है—
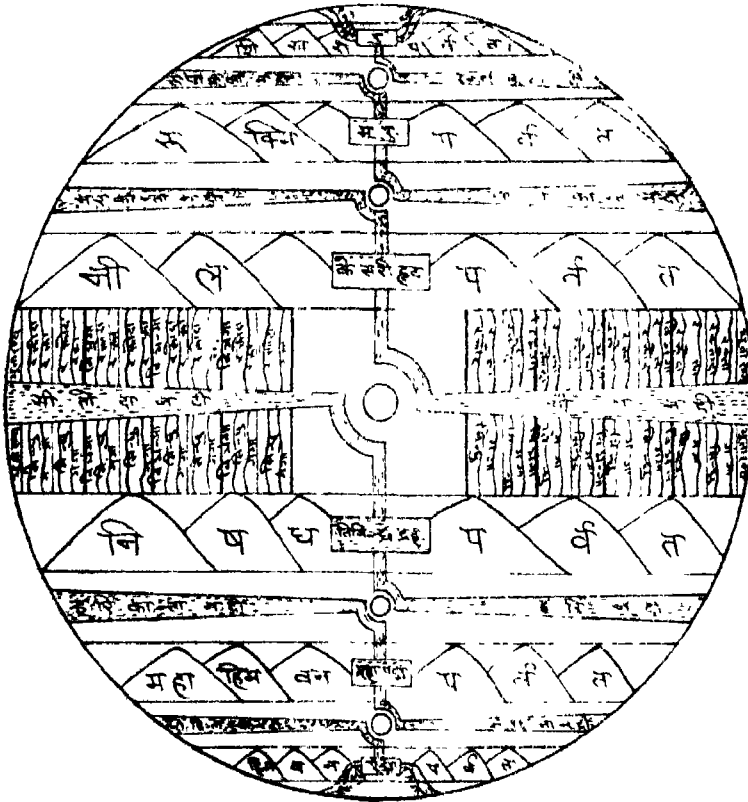
तालिका : ४४　　　　जम्बूद्वीपस्थ सम्पूर्ण नदियोंकी तालिका

क्र०	स्थान	९० प्रमुख नदियोंके नाम	प्रमाण	परिवार नदियाँ
१.	भरतक्षेत्रमें	गंगा-सिन्धु	२	१४०००×२=२८०००
२.	हैमवतक्षेत्रमें	रोहित-रोहितास्या	२	२८०००×२=५६०००
३.	हरिक्षेत्रमें	हरित-हरिकान्ता	२	५६०००×२=११२०००
४	विदेहक्षेत्रमें			
अ	देवकुरु	सीता	१	८४०००
ब.	उत्तरकुरु	सीतोदा	१	८४०००
स.	पूर्व-विदेह	विभंगा नदियाँ	६	२८०००×६=१६८०००
द.	पश्चिम-विदेह	विभंगा नदियाँ	६	२८०००×६=१६८०००
क.	कच्छादि ८ देशोंकी	रक्ता-रक्तोदा	१६	१४०००×१६=२२४०००
ख.	वत्सादि ८ देशोंकी	गंगा-सिन्धु	१६	१४०००×१६=२२४०००
ग	पद्मादि ८ देशोंकी	गंगा-सिन्धु	१६	१४०००×१६=२२४०००
घ	वप्रादि ८ देशोंकी	रक्ता-रक्तोदा	१६	१४०००×१६=२२४०००
५.	रम्यकक्षेत्रमें	नारी-नरकान्ता	२	५६०००×२=११२०००
६	हैरण्यवत क्षेत्रमे	सुवर्णकूला-रूप्यकूला	२	२८०००×२=५६०००
७	ऐरावत क्षेत्रमें	रक्ता-रक्तोदा	२	१४०००×२=२८०००
			९०	परिवार नदियाँ=१७९२०००
				प्रमुख नदियाँ= +९०
				कुल योग = १७९२०९०

कुण्डोंका प्रमाण—

सरियाओ जेत्तियाओ, चेट्ठंते तेत्तियाणि कुंडाणि ।
विक्खादाओ ताओ, णिय - णिय - कुंडाण[1] णामेहिं ॥२४१६॥

अर्थ :—जितनी नदियाँ हैं उतने ही कुण्ड भी स्थित हैं। वे नदियाँ अपने-अपने कुण्डोंके नामोंसे विख्यात हैं ॥२४१६॥

विशेषार्थ :—गंगा-सिन्धु आदि चौदह महानदियाँ कुलाचल पर्वतोंसे जहाँ नीचे गिरती हैं, वहाँ कुण्ड हैं। उनकी संख्या १४ है। बारह विभंगा नदियोंके उत्पत्ति-कुण्डोंकी संख्या १२, बत्तीस विदेह देशोंमेंसे प्रत्येक देशमें दो-दो नदियाँ कुण्डोंसे निकलकर बहती हैं अतः वहाँके कुण्डोंका प्रमाण ६४ है, इसप्रकार (९० नदियोंके) ये सब (१४+१२+६४=) ९० कुण्ड होते हैं।

कुण्डोंके भवनोंमें रहनेवाले व्यन्तरदेव—

वेंतरदेवा बहुओ, णिय-णिय-कुंडाण णाम-विदिदाओ ।
पल्लाउ-पमाणाओ, [2]णिवसंती ताण दिव्व-गिरि-भवणे ॥२४१७॥

अर्थ :—अपने कुण्डोंके नामोंसे विदित एक पल्यप्रमाण आयुवाले बहुतसे व्यन्तरदेव उन कुण्डोंके दिव्य गिरि-भवनोंमें निवास करते हैं ॥२४१७॥

वेदियोंकी संख्या एवं उत्सेधादि—

जेत्तिय कुंडा जेत्तिय, सरियाओ जेत्तियाओ वणसंडा ।
जेत्तिय सुर - णयरीओ, जेत्तिय जिणणाह - भवणाणि ॥२४१८॥
जेत्तिय विज्जाहर - सेढियाओ[3] जेत्तियाओ पुरियाओ ।
अज्जाखंडे जेत्तिय, णयरीओ जेत्तियहिं - दहा ॥२४१९॥
वेदीओ तेत्तियाओ, णिय-णिय-जोग्गाओ ताण पत्तेक्कं ।
जोयण - दलमुच्छेहो, दंडा चावाणि पंच - सया ॥२४२०॥

जो १/२ । दंड ५०० ।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. कुण्डाणि । २. द. ब. क. उ. णिवसंताण, ब णिवसंति ताण, ज. णिवसंतीण ताण । ३. द. ब. क. ज. य. उ. सढियाओ ताणं च ।

अर्थ :—जितने कुण्ड, जितनी नदियाँ, जितने वन-समूह, जितनी देव-नगरियाँ, जितने जिनेन्द्र-भवन, जितनी विद्याधर श्रेणियाँ, जितने नगर, आर्य खण्डोंकी जितनी नगरियाँ, जितने पर्वत और जितने द्रह हैं, उनमेंसे प्रत्येकके अपने-अपने योग्य उतनी ही वेदियाँ हैं। इन वेदियोंकी ऊँचाई आधा योजन और विस्तार पाँचसौ धनुष प्रमाण है ॥२४१८-२४२०॥

णवरि विसेसो एसो, देवारण्णस्स भूदरण्णस्स ।
जोयणमेक्कं [1]उदओ, दंड - सहस्सं च वित्थारो ॥२४२१॥

अर्थ :—विशेष यह है कि देवारण्य और भूतारण्यकी वेदियोंकी ऊँचाई एक योजन तथा विस्तार एक हजार धनुष प्रमाण है ॥२४२१॥

जिनभवनोंकी संख्या—

कुंड - वणसंड - सरिया - सुरणयरी - सेल-तोरणद्दारा ।
विज्जाहर - वर - सेढी - णयरज्जाखंड - णयरीओ ॥२४२२॥

दह - पंचय - पुव्वावर - विदेह-गामादि-सम्मली-रुक्खा ।
जेत्तियमेत्ता जंबू - रुक्खाइं तेत्तिया जिण - णिकेदा ॥२४२३॥

अर्थ :—कुण्ड, वनसमूह, नदियाँ, देवनगरियाँ, पर्वत, तोरणद्वार, विद्याधर श्रेणियोंके उत्तम नगर, आर्यखण्डोंकी नगरियाँ, द्रह पंचक (पाँच-पाँच द्रह), पूर्वापर-विदेहोंके ग्रामादिक, शाल्मलीवृक्ष और जम्बूवृक्ष जितने हैं उतने ही जिन-भवन भी हैं ॥२४२२-२४२३॥

कुल-शैलादिकोंकी संख्या—

छक्कुल-सेला सव्वे, विजयड्ढा होंति तीस चउ - जुत्ता ।
सोलस वक्खारगिरी, वारणदंता य चत्तारो ॥२४२४॥

६ । ३४ । १६ । ४ ।

अर्थ :—जम्बूद्वीपमें सब कुलपर्वत छह, विजयार्ध चौंतीस, वक्षारगिरि सोलह और गजदन्त पर्वत चार हैं ॥२४२४॥

---

१. द. ज. उदयो ।

तह अट्ठ दिग्गइंदा, णाभिगिरिंदा हवंति चत्तारि ।
चोत्तीस वसह-सेला, कंचण-सेला सयाण दुवे[1] ।।२४२५।।

८ । ४ । ३४ । २०० ।

अर्थ :—दिग्गजेन्द्र पर्वत आठ (८), नाभिगिरीन्द्र चार (४), वृषभशैल चौंतीस (३४) तथा काञ्चनशैल दोसौ (२००) हैं ।।२४२५।।

एक्को य मेरु कूडा[2], पंच-सया अट्ठसट्ठि-अब्भहिया ।
सत्त च्चिय महविजया, चोत्तीस हवंति कम्मभूमीओ ।।२४२६।।

१ । ५६८ । ७ । ३४ ।

अर्थ :—एक मेरु, पाँचसौ अड़सठ (५६८) कूट, सात महाक्षेत्र और चौंतीस (३४) कर्म-भूमियाँ हैं ।।२४२६।।

सत्तरि अब्भहिय-सयं, मेच्छखिदी छच्च भोगभूमीओ ।
चत्तारि जमल-सेला, जंबूदीवे समुद्दिट्ठा[4] ।।२४२७।।

एवं जंबूदीव-वण्णणा समत्ता ।।२।।

अर्थ :—जम्बूद्वीपमें एकसौ सत्तर म्लेच्छखण्ड, छह भोग-भूमियाँ और चार यमक-शैल कहे गए हैं ।।२४२७।।

विशेषार्थ :—जम्बूद्वीपमें सुदर्शन मेरु १, कुलाचल ६, विजयार्ध ३४, वक्षारगिरि १६, गजदन्त ४, दिग्गजेन्द्र ८, नाभिगिरि ४, वृषभाचल ३४, काञ्चनशैल २०० और यमकगिरि ४ हैं। इन सबका योग करनेपर (१+६+३४+१६+४+८+४+३४+२००+४)=३११ पर्वत होते हैं ।

कूट ५६८, महाक्षेत्र ७, कर्मभूमियाँ ३४, म्लेच्छखण्ड १७० और भोगभूमियाँ ६ हैं ।

इसप्रकार जम्बूद्वीपका वर्णन समाप्त हुआ ।।२।।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. दुवो । २. ब. कूडो । ३. द. ब. क. ज. य. उ. अमथाऊ । ४. क. ज. य. उ. समुद्दिट्ठं ।

—: लवण समुद्र :—

लवणसमुद्रका आकार और विस्तारादि—

अत्थि लवणंबुरासी, जंबूदीवस्स खाइयायारो ।
समवट्टो सो जोयण - बे - लक्ख - पमाण - वित्थारो ॥२४२८॥

२०००००।

अर्थ :—लवणसमुद्र जम्बूद्वीपकी खाईके आकार गोल है। इसका विस्तार दो लाख (२०००००) योजन प्रमाण है ॥२४२८॥

णावाए उवरि णावा, अहो-मुही जह ठिदा तह समुद्दो ।
गयणे समंतदो सो, चेट्ठेदि हु चक्कवालेणं ॥२४२९॥

अर्थ :—एक नावके ऊपर अधोमुखी दूसरी नावके रखनेसे जैसा आकार होता है, उसी प्रकार वह समुद्र चारों ओर आकाशमें मण्डलाकारसे स्थित है ॥२४२९॥

चित्तोवरिम - तलादो, कूडायारेण उवरि वारिणिही ।
सत्त - सय - जोयणाइं, उदएण णहम्मि चेट्ठेदि ॥२४३०॥

७०० ।

अर्थ :—वह समुद्र चित्रा-पृथिवीके उपरिम-तलसे ऊपर कूटके आकारसे आकाशमें सातसौ (७००) योजन ऊँचा स्थित है ॥२४३०॥

उड्ढे[1] भवेदि रुंदं, जलणिहिणो जोयणा दस-सहस्सा ।
चित्तावणि - पणिहीए, विक्खंभो दोण्णि लक्खाणि ॥२४३१॥

१०००० । २००००० ।

अर्थ :—उस समुद्रका विस्तार ऊपर दस हजार (१००००) योजन और चित्रापृथिवीकी प्रणिधिमें दो लाख (२०००००) योजन प्रमाण है ॥२४३१॥

---

१. ब उ. उट्ठे ।

पत्तेक्कं दु-तडादो, पविसिय पणणउदि-जोयण-सहस्सा[1] ।
गाढे तम्हि सहस्सा, तलवासो दस - सहस्साणि ॥२४३२॥

६५००० । ९५००० । १०००० ।

अर्थ :—दोनों तटोंमेंसे प्रत्येक तटसे पंचानबै हजार (९५०००, ९५०००) योजन प्रवेश करनेपर उसकी एक हजार योजन गहराईपर तल-विस्तार दस हजार (१००००) योजन प्रमाण है ॥२४३२॥

हानि-वृद्धि एवं भूव्यास और मुख-व्यासका प्रमाण—

भूमीअ मुहं सोहिय, उदय - हिदं भू-मुहाउ-हाणि-चया ।
मुहमजुदं बे लक्खा, भूमी जोयण - सहस्समुस्सेहो ॥२४३३॥

१०००० । २००००० । १००० ।

अर्थ :—भूमिमेंसे मुखका कम करके ऊंचाईका भाग देनेपर भूमिकी ओरसे हानि और मुखकी ओरसे वृद्धिका प्रमाण आता है । यहाँ मुखका प्रमाण अयुत अर्थात् दस हजार (१००००) योजन, भूमि-का प्रमाण दो लाख योजन और जलकी गहराईका प्रमाण एक हजार (१०००) योजन है ॥२४३३॥

विस्तारका प्रमाण ज्ञात करनेकी विधि—

खय-वड्ढीण पमाणं, एक्क-सयं जोयणाणि णउदि-जुदं ।
इच्छा-हद-हाणि-चया, खिदि - हीणा मुह - जुदा रुंदं ॥२४३४॥

१९० ।

अर्थ :—उस क्षय-वृद्धिका प्रमाण एकसौ नब्बै (१९०) योजन है । इच्छासे गुणित हानि-वृद्धिके प्रमाणको भूमिमेंसे कम अथवा मुखमें मिला देनेपर विवक्षित स्थानके विस्तारका प्रमाण जाना जाता है ॥२४३४॥

(२००००० - १००००) ÷ १००० = १९० हानि-वृद्धिका प्रमाण ।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. सहस्सो ।

उपरिम जलकी क्षय-वृद्धिका प्रमाण—

उवरिम-जलस्स जोयण, उणवीस-सयाणि सत्त-हरिदाणि ।
क्षय - वड्ढीण पमाणं, णादव्वं लवण - जलहिम्मि ।।२४३५।।

$\frac{१९००}{७}$ ।

अर्थ :—लवणसमुद्रमें उपरिम (तटोंसे मध्यकी ओर और मध्यसे तटोंकी ओर) जलकी क्षय-वृद्धिका प्रमाण सातसे भाजित उन्नीससौ योजन है । अर्थात् समतल भूमिसे जलकी हानि-वृद्धिका प्रमाण २७१ $\frac{३}{७}$ योजन है ।।२४३५।।

समुद्रतटसे ९५००० यो० भीतर प्रवेश करने पर वहाँ जलकी गहराई और ऊँचाईका प्रमाण—

पत्तेक्कं दु-तडादो, पविसिय पणणउदि-जोयण-सहस्सा ।
गाढा तस्स सहस्सं, एवं सोधिज्ज अंगुलादीणं ।।२४३६।।

९५००० । १००० । $\frac{१}{९५}$ ।[1]

अर्थ :—दोनों तटोंमेंसे प्रत्येक किनारेसे पंचानबै हजार (९५०००) योजन प्रवेश करनेपर उसकी गहराई एक हजार (१०००) योजन प्रमाण है । इसीप्रकार अंगुलादिक शोध लेना चाहिए ।।२४३६।।

विशेषार्थ :—लवणसमुद्रके प्रत्येक तटसे ९५००० योजन प्रवेश करने पर वहाँ जलकी गहराई १००० योजन प्राप्त होती है । तब एक योजन प्रवेश करनेपर कितनी गहराई प्राप्त होगी ? इसप्रकार त्रैराशिक करनेपर ८४ धनुष, १ वितस्ति, १ पाद और २ $\frac{४}{१९}$ अंगुल प्राप्त होते हैं । अर्थात् समुद्रमें एक योजन प्रवेश करनेपर वहाँ जलकी गहराई $\frac{१०००}{९५०००} = \frac{१}{९५}$ योजन अर्थात् ८४ धनुष, ० रिक्कू, ० हाथ, १ वि०, १ पाद और २ $\frac{४}{१९}$ अंगुल प्राप्त होगा ।

दु-तडादो जल-मज्झे, पविसिय पणणउदि-जोयण-सहस्सा ।
सत्त - सयाइं उदओ, एवं सोहेज्ज[2] अंगुलादीणं ।।२४३७।।

९५००० । ७०० । $\frac{७}{९५०}$ ।[3]

१ द ब. $\frac{१}{९५}$ । २. ब. साहेम, क ज. य उ. सोहज्ज । ३ द ब. उ. $\frac{९५}{७०}$ ।

अर्थ :– दोनों तटोंसे जलके मध्यमें पंचानबे हजार (९५०००) योजन-प्रमाण प्रवेश करनेपर सातसौ योजन ऊँचाई प्राप्त होती है। इसीप्रकार अंगुलादिकोंको शोध लेना चाहिए ।।२४३७।।

विशेषार्थ :—दोनों तटोंसे जलके मध्य ९५००० योजन प्रवेश करनेपर वहाँ जलकी ऊँचाई ७०० योजन प्राप्त होती है। तब एक योजन प्रवेश करनेपर कितनी ऊँचाई प्राप्त होगी ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर $\frac{१ \times ७००}{९५०००} = \frac{७}{९५०}$ योजन अर्थात् ५८ धनुष, १ रिक्कू, १ हाथ, १ वितस्ति, १ पाद, ० अंगुल और $७\frac{५५}{९५}$ जौ प्रमाण ऊँचाई प्राप्त होगी।

लवणसमुद्रमें पातालोंका निरूपण—

लवणोवहि-बहु-मज्झे, पादाला ते समंतदो होंति ।
अट्ठुत्तरं सहस्सं, जेट्ठा मज्झा जहण्णा य[1] ।।२४३८।।

१००८ ।

अर्थ :—लवणोदधिके बहु-मध्य-भागमें चारों ओर उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य एक हजार आठ (१००८) पाताल हैं ।।२४३८।।

चत्तारो पायाला, जेट्ठा मज्झिल्लआ वि चत्तारो ।
होदि जहण्ण सहस्सं, ते सव्वे रंजणायारा ।।२४३९।।

४ । ४ । १००० ।

अर्थ :—ज्येष्ठ पाताल चार, मध्यम चार और जघन्य एक हजार (१०००) हैं। ये सब पाताल राञ्जन अर्थात् घड़ेके आकार सदृश हैं ।।२४३९।।

ज्येष्ठ पातालोंका निरूपण—

उक्किट्ठा पायाला, पुव्वादि - दिसासु जलहि-मज्झम्मि ।
पायाल - कदंबक्खा[2], वडवामुह - जोवकेसरिणो ।।२४४०।।

अर्थ :--पूर्वादिक दिशाओंमें समुद्रके मध्यमें (१) पाताल, (२) कदम्बक, (३) वड़वामुख और (४) यूपकेशरी नामक चार उत्कृष्ट पाताल हैं ।।२४४०।।

पुह पुह दु-तडाहिंतो, पविसिय पणणउदि जोयण-सहस्सा ।
लवणजले चत्तारो, जेट्ठा चेट्ठंति पायाला ।।२४४१।।

९५००० । ९५००० ।

---

१. द. ब क. ज. य. उ. जहण्णाया या य । २. द. क. ज. य. उ. कदंबक्खा ।

अर्थ :—दोनों किनारोंसे लवणसमुद्रके जलमें पंचानवे हजार (९५०००) योजन प्रमाण प्रवेश करनेपर पृथक्-पृथक् ये चार पाताल स्थित हैं ।।२४४१।।

पुह - पुह मूलम्मि मुहे, वित्थारो जोयणा दस-सहस्सा ।
उदओ वि एक्क - लक्खं, मज्झिम - रुंदो वि तम्मेत्तं ।।२४४२।।

१०००० । १०००० । १ ल । १ ल ।

अर्थ :—(इन) पातालोंका पृथक्-पृथक् मूल विस्तार दस-हजार (१००००) योजन, मुख विस्तार दस हजार (१००००) योजन, ऊँचाई एक लाख योजन और मध्यम विस्तार भी एक लाख योजन प्रमाण ही है ।।२४४२।।

जेट्ठा ते संलग्गा, सीमंत - बिलस्स उवरिमे भागे ।
पण - सय - जोयण - बहला, कुड्डा एदाण वज्जमया ।।२४४३।।

५०० ।

अर्थ :—वे ज्येष्ठ पाताल सीमन्त बिलके उपरिम भागसे संलग्न हैं। इनकी वज्रमय भित्तियाँ पाँचसौ (५००) योजन प्रमाण मोटी हैं ।।२४४३।।

विशेषार्थ :—रत्नप्रभा नामकी प्रथम पृथिवी एक लाख अस्सी हजार (१८००००) योजन मोटी है। इसके खर, पङ्क और अब्बहुल नाम वाले तीन भाग हैं जो क्रमशः १६०००, ८४००० और ८०००० योजन बाहल्यवाले हैं। लवणसमुद्रकी मध्यम-परिधिपर जो चार ज्येष्ठ पाताल हैं वे अब्बहुल भागपर स्थित सीमन्तक बिलके उपरिम भागसे संलग्न हैं और इनसे चित्रा पृथिवी पर्यन्तकी ऊँचाई (पंकभाग ८४००० यो० + खरभाग १६००० यो० =) एक लाख योजन है; इसीलिए ज्येष्ठ पातालोंकी ऊँचाई एक-एक लाख योजन कही गई है। इन पातालोंकी वज्रमय भित्तियाँ ५००-५०० योजन मोटी हैं।

[चित्र अगले पृष्ठ पर देखिये]
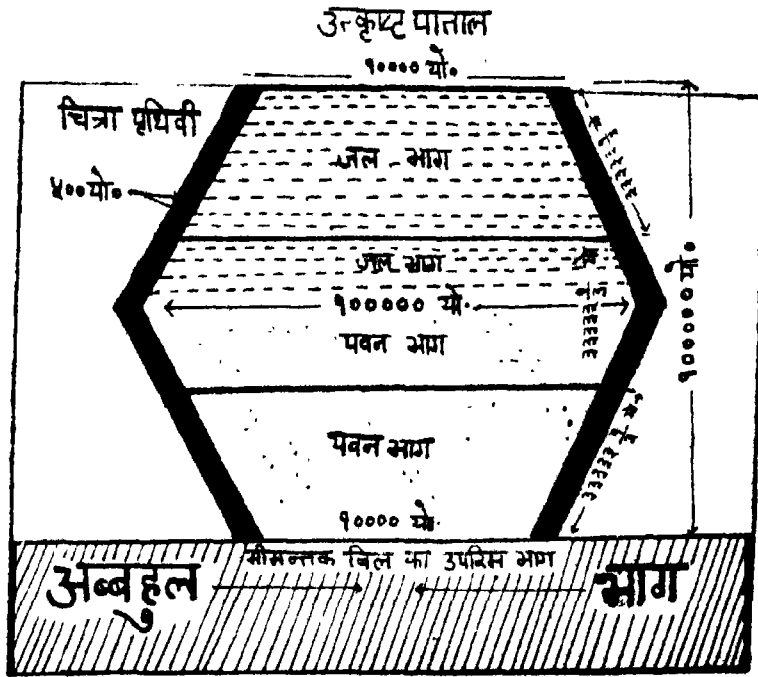
मध्यम-पातालोंका निरूपण—

जेट्ठाणं विच्चाले, विदिसासुं मज्झिमा हु पादाला ।
ताणं रुंद - प्पहुदिं, उक्किट्ठाणं दसंसेणं ।।२४४४।।

१००० । १००० । १०००० । १०००० । ५० ।

अर्थ :—इन ज्येष्ठ पातालोंके बीच विदिशाओंमें मध्यम पाताल स्थित हैं और उनका विस्तारादिक उत्कृष्ट पातालोंकी अपेक्षा दसवें भाग प्रमाण है ।।२४४४।।

विशेषार्थ :—मध्यम पातालोंका मूल विस्तार १००० योजन, मुख विस्तार १००० योजन, ऊँचाई १०००० योजन, मध्य विस्तार १०००० योजन और इनकी वज्रमय भित्तियोंकी मोटाई ५० योजन प्रमाण है ।

णवणउदि-सहस्साणि, पंच-सया जोयणाणि दु - तडेसुं ।
पुह पुह पविसिय सलिले, पायाला मज्झिमा होंति ।।२४४५।।

९९५०० ।

अर्थ :—पृथक्-पृथक् दोनों किनारोंसे निन्यानबैं हजार पाँच-सौ (९९५००) योजन प्रमाण जलमें प्रवेश करनेपर मध्यम पाताल है ।।२४४५।।

जघन्य पातालोंका निरूपण—

जेट्ठाण - मज्झिमाणं, विच्चालेसुं जहण्ण - पायाला ।
पुह पुह पण-घण-माणा, मज्झिम-दस-भाग-रुंदादी ।।२४४६।।

१०० । १०० । १००० । १००० । ५ ।

अर्थ :—उत्कृष्ट और मध्यम पातालोंके बीच-बीचमें जघन्य पाताल स्थित हैं । प्रत्येक अन्तरालमें इनका पृथक्-पृथक् प्रमाण १२५-१२५ है । इनका विस्तारादिक मध्यम पातालोंकी अपेक्षा दसवें भाग प्रमाण है ।।२४४६।।

विशेषार्थ :—उत्कृष्ट पाताल ४ हैं और मध्यम पाताल भी ४ हैं । इनके बीच-बीचमें ८ अन्तराल हैं । प्रत्येक अन्तरालमें १२५-१२५ जघन्य (१२५ × ८ = १०००) पाताल स्थित हैं । इनका मूल विस्तार १०० योजन, मुख विस्तार १०० योजन, ऊँचाई १००० योजन, मध्य विस्तार १००० योजन और मोटाई ५ योजन प्रमाण है ।

णवणउदि-सहस्साणि, णव-सय-पण्णास-जोयणाणि तहा ।
पुह पुह दु - तडाहितो, पविसिय चेट्ठंति अवरे वि ।।२४४७।।

९९९५० ।

अर्थ :—पृथक्-पृथक् दोनों किनारोंसे निन्यानबैं हजार नौ सौ पचास (९९९५०) योजन प्रमाण (जलमें) प्रवेश करनेपर जघन्य पाताल स्थित हैं ।।२४४७।।

नोट :—तीनों प्रकारके पातालोंकी स्पष्ट स्थिति लवणसमुद्रके निम्नाङ्कित चित्रण द्वारा ज्ञातव्य है—

[चित्र अगले पृष्ठ पर देखिये]
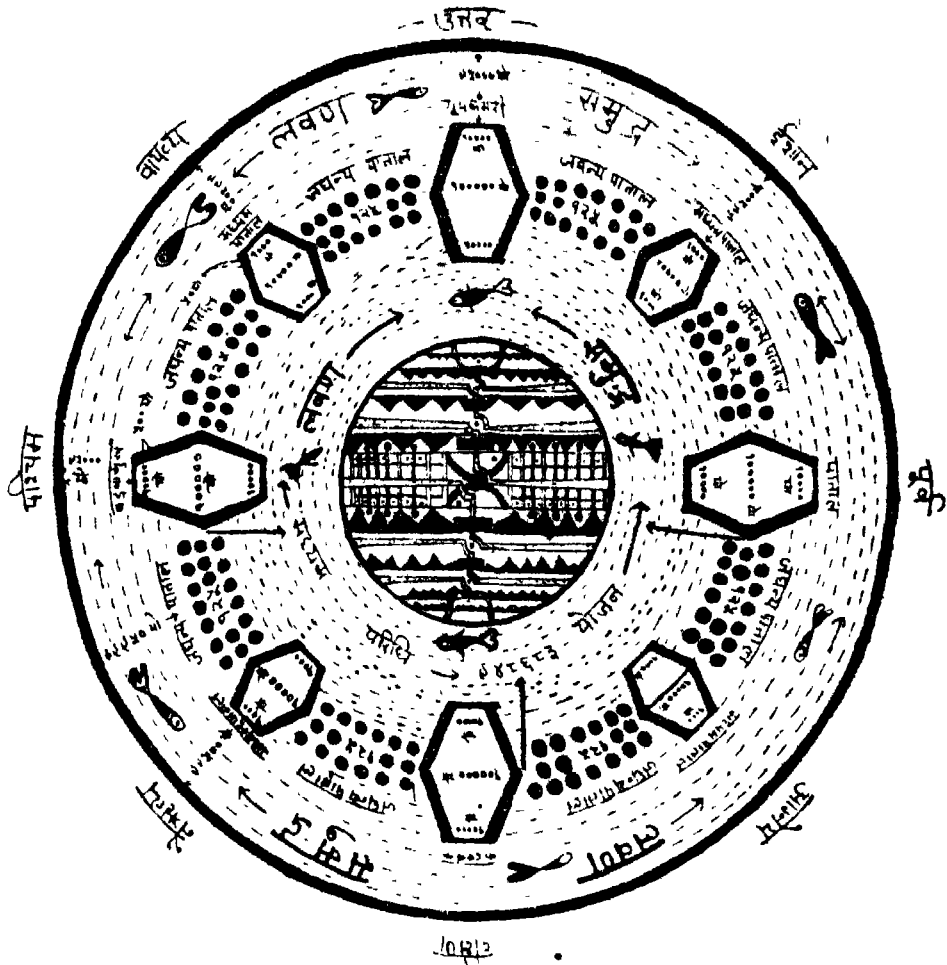
नोट :—इन पातालोंकी स्थिति समुद्रमें नीचेकी ओर इस आकार की है। उनके स्वरूप और उनकी अवस्थितिसे अवगत करानेके लिए चित्रमें उन्हें इसप्रकार दिखाया गया है।

ज्येष्ठ और मध्यम पातालोंका अन्तराल प्राप्त करनेकी विधि—

जेट्ठाणं मुह-रुंदं, जलणिहि-मज्झिल्ल-परिहि-मज्झम्मि ।
सोहिय - चउ - पविहत्तं, हवेदि एक्केक्क - विच्चालं ॥२४४८॥

अर्थ :—लवणसमुद्रकी मध्यम परिधिमेंसे ज्येष्ठ पातालोंका मुख-व्यास (१०००० × ४ = ४०००० यो०) और मध्यम पातालोंका मुख-व्यास (१००० × ४ = ४००० यो०) घटाकर शेषमें चारका भाग देनेपर जो-जो लब्ध प्राप्त हो वही एक-एक पातालके अन्तरालका प्रमाण है ॥२४४८॥

लवण समुद्रकी मध्यम परिधिका प्रमाण —

णव-लक्ख - जोयणाइं, अडदाल-सहस्स-छस्सयाणं पि ।
तेसीदी अधियाइं, सायर-मज्झिल्ल-परिहि-परिमाणं ।।२४४६।।

९४८६८३ ।

अर्थ :—लवणसमुद्रकी मध्यम परिधि नौ लाख अड़तालीस हजार छहसौ तेरासी (९४८६८३) योजन प्रमाण है ।।२४४६।।

विशेषार्थ :—लवणसमुद्रका मध्यम सूची व्यास ३ लाख योजन प्रमाण है । गाथा ९ के नियमानुसार परिधिका प्रमाण—

परिधि = $\sqrt{३ \text{ लाख} \times ३ \text{ लाख} \times १०}$ = ९४८६८३ यो॰ परिधि । $\frac{५६५५११}{१८९७३६६}$ यो॰ अवशेष बचे जो छोड़ दिए गये ।

ज्येष्ठ पातालोंका अन्तराल—

सत्तावीस - सहस्सा, सत्तरि - जुत्तं सयं दु बे - लक्खा ।
जोयण - ति - चउब्भागा, जेट्ठाणं होदि विच्चालं ।।२४५०।।

२२७१७० । $\frac{३}{४}$ ।

अर्थ :—ज्येष्ठ पातालोंके बीच-बीचका अन्तराल दो लाख सत्ताईस हजार एकसौ सत्तर और एक योजनके चार भागोंमेंसे तीन भाग (२२७१७०$\frac{३}{४}$ योजन) प्रमाण है ।।२४५०।।

विशेषार्थ :—लवणसमुद्रकी मध्यम परिधि [९४८६८३—(१००००×४)] ÷ ४ = २२७१७०$\frac{३}{४}$ योजन एक ज्येष्ठ पातालसे दूसरे ज्येष्ठ पातालके मुखके अन्तरका प्रमाण है ।

मध्यम पातालोंका अन्तराल—

छत्तीस - सहस्साणि, सत्तरि - जुत्तं सयं दु बे लक्खा ।
जोयण - ति - चउब्भागा, मज्झिमयाणं च विच्चालं ।।२४५१।।

२३६१७० । $\frac{३}{४}$ ।

अर्थ :—मध्यम पातालोंका अन्तराल दो लाख छत्तीस हजार एकसौ सत्तर और एक योजनके चार भागोंमेंसे तीनभाग (२३६१७०$\frac{३}{४}$ यो॰) प्रमाण है ।।२४५१।।

विशेषार्थ :—[९४८६८३—(१०००×४)]÷४ = २३६१७०$\frac{३}{४}$ योजन एक मध्यम पातालसे दूसरे मध्यम पातालके मुखके अन्तरका प्रमाण है।

ज्येष्ठ पातालोंसे मध्यम पातालोंके मुखोंका अन्तर—

जेट्ठंतर - संखादो, एक्क - सहस्सम्मि समवणीदम्मि ।
अद्ध - कदे जेट्ठाणं, मज्झिमयाणं च विच्चालं ।।२४५२।।

जोयण - लक्खं तेरस - सहस्सया पंचसीदि - संजुत्ता ।
तं विच्चाल - पमाणं, दिवड्ढ - कोसेण अदिरित्तं ।।२४५३।।

११३०८५ । को $\frac{३}{२}$ ।

अर्थ :—ज्येष्ठ पातालोंके अन्तराल-प्रमाणमेंसे एक हजार (१०००) कम करके आधा करनेपर ज्येष्ठ और मध्यम पातालोंका अन्तराल-प्रमाण निकलता है; जो एक लाख तेरह हजार पचासी योजन और डेढ कोस अधिक है ।।२४५२-२४५३।।

विशेषार्थ :—पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशागत ज्येष्ठ पातालोंके मुखसे मुखका अन्तर २२७१७०$\frac{३}{४}$ योजन है। इसमेंसे विदिशागत मध्यम पातालका मुख व्यास १००० योजन घटाकर आधा करनेपर दिशागत ज्येष्ठ पाताल और विदिशागत मध्यम पातालोंके मुखसे मुखका अन्तर प्राप्त होता है। यथा—

(२२७१७०$\frac{३}{४}$ यो० — १००० यो०)÷२=११३०८५ योजन और १$\frac{१}{२}$ कोस।

जघन्य पातालसे जघन्य पातालके मुखका अन्तर—

जेट्ठाण मज्झिमाणं, [1]विच्चम्मि जहण्णयाण मुह-वासं ।
फेडिय[2] सेसं विगुणिय - तेसट्ठीए कय - विभागे ।।२४५४।।

जं लद्धं अवराणं, पायालाणं तमंतरं होदि ।
तं माणं सत्त - सया, अट्ठाणउदी य सविसेसा ।।२४५५।।

७९८ । $\frac{३५}{१२१}$ । $\frac{१}{३३१}$ ।

---

१. ब. विच्चम्मिय । २. द. ब. क ज. ठ. पेडिय, य. मेलिय ।

अर्थ :—ज्येष्ठ और मध्यम पातालोंके अन्तराल-प्रमाणमेंसे जघन्य पातालोंके मुख-विस्तार को कम करके शेषमें द्विगुणित तिरेसठ अर्थात् एकसौ छब्बीसका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतना जघन्य पातालोंका अन्तराल होता है। उसका प्रमाण सातसौ अट्ठानबै योजनोंसे अधिक है ॥२४५४-२४५५॥

विशेषार्थ :—उपर्युक्त गाथामें ज्येष्ठ और मध्यम पातालका अन्तराल ११३०८५ योजन और $\frac{३}{४}$ कोस कहा गया है। ज्येष्ठ और मध्यम पातालोंके प्रत्येक अन्तरालमें १२५-१२५ जघन्य पाताल हैं। इनका मुख व्यास १०० योजन प्रमाण है अतः १२५ × १०० = १२५०० योजन मुख विस्तारको ११३०८५ यो०, $\frac{३}{४}$ कोसमेंसे घटाकर (११३०८५$\frac{३}{१६}$ यो० — १२५०० = १००५८५$\frac{३}{१६}$ यो०) लब्धको १२६ (ज्येष्ठ पाताल १ + म० पाताल १ + ज० पाताल १२५ = १२७ पातालोंके अन्तराल १२६ ही होते हैं) से भाजित करनेपर जघन्य पातालोंके अन्तरालका प्रमाण ७९८$\frac{३७}{१२६}$ + $\frac{३}{२०१६}$ यो० अर्थात् ७९८ योजन और २३७३$\frac{१}{६३}$ धनुष प्राप्त होता है।

प्रत्येक पातालके विभाग एवं उनमें स्थित वायु तथा जलादिका प्रमाण—

पत्तेक्कं पायाला, ति - वियप्पा ते हवंति कमदोणं।
हेट्ठाहितो वादं, जलवादं सलिलमासेज्जं ॥२४५६॥

अर्थ :—प्रत्येक पाताल क्रमशः जल, जल और वायु तथा नीचे वायुका आश्रय लेकर तीन प्रकारसे विद्यमान है ॥२४५६॥

तेत्तीस-सहस्साणि, ति - सया तेत्तीस जोयण-ति-भागो।
पत्तेक्कं जेट्ठाणं, पमाणमेदं तियंसस्स ॥२४५७॥

३३३३३ । $\frac{१}{३}$ ।

अर्थ :—ज्येष्ठ पातालोंमेंसे प्रत्येक पातालके तीसरे भागका प्रमाण तैंतीस हजार तीनसौ तैंतीस योजन और एक योजनका तीसरा भाग (३३३३३$\frac{१}{३}$ योजन) है ॥२४५७॥

विशेषार्थ :—लवणसमुद्रकी चारों दिशाओंमें एक लाख योजन ऊँचाई वाले चार ज्येष्ठ पाताल हैं। ऊँचाईकी अपेक्षा इनके तीन भाग करनेपर ($\frac{१०००००}{३}$) ३३३३३$\frac{१}{३}$ योजनमें वायु, ३३३३३$\frac{१}{३}$ योजनमें वायु एवं जल और ३३३३३$\frac{१}{३}$ योजनमें मात्र ज़ल विद्यमान है।

मध्यम और जघन्य पातालोंमें जलादिकका विभाग—

तिण्णि सहस्सा ति-सया, तेत्तीस-जुदाणि जोयण-ति-भागो ।
पत्तेक्कं णादव्वं, [1]मज्झिमय - तियंस - परिमाणं ॥२४५८॥

अर्थ :—मध्यम पातालोंमेंसे प्रत्येकके तीसरे भागका प्रमाण ($\frac{१००००}{३}$ = ३३३३$\frac{१}{३}$ यो०) तीन हजार तीनसौ तेतीस योजन और एक योजनके तीन भागोंमेंसे एक भाग (३३३३$\frac{१}{३}$ योजन) जानना चाहिए ॥२४५८॥

तेत्तीसब्भहियाणं, तिण्णि सयाणं च जोयण-ति-भागो ।
पत्तेक्कं दट्ठव्वं, तियंस - माणं[2] जहण्णाणं ॥२४५९॥

३३३$\frac{१}{३}$ ।

अर्थ :—जघन्य पातालोंमेंसे प्रत्येकके तीसरे भागका प्रमाण तीनसौ तेतीस योजन और एक योजनके तृतीयभाग ($\frac{१०००}{३}$ = ३३३$\frac{१}{३}$ यो०) जानना चाहिए ॥२४५९॥

लवणसमुद्रके जलमें हानि-वृद्धि होनेका कारण—

हेट्ठिल्लम्मि ति-भागे, वसुमइ - विवराण केवलो वादो ।
मज्झिल्ले जलवादो, उवरिल्ले सलिल - पब्भारो ॥२४६०॥

पवणेण पुव्विदयं तं, चलाचलं मज्झिमं सलिल - वादं ।
उवरिं चेट्ठवि सलिलं, पवणाभावेण केवलं तेसुं ॥२४६१॥

अर्थ :—पृथिवीके विवर (गड्ढे) स्वरूप इन पातालोंके ऊपरके त्रिभागमें केवल जल, मध्यम भागमें जल तथा वायु और नीचेके भागमें मात्र वायु विद्यमान है । उन पातालोंके तीन भागोंमेंसे मध्यका जल-वायुवाला त्रिभाग पहले भाग (नीचे) के पवनसे (प्रेरित हुआ) चलाचल होता है । ऊपरके भागमें पवनका अभाव होनेसे केवल जल रहता है ॥२४६०-२४६१॥

विशेषार्थ :—शुक्ल तथा कृष्ण पक्षमें लवणसमुद्रके जलकी वृद्धि-हानिमें मध्यम भागमें स्थित जल और वायुका चंचलपना ही कारण है ।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. मज्झिमयं । २. द. ब. क. ज. य. उ. माणाणं ।

पादालाणं [1]मरुदा, पक्खे सीदम्मि वड्ढंति य ।
हीयंति किण्ण - पक्खे, सहावदो सव्व - कालेसुं ॥२४६२॥

अर्थ :—पातालोंके पवन सर्वकाल स्वभावसे ही शुक्लपक्षमें बढ़ते हैं और कृष्णपक्षमें घटते हैं ॥२४६२॥

ज्येष्ठ पातालोंमें पवनकी वृद्धिका प्रमाण—

वड्ढी बावीस - सया, बावीसा जोयणाणि अदिरेगा[2] ।
पवणे[3] सिद - पक्खे य - प्पडिवासं पुण्णिमं जाव ॥२४६३॥

२२२२ । २/९ ।

अर्थ :—शुक्लपक्षमें पूर्णिमा तक प्रतिदिन दो हजार दो सौ बाईस योजनोंसे भी अधिक पवनकी वृद्धि हुआ करती है ॥२४६३॥

विशेषार्थ :—ज्येष्ठ पातालके मध्यम भागमें पूर्णिमा पर्यन्त वायु-वृद्धिका प्रमाण ३३३३३ १/३ योजन है । यथा—जबकि १५ दिनोंमें (वायु) वृद्धिचयका प्रमाण ३३३३३ १/३ यो० है तब एक दिनमें वृद्धिचयका क्या प्रमाण होगा ? इसप्रकार त्रैराशिक करनेपर (१००००० / ३×१५ =) २२२२ २/९ यो० मध्यम भागमें पवनकी वृद्धिका प्रमाण प्राप्त होता है । इसीप्रकार कृष्णपक्षमें अमावस्या पर्यन्त वायुका हानिचय और जलका वृद्धि चय समझना चाहिए ।

पूर्णिमा और अमावस्याको पातालोंकी स्थिति—

पुण्णिमए हेट्ठादो, णिय - णिय - दु-ति-भागमेत्त-पादाले ।
चेट्ठदि वाऊ उवरिम - तिय - भागे केवलं सलिलं ॥२४६४॥

अर्थ :—पूर्णिमाको पातालोंके अपने-अपने तीन भागोंमेंसे नीचेके दो भागोंमें वायु और ऊपरके तृतीयभागमें केवल जल विद्यमान रहता है ॥२४६४॥

अमवस्से उवरीदो, णिय-णिय-दु-ति-भागमेत्त-परिमाणे ।
कमसो सलिलं हेट्ठिम - तिय - भागे केवलं वादं ॥२४६५॥

---

१. द. ब क. ज य. उ. परिदा । २ द. ब. क ज य उ अादरेगो । ३ द. ब. क. ज. य. उ. पवणो ।

अर्थ :—अमावस्याको अपने-अपने तीन भागोंमेंसे क्रमशः ऊपरके दो भागोंमें जल रहता है और नीचेके तीसरे भागमें केवल वायु रहती है ।।२४६५।।
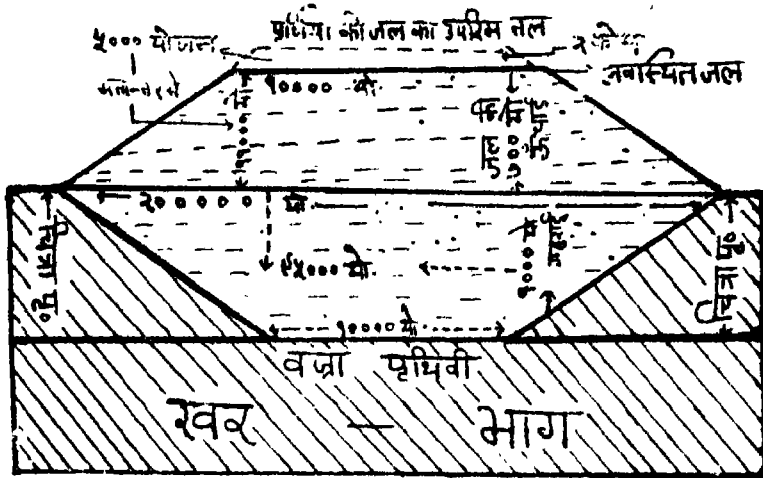
लवण समुद्र

समुद्रजलकी हानि-वृद्धिका प्रमाण—

पेलिज्जंतो उवही, पवर्णेहि तहेव सीमंते[1] ।
वड्ढदि हायदि गयणे, दंड - सहस्साणि चत्तारि ।।२४६६।।

दिवसं पडि अट्ठ-सयं, ति-हिदा दंडाणि सुक्कि-किण्हाए[2] ।
खय - वड्ढी पुव्वुत्तयवट्ठिद - वेलाए उवरि जलहिजलं ।।२४६७।।

$\frac{800}{3}$ ।

अर्थ :—सीमन्त बिलपर (स्थित उत्कृष्ट पातालोंकी) वायु द्वारा समुद्रका जल आकाशमें फेंका जाता है जो चार हजार (४०००) धनुष बढ़ता है और इतना ही घटता है । इसीलिए पूर्वोक्त (७०० योजन ऊपर अवस्थित) जलमें शुक्लपक्षमें प्रतिदिन तीनसे भाजित आठसौ ($\frac{800}{3}$) धनुष अर्थात् २६६ धनुष, २ हाथ और १६ अंगुल वृद्धि और कृष्णपक्षमें उतनी ही हानि हुआ करती है ।।२४६६-२४६७।।

---

१ क. ज. य ब. सम्मते । २. द. ज. य. उ. किण्हे ।

विशेषार्थ :—शुक्लपक्षमें पूर्णिमा पर्यन्त समुद्रका जल अपनी सीमासे (७०० यो० से) ४००० धनुष पर्यन्त बढ़ जाता है और कृष्णपक्षमें अमावस्या पर्यन्त इतना ही घट जाता है। जबकि १५ दिनमें जल ४००० धनुष बढ़ता या घटता है तब एक दिनमें कितना घटेगा या बढ़ेगा ? इसप्रकार त्रैराशिक करनेपर हानि-वृद्धि चयका प्रमाण $\frac{४०००}{१५}$ धनुष या $\frac{८००}{३}$ अर्थात् २६६$\frac{२}{३}$ धनुष प्राप्त होता है।

लोगाइणी ग्रन्थका भी यही मत है—

पुह-पुह दु-तडाहितो, पविसिय पणणउदि-जोयण-सहस्सा ।
लवणजले बे कोसा, उदयो सेसेसु हाणि - चयं ।।२४६८।।

अर्थ :—पृथक्-पृथक् दोनों किनारोंसे पंचानबै हजार योजन प्रमाण प्रवेश करने पर लवणसमुद्रके जलमें दो कोस ऊँचाई एवं शेषमें हानि-वृद्धि है ।।२४६८।।

अमवस्साए उवही, [1]सरिसो भूमीए होदि सिद - पक्खे ।
कमेण[2] वड्ढेदि णहे, कोसाणि दोण्णि [3]पुण्णिमए ।।२४६९।।

अर्थ :—लवणसमुद्र अमावस्याके दिन भूमि सदृश (समतल) होता है। पुनः शुक्लपक्षमें आकाशकी ओर क्रमशः बढ़ता हुआ पूर्णिमाको दो कोस प्रमाण बढ़ जाता है ।।२४६९।।

हाएदि किण्ह - पक्खे, तेण कमेणं च जाव वड्ढिगदं ।
एवं लोगाइणिए, गंथप्पवरम्मि णिद्दिट्ठं ।।२४७०।।

अर्थ :—वह समुद्र (शुक्लपक्षमें) जितना वृद्धिगत हुआ था कृष्ण पक्षमे उसी क्रमसे उतना-उतना ही घटता जाता है। इसप्रकार श्रेष्ठ ग्रन्थ लोगाइणीमें बतलाया गया है ।।२४७०।।

अन्य आचार्यके मतानुसार समुद्रके जलकी हानि-वृद्धि—

एक्करस-सहस्साणि, जलणिहिणो जोयणाणि गयणम्मि ।
भूमीदो उच्छेहो, होदि अवट्ठिद - सरूवेणं ।।२४७१।।

११००० ।

[पाठान्तरं

१. द. ब. क. ज. य. उ. सरिसे । २. द. कमवड्ढेदि णहे, ब. ज. क. य. उ. कमवड्ढेदि णहेणं । ३. द. ब. क. उ. पुण्णमिए ।

अर्थ :—भूमिसे आकाशमें समुद्रकी ऊँचाई अवस्थितरूपसे ग्यारह हजार (११०००) योजन प्रमाण है ।।२४७१।।

[पाठान्तर

तस्सोवरि सिद - पक्खे, पंच-सहस्साणि जोयणा कमसो ।
वड्ढेदि जलणिहि - जलं, [1]बहुले हाएदि तम्मेत्तं ।।२४७२।।

५००० । [पाठान्तरं

अर्थ :—शुक्लपक्षमें इसके ऊपर समुद्रका जल क्रमशः पाँच हजार योजन प्रमाण बढ़ता है और कृष्णपक्षमें इतना ही हानिको प्राप्त होता है ।।२४७२।। [पाठान्तर

पातालमुखोंके पार्श्वभागोंमें जलकणोंके विस्तारका प्रमाण—

पायालंते णिय - णिय - मुह - विक्खंभे हदम्मि पंचेहिं ।
णिय-णिय-परिणधीसु णहे, सलिल - कणा जंति तम्मेत्ता ।।२४७३।।

५०००० । ५००० । ५०० ।

अर्थ :—पातालोंके अन्तमें अपने-अपने मुख-विस्तारको पाँचसे गुणा करनेपर जो प्राप्त हो, तत्प्रमाण आकाशमें अपने-अपने पार्श्वभागोंमें जलकण जाते हैं ।।२४७३।।

विशेषार्थ :—ज्येष्ठादि पातालोंका मुख-विस्तार क्रमशः १०००० यो०, १००० यो० और १०० योजन है । शुक्लपक्षमें जब जल-वृद्धिगत होता हुआ बढ़ता है तब ज्येष्ठ पातालोंके पार्श्वभागोंमें ५०००० योजन पर्यन्त, मध्यम पातालोंमें ५००० योजन और जघन्य पातालोंके पार्श्वभागोंमें ५०० योजन पर्यन्त जलकण उछलते हैं ।

'लोगाइणी' और लोकविभागके मतानुसार जलशिखरका विस्तार—

जल-सिहरे विक्खंभो, जलणिहिणो जोयणा दस-सहस्सा ।
एवं संगाइणिए, लोयविभाए वि णिद्दिट्ठं ।।२४७४।।

१०००० । पाठान्तरम् ।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. बहुवे लाएदि ।

अर्थ :—जलशिखरपर समुद्रका विस्तार दस हजार (१००००) योजन है। इसप्रकार संगाइणीमें और लोकविभागमें कहा गया है ॥२४७४॥

पाठान्तर ।

लवणसमुद्रके दोनों तटोंपर और शिखरपर स्थित नगरियोंका वर्णन—

दु - तडाए सिहरम्मि य, वलयायारेण दिव्व-णयरीओ ।
जलणिहिणो चेट्ठंते, बादाल - सहस्स-एक्क-लक्खाणि ॥२४७५॥

१४२००० ।

अर्थ :- समुद्रके दोनो किनारोंपर तथा शिखरपर वलयके आकारसे एक लाख बयालीस हजार (१४२०००) दिव्य नगरियाँ स्थित हैं ॥२४७५॥

अब्भंतर - वेदीदो, सत्त - सयं जोयणाणि उवहिम्मि ।
पविसिय [1]आयासेसुं, बादाल - सहस्स - णयरीओ ॥२४७६॥

७०० खे[2] । ४२००० ।

अर्थ :—अभ्यन्तर वेदीसे सातसौ योजन ऊपर जाकर आकाशमें समुद्रपर बयालीस हजार (४२०००) नगरियाँ है ॥२४७६॥

बाहिर - वेदीहिंतो, सत्त - सया जोयणाणि उवरिम्मि ।
पविसिय आयासेसुं, णयरीओ बिहत्तरि सहस्सा ॥२४७७॥

७०० । ७२००० ।

अर्थ :—बाह्य-वेदीसे सातसौ योजन ऊपर जाकर आकाशमें समुद्रपर बहत्तर हजार (७२०००) नगरियाँ हैं ॥२४७७॥

लवणोवहि-बहु-मज्झे, सत्त-सया जोयणाणि दो कोसा ।
गंतूण होंति गयणे, [3]अडवीस - सहस्स - णयरीओ ॥२४७८॥

जो ७०० । को २ । २८००० ।

---

१. द. ब क ज. य उ. तीयासेमु । २. ब. क. उ. से, द. ज. य. सा । ३. द. अट्ठावीस ।

अर्थ :—लवणसमुद्रके बहु-मध्य-भागमें सातसौ योजन और दो कोस (७००½ योजन) प्रमाण ऊपर जाकर आकाशमें अट्ठाईस हजार (२८०००) नगरियाँ हैं ।।२४७८।।

णयरीण तडा[1] बहु-विह-वर-रयणमया हवंति समवट्टा ।
एदाणं पत्तेक्कं, विक्खंभो जोयण - दस - सहस्सा ।।२४७९।।

१०००० ।

अर्थ :—नगरियोंके तट बहुत प्रकारके उत्तम रत्नोंसे निर्मित समान-गोल है। इनमेंसे प्रत्येकका विस्तार दस हजार (१००००) योजन प्रमाण है ।।२४७९।।

पत्तेक्कं णयरीणं, [2]तड - वेदीओ हवंति [3]दिव्वाओ ।
धुव्वंत - धय - वडाओ, वर - तोरण - पहुदि-जुत्ताओ ।।२४८०।।

अर्थ :—प्रत्येक नगरी की फहराती हुई ध्वजा-पताकाओं और उत्तम तोरणादिकसे संयुक्त दिव्य तट-वेदियाँ है ।।२४८०।।

ताणं वर-पासादा[4], पुरीण वर-रयण-णियर-रमणिज्जा ।
चेट्ठंति हु देवाणं, वेलंधर - भुजग - णामाणं ।।२४८१।।

अर्थ :—उन नगरियोंमें उत्कृष्ट रत्नोंके समूहोंसे रमणीय वेलन्धर और भुजग नामक (नागकुमार) देवोंके प्रासाद स्थित है ।।२४८१।।

जिण-मन्दिर-रम्माओ, पोक्खरणी उववणेहि जुत्ताओ ।
को वण्णिदुं समत्थो, अणाइणिहणाओ णयरीओ ।।२४८२।।

अर्थ :—जिनमन्दिरोंमें रमणीय और वापिकाओं तथा उपवनोंसे संयुक्त इन अनादि-निधन नगरियोंका वर्णन करनेमे कौन समर्थ हो सकता है ? ।।२४८२।।

वण्णिद-सुराण णयरी-पणिधीए जलहि-दु-तड-सिहरेसुं ।
वज्ज - पुढवीए उवरिं, तेत्तिय-णयराणि के वि भासंति ।।२४८३।।

पाठान्तरम् ।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. तदा । २. द. ब. क. ज. य. उ. तद । ३. द. ब. क. ज. य. उ. दिव्वाए । ४. द. ब. क. ज. य. उ. पासादो ।

अर्थ :—समुद्रके दोनों किनारोंपर और शिखरपर बतलाई गई देवोंकी नगरियोंके पार्श्व-भागमें वज्रमय पृथिवीके ऊपर भी इतनी ही नगरियाँ हैं, ऐसा कितने हो आचार्य वर्णन करते हैं ।।२४८३।।

पाठान्तर ।

पातालोंके पार्श्वभागोमें स्थित आठ पर्वतोंका निरूपण—

बादाल-सहस्साणि, जोयणया जलहि - दो - तडाहितो ।
पविसिय छिदि - विवराणं[1], पासेसुं होंति अट्ठगिरी ।।२४८४।।

४२००० ।

अर्थ :—समुद्रके दोनों किनारोंसे बयालीस हजार (४२०००) योजन प्रमाण प्रवेश करके पातालोंके पार्श्वभागोंमें आठ पर्वत हैं ।।२४८४।।

सोलस-सहस्स-अहियं, जोयण लक्खं च तिरिय-विक्खंभं ।
पत्तेक्काणं जगदी - गिरीणि [2]मिलिदूण दो - लक्खा ।।२४८५।।

११६००० । ८४००० । २००००० ।

अर्थ :—प्रत्येक पर्वतका तिरछा विस्तार एक लाख सोलह हजार (११६०००) योजन प्रमाण है । इसप्रकार जगतीसे पर्वतों तकका अन्तराल (४२०००+४२०००=८४०००) तथा पर्वतोंका विस्तार मिलाकर कुल (११६०००+८४०००=२०००००) दो लाख योजन होता है ।।२४८५।।

ते कुंभद्ध - सरिच्छा, सेला जोयण - सहस्समुत्तुंगा ।
एदाणं [3]णामाइं, ठाण - विभागं च भासेमि ।।२४८६।।

१००० ।

अर्थ :—अर्धघटके सदृश वे पर्वत एक हजार (१०००) योजन ऊँचे हैं । इनके नाम और स्थान-विभाग कहते हैं ।।२४८६।।

---

१. द. ज. य. छिदिवराण । २ द. क. ज. य. मिलिदोण दो लक्खा, ब. उ. मिलिदोलक्खा । ३. द. ब. क. ज. य. उ णामाए ।

पादालस्स दिसाए, पच्छिमए कोत्तुभो [1]वसदि सेलो ।
पुव्वाए [2]कोत्थुभासो, दोण्णि वि ते वज्जमय - मूला ।।२४८७।।

अर्थ :— पातालकी पश्चिमदिशामें कौस्तुभ और पूर्व दिशामें कौस्तुभास पर्वत स्थित हैं। वे दोनों पर्वत वज्रमय मूलभागसे संयुक्त हैं ।।२४८७।।

मज्झम्मि-रजद-रचिदा, अग्गेसुं विविह-दिव्व-रयणमया ।
चरि - अट्टालय - चारू, तड - वेदी - तोरणेहि जुदा ।।२४८८।।

अर्थ :—ये पर्वत मध्यभागमें रजत (चाँदी) से और अग्रभागोंमें विविध प्रकारके दिव्य रत्नोंसे निर्मित है, तथा सुन्दर मार्गों अट्टालयों, तट-वेदियों एवं तोरणोंसे युक्त हैं ।।२४८८।।

ताणं हेट्ठिम-मज्झिम-उवरिम-वासाणि संपइ [3]पणट्ठा ।
तेसुं वर - पासादा, विचित्त - रूवा विरायंति ।।२४८९।।

अर्थ :—इन पर्वतोंके नीचे का, मध्यका और ऊपरका जो कुछ विस्तार है, उसका प्रमाण इससमय नष्ट हो गया है । इन पर्वतोंपर विचित्र रूपवाले उत्तम प्रासाद विराजमान हैं ।।२४८९।।

वेलंधर - वेंतरया, पव्वद - णामेहि संजुदा तेसुं ।
कीडंति मंदिरेसुं, विजयो व्व णिआउ - पहुदि - जुदा ।।२४९०।।

अर्थ :—इन प्रासादोंमें विजयदेवके सदृश अपनी आयु-आदिसे युक्त और पर्वतोंके नामोंसे संयुक्त वेलन्धर व्यन्तरदेव क्रीड़ा करते हैं ।।२४९०।।

उदको णामेण गिरी, होदि कदंबस्स उत्तर - दिसाए ।
उदकाभासो दक्खिण - दिसाए ते णीलमणि - वण्णा ।।२४९१।।

अर्थ :—कदम्ब-पातालकी उत्तर-दिशामें उदक नामक पर्वत और दक्षिण-दिशामें उदकाभास नामक पर्वत स्थित हैं । ये दोनों पर्वत नीलमणि जैसे वर्णवाले हैं ।।२४९१।।

सिव-णामा सिवदेओ, कमेण उवरिम्मि ताण सेलाणं ।
कोत्थुभदेव - सरिच्छा, आउ - प्पहुदीहि चेट्ठंति ।।२४९२।।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. मसदि । २. द. क. ज. य. कुंथुभासो, ब. कुत्थभासो, उ. कुंथभासो, ३. द. ब. क. ज. य. उ. पणट्ठो ।

अर्थ :—उन पर्वतोंके ऊपर क्रमशः शिव और शिवदेव नामक देव निवास करते हैं। इनकी आयु-आदि कौस्तुभदेवके सदृश है ॥२४६२॥

वडवामुह - पुव्वाए, दिसाए संख त्ति पव्वदो होदि ।
पच्छिमए [1]महसंखो, [2]दिसाए ते संख - सम - वण्णा ॥२४६३॥

अर्थ :—वड़वामुख पातालकी पूर्व-दिशामें शङ्ख और पश्चिम-दिशामें महाशङ्ख नामक पर्वत हैं। ये दोनों ही पर्वत शङ्ख सदृश वर्णवाले हैं ॥२४६३॥

उदगो उदगाभासो, कमसो उवरिम्मि ताण चेट्ठंति ।
देवा आउ - प्पहुदिसु, उदगाचल - देव - सारिच्छा ॥२४६४॥

अर्थ :—इन पर्वतोंपर क्रमशः उदक और उदकाभास नामक देव स्थित हैं। ये दोनों देव आयु-आदिमें उदक-पर्वतपर स्थित देव सदृश हैं ॥२४६४॥

दक-णामो होदि-गिरी, दक्खिण-भागम्मि जूवकेसरिणो ।
दकवासो उत्तरए, भाए वेरुलिय - मणिमया दोण्णि ॥२५६५॥

अर्थ :—यूपकेशरीके दक्षिण-भागमें दक नामक पर्वत और उत्तर भागमें दकवास नामक पर्वत स्थित हैं। ये दोनों ही पर्वत वैडूर्यमणिमय हैं ॥२४६५॥

उवरिम्मि ताण कमसो, लोहिद-णामो य लोहिदंकक्खो ।
उदय - गिरिस्स सरिच्छा, आउ - प्पहुदीसु होंति सुरा ॥२४६६॥

अर्थ :—उन पर्वतोंपर क्रमशः लोहित और लोहिताङ्क नामक देव निवास करते हैं। ये देव आयु-आदिमें उदक पर्वत पर रहनेवाले देव सदृश है ॥२४६६॥

एदाणं देवाणं, णयरीओ अवर - जंबुदीवम्मि ।
होंति[3] णिय-णिय-दिसाए, अवराजिद-णयर-सारिच्छा ॥२४६७॥

अर्थ :—इन देवोंकी नगरियाँ अपर जम्बूद्वीपमें अपनी-अपनी दिशामें अपराजित नगरके सदृश हैं ॥२४६७॥

---

१. द. ज. य महासंखे, क. महसंखे । २. ब. उ. दिमु एते । ३. द ब. क. ज. य. उ. दोण्णि य ।

लवणसमुद्रस्थ सूर्यद्वीपादिकोंका निर्देश—

बादाल - सहस्साइं, जोयणया जंबुदीव - जगदीदो ।
गंतूण अट्ठ दीवा, णामेणं [1]सूरदीओ त्ति ॥२४६८॥

४२००० ।

अर्थ :—जम्बूद्वीपकी जगतीसे बयालीस हजार (४२०००) योजन जाकर 'सूर्यद्वीप' नामसे प्रसिद्ध आठ द्वीप हैं ॥२४६८॥

पुव्व-पवण्णिद-कोत्थुह-पहुदीणं हवंति दोसु पासेसुं ।
एदे दीवा मणिमय, जिणिंद - पासाद - रमणिज्जा ॥२४६६॥

अर्थ :—मणिमय जिनेन्द्र-प्रासादोंसे रमणीय ये द्वीप पूर्वमें बतलाए हुए कौस्तुभादिक पर्वतोंके दोनों पार्श्वभागोंमें स्थित हैं ॥२४६६॥

सव्वे ते समवट्टा, बादाल - सहस्स - जोयण - पमाणा ।
चरियट्टालय - चारू, तड - वेदी तोरणेहि जुदा ॥२५००॥

४२००० ।

अर्थ :—वे सब द्वीप गोल हैं । बयालीस हजार (४२०००) योजन प्रमाण विस्तार युक्त हैं तथा सुन्दर मार्गों, अट्टालयों, तट-वेदियों एवं तोरणोंसे युक्त हैं ॥२५००॥

वेलंधर - देवाणं, अहिवइ - देवा वसंति एदेसुं ।
बहु - परिवारा दस - धणु - तुंगा पल्लं पमाणाऊ ॥२५०१॥

अर्थ :—दस धनुष ऊँचे और एक पल्य प्रमाण आयुवाले वेलन्धर नामक अधिपति देव बहुत परिवारसे संयुक्त होकर इन द्वीपोंमें रहते हैं ॥२५०१॥

लवणंबुहि - जगदीदो, पविसिय बादाल-जोयण-सहस्सा ।
चउ - गिरिदो पासेसुं, सूर - दीवो व्व चंददीवा य ॥२५०२॥

---

१. ब. सुरदीउ ।

अर्थ :--लवणसमुद्रकी जगतीसे बयालीस हजार (४२०००) योजन प्रमाण प्रवेश करके चारों पर्वतोंके पार्श्वभागोंमें सूर्य द्वीपोंकी भाँति चन्द्र-द्वीप हैं ।।२५०२।।

बारस - सहस्समेत्ता, जोयणया जंबुदीव - जगदीदो ।
गंतूणणिल - दिसाए, होदि समुद्दम्मि रवि - दीओ ।।२५०३।।

अर्थ :--लवणसमुद्रमें जम्बूद्वीपकी जगतीसे बारह हजार (१२०००) योजन प्रमाण जाकर वायव्य दिशामें 'रवि' नामक द्वीप है ।।२५०३।।

चित्तोवरिम - तलादो, उवरिं बारस-सहस्स-जोयणया ।
उत्तुंगो समवट्टो, तेत्तिय - रुंदा य गोदमो णाम ।।२५०४।।

अर्थ : चित्रापृथिवीके उपरिम तलसे ऊपर बारह हजार (१२०००) योजन प्रमाण ऊँचा, गोल और बारह हजार योजन विस्तारवाला गौतम नामक द्वीप है ।।२५०४।।

विजयो व्व वण्णण - जुदो, वेंतरदेवा वि गोदमो णाम ।
तस्सि दीवाहिवई, चेट्ठंति पल्लं पमाणाऊ ।।२५०५।।

अर्थ :- उस द्वीपका अधिपति गौतम नामक व्यन्तरदेव एक पल्य प्रमाण आयुवाला है और विजयदेवके समान वर्णनसे युक्त है ।।२५०५।।

भरहब्भंतर - वण्णिद, गंगा - पणिधीए लवणतोयम्मि ।
संखेज्ज - जोयणाणिं, गंतूणं होदि मागधो दीओ ।।२५०६।।

अर्थ :—पूर्व कथित भरतक्षेत्रकी गंगानदीके पार्श्वसे लवणसमुद्रमें संख्यात योजन जानेपर मागधद्वीप है ।।२५०६।।

उच्छेह-वास-पहुदिसु, उवएसो तस्स संपइ - पणट्ठो ।
चित्त चउ - वण्ण - चारू, जिणिंद-भवणेहि रमणिज्जो ।।२५०७।।

अर्थ :—(वह मागधद्वीप) चित्तको प्रिय रंगोंसे सुन्दर एवं जिनेन्द्र भवनोंसे रमणीय है । इस समय उस द्वीपके उत्सेध और विस्तारादिके विषयमें उपदेश नष्ट हो गया है ।।२५०७।।

तस्सि दीवाहिवई, मागध - णामेण वेंतरो देवो ।
बहु - परिवारा कीडदि, विविह - विणोदेण तम्मि पल्लाऊ ।।२५०८।।

अर्थ :—उस द्वीपका अधिपति मागध नामक व्यन्तर देव एक पल्यकी आयुवाला है और उस द्वीपमें बहुत परिवार युक्त अनेक प्रकारके विनोद पूर्वक क्रीड़ा करता है ।।२५०८।।

पणिधीए जंबुदीवं, खिदि - वण्णिद वइजयंत दारेस ।
संखेज्ज - जोयणाणि, गंतूणं लवणसलिलम्मि ।।२५०९।।

वरतणु - णामो दीओ, जिणिंद-पासाद-भूसिदो रम्मो ।
रुंदादिसु उवदेसो, काल - वसा तस्स उच्छण्णो ।।२५१०।।

अर्थ :—जम्बूद्वीपके पार्श्वभागके क्षेत्रमें (पूर्व) वर्णित वैजयन्त द्वारसे लवणसमुद्रके जलमें संख्यात योजन जाकर जिनेन्द्र-भवनोंसे विभूषित अत्यन्त रमणीय वरतनु नामक द्वीप है । जिसके विस्तार-आदिका उपदेश काल-वश नष्ट हो गया है ।।२५०९-२५१०।।

तस्सि दीवाहिवई, वरतणु - णामेण वेंतरो देवो ।
बहु - विह - परिवार - जुदो, कीडदि लीलाए पल्लाऊ ।।२५११।।

अर्थ :—उस द्वीपका अधिपति वरतनु-नामक व्यन्तरदेव एक पल्यकी आयुवाला है और बहुत प्रकारके परिवारसे युक्त होकर लीला-पूर्वक क्रीड़ा करता है ।।२५११।।

भरहक्खेत्त - पवण्णिद, सिंधु-पणिधीए लवणजलहिम्मि ।
संखेज्ज - जोयणाणि, गच्छिय दीओ पभासेंति ।।२५१२।।

अर्थ :—पूर्व वर्णित भरतक्षेत्रकी सिन्धुनदीके पार्श्वभागसे लवणसमुद्रके जलमें संख्यात योजन जाकर प्रभास नामक द्वीप है ।।२५१२।।

मागधदीव - समाणं, सव्वं चिय वण्णणं पभासस्स ।
चेट्ठदि परिवार - जुदो, पभास - णामो सुरो तस्सि ।।२५१३।।

अर्थ :—प्रभासद्वीपका सम्पूर्ण वर्णन मागधद्वीपके सदृश है । इस द्वीपमें परिवारसे युक्त होकर प्रभास नामक देव रहता है ।।२५१३।।

एरावद - विजओविद - रत्तोदा - वाहिणीए पणिधीए ।
मागधदीव - सरिच्छो, होदि समुद्दम्मि मागधो दीओ ।।२५१४।।

अर्थ :—ऐरावत-क्षेत्रमें कही हुई रक्तोदा नदीके पार्श्वभागमें मागधद्वीपके सदृश (लवण) समुद्रमें मागधद्वीप है ॥२५१४॥

अवराजिद-बारस्स - प्पणिधीए होदि लवणजलहिम्मि ।
वरतणु - णामो दीग्रो, वरतणु - दीवोवमो अण्णो ॥२५१५॥

अर्थ :—अपराजितद्वारके पार्श्वभागमें वरतनुद्वीपके सदृश अन्य वरतनु नामक द्वीप लवण-समुद्रमें स्थित है ॥२५१५॥

एरावद-खिदि-णिग्गद-रत्ता-पणिधीए लवणजलहिम्मि ।
अण्णो पभास - दीग्रो, पभास - दीओ व्व चेट्ठे दि ॥२५१६॥

अर्थ :—लवणसमुद्रमें ऐरावतक्षेत्रमेंसे निकली हुई रक्तानदीके पार्श्वभागमें प्रभासद्वीपके सदृश अन्य प्रभासद्वीप स्थित है ॥२५१६॥

जे अब्भंतरभागे, लवणसमुद्दस्स पव्वदा दीवा ।
ते सव्वे चेट्ठ ंते, णियमेणं बाहिरे भागे ॥२५१७॥

अर्थ :—लवणसमुद्रके अभ्यन्तरभागमें जो पर्वत और द्वीप हैं, वे सब नियमसे उसके बाह्य-भागमें भी स्थित हैं ॥२५१७॥

४८ कुमानुष-द्वीपोंका निरूपण—

दीवा लवणसमुद्दे, अडदाल कुमाणुसाण चउवीसं ।
अब्भंतरम्मि भागे, तेत्तियमेत्ताए बाहिरए ॥२५१८॥

४८ । २४ । २४

अर्थ :—लवणसमुद्रमें अड़तालीस (४८) कुमानुष-द्वीप है । इनमेंसे चौबीस (२४) द्वीप तो अभ्यन्तर भागमें और इतने (२४) ही बाह्य-भागमें हैं ॥२५१८॥

चत्तारि चउ-दिसासु, चउ - विदिसासु हवंति चत्तारि ।
अंतर - दिसासु अट्ठ य, अट्ठ य गिरि-पणिधि-ठाणेसु ॥२५१९॥

४ । ४ । ८ । ८ ।

अर्थ :—चौबीस द्वीपोंमेंसे चारों दिशाओंमें चार, चारों विदिशाओंमें चार, अन्तर-दिशाओंमें आठ और पर्वतोंके पार्श्वभागोंमें आठ (४+४+८+८=२४) द्वीप हैं ।।२५१९।।

पंच - सय - जोयणाणि, गंतूणं जंबुदीव - जगदीदो ।
चत्तारि होंति दीवा, दिसासु विदिसासु तम्मेत्तं ।।२५२०।।

५०० । ५०० ।

अर्थ :—जम्बूद्वीपकी जगतीसे पाँचसौ (५००) योजन जाकर चार द्वीप चारों दिशाओंमें और इतने (५००) ही योजन जाकर चार द्वीप चारों विदिशाओंमें भी हैं ।।२५२०।।

पण्णाहिय - पंच - सया, गंतूणं होंति अंतरा दीवा ।
छस्सय - जोयणमेत्तं, गच्छिय गिरि-पणिधि-गद-दीवा ।।२५२१।।

५५० । ६०० ।

अर्थ :—अन्तर दिशाओंमें स्थित द्वीप जम्बूद्वीपकी जगतीसे पाँचसौ पचास (५५०) योजन और पर्वतोंके पार्श्वभागोंमें स्थित द्वीप छहसौ योजन प्रमाण जाकर हैं ।।२५२१।।

एक्क-सयं पणवण्णा, पण्णा पणुवीस जोयणा कमसो ।
वित्थार - जुदा ताणं, एक्केक्कं होदि तड - वेदी ।।२५२२।।

१०० । ५५ । ५० । २५ ।

अर्थ :—ये द्वीप क्रमशः एकसौ, पचपन, पचास और पच्चीस योजन-प्रमाण विस्तारसे सहित हैं । उनमेंसे प्रत्येक द्वीप एक-एक तट-वेदी युक्त है ।।२५२२।।

विशेषार्थ :—(गा० २५१८ से २५२२ तक का) लवण समुद्रके अभ्यन्तर तटसे बाहरकी ओर और बाह्यतटसे भीतरकी ओर दिशा सम्बन्धी १००-१०० योजन विस्तार वाले चार द्वीप ५०० योजन दूर (जलकी ओर) जाकर हैं । विदिशा सम्बन्धी ५५-५५ योजन विस्तार वाले चार द्वीप ५०० योजन दूर हैं । अन्तर दिशा सम्बन्धी ५०-५० योजन विस्तारवाले आठ द्वीप ५५० योजन दूर हैं और पर्वतोंके निकटवर्ती २५-२५ योजन विस्तारवाले आठ द्वीप ६०० योजन दूर जाकर स्थित हैं । लवणसमुद्रगत ४८ कुमानुष द्वीप अर्थात् कुभोग-भूमियोंका चित्रण निम्न प्रकार है—
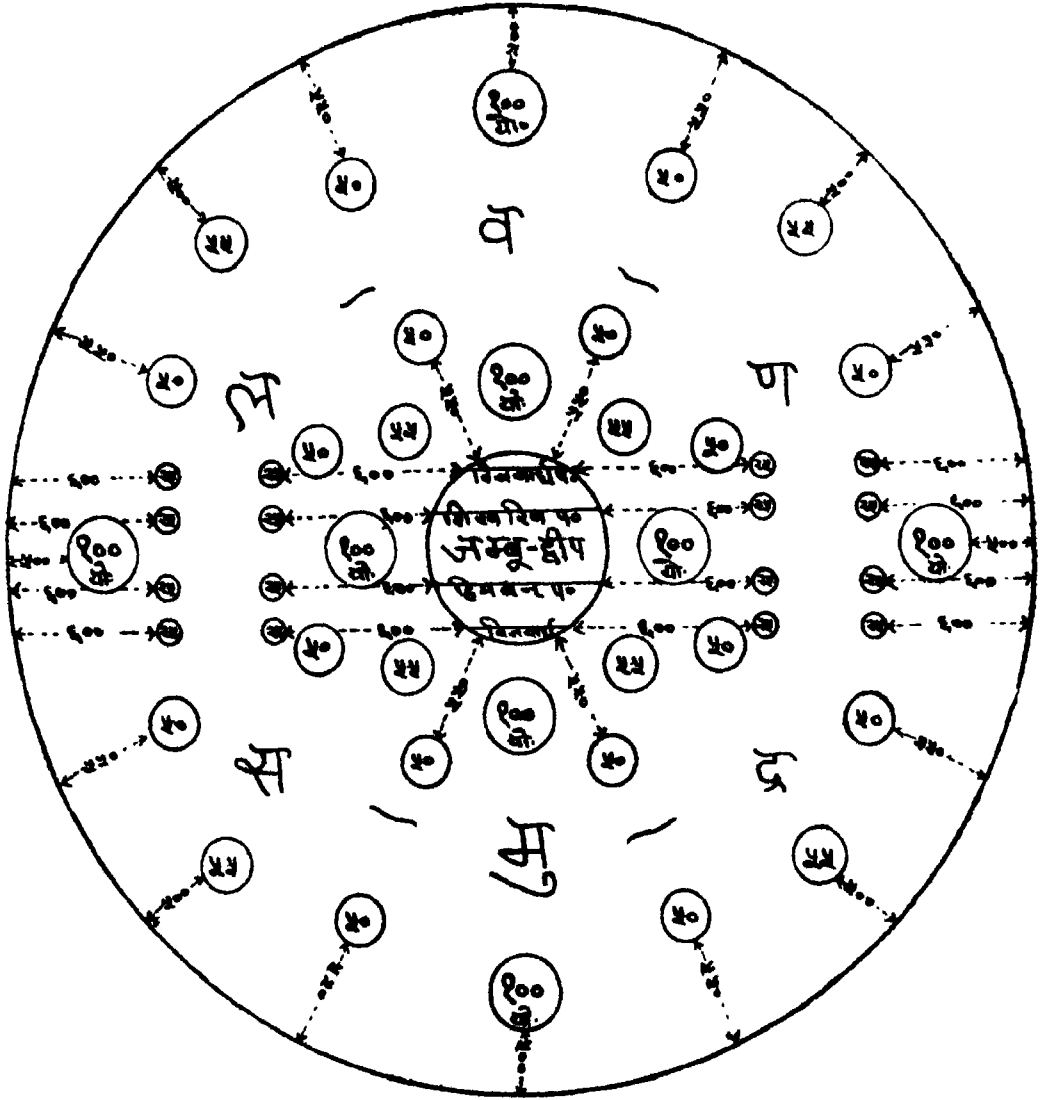
ते सव्वे वर - दीवा, वण - संडेहिं दहेहि रमणिज्जा ।
फल-कुसुम-भार-भरिदा[1], रसेहि महुरेहि सलिलेहिं ।।२५२३।।

अर्थ :—वे सब उत्तम द्वीप मधुर रस वाले फल-फूलोंके भारसे युक्त वन-खण्डों और जलसे परिपूर्ण तालाबोंसे रमणीय हैं ।।२५२३।।

---

१. द. ब. क. उ. भजिदा ।

कुभोगभूमिमें उत्पन्न मनुष्योंकी आकृतिका निरूपण—

एक्कोरुक - लंगुलिका[1], वेसणकाभासका य णामेहिं ।
पुव्वादिसु दिसासु, चउ - दीवाणं कुमाणुसा होंति ॥२५२४॥

अर्थ :—पूर्वादिक दिशाओंमें स्थित चार द्वीपोंके कुमानुष क्रमशः एक जंघावाले, पूँछवाले, सींगवाले और अभाषक अर्थात् गूँगे होते हुए इन्हीं नामोंसे युक्त हैं ॥२५२४॥

सक्कुलिकण्णा कण्णप्पावरणा लंबकण्ण - ससकण्णा ।
अग्गि - दिसादिसु कमसो, चउ - दीव-कुमाणुसा एदे ॥२५२५॥

अर्थ :—आग्नेय-आदिक विदिशाओंमें स्थित चार द्वीपोंके ये कुमानुष क्रमशः शष्कुलीकर्ण, कर्णप्रावरण, लम्बकर्ण और शशकर्ण होते हैं ॥२५२५॥

सिंहस्स - साण-महिस[2]-व्वरहा-सद्दूल-घूक-कपि-वदणा ।
सक्कुलि - कण्णेकोरुग - पहुदीणं अंतरेसु ते कमसो ॥२५२६॥

अर्थ :—शष्कुलीकर्ण और एकोरुक आदिकोंके बीचमें अर्थात् अन्तर-दिशाओंमें स्थित आठ द्वीपोंके वे कुमानुष क्रमशः सिंह, अश्व, श्वान, महिष, वराह, शार्दूल, घूक और बन्दरके मुख सदृश मुखवाले होते हैं ॥२५२६॥

मच्छ-मुहा काल-मुहा, हिमगिरि-पणिधीए पुव्व-पच्छिमदो ।
मेस - मुह - गो - मुहक्खा, दक्खिण-वेयड्ढ-पणिधीए ॥२५२७॥

अर्थ :—हिमवान् पर्वतके प्रणिधिभागमें पूर्व-पश्चिम दिशाओंमें क्रमशः मत्स्यमुख एवं कालमुख तथा दक्षिण-विजयार्धके प्रणिधिभागमें मेषमुख एवं गोमुख कुमानुष रहते हैं ॥२५२७॥

पुव्वावरेण सिहरि - प्पणिधीए मेघ-विज्जु-मुह-णामा ।
आदंसण - हत्थि - मुहा, उत्तर - वेयड्ढ - पणिधीए ॥२५२८॥

---

१. ब. क. ज. ग उ. रंगुलिका । २. ब क. उ. साणपहयरिओवरहा । द. ज. य. साणपहयरिव-वराह ।

अर्थ :—शिखरीपर्वतके पूर्व-पश्चिम प्रणिधिभागमें क्रमशः मेघमुख एवं विद्युन्मुख तथा उत्तर-विजयार्धके प्रणिधिभागमें आदर्श (दर्पण) मुख एवं हस्तिमुख कुमानुष होते हैं ।।२५२८।।

एक्कोरुगा गुहासुं, वसंति भुंजंति मट्टियं मिट्ठं ।
सेसा तरु - तल - वासा, पुप्फेहिं फलेहिं जीवंति ।।२५२९।।

अर्थ :– इन सबमेंसे एकोरुक कुमानुष गुफाओंमें रहते हैं और मीठी मिट्टी खाते हैं। शेष सब कुमानुष वृक्षोंके नीचे रहकर फल-फूलोंसे जीवन व्यतीत करते हैं ।।२५२९।।

धादइसंड - दिसासुं, तेत्तियमेत्ता वि अंतरा दीवा ।
तेसुं तेत्तियमेत्ता, कुमाणुसा होंति तण्णामा ।।२५३०।।

अर्थ :—धातकीखण्डद्वीपकी दिशाओंमें भी इतने (४८) ही अन्तरद्वीप और उनमें रहने वाले पूर्वोक्त नामोंसे युक्त उतने ही कुमानुष हैं ।।२५३०।।

विशेषार्थ :—लवणसमुद्रकी पूर्व दिशागत द्वीपोंमें एकोरुक-एक जंघावाले, दक्षिणमें लांगुलिका-पूँछवाले, पश्चिममें वैषाणिक-सींगवाले और उत्तर दिशामें अभाषक-गूँगे कुमनुष्य रहते हैं। आग्नेयमें शष्कुलिकर्ण, नैऋत्यमें कर्णप्रावरण-जिनके कर्ण वस्त्रोंके सदृश शरीरका आच्छादन करते हैं, वायव्यमें लम्बकर्ण और ईशानमें शशकर्ण कुमनुष्य रहते हैं। दिशा एवं विदिशाओंके आठ अन्तरालोंमें क्रमशः सिंहमुख, अश्वमुख, श्वानमुख, महिष (भैंसा) मुख, वराह (सूकर) मुख, शार्दूल (व्याघ्र) मुख, घूक (घुग्घू) मुख और बन्दरमुख कुमनुष्य रहते हैं। हिमवान् कुलाचलके समीप पूर्वदिशामें मीनमुख और पश्चिममें कालमुख, दक्षिण-विजयार्धके समीप पूर्वमें मेषमुख और पश्चिममें गोमुख, शिखरीकुलाचलके पूर्वमें मेघमुख और पश्चिममें विद्युन्मुख तथा उत्तर-विजयार्धके पूर्वमें दर्पणमुख और पश्चिममें हाथीमुख कुमनुष्य रहते हैं।

[चित्र अगले पृष्ठ पर देखिये]

इनका चित्रण निम्न प्रकारसे है—
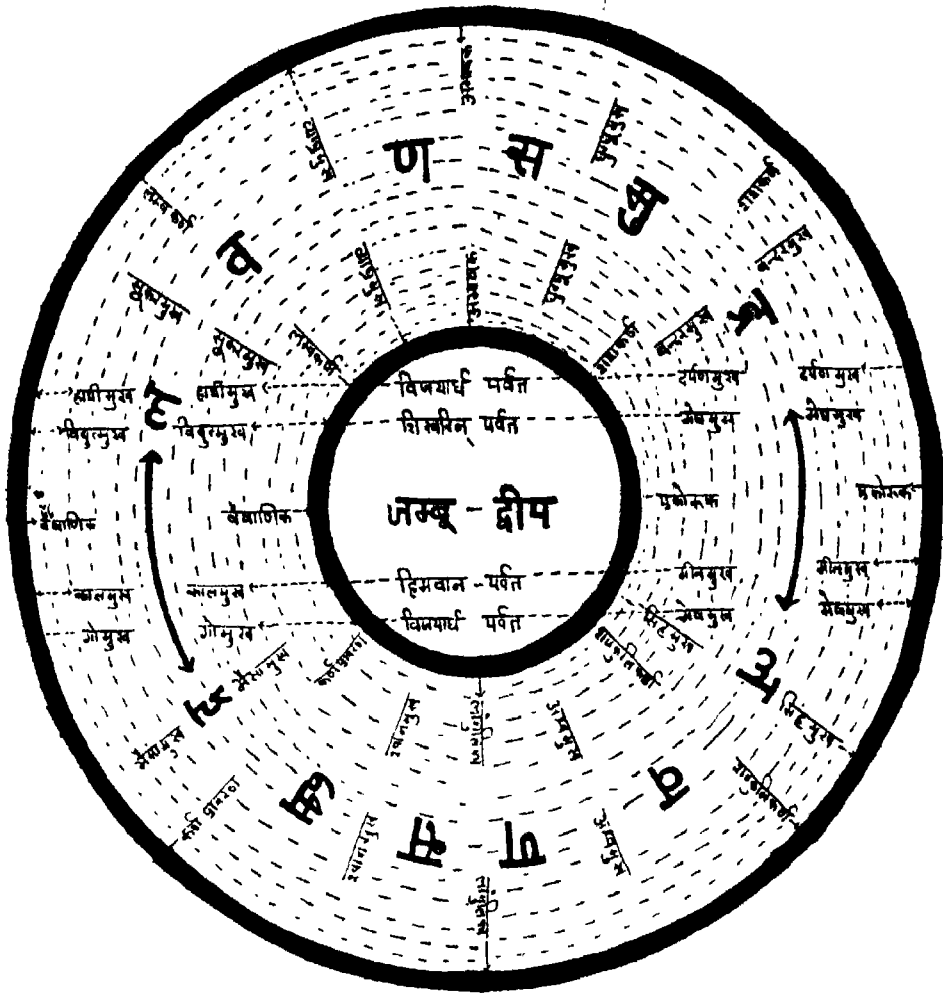
मतान्तरसे उन द्वीपोंकी स्थिति एवं कुमानुषोंके नाम भिन्नरूपसे दर्शाते हैं—

लोयविभागाइरिया, दीवाण कुमाणुसेहि जुत्ताणं ।
अण्ण - सरूवेण ठिदि, भासंते तं परूवेमो ।।२५३१।।

अर्थ :—लोकविभागाचार्य कुमानुषोंसे युक्त उन द्वीपोंकी स्थिति भिन्नरूपसे बतलाते हैं। (अब उसके अनुसार) उसका निरूपण करते हैं ।।२५३१।।

पण्णाधिय - पंच - सया, गंतूणं जोयणाणि विदिसासुं ।
दीवा दिसासु अंतर - दिसासु पण्णास - परिहीणा ॥२५३२॥

५५० । ५०० । ५०० ।

अर्थ :— ये द्वीप जम्बूद्वीपकी जगतीसे पाँचसौ पचास (५५०) योजन जाकर विदिशाओंमें और इससे पचास योजन कम अर्थात् केवल (५००) योजन प्रमाण जाकर दिशाओंमें एवं (५०० यो० ही) अन्तर-दिशाओंमें स्थित हैं ॥२५३२॥

जोयण-सय-विक्खंभा, अंतर - दीवा तहा दिसा-दीवा ।
पण्णा रुंदा विदिसा-दीवा पणुवीस सेल-पणिधि-गया ॥२५३३॥

१०० । १०० । ५० । २५ ।

अर्थ :—अन्तर-दिशा तथा दिशागत द्वीपोंका विस्तार एकसौ (१००) योजन, विदिशाओंमें स्थित द्वीपोंका विस्तार पचास (५०) योजन और पर्वतोंके प्रणिधिभागोंमें स्थित द्वीपोंका विस्तार पच्चीस (२५) योजन प्रमाण है ॥२५३३॥

पुव्वं व गिरि-पणिधि-गदा छस्सय-जोयणाणिं चेट्ठंति—

अर्थ :—पर्वत-प्रणिधिगत द्वीप पूर्वके सदृश ही जम्बूद्वीपकी जगतीसे छहसौ (६००) योजन जाकर स्थित हैं ।

एक्कोरुक-वेसणिका, लंगुलिका तह अभासगा तुरिमा ।
पुव्वादिसु वि दिसासुं, चउ-दीवाणं कुमाणुसा कमसो ॥२५३४॥

अर्थ :—पूर्वादिक दिशाओंमें स्थित चार द्वीपोंके कमानुष क्रमशः एक-जंघावाले, सींगवाले, पूँछवाले और गूँगे होते हैं ॥२५३४॥

अणलादिसु विदिसासुं, ससकण्णा ताण उभय-पासेसुं ।
अट्ठ य अंतर - दीवा, पुव्वग्गि - दिसादि - गणणिज्जा ॥२५३५॥

अर्थ :—आग्नेय आदिक विदिशाओंके चार द्वीपोंमें शश-कर्ण कुमानुष होते हैं । उनके दोनों पार्श्वभागोंमे आठ अन्तरद्वीप हैं, जो पूर्व-आग्नेय-दिशादिके क्रमसे जानना चाहिए ॥२५३५॥

पुव्व-दिसट्ठिय-एक्कोरुकाण, अग्गि - दिसट्ठिय सस - कण्णाणं, विच्चाला दिसु कमेण अटंठ्तर-दीव-ट्ठिदकुमाणुस-णामाणि गणिदव्वा—

अर्थ :—पूर्व दिशामें स्थित एकोरुक और आग्नेय दिशामें स्थित शशकर्ण कुमानुषोंके अन्तराल आदिक अन्तरालोंमें क्रमशः आठ अन्तर-द्वीपोंमें स्थित कुमानुषोंके नामोंको गिनना चाहिए—

केसरि-मुहा मणुस्सा, चक्कुलि-कण्णा अ चक्कुली - कण्णा ।
साण-मुहा कपि-वदणा, चक्कुलि-कण्णा अ चक्कुली-कण्णा ।।२५३६।।

हय - कण्णाइं कमसो, कुमाणुसा तेसु होंति दीवेसु ।
घूक-मुहा काल-मुहा, हिमवंत-गिरिस्स पुव्व-पच्छिमदो ।।२५३७।।

अर्थ :—इन अन्तरद्वीपोंमें क्रमशः केशरीमुख, शष्कुलीकर्ण, शष्कुलिकर्ण, श्वानमुख, वानरमुख, शष्कुलिकर्ण, शष्कुलिकर्ण और अश्वकर्ण कुमानुष होते हैं । हिमवान् पर्वतके पूर्व-पश्चिम-भागोंमें क्रमशः वे कुमानुष घूक (उल्लू) मुख और कालमुख होते हैं ।।२५३६-२५३७।।

गो-मुह-मेष-मुहक्खा, दक्खिण-वेयड्ढ-पणिधि-दीवेसु[1] ।
मेघ-मुहा विज्जु-मुहा, सिहरि-गिरिंदस्स पुव्व-पच्छिमदो ।।२५३८।।

अर्थ :—(वे कुमानुष) दक्षिण-विजयार्धके प्रणिधिभागस्थ द्वीपोंमें गोमुख और मेषमुख तथा शिखरी-पर्वतके पूर्व-पश्चिम द्वीपोंमें मेघमुख और विद्युन्मुख होते हैं ।।२५३८।।

दप्पण-गय-सरिस-मुहा, उत्तर-वेयड्ढ-पणिधिभाग-गदा ।
अब्भंतरम्मि भागे बाहिरए होंति तम्मेत्ता ।।२५३६।।

अर्थ :—उत्तर-विजयार्धके प्रणिधिभागोंको प्राप्त हुए वे कुमानुष क्रमशः दर्पण और हाथी सदृश मुखवाले हैं । जितने (२४) कुमानुष अभ्यन्तर भागमें हैं, उतने (२४) ही बाह्यभागमें हैं ।।२५३६।।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. वेदीसु ।

कुमानुष द्वीपोंमें कौन उत्पन्न होते हैं ? उसका निरूपण—

मिच्छत्त-तिमिर[1]-छण्णा, मंद-कसाया पियंवदा कुडिला ।
धम्मफलं मग्गंता, मिच्छा - देवेसु भत्तिपरा ॥२५४०॥

सुद्धोदण-सलिलोदण-कंजिय-असणादि-कट्ठ-सुकिलिट्ठा ।
पंचग्गि - तवं विसमं, काय - किलेसं च कुव्वंता ॥२५४१॥

सम्मत्त-रयण-हीणा, कुमाणुसा लवणजलहि - दीवेसुं ।
उप्पज्जंति अधण्णा[2], अण्णाण - जलम्मि मज्जंता ॥२५४२॥

अर्थ :—मिथ्यात्वरूपी अन्धकारसे आच्छन्न, मन्द-कषायी, प्रिय बोलनेवाले, कुटिल (परिणामी), धर्म-फलको खोजनेवाले, मिथ्यादेवोंकी भक्तिमें तत्पर; शुद्ध ओदन, जल और ओदन एवं कांजी खानेके कष्टसे संक्लेशको प्राप्त, विषम पञ्चाग्नितप तथा कायक्लेश करनेवाले और सम्यक्त्वरूपी रत्नसे रहित अज्ञानरूपी जलमें डूबते हुए अधन्य (पुण्यहीन या अकृतार्थ या अज्ञानी) जीव लवणसमुद्रके द्वीपोंमें कुमानुष उत्पन्न होते हैं ॥२५४०-२५४२॥

अदि-माण-गव्विदा जे, साहूण कुणंति किंचि [3]अवमाणं ।
संजम[4] - तव - जुत्ताणं, जे णिग्गंथाण दूसणा देंति ॥२५४३॥

जे मायाचार - रदा, संजम-तव-जोग-वज्जिदा पावा ।
इड्ढि - रस - साद - गारव - गरुवा जे मोहमावण्णा ॥२५४४॥

थूल - सुहुमादिचारं, जे णालोचंति गुरु-जण-समीवे ।
सज्झाय - वंदणाओ, जे गुरु - सहिदा ण कुव्वंति ॥२५४५॥

जे छंडिय मुणि - संघं, वसंति एकाकिणो दुराचारा ।
जे कोहेण य कलहं, [5]सव्वेहिंतो पकुव्वंति ॥२५४६॥

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. तिमिरता । २. ब. उ. अधण्णम्मा । ३. द. ब. क. ज. य. उ. अवमाणा । ४. द. ब. क. ज. य. उ. सम्मत्त । ५ द. ब. क. ज. य. उ. सव्वेसिते ।

आहार - सण्ण - सत्ता, लोह-कसाएण जणिद-मोहा जे ।
धरिमाणं जिण - लिंगं, पावं कुव्वंति जे घोरं ।।२५४७।।

जे कुव्वंति ण भत्ति, अरहंताणं तहेव साहूणं ।
जे वच्छल्ल - विहीणा, चाउव्वण्णम्मि संघम्मि ।।२५४८।।

जे गेण्हंति सुवण्ण-प्पहुदिं जिण-लिंग-धारिणो हिट्ठा[1] ।
कण्णा - विवाह - पहुदिं, संजद - रूवेण जे पकुव्वंति ।।२५४९।।

जे भुंजंति विहीणा, मोणेणं घोर - पाव - संलग्गा ।
अणअण्णदरुदयादो, सम्मत्तं जे विणासंति ।।२५५०।।

ते काल - वसं पत्ता, फलेण पावाण विसम - पाकाणं ।
उप्पज्जंति कुरूवा, कुमाणुसा जलहि - दीवेसुं ।।२५५१।।

अर्थ :—जो (जीव) तीव्र अभिमानसे गर्वित होकर, सम्यक्त्व और तपसे युक्त साधुओंका किञ्चित् भी अपमान करते हैं । जो दिगम्बर साधुओंकी निन्दा करते हैं, जो पापी, संयम-तप एवं प्रतिमायोगसे रहित होकर मायाचारमें रत रहते हैं, जो ऋद्धि, रस और सात इन तीन गारवोंसे महान् होते हुए मोहको प्राप्त हैं, जो स्थूल और सूक्ष्म दोषोंकी आलोचना गुरुजनोंके समीप नहीं करते हैं, जो गुरुके साथ स्वाध्याय एवं वन्दनाकर्म नहीं करते हैं जो दुराचारी मुनि संघ छोड़कर एकाकी रहते हैं, जो क्रोधके वशीभूत हुए सबसे कलह करते हैं, जो आहार-संज्ञामें आसक्त और लोभ-कषायसे मोहको प्राप्त होते हैं जो जिन-लिंग धारण करते हुए (भी) घोर पाप करते हैं, जो अरहन्तों (आचार्य-उपाध्याय) तथा साधुओंकी भक्ति नहीं करते हैं; जो चातुर्वर्ण्य संघके विषयमें वात्सल्य-भावसे विहीन होते हैं; जो जिनलिंगके धारी होकर सुवर्णादिकको हर्षसे ग्रहण करते हैं, जो संयमीके वेषसे कन्या-विवाहादिक करते हैं, जो मौनके बिना भोजन करते हैं, जो घोर पापमें संलग्न रहते हैं, जो अनन्तानुबन्धिचतुष्टयमेंसे किसी एकके उदित होनेसे अपना सम्यक्त्व नष्ट करते हैं, वे मृत्युको प्राप्त होकर विषम परिपाकवाले पाप-कर्मोंके फलसे (लवण और कालोदक) समुद्रोंके इन द्वीपोंमें कुत्सित-रूपसे युक्त कुमानुष उत्पन्न होते हैं ।।२५४३-२५५१।।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. दिट्ठा ।

इसी विषयका प्रतिपादन त्रिलोकसार गाथा ९२२-९२४ में निम्नप्रकारसे किया गया है—

जिण-लिंगे मायावी, जोइस-मंतोवजीवि धण-कंखा ।
अइ-गउरव-सण्ण-जुदा, करंति जे पर-विवाहंपि ॥१॥
दंसण-विराहया जे, दोसं णालोचयंति दूसणगा ।
पंचग्गि-तवा मिच्छा, मोणं परिहरिय भुंजंति ॥२॥
दुब्भाव-असुचि-सूदग-पुप्फवई-जाइ-संकरादीहिं ।
कय-दाणा वि कुवत्ते, जीवा कुणरेसु जायंते ॥३॥

अर्थ :—जो जीव जिनलिंग धारणकर मायाचारी करते हैं, ज्योतिष एवं मन्त्रादि विद्याओं द्वारा आजीविका करते हैं, धनके इच्छुक हैं, तीन गारव एवं चार संज्ञाओंसे युक्त हैं, गृहस्थोंके विवाह आदि कराते हैं, सम्यग्दर्शनके विराधक हैं, अपने दोषोंकी आलोचना नहीं करते, दूसरोंको दोष लगाते हैं, जो मिथ्यादृष्टि पञ्चाग्नि तप तपते हैं, मौन छोड़कर आहार करते हैं तथा जो दुर्भावना, अपवित्रता, सूतक आदिसे एवं पुष्पवती स्त्रीके स्पर्शसे युक्त तथा ([1]विपरीत कुलोंका मिलना है लक्षण जिसका ऐसे) जातिसङ्कर आदि दोषों सहित होते हुए भी दान देते हैं और जो कुपात्रोंको दान देते हैं, वे सब जीव मरकर कुमनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं ।

नोट :—जम्बूद्वीप पण्णत्ती सर्ग १० गाथा ५९-७१ में भी यही विषय द्रष्टव्य है ।

कुमानुषोंका वर्णन—

गब्भादो ते मणुवा, जुगलं जुगला सुहेण णिस्सरिया ।
तिरिया समुच्चिदेहिं, दिणेहिं धारंति तारुण्णा ॥२५५२॥

अर्थ :—वे मनुष्य और तिर्यंच युगल-युगलरूपमें गर्भसे सुखपूर्वक निकलकर अर्थात् जन्म लेकर समुचित दिनोंमें यौवन धारण करते हैं ॥२५५२॥

बे[2]-धणु-सहस्स-तुंगा, मंद-कसाया पियंगु-सामलया ।
सव्वे ते पल्लाऊ, कुभोग-भूमीए चेट्ठंति ॥२५५३॥

---

१. त्रिलोकसार हिन्दी, पं० टोडरमलजी पृ० ९६२ । २. द. ब. क. ज. म. उ. बं धणुसहस्स ।

अर्थ :—वे सब कुमानुष दो हजार (२०००) धनुष ऊँचे होते हैं, मन्दकषायी, प्रियंगु सदृश श्यामल और एक पल्यप्रमाण आयुसे युक्त होकर कुभोगभूमिमें स्थित रहते हैं ।।२५५३।।

तब्भूमि - जोग्ग - भोगं, भोत्तूणं आउसस्स अवसाणे ।
काल - वसं संपत्ता, जायंते भवण - तिदयम्मि ।।२५५४।।

अर्थ :—उस भूमिके योग्य भोगोंको भोगकर वे आयुके अन्तमें मरणको प्राप्त हो भवन-त्रिकदेवोंमें उत्पन्न होते हैं ।।२५५४।।

सम्मद्दंसण - रयणं, गहियं जेहिं णरेहि तिरिएहिं ।
दीवेसु चउ - विहेसुं, सोहम्म - दुगम्मि जायंते ।।२५५५।।

अर्थ :—इन चार (प्रकारके) द्वीपोंमें जिन मनुष्यों एवं तिर्यंचोंने सम्यग्दर्शनरूप रत्न ग्रहण कर लिया है वे सौधर्मयुगलमें उत्पन्न होते हैं ।।२५५५।।

लवणसमुद्रस्थ मत्स्यादिकोंकी अवगाहना—

णव - जोयण - दीहत्ता, तदद्ध-वासा तदद्ध - बहलत्ता ।
तेसु णई - मुह - मच्छा, पत्तेक्कं होंति पउरयरा[1] ।।२५५६।।

९ । ९/२ । ९/४ ।

अर्थ :—लवणसमुद्रमें नदी-मुखके समीप रहनेवाले मत्स्योंमें प्रत्येककी लम्बाई नौ (९) योजन, विस्तार साढ़े चार (४½) योजन और मोटाई सवा दो (२¼) योजन प्रमाण है ।।२५५६।।

लवणोवहि-बहु-मज्झे, मच्छाणं दीह - वास-बहलाणि ।
सरि - मुह - मच्छाहिंतो, हवंति दुगुण - प्पमाणाणि ।।२५५७।।

अर्थ :—लवणसमुद्रके बहु-मध्य-भागमें मत्स्योंकी लम्बाई, विस्तार और बाहल्य नदी-मुख-मत्स्योंकी अपेक्षा दुगुने प्रमाणसे संयुक्त है । अर्थात् लम्बाई १८ योजन, विस्तार ९ योजन और मोटाई ४½ योजन प्रमाण है ।।२५५७।।

सेसेसुं ठाणेसुं बहु - विह-उग्गाह[2]-णिण्णिदा मच्छा ।
मयर[3] - सिसुमार - कच्छव-मंडूक - प्पहुदिणो अण्णे[4] ।।२५५८।।

---

[1] द. ब. क. ज. य. उ. पउरघरा । [2] ब. उग्ग । [3] द. ब. क. ज. य. उ. मयरमं । [4] ब. क. ज. य उ. अण्णो ।

अर्थ :—शेष स्थानोंमें बहुत प्रकारकी अवगाहनासे अन्वित मत्स्य, मकर, शिशुमार, कछवा और मेंढक आदि अन्य जल-जन्तु होते हैं ।।२५५८।।

लवणसमुद्रकी जगती एवं उसकी बाह्य-परिधिके प्रमाणका निरूपण—

लवणजलधिस्स जगदी, सारिच्छा जंबुदीव-जगदीए ।
अब्भंतर सिलवट्टं, बाहिर - भागम्मि होदि वणं ।।२५५९।।

भू १२ । म ८ । मु ४ । उ ८ ।

अर्थ :—लवणसमुद्रकी जगती जम्बूद्वीपकी जगतीके सदृश है । अर्थात् जम्बूद्वीपकी जगतीके सदृश इस जगतीका भूमि विस्तार १२ योजन, मध्य विस्तार ८ योजन, शिखर (मुख) विस्तार ४ योजन और ऊँचाई आठ योजन प्रमाण है । इस जगतीके अभ्यन्तरभागमें शिलापट्ट और बाह्यभागमें वन हैं ।।२५५९।।

पण्णारस - लक्खाइं, इगिसीदि-सहस्स-जोयणाणि तहा ।
उणदाल-जुदेक्क-सयं, बाहिर-परिधी समुद्द - जगदीए ।।२५६०।।

१५८११३९ ।

अर्थ :—इस समुद्र-जगतीकी बाह्य परिधिका प्रमाण पन्द्रहलाख इक्यासी हजार एक सौ उनताली (१५८११३९) योजन है ।।२५६०।।

विशेषार्थ :—लवणसमुद्रका बाह्य सूची व्यास ५००००० योजन प्रमाण है । गाथा ९ के नियमानुसार इसकी परिधिका प्रमाण परिधि=√५ला० × ५ला० × १०=१५८११३८ योजन प्राप्त होते है और $\frac{२१२४९५१}{३१६२२७६}$ योजन अवशेष बचते हैं जो आधेसे अधिक हैं अत: उसका एक अंक ग्रहण कर ३८ के स्थान पर ३९ कहे गए हैं ।

वलयाकार क्षेत्रका सूक्ष्म क्षेत्रफल निकालनेकी विधि—

दुगुणि-च्चिय सूचीए, इच्छिय-वलयाण[1] दुगुण-वासाणि ।
सोधिय अवसेस - कदिं, वासद्ध - कदीहि गुणिदूणं ।।२५६१।।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. वलयाणि ।

गुणिदूण दसेहि तदो, इच्छिय-वलयाण होदि करणि-फलं ।
जं ताण वग्ग - मूलं, सुहुमफलं तं पि णादव्वं ।।२५६२।।

अर्थ :—दुगुनी सूचीमेंसे इच्छित गोलक्षेत्रोंके दुगुने विस्तारको घटाकर जो शेष रहे उसके वर्गको अर्ध-विस्तारके वर्गसे गुणा करके उसे पुनः दससे गुणा करनेपर जो राशि प्राप्त हो वह इच्छित गोलक्षेत्रका वर्गफल प्राप्त होता है और उस वर्ग-राशिका वर्गमूल निकालनेपर जो लब्ध प्राप्त हो तत्प्रमाण इच्छित वलयाकार क्षेत्रका सूक्ष्म-क्षेत्रफल जानना चाहिए ।।२५६१-२५६२।।

लवणसमुद्रके सूक्ष्मक्षेत्रफलका प्रमाण—

गयणेक्क-छ-णव-पंच-छ-छ-तिय[1]-सत्त-णवय - अट्ठेक्का ।
जोयणया अंक - कमे, खेत्तफलं लवणजलहिस्स ।।२५६३।।

१८९७३६६५९६१०[2] ।

अर्थ :—शून्य, एक, छह, नौ, पाँच, छह, छह, तीन, सात, नौ, आठ और एक इस अंक-क्रमसे जो (१८९७३६६५९६१०) संख्या निर्मित हो उतने योजन प्रमाण लवणसमुद्रका सूक्ष्म-क्षेत्रफल है ।।२५६३।।

विशेषार्थ :—लवणसमुद्रकी बाह्य सूची ५ लाख योजन और व्यास २ लाख योजन है, अतः उपर्युक्त नियमानुसार उसका सूक्ष्म-क्षेत्रफल इसप्रकार होगा—

$$\sqrt{[(५००००० \times २)-(२००००० \times २)]^२ \times (\frac{२०००००}{२})^२ \times १०} = १८९७३६६५९६१०$$

योजन सूक्ष्मक्षेत्रफल प्राप्त हुआ तथा $\frac{११४१०३२३१५}{१८९७३६६५९६१}$ योजन अवशेष रहे जो छोड़ दिए गए हैं ।

जम्बूद्वीप एवं लवणसमुद्रके सम्मिलित क्षेत्रफलका प्रमाण—

अंबर-छस्सत्त-त्तिय-पण-ति-दु-चउ-छस्सत्त-णवय-एक्काइं ।
खेत्तफलं मिलिदाणं, जंबूदीवस्स लवणजलहिस्स ।।२५६४।।

१९७६४२३५३७६० ।

---

१. द. ब. उ. छणणवपंचछतिय । २. द. ब. उ. १८९७३६६५९९६१० ।

अर्थ :—शून्य, छह, सात, तीन, पाँच, तीन, दो, चार, छह, सात, नौ और एक इस अंक-क्रमसे जो संख्या निर्मित हो उतने (१९७६४२३५३७६०) योजन प्रमाण जम्बूद्वीप एवं लवण-समुद्रका सम्मिलित क्षेत्रफल है ।।२५६४।।

विशेषार्थ :—इसी अधिकारमें गाथा ५९ से ६६ पर्यन्त जम्बूद्वीपका जो क्षेत्रफल कहा गया है उसमेंसे मात्र ७९०५६९४१५० योजन ग्रहण कर उसमें लवणसमुद्रका क्षेत्रफल मिला देनेपर दोनोंके सम्मिलित क्षेत्रफलका प्रमाण (७९०५६९४१५०+१८९७३६६५९६१०) = १९७६४२३५३७६० योजन प्राप्त होता है ।

जम्बूद्वीप प्रमाण खण्डोंके निकालनेका विधान—

बाहिर - सूई - वग्गो, अब्भंतर - सूइ-वग्ग-परिहीणो ।
लक्खस्स [1]कदीहि हिदो, जंबूदीव - प्पमाणया खंडा ।।२५६५।।

अर्थ :—बाह्य सूचीके वर्गमेंसे अभ्यन्तर सूचीके वर्गको कम करनेपर जो शेष रहे, उसमें एक लाखके वर्गका भाग देनेपर लब्ध संख्याप्रमाण जम्बूद्वीपके समान खण्ड होते हैं ।।२५६५।।

लवणसमुद्रके जम्बूद्वीप प्रमाण खण्डोंका निरूपण—

चउवीस जलहि - खंडा, जंबूदीव - प्पमाणदो होंति ।
एवं लवणसमुद्दो, वास - समासेण णिद्दिट्ठो ।।२५६६।।

एवं लवणसमुद्दं गदं ।।३।।

अर्थ :—जम्बूद्वीपके प्रमाण लवणसमुद्रके चौबीस खण्ड होते हैं । इसप्रकार संक्षेपमें लवणसमुद्रका विस्तार यहाँ बतलाया गया है ।।२५६६।।

विशेषार्थ :—लवणसमुद्रकी बाह्यसूची ५ लाख योजन और अभ्यन्तर सूची १ लाख योजन है । गाथा २५६५ के नियमानुसार उसके जम्बूद्वीपप्रमाण खण्ड इस प्रकार होंगे— ($५०००००^२ - १०००००^२$) ÷ $१०००००^२$ = २४ खण्ड । अर्थात् लवणसमुद्रके जम्बूद्वीप सदृश २४ टुकड़े हो सकते है ।

इसप्रकार लवणसमुद्रका वर्णन समाप्त हुआ ।।३।।

---

१ द. ब क. ज. य. उ. कदिम्हि ।

❀ धातकीखण्ड ❀

धादइसंडो दीवो, परिवेढदि[1] लवणजलणिहिं सयलं ।
चउलक्ख - जोयणाइं, वित्थिण्णो चक्कवालेणं ।।२५६७।।

४००००० ।

अर्थ :—धातकीखण्डद्वीप सम्पूर्ण लवणसमुद्रको वेष्टित करता है । मण्डलाकार स्थित यह द्वीप चार लाख (४०००००) योजन प्रमाण विस्तार युक्त है ।।२५६७।।

सोलह अन्तराधिकारोंके नाम—

जगदी - विण्णासाइं, भरहखिदी तम्मि कालभेदं च ।
हिमगिरि - हेमवदा महहिमवं हरिवरिस - णिसहद्दी ।।२५६८।।

विजओ विदेहणामो, णीलगिरी रम्मवरिस-रुम्मिगिरी ।
हेरण्णवदो विजओ, सिहरी एरावदो त्ति वरिसो य ।।२५६९।।

एवं सोलस - भेदा, धादइसंडस्स अंतरहियारा ।
एण्हि[2] ताण सरूवं, वोच्छामो आणुपुव्वीए ।।२५७०।।

अर्थ :—जगती, विन्यास, भरतक्षेत्र, उसमें कालभेद, हिमवान् पर्वत, हैमवतक्षेत्र, महाहिमवान् पर्वत, हरिवर्षक्षेत्र, निषधपर्वत, विदेहक्षेत्र, नीलपर्वत, रम्यकक्षेत्र, रुक्मिपर्वत, हैरण्यवतक्षेत्र, शिखरीपर्वत और ऐरावतक्षेत्र, इसप्रकार धातकीखण्डद्वीपके वर्णनमें ये सोलह भेदरूप अन्तराधिकार हैं । अब अनुक्रमसे इनके स्वरूपका कथन करते हैं ।।२५६८-२५७०।।

धातकीखण्ड द्वीपकी जगती—

तद्दीवं परिवेढदि, समंतदो [3]दिव्व - रयणमय - जगदी ।
जंबूदीव - पवण्णिद - जगदीए सरिस - वण्णणया ।।२५७१।।

। जगदी समत्ता ।

---

१. द. ब. क. ज. उ. परिवेदहि । २. द. ब. क. ज. य. उ. एण्हं । ३. द. ब. क. ज. य. उ.दीव ।

अर्थ :—उस धातकीखण्डद्वीपको चारों ओरसे दिव्य रत्नमय जगती वेष्टित करती है। इस जगतीका वर्णन जम्बूद्वीपमें वर्णित जगतीके ही समान है ॥२५७१॥

इष्वाकार पर्वतोंका निरूपण—

दक्खिण - उत्तरभागे, इसुगारा दक्खिणुत्तरायामा ।
एक्केक्को होदि गिरी, धादइसंडं [1]पविभजंतो ॥२५७२॥

अर्थ :—धातकीखण्डद्वीपके दक्षिण और उत्तरभागमें इस द्वीपको विभाजित करता हुआ दक्षिण-उत्तर लम्बा एक-एक इष्वाकार पर्वत है ॥२५७२॥

णिसह - समाणुच्छेहा[2], संलग्गा लवण-काल-जलहीणं ।
अब्भंतरम्मि बाहिं, [3]अंकमुहा ते खुरप्प - संठाणा ॥२५७३॥

अर्थ :—लवण और कालोद समुद्रोंसे संलग्न वे दोनों पर्वत निषध पर्वतके समान ऊँचे तथा अभ्यन्तरभागमें अंकमुख एवं बाह्यभागमें खुरपा (क्षुरप्र) के आकारवाले हैं ॥२५७३॥

जोयण - सहस्समेक्कं, रुंदा सव्वत्थ ताण पत्तेक्कं ।
जोयण - सयमवगाढा, कणयमया ते विराजंति ॥२५७४॥

अर्थ :—उन पर्वतोंमेंसे प्रत्येकका विस्तार सर्वत्र एक हजार योजनप्रमाण है। एकसौ योजन प्रमाण अवगाह युक्त वे स्वर्णमय पर्वत अत्यन्त शोभावाले हैं ॥२५७४॥

एक्केक्का तड - वेदी, तेसुं चेट्ठेदि दोसु पासेसुं ।
पंच-सय-दंड-वासा, धुव्वंत-धया दु - कोस[4] उच्छेहा ॥२५७५॥

अर्थ :—उन पर्वतोंके दोनों पार्श्वभागोंमें पाँचसौ धनुष प्रमाण विस्तार सहित, दो कोस ऊँची और फहराती हुई ध्वजाओंसे संयुक्त एक-एक तटवेदी है ॥२५७५॥

---

१. द. ब. क. ज. पविभजंतं । अ. य. पविभजंति । २. द. ब. उ. माणुच्छेदो, क. माणुच्छेहो । ३. ज. य. अंतमुहा, ब. उ. अंकुमुहा । ४. ब. दुक्कोस ।

ताणं दो - पासेसुं, वणसंडा वेदि - तोरणेहि जुदा ।
पोक्खरणी - वावोहिं, जिणिंद - पासाद - रमणिज्जा ।।२५७६।।

अर्थ :—उन वेदियोंके दोनों पार्श्वभागोंमें वेदी, तोरण, पुष्करिणी एवं वापिकाओंसे युक्त और जिनेन्द्र-प्रासादोंसे रमणीय वनखण्ड हैं ।।२५७६।।

वणसंडेसुं दिव्वा, पासादा विविह - रयण - णियरमया ।
सुर-णर-मिहुण-सणाहा, तड - वेदी - तोरणेहिं जुदा ।।२५७७।।

अर्थ :—इन वनखण्डोंमें देव एवं मनुष्योंके युगलों सहित, तटवेदी एवं तोरणोंसे युक्त और विविध प्रकारके रत्न-समूहोंसे निर्मित दिव्य प्रासाद हैं ।।२५७७।।

उवरिं इसुगाराणं, समंतदो हवदि दिव्व-तड-वेदी ।
वण - वणवेदी पुव्वं[1], पयार - वित्थार - परिपुण्णा ।।२५७८।।

अर्थ :—इष्वाकार पर्वतोंके ऊपर चारों ओर पूर्वोक्त प्रकार विस्तारसे परिपूर्ण दिव्य तट-वेदी, वन और वन-वेदी स्थित हैं ।।२५७८।।

चत्तारो चत्तारो, पत्तेक्कं होंति ताण वर - कूडा ।
जिण - भवणमादि - कूडे, सेसेसुं वेंतर - पुराणि ।।२५७९।।

अर्थ :—उनमेंसे प्रत्येक पर्वतपर चार-चार उत्तम कूट हैं । प्रथम कूटपर जिनभवन हैं और शेष कूटोंपर व्यन्तरोंके पुर हैं ।।२५७९।।

धातकीखण्डस्थ जिनभवन एवं व्यन्तरप्रासादोंका सादृश्य—

तद्दीवे जिण - भवणं, वेंतर - देवाण दिव्व - पासादा ।
णिसह-पवण्णिद-जिण-भवण - वेंतरावास - सारिच्छा ।।२५८०।।

अर्थ :—उस द्वीपमें जिनभवन और व्यन्तरदेवोंके दिव्य प्रासाद निषधपर्वतके वर्णनमें निर्दिष्ट जिन-भवनों और व्यन्तरावासोंके सदृश हैं ।।२५८०।।

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. पुव्वापवार ।

घातकीखण्डमें मेरु-पर्वतोंका विन्यास—

दोण्हं इसुगाराणं, विच्चाले होंति ते दुवे विजया।
चक्कद्ध - णिभायारा, एक्केक्का तेसु मेरुगिरी ॥२५८१॥

अर्थ :—दोनों इष्वाकार पर्वतोंके मध्यमें वे दो क्षेत्र हैं। अर्धचक्रके आकार सदृश उन दोनों क्षेत्रोंमें एक-एक मेरु पर्वत है ॥२५८१॥

पर्वत-तालाब आदिका प्रमाण—

सेल-सरोवर-सरिया, विजया कुंडा य जेत्तिया होंति।
जंबूदीवे तेच्चिय, दुगुण - कदा धादईसंडे ॥२५८२॥

अर्थ :—जम्बूद्वीपमें जितने पर्वत, तालाब, नदियाँ, क्षेत्र और कुण्ड हैं उनसे दूने घातकीखण्डमें हैं ॥२५८२॥

इसुगार - गिरिवाणं, विच्चालेसुं हवंति ते सव्वे।
णाणा - विचित्त - वण्णा, ससालिणो धादईसंडे ॥२५८३॥

अर्थ :—इष्वाकार पर्वतोंके अन्तरालमें नानाप्रकारके विचित्र वर्णवाले एवं शोभासे युक्त वे सब पर्वतादि धातकीखण्डमें हैं ॥२५८३॥

दोनों द्वीपोंमें विजयादिकोंका सादृश—

विजया विजयाण तहा, विजयड्ढाणं हवंति विजयड्ढा।
मेरुगिरीणं मेरू, कुल - गिरिणो कुल - गिरीणं च ॥२५८४॥

णाभिगिरीणं[1] णाभी, सरिया सरियाण दोसु दीवेसुं।
पणिधिगदा अवगाढुच्छेह - सरिच्छा[2] विणा मेरुं ॥२५८५॥

अर्थ :—दोनों द्वीपोंमें प्रणिधिगत क्षेत्र क्षेत्रोंके सदृश, विजयार्ध विजयार्धोंके सदृश, मेरु-पर्वत मेरुपर्वतोंके सदृश, कुलपर्वत कुलपर्वतोंके सदृश, नाभिगिरि नाभिगिरियोंके सदृश और नदियाँ नदियोंके सदृश हैं। इनमेंसे मेरु-पर्वतके अतिरिक्त शेष सबका अवगाह एवं ऊँचाई सदृश है ॥२५८४-२५८५॥

---

१ द. ब. क. ज. य. उ. णाभिगिरी णाभिगिरी सरिस सरियासयाणु। २. ब. सारिच्छा।

विजयार्ध पर्वतादिकोंका विस्तार—

जंबूदीव - पवण्णिद - रुंदाहितो य दुगुण - रुंदा ते ।
पत्तेक्कं वेयड्ढं, पहुदि - णगाणं विणा मेरुं ।।२५८६।।

अर्थ :—विजयार्ध आदिक पर्वतोंमेंसे मेरुपर्वतके अतिरिक्त शेष प्रत्येक जम्बूद्वीपमें बतलाये हुए विस्तारकी अपेक्षा दुगुने विस्तारवाले हैं ।।२५८६।।

मतान्तरसे दोनों द्वीपोंके पर्वतादिकोंके अवगाहादिकी सदृशता—

मोत्तूणं मेरुगिरिं, सव्व - णगा कुंड - पहुदि दीव-दुगे ।
अवगाढ - वास - पहुदी, केई इच्छंति सारिच्छा ।।२५८७।।

पाठान्तरम् ।

अर्थ :—मेरुपर्वतके अतिरिक्त शेष सब पर्वत और कुण्ड आदि तथा उनके अवगाह एवं विस्तारादि दोनों द्वीपोंमें समान हैं, ऐसा कितने ही आचार्योंका अभिप्राय है ।।२५८७।।

पाठान्तर

बारह कुलपर्वत और चार विजयार्धोंकी स्थिति एवं आकार—

मूलम्मि उवरिभागे, बारस-कुल-पव्वया सरिस - रुंदा ।
उभयंतेहिं लग्गा, लवणोवहि - कालजलहीणं ।।२५८८।।

अर्थ :—मूल एवं उपरिमभागमें समान विस्तारवाले बारह कुलपर्वत अपने दोनों अन्तिम भागोंसे लवणोदधि और कालोदधिसे संलग्न हैं ।।२५८८।।

दो दो भरहेरावद-वसुमइ-बहु-मज्झ-दीह[1]-विजयड्ढा ।
दो पासेसुं लग्गा, लवणोवहि - कालजलहीणं ।।२५८९।।

अर्थ :—भरत एवं ऐरावत क्षेत्रोंके बहुमध्यभागमें स्थित दो-दो दीर्घ विजयार्धपर्वत दोनों पार्श्वभागोंमें लवणोदधि और कालोदधिसे संलग्न हैं ।।२५८९।।

---

१. द. ब दीव ।

ते बारस कुलसेला, चत्तारो ते य दीह-विजयड्ढा।
अब्भंतरम्मि बाहिं, अंकमुहा खुरप्प - संठाणा ॥२५९०॥

अर्थ :—वे बारह कुलपर्वत और चारों ही दीर्घ विजयार्ध अभ्यन्तर एवं बाह्यभागमें क्रमशः अंकमुख और खुरपा (क्षुरप्र) जैसे आकारवाले हैं ॥२५९०॥

विजयादिकोंके नाम—

विजयादीणं णामा, जंबूदीवम्मि वण्णिदा विविहा।
वज्जिय[1] जंबू - सम्मलि - णामाइं एत्थ वत्तव्वा ॥२५९१॥

अर्थ :—जम्बू और शाल्मलीवृक्षके नामोंको छोड़कर शेष जो क्षेत्रादिकोंके विविध प्रकारके नाम जम्बूद्वीपमें बतलाये गये हैं, उन्हें ही यहाँ भी कहना चाहिए ॥२५९१॥

दोनों भरत और दोनों ऐरावत क्षेत्रोंकी स्थिति—

दो - पासेसुं दक्खिण-इसुगार-गिरिस्स दो भरहखेत्ता।
उत्तर - इसुगारस्स य, हवंति एरावदा[2] दोण्णि ॥२५९२॥

अर्थ :—दक्षिण इष्वाकार पर्वतके दोनों पार्श्वभागोंमें दो भरतक्षेत्र और उत्तर इष्वाकार-पर्वतके दोनों पार्श्वभागोंमें दो ऐरावतक्षेत्र हैं ॥२५९२॥

विजयोंका आकार—

दोण्णं इसुगाराणं, बारस - कुल - पव्वयाण विच्चाले।
अर[3] - विवरेहिं सरिच्छा, विजया सव्वे वि धादईसंडे ॥२५९३॥

अर्थ :—धातकीखण्डद्वीपमें दोनों इष्वाकार और बारह कुलपर्वतोंके अन्तरालमें स्थित सब क्षेत्र अर-विवर अर्थात् पहिएके अरोंके मध्यमें रहनेवाले छेदोंके सदृश हैं ॥२५९३॥

अंकायारा विजया, भागे अब्भंतरम्मि ते सव्वे।
सत्ति - मुहं पिव बाहिं, सयडुद्धि - समा य पस्सभुजा ॥२५९४॥

अर्थ :—वे सब क्षेत्र अभ्यन्तरभागमें अंकाकार और बाह्यमें शक्तिमुख हैं। इनकी पार्श्व-भुजाएँ गाड़ीकी उद्धि (गाड़ीके पहिये) के समान हैं ॥२५९४॥
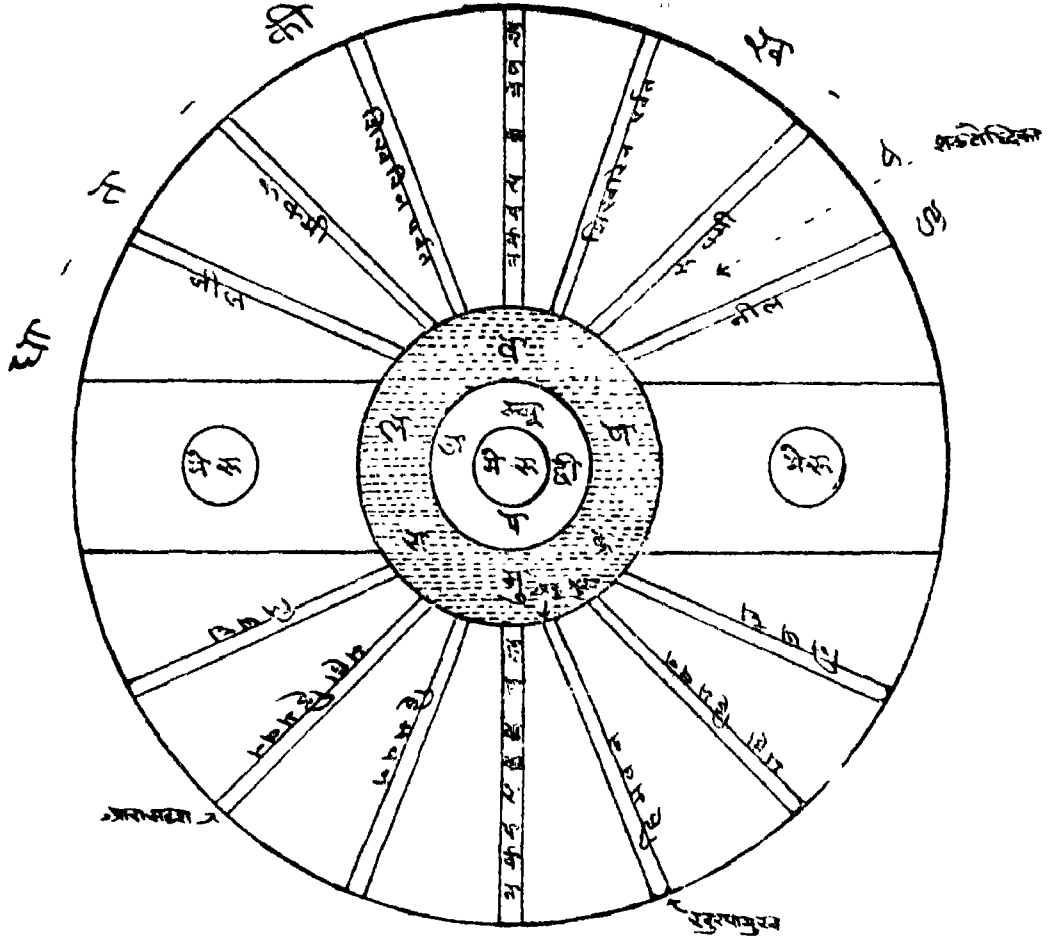
---

१ ब. उ. वज्जिहावज्जिय। २. द. ब. उ एरावदो। ३. द. अरविवबेहि, ब. अवरविवरेहि।

अब्भंतरम्मि भागे, मज्झिम - भागम्मि बाहिरे भागे ।
विजयाणं विक्खंभं, धादइसंडे णिरूवेमो ।।२५६५।।

अर्थ :— धातकीखण्डद्वीप स्थित क्षेत्रोंके अभ्यन्तर मध्यम एवं बाह्यभागोंमें विद्यमान (पर्वतोंके) विष्कम्भका निरूपण करता हूँ ।।२५६५।।

कुल-पर्वतोंका विस्तार—

दु - सहस्स - जोयणाणि, पंचुत्तर-सय-जुदाणि पंचंसा ।
उणवीस - हिदा हंदा, हिमवंत - गिरिस्स णादव्वं ।।२५६६।।

२१०५ । $\frac{५}{१९}$ ।

अर्थ :—दो हजार एकसौ पांच योजन और उन्नीससे भाजित पांच भाग (२१०५$\frac{५}{१९}$ योजन) प्रमाण हिमवान् पर्वतका विस्तार समझना चाहिए ।।२५९६।।

महहिमवंतं रुंदं, चउ¹ - हद - हिमवंत-रुंद-परिमाणं ।
णिसहस्स होदि वासो, महहिमवंतस्स चउगुणो वासो ।।२५९७।।

८४२१ । $\frac{१}{१९}$ । ३३६८४ । $\frac{४}{१९}$ ।

अर्थ :—महाहिमवान् पर्वतका विस्तार-प्रमाण हिमवान् पर्वतके विस्तारसे चौगुना अर्थात् ८४२१$\frac{१}{१९}$ योजन है और निषधपर्वतका विस्तार महाहिमवान्पर्वतके विस्तारसे चौगुना अर्थात् ३३६८४$\frac{४}{१९}$ योजन है ।।२५९७।।

एदाणं सेलाणं, विक्खंभो मेलिऊण चउ - गुणिदो ।
सव्वाण कुलगिरीणं, रुंद - समासो पुढो होदि ।।२५९८।।

अर्थ :—इन तीनों पर्वतोंके विस्तारको मिलाकर चौगुना करनेपर [(२१०५$\frac{५}{१९}$ + ८४२१$\frac{१}{१९}$ + ३३६८४$\frac{४}{१९}$) × ४ = १७६८४२$\frac{२}{१९}$ योजन] सब कुलपर्वतोंके विस्तारका संकलन होता है ।।२५९८।।

इष्वाकार पर्वतोंका विस्तार एवं पर्वतरुद्ध क्षेत्रका प्रमाण—

दोण्णं इसुगाराणं, विक्खंभो होदि दो सहस्साणि ।
तस्सिं मिलिदे धादइसंडे गिरि - रुद्ध - खिदिमाणं ।।२५९९।।

२००० ।

अर्थ :—दोनों इष्वाकार पर्वतोंका विस्तार दो हजार (२०००) योजन प्रमाण है । कुलपर्वतोंके पूर्वकथित विस्तारप्रमाणमें इसको मिला देनेपर घातकीखण्डद्वीपमें सम्पूर्ण पर्वतरुद्ध क्षेत्रका प्रमाण प्राप्त होता है ।।२५९९।।

---

१. द. ब. उ. य. चउदह ।

धातकीखण्डमें पर्वतरुद्ध क्षेत्रका क्षेत्रफल—

दुग - चउ - अट्ठट्ठाइं, सत्तेक्कं जोयणाणि अंक - कमे ।
उणवीस - हिदा दु - कला, माणं गिरिरुद्ध - वसुहाए ॥२६००॥

१७८८४२ । $\frac{२}{१९}$ ।

अर्थ :—दो, चार, आठ, आठ, सात और एक, इस अंक क्रमसे जो संख्या निर्मित हो उतने योजन और उन्नीससे भाजित दो भाग अधिक (१७६८४२ $\frac{२}{१९}$ + २००० = १७८८४२ $\frac{२}{१९}$ योजन) धातकीखण्डमें पर्वतरुद्ध क्षेत्रका प्रमाण है ॥२६००॥

आदिम, मध्यम और बाह्य सूची निकालनेका विधान—

लवणादीणं रुंदं, दुग-तिग-चउ-संगुणं ति - लक्खूणं ।
कमसो आदिम - मज्झिम - बाहिर - सूई हुवे ताणं ॥२६०१॥

अर्थ :—लवणसमुद्रादिकके विस्तारको दो, तीन और चारसे गुणाकर प्राप्त गुणनफलमेंसे तीन लाख कम करनेपर क्रमशः उनकी आदि, मध्य और अन्तिम सूचीका प्रमाण प्राप्त होता है ॥२६०१॥

विशेषार्थ :—लवणसमुद्रादिकमेंसे जिस द्वीप या समुद्रका सूचीव्यास ज्ञात करना हो उसके विस्तार (वलय व्यास या रुन्द्रव्यास) को दो से गुणितकर लब्धराशिमेंसे तीन लाख घटा देनेपर अभ्यन्तर सूचीव्यासका प्रमाण प्राप्त होता है । विस्तार प्रमाणको तीनसे गुणितकर, तीन लाख घटा देनेपर मध्यम सूची व्यासका प्रमाण प्राप्त होता है और विस्तारको चारसे गुणितकर तीन लाख घटा देनेपर बाह्य सूचीव्यासका प्रमाण प्राप्त होता है । यथा—

चार लाख विस्तारवाले धातकीखण्डके तीनों सूची व्यासोंका प्रमाण—

(४ लाख × २ = ८ लाख)—३ लाख = ५ लाख धातकीखण्डका अभ्य० सूची व्यास ।

(४ लाख × ३ = १२ लाख)—३ लाख = ९ लाख धातकी खण्डका मध्यम सूची व्यास ।

(४ लाख × ४ = १६ लाख)—३ लाख = १३ लाख धातकी खण्डका बाह्य सूची व्यास ।

विवक्षित सूचीकी परिधि प्राप्त करनेका विधान—

आदिम-मज्झिम-बाहिर-सूई-वग्गा दसेहि संगुणिदा ।
तस्स य मूला इच्छिय - सूईए होदि सा परिही ॥२६०२॥

अर्थ :—आदि, मध्य और बाह्य-सूचीके वर्गको दससे गुणा करके उसका वर्गमूल निकालनेपर इच्छित सूचीकी परिधिका प्रमाण आता है ॥२६०२॥

धातकीखण्डकी अभ्यन्तर परिधिका प्रमाण—

पण्णारस - लक्खाइं, इगिसीदि-सहस्स-जोयणेक्क-सयं ।
उणदाल - जुदा धादइसंडे अब्भंतरे परिही ॥२६०३॥

१५८११३९ ।

अर्थ :—धातकीखण्डद्वीपकी अभ्यन्तर परिधिका प्रमाण पन्द्रह लाख इक्यासी हजार एक सौ उनतालीस (१५८११३९) योजन है ॥२६०३॥

विशेषार्थ :—अभ्यन्तर परिधिका वास्तविक प्रमाण = $\sqrt{(\text{५ लाख})^{2} \times \text{१०}}$ = १५८११३८ योजन, ३ कोस, ६४० धनुष, १ रिक्कू, १ वितस्त और कुछ कम ५ अंगुल प्राप्त होता है । किन्तु गाथामें यह प्रमाण मात्र १५८११३९ योजन कहा है ।

मध्यम परिधिका प्रमाण—

अट्ठावीसं लक्खा, छादाल - सहस्स - जोयणा - पण्णा[1] ।
किंचूणा णादव्वा, मज्झिम - परिही य धादईसंडे ॥२६०४॥

२८४६०५० ।

अर्थ :—धातकी खण्ड द्वीपकी मध्यम परिधिका प्रमाण अट्ठाईस लाख छयालीस हजार पचास (२८४६०५०) योजनसे कुछ कम जानना चाहिए ॥२६०४॥

---

१. द. ज. ब. पण्णासं ।

विशेषार्थ :—मध्यम परिधिका वास्तविक प्रमाण = $\sqrt{(९\ लाख)^2 \times १०}$ = २८४६०४९ योजन, ३ कोस, ११५३ धनुष एवं साधिक २० अंगुल है। इसलिए गाथामें किञ्चित् कम कहा गया है।

बाह्य परिधिका प्रमाण—

एक्क-छ्-णव-णभ-एक्का, एक्क-चउक्का कमेण अंकाणि ।
जोयणया किंचूणा, तद्दीवे बाहिरो परिही ॥२६०५॥

४११०९६१ ।

अर्थ :—धातकी खण्डद्वीपकी बाह्य-परिधिका प्रमाण एक, छह, नौ, शून्य, एक, एक और चार इस अंक क्रमसे जो संख्या बनती है उतने (४११०९६१) योजनसे कुछ कम है ॥२६०५॥

विशेषार्थ :—बाह्य परिधिका वास्तविक प्रमाण = $\sqrt{(१३०००००)^2 \times १०}$ = ४११०९६० योजन, ३ कोस, १६६५ धनुष और साधिक ३ हाथ है। इसीलिए गाथामें कुछ कम कहा गया है।

भरतादि सब क्षेत्रोंका सम्मिलित विस्तार—

आदिम-मज्झिम-बाहिर-परिहि-पमाणेसु सेल-रुद्ध-खिदिं ।
सोहिय सेसं वास - समासो सव्वाण विजयाणं ॥२६०६॥

१४०२२९६ । $\frac{१७}{१९}$ । २६६७२०७ । $\frac{१७}{१९}$ । ३९३२११८ $\frac{१७}{१९}$ ।

अर्थ :—आदि, मध्य और बाह्य परिधिके प्रमाणमेंसे पर्वतरुद्ध (भूमि) क्षेत्र कम कर देनेपर शेष प्रमाण सब क्षेत्रोंके सम्मिलित विस्तारका है ॥२६०६॥

विशेषार्थ :—गाथा २६०० में धातकी खण्डद्वीपके पर्वतरुद्ध क्षेत्रका प्रमाण १७८८४२ $\frac{२}{१९}$ योजन कहा गया है। इसे धातकी खण्डकी अभ्यन्तर, मध्य और बाह्य परिधियोंमेंसे घटा देनेपर दोनों मेरु सम्बन्धी भरत आदि चौदह क्षेत्रोंसे अवरुद्ध क्षेत्र प्राप्त होता है। यथा—

अभ्य० परिधि—१५८११३९ यो० — १७८८४२ $\frac{२}{१९}$ = १४०२२९६ $\frac{१७}{१९}$ यो० ।
मध्य परिधि —२८४६०५० यो० — १७८८४२ $\frac{२}{१९}$ = २६६७२०७ $\frac{१७}{१९}$ यो० ।
बाह्य परिधि —४११०९६१ यो० — १७८८४२ $\frac{२}{१९}$ = ३९३२११८ $\frac{१७}{१९}$ यो० ।

धातकीखण्डस्थ भरतक्षेत्रका आदि, मध्य और बाह्य विस्तार—

एक्क-चउ-सोल-संखा, चउ-गुणिदा अट्ठवीस-जुत्त-सया ।
मेलिय तिविह - समासं, हरिदे तिट्ठाण-भरह-विक्खंभा ।।२६०७।।

२१२ ।

अर्थ :—एक, चार और सोलह, इनकी चौगुनी संख्याके जोड़में एक सौ अट्ठाईस मिला देनेपर जो संख्या उत्पन्न हो उसका पर्वत-रुद्ध क्षेत्रसे रहित उपर्युक्त तीन प्रकारके परिधि प्रमाणमें भाग देनेपर क्रमशः तीनों स्थानोंमें भरतक्षेत्रका विस्तार प्रमाण निकलता है ।।२६०७।।

विशेषार्थ :—भरतक्षेत्रसे और ऐरावतक्षेत्रसे विदेह पर्यन्त क्षेत्रोंका विस्तार चौगुना है अतः भरतकी शलाका १, हैमवतकी ४ और हरिक्षेत्रकी १६ शलाकाएँ हैं । जिनका योग (१+४+१६=) २१ है । (इसीप्रकार विदेहकी ६४, रम्यककी १६, हैरण्यवतकी ४ और ऐरावतक्षेत्रकी १ शलाका है ।)

धातकीखण्डमें दो मेरु हैं अतः प्रत्येक मेरुके दोनों भागोंका ग्रहण करनेके लिए इन्हें (२१ को) ४ से गुणित करनेको कहा गया है । यथा—२१×४=८४ हुए । इनमें दो मेरु सम्बन्धी दो विदेह क्षेत्रोंकी (६४×२=) १२८ शलाकाएँ जोड़ देनेसे (८४+१२८=) २१२ शलाकाएँ पर्वत रहित परिधिका भागहार है ।

भरतक्षेत्रका अभ्यन्तर विस्तार—

१४०२२९६ $\frac{१७}{६८}$ ÷ २१२ = ६६१४ $\frac{१२१}{२१२}$ योजन ।
मध्यविस्तार—२६६७२०७ $\frac{१७}{६८}$ ÷ २१२ = १२५८१ $\frac{३१}{२१२}$ यो० ।
बाह्य विस्तार—३९३२११८ $\frac{१७}{६८}$ ÷ २१२ = १८५४७ $\frac{१५५}{२१२}$ योजन ।

भरतादिकोंके विस्तारमें हानि-वृद्धिका प्रमाण—

भरहादी - विजयाणं, बाहिर[1]-रुंदम्मि आदिमं रुंदं ।
सोहिय चउ-लक्ख[2]-हिदे, खय - वड्ढी इच्छिद - पवेसे ।।२६०८।।

अर्थ :—भरतादिक क्षेत्रोंके बाह्य-विस्तारमेंसे आदिके विस्तारको कम कर शेषमें चार लाखका भाग देनेपर इच्छित स्थानमें हानि-वृद्धिका प्रमाण आता है ।।२६०८।।

---

१. द. ज. य. बाहिरकुंडम्मि, ब बाहिकुंदम्मि । २. द. ब. क. ज य. उ. लक्खाइहिदे ।

विशेषार्थ :—धातकीखण्डद्वीपका विस्तार ४००००० योजन है। इसमें स्थित भरतक्षेत्रके बाह्य-विस्तारमेंसे अभ्यन्तर विस्तार घटाकर अवशेषमें विस्तारका भाग देनेपर हानि-वृद्धिका प्रमाण प्राप्त होता है। यथा—

(१८५४७$\frac{१५५}{२१२}$ — ६६१४$\frac{१२९}{२१२}$) ÷ ४००००० = $\frac{२५२९८२२}{८४८०००००}$ यो०।

भरतक्षेत्रका अभ्यन्तर विस्तार—

छावट्ठि च सयाणि, चोद्दस - जुत्ताणि जोयणाणि कला।
उणतीस उत्तर - सयं, भरहस्सब्भंतरे वासो ॥२६०६॥

६६१४ । $\frac{१२९}{२१२}$ ।

अर्थ :—भरतक्षेत्रका अभ्यन्तर विस्तार छयासठसौ चौदह योजन और एक योजनके दोसौ बारह भागोंमेंसे एकसौ उनतीस (६६१४$\frac{१२९}{२१२}$) भाग प्रमाण है ॥२६०९॥

हैमवतादिक क्षेत्रोंका विस्तार—

हेमवदं पहुदीणं, पत्तेक्कं चउगुणो हुवे वासो।
जाव य विदेहवस्सो, तप्परदो चउगुणा हाणी ॥२६१०॥

२६४५८ । $\frac{१२}{२१२}$ । १०५८३३ । $\frac{१५१}{२१२}$ । ४२३३३४ । $\frac{२००}{२१२}$ । १०५८३३ । $\frac{१५१}{२१२}$ ।

२६४५८ । $\frac{१२}{२१२}$ । ६६१४ । $\frac{१२९}{२१२}$ ।

अर्थ :—विदेहक्षेत्र तक क्रमशः हैमवतादिक क्षेत्रोंमेंसे प्रत्येकका विस्तार उत्तरोत्तर इससे चौगुना है। इससे आगे क्रमशः चौगुनी हानि होती गई है ॥२६१०॥

भरतादि क्षेत्रका मध्यम विस्तार—

बारस-सहस्स-पणसय-इगिसीदी जोयणा य छत्तीसा।
भागा भरह - खिदिस्स य, मज्झिम-वित्थार-परिमाणं ॥२६११॥

१२५८१ । $\frac{३६}{२१२}$ । ५०३२४ । $\frac{१४४}{२१२}$ । २०१२९८ । $\frac{१५२}{२१२}$ । ८०५१९४ । $\frac{१८४}{२१२}$ ।

२०१२९८ । $\frac{१५२}{२१२}$ । ५०३२४ । $\frac{१४४}{२१२}$ । १२५८१ । $\frac{३६}{२१२}$ ।

अर्थ :—भरतक्षेत्रके मध्यम विस्तारका प्रमाण बारह हजार पाँचसौ इक्यासी योजन और छत्तीस भाग अधिक है ॥२६११॥

भरतादि क्षेत्रका बाह्य विस्तार—

अट्ठारसा सहस्सा, पंच - सया जोयणा य सगदाला ।
भागा पणवण्ण सयं, वासो भरहस्स बाहिरए ॥२६१२॥

१८५४७ । १५५/२१२ । ७४१९० । १११/२१२ । २९६७६३ । १४६/२१२ । ११८७०५४ । १९६/२१२ ।

२९६७६३ । १४६/२१२ । ७४१९० । १११/२१२ । १८५४७ । १५५/२१२ ।

अर्थ :—भरतक्षेत्रका बाह्य-विस्तार अठारह हजार पाँचसौ सैंतालीस योजन और एकसौ पचपन भागप्रमाण है ॥२६१२॥

[तालिका ४५ अगले पृष्ठ पर देखिए]

तालिका : ४५

धातकीखण्डकी परिधि एवं उसमें स्थित कुलाचलों और क्षेत्रोंका विस्तार—

क्र०	धातकी खण्डस्थ कुलाचलोंका विस्तार		धातकी खण्डकी परिधि			धातकीखण्डस्थ क्षेत्रोंका विस्तार (योजनोंमें)				
	नाम	योजन	अभ्यन्तर	मध्य	बाह्य	क्र०	नाम	अभ्यन्तर वि०	मध्य विस्तार	बाह्य वि०
१	हिमवान्	२१०५ $\frac{५}{१९}$	कुछ कम १५८११३९ योजन	कुछ कम २८४६०५० योजन	कुछ कम ४११०९६० योजन	१	भरत	६६१४ $\frac{१२९}{२१२}$	१२५८१ $\frac{३६}{२१२}$	१८५४७ $\frac{१५५}{२१२}$
२	महाहिम०	८४२१ $\frac{१}{१९}$				२	हैमवत	२६४५८ $\frac{९२}{२१२}$	५०३२४ $\frac{१४४}{२१२}$	७४१९० $\frac{१९६}{२१२}$
३	निषध	३३६८४ $\frac{४}{१९}$				३	हरि	१०५८३३ $\frac{१५६}{२१२}$	२०१२९८ $\frac{१५२}{२१२}$	२९६७६३ $\frac{१४८}{२१२}$
४	नील	३३६८४ $\frac{४}{१९}$				४	विदेह	४२३३३४ $\frac{२००}{२१२}$	८०५१९४ $\frac{१८४}{२१२}$	११८७०५४ $\frac{१६८}{२१२}$
५	रुक्मि	८४२१ $\frac{१}{१९}$				५	रम्यक	१०५८३३ $\frac{१५६}{२१२}$	२०१२९८ $\frac{१५२}{२१२}$	२९६७६३ $\frac{१४८}{२१२}$
६	शिखरिन्	२१०५ $\frac{५}{१९}$				६	हैरण्यवत	२६४५८ $\frac{९२}{२१२}$	५०३२४ $\frac{१४४}{२१२}$	७४१९० $\frac{१९६}{२१२}$
						७	ऐरावत	६६१४ $\frac{१२९}{२१२}$	१२५८१ $\frac{३६}{२१२}$	१८५४७ $\frac{१५५}{२१२}$

पद्मद्रह और पुण्डरीकद्रहसे निर्गत नदियोंका पर्वतके ऊपर गमनका प्रमाण—

धादइसंडे दीवे, खुल्लय-हिमवंत-सिहरि-मज्झ-गया ।
पउमद्दह-पुंडरीए, पुव्ववर - दिसाए एक्क एक्क णई ॥२६१३॥

अर्थ :—धातकीखण्ड द्वीपमें क्षुद्रहिमवान् और शिखरीपर्वतके मध्यगत पद्मद्रह और पुण्डरीकद्रहकी पूर्व एवं पश्चिम दिशासे एक-एक नदी निकली है ॥२६१३॥

उणवीस-सहस्साणि तिण्णि सया णवय-सहिय-जोयणया ।
गंतूण गिरिदुर्वारि, दक्खिण - उत्तर - दिसे वलइ ॥२६१४॥

१९३०९ ।

अर्थ :—प्रत्येक नदी उन्नीस हजार तीनसौ नौ (१९३०९) योजन पर्वतके ऊपर जाकर यथायोग्य दक्षिण एवं उत्तर दिशाकी ओर मुड़ जाती है ॥२६१४॥

मंदर पर्वतोंका निरूपण—

मंदर - णामो सेलो, हवेदि तस्सि विदेह - वरिसम्मि ।
किंचि विसेसो चेट्ठदि, तस्स सरूवं परूवेमो ॥२६१५॥

अर्थ :—उस द्वीपके विदेहक्षेत्रमे किञ्चित् विशेषता लिए हुए जो मन्दर नामक पर्वत स्थित है उसका स्वरूप कहता हूँ ॥२६१५॥

तद्दीवे पुव्वावर - विदेह - वस्साण होदि बहुमज्झे ।
पुव्व[1] - पवण्णिद - रूवो, एक्केक्को मंदरो[2] सेलो ॥२६१६॥

अर्थ :—उस द्वीपमें पूर्व और अपर विदेहक्षेत्रोंके बहुमध्यभागमें पूर्वोक्त स्वरूपसे संयुक्त एक-एक मन्दर पर्वत स्थित है ॥२६१६॥

मेरुपर्वतोंका अवगाह एवं ऊँचाई—

जोयण - सहस्स - गाढा, चुलसीदि-सहस्स-जोयणुच्छेहा ।
ते सेला पत्तेक्कं, वर - रयण - वियप्प - परिणामा ॥२६१७॥

१००० । ८४००० ।

---

१. द. ब. क. ज य. उ. पुव्वं वण्णिद । २. द. ब. क. ज. उ. मंदिरा ।

अर्थ :—नानाप्रकारके उत्तम रत्नोंके परिणामस्वरूप वह प्रत्येक पर्वत एक हजार (१०००) योजन प्रमाण अवगाढ (नींव) सहित चौरासी हजार (८४०००) योजन ऊँचा है ॥२६१७॥

मेरुका विस्तार—

मेरु-तलस्स य रुंदं, दस य सहस्साणि जोयणा होंति ।
चउ - णउदि - सयाइं पि य, धरणीपट्ठम्मिए रुंदा ॥२६१८॥

१०००० । ९४०० ।

अर्थ :—मेरुका विस्तार तलभागमें दस हजार (१००००) योजन और पृथिवीपृष्ठपर नौ हजार चार सौ (९४००) योजन प्रमाण है ॥२६१८॥

जोयण-सहस्समेक्कं, विक्खंभो होदि तस्स सिहरम्मि ।
भूमीअ मुहं सोहिय, उदय - हिदे भू-मुहादु हाणि-चयं ॥२६१९॥

अर्थ :—उस मेरुका विस्तार शिखरपर एक हजार योजन प्रमाण है । भूमिमेंसे मुख घटा कर शेषमें ऊँचाईका भाग देनेपर भूमिकी अपेक्षा हानि और मुखकी अपेक्षा वृद्धिका प्रमाण प्राप्त होता है ॥२६१९॥

विशेषार्थ :—नींवमें — (भूमि १००००—९४०० मुख)÷१००० यो० अवगाह=६/१० योजन हानि-चय ।

भूमिसे ऊपर—(भूमि— ९४०० — १००० मुख) ÷ ८४००० ऊँ० = १/१० योजन हानि–चय ।

तक्खय-वड्ढि-पमाणं, छद्दस-भागं सहस्स - गाढम्मि ।
भूमीदो उवरिं पि य, एक्कं दस - रूवमवहरिदं ॥२६२०॥

६/१० । १/१० ।

अर्थ :—वह क्षय-वृद्धिका प्रमाण एक हजार योजन प्रमाण अवगाहमें योजनके दस भागोंमेंसे छह भाग अर्थात् छह बटे दस (६/१०) भाग और पृथिवीके ऊपर दस रूपोंसे भाजित एक भाग (१/१० यो०) प्रमाण है ॥२६२०॥

मेरु - तलस्स य रुंदं, पंच-सया णव-सहस्स जोयणया ।
सव्वत्थं खय - वड्ढी, दसमंसं केइ इच्छंति ।।२६२१।।

९५०० । $\frac{1}{10}$ ।

पाठान्तरम् ।

अर्थ :—कितने ही आचार्य मेरुके तल-विस्तारको नौ हजार पाँचसौ (९५००) योजन प्रमाण मानकर सर्वत्र क्षय-वृद्धिका प्रमाण दसवाँ भाग ($\frac{1}{10}$) मानते हैं ।।२६२१।।

(९५०० — १०००) ÷ ८५००० = $\frac{1}{10}$ योजन ।

पाठान्तर ।

जत्थिच्छसि विक्खंभं, खुल्लय - मेरूण [1]समवविण्णाणं ।
दस - भजिदे जं लद्धं, एक्क-सहस्सेण संमिलिदं ।।२६२२।।

अर्थ :—जितने योजन नीचे जाकर क्षुद्रमेरुओंके विस्तारको जानना हो, उतने योजनोंमें दसका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उसमें एक हजार जोड़देनेपर अभीष्ट स्थानमें मेरुओंके विस्तारका प्रमाण जाना जाता है ।।२६२२।।

विशेषार्थ :—शिखरसे २१००० योजन नीचे मेरुका विस्तार (२१००० ÷ १०) + १००० = ३१०० योजन प्राप्त होता है ।

चूलिकाएँ—

जंबूदीव-पवण्णिद - मंदरगिरि - चूलियाए[2] सरिसाओ ।
दोण्णं[3] पि चूलियाओ, मंदर - सेलाण एदस्सि[4] ।।२६२३।।

अर्थ :—इस द्वीपमें दोनों मन्दर-पर्वतोंकी चूलिकाएँ जम्बूद्वीपके वर्णनमें कही हुई मन्दर-पर्वतकी चूलिका सदृश हैं ।।२६२३।।

चार वनोंका विवेचन—

पंडुग - सोमणसाणि, वणाणि णंदणय - भद्दसालाणि ।
जंबूदीव - पवण्णिद - मेरु - समाणाणि मेरूणं ।।२६२४।।

---

१. द. ब. ज. य. उ. सममदिण्णाणं । २ द. ब. क. ज. य. उ. चूलिय । ३. ब. क. उ. दोण्णि । ४. द. ब. क. ज. य. उ. एदंपि ।

अर्थ :—जम्बूद्वीपमें कहे हुए मेरुपर्वतके सदृश इन मेरुओंके भी पाण्डुक, सौमनस, नन्दन और भद्रशाल नामक चार वन हैं ॥२६२४॥

णवरि विसेसो पंडुग - वणाउ गंतूण जोयणे हेट्ठा ।
अडवीस - सहस्साणि, सोमणसं णाम वणमेत्थं[1] ॥२६२५॥

२८००० ।

अर्थ :—यहाँ विशेषता यह है कि पाण्डुकवनसे अट्ठाईस हजार (२८०००) योजन प्रमाण नीचे जाकर सौमनस नामक वन स्थित है ॥२६२५॥

सोमणसादो हेट्ठं, पणवण्ण-सहस्स - पण - सयाणि पि ।
गंतूण जोयणाइं, होदि वणं णंदणं एत्थं ॥२६२६॥

५५५०० ।

अर्थ :—इसीप्रकार सौमनसवनके नीचे पचपन हजार पाँचसौ (५५५००) योजन प्रमाण जानेपर नन्दन-वन है ॥२६२६॥

पंच - सय - जोयणाणि, गंतूणं णंदणाओ हेट्ठम्मि ।
धादइसंडे दीवे, होदि वणं भद्दसालं ति ॥२६२७॥

५०० ।

अर्थ :—धातकीखण्डद्वीपमें नन्दनवनसे पाँचसौ (५००) योजन प्रमाण नीचे जानेपर भद्रशालवन है ॥२६२७॥

एक्कं जोयण - लक्खं, सत्त-सहस्साणि अडसयाणि पि ।
उणसीदी पत्तेक्कं, पुव्वावर - दीहमेदाणं ॥२६२८॥

१०७८७९ ।

अर्थ :—इनमेंसे प्रत्येक भद्रशालवनकी पूर्वापर लम्बाई एक लाख सात हजार आठसौ उन्यासी (१०७८७९) योजन प्रमाण है ॥२६२८॥

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. वणमेत्तं ।

मंदरगिरिंद - उत्तर - दक्खिण - भागेसु भद्दसालाणं ।
जं विक्खंभ - पमाणं, उवएसो तस्स उच्छिण्णो ।।२६२९।।

अर्थ :—मन्दरपर्वतोंके उत्तर-दक्षिण भागोंमें भद्रशालवनोंका जितना विस्तार है, उसके प्रमाणका उपदेश नष्ट हो गया है ।।२६२९।।

बारस-सय - पणुवीसं, अट्ठासीदी - विहत्त - उणसीदी ।
जोयणया विक्खंभो एक्केक्के भद्दसाल - वणे ।।२६३०।।

१२२५ । $\frac{७९}{८८}$ ।

अर्थ :—प्रत्येक भद्रशालवनका विस्तार बारहसौ पच्चीस योजन और अठासीसे विभक्त उन्यासी भाग (१२२५$\frac{७९}{८८}$ योजन) प्रमाण है ।।२६३०।।

गजदन्तोंका वर्णन—

सत्त-दु-दु-छक्क - पंचत्तिय - अंकाणं कमेण जोयणया ।
अब्भंतरभागट्ठिय - गयदंताणं [1]चउण्हाणं ।।२६३१।।

३५६२२७ ।

अर्थ :—अभ्यन्तरभागमें स्थित चारों गजदन्तोंकी लम्बाई सात, दो, दो, छह, पाँच और तीन इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने (३५६२२७) योजन प्रमाण है ।।२६३१।।

णव-पण-दो णव-छप्पण, जोयणया उभय-मेरु-बाहिरए ।
चउ - गयदंत - णगाणं, दीहत्तं होदि पत्तेक्कं ।।२६३२।।

५६९२५९ ।

अर्थ :—उभय मेरुओंके बाह्यभागमें चारों गजदन्त पर्वतोंमेंसे प्रत्येक (गजदन्त) की लम्बाई नौ, पाँच, दो, नौ, छह और पाँच, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने (५६९२५९) योजन प्रमाण है ।।२६३२।।

कुरुक्षेत्रोंका धनुःपृष्ठ—

णव-जोयण-लक्खाणि, पणुवीस-सहस्स-चउ-सयाणि पि ।
छासीदी धणुपुट्ठं, दो - कुरवे धादईसंडे ।।२६३३।।

९२५४८६ ।

---

१. द. ब. चउण्णाणं ।

अर्थ :—धातकीखण्डद्वीपमें दोनों (उत्तर एवं देव) कुरुओंका धनुःपृष्ठ नौ लाख पच्चीस हजार चारसौ छयासी (९२५४८६) योजन प्रमाण है ।।२६३३।।

कुरुक्षेत्रोंकी जीवा—

दो जोयण-लक्खाणि, तेवीस - सहस्सयाणि एक्क-सयं ।
अट्ठावण्णा जीवा, कुरवे तह धादईसंडे ।।२६३४।।

२२३१५८ ।

अर्थ :– धातकीखण्डद्वीपमे दोनो (उत्तर एवं देव) कुरुओंकी जीवा दो लाख तेईस हजार एकसौ अट्ठावन (२२३१५८) योजन प्रमाण है ।।२६३४।।

वृत्तविस्तार निकालनेका विधान--

इसु-वग्गं चउ-गुणिदं, जीवा-वग्गम्मि पक्खिवेज्ज तदो ।
चउ-गुणिद-इसु - विहत्तं[1], जं लद्धं वट्ट - वासो सो ।।२६३५।।

अर्थ :—बाणके वर्गको चौगुना करके उसमे जीवाका वर्ग मिला दें । पश्चात् उसमें चौगुने बाणका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतना वृत्त (गोल) क्षेत्रका विस्तार होता है ।।२६३५।।

यथा —[{ ३६६६८०)^{2} × ४ + (२२३१५८)^{2} } ÷ (३६६६८० × ४)] = ४००६३२$\frac{३५३८८१}{३६६६८०}$ अर्थात् कुछ कम ४००६३३ योजन ।

कुरुक्षेत्रोका वृत्त विस्तार—

चउ-जोयण-लक्खाणि, छस्सय - जुत्ताणि होंति तेत्तीसं ।
दो - उत्तर - कुरवाणं, पत्तेक्कं वट्ट - विक्खंभो ।।२६३६।।

४००६३३ ।

अर्थ :—दो उत्तर (एवं दो देव) कुरुओंमेंसे प्रत्येकका वृत्त-विस्तार चार लाख छहसौ तेंतीस (४००६३३) योजन प्रमाण है ।।२६३६।।

---

१. द. ब. ज. उ. विहित्तं ।

ऋजुबाण निकालनेका विधान--

जीवा - विक्खंभाणं, वग्ग - विसेसस्स होदि जं मूलं ।
विक्खंभ - जुदं अद्धिय[1], रिजु - बाणो धादईसंडे ॥२६३७॥

अर्थ :—जीवाके वर्गको वृत्त-विस्तारके वर्गमेंसे घटाकर जो शेष रहे उसका वर्गमूल निकालें, पश्चात् उसमें वृत्त-विस्तारका प्रमाण मिलाकर आधा करनेपर धातकीखण्डद्वीपमें ऋजु-बाणका प्रमाण प्राप्त होता है ॥२६३७॥

यथा : $\frac{\sqrt{४००६३३^२ - २२३१५८^२} + ४००६३३}{२}$ = ३६६६८० यो० ।

कुरुक्षेत्रोंका ऋजुबाण—

तिय - लक्खा छासट्ठी, सहस्सया छस्सयाणि सीदी य ।
जोयणया रिजु - बाणो, णादव्वो तम्मि दीवम्मि ॥२६३८॥

३६६६८० ।

अर्थ :—उस द्वीपमें तीन लाख छयासठ हजार छहसौ अस्सी (३६६६८०) योजन प्रमाण कुरुक्षेत्रोंका ऋजुबाण जानना चाहिए ॥२६३८॥

नोट :—यहाँ प्रसंगानुसार गाथा २६३५ गाथा २६३८ के स्थानपर और गाथा २६३८ गाथा २६३५ के स्थानपर लिखी गई है ।

कुरुक्षेत्रोंके वक्रबाणका प्रमाण—

सत्त-णव-अट्ठ-सग-णव-तियाणि अंसाणि होंति बाणउदी ।
वंकेसुणो[2] पमाणं, धादइसंडम्मि दीवम्मि ॥२६३९॥

३९७८९७ । $\frac{९२}{२१२}$ ।

अर्थ :—धातकीखण्डद्वीपमें कुरुक्षेत्रके वक्रबाणका प्रमाण सात, नौ, आठ, सात, नौ और तीन इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो, उतने योजन और बानवे भाग अधिक (३९७८९७$\frac{९२}{२१२}$ योजन) है ॥२६३९॥

---

१. द. ज. य. अधिय । २. द. वक्केणोपमाणं, ब. उ. चक्केणोपमाणं, क ज. य. एवकेणो-पमाणं ।

धातकी-वृक्ष एवं उनके परिवार वृक्षोंका निरूपण—

उत्तर - देव - कुरूसु, खेत्तेसु तत्थ धादई - रुक्खा ।
चिट्ठंते गुणणामो, तेण पुढं धादईसंडो[1] ॥२६४०॥

अर्थ :—धातकीखण्डद्वीपके उत्तरकुरु और देवकुरु क्षेत्रोंमें धातकी (आँवलेके) वृक्ष स्थित हैं, इसी कारण इस द्वीपका 'धातकीखण्ड' यह सार्थक नाम है ॥२६४०॥

धादइ - तरूण ताणं, परिवार - दुमा हवंति एदस्सि ।
दीवम्मि पंच-लक्खा, सट्ठि - सहस्साणि चउ-सयासीदी ॥२६४१॥

५६०४८० ।

अर्थ :—इस द्वीपमें उन धातकी-वृक्षोंके पाँच लाख साठ हजार चारसौ अस्सी (५६०४८०) परिवारवृक्ष हैं ॥२६४१॥

पियदंसणो [2]पहासो, अहिवइदेवा वसंति तेसु दुमे ।
सम्मत्त - रयण - जुत्ता, वर - भूसण - भूसिदायारा ॥२६४२॥

अर्थ :—उन वृक्षोंपर सम्यक्त्वरूपी रत्नसे संयुक्त और उत्तम भूषणोंसे भूषित रूपको धारण करनेवाले प्रियदर्शन और प्रभास नामक दो अधिपति देव निवास करते हैं ॥२६४२॥

आदर - अणादराणं, परिवारादो हवंति एदाणं ।
दुगुणा परिवार - सुरा, पुव्वोदिद - वण्णणेहि जुदा ॥२६४३॥

अर्थ :—इन दोनों देवोंके परिवार-देव, आदर और अनादर देवोंके परिवार देवोंकी अपेक्षा दुगुने हैं, जो पूर्वोक्त वर्णनसे संयुक्त हैं ॥२६४३॥

मेरु आदिकोंके विस्तारका निरूपण—

गिरि-भद्दसाल-विजया, वक्खार-विभंगसरि-सुरारण्णा[3] ।
पुव्वावर - वित्थारा, वत्तव्वा धादईसंडे ॥२६४४॥

अर्थ :—(अब) धातकीखण्डमें गिरि (मेरुपर्वत), भद्रशालवन, विजय (क्षेत्र), वक्षार-पर्वत, विभंगानदी और देवारण्य इनका पूर्वापर विस्तार कहना चाहिए ॥२६४४॥

---

१. द. ब. क. ज. य. उ संड । २. द ज. य. प्रभासे । ३. ब. ज. य. सुरोरण्णा ।

एदेसुं पत्तेक्कं, मंदरसेलाण धरणि - पट्ठम्मि ।
चउ-णउदि - सय - पमाणा, जोयणया होदि विक्खंभो ।।२६४५।।

९४०० ।

अर्थ :—इनमेंसे प्रत्येक मेरुका विस्तार पृथिवीके पृष्ठ-भागपर चौरानबै सौ (९४००) योजन प्रमाण है ।।२६४५।।

एक्कं जोयण - लक्खं, सत्त-सहस्सा य अट्ठ-सय-जुत्ता ।
णवहत्तरिया भणिदा, विक्खंभो भद्दसालस्स ।।२६४६।।

१०७८७९ ।

अर्थ :—भद्रशालका विस्तार एक लाख सात हजार आठसौ उन्यासी (१०७८७९) योजन प्रमाण कहा गया है ।।२६४६।।

छण्णवदि-जोयण-सया, ति[1]-उत्तरा-अड-हिदा य ति-कलाओ ।
सव्वाणं [2]विजयाणं, पत्तेक्कं होदि विक्खंभो ।।२६४७।।

९६०३ । $\frac{3}{8}$ ।

अर्थ :—सब विजयों (क्षेत्रों) में से प्रत्येक क्षेत्रका विस्तार छ्यानबैसौ तीन योजन और आठसे भाजित तीन भाग (९६०३$\frac{3}{8}$) प्रमाण है ।।२६४७।।

जोयण-सहस्समेक्कं, वक्खार - गिरीण होदि वित्थारो ।
अड्ढाइज्ज - सयाणि, विभंग - सरियाण[3] विक्खंभो ।।२६४८।।

१००० । २५० ।

अर्थ :—वक्षारपर्वतोंका विस्तार एक हजार योजन प्रमाण है और विभंगनदियोंका विस्तार अढ़ाईसौ (२५०) योजन प्रमाण है ।।२६४८।।

अट्ठावण्ण - सयाणि, चउदाल - जुदाणि जोयणा एवं ।
कहिदं देवारण्णे, भूदारण्णे वि पत्तेक्कं ।।२६४९।।

५८४४ ।

---

१. द. ज. य. तिउत्तरायाहिदा । २. द. ब. ज. य. उ. समवाओ । ३. द. सरिया, ब. क. ज. य. उ. सरियाइ ।

अर्थ :—देवारण्य और भूतारण्यमेंसे प्रत्येकका विस्तार अट्ठावनसौ चवालीस (५८४४) योजन प्रमाण कहा गया है ॥२६४९॥

विजयादिकोंका विस्तार निकालनेका विधान—

विजया - वक्खाराणं, विभंगणई-देवरण्ण-भद्दसालवणं ।
णिय-णिय-फलेण गुणिदा, कादव्वा मेरु-फल-जुत्ता ॥२६५०॥
तच्चेय दीव[1]- वासे, सोहिय एदम्मि होदि जं सेसं ।
णिय-णिय-संखा-हरिदं, णिय - णिय - वासाणि जायंते ॥२६५१॥

अर्थ :—विजय, वक्षार, विभंगनदी, देवारण्य और भद्रशालवनको [इनसे हीन] अपने-अपने फलसे गुणा करके मेरुके फलसे युक्त करनेपर जो संख्या उत्पन्न हो उसे इस द्वीपके विस्तारमेंसे कम करके शेषमें अपनी-अपनी संख्याका भाग देनेपर अपना-अपना विस्तार प्रमाण प्रकट होता है ॥२६५०-२६५१॥

विजय विस्तार—

सोहसु वित्थारादो, छच्चउ-तिय-छक्क-चउ-दु-अंक-कमे ।
सेसं सोलस - भजिदं, विजयं पडि होइ वित्थारं ॥२६५२॥

२४६३४६ ।

अर्थ :—छह, चार, तीन, छह, चार और दो इस अंक क्रमसे उत्पन्न हुई संख्याको धातकीखण्डके विस्तारमेंसे कम करके शेषमें सोलहका भाग देनेपर प्रत्येक विजय (क्षेत्र) का विस्तार ज्ञात होता है ॥२६५२॥

यथा :—वक्षार यो० ८००० + विभंग १५०० + देवारण्य ११६८८ + भद्रशाल २१५७५८ + मेरु ६४०० यो० = २४६३४६ यो० । (४००००० — २४६३४६) ÷ १६ = ९६०३$\frac{३}{८}$ यो० ।

वक्षार विस्तार—

वित्थारादो सोहसु, अंबर-णभ-गयण-दोण्णि-णवय-तियं ।
अवसेसं अट्ठ - हिदे, वक्खार - णगाण वित्थारो ॥२६५३॥

३९२००० ।

---

1. क. ब. य. उ. दीवं वासो ।

अर्थ :–शून्य, शून्य, शून्य, दो, नौ और तीन, इस अंक क्रमसे उत्पन्न हुई (३९२०००) संख्याको धातकी खण्डके विस्तारमेंसे कम करके शेषमें आठका भाग देनेपर वक्षार-पर्वतोंका विस्तार ज्ञात होता है।। २६५३।।

यथा :–{४००००० योजन–(१५३६५४+१५००+११६८८+२१५७५८+९४००)}÷८= १००० योजन

विभंग विस्तार–

चउ - लक्खादो सोहसु, अंबर - णभ - पंच-अट्ठ-णवय-तियं।
सेसं छक्क - विहत्तं, विभंग - सरियाण वित्थारं।। २६५४।।

३९८५००।

अर्थ :–शून्य, शून्य, पाँच, आठ, नौ और तीन, इस अंक क्रम से उत्पन्न हुई (३९८५००) संख्या को धातकी खण्डके विस्तारमें से कम करके शेष में छहका भाग देने पर विभंगनदियोंका (६६४१६$\frac{२}{३}$ योजन) विस्तार प्राप्त होता है।। २६५४।।

यथा :–{४००००० योजन–(८०००+१५३६५४+२१५७५८+११६८८+९४००)}÷६=६६४१६$\frac{२}{३}$ योजन प्रत्येक विभंगका विस्तार है।

देवारण्यका विस्तार–

सोहसु चउ-लक्खादो, दु-एक्क-तिय-अट्ठ-अट्ठ-तियमाणं।
सेसं दु - हिदे होदि दु, देवारण्णाण वित्थारं।। २६५५।।

३८८३१२।

अर्थ :–दो, एक, तीन, आठ, आठ और तीन, इस अंक क्रमसे उत्पन्न हुई (३८८३१२) संख्याको धातकीखण्डके विस्तार चार लाख में से घटाकर शेष में दो का भाग देने पर देवारण्य वनों का विस्तार प्राप्त होता है।। २६५५।।

यथा :–{४००००० योजन–(१५३६५४+१५००+२१५७५८+९४००+८०००)÷२=१९४१५६ योजन प्रत्येक देवारण्यका विस्तार।

भद्रशालवनका विस्तार–

अवणय चउ-लक्खादो, दो-चउ-दु-चदु-अट्ठ-एक्क-अंककमे।
जोयणया अवसेसं, दो भजिदे भद्दसाल - वणं।। २६५६।।

१८४२४२

अर्थ :—दो, चार, दो, चार, आठ और एक, इस अंक क्रमसे उत्पन्न हुई (१८४२४२) संख्याको धातकीखण्डके (चार लाख) विस्तारमेंसे घटाकर शेषमें दो का भाग देनेपर भद्रशालवनोंका विस्तार (९२१२१ यो०) प्राप्त होता है ।।२६५६।।

यथा :—{ ४००००० — (१५३६५४ — ११६८८+१५००+९४००+८०००) }÷२ =९२१२१ योजन प्रत्येक भद्रशालवनका विस्तार।

मेरु विस्तार—

चउ-लक्खादो सोहसु, [1]अंबर-णभ-छक्क-गयण-णवय-तियं ।
अंककमे अवसेसं, मेरुगिरिंदस्स परिमाणं ।।२६५७।।

३९०६००[2] ।

अर्थ :—शून्य, शून्य, छह, शून्य, नौ और तीन इस अंक क्रमसे उत्पन्न हुई (३९०६००) संख्याको चार लाखमेंसे कम करनेपर जो शेष रहे उतने (९४००) योजन प्रमाण मेरुका विस्तार है ।।२६५७।।

यथा :—४००००० — (१५३६५४+८०००+१५००+११६८८ + २१५७५८) = ९४०० योजन मेरु विस्तार।

कच्छा और गन्धमालिनी देशका सूची व्यास—

दुगुणम्मि भद्दसाले, मंदरसेलस्स खिवसु विक्खंभं ।
मज्झिम-सूई - सहिदं, सा सूई कच्छ - गंधमालिणिए ।।२६५८।।

अर्थ :—दुगुने भद्रशालवनके विस्तारमें मन्दरपर्वतका विस्तार मिलाकर उसमें मध्यम सूची व्यास मिला देनेपर कच्छा और गन्धमालिनी देशकी सूचीका प्रमाण आता है ।।२६५८।।

एक्कारस-लक्खाणि, पणवीस - सहस्स इगि-सयाणि पि ।
अडवण्ण जोयणाणि, कच्छाए[3] सा हुवे सूई ।।२६५९।।

११२५१५८ ।

अर्थ :—कच्छादेशकी सूची ग्यारह लाख पच्चीस हजार एकसौ अट्ठावन (११२५१५८) योजन प्रमाण है ।।२६५९।।

---

१. द. ब. क. ज. उ. अंबरणभगयणदोण्णिणवयतिय। २. ब. क. ज. य. उ. ३९२०००। ३. द. ब. क. ज. य. उ. कच्छाइं।

यथा :—भद्रशालका वि० (१०७८७९ × २) + ६४०० मेरु वि० + ६००००० यो० मध्यम सूची = ११२५१५८ यो० कच्छादेशकी सूची ।

कच्छा देशकी परिधि—

विक्खंभस्स य वग्गो, दस-गुणिदो करणि वट्टए परिही ।
दु-छ-णभ-अड-पण-पण-तिय अंक - कमे तीए परिमाणं ॥२६६०॥

३५५८०६२ ।

अर्थ :—विस्तारके वर्गको दससे गुणित कर उसका वर्गमूल निकालने पर परिधिका प्रमाण होता है । यहाँ कच्छादेश सम्बन्धी सूचीकी परिधिका प्रमाण अंक-क्रमसे दो, छह, शून्य, आठ, पाँच, पाँच और तीन (३५५८०६२) योजन है ॥२६६०॥

यथा :— $\sqrt{११२५१५८^2 \times १०}$ = कुछ अधिक ३५५८०६२ यो० परिधि ।

पर्वतरुद्ध क्षेत्रका प्रमाण—

अट्ठुत्तरि सहस्सा, बादाल - जुदा य जोयणट्ठ - सया ।
एक्कं लक्खं चोद्दस - गिरि - रुद्धक्खेत्त - परिमाणं ॥२६६१॥

१७८८४२ ।

अर्थ :—धातकीखण्ड स्थित दोनों मेरु सम्बन्धी (कुलाचल एवं इष्वाकार इन) चौदह पर्वतोंसे रोके हुए क्षेत्रका प्रमाण एक लाख अठत्तर हजार आठसौ बयालीस (१७८८४२) योजन (से कुछ अधिक) है ॥२६६१॥

विदेह क्षेत्रका आयाम—

सेल - विसुद्धा परिही, चउसट्ठीए गुणिज्ज[1] अवसेसं ।
दो - सय - बारस - भजिदे, जं लद्धं तं विदेह-दोहत्तं ॥२६६२॥

दस-जोयण-लक्खाणि, विस-सहस्सं सयं पि इगिदालं[2] ।
अडसीदि - जुद - सयंसा, विदेह - दोहत्त - परिमाणं ॥२६६३॥

१०२०१४१ । $\frac{१८८}{२१२}$ ।

---

१. द. ब. उ. गुणिज्जु । २. द. ब. क. ज. य. उ. विससहस्ससयं पि होदि इगिदालं ।

अर्थ :—(कच्छादेशकी) परिधिप्रमाणमेंसे पर्वतरुद्ध क्षेत्र कम कर देनेपर जो शेष रहे उसको चौंसठसे गुणा करके प्राप्त गुणनफलमें दोसौ बारहका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतनी विदेहक्षेत्रकी लम्बाई है। विदेहकी इस लम्बाईका प्रमाण दस लाख बीसहजार एकसौ इकतालीस योजन और एक योजनके दोसौ बारह भागोंमेंसे एकसौ अठासी भाग (१०२०१४१ $\frac{१८८}{२१२}$ योजन) प्रमाण है ॥२६६२-२६६३॥

यथा :—(३५५८०६२ — १७८८४२) × ६४ ÷ २१२ = १०२०१४१ $\frac{१८८}{२१२}$ योजन।

कच्छादेशकी आदिम लम्बाई—

सीदा-णईए [1]वासं, सहस्समेक्कं च तम्मि [2]अवणिज्जं।
अवसेसद्ध - पमाणं, दीहत्तं कच्छ - विजयस्स ॥२६६४॥

१०००।

अर्थ :—विदेहकी उस लम्बाईमेंसे एक हजार (१०००) योजन प्रमाण सीतानदीका विस्तार कम कर देनेपर जो शेष रहे उसके अर्धभाग प्रमाण कच्छादेशकी (आदिम) लम्बाई है ॥२६६४॥

यथा :—(१०२०१४१ $\frac{१८८}{२१२}$ — १०००) ÷ २ = ५०९५७० $\frac{२००}{२१२}$ योजन।

पण-जोयण-लक्खाणि, पण-णउदि-सयाणि [3]सत्तरि-जुदाणि।
दु - सय - कलाओ रुंदा, वंक - सरूवेण कच्छस्स ॥२६६५॥

५०९५७०। $\frac{२००}{२१२}$।

अर्थ :—पांच लाख नौ हजार पांचसौ सत्तर योजन और दोसौ भाग अधिक (५०९५७० $\frac{२००}{२१२}$ योजन) कच्छादेशके तिर्यग्विस्तार (आदिम लम्बाई) का प्रमाण है ॥२६६५॥

अपने-अपने स्थानमें अर्धविदेहका विस्तार—

विजयादि-वास-वग्गो, वक्खार - विभंग - देवरण्णाणं।
दस-गुणिदो जं मूलं[4], पुह पुह बत्तीस - गुणिदं तं ॥२६६६॥
बारस-जुद-दु-सएहिं, भजिदूणं कच्छ - रुंद - मेलिविदं।
तत्थ[5] णिय-णिय - ट्ठाणे, विदेह - अद्धस्स विक्खंभो ॥२६६७॥

---

१. द. ब. क. ज. य. उ. वासं मेवक च सम्मि। २. द. क. ज. य. उ. अवणेज्जे। ३. द. ब. क. ज. य. उ. सत्तरिस्सादो। ४. द. मूलं वपुसा, ब. क. ज. य. उ. मूलं वा। ५. द. तट्ठ, ब. क. ज. य. उ. तट्टा।

अर्थ :—कच्छादि विजय, वक्षार, विभंगनदी और देवारण्य, इनके विस्तारके वर्गको दससे गुणित कर वर्गमूल निकालना, अपने-अपने उस वर्गमूलको पृथक्-पृथक् बत्तीससे गुणा करके प्राप्त लब्धमें दोसौ बारहका भाग देनेपर जो प्राप्त हो उसे कच्छादेशके विस्तारमें मिला देनेपर उत्पन्न राशि प्रमाण अपने-अपने स्थानमें अर्धविदेहका विस्तार होता है ।।२६६६-२६६७।।

क्षेत्रोंकी वृद्धिका प्रमाण—

चत्तारि सहस्साणिं, पण-सय-चउसीदि जोयणाणं पि ।
परिवड्ढी[1] विजयाणं, णादव्वा धादईसंडे ।।२६६८।।

४५८४ ।

अर्थ :—धातकीखण्डमें क्षेत्रोंकी वृद्धि चार हजार पाँचसौ चौरासी (४५८४) योजन प्रमाण जाननी चाहिए ।।२६६८।।

यथा :—$[\{\sqrt{(९६०३\frac{३}{८})^२ \times १०}\} \times ३२] \div २१२ = ४५८४$ यो० क्षेत्रोंमें वृद्धिका प्रमाण ।

वक्षारपर्वतोंका वृद्धिका प्रमाण—

चत्तारि जोयणाणं, सयाणि सत्तत्तरीय जुत्ताणि ।
सट्ठि कलाओ तस्सि, वक्खार - गिरीण परिवड्ढी ।।२६६९।।

४७७ । $\frac{६०}{२१२}$ ।

अर्थ :—इस द्वीपमें वक्षार-पर्वतोंकी वृद्धिका प्रमाण चारसौ सतत्तर योजन और साठ कला अधिक ($४७७\frac{६०}{२१२}$) है ।।२६६९।।

यथा :—$[\{\sqrt{(१०००)^२ \times १०}\} \times ३२] \div २१२ = ४७७\frac{६०}{२१२}$ यो० व० वृद्धि प्रमाण ।

विभंग नदियोंमें वृद्धिका प्रमाण—

एक्कोण - वीस-सहिदं, एक्क-सयं जोयणाणि भागा य ।
बावण्णा ठाणेसुं, विभङ्ग - सरियाण परिवड्ढी ।।२६७०।।

११९ । $\frac{५२}{२१२}$ ।

---

१. द. ब. क. ज. उ. परिवड्ढिदय ।

अर्थ :—विभंगनदियोंके स्थानोंमें वृद्धिका प्रमाण एकसौ उन्नीस योजन और बावन भाग ($११९\frac{५२}{२१२}$ योजन) प्रमाण है ॥२६७०॥

यथा :—[{ $\sqrt{(२५०)^२ \times १०}$ } ३२] ÷ २१२ = $११९\frac{५२}{२१२}$ योजन वृद्धिका प्रमाण—

देवारण्यके स्थानोंमें वृद्धिका प्रमाण—

सत्तावीस - सयाणं, उणउदी जोयणाणि भागा य ।
बाणउदी णायव्वा, देवारण्णस्स परिवड्ढी ॥२६७१॥

२७८९ । $\frac{९२}{२१२}$ ।

अर्थ :—देवारण्यकी वृद्धिका प्रमाण दो हजार सातसौ नवासी योजन और बानवै भाग ($२७८९\frac{९२}{२१२}$ यो०) है ॥२६७१॥

[{ $\sqrt{(५८४४)^२ \times १०}$ } × ३२] ÷ २१२ = $२७८९\frac{९२}{२१२}$ योजन ।

विजयादिकोंकी आदि, मध्यम और अन्तिम लम्बाई जाननेका उपाय—

विजयादीणं आदिम, दीहे वड्ढी खिवेज्ज सो होदि ।
मज्झिम-दीहो मज्झिम, दीहे तं खिवसु अंत-दीहो सो ॥२६७२॥

अर्थ :—क्षेत्रादिकोंकी आदिम लम्बाईमें वृद्धिका प्रमाण मिला देनेपर मध्यम लम्बाई होती है और मध्यम लम्बाईमें वृद्धि-प्रमाण मिला देनेपर उनकी अन्तिम लम्बाई प्राप्त होती है ॥२६७२॥

खेत्तादीणं अंतिम - दीह - पमाणं च होदि जं जत्थं ।
तं जि पमाणं अग्गिम - वक्खारादीसु आदिल्लं ॥२६७३॥

अर्थ :—क्षेत्रादिकोंकी अन्तिम लम्बाईका प्रमाण जहाँ जो हो, वही उससे आगेके वक्षारादिककी आदिम लम्बाईका प्रमाण होता है ॥२६७३॥

कच्छा और गन्धमालिनीकी आदिम और मध्यम लम्बाई—

णभ-सग-पण-णव-णभ-पण अंक-कमे दु-सय भाग-दोहत्तं ।
कच्छाए गंधमालिणि, आदीए परिहि रूवेण ॥२६७४॥

५०९५७० । $\frac{२००}{२१२}$ ।

अर्थ :—शून्य, सात, पाँच, नौ, पाँच, सात और शून्य, इस अंक क्रमसे उत्पन्न हुई संख्या और दोसौ भाग अधिक अर्थात् ५०९५७०$\frac{२००}{२१२}$ योजन कच्छा एवं गन्धमालिनी देशको परिधिरूपसे आदिम लम्बाई है ।।२६७४।।

चउ-पंच-एक्क-चउ-इगि पंचय अंसा तहेय पत्तेक्कं ।
पुव्वावर - मेरूणं, पुव्वावर - विजय - मज्झ - दीहत्तं ।।२६७५।।

५१४१५४ । $\frac{२००}{२१२}$ ।

अर्थ :—पूर्वदिशागत (विजय) मेरुसे सम्बन्धित पूर्व दिशागत कच्छा और पश्चिम दिशागत (अचल) मेरुसे सम्बन्धित पश्चिम दिशागत गन्धमालिनी देशोंमेंसे प्रत्येक देशकी मध्यम लम्बाई ५१४१५४$\frac{२००}{२१२}$ योजन-प्रमाण है ।।२६७५।।

५०९५७०$\frac{२००}{२१२}$ + ४५८४ = ५१४१५४$\frac{२००}{२१२}$ योजन है ।

कच्छादि देशोंकी अन्तिम और दो वक्षारोंकी आदिम लम्बाई—

अड-तिय-सग-अड-इगि-पण दु-सय-कला कच्छ-गंधमालिणिए ।
अंतद्दो वक्खारय, गिरीण आदिल्ल दीहत्तं ।।२६७६।।

५१८७३८ । $\frac{२००}{२१२}$ ।

अर्थ :—आठ, तीन, सात, आठ, एक और पाँच, इस अंक क्रमसे उत्पन्न हुई संख्या प्रमाण योजन और दोसौ भाग अधिक कच्छा एवं गन्धमालिनीकी अन्तिम तथा (चित्रकूट और सुरमाल इन) दो वक्षार पर्वतोंकी आदिम लम्बाई (५१८७३८$\frac{२००}{२१२}$ यो०) है ।।२६७६।।

५१४१५४$\frac{२००}{२१२}$ + ४५८४ = ५१८७३८$\frac{२००}{२१२}$ योजन ।

दोनों वक्षारोंकी मध्यम लम्बाई—

छक्केक्क दोण्णि णव इगि-पण भाग-अडदाल-चित्त-कूडम्मि ।
तह देव - पव्वयम्मि य, पत्तेक्कं मज्झ - दीहत्तं ।।२६७७।।

५१९२१६ । $\frac{४८}{२१२}$ ।

अर्थ :—चित्रकूट और देव (सुर) माल पर्वतोंमेंसे प्रत्येक पर्वतकी मध्यम लम्बाई छह, एक, दो, नौ, एक और पाँच, इस अंक क्रमसे उत्पन्न संख्या प्रमाण और अड़तालीस भाग अधिक (५१९२१६$\frac{४८}{२१२}$ योजन है ।।२६७७।।

५१८७३८$\frac{२००}{२१२}$ + ४७७$\frac{१६०}{२१२}$ = ५१९२१६$\frac{४८}{२१२}$ योजन ।

दोनों वक्षारोंकी अन्तिम और सुकच्छादि दो देशोंकी आदिम लम्बाई—

तिय-णव-छण्णव-इगि-पण अंसा चउवण्ण-दु-हद दीहत्तं ।
दो - वक्खार - गिरीणं, अंतिममादी सुकच्छ - गंधिलए ।।२६७८।।

५११९६९३ । $\frac{१०८}{२१२}$ ।

अर्थ :—(उपर्युक्त) दोनों वक्षार पर्वतोंकी अन्तिम और सुकच्छा एवं गंधिला देशकी आदिम लम्बाई तीन, नौ, छह, नौ, एक और पांच, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उससे एकसौ आठ भाग अधिक (५११९६९३ $\frac{१०८}{२१२}$ योजन) है ।।२६७८।।

५११९२१६ $\frac{४८}{२१२}$ + ४७७ $\frac{६०}{२१२}$ = ५११९६९३ $\frac{१०८}{२१२}$ योजन ।

दोनों क्षेत्रोंकी मध्यम लम्बाई—

सत्त-सग-दोण्णि-चउ-दुग-पण भागा अट्ठ-अहिय-सयमेत्ता ।
मज्झिल्लय - दीहत्तं, विजयाए सुकच्छ - गंधिलए ।।२६७९।।

५२४२७७ । $\frac{१०८}{२१२}$ ।

अर्थ :—सुकच्छा और गन्धिला नामक दोनों क्षेत्रोंकी मध्यम लम्बाई सात, सात, दो, चार, दो और पांच, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उससे एकसौ आठ भाग अधिक (५२४२७७ $\frac{१०८}{२१२}$ योजन प्रमाण) है ।।२६७९।।

५११९६९३ $\frac{१०८}{२१२}$ + ४५८४ = ५२४२७७ $\frac{१०८}{२१२}$ योजन ।

दोनों क्षेत्रोंकी अन्तिम और दो विभंग नदियोंकी आदिम लम्बाई—

एक्क-छ-अट्ठट्ठ-दु-पण अंसा तं चेय सुकच्छ - गंधिलए ।
दहवदी उम्मिमालिणि, अंतं आदिल्ल - दीहत्तं ।।२६८०।।

५२८८६१ । $\frac{१०८}{२१२}$ ।

अर्थ :—उन सुकच्छा और गन्धिला देशोंकी अन्तिम तथा द्रहवती और उर्मिमालिनी विभंग नदियोंकी आदिम लम्बाई एक, छह, आठ, आठ, दो और पांच इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उससे एकसौ आठ भाग अधिक (५२८८६१ $\frac{१०८}{२१२}$ योजन प्रमाण) है ।।२६८०।।

५२४२७७ $\frac{१०८}{२१२}$ + ४५८४ = ५२८८६१ $\frac{१०८}{२१२}$ योजन ।

दोनों नदियोंकी मध्यम लम्बाई—

अंबर-अट्ठ-णवट्ठ-दु-पंच य अंक - क्कमेण अंसा य ।
विगुणिय सीदी दोण्णं, णदीण मज्झिल्ल - दीहत्तं ॥२६८१॥

५२८९८० । $\frac{१६०}{२१२}$ ।

अर्थ :– द्रहवती और ऊर्मिमालिनी विभंग नदियोंकी मध्यम लम्बाई शून्य, आठ, नौ, आठ, दो और पाँच इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उससे एकसौ साठ भाग अधिक (५२८९८० $\frac{१६०}{२१२}$ यो०) है ॥२६८१॥

५२८८६१ $\frac{१०६}{२१२}$ + ११९ $\frac{५४}{२१२}$ = ५२८९८० $\frac{१६०}{२१२}$ योजन ।

दोनों नदियोंकी अन्तिम और दो देशोंकी आदिम लम्बाई—

खं-णभ-इगि-णव-दुग-पण दोण्णि णईणं हवेइ पत्तेक्कं ।
महकच्छ - सुवग्गाए, अंतं आदिल्ल - दीहत्तं ॥२६८२॥

५२९१०० ।

अर्थ :– दोनों विभंगा नदियोंकी अन्तिम तथा महाकच्छा और सुवल्गु (सुगन्धा) नामक दोनों देशोंमेंसे प्रत्येक देशकी आदिम लम्बाई शून्य, शून्य, एक, नौ, दो और पाँच इस क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने (५२९१००) योजन प्रमाण है ॥२६८२॥

५२८९८० $\frac{१६०}{२१२}$ + ११९ $\frac{५२}{२१२}$ = ५२९१०० योजन ।

दोनों देशोंकी मध्यम लम्बाई—

चउ-अट्ठ-छक्क-तिय-तिय-पण अंक-कमेण जोयणाणि पुढं ।
महकच्छ - सुवग्गुए, दीहत्तं मज्झिम - पएसे ॥२६८३॥

५३३६८४ ।

अर्थ :—महाकच्छा और सुवल्गु (सुगन्धा) देशोंकी मध्यम लम्बाई चार, आठ, छह, तीन, तीन और पाँच इस अंक क्रमसे जो संख्या निर्मित हो उतने (५३३६८४) योजन प्रमाण है ॥२६८३॥

५२९१०० + ४५८४ = ५३३६८४ योजन ।

दोनों देशोंकी अन्तिम और दोनों पर्वतोंकी आदिम लम्बाई—

अट्ठ-छ-दु-अट्ठ-तिय-पण दोण्हं विजयाण पढम - कूडस्स ।
तह सूर - पव्वदाए, अंतं आदिल्ल - दीहत्तं ॥२६८४॥

५३८२६८ ।

अर्थ :—उपर्युक्त दोनों देशोंकी अन्तिम और प्रथम (पद्म) कूट एवं सूर्यपर्वतकी आदिम लम्बाई आठ, छह, दो, आठ, तीन और पांच इस अंक क्रमसे जो संख्या निर्मित हो उतने (५३८२६८) योजन प्रमाण है ॥२६८४॥

५३३६८४ + ४५८४ = ५३८२६८ योजन ।

दोनों वक्षार-पर्वतोंकी मध्यम लम्बाई—

पण-चउ-सगट्ठ-तिय - पण - भागा सट्ठी हुवेदि पत्तेक्कं ।
वर - पउम - कूड तह सूर - पव्वए मज्झ - दीहत्तं ॥२६८५॥

५३८७४५ । $\frac{६०}{२१२}$ ।

अर्थ :—उत्तम पद्मकूट और सूर्यपर्वतकी मध्यम लम्बाई पांच, चार, सात, आठ, तीन और पांच इस अंक क्रमसे जो संख्या निर्मित हो उससे साठ भाग अधिक (५३८७४५$\frac{६०}{२१२}$ यो०) है ॥२६८५॥

५३८२६८ + ४७७$\frac{६०}{२१२}$ = ५३८७४५$\frac{६०}{२१२}$ योजन ।

दोनों पर्वतोंकी अन्तिम और दोनों देशो की आदिम लम्बाई—

दो-हो-दो-णव-तिय - पण अंसा वीसुत्तरं सयं दोहं ।
अंतद्धासु गिरीसुं, आदो वग्गूए कच्छकावदिए ॥२६८६॥

५३९२२२ । $\frac{१२०}{२१२}$ ।

अर्थ :—उपर्युक्त दोनों पर्वतोंकी अन्तिम और वल्गु (गन्धा) एवं कच्छकावती देशोंकी आदिम लम्बाई दो, दो, दो, नौ तीन और पांच इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उससे एकसौ बीस भाग अधिक (५३९२२२$\frac{१२०}{२१२}$ योजन प्रमाण) है ॥२६८६॥

५३८७४५ + ४७७$\frac{६०}{२१२}$ = ५३९२२२$\frac{१२०}{२१२}$ योजन ।

दोनों देशोंकी मध्यम लम्बाई—

छण्णभ-अड-तिय-चउ-पण अंक-कमे जोयणाणि पुव्वुत्ता ।
अंसा मज्झिम दीहं, वग्गूए कच्छकावदिए ॥२६८७॥

५४३८०६ । $\frac{१२०}{२१२}$ ।

अर्थ :—वल्गु (गन्धा) और कच्छकावती देशकी मध्यम लम्बाई छह, शून्य, आठ, तीन, चार और पाँच इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और पूर्वोक्त एकसौ बीस भाग अधिक (५४३८०६ $\frac{१२०}{२१२}$ योजन प्रमाण) है ॥२६८७॥

५३९२२२ $\frac{१२०}{२१२}$ + ४५८४ = ५४३८०६ $\frac{१२०}{२१२}$ योजन ।

दोनों देशोंकी अन्तिम और दोनों नदियोंकी आदिम लम्बाई—

णभ-णव-तिय-अड-चउ-पण पुव्वुत्तंसाणि दोसु विजएसुं ।
गहवविए फेणमालिणि, अंतिम - आदिल्ल - दीहत्तं ॥२६८८॥

५४८३९० । $\frac{१२०}{२१२}$ ।

अर्थ :—वल्गु (गन्धा) और कच्छकावती देशोंकी अन्तिम तथा ग्रहवती एवं फेनमालिनी नामक विभंगदियोंकी आदिम लम्बाई शून्य, नौ, तीन, आठ, चार और पाँच, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और पूर्वोक्त एकसौ बीस भाग अधिक (५४८३९० $\frac{१२०}{२१२}$ योजन प्रमाण) है ॥२६८८॥

५४३८०६ $\frac{१२०}{२१२}$ + ४५८४ = ५४८३९० $\frac{१२०}{२१२}$ योजन ।

दोनों नदियोंकी मध्यम लम्बाई—

णव-णभ-पण-अड-चउ - पण भागा बाहत्तरीसिदं दीहं ।
मज्झिल्ल - गहवदीए, तह चेव य फेणमालिणिए ॥२६८९॥

५४८५०९ । $\frac{१७२}{२१२}$ ।

अर्थ :– ग्रहवती और फेनमालिनी नदियोंकी मध्यम लम्बाई नौ, शून्य, पाँच, आठ, चार और पाँच इस अंक क्रमसे जो संख्या निर्मित हो उतने योजन और एकसौ बहत्तर भाग अधिक (५४८५०९ $\frac{१७२}{२१२}$ योजन प्रमाण) है ॥२६८९॥

५४८३९० $\frac{१२०}{२१२}$ + ११८ $\frac{५२}{२१२}$ = ५४८५०९ $\frac{१७२}{२१२}$ योजन ।

दोनों नदियोंकी अन्तिम तथा दोनों देशोंकी आदिम लम्बाई—

णव-दो-छ-अट्ठ-चउ-पण अंसा बारस विभंग-सरियाणं ।
अंतिल्लय - दीहत्तं, आदी आवत्त - वप्पकावदिए ॥२६९०॥

५४८६२९ । $\frac{१२}{२१२}$ ।

अर्थ :—उपर्युक्त दोनों विभंगनदियोंकी अन्तिम और आवर्ता तथा वप्रकावती देशोंकी आदिम लम्बाई नौ, दो, छह, आठ, चार और पाँच, इस अंक क्रमसे जो संख्या निर्मित हो उतने योजन और बारह भाग अधिक (५४८६२९ $\frac{१२}{२१२}$ योजन प्रमाण) है ॥२६६०॥

५४८५०९ $\frac{१७२}{२१२}$ + ११९ $\frac{५२}{२१२}$ = ५४८६२९ $\frac{१२}{२१२}$ योजन ।

दोनों देशोंकी मध्यम लम्बाई –

तिय-इगि-दु-ति-पण-पणयं, अंक-कमे जोयणाणि अंसा य ।
बारसमेत्तं मज्झिम - दीहं आवत्त - वप्पकावदिए ॥२६६१॥

५५३२१३ । $\frac{१२}{२१२}$ ।

अर्थ :—आवर्ता और वप्रकावती देशोंकी मध्यम लम्बाई तीन, एक, दो, तीन, पाँच, और पाँच इस अंक क्रमसे जो संख्या निर्मित हो उतने योजन और बारह भाग अधिक (५५३२१३ $\frac{१२}{२१२}$ योजन प्रमाण) है ॥२६६१॥

५४८६२९ $\frac{१२}{२१२}$ + ४५८४ = ५५३२१३ $\frac{१२}{२१२}$ योजन ।

दोनों देशोंकी अन्तिम और दो वक्षार-पर्वतोंकी आदिम लम्बाई—

सग-णव-सग-सग-पण-पण, अंसा ता[1] एव दोसु विजयाणं ।
अंतिल्लय - दीहत्तं, आदिल्लं णलिण - णाग - वरे ॥२६६२॥

५५७७९७ । $\frac{१२}{२१२}$ ।

अर्थ :—सात, नौ, सात, सात, पाँच और पाँच इस अंक क्रमसे जो संख्या निर्मित हो उतने योजन और बारह भाग अधिक अर्थात् ५५७७९७ $\frac{१२}{२१२}$ योजन उपर्युक्त दोनों देशोंकी अन्तिम लम्बाई तथा इतनी (५५७७९७ $\frac{१२}{२१२}$ योजन) ही नलिन एवं नागपर्वतकी आदिम लम्बाई है ॥२६६२॥

५५३२१३ $\frac{१२}{२१२}$ + ४५८४ = ५५७७९७ $\frac{१२}{२१२}$ योजन ।

दोनों वक्षार-पर्वतोंकी मध्यम लम्बाई—

चउ-सत्त-दोण्णि-अट्ठय-पण-पण-अंक - क्कमेण अंसाइं ।
बावत्तरि दीहत्तं, मज्झिल्लं[2] णलिण-कूड-णागवरे ॥२६६३॥

५५८२७४ । $\frac{७२}{२१२}$ ।

---

१. द. ब एव । २ द. ब. क. ज. य. उ. मज्झं अण्णलिण ।

अर्थ :—नलिन और नाग पर्वतकी मध्यम लम्बाई चार, सात दो, आठ, पाँच और पाँच, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और बहत्तर भाग अधिक (५५८२७४ $\frac{७२}{२१२}$ योजन प्रमाण) है ॥२६६३॥

५२७७९७ $\frac{६२}{२१२}$ + ४७७ $\frac{१०}{२१२}$ = ५५८२७४ $\frac{७२}{२१२}$ योजन ।

दोनों वक्षारोंकी अन्तिम और दो देशोंकी आदिम लम्बाई—

इगि-पण-सग-अड-पण-पण भागा बत्तीस-अहिय-सय दोहं ।
दोसु गिरीसुं अंतिल्लादिल्लं दोसु विजयाणं ॥२६६४॥

५५८७५१ । $\frac{१३२}{२१२}$ ।

अर्थ :—उपर्युक्त दोनों वक्षार पर्वतोंकी अन्तिम तथा लांगलावर्ता और महावप्रा देशोंकी आदिम लम्बाई एक, पाँच, सात, आठ, पाँच और पाँच इस अंक क्रमसे निर्मित संख्या प्रमाण तथा एकसौ बत्तीस भाग अधिक (५५८७५१ $\frac{१३२}{२१२}$ योजन प्रमाण) है ॥२६६४॥

५५८२७४ $\frac{७२}{२१२}$ + ४७७ $\frac{१०}{२१२}$ = ५५८७५१ $\frac{१३२}{२१२}$ योजन ।

दोनों देशोंकी मध्यम लम्बाई—

पण-ति-ति - तिय - छप्पणयं अंसा ता एव लंगलावत्ते ।
तह महवप्पे[1] विजए, पत्तेक्कं[2] मज्झ - दोहत्तं ॥२६६५॥

५६३३३५ । $\frac{१३२}{२१२}$ ।

अर्थ :—पाँच, तीन, तीन, तीन, छह और पाँच इस अंक क्रमसे जो संख्या निर्मित हो उतने योजन और पूर्वोक्त एकसौ बत्तीस भाग अधिक (५६३३३५ $\frac{१३२}{२१२}$ योजन प्रमाण) लांगलावर्ता एवं महावप्रा देशोंमेंसे प्रत्येककी मध्यम लम्बाई है ॥२६६५॥

५५८७५१ $\frac{१३२}{२१२}$ + ४५८४ = ५६३३३५ $\frac{१३२}{२१२}$ योजन ।

दोनों देशोंकी अन्तिम और दो विभंगनदियोंकी आदिम लम्बाई—

णव-इगि-णव-सग-छप्पण भागा ता एव दोसु विजयाणं ।
अंतिल्लय - दोहत्तं, आदिल्लं दो - विभंग - [3]सरियाणं ॥२६६६॥

५६७९१९ । $\frac{१३२}{२१२}$ ।

---

१. द. ज. य. तहवप्पे । २. द. ब क. ज. य उ. संपत्तेक्कं मज्झिमदोहत्तं । ३. द. ज. सरीणं । ब. उ. सरीरं, क. सरीरग ।

अर्थ :—दोनों देशोंकी अन्तिम और गम्भीरमालिनी एवं पंकवती नामक दो विभंग नदियोंकी आदिम लम्बाई नौ, एक, नौ, सात, छह और पाँच इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और पूर्वोक्त एकसौ बत्तीस भाग अधिक (५६७९१९ १३२/२१२ योजन प्रमाण) है ।।२६९६।।

५६३३३५ १३२/२१२ + ४५८४ = ५६७९१९ १३२/२१२ योजन ।

दोनों विभंग नदियोंकी मध्यम लम्बाई—

अड-तिय-णभ-अड-छप्पण अंसा चउसीदि-अहिय-सयमेरां ।
गंभीरमालिणीए, मज्झिल्लं पंकवदिगाए ।।२६९७।।

५६८०३८ । १८४/२१२ ।

अर्थ :—गम्भीरमालिनी और पंकवती नदियोंकी मध्यम लम्बाई आठ, तीन, शून्य, आठ, छह और पांच इस अंक क्रमसे उत्पन्न हुई संख्यासे एकसौ चौरासी भाग अधिक (५६८०३८ १८४/२१२ योजन प्रमाण) है ।।२६९७।।

५६७९१९ १३२/२१२ + ११९ ५२/२१२ = ५६८०३८ १८४/२१२ योजन ।

दोनों नदियोंकी अन्तिम और दो देशोंकी आदिम लम्बाई—

अड-पण-इगि-अड-छप्पण अंसा चउवीसमेत्त - दोहत्तं ।
दोण्णं णदीण अंतं, आदिल्लं दोसु विजयाणं ।।२६९८।।

५६८१५८ । २४/२१२ ।

अर्थ :– उपर्युक्त दोनों नदियोंकी अन्तिम तथा पुष्कला एवं सुवप्रा देशोंमेंसे प्रत्येककी आदिम लम्बाई आठ, पांच, एक, आठ, छह और पांच इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और चौबीस भाग अधिक (५६८१५८ २४/२१२ योजन प्रमाण) है ।।२६९८।।

५६८०३८ १८४/२१२ + ११९ ५२/२१२ = ५६८१५८ २४/२१२ यो० ।

दोनों देशोंकी मध्यम लम्बाई—

दु-चउ-सग-दोण्णि-सग-पण अंक-कमे अंसमेव पुव्वुत्तं[1] ।
मज्झिल्लय - दीहत्तं, पोक्खल - विजए सुवप्पाए ।।२६९९।।

५७२७४२ । २४/२१२ ।

---

१. द. ज. य. पुव्वंता, ब. क. उ. पुव्वुत्ता ।

अर्थ :—पुष्कला तथा सुवप्रा क्षेत्रोंकी मध्यम लम्बाई दो, चार, सात, दो, सात और पाँच इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और पूर्वोक्त चौबीस भाग अधिक (५७२७४२ $\frac{२४}{२१२}$ योजन प्रमाण) है ।।२६९९।।

५६८१५८ $\frac{२४}{२१२}$+४४८४=५७२७४२ $\frac{२४}{२१२}$ योजन ।

दोनों क्षेत्रोंकी अन्तिम और दो वक्षार पर्वतोंकी आदिम लम्बाई—

छ-द्दो-तिय-सग-सग-पण, अंसा ता एव अंत - दीहत्तं ।
कमसो दो - विजयाणं, आदिल्लं एक्कसेल-चंदणगे ।।२७००।।

५७७३२६ । $\frac{२४}{२१२}$ ।

अर्थ :—क्रमशः दोनों क्षेत्रोंकी अन्तिम तथा एकशैल चन्द्रनग नामक वक्षार पर्वतकी आदिम लम्बाई छह, दो तीन, सात, सात और पाँच इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने और चौबीस भाग ही अधिक (५७७३२६ $\frac{२४}{२१२}$ योजन प्रमाण) है ।।२७००।।

५७२७४२ $\frac{२४}{२१२}$+४५८४=५७७३२६ $\frac{२४}{२१२}$ योजन ।

दोनों वक्षार पर्वतोंकी मध्यम लम्बाई—

तिय-णभ-अड-सग-सग-पण, भागा चउसीदिमेत्त पत्तेक्कं ।
मज्झिल्लय - दीहत्तं, होदि पुढं एक्कसेल - चंदणगे ।।२७०१।।

५७७८०३ । $\frac{८४}{२१२}$ ।

अर्थ :—एक शैल और चन्द्रनग नामक वक्षार-पर्वतमेंसे प्रत्येककी मध्यम लम्बाई तीन, शून्य, आठ, सात, सात और पाँच इस अंक क्रमसे निर्मित जो संख्या है उतने योजन और चौरासी भाग अधिक (५७७८०३ $\frac{८४}{२१२}$ योजन प्रमाण) है ।।२७०१।।

५७७३२६ $\frac{२४}{२१२}$ + ४७७ $\frac{६०}{२१२}$=५७७८०३ $\frac{८४}{२१२}$ योजन ।

दोनों पर्वतोंकी अन्तिम तथा दो देशोंकी आदिम लम्बाई—

णभ-अड-दु-अट्ठ-सग-पण, अंसा बारस-कदी हु अवसाणे ।
दीहं[1] दोसु गिरीणं, आदी वप्पाए पोक्खलावदिए ।।२७०२।।

५७८२८० । $\frac{१४४}{२१२}$ ।

---

१. द. ब. क. ज. दोहत्थोसुं ।

अर्थ :—दोनों वक्षार-पर्वतोंकी अन्तिम और वप्रा एवं पुष्कलावती क्षेत्रकी आदिम लम्बाई शून्य, आठ, दो, आठ, सात और पाँच इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और बारहके वर्ग अर्थात् एकसौ चवालीस भाग अधिक (५७८२८० $\frac{१४४}{२१२}$ योजन प्रमाण) है ॥२७०२॥

५७७८०३ $\frac{६४}{२१२}$ + ४७७ $\frac{८०}{२१२}$ = ५७८२८० $\frac{१४४}{२१२}$ योजन ।

दोनों देशोंकी मध्यम लम्बाई—

चउ-छक्कट्ठ-दु - अट्ठं, पंच य अंसा तहेव पत्तेक्कं ।
मज्झिल्लं दीहत्तं, वप्पाए पोक्खलावदिए ॥२७०३॥

५८२८६४ । $\frac{१४४}{२१२}$ ।

अर्थ :—वप्रा और पुष्कलावती क्षेत्रमेंसे प्रत्येककी मध्यम लम्बाई चार, छह, आठ, दो, आठ और पाँच इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन एवं एकसौ चवालीस भाग अधिक (५८२८६४ $\frac{१४४}{२१२}$ योजन प्रमाण) है ॥२७०३॥

५७८२८० $\frac{१४४}{२१२}$ + ४५८४ = ५८२८६४ $\frac{१४४}{२१२}$ योजन ।

दोनों देशोंकी अन्तिम और भूतारण्य-देवारण्यकी आदिम लम्बाई—

अड-चउ-चउ-सग-अड-पण, अंसा ते चेव पोक्खलावदिए ।
वप्पाए अंत - दीहं, आदिल्लं भूद - देवरण्णाणं ॥२७०४॥

५८७४४८ । $\frac{१४४}{२१२}$ ।

अर्थ :—पुष्कलावती और वप्रा क्षेत्रकी अन्तिम तथा भूतारण्य एवं देवारण्यकी आदिम लम्बाई आठ, चार, चार, सात, आठ और पाँच इस अंक क्रमसे निर्मित संख्यासे एकसौ चवालीस भाग अधिक (५८७४४८ $\frac{१४४}{२१२}$ योजन प्रमाण) है ॥२७०४॥

५८२८६४ $\frac{१४४}{२१२}$ + ४५८४ = ५८७४४८ $\frac{१४४}{२१२}$ योजन ।

दोनों वनोंकी मध्यम लम्बाई—

अट्ठ-तिय-दोण्णि-अंबर-णव-पण-अंक-क्कमेण चउवीसा ।
भागा मज्झिम - दीहं, पत्तेक्कं देव - भूदरण्णाणं ॥२७०५॥

५९०२३८ । $\frac{२४}{२१२}$ ।

अर्थ :—देवारण्य और भूतारण्यमेंसे प्रत्येक वनकी मध्यम लम्बाई आठ, तीन, दो, शून्य, नौ और पाँच इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और चौबीस भाग अधिक (५९०२३८ $\frac{२४}{२१२}$ योजन प्रमाण) है ॥२७०५॥

५८७४४८ $\frac{१४४}{२१२}$ + २७८९ $\frac{९२}{२१२}$ = ५९०२३८ $\frac{२४}{२१२}$ योजन ।

दोनों वनोंकी अन्तिम लम्बाई—

सत्त-दु-अंबर-तिय-णव-पंच य अंसाय - सोल-सहिय-सयं ।
पत्तेक्कं अंतिल्लं, दोहत्त[1] देव - भूदरण्णाणं ॥२७०६॥

५९३०२७ । $\frac{११६}{२१२}$ ।

अर्थ :—देवारण्य और भूतारण्यकी अन्तिम लम्बाई सात, दो, शून्य, तीन, नौ और पाँच, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और एकसौ सोलह भाग अधिक (५९३०२७ $\frac{११६}{२१२}$ योजन प्रमाण) है ॥२७०६॥

५९०२३८ $\frac{२४}{२१२}$ + २७८९ $\frac{९२}{२१२}$ = ५९३०२७ $\frac{११६}{२१२}$ योजन ।

मंगलावती आदि देशोंके प्रमाणकी सूचना—

कच्छादिप्पमुहाणं, तिविह - वियप्पं णिरूविदं सव्वं ।
विजयाए मंगलावदि - पमुहाए कमेण वत्तव्वं ॥२७०७॥

अर्थ :—(इसप्रकार) सब कच्छादिक देशोंकी लम्बाई तीन प्रकारसे कही गई है । अब क्रमशः मंगलावती आदि देशोंको लम्बाई कही जाती है ॥२७०७॥

इच्छित क्षेत्रोंकी लम्बाईका प्रमाण—

कच्छादिसु विजयाणं, आदिम-मज्झिल्लल-चरिम-दीहत्तं ।
विजयड्ढ - रुंदमवणिय, अद्ध - कदे तस्स दीहत्तं ॥२७०८॥

अर्थ :—कच्छादिक क्षेत्रोंकी आदिम, मध्यम और अन्तिम लम्बाईमेंसे विजयार्धके विस्तारको घटाकर शेषको आधा करने पर (इच्छित क्षेत्रों) उनकी लम्बाईका प्रमाण प्राप्त होता है ॥२७०८॥

---

१. ब. उ. दीहसुरभूदरण्णा ।

पद्मासे मंगलावती देश तककी सूचीका प्रमाण प्राप्त करनेकी विधि—

सोहसु मज्झिम - सूई, मेरुगिरिं दुगुण-भद्दसाल-वणं ।
सा[1] सूई पम्मादी - परियंतं मंगलावदिए ॥२७०९॥

अर्थ :—धातकी खण्डकी मध्यसूचीमेंसे मेरुपर्वत और दुगुने भद्रशाल-वनके विस्तारको घटा देनेपर जो शेष बचे वह पद्मासे मंगलावती देश तककी सूची होती है ॥२७०९॥

९००००० — { ९४०० + (१०७८७९ × २) } = ६७४८४२ योजन सूची ।

सूची एवं परिधिका प्रमाण—

दो-चउ-अड-चउ-सग - छज्जोयणयाणि कमेण तं वग्गं ।
दस-गुण-मूलं परिही, अड-तिय-णभ-चउ-ति-एक दुगं ॥२७१०॥

सूई ६७४८४२ । परि २१३४०३८ ।

अर्थ :—दो, चार, आठ, चार, सात और छह, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने (६७४८४२) योजन सूची है । इस सूची-प्रमाणका वर्ग करके उसको दससे गुणा करनेपर जो प्राप्त हो उसका वर्गमूल निकालने पर धातकीखण्डकी उपर्युक्त मध्यम सूचीकी परिधिका प्रमाण होता है, जो क्रमशः आठ, तीन, शून्य, चार, तीन एक और दो अंक रूप (२१३४०३८ यो०) है ॥२७१०॥

$\sqrt{६७४८४२^2 \times १०}$ = (कुछ कम) २१३४०३८ योजन परिधि ।

विदेह क्षेत्रकी लम्बाई—

सेल - विसुद्धो परिही, चउसट्ठीहिं गुणेज्ज अवसेसं ।
बारस - दो - सय - भजिदे, जं लद्धं तं विदेह-दीहत्तं ॥२७११॥

अर्थ :—इस परिधिप्रमाणमेंसे पर्वतरुद्ध क्षेत्र कम करनेपर जो शेष रहे उसे चौंसठसे गुणित कर दोसौ बारहका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतनी विदेहक्षेत्रकी लम्बाई है ॥२७११॥

सग-चउ-दो-णभ-णव-पण, भागा दो-गुणिद-णउदि दीहत्तं ।
पुव्वावर - विदेहाणं, सामीवे भद्दसाल - वणं ॥२७१२॥

५९०२४७ । $\frac{१८०}{२१२}$ ।

---

1. द. सो ।

अर्थ :—भद्रशालवनके समीप पूर्वापर विदेहकी उपर्युक्त लम्बाई सात, चार, दो, शून्य, नौ और पांच इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और एकसौ अस्सी भाग अधिक (५९०२४७ १८०/२१२ योजन प्रमाण) है ।।२७१२।।

(२१३४०३८ — १७८८४२ ३/१९) × ६४ ÷ २१२ = ५९०२४७ १८०/२१२ यो० ।

पद्मा और मंगलावती देशोंकी उत्कृष्ट लम्बाई—

तम्मि सहस्सं सोहिय, अद्ध - कदेणं विहीण - दीहत्तं ।
उक्कस्सं पम्माए, तह चेव य मंगलावदिए ।।२७१३।।

अर्थ :—विदेह क्षेत्रकी (उस) लम्बाईमेंसे एक हजार योजन (सीतोदाका विस्तार) कम करके शेषको आधा करनेपर पद्मा तथा मंगलावती देशकी उत्कृष्ट लम्बाईका प्रमाण ज्ञात होता है ।।२७१३।।

तिय-दो-छच्चउ-णव-दुग अंक[1]-कमे जोयणाणि भागाणि ।
चउ-हीण-दु-सय - दीहं, आदिल्लं पउम - मंगलावदिए ।।२७१४।।

२९४६२३ । १९६/२१२ ।

अर्थ :—पद्मा और मंगलावती देशोंकी (उपर्युक्त उत्कृष्ट अर्थात्) आदिम लम्बाई तीन, दो, छह, चार, नौ और दो इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और चार कम दोसौ अर्थात् एकसौ छयानबै भाग अधिक (२९४६२३ १९६/२१२ योजन प्रमाण) है ।।२७१४।।

(५९०२४७ १८०/२१२ — १०००) ÷ २ = २९४६२३ १९६/२१२ योजन ।

दोनों देशोंकी मध्यम लम्बाई—

णव-तिय-णभ-खं-णव-दुग-अंक-कमे भाग दु-सय चउ-रहिदं ।
मज्झिल्लय - दीहत्तं, पम्माए मंगलावदिए ।।२७१५।।

२९००३९ । १९६/२१२ ।

अर्थ :—पद्मा और मंगलावती देशकी मध्यम लम्बाई नौ, तीन, शून्य, शून्य, नौ और दो इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और एकसौ छयानबै भाग अधिक (२९००३९ १९६/२१२ योजन प्रमाण) है ।।२७१५।।

२९४६२३ १९६/२१२ — ४५८४ = २९००३९ १९६/२१२ योजन ।

---

1. अंकक्कमेण ।

दोनों देशोंकी अन्तिम और दो वक्षार पर्वतोंकी आदिम लम्बाई —

पण-पण-चउ-पण-अड-दुग, अंसा ता एवं दोसु विजयासुं ।
अंतिल्लय - दीहत्तं, वक्खार - दुगम्मि आदिल्लं ॥२७१६॥

२८५४५५ । $\frac{१९६}{२१२}$ ।

अर्थ :—उपर्युक्त दोनों देशोंकी अन्तिम और श्रद्धावान् एवं आत्माञ्जन नामक दो वक्षार पर्वतोंकी आदिम लम्बाई पाँच, पाँच, चार, पाँच, आठ और दो इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उससे एकसौ छयानबे भाग अधिक (२८५४५५$\frac{१९६}{२१२}$ यो०) है ॥२७१६॥

२९००३९$\frac{१९६}{२१२}$ — ४५८४ = २८५४५५$\frac{१९६}{२१२}$ योजन ।

दोनों वक्षारोंकी मध्यम लम्बाई —

अड-सग-णव-चउ-अड-दुग भागा छत्तीस-अहिय-सयमेक्कं ।
सद्धावणमायंजण - गिरिम्मि मज्झिल्ल - दीहत्तं ॥२७१७॥

२८४९७८ । $\frac{१३६}{२१२}$ ।

अर्थ :—श्रद्धावान् और आत्माञ्जन पर्वतोंकी मध्यम लम्बाई आठ, सात, नौ, चार, आठ और दो, इस अंक-क्रमसे जो संख्या निर्मित हो उससे एकसौ छत्तीस भाग अधिक (२८४९७८$\frac{१३६}{२१२}$ योजन प्रमाण) है ॥२७१७॥

२८५४५५$\frac{१९६}{२१२}$ — ४७७$\frac{६०}{२१२}$ = २८४९७८$\frac{१३६}{२१२}$ योजन ।

दोनों वक्षारोंकी अन्तिम और दो देशोंकी आदिम लम्बाई—

इगि-णभ-पण-चउ-अड-दुग, भागा छाहत्तरी य अंतिल्लं ।
दीहं दोसु गिरीसुं, आदीओ दोण्णि - विजयाणं ॥२७१८॥

२८४५०१ । $\frac{७६}{२१२}$ ।

अर्थ :—उपर्युक्त दोनों वक्षार पर्वतोंकी अन्तिम और सुपद्मा तथा रमणीया नामक क्षेत्रोंमेंसे प्रत्येककी मध्यम लम्बाई एक, शून्य, पाँच, चार, आठ और दो, इस अंक क्रमसे जो संख्या निर्मित हो उससे छयत्तर भाग अधिक अर्थात् २८४५०१$\frac{७६}{२१२}$ योजन प्रमाण है ॥२७१८॥

२८४९७८$\frac{१३६}{२१२}$ — ४७७$\frac{६०}{२१२}$ = २८४५०१$\frac{७६}{२१२}$ योजन ।

दोनों देशोंकी मध्यम लम्बाई–

सग-इगि-णव-णव-सग-दुग, भागा ता एव मज्झ-दीहत्तं।
पत्तेक्क सुपम्माए, रमणिज्जा - णाम - विजयाए।। २७१९।।

२७९९१७ $\frac{७६}{२१२}$ ।

अर्थ :–सुपद्मा और रमणीया नामक क्षेत्रोंमेंसे प्रत्येक की मध्यम लम्बाई सात, एक, नौ, नौ, सात और दो, इस अंक क्रम से जो संख्या उत्पन्न हो उससे छयत्तर भाग अधिक अर्थात् २७९९१७ $\frac{७६}{२१२}$ योजन प्रमाण है।। २७१९।।

२८४५०१ $\frac{७६}{२१२}$ –४५८४ = २७९९१७ $\frac{७६}{२१२}$

दोनों क्षेत्रोंकी अन्तिम तथा दो विभंग नदियोंकी आदिम लम्बाई–

तिय-तिण्णिविण्णि-पण-सग-दोण्णि य अंसा तहेव दीहत्तं।
दो विजयाणं अं तं, आदिल्लं दो - विभंग - सरियाणं।। २७२०।।

२७५३३३। $\frac{७६}{२१२}$ ।

अर्थ :–उपर्युक्त दोनों क्षेत्रों की अन्तिम तथा क्षीरोदा एवं उन्मत्तजला नामक दो विभंग-नदियों में से प्रत्येक की आदिम लम्बाई तीन, तीन, तीन पाँच, सात और दो, इस अंक- क्रम से जो संख्या उत्पन्न हो उससे पूर्वोक्त छयत्तर भाग अधिक अर्थात् २७५३३३ $\frac{७६}{२१२}$ योजन प्रमाण है।।२७२०।।

२७९९१७ $\frac{७६}{२१२}$ –४५८४ = २७५३३३ $\frac{७६}{२१२}$ ।

दोनों विभंग नदियों की मध्यम लम्बाई

चउ-इगि-दुग-पण-सग दुग, भागा चउवीसमेत्त दीहत्तं।
मज्झिल्लं खीरोदे[1], उम्मत्तं - णदिम्मि पत्तेक्कं।। २७२१।।

२७५२१४। $\frac{२४}{२१२}$

अर्थ :–क्षीरोदा और उन्मत्तजलामेंसे प्रत्येककी मध्यम लम्बाई चार, एक, दो, पाँच, सात और दो, इस अंकक्रमसे निर्मित संख्यासे चौबीस भाग अधिक अर्थात् २७५२१४ $\frac{२४}{२१२}$ योजन प्रमाण है।। २७२१।।

२७५३३३ $\frac{७६}{२१२}$ –११९ $\frac{५२}{२१२}$ =२७५२१४ $\frac{२४}{२१२}$ ।

दोनों नदियोंकी अन्तिम और दो देशोंकी आदिम लम्बाई–

चउ-णव-अंबर पण सग-दो भागा चउरसीदि-अहिय-सयं।
दोण्णं णदीण अंतिम-दीहं[2] आदिल्लं दोसु विजयासुं[3]।। २७२२।।

२७५०९४ । $\frac{१८४}{२१२}$ ।

---

१ ब.क.ज.उ. खारोदे। २. द ब क ज उ दीहिं आदीओ। ३. उ.विजयसुं, द ब ज विजयासु।

अर्थ :—उपर्युक्त दोनों नदियोंकी अन्तिम लम्बाई तथा महापद्मा और सुरम्या नामक दो देशोंमेंसे प्रत्येककी आदिम लम्बाई चार, नौ, शून्य, पाँच, सात और दो, इस अंक-क्रमसे उत्पन्न संख्यासे एकसौ चौरासी भाग अधिक अर्थात् २७५०९४ $\frac{१८४}{२१२}$ योजन प्रमाण है ।।२७२२।।

२७५२१४ $\frac{२४}{२१२}$ — ११९ $\frac{५२}{२१२}$ = २७५०९४ $\frac{१८४}{२१२}$ योजन ।

दोनों देशोंकी मध्यम लम्बाई--

णभ-इगि-पण-णभ-सग-दुग-अंक-कमे भागमेव पुव्विल्लं ।
मज्झिल्लय - बित्थारं, महपम्म - सुरम्म[1] - विजयाणं ।।२७२३।।

२७०५१० । $\frac{१८४}{२१२}$ ।

अर्थ :—महापद्मा और सुरम्या नामक देशोंकी मध्यम लम्बाई शून्य, एक, पाँच, शून्य, सात और दो, इस अंक क्रमसे जो संख्या निर्मित हो उससे एकसौ चौरासी भाग अधिक अर्थात् २७०५१० $\frac{१८४}{२१२}$ योजन प्रमाण है ।।२७२३।।

२७५०९४ $\frac{१८४}{२१२}$ — ४५८४ = २७०५१० $\frac{१८४}{२१२}$ योजन ।

दोनों देशोकी अन्तिम और दो वक्षार पर्वतों की आदिम लम्बाई—

छ-द्दो-णव-पण-छद्दुग, भागा ता एव अंत - दीहत्तं ।
दो - विजयाणं अंजण - वियडावदियाए आदिल्लं ।।२७२४।।

२६५९२६ । $\frac{१८४}{२१२}$ ।

अर्थ :—उपर्युक्त दोनों देशोंकी अन्तिम तथा अञ्जन और विजटावान् पर्वतकी आदिम लम्बाई छह, दो, नौ, पाँच, छह और दो इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उससे एकसौ चौरासी भाग अधिक अर्थात् २६५९२६ $\frac{१८४}{२१२}$ योजन प्रमाण है ।।२७२४।।

२७०५१० $\frac{१८४}{२१२}$ — ४५८४ = २६५९२६ $\frac{१८४}{२१२}$ योजन ।

दोनों वक्षारोंकी मध्यम लम्बाई—

णव-चउ-चउ-पण-छ-द्दो, अंक-कमे जोयणाणि भागा य ।
बासट्ठि दु - हद दीहं[2], मज्झिल्लं दोसु वक्खारे ।।२७२५।।

२६५४४९ । $\frac{१२४}{२१२}$ ।

---

१. द. ब. क. उ. सुपम्म । २. द. ब. क. ज. उ. दीहा ।

अर्थ :—अञ्जन और विजटावान् इन दोनों वक्षार-पर्वतोंकी मध्यम लम्बाई नौ, चार, चार, पाँच, छह और दो, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उससे एकसौ चौबीस भाग अधिक अर्थात् २६५४४९ $\frac{१२४}{२१२}$ योजन प्रमाण है ॥२७२५॥

२६५९२६ $\frac{१८४}{२१२}$ — ४७७ $\frac{१०}{२१२}$ = २६५४४९ $\frac{१२४}{२१२}$ योजन ।

दोनों वक्षारोंकी अन्तिम और दो देशोंकी आदिम लम्बाई—

दो-सग-णव-चउ-छ-द्दो भागा चउसट्ठि अंत - दीहत्तं ।
दो - वक्खार - गिरीणं, आदीयं दोसु विजएसुं ॥२७२६॥

२६४९७२ । $\frac{६४}{२१२}$ ।

अर्थ :—दोनों वक्षार-पर्वतोंकी अन्तिम तथा रम्या एवं पद्मकावती देशकी आदिम लम्बाई दो, सात, नौ, चार, छह और दो, इस अंक-क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उससे चौंसठ भाग अधिक अर्थात् २६४९७२ $\frac{६४}{२१२}$ योजन प्रमाण है ॥२७२६॥

२६५४४९ $\frac{१२४}{२१२}$ — ४७७ $\frac{१०}{२१२}$ = २६४९७२ $\frac{६४}{२१२}$ योजन ।

दोनों देशोंकी मध्यम लम्बाई—

अट्ठ-तिय-णभ-छ-द्दो भागा चउसट्ठि मज्झ - दीहत्तं ।
रम्माए पम्मकावदि - विजयाए होदि पत्तेक्कं ॥२७२७॥

२६०३८८ । $\frac{६४}{२१२}$ ।

अर्थ :—रम्या और पद्मकावती देशमेंसे प्रत्येककी मध्यम लम्बाई आठ, आठ, तीन, शून्य, छह और दो, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उससे चौंसठ भाग अधिक अर्थात् २६०३८८ $\frac{६४}{२१२}$ योजन प्रमाण है ॥२७२७॥

२६४९७२ $\frac{६४}{२१२}$ — ४५८४ = २६०३८८ $\frac{६४}{२१२}$ योजन ।

दोनों क्षेत्रोंकी अन्तिम तथा दो विभंग नदियोंकी आदिम लम्बाई—

चउ-णभ-अड-पण-पण-दुग भागा ता एव दोण्णि विजयाणं ।
अंतिल्लय - दीहत्तं, आदिल्लं दो - विभंग - सरियाणं ॥२७२८॥

२५५८०४ । $\frac{६४}{२१२}$ ।

अर्थ :—उपर्युक्त दोनों क्षेत्रोंकी अन्तिम तथा मत्तजला और सीतोदा नामक दोनों नदियोंकी आदिम लम्बाई चार, शून्य, आठ, पांच, पांच और दो, इस अंक-क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उससे चौंसठ भाग अधिक अर्थात् २५५८०४ $\frac{६४}{२१२}$ योजन प्रमाण है ॥२७२८॥

२६०३८८ $\frac{६४}{२१२}$ — ४५८४ = २५५८०४ $\frac{६४}{२१२}$ योजन ।

दोनों विभंग नदियोंकी मध्यम लम्बाई—

पण-अड-छुप्पण-पण-दुग, अंक-कमे बारसाणि अंसा य ।
मत्तजले सीदोदे, पत्तेक्कं मज्झ - दीहत्तं ॥२७२९॥

२५५६८५ । $\frac{१२}{२१२}$ ।

अर्थ :—मत्तजला और सीतोदामेंसे प्रत्येककी मध्यम लम्बाई पाँच, आठ, छह, पाँच, पाँच और दो, इस अंक-क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उससे बारह भाग अधिक अर्थात् २५५६८५$\frac{१२}{२१२}$ योजन प्रमाण है ॥२७२९॥

२५५८०४$\frac{५४}{२१२}$ — ११९$\frac{४२}{२१२}$=२५५६८५$\frac{१२}{२१२}$ योजन ।

दोनों नदियोंकी अन्तिम और दो देशोंकी आदिम लम्बाई—

पण-छप्पण-पण-पंचय-दो च्चिय बाहत्तरीहि अहिय-सयं ।
भागा दु - णइदु - विजए, अंतिल्लादिल्ल - दीहत्तं ॥२७३०॥

२५५५६५ । $\frac{१८२}{२१२}$ ।

अर्थ :—उपर्युक्त दोनों नदियोंकी अन्तिम और शङ्खा तथा वत्सकावती नामक दो विजयों (क्षेत्रों) की आदिम लम्बाई पाँच, छह, पाँच, पाँच, पाँच और दो, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उससे एकसौ बहत्तर भाग अधिक अर्थात् २५५५६५$\frac{१८२}{२१२}$ योजन प्रमाण है ॥२७३०॥

२५५६८५$\frac{१२}{२१२}$ — ११९$\frac{४२}{२१२}$=२५५५६५$\frac{१८२}{२१२}$ योजन ।

दोनों देशोंकी मध्यम लम्बाई—

इगि-अड-णव-णभ-पण-दुग भागा ता एव मज्झ-दीहत्तं ।
संखाए [1]वच्छकावदि - विजए पत्तेक्क परिमाणं ॥२७३१॥

२५०९८१ । $\frac{१८२}{२१२}$ ।

अर्थ :—शङ्खा एवं वत्सकावती क्षेत्रमेंसे प्रत्येककी मध्यम लम्बाई एक, आठ, नौ, शून्य, पाँच और दो, इस अंक-क्रमसे जो संख्या निर्मित हो उससे एकसौ बहत्तर भागसे अधिक अर्थात् २५०९८१$\frac{१८२}{२१२}$ योजन है ॥२७३१॥

२५५५६५$\frac{१८२}{२१२}$ — ४५८४=२५०९८१$\frac{१८२}{२१२}$ योजन ।

---

१. द पच्छकावदि, ब. ज. वपाकावदि, क. वप्पकावदि, ठ. पम्मकावदि ।

दोनों देशोंकी अन्तिम और दो वक्षार पर्वतोंकी आदिम लम्बाई—

सग-णव-तिय-छच्चउ-दुग, भागा ते चेव दोण्णि-विजयाणं ।
दो - वक्खार - गिरीणं, अंतिम - आदिल्ल - दीहत्तं ॥२७३२॥

२४६३९७ । १७२/२१२ ।

अर्थ :—उपर्युक्त दोनों देशोंकी अन्तिम तथा आशीविष और वैश्रवणकूट नामक दो वक्षार-पर्वतोंकी आदिम लम्बाईका प्रमाण सात, नौ, तीन, छह, चार और दो, इस अंक-क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उससे एकसौ बहत्तर भाग अधिक अर्थात् २४६३९७ १७२/२१२ योजन है ॥२७३२॥

२५०९८१ १७२/२१२ — ४५८४ = २४६३९७ १७२/२१२ योजन ।

दोनों वक्षार पर्वतोंकी मध्यम लम्बाई—

णभ-दो-णव-पण-चउ-दुग, अंसा तह बारसहिय-सयमेक्कं ।
मज्झिम्मि होदि दीहं, आसीविस - वेसमण - कूडे ॥२७३३॥

२४५९२० । ११२/२१२ ।

अर्थ :—आशीविष तथा वैश्रवणकूटकी मध्यम लम्बाई शून्य, दो, नौ, पाँच, चार और दो, इस अंक-क्रमसे जो संख्या उत्पन्न होती है उससे एकसौ बारह भाग अधिक अर्थात् २४५९२० ११२/२१२ योजन प्रमाण है ॥२७३३॥

२४६३९७ १७२/२१२ — ४७७ ६०/२१२ = २४५९२० ११२/२१२ योजन ।

दोनों पर्वतोंकी अन्तिम और दो देशोंकी आदिम लम्बाई—

तिय-चउ-चउ-पण-चउ-दुग, अंसा बावण्ण दोण्णि-वक्खारे ।
दो - विजए अंतिल्लं, कमसो आदिल्ल - दीहत्तं ॥२७३४॥

२४५४४३ । ५२/२१२ ।

अर्थ :—दो वक्षार-पर्वतोंकी अन्तिम और महावत्सा तथा नलिना नामक दो देशोंकी आदिम लम्बाई तीन, चार, चार, पाँच, चार और दो, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उससे बावन-भाग अधिक अर्थात् २४५४४३ ५२/२१२ योजन प्रमाण है ॥२७३४॥

२४५९२० ११२/२१२ — ४७७ ६०/२१२ = २४५४४३ ५२/२१२ योजन ।

दोनों देशोंकी मध्यम लम्बाई—

णव-पण-अड-णभ-चउ-दुग-अंक-कमे अंसमेव बावण्णं ।
मज्झिमए दीहत्तं, [1]महवच्छा - णलिण - विजयम्मि ।।२७३५।।

२४०८५९ । ५२/२१२ ।

अर्थ :—महावत्सा और नलिना देशोंमेंसे प्रत्येककी मध्यम लम्बाई नौ, पाँच, आठ, शून्य, चार और दो, इस अंक-क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उससे बावन भाग अधिक अर्थात् २४०८५९ ५२/२१२ योजन प्रमाण है ।।२७३५।।

२४५४४३ ५२/२१२ — ४५८४ = २४०८५९ ५२/२१२ योजन ।

दोनों देशोंकी अन्तिम और दो विभंग नदियोंकी आदिम लम्बाई—

पण-सग-दो-छत्तिय-दुग, भागा बावण्ण दोण्णि-विजयाणं ।
बे - वेभंग[2] - णदीणं, अंतिम - आदिल्ल - दीहत्तं ।।२७३६।।

२३६२७५ । ५२/२१२ ।

अर्थ :—दोनों देशोंकी अन्तिम और तप्तजला एवं औषधवाहिनी नामक दो विभंग नदियोंमेंसे प्रत्येककी आदिम लम्बाई पाँच, सात, दो, छह, तीन और दो, इस अंक-क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उससे बावन भाग अधिक (२३६२७५ ५२/२१२ योजन) है ।।२७३६।।

२४०८५९ ५२/२१२ — ४५८४ = २३६२७५ ५२/२१२ योजन ।

दोनों विभंग नदियोंकी मध्यम लम्बाई—

छप्पण-इगि-छत्तिय-दुग-अंक-कमे जोयणाणि मज्झिमए ।
दीहत्तं तत्तजले, [3]ओसहवाहीए पत्तेक्कं ।।२७३७।।

२३६१५६ ।

अर्थ :—तप्तजला और औषधवाहिनीमेंसे प्रत्येककी मध्यम लम्बाई छह, पाँच, एक, छह, तीन और दो, इस अंक-क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने (२३६१५६) योजन प्रमाण है ।।२७३७।।

२३६२७५ ५२/२१२ — ११९ ५२/२१२ = २३६१५६ योजन ।

---

१. ब. उ. महवप्पाए, द. क. ज. महवप्पाणलिए । २. ब. क. उ. विभंग । ३. द. ब. क. ज. उ. गतरवाहीए ।

दोनों नदियोंकी अन्तिम और दो देशोंकी आदिम लम्बाई—

छत्तिय-णभ-छत्तिय-दुग, भागा सट्ठीहि अहिय-सय दोहं ।
दो - वेभंग - णदीणं, अंतं आदी हु दोसु विजएसु ।।२७३८।।

२३६०३६ । $\frac{११०}{२१२}$ ।

अर्थ :—उपर्युक्त दोनों विभंग नदियोंकी अन्तिम तथा कुमुदा एवं सुवत्सा नामक दो देशों मेंसे प्रत्येकको आदिम लम्बाई, छह, तीन, शून्य, छह, तीन और दो, इस अंक-क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उससे एकसौ साठ भाग अधिक अर्थात् २३६०३६$\frac{११०}{२१२}$ योजन प्रमाण है ।।२७३८।।

२३६१५६ — ११९$\frac{५२}{२१२}$=२३६०३६$\frac{११०}{२१२}$ योजन ।

दोनों देशोंकी मध्यम लम्बाई—

दो-पण-चउ-इगि-तिय-दुग, भागा सट्ठीहि अहिय-सयमेत्तं ।
मज्झिम - पएस - दीहं, कुमुदाए सुवच्छ - विजयम्मि ।।२७३९।।

२३१४५२ । $\frac{११०}{२१२}$ ।

अर्थ :—कुमुदा तथा सुवत्सा देशमेंसे प्रत्येकको मध्यम लम्बाई दो, पाँच, चार, एक, तीन और दो, इस अंक-क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उससे एकसो साठ भाग अधिक अर्थात् २३१४५२$\frac{११०}{२१२}$ योजन प्रमाण है ।।२७३९।।

२३६०३६$\frac{११०}{२१२}$ — ४५८४=२३१४५२$\frac{११०}{२१२}$ योजन ।

दोनों देशोंकी अन्तिम तथा दो वक्षार-पर्वतोंकी आदिम लम्बाई—

अट्ठ-छ-अट्ठय-छ-द्दो-दो च्चिय सट्ठीहि अहिय-सय-भागं ।
विजयाणं वक्खारे, अंतिल्लादिल्ल - दीहत्तं ।।२७४०।।[1]

२२६८६८ । $\frac{११०}{२१२}$ ।

अर्थ :—दोनों देशोंकी अन्तिम और सुखावह और त्रिकूट नामक दो वक्षार-पर्वतोंकी आदिम लम्बाई आठ, छह, आठ, छह, दो और दो, इस अंक-क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उससे एकसौ साठ भाग अधिक अर्थात् २२६८६८$\frac{११०}{२१२}$ योजन प्रमाण है ।।२७४०।।

२३१४५२$\frac{११०}{२१२}$ — ४५८४=२२६८६८$\frac{११०}{२१२}$ योजन ।

---

१. अत्र उपरि-लिखिता दश गाथा ब. उ. प्रतौ पुनरपि लिखिताः ।

दोनों वक्षार-पर्वतोंकी मध्यम लम्बाई—

इगि-णव-तिय-छद्दो-दो, अंक-कमे जोयणाणि सय-भागं ।
मज्झिल्लय दीहत्तं, सुहावहे तह तिकूडे य ।।२७४१।।

२२६३९१ । $\frac{१००}{२१२}$ ।

अर्थ :—सुखावह और त्रिकूट पर्वतकी मध्यम लम्बाई एक, नौ, तीन, छह, दो और दो इस अंक-क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उससे एकसौ भाग अधिक अर्थात् २२६३९१ $\frac{१००}{२१२}$ योजन प्रमाण है ।।२७४१।।

२२६८६८ $\frac{११०}{२१२}$ — ४७७ $\frac{१०}{२१२}$ = २२६३९१ $\frac{१००}{२१२}$ योजन ।

दोनों वक्षारोंकी अन्तिम और दो देशोंकी आदिम लम्बाई—

चउ[1]-इगि-णव-पण-दो-दो अंसा चालीसमेत्त पत्तेक्कं ।
दो - वक्खार - दु - विजए, अंतिल्लादिल्ल - दीहत्तं ।।२७४२।।

२२५९१४ । $\frac{४०}{२१२}$ ।

अर्थ :—दो वक्षार-पर्वतोंकी अन्तिम लम्बाई और सरिता एवं वत्सा देशोंमेंसे प्रत्येककी अन्तिम लम्बाई चार, एक, नौ, पाँच दो और दो इस अंक-क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उससे चालीस भाग अधिक अर्थात् २२५९१४ $\frac{४०}{२१२}$ योजन प्रमाण है ।।२७४२।।

२२६३९१ $\frac{१००}{२१२}$ — ४७७ $\frac{१०}{२१२}$ = २२५९१४ $\frac{४०}{२१२}$ योजन ।

दोनों देशोंकी मध्यम लम्बाई—

णभ-तिय-तिय-इगि-दो-द्दो अंक-कमे दु-हद-वीस भागा य ।
सरिदाए[2] वच्छ - विजए, पत्तेक्कं मज्झ - दीहत्तं ।।२७४३।।

२२१३३० । $\frac{४०}{२१२}$ ।

अर्थ :—सरिता और वत्सा देशमेंसे प्रत्येककी मध्यम लम्बाई शून्य, तीन, तीन, एक, दो और दो, इस अंक-क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उससे चालीस भाग अधिक अर्थात् २२१३३० $\frac{४०}{२१२}$ योजन प्रमाण है ।।२७४३।।

२२५९१४ $\frac{४०}{२१२}$ — ४५८४ = २२१३३० $\frac{४०}{२१२}$ योजन ।

---

१. द इगिणवतियछद्दोदो । २. द. ब. क. ज. उ. सलिलाए वप्पविजए ।

दोनों देशोंकी अन्तिम और दोनों वनोंकी आदिम लम्बाई—

छच्चउ - सग - छक्केक्क - दु अंसा चालीसमेत्त दीहत्तं ।
दो - विजए आदिमए, देवारण्णम्मि भूदरण्णाए ॥२७४४॥

२१६७४६ । $\frac{४०}{२१२}$ ।

अर्थ :—उपर्युक्त दोनों देशोंकी [अन्तिम] और देवारण्य तथा भूतारण्यकी आदिम लम्बाई छह, चार, सात, छह एक और दो, इस अंक-क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उससे चालीस भाग अधिक अर्थात् २१६७४६$\frac{४०}{२१२}$ योजन प्रमाण है ॥२७४४॥

२२१३३०$\frac{४०}{२१२}$ — ४५८४ = २१६७४६$\frac{४०}{२१२}$ योजन ।

दोनो वनोंकी मध्यम लम्बाई—

छप्पण-णव-तिय-इगि-दुग, भागा सट्ठीहि अहिय-सयमेत्तं ।
भूदादेवारण्णे, हवेदि मज्झिल्ल - दीहत्तं ॥२७४५॥

२१३९५६ । $\frac{१६०}{२१२}$ ।

अर्थ :—भूतारण्य और देवारण्य वनमेंसे प्रत्येककी मध्यम लम्बाई छह, पांच, नौ, तीन, एक और दो, इस अंक-क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उससे एकसौ साठ भाग अधिक अर्थात् २१३९५६$\frac{१६०}{२१२}$ योजन प्रमाण है ॥२७४५॥

दोनों वनोंकी अन्तिम लम्बाई—

सग-छक्केक्किक्कगि[1]-इगि-दुग, भागा अडसट्ठि देवरण्णम्मि ।
तह चेव भूदरण्णे, पत्तेक्कं अंत - दीहत्तं ॥२७४६॥

२१११६७ । $\frac{६८}{२१२}$ ।

अर्थ :—देवारण्य और भूतारण्यमेंसे प्रत्येककी अन्तिम लम्बाई सात, छह, एक एक, एक और दो, इस अंक-क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उससे अडसठ भाग अधिक अर्थात् २१११६७$\frac{६८}{२१२}$ योजन प्रमाण है ॥२७४६॥

२१३९५६$\frac{१६०}{२१२}$ — २७८९$\frac{९२}{२१२}$ = २१११६७$\frac{६८}{२१२}$ योजन ।

इच्छित क्षेत्रोंकी लम्बाई का प्रमाण—

कच्छादी - विजयाणं, आदिम-मज्झिल्ल-चरम-दीहम्मि ।
विजयड्ढ - रुंदमवणिय, अद्ध - कदे तस्स दीहत्तं ॥२७४७॥

अर्थ :—कच्छादिक देशोंकी आदिम, मध्यम और अन्तिम लम्बाईमेंसे विजयार्धके विस्तार को घटाकर शेषको आधा करनेपर उसकी लम्बाई का प्रमाण प्राप्त होता है ॥२७४७॥

---

१. द. ब. क. ज. ठ. छक्केक्केइगि ।

क्षुद्रहिमवान् पर्वतका क्षेत्रफल--

हिमवंतस्स य रुंदे, धादइ संडस्स रुंदमाणम्मि ।
संगुणिदे जं लद्धं, तं तस्स हवेदि खेत्तफलं ॥२७४८॥
चउसीदी - कोडीओ, लक्खाणि जोयणाणि इगिवीसं ।
बावण्ण - सय तिसट्ठी, ति - कलाओ तस्स परिमाणं ॥२७४९॥

हिमवन्तस्य क्षेत्रफलम्--८४२१०५२६३ । $\frac{3}{19}$ ।

अर्थ :—धातकीखण्डके विस्तारको हिमवान् पर्वतके विस्तारसे गुणा करनेपर जो संख्या प्राप्त हो उतना हिमवान् पर्वतका क्षेत्रफल होता है । जिसका प्रमाण चौरासी करोड़ इक्कीस लाख बावनसौ तिरेसठ योजन और तीन कला है ॥२७४८-२७४९॥

हिमवान् पर्वतका क्षेत्रफल---४०००००—२१०५$\frac{5}{19}$=८४२१०५२६३$\frac{3}{19}$ यो० ।

महाहिमवान् आदि पर्वतोंका क्षेत्रफल—

एवं चिय चउ - गुणिदं, महहिमवंतस्स होदि खेत्तफलं ।
णिसहस्स तच्चउग्गुण, चउ - गुण - हाणी परं तत्तो ॥२७५०॥

महाहिमवत ३३६८४२१०५२ । $\frac{12}{19}$ । णिसह १३४७३६८४२१० । $\frac{10}{19}$ ।
णील १३४७३६८४२१० । $\frac{10}{19}$ । रुम्मि ३३६८४२१०५२ । $\frac{12}{19}$ ।
सिखरी ८४२१०५२६३ । $\frac{3}{19}$ ।

एदाणि मेलिदूणं[1] दुगुणं कादव्व तच्चेदं—७०७३६८४२१०५ । $\frac{5}{19}$ ।

अर्थ :—हिमवान्के क्षेत्रफलको चारसे गुणा करनेपर महाहिमवान्का क्षेत्रफल और महाहिमवान्के क्षेत्रफलको भी चारसे गुणा करनेपर निषध पर्वतका क्षेत्रफल होता है । इसके आगे फिर चौगुनी हानि है ॥२७५०॥

क्षेत्रफल—महाहिमवान् ३३६८४२१०५२$\frac{12}{19}$ योजन । निषध १३४७३६८४२१०$\frac{10}{19}$ योजन । नील १३४७३६८४२१०$\frac{10}{19}$ यो० । रुक्मि ३३६८४२१०५२$\frac{12}{19}$ योजन और शिखरी ८४२१०५२६३$\frac{3}{19}$ योजन । धातकी खण्डमें दो मेरु पर्वत सम्बन्धी बारह कुलाचल पर्वत हैं अत: इन छह पर्वतोंके क्षेत्रफलको मिलाकर दुगुना करनेपर (३५३६८४२१०५२$\frac{12}{19}$ × २) = ७०७३६८४२१०५$\frac{5}{19}$ योजन प्राप्त होते है ।

---

१. द. ब. क. ज. उ. मेलिदूणं कादव्व छच्चेद ।

दोनों इष्वाकार पर्वतोंका क्षेत्रफल—

दोण्णं उसुगाराणं, असीदि - कोडीओ होंति खेत्तफलं ।
एदं पुव्व - विमिस्सं, चोद्दस - सेलाण पिंडफलं ॥२७५१॥

८००००००००।

अर्थ :—दोनों इष्वाकार पर्वतोंका क्षेत्रफल अस्सी करोड़ (८००००००००) योजन है। इसको उपर्युक्त कुलाचलोंके क्षेत्रफलमें मिला देनेपर चौदह-पर्वतोंका क्षेत्रफल होता है ॥२७५१॥

चौदह-पर्वतोंका सम्मिलित क्षेत्रफल—

पंच-गयणेक्क-दुग-चउ-अट्ठ-छ-तिय-पंच-एक्क - सत्ताणं ।
अंक-कमे पंचंसा, चोद्दस - गिरि - गणिद - फलमाणं ॥२७५२॥

७१५३६८४२१०५ । ५/१९ ।

अर्थ :—चौदह पर्वतोंके क्षेत्रफलका प्रमाण पांच, शून्य, एक, दो, चार, आठ, छह, तीन; पांच, एक और सात, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और पांच भाग मात्र अर्थात् ७१५३६८४२१०५ ५/१९ योजन है ॥२७५२॥

७०७३६८४२१०५ ५/१९ + ८०००००००० = ७१५३६८४२१०५ ५/१९ यो० ।

धातकी खण्डका क्षेत्रफल—

एक्क-छ-छ[1]-सत्त-पण-णव[2]-णवेक्क-चउ-अट्ठ-तिदय-एक्केक्का ।
अंक - कमे जोयणया, धादइ - संडस्स पिंडफलं ॥२७५३॥

११३८४१९९५७६६१ ।

अर्थ :—सम्पूर्ण धातकीखण्डका क्षेत्रफल एक, छह, छह, सात, पांच, नौ, नौ, एक, चार, आठ, तीन, एक और एक, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने (११३८४१९९५७६६१) योजन प्रमाण है ॥२७५३॥

धातकीखण्ड स्थित भरतक्षेत्रका क्षेत्रफल—

चोद्दस[3] - गिरीण रुंदं, खेत्तफलं सोह सव्व - खेत्तफले ।
बारस - जुद - दु - सएहिं, भजिदे तं भरह - खेत्तफलं ॥२७५४॥

---

१ द. ब. क. ज. उ. छछहसत्तएपग । २. द. क. ज. उ. णवबेक्क । ३. द. ब. क. ज. उ. चोद्दस-इगिरिग ।

अर्थ :—(धातकी खण्डके) सम्पूर्ण क्षेत्रफलमेंसे चौदह-पर्वतोंसे रुद्ध क्षेत्रफलको घटाओ। जो शेष रहे उसमें दोसौ बारहका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतना भरतक्षेत्रका क्षेत्रफल होता है ॥२७५४॥

छक्क-दुग-पंच-सत्तं, [1]छच्चउ-दुग-तिण्णि-सुण्ण-पंचाणं ।
अंक-कमे जोयणया, चउदाल कलाओ भरह - खेत्तफलं ॥२७५५॥

भरह ५०३२४६७५२६ । $\frac{४४}{२१२}$ ।

अर्थ :—भरतक्षेत्रका क्षेत्रफल छह, दो, पाँच, सात, छह, चार, दो, तीन, शून्य और पाँच, इस अंक क्रमसे जो संख्या निर्मित हो उससे चवालीस कला अधिक (५०३२४६७५२६$\frac{४४}{२१२}$ योजन प्रमाण) है ॥२७५५॥

(११३८४१९९५७६६१ — ७१५३६८४२१०५$\frac{५}{१९}$) ÷ २१२ = ५०३२४६७५२६$\frac{४४}{२१२}$ योजन भरत क्षेत्रका क्षेत्रफल ।

हैमवत और हरिवर्षक्षेत्रोंका क्षेत्रफल—

एदं चिय चउ - गुणिदे, खेत्तफलं होदि हेमवद - खेत्ते ।
तं चेयं चउ - गुणिदं, हरिवरिस - खिदीए खेत्तफलं ॥२७५६॥

अर्थ :—भरतक्षेत्रके क्षेत्रफलको चौगुना करनेपर हैमवत क्षेत्रका क्षेत्रफल और इसको भी चौगुना करनेपर हरिवर्षक्षेत्रका क्षेत्रफल प्राप्त होता है ॥२७५६॥

शेष क्षेत्रोंका क्षेत्रफल—

हरिवरिसवखेत्तफलं, चउक्क - गुणिदं विदेह - खेत्तफलं ।
सेस - वरिसेसु कमसो, चउगुण - हाणीअ गणिदफलं ॥२७५७॥

हे २०१२९८७०१०४ । $\frac{१७६}{२१२}$ । हरि ८०५१९४८०४१९ । $\frac{६८}{२१२}$ ।

वि ३२२०७७९२१६७७ । $\frac{६०}{२१२}$ । रं ८०५१९४८०४१९ । $\frac{६८}{२१२}$ ।

हइ २०१२९८७०१०४ । $\frac{१७६}{२१२}$ । अइरावद ५०३२४६७५२६ । $\frac{४४}{२१२}$ ।

अर्थ :—हरिवर्षके क्षेत्रफलको चारसे गुणा करनेपर विदेहका क्षेत्रफल प्राप्त होता है। इसके आगे फिर क्रमशः शेष क्षेत्रोंके क्षेत्रफलमें चौगुनी हानि होती गई है ॥२७५७॥

---

१. द. ब. क. ज. उ. सत्तछह ।

क्षेत्रफल :—वर्गयोजनोंमें हैमवतक्षेत्रका २०१२६८७०१०४ । $\frac{१}{२}\frac{११}{१२}$ । हरिवर्षका ८०५१६४८०४१६$\frac{१}{२}\frac{६}{१२}$ । विदेहक्षेत्रका ३२२०७७६२१६७७$_{२}\frac{१०}{१२}$ । रम्यकक्षेत्रका ८०५१६४८-०४१६$_{२}\frac{१}{१}\frac{६}{२}$ । हैरण्यवतक्षेत्रका २०१२६८७०१०४$\frac{१}{२}\frac{११}{१२}$ और ऐरावत क्षेत्रका ५०३२४६७५२६$_{२}\frac{४}{१}\frac{५}{२}$ वर्ग योजन क्षेत्रफल है ।

धातकीखण्डके जम्बूद्वीप प्रमाण खण्ड—

जंबूदीव - खिदीए, फलप्पमाणेण धादईसंडे ।
खेत्तफलं किज्जंतं, बारस - कदि - सम - सलागाओ ॥२७५८॥

१४४ ।

अर्थ :—जम्बूद्वीपके फलप्रमाणसे धातकीखण्डका क्षेत्रफल करनेपर वह बारहके वर्गरूप अर्थात् एकसौ चवालीस-शलाका प्रमाण होता है ॥२७५८॥

विशेषार्थ :—धातकीखण्डके बाह्यसूची व्यास (१३ लाख) के वर्गमेंसे उसीके अभ्यन्तर सूची व्यास (५ लाख) के वर्गको घटाकर जम्बूद्वीपके व्यासके वर्गका भाग देनेपर एकसौ चवालीस शलाका प्राप्त होती हैं। अर्थात् धातकी खण्डके जम्बूद्वीप बराबर एकसौ चवालीस खण्ड होते हैं।

यथा—$(१३०००००^{२} - ५०००००^{२}) \div १०००००^{२} = १४४$ ।

विजयादिकोंका शेष वर्णन—

अवसेस - वण्णणाओ, सव्वाणं विजय - सेल-सरियाणं ।
कुंड - दहादीणं पि व, जंबूदीवस्स सारिच्छो ॥२७५९॥

एवं विण्णासो समत्तो ।

अर्थ :—सम्पूर्ण क्षेत्र, पर्वत, नदी, कुण्ड और द्रहादिकोंका शेष वर्णन जम्बूद्वीपके सदृश ही समझना चाहिए ॥२७५९॥

इसप्रकार विन्यास समाप्त हुआ ।

भरतादि अधिकारोंका निरूपण—

भरह-वसुंधर-पहुदिं, जाव य एरावदो त्ति अहियारा ।
जंबूदीवे उत्तं, तं सव्वं एत्थ वत्तव्वं ॥२७६०॥

अर्थ :—भरतक्षेत्रसे ऐरावतक्षेत्र पर्यन्त जितने अधिकार जम्बूद्वीपके वर्णनमें कहे गये हैं, वे सब यहाँ भी कहने चाहिए ॥२७६०॥

एवं संखेवेणं, धादइसंडो पवण्णिदो दिव्वो ।
वित्थार - वण्णणासुं, का सत्ती म्हारि - सुमईणं ॥२७६१॥

एवं धादइसंडस्स वण्णणा समत्ता ॥४॥

अर्थ :—इसप्रकार संक्षेपमें यहाँ दिव्य धातकीखण्डका वर्णन किया गया है । हमारी जैसी बुद्धिवाले मनुष्योंकी भला विस्तारसे वर्णन करनेकी शक्ति ही क्या है ? ॥२७६१॥

इसप्रकार धातकीखण्डद्वीपका वर्णन समाप्त हुआ ॥४॥

कालोद समुद्रका विस्तार—

परिवेढेदि[1] समुद्दो, कालोदो णाम धादईसंडं ।
अड - लक्ख - जोयणाणि, वित्थिण्णो चक्कवालेणं ॥२७६२॥

अर्थ :—इस धातकीखण्डको आठ लाख योजनप्रमाण विस्तारवाला कालोद नामक समुद्र मण्डलाकार वेष्टित किये हुए है ॥२७६२॥

समुद्रकी गहराई आदि —

टंकुक्किकण्णायारो[2], सव्वत्थ सहस्स - जोयणवगाढो ।
चित्तोवरि - तल - सरिसो, पायाल - विवज्जिदो एसो ॥२७६३॥

१००० ।

अर्थ :—टांकीसे उकेरे हुएके सदृश आकारवाला यह समुद्र सर्वत्र एक हजार योजन गहरा, चित्रापृथिवीके उपरिम तलभागके सदृश अर्थात् समतल और पातालोंसे रहित है ॥२७६३॥

समुद्रगत द्वीपोंकी अवस्थिति और संख्या—

अट्ठत्ताला दीवा, दिसासु विदिसासु अंतरेसुं च ।
चउवीसब्भंतरए, बाहिरए तेत्तिया तस्स ॥२७६४॥

अर्थ :—इस समुद्रके भीतर दिशाओं, विदिशाओं और अन्तर दिशाओंमें अड़तालीस द्वीप हैं । इनमेंसे चौबीस द्वीप समुद्रके अभ्यन्तरभागमें और चौबीस ही बाह्यभागमें हैं ॥२७६४॥

---

१. द. क. ज. उ परिवेढेदि । २. द. उ. कुक्किकण्णायारो ।

अब्भंतरम्मि दीवा, चत्तारि [1]दिसासु तह य विदिसासुं ।
अंतरदिसासु अट्ठ य, अट्ठ य गिरि - पणिधि - भागेसुं ॥२७६५॥

४ । ४ । ८ । ८ ।

अर्थ :—उसके अभ्यन्तरभागमें दिशाओंमें चार, विदिशाओंमें चार, अन्तरदिशाओंमें आठ और पर्वतोंके पार्श्वभागोंमें भी आठ ही द्वीप हैं ॥२७६५॥

तटोंसे द्वीपोंकी दूरी एवं उनका विस्तार—

जोयण-पंच-सयाणि, पण्णब्भहियाणि दो - तडाहिंतो ।
पविसिय दिसासु दीवा, पत्तेक्कं दु - सय - विक्खंभो ॥२७६६॥

५५० । २०० ।

अर्थ :—इनमेंसे दिशाओंके द्वीप दोनों तटोंसे पाँचसौ पचास (५५०) योजन प्रमाण समुद्रमें प्रवेश करके स्थित हैं। इनमेंसे प्रत्येक द्वीपका विस्तार दोसौ (२००) योजन प्रमाण है ॥२७६६॥

जोयणय - छस्सयाणि, कालोदजलम्मि - दो-तडाहिंतो ।
पविसिय विदिसा - दीवा, पत्तेक्कं एक्क - सय - रुंदं ॥२७६७॥

६०० । १०० ।

अर्थ :—दोनों तटोंसे छहसौ (६००) योजन प्रमाण कालोदधि समुद्रमें प्रवेश करनेपर विदिशाओंमें द्वीप स्थित हैं। इनमेंसे प्रत्येक द्वीपका विस्तार एकसौ (१००) योजन प्रमाण है ॥२७६७॥

जोयण - पंच - सयाइं, पण्णब्भहियाणि बे - तडाहिंतो ।
पविसिय अंतर - दीवा, पण्णा - रुंदा[2] य पत्तेक्कं ॥२७६८॥

५५० । ५० ।

अर्थ :—दोनों तटोंसे पाँचसौ पचास (५५०) योजन प्रवेश करके अन्तरद्वीप स्थित हैं। इनमेंसे प्रत्येकका विस्तार पचास (५०) योजन प्रमाण है ॥२७६८॥

---

१. ब. उ. विदिसासु । २. द. ब. उ. संदा ।

छच्चिय सयाणि पण्णा-जुत्ताणि जोयणाणि दु-तडादो ।
पविसिय गिरि - पणिधीसुं, दीवा पण्णास-विक्खंभा[1] ॥२७६९॥

६५० । ५० ।

अर्थ :—दोनों तटोंसे छहसौ पचास (६५०) योजन प्रवेश करके पर्वतोंके प्रणिधि-भागोंमें अन्तरद्वीप स्थित हैं । उनमेंसे प्रत्येकका विस्तार पचास (५०) योजन प्रमाण है ॥२७६९॥

पत्तेक्कं ते दीवा, तड - वेदी - तोरणेहि रमणिज्जा ।
पोक्खरणी - वावीहिं[2], कप्प - दुमेहिं पि संपुण्णा ॥२७७०॥

अर्थ :—प्रत्येक द्वीप तट-वेदी तथा तोरणोंसे रमणीक और पुष्करिणी, वापिकाओं एवं कल्पवृक्षोंसे परिपूर्ण है ॥२७७०॥

इन द्वीपोंमें स्थित कुमानुषोंका निरूपण—

मच्छमुह[3] अस्सकण्णा, पक्खिमुहा तेसु हत्थिकण्णा य ।
पुव्वादीसु दिसेसुं, वि चिट्ठंति[4] कुमाणुसा कमसो ॥२७७१॥

अर्थ :—उनमेंसे पूर्वादिक दिशाओंमें स्थित द्वीपोंमे क्रमशः मत्स्यमुख, अश्वकर्ण, पक्षिमुख और हस्तकर्ण कुमानुष स्थित है ॥२७७१॥

अणिलदिआसु[5] सूवर-कण्णा दीवेसु ताण विदिसासु[6] ।
अट्ठंतर - दीवेसुं, पुव्वग्गि - दिसादि - गणणिज्जा ॥२७७२॥

चेट्ठंति [7]उड्डकण्णा, मज्जारमुहा पुणो वि तज्जीवा ।
कण्णप्पावरणा गजवयणा[8] य मज्जार - वयणा य ॥२७७३॥

मज्जार - मुहा य तहा, गो - कण्णा एवमट्ठ पत्तेक्कं ।
पुव्व-पवण्णिद-बहुविह-पाव-फलेहि [9]कुमणुसाणि जायंति ॥२७७४॥

---

१. द. ब. क. ज. उ. विक्खभो । २. द. ब. क. ज. उ. वावीओ । ३. ब. उ. मण्णमुहा । ४. ब. क. ज. उ. चेट्ठंति । ५. द. ब. क. ज. उ. अणिलदिसासुं । ६. द. ब. क. ज. उ. दुदिसासु । ७. ब. क. ज. उ. उद्धकण्णा । ८. द. ज. वरणा छागला, ब. क. उ. छागणा । ९. द. ब. ज. उ. कुमणुस-जीवाणि, क. कुमाणुसजीवाणि ।

अर्थ :—उनकी वायव्यादिक विदिशाओंमें स्थित द्वीपोंमें रहनेवाले कुमानुष शूकरकर्ण होते हैं। इसके अतिरिक्त पूर्वाग्निदिशादिकमें क्रमशः गणनीय आठ अन्तरद्वीपोंमें कुमानुष इसप्रकार स्थित हैं। उष्ट्रकर्ण, मार्जारमुख, पुन: मार्जारमुख, कर्णप्रावरण, गजमुख, मार्जारमुख, पुनः मार्जारमुख और गोकर्ण, इन आठोंमेंसे प्रत्येक पूर्वमे बतलाये हुए बहुत प्रकारके पापोंके फलसे कुमानुष जीव उत्पन्न होते है ॥२७७२-२७७४॥

पुव्वावर-पणिधीए, सिसुमार-मुहा तहा य मयरमुहा ।
चेट्ठंति रुप्प - गिरिणो, कुमाणुसा काल - जलहिम्मि ॥२७७५॥

अर्थ :—कालसमुद्रके भीतर विजयार्धके पूर्वापर पार्श्वभागोंमें जो कुमानुष रहते हैं वे क्रमशः शिशुमारमुख और मकरमुख होते हैं ॥२७७५॥

वयमुह[1]-वग्घमुहक्खा, हिमवंत-णगस्स पुव्व-पच्छिमदो ।
पणिधीए चेट्ठंते, कुमाणुसा पाव - पाकेहिं ॥२७७६॥

अर्थ :—हिमवान्-पर्वतके पूर्व-पश्चिम पार्श्वभागोंमें रहनेवाले कुमानुष पापकर्मोंके उदयसे क्रमशः वृकमुख और व्याघ्रमुख होते हैं ॥२७७६॥

सिहरिस्स [2]तरच्छमुहा, सिगाल-वयणा कुमाणुसा होंति ।
पुव्वावर - पणिधीए, जम्मंतर - दुरिय - कम्मेहिं ॥२७७७॥

अर्थ :—शिखरी-पर्वतके पूर्व-पश्चिम पार्श्वभागोंमें रहनेवाले कुमानुष पूर्व जन्ममें किये हुए पापकर्मोंसे तरक्षमुख (अक्षमुख) और शृगालमुख होते हैं ॥२७७७॥

दीपिक - भिंगारमुहा, कुमाणुसा होंति रुप्प - सेलस्स ।
पुव्वावर - पणिधीए, कालोदय - जलहि - दीवम्मि ॥२७७८॥

अर्थ :—विजयार्धपर्वतके पूर्वापर प्रणिधिभागमें कालोदक-समुद्रस्थ द्वीपोंमें क्रमशः द्वीपिकमुख और भृङ्गारमुख कुमानुष होते हैं ॥२७७८॥

कालोदकके बाह्यभागमें स्थित कुमानुष द्वीपोंका निरूपण—

तस्सि बाहिर - भागे, तेत्तियमेत्ता कुमाणुसा दीवा ।
पोक्खरणी - वावीहिं, कप्प - दुमेहिं पि संपुण्णा ॥२७७९॥

---

१. द. ब. ज. वंहमुहवग्घमुहक्खो, ज. क. वयमुहवंहमुक्खो । २. द. ब. क. ज. उ. वरच्छमुहा ।

अर्थ :—पुष्करिणियों, वापियों और कल्पवृक्षोंसे परिपूर्ण उतने ही कुमानुषद्वीप उस कालोद-समुद्रके बाह्य-भागमें भी स्थित हैं ॥२७७९॥

एदाओ वण्णणाओ, लवणसमुद्दं व एत्थ वत्तव्वा ।
कालोदय - लवणाणं, छण्णउदि - कुभोग - भूमीओ ॥२७८०॥

अर्थ :—यह सब वर्णन लवणसमुद्रके सदृश यहाँ भी कहना चाहिए । इसप्रकार कालोदक और लवणसमुद्र सम्बन्धी कुभोग-भूमियाँ छयानवें हैं ॥२७८०॥

कालोदक-समुद्रका क्षेत्रफल—

दुग-अट्ठ-गयण-णवयं, छच्चउ-छ-दु-छक्क-दुगिगि-तिय-पंच ।
अंक - कमे जोयणया, कालोदे होदि गणिद - फलं ॥२७८१॥

५३१२६२६४६९०८२ ।

अर्थ :—कालोदक-समुद्रका क्षेत्रफल दो, आठ, शून्य, नौ, छह, चार, छह, दो, छह, दो, एक, तीन और पाँच, इस अंक क्रमसे जो संख्या निर्मित हो उतने (५३१२६२६४६९०८२) योजन प्रमाण है ॥२७८१॥

यथा—$\sqrt{२९०००००^2 \times १०} \times \frac{२९०००००}{४} - \sqrt{१३०००००^2 \times १०} \times \frac{१३०००००}{४} =$ ५३१२६२६४६९०८२ योजन ।

कालोदक समुद्रके जम्बुद्वीप प्रमाण खण्ड—

जंबूदीव - महीए, फलप्पमाणेण काल - उवहिम्मि[1] ।
खेत्तफलं किज्जंतं, छस्सय - बाहत्तरी[2] होदि ॥२७८२॥

६७२ ।

अर्थ :—जम्बूद्वीप सम्बन्धी क्षेत्रफलके प्रमाणसे कालोदधि समुद्रका सम्पूर्ण क्षेत्रफल करने-पर वह उससे छहसौ बहत्तर गुणा होता है ॥२७८२॥

$(२९०००००^2 - १३०००००^2) \div १०००००^2 = ६७२$ खण्ड । कालोदधिसमुद्रके जम्बूद्वीप बराबरके ये ६७२ खण्ड होते हैं ।

---

१. द. ब. क. ज. उ. उहिम्मि । २. द. ब. क. ज. उ. छब्बात्तरी ।

कालोदककी बाह्य परिधि—

इगिणउदिं लक्खाणिं, सत्तरि-सहस्साणि छस्सयाणिं पि ।
पंचुत्तरो य परिही, बाहिरया तस्स किंचूणा ॥२७८३॥

९१७०६०५ ।

अर्थ :—उस (कालोद समुद्र) की बाह्य-परिधि इक्यानबै लाख सत्तर हजार छहसौ पाँच योजनसे किञ्चित् कम है ॥२७८३॥

यथा—$\sqrt{२९००००० ^२ \times १०}$ = ९१७०६०५ योजनोंसे कुछ अधिक है ।

नोट :—गाथा में बाह्य परिधिका प्रमाण ९१७०६०५ योजन से कुछ कम कहा गया है जबकि गणित की विधि से कुछ अधिक आ रहा है ।

कालोदसमुद्रस्थ मत्स्योंकी दीर्घतादि—

अट्ठरस - जोयणाणिं, दीहा दीहद्ध - वास - संपुण्णा ।
वासद्ध - बहुल - सहिदा, णई - मुहे जलचरा होंति ॥२७८४॥

१८ । ९ । $\frac{९}{२}$ ।

अर्थ :—इस समुद्रके भीतर नदीप्रवेश स्थानमें रहनेवाले जलचर जीवों की लम्बाई अठारह (१८) योजन (१४४ मील), चौड़ाई नौ (९) योजन (७२ मील) और ऊँचाई साढ़े चार (४$\frac{१}{२}$) योजन (३६ मील) प्रमाण है ॥२७८४॥

कालोवहि - बहुमज्झे, मच्छाणं दीह - वास-बहलाणिं ।
छत्तीसट्ठारस - णव - जोयणमेत्ताणि कमसो व ॥२७८५॥

३६ । १८ । ९ ।

अर्थ :—कालोदसमुद्रके बहुमध्यमें स्थित मत्स्योंकी लम्बाई ३६ योजन (२८८ मील) चौड़ाई १८ योजन (१४४ मील) और ऊँचाई ९ योजन प्रमाण है ॥२७८५॥

शेष जलचरोंकी अवगाहना—

अवसेस - ठाण - मज्झे, बहुविह-ओगाहणेण संजुत्ता ।
मयर - सिसुमार - कच्छव - मंडूकप्पहुविया होंति ॥२७८६॥

अर्थ :—शेष स्थानोंमें मगर, शिशुमार, कछुआ और मेंढक आदि जलचर जीव बहुत प्रकारकी अवगाहनासे संयुक्त होते हैं ।।२७८६।।

एवं कालसमुद्दो, संखेवेणं पवण्णिदो एत्थ ।
तस्स[1] हरि - संख - जीहो वित्थारं [2]वण्णिदुं तरइ ।।२७८७।।

। एवं कालोदक-समुद्दस्स वण्णणा समत्ता ।।५।।

अर्थ :—इसप्रकार यहाँ संक्षेपमे कालसमुद्रका वर्णन किया गया है । उसके विस्तारका वर्णन करनेमें संख्यात-जिह्वा-वाला हरि ही समर्थ है ।।२७८७।।

इसप्रकार कालोदसमुद्रका वर्णन समाप्त हुआ ।

पुष्करवर द्वीपका व्यास—

पोक्खरवरो त्ति दीवो, परिवेढदि[3] कालजलणिहिं सयलं ।
जोयण - लक्खा सोलस, रुंद - जुदो चक्कवालेणं ।।२७८८।।

१६००००० ।

अर्थ :—इस सम्पूर्ण कालसमुद्रको सोलह लाख (१६०००००) योजन प्रमाण विस्तारसे संयुक्त पुष्करवरद्वीप मण्डलाकार वेष्टित किये हुए है ।।२७८८।।

पुष्करवरद्वीपके वर्णनमे सोलह अन्तराधिकारोंका निर्देश—

मणुसोत्तर - धरणिधरं, विण्णासं भरह-वसुमई तम्मि ।
काल - विभागं हिमगिरि, हेमवदो तह महाहिमवं ।।२७८९।।

हरि-वरिसो णिसहद्दी, विदेह-णीलगिरि-रम्म-वरिसाइं ।
रुम्मि[4]-गिरी हेरण्णव-सिहरी एरावदो त्ति वरिसो[5] य ।।२७९०।।

एवं सोलस - संखा, पोक्खर - दीवम्मि अंतरहियारा ।
एण्हं ताण सरूवं, [6]वोच्छामो आणुपुव्वीए ।।२७९१।।

---

१. द. ब. क. ज. उ. तस्स । २. द. ब. क. ज. उ. वण्णिदो । ३. द. क. ज. परिवेढदि । ४. द. ब. रुम्मं । ५. द. ज. उ. वरिसा । ६. द. ब. क. ज. उ. वोच्छामि ।

अर्थ :—इस पुष्करद्वीपके कथनमें १ मानुषोत्तरपर्वत, २ विन्यास, ३ भरतक्षेत्र, उसमें ४ कालविभाग, ५ हिमवान्-पर्वत, ६ हैमवतक्षेत्र, ७ महाहिमवान्पर्वत, ८ हरिवर्ष, ९ निषधपर्वत, १० विदेह, ११ नीलगिरि, १२ रम्यकवर्ष, १३ रुक्मिपर्वत १४ हैरण्यवतक्षेत्र, १५ शिखरीपर्वत और १६ ऐरावतक्षेत्र इसप्रकार ये सोलह अन्तराधिकार हैं। अब अनुक्रमसे यहाँ उनका स्वरूप कहूंगा ।।२७८९-२७९१।।

मानुषोत्तर पर्वत तथा उसका उत्सेधादि—

कालोदय - जगदीदो[1], समंतदो अट्ठ-लक्ख-जोयणया ।
गंतूणं तप्परिदो, [2]परिवेढदि [3]माणुसुत्तरो सेलो ।।२७९२।।

८००००० ।

अर्थ :—कालोदकसमुद्रकी जगतीसे चारों ओर आठ लाख (८०००००) योजन प्रमाण जाकर मानुषोत्तर नामक पर्वत उस द्वीपको सब ओर वेष्टित किये हुए है । २७९२।।

तग्गिरिणो उच्छेहो, सत्तरस - सयाणि एक्कवीसं[4] च ।
तीसब्भहियं जोयण - चउस्सया गाढमिगि - कोसं ।।२७९३।।

१७२१[5] । ४३० को १ ।

अर्थ :—इस पर्वतकी ऊँचाई सत्तरहसौ इक्कीस (१७२१) योजन और अवगाह (नींव) चारसौ तीस (४३०) योजन तथा एक कोस प्रमाण है ।।२७९३।।

जोयण - सहस्समेक्कं, बावीसं सग - सयाणि तेवीसं ।
चउ-सय-चउवीसाइं, कम-रुंदा मूल-[6]मज्झ-सिहरेसुं ।।२७९४।।

१०२२ । ७२३ । ४२४ ।

अर्थ :—इस पर्वतका विस्तार मूल, मध्य और शिखरपर क्रमशः एक हजार बाईस (१०२२) योजन सातसौ तेईस (७२३) और चारसौ चौबीस (४२४) योजन प्रमाण है ।।२७९४।।

---

१. द ब. क. ज. उ. जगदीदो । २. ब. क. ज. उ. परिवेढदि । ३. द. माणुसुत्तरा, ब. क. उ. माणुसुत्तर । ४ द. एक्कवीसं । ५. द. १७११ । ६. ब. द. क. उ. मूलमज्झि, ज. मज्झिमूल ।

अब्भंतरम्मि भागे, टंकुक्किण्णो बहिम्मि कम - हीणो ।
सुर-खेयर-मण-हरणो, अणाइणिहणो सुवण्ण - णिहो ॥२७६५॥

अर्थ :—देवों तथा विद्याधरोंके मनको हरनेवाला, अनादिनिधन और सुवर्णके सदृश यह मानुषोत्तर पर्वत अभ्यन्तरभागमें टंकोत्कीर्ण और बाह्यभागमें क्रमशः हीन है ॥२७६५॥

गुफाओंका वर्णन—

चोद्दस गुहाओ तस्सि, समंतदो होंति दिव्व-रयणमई[1] ।
विजयाणं बहुमज्झे, पणिहीसु फुरंत - किरणाओ ॥२७६६॥

अर्थ :—उस (मानुषोत्तर) पर्वतमें चारों ओर क्षेत्रोंके बहुमध्यभागमें उनके पार्श्वभागोंमें प्रकाशमान किरणोंसे संयुक्त दिव्यरत्नमय चौदह गुफाएँ हैं ॥२७६६॥

ताणं गुहाण रुंदे, उदए बहलम्मि अम्ह उवएसो ।
काल - वसेण पणट्ठो, [2]सरिकूले जाद - विडम्रो व्व ॥२७६७॥

अर्थ :—उन गुफाओंके विस्तार, ऊँचाई और बाहल्यका उपदेश कालवश हमारे लिए नदी-तटपर उत्पन्न हुए वृक्षके सदृश नष्ट हो गया है ॥२७६७॥

तट-वेदी तथा वनखण्ड—

अब्भंतर - बाहिरए, समंतदो होदि दिव्व - तड - वेदी ।
जोयण - दलमुच्छेहो, पण - सय - चावाणि वित्थारो ॥२७६८॥

$\frac{1}{2}$ । दं ५०० ।

अर्थ :—इस पर्वतके अभ्यन्तर तथा बाह्यभागमें चारों ओर दिव्य तट-वेदी है; जिसका उत्सेध आधा ($\frac{1}{2}$) योजन और विस्तार पाँचसौ (५००) धनुष प्रमाण है ॥२७६८॥

जोयण-दल-वास-जुदो, अब्भंतर - बाहिरम्मि वणसंडो ।
पुव्विल्ल - वेदिएहिं, समाण - वेदीहि परियरिओ ॥२७६९॥

$\frac{1}{2}$ ।

---

१. द. ब. क. ज. उ. रयणमओ । २. द. ब. क. ज. उ. सरिकूडे जादविडओव्व ।

अर्थ :--उसके अभ्यन्तर तथा बाह्यभागमें पूर्वोक्त वेदियोंके सदृश वेदियोंसे व्याप्त और अर्धयोजन प्रमाण विस्तारवाला वनखण्ड है ॥२७९९॥

उवरो वि [1]माणुसोत्तर, समंतदो दोण्णि होंति तड-वेदी ।
अब्भंतरम्मि भागे, वणसंडो वेदि - तोरणेहि जुदो ॥२८००॥

अर्थ :—मानुषोत्तरपर्वतके ऊपर भी चारों ओर दो तटवेदियाँ है। इनके अभ्यन्तर भागमें वेदी तथा तोरणोंसे संयुक्त वनखण्ड स्थित हैं ॥२८००॥

मानुषोत्तरका बाह्य सूची व्यास तथा परिधि—

बिउणम्मि सेल-वासे, जोयण-लक्खाणि खिवसु पणदालं ।
तप्परिमाणं सूई, बाहिर - भागे गिरिंदस्स ॥२८०१॥

४५०२०४४ ।

अर्थ :— इस पर्वतके दुगुने विस्तारमें पैंतालीस लाख योजन मिला देनेपर उसकी बाह्य-सूचीका प्रमाण प्राप्त होता है ॥२८०१॥

१०२२×२+४५०००००=४५०२०४४ यो० बाह्य व्यास ।

एक्को जोयण - कोडी, लक्खा बादाल तीस-छ-सहस्सा ।
तेरस-जुद-सत्त-सया, परिहीए बाहिरम्मि [2]अदिरेओ ॥२८०२॥

१४२३६७१३ ।

अर्थ :—इस पर्वतकी बाह्य-परिधि एक करोड़ बयालीस लाख छत्तीस हजार सातसौ तेरह (१४२३६७१३) योजनसे अधिक है ॥२८०२॥

अदिरेयस्स[3] पमाणं, सहस्समेक्कं च तीस अब्भहियं[4] ।
ति - सयं धणु इगि - हत्थो, दहंगुलाइं जवा पंच ॥२८०३॥

द १३३० । ह १ । अं १० । ज ५ ।

अर्थ :—यह बाह्य-परिधि १४२३६७१३ योजन प्रमाणसे जितनी अधिक है, उस अधिकताका प्रमाण एक हजार तीनसौ तीस (१३३०) धनुष, एक हाथ, दस अंगुल और पाँच जौ है ॥२८०३॥

---

१. द. ब. क. ज. उ. माणमुत्तर । २. द. ब. क. ज. उ. अधिरेओ । ३. द. ब. क. ज. उ. अधि-रेयस्स । ४. द. ज. अब्भहिय ।

विशेषार्थ :—मानुषोत्तर पर्वतका बाह्यसूची व्यास ४५०२०४४ योजन है। इसकी परिधि $\sqrt{४५०२०४४^२ \times १०}$ = १४२३६७१३ योजन, १३३० धनुष, १ हाथ, १० अंगुल, ५ जौ, ० जूं, २ लीक, ७ कर्मभूमिके बाल ४ जघन्य भो० के बाल, ५ मध्यम भो० के बाल और ३ $\frac{३५१७}{४३४५५६६}$ उत्तम भो० के बाल प्रमाण है।

मानुषोत्तर पर्वतके अभ्यन्तर सूची व्यास और परिधिका प्रमाण—

पणदाल-लक्ख-संखा, सूई अब्भंतरम्मि भागम्मि ।
णव-चउ-दु-ख-तिय-दो-चउ-इगि-अंक-कमेणेण परिहि-जोयणया ॥२८०४॥

४५००००० । १४२३०२४९ ।

अर्थ :- अभ्यन्तरभागमें इस पर्वतकी सूची पैंतालीस लाख (४५०००००) योजन है और परिधि नौ चार, दो, शून्य, तीन, दो, चार और एक, इस अंक-क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन प्रमाण है ॥२८०४॥

$\sqrt{४५०००००^२ \times १०}$ = १४२३०२४९ योजन परिधि है और १३३९७९९९ वर्ग योजन अवशेष रहे जो छोड़ दिए गये हैं।

समवृत्त क्षेत्रका क्षेत्रफल निकालनेका विधान—

सूचीए कदिए कदि, दस-गुण-मूलं च लद्ध चउ-भजिदं ।
सम - वट्ट - वसुमईए, हवेदि तं सुहुम - खेत्तफलं ॥२८०५॥

अर्थ :—सूचीके वर्गके वर्गको दससे गुणा करके उसके वर्गमूलमें चारका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतना समान गोल क्षेत्रका सूक्ष्म क्षेत्रफल होता है ॥२८०५॥

मानुषोत्तर पर्वतके क्षेत्रफल सहित मनुष्य लोकका सूक्ष्म क्षेत्रफल—

णभ-एक्क-पंच-दुग-सग-दुग-सग-सग-पंच-ति-दु-ख-छक्केक्का ।
अंक - कमे खेत्तफलं, मणुस - जगे सेल - फल - जुत्तं ॥२८०६॥

१६०२३५७७२७२५१० ।

अर्थ :—मानुषोत्तर पर्वतके क्षेत्रफल सहित मनुष्यलोकका क्षेत्रफल शून्य, एक, पाँच, दो, सात, दो, सात, सात, पाँच, तीन, दो, शून्य, छह और एक, इस अंक-क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने (१६०२३५७७२७२५१०) योजन प्रमाण है ॥२८०६॥

विशेषार्थ :—[√(४५०२०४४²)² × १० = ४१०८०८०४५७७२१५६०७६४६१-२२००१६०]÷४=१६०२३५७७२७२५१० योजन।

यथार्थमें यहाँपर वर्गमूलका प्रमाण १६०२३५७७२७२५०९ योजन ही है और १०४७८०४०३११७९४३९ शेष बचते हैं। जो भागहारके अर्धभागसे अधिक हैं अतः ९ अंकके स्थान-पर १० ग्रहण किए गये हैं।

वलयाकार क्षेत्रका क्षेत्रफल निकालनेका विधान—

दुगुणाए सूचीए, दोसुं वासो विसोहिदस्स कदी।
सोज्झस्स चउब्भागं, वग्गिय गुणियं च दस - गुणं मूलं ॥२८०७॥

अर्थ :—दुगुणित बाह्यसूची व्यासमेंसे दोनों ओरके व्यासको घटाकर जो शेष रहे उसके वर्गको शोध्य राशिके चतुर्थभागके वर्गसे गुणित करके पुनः दससे गुणाकर वर्गमूल निकालनेपर [वलयाकार क्षेत्रका] क्षेत्रफल आता है ॥२८०७॥

मानुषोत्तर पर्वतका सूक्ष्म क्षेत्रफल—

सत्त-ख-णव-सत्तेक्का, छक्छक्क-चउक्क-पंच-चउ-एक्कं।
अंक-कमे जोयणया, गणिय - फलं माणुसुत्तर-गिरिस्स ॥२८०८॥

१४५४६६१७९०७।

अर्थ :—मानुषोत्तर-पर्वतका क्षेत्रफल सात, शून्य, नौ, सात, एक, छह, छह, चार, पांच, चार और एक, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने (१४५४६६१७९०७) योजन प्रमाण है ॥२८०८॥

√{ (४५०२०४४×२)—(१०२२×२) }² × (३०५४/४)² × १०=अर्थात्

√८१०३६७९६१७७९३६ × २६११२१ × १० = अर्थात्

√२११६०४०१२५४७७९८२६२५६० = १४५४६६१७९०७ योजन, २ कोस, २७१ धनुष, १ हाथ, ८ अंगुल, ४ जौ, ६ जूं और २ [illegible] ठीक प्रमाण मानुषोत्तर पर्वतका क्षेत्रफल है।

मानुषोत्तर पर्वतस्थ बाईस कूटोंका निरूपण—

उवरिम्मि माणुसुत्तर-गिरिणो[1] बावीस दिव्व-कूडाणि ।
पुव्वादि-चउ-दिसासुं, पत्तेक्कं तिण्णि तिण्णि चेट्ठंति ।।२८०९।।

अर्थ :—इस मानुषोत्तर पर्वत पर बाईस दिव्य कूट हैं । इनमें पूर्वादिक चारों दिशाओंमेंसे प्रत्येकमें तीन-तीन कूट है ।।२८०९।।

वेरुलिय[2]-असुमगब्भा, सउगंधी तिण्णि पुव्व - दिब्भाए ।
रुजगो लोहिय - अंजण - णामा दक्खिण - विभागम्मि ।।२८१०।।

अर्थ :—इनमेंसे वैडूर्य, अश्मगर्भ और सौगन्धी, ये तीन कूट पूर्व-दिशामें तथा रुचक, लोहित और अंजन नामक तीन कूट दक्षिण-दिशा-भागमे स्थित हैं ।।२८१०।।

अंजण[3]- मूलं कणयं, रजदं णामेहि पच्छिम - दिसाए ।
फडिहंक[4] - पवालाइं, कूडाइं उत्तर - दिसाए ।।२८११।।

अर्थ :—अञ्जनमूल, कनक और रजत नामक तीन कूट पश्चिम-दिशामें तथा स्फटिक, अङ्क और प्रवाल नामक तीन कूट उत्तरदिशामें स्थित हैं ।।२८११।।

तवणिज्ज-रयण-णामा, [5]कूडाइं दोण्णि वि हुदासण-दिसाए ।
ईसाण - दिसाभागे, पहंजणो वज्ज - णामो त्ति ।।२८१२।।

अर्थ :—तपनीय और रत्न नामक दो कूट अग्नि-दिशामें तथा प्रभञ्जन और वज्र नामक दो कूट ईशान-दिशाभागमें स्थित है ।।२८१२।।

एक्को च्चिय वेलंबो, कूडो चेट्ठेदि मारुद-दिसाए ।
णइरिदि - दिसा - विभागे, णामेणं सव्व - रयणो त्ति ।।२८१३।।

अर्थ :—वायव्य-दिशामें केवल एक वेलम्बकूट और नैऋत्य दिशा भागमें सर्वरत्न नामक कूट स्थित है ।।२८१३।।

---

१. द. ज. गिरिणा । २. द. ज. वेलुरिय । ३. ब. उ. अंजणमूलं कहो रजदणामेहि, ब. अंजणमूल कण्णेय रजदणामेहि, क. अजणमूले कण्णेय रजदणामेय, द. ज. अंजणमलं कण्णय । ४. द. ब. क. ज. उ. पडिहंकं । ५. द. ब. क. ज. उ. कूडाए ।

पुव्वादि-चउ-दिसासुं, वण्णिद - कूडाण अग्ग - भूमीसुं ।
एक्केक्क सिद्ध - कूडा, होंति वि मणुसुत्तरे सेले ॥२८१४॥

अर्थ :– मानुषोत्तर पर्वतपर पूर्वादिक चारों दिशाओंमें बतलाये हुए कूटोंकी अग्र-भूमियोंमे एक-एक सिद्ध-कूट भी है ॥२८१४॥

कूटोंकी ऊँचाई तथा विस्तारादिक—

गिरि-उदय-चउब्भागो, उदयो कूडाण होदि पत्तेक्कं ।
तेत्तियमेत्तो[1] रुंदो, मूले सिहरे तदद्धं च ॥२८१५॥

४३० । को १ । ४३० को १ । २१५ । $\frac{1}{2}$ ।

अर्थ :– इन कूटोंमेसे प्रत्येक कूटकी ऊँचाई, पर्वतकी ऊँचाईके चतुर्थ भाग { (१७२१ यो० ÷ ४)=४३० यो० १ कोस } प्रमाण तथा मूलमें इतना (४३०$\frac{1}{4}$ यो०) ही उनका विस्तार है। शिखर पर इससे आधा (४३०$\frac{1}{4}$ यो० ÷ २=२१५ यो० $\frac{1}{2}$ कोस) विस्तार है ॥२८१५॥

मूल-सिहराण रुंदं, मेलिय दलिदम्मि होदि जं लद्धं ।
पत्तेक्कं कूडाणं, मज्झिम - विक्खंभ - परिमाणं ॥२८१६॥

३२२ । को २ । $\frac{3}{4}$ ।

अर्थ :—मूल और शिखर-विस्तारको मिलाकर आधा करनेपर जो प्राप्त हो उतना (४३०$\frac{1}{4}$+२१५$\frac{1}{8}$ यो० ÷ २=३२२$\frac{11}{16}$ यो० अर्थात् ३२२ योजन, २$\frac{3}{4}$ कोस) प्रत्येक कूटके मध्यम विस्तारका प्रमाण है ॥२८१६॥

कूटोंपर वनखण्ड, जिनमन्दिर तथा प्रासादोंकी अवस्थिति—

मूलम्मि य सिहरम्मि य, कूडाणं होंति दिव्व-वणसंडा ।
मणिमय - मंदिर - रम्मा, वेदी - पहुदीहिं सोहिल्ला ॥२८१७॥

अर्थ :—कूटोंके मूल तथा शिखरपर मणिमय मन्दिरोसे रमणीय और वेदिकाओंसे सुशोभित दिव्य वनखण्ड हैं ॥२८१७॥

चेट्ठंति माणुसुत्तर - सेलस्स य चउसु सिद्ध - कूडेसुं ।
चत्तारि जिण - णिकेदा, णिसह-जिणभवण-सारिच्छा ॥२८१८॥

---

१. द. ब. क. ज. उ. तेत्तियमेत्ता रुंदे ।

अर्थ :- मानुषोत्तर-पर्वतके चारों सिद्ध-कूटोंपर निषधपर्वत स्थित जिनभवनोंके सदृश चार जिनमन्दिर स्थित हैं ।।२८१८।।

सेसेसुं कूडेसुं, वेंतर - देवाण दिव्व - पासादा ।
वर - रयण - कंचणमया, पुव्वोदिद - वण्णणेहिं जुदा ।।२८१९।।

अर्थ :- शेष कूटोंपर पूर्वोक्त वर्णनाओंसे संयुक्त व्यन्तरदेवोंके उत्तम रत्नमय एवं स्वर्णमय दिव्य प्रासाद हैं ।।२८१९।।

कूटोंके अधिपति देव –

पुव्व - दिसाए जसस्सदि-जसकंत-जसोधरा ति-कूडेसुं ।
कमसो अहिवइ - देवा, बहुपरिवारेहिं चेट्ठंति ।।२८२०।।

अर्थ : मानुषोत्तर-शैलके पूर्व-दिशा-सम्बन्धी तीन कूटोंपर क्रमशः यशस्वान्, यशस्कान्त और यशोधर नामक तीन अधिपति देव बहुत परिवारके साथ निवास करते हैं ।।२८२०।।

दक्खिण - दिसाए णंदो, णंदुत्तर-असणिघोस-णामा य ।
कूड - तिदयम्मि वेंतर - देवा णिवसंति लीलाहिं ।।२८२१।।

अर्थ :—इसीप्रकार दक्षिण-दिशाके तीन कूटोंपर नन्द (नन्दन), नन्दोत्तर और अशनि-घोष नामक तीन व्यन्तरदेव लीला-पूर्वक निवास करते हैं ।।२८२१।।

सिद्धत्थो वेसवणो, माणुसदेओ त्ति पच्छिम - दिसाए ।
णिवसंति ति - कूडेसुं, तग्गिरिणो वेंतराहिवई ।।२८२२।।

अर्थ :- उस पर्वतके पश्चिम-दिशा-सम्बन्धी तीन कूटोंपर सिद्धार्थ वैश्रवण और मानुसदेव, ये तीन व्यन्तराधिपति निवास करते हैं ।।२८२२।।

उत्तर - दिसाए देओ, सुदंसणो मेघ - सुप्पबुद्धक्खा ।
कूड - तिदयम्मि कमसो, होंति हु मणुसुत्तर - गिरिस्स ।।२८२३।।

अर्थ :—मानुषोत्तरपर्वतके उत्तरदिशा-सम्बन्धी तीन कूटोंपर क्रमशः सुदर्शन, मेघ (अमोघ) और सुप्रबुद्ध नामक तीन देव स्थित हैं ।।२८२३।।

अग्गि - दिसाए सादीवेओ तवणिज्ज - णाम - कूडम्मि ।
चेट्ठंति रयण - कूडे, भवणिंदो वेणु - णामेणं ।।२८२४।।

अर्थ :—अग्निदिशाके तपनीय नामक कूटपर स्वातिदेव और रत्नकूटपर वेणु नामक भवनेन्द्र स्थित है ॥२८२४॥

ईसाण - दिसाए सुरो, [1]हणुमाणो वज्जणाभि-कूडम्मि ।
वसदि [2]पभंजण - कूडे, भवणिदो वेणुधारि त्ति ॥२८२५॥

अर्थ :—ईशान-दिशाके वज्रनाभि-कूटपर हनुमान नामक देव और प्रभञ्जनकूटपर वेणुधारी (प्रभञ्जन) भवनेन्द्र रहता है ॥२८२५॥

वेलंब - णाम - कूडे, वेलंबो णाम मारुद - दिसाए ।
सव्वरयणम्मि णइरिदि - दिसाए सो वेणुधारि त्ति ॥२८२६॥

अर्थ :—वायव्यदिशाके वेलम्ब नामक कूटपर वेलम्ब नामक और नैऋत्य-दिशाके सर्वरत्न-कूटपर वेणुधारी (वेणुनीत) भवनेन्द्र रहता है ॥२८२६॥

णइरिदि-पवण-दिसाओ, वज्जिय अट्ठसु दिसासु पत्तेक्कं ।
तिय तिय कूडा सेसं[3], पुव्वं वा केइ इच्छंति ॥२८२७॥

माणुसुत्तरगिरि-वण्णणं समत्तं ।

अर्थ :—आठ दिशाओंमेंसे नैऋत्य और वायव्य दिशाओंके अतिरिक्त शेष दिशाओंमेंसे प्रत्येकमें तीन-तीन कूट हैं। शेष वर्णन पूर्वके ही सदृश है, ऐसा कितने ही आचार्य स्वीकार करते हैं ॥२८२७॥

इसप्रकार मानुषोत्तर पर्वतका वर्णन समाप्त हुआ ।

पुष्करार्धमें इष्वाकार पर्वतोंकी स्थिति—

छविदूण - माणुसुत्तर - सेलं कालोदयं च इसुगारा ।
उत्तर - दक्खिण - भागे, तद्दीवे दोण्णि चिट्ठंति ॥२८२८॥

अर्थ :—उस पुष्करार्धद्वीपके उत्तर और दक्षिणभागमें मानुषोत्तर तथा कालोदक समुद्रको स्पर्श करते हुए दो इष्वाकार पर्वत स्थित हैं ॥२८२८॥

---

१. द. ब. क. ज. उ. हणुणामो । २. द. ब. क. ज. उ. समंजण । ३. द. ब. सेसु ।

धादइसंड-पवण्णिद-इसुगार-गिरिंद - सरिस - वण्णणया ।
आयामेणं दुगुणं, दीवम्मि य पोक्खरद्धम्मि ॥२८२९॥

अर्थ :—पुष्करार्धद्वीपमें स्थित वे दोनों पर्वत धातकीखण्डमें वर्णित इष्वाकार पर्वतोंके सदृश वर्णनवाले हैं, किन्तु आयाममें दुगुने हैं ॥२८२९॥

दोनों इष्वाकारोंके अन्तरालमें स्थित विजयादिकोंका आकार तथा संख्या—

दोण्हं इसुगाराणं, विच्चाले होंति दोण्णि विजयवरा ।
चक्कद्ध - समायारा, एक्केक्का तासु मेरुगिरी ॥२८३०॥

अर्थ :—इन दोनों इष्वाकार पर्वतोंके बीचमें चक्ररन्ध्रके सदृश आकारवाले दो उत्तम (विदेह) क्षेत्र है और उनमें एक-एक मेरु पर्वत है ॥२८३०॥

धादइसंडे दीवे, जेत्तिय - कुंडाणि जेत्तिया विजया ।
जेत्तिय - सरवर[1] जेत्तिय - सेलवरा जेत्तिय - णईओ ॥२८३१॥

पोक्खरदीवद्धेसुं, तेत्तियमेत्ताणि ताणि चेट्ठंति ।
दोण्हं इसुगाराणं, गिरीण विच्चाल - भाएसुं ॥२८३२॥

अर्थ :—धातकीखण्डद्वीपमें जितने कुण्ड, जितने क्षेत्र जितने सरोवर, जितने श्रेष्ठ पर्वत और जितनी नदियां हैं, उतने ही सब पुष्करार्धद्वीपमें भी दोनों इष्वाकार-पर्वतोंके अन्तराल-भागोंमें स्थित हैं ॥२८३१-२८३२॥

तीन द्वीपोंमें विजयादिकोकी समानता—

विजया विजयाण तहा, वेयड्ढाणं हवंति वेयड्ढा ।
मेरुगिरीणं मेरू, कुल - सेला कुलगिरीणं च ॥२८३३॥

सरियाणं सरियाओ, णाभिगिरिंदाण णाभि - सेलाणि ।
पणिधिगदा[2] तिय - दीवे, उस्सेह - समं विणा[3] मेरुं ॥२८३४॥

अर्थ :—तीनों द्वीपोमे प्रणिधिगत विजयोंके सदृश विजय, विजयार्धोंके सदृश विजयार्ध, मेरुपर्वतोंके सदृश मेरु पर्वत, कुलगिरियोंके सदृश कुलगिरि, नदियोंके सदृश नदियाँ तथा नाभिगिरियोंके सदृश नाभि-पर्वत हैं । इनमेंसे मेरु-पर्वतके अतिरिक्त शेष सबकी ऊँचाई सदृश है ॥२८३३-२८३४॥

---

१. द. ब. क. ज. ठ. सरोवरा । २. द. ब. क. ज. ठ. पणिधितदा-तियवेदी । ३. द. ब. ज. क. ठ. मणा मेरु ।

कुल-पर्वतादिकोंका विस्तार—

एदाणं रुंदाणि, जंबूदीवम्मि भणिद - रुंदादो ।
एत्थ चउग्गुणिदाइं, णेयाइं जेण [1]पढम - विणा ॥२८३५॥

अर्थ :—सर्व प्रथम कहे हुए विजयों (क्षेत्रों) को छोड़ इनका विस्तार यहाँ जम्बूद्वीपमें बतलाये हुए विस्तारसे चौगुना जानना चाहिए ॥२८३५॥

मुक्का मेरुगिरिंदं, कुलगिरि - पहुदीणि दीव-तिदयम्मि ।
वित्थारुच्छेहे - समो, केई एवं परूवेंति ॥२८३६॥

पाठान्तरं ।

अर्थ :—मेरुपर्वतके अतिरिक्त शेष कुलाचल आदिकोंका विस्तार तथा ऊँचाई तीनों द्वीपोंमें समान है, ऐसा कितने ही आचार्य निरूपण करते हैं ॥२८३६॥

पाठान्तरम् ।

पुष्करार्ध-स्थित विजयार्ध तथा कुलाचलोंका निरूपण—

छविदूण माणुसुत्तर - सेल कालोदगं च चेट्ठंति ।
चत्तारो विजयड्ढा, दीवड्ढे बारस कुलद्दो ॥२८३७॥

अर्थ :—पुष्करार्धद्वीपमें चार विजयार्ध तथा बारह कुल-पर्वत मानुषोत्तर पर्वत और कालोदक समुद्रको छूकर स्थित हैं ॥२८३७॥

दीवम्मि पोक्खरद्धे, कुल-सेलादी नह य दोह-विजयड्ढा ।
अब्भंतरम्मि बाहिं, अंकमुहा ते [2]खुरप्प - संठाणा ॥२८३८॥

अर्थ :—पुष्करार्धद्वीपमें स्थित वे कुलपर्वतादिक तथा दीर्घ विजयार्ध अभ्यन्तर तथा बाह्य-भागमें क्रमशः अंकमुख और क्षुरप्रके सदृश आकारवाले हैं ॥२८३८॥

विजयादिकोंके नाम

वज्जिय जंबू-सामलि-णामाइं विजय-सर-गिरि-प्पहुदिं ।
जंबूद्दीव - समाणं, णामाणि एत्थ वत्तव्वा [3] ॥२८३९॥

---

१. द. ब. क. ज. उ. पढम । २. ब. उ. कुरुप्प । ३. द. ब. क. ज. उ. वत्तव्वो ।

अर्थ :—यहाँ जम्बू और शाल्मली वृक्षके नाम छोड़कर शेष क्षेत्र, तालाब और पर्वतादिकके नाम जम्बूद्वीपके समान ही कहने चाहिए ।।२८३९।।

दोनों भरत तथा ऐरावत क्षेत्रोंकी स्थिति—

दो-पासेसु य दक्खिण-इसुगार-गिरिस्स दो भरह-खेत्ता ।
[illegible] - इसुगारस्स य, हवंति एरावदा दोण्णि ।।२८४०।

अर्थ :—दक्षिण इष्वाकार पर्वतके दोनों पार्श्वभागोंमें दो भरतक्षेत्र और उत्तर इष्वाकार पर्वतके (दोनों पार्श्वभागोंमें) दो ऐरावत क्षेत्र हैं ।।२८४०।।

सब विजयोंकी स्थिति तथा आकार—

दोण्हं इसुगाराणं, बारस - कुल - पव्वयाण विच्चाले ।
चेट्ठंति सयल - विजया, अर-विवर-सरिच्छ-संठाणा ।।२८४१।।

अर्थ :—दोनों इष्वाकार और बारह कुल-पर्वतोंके अन्तरालमें चक्र (पहिए) के अरोंके छेद सदृश आकारवाले सब विजय स्थित हैं ।।२८४१।।

अंकायारा विजया, हवंति अब्भंतरम्मि भागम्मि ।
सत्तिमुहं[1] पिव बाहिं, [2]सयडुद्धि-समा वि पस्स - भुजा ।।२८४२।।

अर्थ :—सब क्षेत्र अभ्यंतरभागमें अंकाकार और बाह्यभागमें शक्तिमुख हैं । इनकी पार्श्व-भुजायें गाड़ीकी उद्धिके सदृश हैं ।।२८४२।।

कुलाचल तथा इष्वाकार-पर्वतोंका विष्कम्भ—

चत्तारि सहस्साणि, दु-सया दस-जोयणाणि दस-भागा ।
विक्खंभो हिमवंते, णिसहंत चउग्गुणो कमसो ।।२८४३।।

४२१० । $\frac{१०}{१९}$ । १६८४२ । $\frac{२}{१९}$ । ६७३६८ । $\frac{८}{१९}$ ।

अर्थ :—हिमवान्-पर्वतका विस्तार चार हजार दोसौ दस योजन और एक योजनके उन्नीस भागोंमेंसे दस-भाग अधिक (४२१०$\frac{१०}{१९}$ यो० प्रमाण) है । इसके आगे निषध-पर्वत पर्यन्त क्रमशः उत्तरोत्तर चौगुना (अर्थात् १६८४२$\frac{२}{१९}$ योजन और ६७३६८$\frac{८}{१९}$ योजन) विस्तार है ।।२८४३।।

एदाणं ति - णगाणं, विक्खंभं मेलिदूण चउ - गुणिदं ।
सव्वाणं णादव्वं, रुंद - समाणं कुल - गिरीणं ।।२८४४।।

---

१. द. ज. सत्तमुह । २. द. ब. क. ज. उ. सयदुद्दिसमो ।

अर्थ :—इन तीनों पर्वतोंके विस्तारको मिलाकर चौगुना करनेपर जो प्राप्त हो उतने [(४२१०$\frac{१०}{१९}$ + १६८४२$\frac{२}{१९}$ + ६७३६८$\frac{८}{१९}$) × ४ = ३५३६८४$\frac{४}{१९}$] योजन-प्रमाण सब कुल-पर्वतों का समस्त विस्तार जानना चाहिए ॥२८४४॥

दोण्हं इसुगाराणं, विक्खंभं बे - सहस्स - जोयणया ।
तं पुव्वम्मि विमिस्सं, दीवद्धे सेल - रुद्ध - खिदी ॥२८४५॥

२०००

अर्थ :—दोनों इष्वाकार पर्वतोंका विस्तार दो हजार योजन प्रमाण है। **इसको पूर्वोक्त** कुल-पर्वतोके समस्त विस्तारमें मिला देनेपर पुष्करार्धद्वीपमें पर्वतरुद्ध-क्षेत्रका प्रमाण (२००० + ३५३६८४$\frac{४}{१९}$ = ३५५६८४$\frac{४}{१९}$ योजन) प्राप्त होता है ॥२८४५॥

जोयण-लक्ख-त्तिदयं, पणवण्ण - सहस्स छस्सयाणि पि ।
चउसीदि चउभागा, गिरि-रुद्ध-खिदीए परिमाणं ॥२८४६॥

३५५६८४ । $\frac{४}{१९}$ ।

अर्थ :—पर्वत-रुद्ध-क्षेत्रका प्रमाण तीन लाख पचपन हजार छहसौ चौरासी योजन और चार-भाग अधिक (३५५६८४$\frac{४}{१९}$ योजन) है ॥२८४६॥

भरतादि क्षेत्रोंके आदिम, मध्यम और अन्तिम विष्कम्भ लानेका विधान—

आदिम-परिहि-प्पहुदी - चरिमंतं इच्छिदाण परिहीसुं ।
गिरि-रुद्ध-खिदिं सोहिय, बारस-जुद-बे-सएहिं भजिदूणं ॥२८४७॥
सग-सग-सलाय-गुणिदं, होदि पुढं भरह-पहुदि-विजयाणं ।
इच्छिद - पदेस - रुंदा, तहिं तहिं तिण्णि णियमेण ॥२८४८॥

अर्थ :—पुष्करार्धद्वीपकी आदिम परिधिसे लेकर अन्तिमान्त इच्छित परिधियोंमेंसे पर्वतरुद्ध क्षेत्र कम करके शेषमें दोसौ बारहका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उसको अपनी-अपनी शलाकासे गुणा करनेपर नियमसे भरतादिक क्षेत्रोंका वहाँ-वहाँ इच्छित स्थान (आदि, मध्य और अन्त) में तीनो प्रकारका विस्तारप्रमाण प्राप्त होता है ॥२८४७-२८४८॥

९१७०६०५ — ३५५६८४ ÷ २१२ × १ = ४१५७९$\frac{१७३}{२१२}$ भ० क्षे० का आदि वि० ।

अहवा—

भरहादिसु विजयाणं, बाहिर - रुंदम्मि आदिमं रुंदं ।
सोहिय अड - लक्ख - हिदे, खय-वड्ढी इच्छिद - पदेसे ॥२८४९॥

अर्थ :—भरतादिक क्षेत्रोंके बाह्य-विस्तारमेंसे आदिम विस्तार घटाकर जो शेष रहे उसमें आठ लाखका भाग देनेपर इच्छित स्थानमें क्षय-वृद्धिका प्रमाण प्राप्त होता है ।।२८४९।।

(६५४४६ $\frac{१३}{२१२}$ — ४१५७९ $\frac{१७३}{२१२}$) ÷ ८००००० = $\frac{५०५९४३२}{१६९६०००००}$ यो० हानि-वृद्धिका प्रमाण ।

भरतादि सातों क्षेत्रोंका अभ्यन्तर विस्तार—

एक्कत्ताल - सहस्सा, पंच-सया जोयणाणि उणसीदी ।
तेहत्तरि - उत्तर - सद - कलाओ अब्भंतरे भरह-रुंदं ।।२८५०।।

४१५७९ । $\frac{१७३}{२१२}$ ।

अर्थ :—भरतक्षेत्रका अभ्यन्तर विस्तार इकतालीस हजार पाँचसौ उन्यासी योजन और एकसौ तिहत्तर भाग अधिक (४१५७९ $\frac{१७३}{२१२}$ योजन प्रमाण) है ।।२८५०।।

भरहस्स मूल - रुंदं, चउ - गुणिदे होदि [१]हेमवदभूए ।
अब्भंतरम्मि रुंदं, तं हरिवरिसस्स चउ - गुणिदं ।।२८५१।।

१६६३१९ । $\frac{५६}{२१२}$ । ६६५२७७ । $\frac{१२}{२१२}$ ।

अर्थ :—भरतक्षेत्रके मूल-विस्तारको चारसे गुणा करनेपर हैमवतक्षेत्रका अभ्यन्तर विस्तार और इसको भी चारसे गुणा करनेपर हरिवर्षका अभ्यन्तर विस्तार प्राप्त होता है ।।२८५१।।

१६६३१९ $\frac{५६}{२१२}$ यो० हैमवतका और ६६५२७७ $\frac{१२}{२१२}$ यो० हरिक्षेत्रका विस्तार है ।

हरि - वरिसो चउ-गुणिदो, रुंदो अब्भंतरे विदेहस्स ।
सेस - वरिसाण रुंदं, पत्तेक्कं चउगुणा हाणी ।।२८५२।।

२६६११०८ । $\frac{४८}{२१२}$ । ६६५२७७ । $\frac{१२}{२१२}$ । १६६३१९ । $\frac{५६}{२१२}$ । ४१५७९ । $\frac{१७३}{२१२}$ ।

अर्थ :—हरिवर्ष-क्षेत्रके विस्तारको चारसे गुणा करनेपर विदेहका अभ्यन्तर विस्तार (२६६११०८ $\frac{४८}{२१२}$ यो०) ज्ञात होता है । फिर इसके आगे शेष क्षेत्रोंके विस्तारमें क्रमशः चौगुनी हानि होती गई है ।।२८५२।।

६६५२७७ $\frac{१२}{२१२}$ यो० रम्यकका, १६६३१९ $\frac{५६}{२१२}$ यो० हैरण्यवतका तथा ४१५७९ $\frac{१७३}{२१२}$ यो० ऐरावत क्षेत्रका विस्तार है ।

---

१. द. ब. ज. उ. हेमवभूये ।

एवं सग - सग - विजयाणं आदिम - रुंद - पहुदीओ ।
बाहिर[1] - चरिम - पदेसे, रुंदंतिमं त्ति वत्तव्वं ॥२८५३॥

अर्थ :—इस प्रकार अपने-अपने क्षेत्रका आदिम विस्तारादि है । अब बाह्य चरम-प्रदेशपर इनका अन्तिम विस्तार कहा जाता है ॥२८५३॥

भरतक्षेत्रका बाह्य विस्तार—

पणसट्ठि[2] - सहस्साणि, चउस्सया जोयणाणि छादालं ।
तेरस कलाओ भणिदं, भरहक्खिदि - बाहिरे रुंदं ॥२८५४॥

६५४४६ । $\frac{१३}{२१२}$ ।

अर्थ :—भरतक्षेत्रके बाह्य-भागका विस्तार पैंसठ हजार चारसौ छ्यालीस योजन और तेरह कला अधिक (६५४४६$\frac{१३}{२१२}$ यो० प्रमाण) कहा गया है ॥२८५४॥

(१४२३०२४९ — ३५५६९८४$\frac{४}{१९}$) ÷ २१२ × १ = ६५४४६$\frac{१३}{२१२}$ यो० ।

अन्य क्षेत्रोंका बाह्य विस्तार—

एत्थ वि पुव्वं[3] व णेदव्वं ।

अर्थ :—पहिलेके सदृश यहाँपर भी हैमवतादिक-क्षेत्रोंका विस्तार चौगुनी वृद्धि एवं हानि-रूप जानना चाहिए ।

विशेषार्थ :—हैमवत क्षेत्रका बाह्य विस्तार २६१७८४$\frac{५२}{२१२}$ योजन, हरिक्षेत्रका १०४७१३६$\frac{२०८}{२१२}$ यो०, विदेहका ४१८८५४७$\frac{१९६}{२१२}$ यो०, रम्यकका १०४७१३६$\frac{२०८}{२१२}$ यो० हैरण्यवतका २६१७८४$\frac{५२}{२१२}$ यो० और ऐरावतक्षेत्रका ६५४४६$\frac{१३}{२१२}$ योजन प्रमाण है ।

पद्मद्रह तथा पुण्डरीक द्रहसे निकली हुई नदियोंके पर्वतपर बहनेका प्रमाण—

पुक्खरवरद्ध - दीवे, खुल्लय-हिमवंत-सिहरि-मज्झिल्ले ।
पउमदह[4] - पुंडरीए, पुव्वावर-दिसम्मि णिग्गद-णदीओ ॥२८५५॥

अट्ठेक्क-छ-अट्ठ-तियं, अंकक्कमे जोयणाणि गिरि-उवरिं ।
गंतूणं पत्तेक्कं, दक्खिण - उत्तर - दिसम्मि जंति कमे ॥२८५६॥

३८६१८ ।

---

१. द. ब. क. ज. उ. बाहिरदुचरिमपदेसे रुंदतिवरि । २. द. ज. पणगट्ठ । ३. द. ब. क. ज. उ. पुव्वं णेदव्वं । ४. द. ब. क. ज. उ. पउमद्दमहे ।

अर्थ :—पुष्करार्धद्वीपमें क्षुद्रहिमवान् और शिखरी पर्वतपर स्थित पद्मद्रह तथा पुण्डरीक-द्रहके पूर्व और पश्चिम दिशासे निकली हुई नदियाँ आठ, एक, छह, आठ और तीन इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने प्रमाण अर्थात् अड़तीस हजार छहसौ अठारह (३८६१८) योजन पर्वतपर जाकर क्रमशः प्रत्येक दक्षिण तथा उत्तर दिशाकी ओर जाती हैं ।।२८५५-२८५६।।

पुष्करार्धद्वीपमें स्थित मेरुओंका निरूपण—

धादइसंड - पवण्णिद - दोण्णं मेरूण सव्व - वण्णणयं ।
एत्थेव य वत्तव्वं, गयदंत[1] भद्दसाल - कुरु - रहिदं ।।२८५७।।

अर्थ :—धातकीखण्डमें वर्णित दोनों मेरुओंका समस्त विवरण गजदन्त, भद्रशाल और कुरुक्षेत्रोंको छोड़कर यहाँ भी कहना चाहिए ।।२८५७।।

चारों गजदन्तोंकी बाह्याभ्यन्तर लम्बाई—

छक्केक्क-एक्क-छद्दुग - छक्केक्कं जोयणाणि मेरूणं ।
अब्भंतर - भागट्ठिय गयदंताणं चउण्हाणं ।।२८५८।।

१६२६११६ ।

अर्थ :—छह, एक, एक, छह, दो, छह और एक इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने (१६२६११६) योजन प्रमाण मेरुओंके अभ्यन्तरभागमें स्थित चारों गजदन्तोंकी लम्बाई है ।।२८५८।।

णव-इगि-दो-द्दो-चउ-णभ-दो [2]अंक-कमेण जोयणा दीहं ।
दो - मेरूणं बाहिर - गयदंताणं चउण्हाणं ।।२८५९।।

२०४२२१९ ।

अर्थ :—नौ, एक, दो, दो, चार, शून्य और दो इस अंक-क्रमसे जो संख्या प्राप्त हो उतने (२०४२२१९) योजन प्रमाण दोनों मेरुओंके बाह्यभागमें स्थित चारों गजदन्तोंकी लम्बाई है ।।२८५९।।

कुरुक्षेत्रके धनुष, ऋजुबाण और जीवाका प्रमाण—

छत्तीसं लक्खाणि, अडसट्ठि-सहस्स-ति-सय-पणतीसा ।
जोयणयाणि पोक्खर - दीवद्धे होदि कुरु - चावं ।।२८६०।।

३६६८३३५ ।

---

१. द. ब. क. ज. उ. गयदंतभद्दसालकुरुरहिदा । २. द. ब. क. ज. उ. अंककमेणणि ।

अर्थ :—पुष्करार्धद्वीपमें कुरुक्षेत्रका धनुष छत्तीस लाख अड़सठ हजार तीनसौ पैंतीस (३६६८३३५) योजन प्रमाण है ।।२८६०।।

चोद्दस-जोयण-लक्खा, छासीदि-सहस्स-णव-सयाइ इगितीसा ।
उत्तर - देव - कुरुए, पत्तेक्कं होइ रिजु - बाणो ।।२८६१।।

१४८६९३१ ।

अर्थ :—उत्तर और देवकुरुमेंसे प्रत्येकका ऋजुबाण चौदह लाख छयासी हजार नौ सौ इकतीस (१४८६९३१) योजन प्रमाण है ।।२८६१।।

चउ-जोयण-लक्खाणि, छत्तीस-सहस्स णव - सयाइं पि ।
सोलस - जुदाणि [1]कुरवे, जीवाए होदि परिमाणं ।।२८६२।।

४३६९१६ ।

अर्थ :—कुरुक्षेत्रकी जीवाका प्रमाण चार लाख छत्तीस हजार नौसौ सोलह (४३६९१६) योजन प्रमाण है ।।२८६२।।

वृत्त-विष्कम्भ निकालनेका विधान—

इसु-वग्गं चउ-गुणिदं, जीवा-वग्गम्मि खिवसु तम्हि तदो ।
चउ - गुण - बाण - विहत्ते, लद्धं वट्टस्स विक्खंभो ।।२८६३।।

अर्थ :—बाणके वर्गको चौगुनाकर उसे जीवाके वर्गमें मिला दे । फिर उसमें चौगुने बाणका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतना गोलक्षेत्रका विस्तार होता है ।।२८६३।।

($१४८६९३१^२ \times ४ + ४३६९१६^२$) ÷ (१४८६९३१ × ४) = १५१९०२६ योजन और कुछ अधिक १२१/२१२ कला ।

कुरुक्षेत्रका वृत्तविष्कम्भ तथा वक्रबाणका प्रमाण—

पण्णारस - लक्खाणि, [2]उणवीस-सहस्सयाणि छव्वीसा ।
इगिवीस - जुद - सयंसा, पोक्खर - कुरु-मंडले[3] खेत्तं ।।२८६४।।

१५१९०२६ । १२१/२१२ ।

---

१. द. कक्खे । २. द. चउवीस । ३. द. ज. मंधले ।

अर्थ :—पुष्करवरद्वीप सम्बन्धी कुरुओंका मण्डलाकार (गोल) क्षेत्रका प्रमाण पन्द्रह-लाख उन्नीस हजार छब्बीस योजन और एकसौ इक्कीस भाग अधिक अर्थात् १५१९०२६$\frac{१२१}{२१२}$ यो० है ॥२८६४॥

सत्तारस - लक्खाणिं, चोद्दस - जुद-सत्तहत्तरि-सयाणिं ।
अट्ठ-कलाओ पोक्खर - कुरु - वंसए होदि वंक - इसू ॥२८६५॥

१७०७७१४ । $\frac{८}{२१२}$ ।[1]

अर्थ :—पुष्करवरद्वीप सम्बन्धी कुरुक्षेत्रका वक्रबाण सत्तरह लाख सतहत्तरसौ चौदह योजन और आठ कला (१७०७७१४$\frac{८}{२१२}$ यो०) प्रमाण है ॥२८६५॥

भद्रशाल-वनका विस्तार—

बे लक्खा पण्णारस - सहस्स - सत्त - सय-अट्ठ-वण्णाओ ।
पुव्वावरेण दीहं दीवद्धे भद्दसाल - वणं ॥२८६६॥

२१५७५८ ।

अर्थ :—पुष्करार्धद्वीपमें भद्रशालवनकी पूर्वापर लम्बाई दोलाख पन्द्रह हजार सातसौ अट्ठावन (२१५७५८) योजन प्रमाण है ॥२८६६॥

भद्दसाल-रुंदा—२४५१ । $\frac{७०}{८८}$ ।

अर्थ :—भद्रशालवनका उत्तर-दक्षिण विस्तार (२१५७५८ यो० लम्बाई ÷ ८८)= २४५१$\frac{७०}{८८}$ योजन प्रमाण है ।

उत्तर-दक्खिण-भाग-ट्ठिवाण जो होदि भद्दसाल - वणं ।
विक्खंभो काल - वसा, उच्छिण्णो तस्स उवएसो ॥२८६७॥

अर्थ :—उत्तर-दक्षिण भागमें स्थित भद्रशालवनका जो कुछ विस्तार है, उसका उपदेश कालवश नष्ट हो गया है ॥२८६७॥

विशेषार्थ :—ऊपर जो २४५१$\frac{७०}{८८}$ यो० विस्तार कहा है वह उत्तर-दक्षिणका ही है। किन्तु गाथामें उसके उपदेशको नष्ट होना कहा गया है ।

गिरि-भद्दसाल-विजया, वक्खार - विभंग - सुरारण्णा ।
पुव्वावर - वित्थारा, पोक्खर - दीवे विदेहाणं ॥२८६८॥

---

१. द. $\frac{५११८}{२११२}$, ब $\frac{७१}{२१२}$ ।

अर्थ :—पुष्करवरद्वीपमें विदेहोंके गिरि, भद्रशाल, विजय, वक्षार, विभंग-नदियाँ और देवारण्य पूर्व-पश्चिम तक विस्तृत हैं ॥२८६८॥

मेर्वादिकोंके पूर्वापर विस्तारका प्रमाण—

एदाणं पत्तेक्कं, मंदर - सेलाण धरणि - पट्ठम्मि ।
जोयण - चउणवदि - सया, विक्खंभो पोक्खरद्धम्मि ॥२८६९॥

९४०० ।

अर्थ :—पुष्करार्धद्वीपमें इन मन्दर-पर्वतोंमेंसे प्रत्येकका विस्तार पृथिवी-पृष्ठपर नौ हजार चारसौ (९४००) योजन प्रमाण है ॥२८६९॥

दो लक्खा पण्णरसा, सहस्स-सत्तय-सयट्ठ-वण्णाओ ।
जोयणया पुव्वावर - रुंदो एक्केक्क - भद्दसालाणं ॥२८७०॥

२१५७५८ ।

अर्थ :—प्रत्येक भद्रशालका पूर्वापर विस्तार दो लाख पन्द्रह हजार सातसौ अट्ठावन (२१५७५८) योजन प्रमाण है ॥२८७०॥

उणवीस-सहस्साणि, सत्त-सया जोयणाणि चउणउदी ।
चउ - भागो पत्तेक्कं, रुंदा चउसट्ठि - विजयाणं ॥२८७१॥

१९७९४ । $\frac{1}{4}$ ।

अर्थ :—चौंसठ विजयोंमेंसे प्रत्येकका विस्तार उन्नीस हजार सातसौ चौरानबे और चतुर्थ-भागसे अधिक अर्थात् १९७९४$\frac{1}{4}$ यो० है ॥२८७१॥

दु - सहस्स - जोयणाणि, वासा वक्खारयाण पत्तेक्कं ।
पंच - सय - जोयणाणि, विभंग - सरियाण विक्खंभो ॥२८७२॥

२००० । ५०० ।

अर्थ :—प्रत्येक वक्षारका विस्तार दो हजार (२०००) योजन और प्रत्येक विभंगनदीका विस्तार पाँचसौ (५००) योजन प्रमाण है ॥२८७२॥

एक्करस - सहस्साणि, जोयणया छस्सयाणि अडसीदी ।
पत्तेक्कं वित्थारो, देवारण्णाण दोण्हं पि ॥२८७३॥

११६८८ ।

अर्थ :—दोनों देवारण्योंमेंसे प्रत्येकका विस्तार ग्यारह हजार छहसौ अठासी (११६८८) योजन प्रमाण है ।।२८७३।।

मेर्वादिकोंके विस्तार निकालनेका विधान—

मंदरगिरि - पहुदीणं, णिय-णिय-संखाए ताडिदे[1] रुंदे ।
जं लद्धं तं णिय - णिय, वासाणं होइ पिंडफलं ।।२८७४।।

इट्ठूण सेस - पिंडे, अट्ठसु लक्खेसु सोहिदे सेसं[2] ।
णिय - संखाए भजिदे, णिय-णिय-वासा हवंति पत्तेक्कं ।।२८७५।।

अर्थ :—इष्टरहित मन्दर पर्वतादिकोंके अपने-अपने विस्तारको अपनी-अपनी संख्यासे गुणित करनेपर जो प्राप्त हो वह अपने-अपने द्वारा रुद्ध विस्तार होता है । इन विस्तारोंका जो पिण्ड-फल हो उस पिण्डफलको आठ लाखमेंसे घटाकर शेषको अपनी संख्यासे भाजित करनेपर प्रत्येकका अपना-अपना विस्तार होता है ।।२८७४-२८७५।।

कच्छा और गन्धमालिनीकी सूची एवं उसकी परिधिका प्रमाण—

दुगुणम्मि भद्दसाले, मंदर - सेलस्स खिवसु विक्खंभं ।
मज्झिम-सूई-जुत्तं, सा सूची कच्छ - [3]गंधमालिणिए ।।२८७६।।

एक्कत्तालं लक्खा, चालीस - सहस्स णव - सया सोलं ।
दो - मेरूणं बाहिर, दु - भद्दसालाण अंतो त्ति ।।२८७७।।

४१४०९१६ ।

अर्थ :—भद्रशालके दुगुने विस्तारमें मन्दर पर्वतका विस्तार मिलाकर जो प्राप्त हो उसे मध्यम सूचीमें मिला देनेपर (वह) कच्छा और गन्धमालिनीकी सूची प्राप्त होती है । जिसका प्रमाण दोनों मेरु-पर्वतोंके बाहर दोनों भद्रशालवनोंके अन्त तक इकतालीस लाख चालीस हजार नौसौ सोलह (४१४०९१६) योजन है ।।२८७६-२८७७।।

विशेषार्थ :—भद्रशालवनका विस्तार २१५७५८ यो०, मन्दरपर्वतका ९४०० योजन और मध्यम सूची का प्रमाण ३७ लाख यो० है । अतः (२१५७५८ × २) + ९४०० + ३७००००० = ४१४०९१६ यो० कच्छा और गन्धमालिनीकी सूचीका प्रमाण है ।

---

१. द. ब. क. ज. उ. ताडिदं । २. द. ब. क. ज. उ. सेसिद अट्ठसु-लक्खेसु सोधिदे सव्वदेवेसं । ३. द. क. ज. उ. गंधमालीए ।

तस्सूचीए परिही, एक्कं कोडी य तीस-लक्खाणि ।
चउ-णउदि-सहस्साणि, सत्त - सया जोयणाणि छब्बीसं ॥२८७८॥

१३०९४७२६ ।

अर्थ :—इस सूचीकी परिधि एक करोड़ तीस लाख चौरानबे हजार सातसौ छब्बीस योजन प्रमाण है ॥२८७८॥

विशेषार्थ :—परिधि $= \sqrt{४१४०९१६^2 \times १०} =$ १३०९४७२६ योजन । $\frac{२०९७०४३}{२६१८९५३}$ योजन अवशेष बचे जो छोड़ दिए गये हैं ।

विदेहकी लम्बाई निकालनेका विधान और उस लम्बाईका प्रमाण—

पव्वद-विसुद्ध-परिही - सेसं चउसट्ठि - रूव - संगुणिदं ।
बारस - जुद - दु - सएहिं, भजिदम्हि विदेह - दीहत्तं ॥२८७९॥

अर्थ :—इस परिधिमेंसे पर्वत-रुद्ध क्षेत्र घटाकर शेषको चौंसठसे गुणा कर दोसौ बारहका भाग देनेपर विदेहकी लम्बाईका प्रमाण आता है ॥२८७९॥

अट्ठ-चउ-सत्त-पण-चउ-अट्ठ-ति-अंक-क्कमेण जोयणया ।
बारस - अहिय - सयंसा, तट्ठाण विदेह - दीहत्तं ॥२८८०॥

३८४५७४८ । $\frac{११२}{२१२}$ ।

अर्थ :—आठ, चार, सात, पाँच चार, आठ और तीन इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और एकसौ बारह भाग अधिक (कच्छा और गन्धमालिनीके पास) विदेहकी लम्बाई है ॥२८८०॥

विशेषार्थ :—गाथा २८४६ में पर्वतरुद्ध क्षेत्रका प्रमाण ३५५६८४$\frac{६}{१९}$ योजन कहा गया है अत :— [(१३०९४७२६ — ३५५६८४$\frac{६}{१९}$) × ६४] ÷ २१२ = ३८४५७४८$\frac{११२}{२१२}$ योजन विदेह की लम्बाई है ।

कच्छा और गन्धमालिनीकी आदिम लम्बाईका निरूपण—

सीदा - सीदोदाणं, वासं दु - सहस्स तम्मि अवणिज्जं ।
अवसेसद्धं दीहं, कणिट्ठयं कच्छ - गंधमालिणिए ॥२८८१॥

अर्थ :—इस (विदेहकी लम्बाई) मेंसे सीता-सीतोदा नदियोंका दो हजार योजन प्रमाण विस्तार घटा देनेपर जो शेष रहे उसके अर्धभाग-प्रमाण कच्छा और गन्धमालिनी देशकी कनिष्ठ (आदिम) लम्बाई है ॥२८८१॥

चउ[1]-सत्तट्ठेक्क-दुगं, णव-एक्कंक - क्कमेण जोयणया ।
छावण्ण - कला दीहं, कणिट्ठयं कच्छ - गंधमालिणिए ॥२८८२॥

१९२१८७४ । $\frac{५६}{२१२}$ ।

अर्थ :—चार, सात, आठ, एक, दो, नौ और एक इस अंक-क्रमसे जो संख्या निर्मित हो उतने योजन और छप्पन कला अधिक कच्छा और गन्धमालिनीकी आदिम लम्बाई है ॥२८८२॥

विशेषार्थ :—(३८४५७४८$\frac{११२}{२१२}$ — २०००) ÷ २ = १९२१८७४$\frac{५६}{२१२}$ योजन प्रमाण आदिम लम्बाई है ।

विजयादिकोंकी विस्तार-वृद्धिके प्रमाणका निरूपण—

विजयादीणं वासं, तव्वग्गं दस - गुणिज्ज तम्मूलं ।
गिण्हह[2] तत्तो पुह पुह, बत्तीस - गुणं च कादूणं ॥२८८३॥
बारस-जुद-दु-सर्एहिं, भजिदूणं कच्छ[3] - रुंद - मेलविदं ।
णिय - णिय - ठाणे वासो, अद्ध - सरूवं विदेहस्स ॥२८८४॥

अर्थ :—विजयादिकोंका जो विस्तार हो, उसके वर्गको दससे गुणा करके उसका वर्गमूल ग्रहण करे । पश्चात् उसे पृथक्-पृथक् बत्तीससे गुणा करके प्राप्त गुणनफलमें दोसौ बारहका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उसे कच्छा-देशके विस्तारमें मिलानेसे उत्पन्न राशि प्रमाण अपने-अपने स्थानपर अर्ध विदेहका विस्तार होता है ॥२८८४॥

क्षेत्रोंकी वृद्धिका प्रमाण—

णव - जोयणस्सहस्सा, चत्तारि सयाणि अट्ठतालं पि ।
छप्पण - कलाओ तह विजयाणं होदि परिवड्ढी ॥२८८५॥

९४४८ । $\frac{५६}{२१२}$

अर्थ :—विजयों (क्षेत्रों) की वृद्धिका प्रमाण नौ हजार चारसौ अड़तालीस योजन और छप्पन-कला अधिक है ॥२८८५॥

---

१. द. चउसत्तेक्कट्ठ । २. द. ब. क. ज. उ. गिण्हेह । ३. द. ब. उ. कच्छदूण ।

विशेषार्थ ।—गाथा २८७१ में प्रत्येक क्षेत्रका विस्तार १९७१४$\frac{3}{8}$ यो० कहा गया है। गाथा २८८३ — २८८४ के नियमानुसार—$\sqrt{[\,(१९७१४\frac{3}{8})^2 \times १० \times ३२\,]} \div २१२ =$ ९४४८$\frac{५१}{२१२}$ योजन क्षेत्रोंकी वृद्धिका प्रमाण है।

वक्षार पर्वतों की वृद्धिका प्रमाण—

चउवण्णब्भहियाणि[1], सयाणि णव जोयणाणि तह भागा।
वीसुत्तर - सयमेत्ता, वक्खार - गिरोण परिवड्ढी ॥२८८६॥

९५४ । $\frac{१२०}{२१२}$ ।

अर्थ :—नौसो चौवन योजन और एकसौ बीस भाग प्रमाण वक्षार-पर्वतोंकी वृद्धिका प्रमाण है ॥२८८६॥

विशेषार्थ :— गाथा २८७२ में प्रत्येक वक्षारका विस्तार २००० योजन कहा गया है, अतः $\sqrt{[\,(२०००)^2 \times १० \times ३२\,]} \div २१२ =$ ९५४$\frac{१२०}{२१२}$ यो० वक्षार-वृद्धिका प्रमाण है।

विभंग नदियोंकी वृद्धिका प्रमाण—

जोयण - सयाणि दोण्णि, अट्ठत्तीसाहियाणि तह भागा।
छत्तीस - उत्तर - सयं, विभंग - सरियाण परिवड्ढी ॥२८८७॥

२३८ । $\frac{१३६}{२१२}$ ।

अर्थ ।—दोसो अड़तीस योजन और एकसो छत्तीस भाग अधिक विभंग-नदियोंकी वृद्धिका प्रमाण है ॥२८८७॥

विशेषार्थ :—गाथा २८७२ में प्रत्येक विभंग नदीका विस्तार ५०० योजन कहा गया है, अतः $\sqrt{[\,(५००)^2 \times १० \times ३२\,]} \div २१२ =$ २३८$\frac{१३६}{२१२}$ यो०।

देवारण्यके स्थानोंमें वृद्धिका प्रमाण—

पंच - सहस्सा जोयण, पंच - सया अट्ठहत्तरी - जुत्ता।
चउसीदि - जुद - सयंसा, देवारण्णाण परिवड्ढी ॥२८८८॥

५५७८ । $\frac{१८४}{२१२}$ ।

---

१. द. ब. ब्भहियाणं।

अर्थ :—पाँच हजार पाँचसौ अठत्तर योजन और एकसौ चौरासी भाग प्रमाण देवारण्योंकी वृद्धिका प्रमाण है ॥२८८८॥

विशेषार्थ :—गाथा २८७३ में प्रत्येक देवारण्यका विस्तार ११६८८ योजन कहा गया है, अतः— $\sqrt{[(११६८८)^2 \times १० \times ३२]} \div २१२ = ५५७८\frac{१८४}{२१२}$ योजन देवारण्यकी वृद्धिका प्रमाण है ।

विजयादिकों की आदि, मध्य और अन्तिम लम्बाई निकालनेका विधान—

विजयादीणं आदिम - दीहे वड्ढि खिवेज्ज तं होदि ।
मज्झिम-दीहं मज्झिम - दीहे[1] तं खिवसु अंत - दीहत्तं ॥२८८९॥

अर्थ :—विजयादिकोंकी आदिम लम्बाईमें उपर्युक्त वृद्धि-प्रमाण मिला देनेपर उनकी मध्यम लम्बाईका प्रमाण और मध्यम लम्बाईमें वह वृद्धि-प्रमाण मिला देनेसे उनकी अन्तिम लम्बाई का प्रमाण प्राप्त होता है ॥२८८९॥

कच्छा और गन्धमालिनी देशोंकी मध्यम लम्बाई—

दो-द्दो-तिय-इगि-तिय-णव-एक्कं अंक - कमेण अंसा य ।
बारुत्तर-एक्क-सयं, मज्झिल्लं कच्छ - गंधमालिणिए ॥२८९०॥

१९३१३२२ । $\frac{११२}{२१२}$ ।

अर्थ :—दो, दो, तीन, एक, तीन, नौ और एक, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और एकसौ बारह भाग अधिक कच्छा और गन्धमालिनी देशोंकी मध्यम लम्बाई है ॥२८९०॥

गाथा २८८२ में आदिम लम्बाई $१९२१८७४\frac{५१}{२१२}$ योजन प्रमाण कही गई है अतः— $१९२१८७४\frac{५१}{२१२} + ९४४८\frac{६१}{२१२} = १९३१३२२\frac{११२}{२१२}$ योजन मध्यम लम्बाई ।

दोनों क्षेत्रोंकी अन्तिम और चित्रकूट एवं देवमाल वक्षारोंकी आदिम लम्बाईका प्रमाण—

णभ-सत्त-सत्त-णभ-चउ-णवेक्क-अंक-क्कमेण अंसा य ।
अड[2]- सट्ठि - सयं विजय-दु-वक्खार-णगाणमंतमादिल्लं ॥२८९१॥

१९४०७७० । $\frac{१६८}{२१२}$ ।

---

१. द. दीहत्तं । २. द. अट्ठट्ठि, ब. क. ज. अट्ठसट्ठि ।

अर्थ :—शून्य, सात, सात, शून्य, चार, नौ और एक, इस अंक क्रमसे जो संख्या निर्मित हो उतने योजन और एकसौ अड़सठ भाग अधिक उपर्युक्त दोनों क्षेत्रों तथा (चित्रकूट और देवमाल नामक) दो वक्षार-पर्वतोंकी क्रमशः अन्तिम और आदिम लम्बाई है ॥२८९१॥

१९३१३२२ ११९/२१२ + ९४४८ ४९/२१२ = १९४०७७० १६८/२१२ योजन ।

दोनों वक्षारोंकी मध्यम लम्बाई—

पण-दो-सग-इगि-चउरो, णवेक्क जोयण छहत्तरी अंसा ।
मज्झिल्ल चित्तकूडे, होदि तहा देवपव्वए दीहं ॥२८९२॥

१९४१७२५ । ७६/२१२ ।

अर्थ :—पांच, दो, सात, एक, चार, नौ और एक, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और छयत्तर भाग प्रमाण अधिक चित्रकूट एवं देवमाल पर्वतकी मध्यम लम्बाई (१९४१७२५ ७६/२१२ योजन) है ॥२८९२॥

१९४०७७० १६८/२१२ + ९५४ १२०/२१२ = १९४१७२५ ७६/२१२ यो० ।

दोनों वक्षारोंकी अन्तिम और दो देशोंकी आदिम लम्बाई—

णव-सग-छ-द्दो-चउ-णव-इगि कल छण्णउदि-अहिय-सयमेक्कं ।
दो - वक्खार - गिरीणं, अंतिम आदी सुकच्छ - गंधिलए ॥२८९३॥

१९४२६७९ । १९६/२१२ ।

अर्थ :—नौ, सात, छह, दो, चार, नौ और एक, इस अंक क्रमसे जो संख्या निर्मित हो उतने योजन और एकसौ छयानवे भाग अधिक दोनों वक्षार-पर्वतोंकी अन्तिम तथा सुकच्छा और गन्धिला देशकी आदिम लम्बाई (१९४२६७९ १९६/२१२ योजन) है ॥२८९३॥

१९४१७२५ ७६/२१२ + ९५४ १२०/२१२ = १९४२६७९ १९६/२१२ यो० है ।

दोनों देशोंकी मध्यम लम्बाई—

अट्ठ - दुगेक्कं दो - पण - णवेक्क अंसा य तालमेत्ताणि ।
मज्झिल्लय - दीहत्तं, विजयाए सुकच्छ - गंधिलए ॥२८९४॥

१९५२१२८ । ४०/२१२ ।

अर्थ :—आठ, दो, एक, दो, पाँच, नौ और एक, इस अंक क्रमसे जो संख्या निर्मित हो उतने योजन और चालीस भाग प्रमाण अधिक सुकच्छा और गन्धिला देशकी मध्यम लम्बाई (१९५२१२८$\frac{४०}{२१२}$ यो०) है ।।२८९४।।

१६४२६७९$\frac{१९६}{२१२}$ + ९४४८$\frac{५६}{२१२}$ = १६५२१२८$\frac{४०}{२१२}$ यो० है ।

दोनों देशोंकी अन्तिम और दो विभंगा नदियोंकी आदिम लम्बाई—

छस्सग-पण-इगि-छण्णव-एक्कं अंसा य होंति छण्णउदी ।
दो - विजयाणं अंतं, आदिल्लं दोण्णि - सरियाणं ।।२८९५।।

१६६१५७६ । $\frac{९६}{२१२}$ ।

अर्थ :—छह, सात, पाँच, एक, छह, नौ और एक, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और छयानबै भाग अधिक (१६६१५७६$\frac{९६}{२१२}$ यो०) दोनों देशोंकी अन्तिम तथा द्रहवती और ऊर्मिमालिनी नामक दो नदियोंको आदिम लम्बाई है ।।२८९५।।

१६५२१२८$\frac{४०}{२१२}$ + ९४४८$\frac{५६}{२१२}$ = १६६१५७६$\frac{९६}{२१२}$ योजन ।

दोनों विभंगा नदियोंकी मध्यम लम्बाई—

पण-इगि-अट्ठिगि-छण्णव-एक्कं अंसा य वीसमेत्ताणि ।
दहवदी - उम्मिमालिणि - मज्झिमयं होदि दीहत्तं[1] ।।२८९६।।

१६६१८१५ । $\frac{२०}{२१२}$ ।

अर्थ :—पाँच, एक, आठ, एक, छह, नौ और एक, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और बीस भाग प्रमाण अधिक (१६६१८१५$\frac{२०}{२१२}$ यो०) द्रहवती और ऊर्मिमालिनी नदियोंकी मध्यम लम्बाई है ।।२८९६।।

१६६१५७६$\frac{९६}{२१२}$ + २३८$\frac{१३६}{२१२}$ = १६६१८१५$\frac{२०}{२१२}$ योजन ।

दोनों नदियोंकी अन्तिम और दो क्षेत्रोंकी आदिम लम्बाई—

तिय-पण-खं-दुग-छण्णव-एक्कं छप्पण्ण-सहिय-सय-अंसा ।
दोण्हि णईणं अंतं, महकच्छ - सुवग्गुए आदी ।।२८९७।।

१६६२०५३ । $\frac{१५६}{२१२}$ ।

---

१. द. ब. क. ज. उ. दीहत्त ।

अर्थ :—तीन, पाँच, शून्य, दो, छह, नौ और एक, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और एकसौ छप्पन भाग अधिक दोनों नदियोंकी अन्तिम तथा महाकच्छा और सुवल्गु (सुगन्धा) नामक दो क्षेत्रोंकी आदिम लम्बाई (१९६२०५३ $\frac{१५६}{२१२}$ यो०) है ॥२८९७॥

१९६१८१५ $\frac{३०}{२१२}$ + २३८ $\frac{१३१}{२१२}$ = १९६२०५३ $\frac{१५६}{२१२}$ योजन ।

दोनों क्षेत्रोंकी मध्यम लम्बाई—

दु-ख-पंच-एक्क-सग-णव-एक्कं अंक - क्कमेण जोयणया ।
महकच्छ[1] - सुवग्गूए, दोहत्तं मज्झिम - पएसे ॥२८९८॥

१९७१५०२ ।

अर्थ :—दो, शून्य, पाँच, एक, सात, नौ और एक, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने (१९७१५०२) योजन प्रमाण महाकच्छा और सुवल्गु (सुगन्धा) क्षेत्रोंके मध्यम प्रदेशमें लम्बाई है ॥२८९८॥

१९६२०५३ $\frac{१५६}{२१२}$ + ९४४८ $\frac{५६}{२१२}$ = १९७१५०२ यो० ।

दोनों क्षेत्रोंकी अन्तिम और दो वक्षार-पर्वतोंकी आदिम लम्बाई—

णभ-पण-णव-णभ-अड-णव-एक्कं अंसा य होंति छप्पण्णं ।
दोण्हं[2] विजयाणंतं, दोण्हं पि गिरीणमादिल्लं ॥२८९९॥

१९८०९५० । $\frac{५६}{२१२}$ ।

अर्थ :—शून्य, पाँच, नौ, शून्य, आठ, नौ और एक, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और छप्पन भाग अधिक दोनों क्षेत्रोंकी अन्तिम तथा पद्मकूट और सूर्य नामक दो पर्वतोंकी आदिम लम्बाई (१९८०९५० $\frac{५६}{२१२}$ यो०) है ॥२८९९॥

१९७१५०२ + ९४४८ $\frac{५६}{२१२}$ = १९८०९५० $\frac{५६}{२१२}$ यो० है ।

दोनों वक्षार-पर्वतोंकी मध्यम लम्बाई—

चउ-णभ-णव-इगि-अड-णव-एक्कं अंसा सयं छहत्तरियं ।
वर - पउम - कूड तह सूर - पव्वए मज्झ - दीहत्तं ॥२९००॥

१९८१९०४ । $\frac{१७६}{२१२}$ ।

---

१. द. ब. क. ज. उ. कच्छणुवग्गूईए । २. द. दोण्णं पि विजयाणंतं दो पि गिरीणमादिल्लं ।

अर्थ :—चार, शून्य, नौ एक, आठ, नौ और एक, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और एकसौ छयत्तर भाग अधिक उत्तम पद्मकूट तथा सूर्य पर्वतकी मध्यम लम्बाईका प्रमाण (१९८१९०४ $\frac{१७६}{२१२}$ यो०) है ॥२९००॥

१९८०९५० $\frac{५१}{२१२}$ + ९५४ $\frac{१२०}{२१२}$ = १९८१९०४ $\frac{१७६}{२१२}$ यो० ।

दोनों पर्वतोंकी अन्तिम और दो देशोंकी आदिम लम्बाई—

णव-पण-अड-दुग-अड-णव-एक्कं अंसा य होंति चुलसीदी ।
अंतं दोसु गिरीणं, आदी वग्गूए कच्छकावदिए ॥२९०१॥

१९८२८५९ । $\frac{८४}{२१२}$ ।

अर्थ :—नौ, पांच, आठ, दो, आठ, नौ और एक, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और चौरासी भाग अधिक दोनों पर्वतोंकी अन्तिम तथा वल्गु (गन्धा) और कच्छकावती देशकी आदिम लम्बाई (१९८२८५९ $\frac{८४}{२१२}$ यो०) है ॥२९०१॥

१९८१९०४ $\frac{१७६}{२१२}$ + ९५४ $\frac{१२०}{२१२}$ = १९८२८५९ $\frac{८४}{२१२}$ यो० ।

दोनों देशोंकी मध्यम लम्बाई—

सग-णभ-तिय-दुग-णव-णव-एक्कं अंसा य चाल अहिय-सयं ।
मज्झिल्लय दोहत्तं, वग्गूए कच्छकावदिए ॥२९०२॥

१९९२३०७ । $\frac{१४०}{२१२}$ ।

अर्थ :—सात, शून्य, तीन, दो, नौ, नौ और एक, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और एकसौ चालीस भाग अधिक वल्गु (गन्धा) एवं कच्छकावतीकी मध्यम लम्बाईका प्रमाण (१९९२३०७ $\frac{१४०}{२१२}$ यो०) है ॥२९०२॥

१९८२८५९ $\frac{८४}{२१२}$ + ९४४८ $\frac{५६}{२१२}$ = १९९२३०७ $\frac{१४०}{२१२}$ यो० ।

दोनों देशोंकी अन्तिम और दो विभंगा नदियोंकी आदिम लम्बाई—

पण-पण-सग-इगि-खं-णभ-दो च्चिय अंसा छणउदि-अहिय-सयं ।
दोण्हं विजयाणंतं, आदिल्लं दोसु सरियाणं ॥२९०३॥

२००१७५५ । $\frac{१९६}{२१२}$ ।

अर्थ :—पांच, पांच, सात, एक, शून्य, शून्य और दो इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और एकसौ छयानबे भाग अधिक दोनों देशोंकी अन्तिम तथा ग्रहवती और फेनमालिनी नामक दो विभंग-नदियोंकी आदिमलम्बाईका प्रमाण (२००१७५५ $\frac{१९६}{२१२}$ योजन है ॥२९०३॥

१९९२३०७ $\frac{१४०}{२१२}$ + ९४४८ $\frac{५६}{२१२}$ = २००१७५५ $\frac{१९६}{२१२}$ योजन है ।

दोनों नदियोंकी मध्यम लम्बाई—

चउ-णव-णव-इगि-खं-खम्र-दो क्किय अंसा य वीस-अहिय-सयं ।
मज्झिल्ल - गहवदीए, दोहत्तं फेणमालिणिए ॥२९०४॥

२००१९९४ । १२०/२१२ ।

अर्थ :—चार, नौ, नौ, एक, शून्य, शून्य और दो, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और एकसौ बीस भाग अधिक ग्रहवती और फेनमालिनी नदीकी मध्यम लम्बाईका प्रमाण (२००१९९४ १२०/२१२ योजन) है ॥२९०४॥

२००१७५५ १५१/२१२ + २३८ १३१/२१२ = २००१९९४ १२०/२१२ योजन है ।

दोनों नदियोंकी अन्तिम तथा दो क्षेत्रोंकी आदिम लम्बाई—

तिय-तिय-दो-दो-खण्णभ-दो क्किय अंसा तहेव चउदालं ।
अंतं दो - सरियाणं, आदी आवत्त - वप्पकावदिए ॥२९०५॥

२००२२३३ । ४४/२१२ ।

अर्थ :—तीन, तीन, दो, दो शून्य, शून्य और दो इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और चवालीस भाग अधिक दोनों नदियोंकी अन्तिम तथा आवर्ता एवं वप्रकावती क्षेत्रकी आदिम लम्बाई (२००२२३३ ४४/२१२ यो०) है ॥२९०५॥

२००१९९४ १२०/२१२ + २३८ १३१/२१२ = २००२२३३ ४४/२१२ यो० ।

दोनों क्षेत्रोंकी मध्यम लम्बाई—

एक्कट्ठ-छ-एक्केक्कं, खं - दुग अंसा तहेव एक्क - सयं ।
मज्झिल्लय - दोहत्तं, आवत्ता - वप्पकावदिए[1] ॥२९०६॥

२०११६८१ । १००/२१२ ।

अर्थ :—एक, आठ, छह, एक, एक, शून्य और दो इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और एकसौ भाग अधिक आवर्ता तथा वप्रकावती क्षेत्रोंकी मध्यम लम्बाई (२०११६८१ १००/२१२ यो०) है ॥२९०६॥

२००२२३३ ४४/२१२ + ९४४८ ५६/२१२ = २०११६८१ १००/२१२ यो० ।

---

१. द. ब. ज. वप्पकावदिए ।

दोनों क्षेत्रोंकी अन्तिम तथा दो वक्षार पर्वतोंकी आदिम लम्बाई—

णव-दुगिगि-दोण्हि-खं-दुग, अंसा छप्पण्ण-अहिय-एक्कसयं ।
दो - विजयाणं अंतं, आदिल्लं णलिण - णाग - णगे ॥२९०७॥

२०२११२९ । $\frac{१५६}{२१२}$ ।

अर्थ :—नौ, दो, एक, एक, दो, शून्य और दो, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और एकसौ छप्पन भाग अधिक दोनों क्षेत्रोंकी अन्तिम तथा नलिन एवं नाग पर्वतकी आदिम लम्बाई (२०२११२९$\frac{१५६}{२१२}$ योजन) है ॥२९०७॥

२०११६८१$\frac{१०५}{२१२}$+९४४८$\frac{५१}{२१२}$=२०२११२९$\frac{१५६}{२१२}$ यो० ।

दोनों वक्षार पर्वतोंकी मध्यम लम्बाई—

चउ-अड-खं-दुग-दु-ख-दो, [1]अंक-कमे जोयणाणि अंसा य ।
चउसट्ठी मज्झिल्ले, णाग - णगे णलिण - कूडम्मि ॥२९०८॥

२०२२०८४ । $\frac{६४}{२१२}$ ।

अर्थ :—चार, आठ, शून्य, दो, दो, शून्य और दो, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और चौंसठ भाग अधिक नाग-नगकी और नलिन कूटकी मध्यम लम्बाईका प्रमाण (२०२२०८४$\frac{६४}{२१२}$ यो०) है ॥२९०८॥

२०२११२९$\frac{१५६}{२१२}$+९५४$\frac{१२०}{२१२}$=२०२२०८४$\frac{६४}{२१२}$ यो० ।

दोनों पर्वतोंकी अन्तिम और दो क्षेत्रोंकी आदिम लम्बाई—

अड-तिय-णभ-तिय-दुग-णभ-दो च्चिय अंसा सयं च चुलसीदो ।
दोसु गिरीणं अंतं, आदिल्लं दोसु विजयाणं ॥२९०९॥

२०२३०३८ । $\frac{१८४}{२१२}$ ।

अर्थ :—आठ, तीन, शून्य, तीन, दो, शून्य और दो, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और एकसौ चौरासी भाग अधिक दोनों पर्वतोंकी अन्तिम तथा लांगलावर्ता एवं महावप्रा देशकी आदिम लम्बाई (२०२३०३८$\frac{१८४}{२१२}$ यो०) है ॥२९०९॥

२०२२०८४$\frac{६४}{२१२}$+९५४$\frac{१२०}{२१२}$=२०२३०३८$\frac{१८४}{२१२}$ यो० ।

---

१. द. ब. क. ज. उ. अंककमे ।

दोनों क्षेत्रोंकी मध्यम लम्बाई—

सग-अड-चउ-दुग-तिय-णभ-दो चिचय-अंसा तहेव चुलसीदी ।
मज्झिल्लय - दीहत्तं, महवप्पे लंगलावत्ते ॥२६१०॥

२०३२४८७ । $\frac{२८}{२१२}$ ।

अर्थ :—सात, आठ, चार, दो, तीन, शून्य और दो, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और अट्ठाईसभाग अधिक महावप्रा एवं लांगलावर्ताकी मध्यम लम्बाईका प्रमाण (२०३२४८७$\frac{२८}{२१२}$ यो०) है ॥२६१०॥

२०२३०३८$\frac{१८४}{२१२}$+९४४८$\frac{५६}{२१२}$=२०३२४८७$\frac{२८}{२१२}$ यो० ।

दोनों क्षेत्रोंकी अन्तिम और दो विभंगा नदियोंकी आदिम लम्बाई—

पण-तिय-णव-इगि-चउ-णभ-दोण्णि य अंसा तहेव चुलसीदी ।
दो - विजयाणं अंतं, आदिल्लं दोसु सरियाणं ॥२६११॥

२०४१९३५ । $\frac{८४}{२१२}$ ।

अर्थ :—पांच, तीन, नौ, एक, चार, शून्य और दो, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और चौरासी भाग अधिक दोनों विजयोंकी अन्तिम तथा गम्भीरमालिनी एवं पंकवती नामक दो नदियोंकी आदिम लम्बाई (२०४१९३५$\frac{८४}{२१२}$ योजन) है ॥२६११॥

२०३२४८७$\frac{२८}{२१२}$+९४४८$\frac{५६}{२१२}$=२०४१९३५$\frac{८४}{२१२}$ यो० ।

दोनों नदियोंकी मध्यम लम्बाई—

चउ-सत्त-एक्क-दुग-चउ-णभ-दो अंसा कमेण अट्ठं च ।
गंभीरमालिणीए, मज्झिल्लं पंकवविगाए ॥२६१२॥

२०४२१७४ । $\frac{८}{२१२}$ ।

अर्थ :—चार, सात, एक, दो, चार, शून्य और दो, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और आठ भाग अधिक गम्भीरमालिनी एवं पंकवती नदियोंकी मध्यम लम्बाई (२०४२१७४$\frac{८}{२१२}$ योजन) है ॥२६१२॥

२०४१९३५$\frac{८४}{२१२}$+२३८$\frac{१३६}{२१२}$=२०४२१७४$\frac{८}{२१२}$ यो० ।

दोनों नदियोंकी अन्तिम और दो देशोंकी आदिम लम्बाई—

दुग-एक्क-चउ-दु-चउ-णभ-दो च्चिय अंसा सयं च चउदालं।
दोण्णि णदीणं अंतं, आदिल्लं दोसु विजयाणं ॥२६१३॥

२०४२४१२ । $\frac{144}{212}$ ।

अर्थ :—दो, एक, चार, दो, चार, शून्य और दो इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और एक सौ चवालीस भाग अधिक दोनों नदियोंकी अन्तिम और पुष्कला तथा सुवप्रा नामक दो क्षेत्रोंकी आदिम लम्बाई (२०४२४१२$\frac{144}{212}$ यो०) है ॥२६१३॥

$2042174\frac{6}{212}+238\frac{131}{212}=2042412\frac{144}{212}$ यो० ।

दोनों क्षेत्रोंकी मध्यम लम्बाई—

णभ-छक्कड-इगि-पण-णभ-दो च्चिय अंसाणि दोण्णि-सयमेत्तं।
मज्झिल्लय - दीहत्तं, पोक्खल - विजए सुवप्पाए ॥२६१४॥

२०५१८६० । $\frac{200}{212}$ ।

अर्थ :– शून्य, छह, आठ, एक, पाँच, शून्य और दो, इस अंक क्रमसे जो संख्या निर्मित हो उतने योजन और दो सौ भाग प्रमाण अधिक पुष्कला एवं सुवप्रा विजयकी मध्यम लम्बाई (२०५१८६०$\frac{200}{212}$ यो०) है ॥२६१४॥

$2042412\frac{144}{212}+9448\frac{56}{212}=2051860\frac{200}{212}$ यो० ।

दोनों क्षेत्रोंकी अन्तिम और दो वक्षार पर्वतोंकी आदिम लम्बाई—

णव-णभ-तिय-इगि-छण्णभ-दो च्चिय अंसा य होंति चउदालं।
दो - विजयाणं अंतं, आदिल्लं एक्कसेल - चंद - णगे ॥२६१५॥

२०६१३०९ । $\frac{44}{212}$ ।

अर्थ :—नौ, शून्य, तीन, एक, छह, शून्य और दो, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और चवालीस भाग अधिक दोनों विजयोंकी अन्तिम तथा एकशैल और चन्द्रनगकी आदिम लम्बाई (२०६१३०९$\frac{44}{212}$ योजन) है ॥२६१५॥

$2051860\frac{200}{212}+9448\frac{56}{212}=2061309\frac{44}{212}$ यो० ।

दोनों वक्षार-पर्वतोंकी मध्यम लम्बाई—

तिय-छ-द्दो-द्दो-छण्णभ-दो च्चिय अंसा सयं च चउसट्ठी।
मज्झिल्लय - दीहत्तं, होदि पुढं एक्कसेल - चंदणगे ॥२६१६॥

२०६२२६३ । $\frac{114}{212}$ ।

अर्थ :—तीन, छह, दो, दो, छह, शून्य और दो, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और एकसौ चौंसठ भाग अधिक एकशैल एवं चन्द्रनगकी मध्यम लम्बाई (२०६२२६३ $\frac{१६४}{२१२}$ यो०) है ॥२११६॥

२०६१३०९ $\frac{४४}{२१२}$ + ९५४ $\frac{१२०}{२१२}$ = २०६२२६३ $\frac{१६४}{२१२}$ यो० ।

दोनों पर्वतोंकी अन्तिम और दो देशोंकी आदिम लम्बाई—

अट्ठेक्क-दुग-तिग-छण्णभ-दो जिणय अंसा[1] बुहत्तरी अंतं ।
दीहं दोसु गिरीणं, आदी वप्पाए पोक्खलावदिए ॥२११७॥

२०६३२१८ । $\frac{७२}{२१२}$ ।

अर्थ :- आठ, एक, दो, तीन, छह, शून्य और दो, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और बहत्तर भाग अधिक दोनों पर्वतोंकी अन्तिम तथा वप्रा एवं पुष्कलावती देशकी आदिम लम्बाई (२०६३२१८ $\frac{७२}{२१२}$ यो०) है ॥२११७॥

२०६२२६३ $\frac{१६४}{२१२}$ + ९५४ $\frac{१२०}{२१२}$ = २०६३२१८ $\frac{७२}{२१२}$ यो० ।

दोनों देशोंकी मध्यम लम्बाई—

छच्छक्क-छक्क-दुग-सग-णभ-दुग अंसा सयं च अडवीसं ।
मज्झिल्लय - दीहत्तं, वप्पाए पोक्खलावदिए ॥२११८॥

२०७२६६६ । $\frac{१२८}{२१२}$ ।

अर्थ :—छह, छह, छह, दो, सात, शून्य और दो इस अंक क्रमसे जो संख्या निर्मित हो उतने योजन और एकसौ अट्ठाईस भाग अधिक वप्रा एवं पुष्कलावती देशकी मध्यम लम्बाईका प्रमाण (२०७२६६६ $\frac{१२८}{२१२}$ यो०) है ॥२११८॥

२०६३२१८ $\frac{७२}{२१२}$ + ९४४८ $\frac{५६}{२१२}$ = २०७२६६६ $\frac{१२८}{२१२}$ यो० ।

दोनों देशोंकी अन्तिम और देवारण्य एवं भूतारण्यकी आदिम लम्बाई—

चउ-एक्क-एक्क-दुग-अड-णभ-दो अंसा सयं च चुलसीदी ।
वप्पाए अंत - दीहं, आदिल्लं देव - भूदरण्णाणं ॥२११९॥

२०८२११४ । $\frac{१८४}{२१२}$ ।

अर्थ :—चार, एक, एक, दो, आठ, शून्य और दो, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और एकसौ चौरासी भाग अधिक वप्रा (और पुष्कलावती) देशकी अन्तिम तथा देवारण्य एवं भूतारण्यकी आदिम लम्बाई (२०८२११४ $\frac{१८४}{२१२}$ योजन) है ॥२११९॥

२०७२६६६ $\frac{१२८}{२१२}$ + ९४४८ $\frac{५६}{२१२}$ = २०८२११४ $\frac{१८४}{२१२}$ यो० ।

---

१. द. ब. क. ज. ठ. अंशा य ।

देवारण्य-भूतारण्यकी मध्यम लम्बाई—

तिय-णव-छक्सग-अड-णभ-दो च्चिय अंसा सयं च छप्पण्णं ।
मज्झिल्लय - दीहत्तं, पत्तेक्कं देव - [1]भूदरण्णाणं ॥२९२०॥

२०८७६९३ । $\frac{१५६}{२१२}$ ।

अर्थ :—तीन, नौ, छह, सात, आठ, शून्य और दो, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और एकसौ छप्पन भाग अधिक देवारण्य एवं भूतारण्यमेंसे प्रत्येककी मध्यम लम्बाई (२०८७६९३ $\frac{१५६}{२१२}$ यो०) है ॥२९२०॥

२०८२११४ $\frac{१८४}{२१२}$ + ५५७८ $\frac{१८४}{२१२}$ − २०८७६९३ $\frac{१५६}{२१२}$ यो० ।

देवारण्य-भूतारण्यकी अन्तिम लम्बाई—

दो-सग-दुग-तिग-णव-णभ-दो च्चिय अंसा सयं च अडवीसं ।
पत्तेक्कं अंतिल्लं, दीहत्तं देव - भूदरण्णाणं[2] ॥२९२१॥

२०९३२७२ । $\frac{१२८}{२१२}$ ।

अर्थ : –दो, सात, दो, तीन, नौ, शून्य और दो इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और एकसौ अट्ठाईस भाग अधिक देवारण्य एव भूतारण्यमेंसे प्रत्येक अन्तिम लम्बाईका प्रमाण (२०९३२७२ $\frac{१२८}{२१२}$ योजन) है ॥२९२१॥

२०८७६९३ $\frac{१५६}{२१२}$ + ५५७८ $\frac{१८४}{२१२}$ = २०९३२७२ $\frac{१२८}{२१२}$ यो० ।

अन्य क्षेत्रादिकोंकी लम्बाईका प्रमाण ज्ञात करनेकी विधि—

कच्छादि - प्पमुहाणं तिविहं - वियप्पं णिरूविदं सव्वं ।
विजयाए मंगलावदि - पमुहाए तं च वत्तव्वं ॥२९२२॥

अर्थ :—कच्छादिकोंकी तीन प्रकारकी लम्बाईका सम्पूर्ण कथन किया जा चुका है । अब मंगलावती-प्रमुख क्षेत्रादिकोंकी लम्बाईका प्रमाण बतलाया जाता है ॥२९२२॥

कच्छादिसु विजयाणं, आदिम-मज्झिल्ल-चरिम-दीहत्तं ।
विजयड्ढ - रंमवस्सिय, अड्ढ-कदे इच्छिदस्स दीहत्तं ॥२९२३॥

---

१. क. ज. ठ. रण्णाए । २ द. ब. क. ज. ठ. रण्णाए ।

अर्थ :—कच्छादिक क्षेत्रोंकी आदिम, मध्यम और अन्तिम लम्बाईमेंसे विजयार्धके विस्तार को घटाकर शेषको आधा करनेपर इच्छित क्षेत्रोंकी लम्बाईका प्रमाण प्राप्त होता है ।।२९२३।।

पद्मा देशसे मंगलावती देश पर्यन्तकी सूचीका प्रमाण प्राप्त करनेकी विधि—

सोहसु मज्झिम - सूइए, मेरुगिरिं[1] दुगुण-भद्दसाल-वणं ।
सा सूई पम्मादो, परियंतं मंगलावदिए ।।२९२४।।

अर्थ :—पुष्करार्धकी मध्यम सूचीमेंसे मेरु-पर्वत और दुगुने भद्रशालवनके विस्तारको घटा देनेपर जो शेष रहे उतना मंगलावतीसे पद्मादि देश पर्यन्त सूचीका प्रमाण है ।।२९२४।।

विशेषार्थ :—उपर्युक्त गाथानुसार सूची व्यास इसप्रकार है—पुष्करार्ध द्वीपका मध्यम सूची व्यास ३७ लाख योजन, मेरु विस्तार ९४०० योजन तथा भद्रशालका दुगुना विस्तार (२१५७५८ × २) = ४३१५१६ योजन है अतः ३७००००० — (९४०० + ४३१५१६) = ३२५९०८४ योजन है ।

किन्तु सूची व्यासके इस प्रमाण को, इसकी परिधिके प्रमाणको, विदेह क्षेत्रकी लम्बाई प्राप्त करनेकी विधि एवं विदेह क्षेत्रकी लम्बाईके प्रमाणको प्रदर्शित करनेवाली ४ गाथाएँ छूटी हुई ज्ञात होती हैं । जिनका गणित निम्न प्रकार है—

पद्मासे मंगलावती पर्यन्तकी सूचीका प्रमाण—३२५९०८४ यो० है ।

इसकी परिधिका प्रमाण—$\sqrt{३२५९०८४^{२} \times १०}$ = १०३०६१२९ योजन है ।

विदेह क्षेत्रकी लम्बाई $= \frac{(\text{परिधि} - \text{पर्वतरुद्ध क्षेत्र}) \times ६४}{२१२}$

$= \frac{(१०३०६१२९ - ३५५६८४\frac{४}{५}) \times ६४}{२१२}$

$= \frac{(९९५०४४४\frac{१}{५}) \times ६४}{२१२} = ३००३९०७\frac{१४४}{२१२}$ यो० ।

पद्मा एवं मंगलावती क्षेत्रकी आदिम लम्बाई—

तिदय-पण-णव[2]-ख-णभ-पण-एक्कं अंसा चउत्तरं दु-सयं ।
अंक - कमे दीहत्तं, आदिल्ल - प्पउम - मंगलावदिए ।।२९२५।।

१५००९५३ । $\frac{२०४}{२१२}$ ।

---

१. द. ब. क. ज. उ. गिरिद । २. द. ब. क. ज. उ. णवयखंगणभपणएक्कसा ।

अर्थ :—तीन, पांच, नौ, शून्य, शून्य, पांच और एक, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और दोसौ चार भाग अधिक पद्मा तथा मंगलावतीक्षेत्रकी आदिम लम्बाईका (१५००९५३ $\frac{२०४}{२१२}$ योजन) प्रमाण है ।।२९२५।।

विशेषार्थ :—पद्मा और मंगलावती देशोंकी लम्बाई

$$= \frac{\text{विदेहकी लम्बाई — सीतोदाका विस्तार}}{२}$$

$$= \frac{३००३९०७\frac{१९६}{२१२} - २००० \text{ यो०}}{२} = \frac{३००१९०७\frac{१९६}{२१२}}{२}$$

= १५००९५३ $\frac{२०४}{२१२}$ योजन है ।

दोनों क्षेत्रोंकी मध्यम लम्बाई—

पण-णभ-पण-इगि-णव-चउ-एक्कं अंसा सयं च अडदालं ।
मज्झिल्लय - दोहत्तं, पम्माए मंगलावदिए ।।२९२६।।

१४९१५०५ । $\frac{१४८}{२१२}$ ।

अर्थ :—पांच, शून्य, पांच, एक, नौ, चार और एक, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और एकसौ अड़तालीस भाग अधिक पद्मा एवं मंगलावती क्षेत्रकी मध्यम लम्बाई (१४९१५०५ $\frac{१४८}{२१२}$ यो०) है ।।२९२६।।

१५००९५३ $\frac{२०४}{२१२}$ — ९४४८ $\frac{५६}{२१२}$ = १४९१५०५ $\frac{१४८}{२१२}$ योजन ।

दोनों क्षेत्रोंकी अन्तिम और दो वक्षार-पर्वतोंकी आदिम लम्बाई—

सग-पण-णभ-दुग-अड-चउ-एक्कं अंसा कमेण बाणउदी ।
दो - विजयाणं अंतं, [1]वक्खार - णगाण आदिल्लं ।।२९२७।।

१४८२०५७ । $\frac{९२}{२१२}$ ।

अर्थ :—सात, पांच, शून्य, दो, आठ, चार और एक, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और बानबै भाग अधिक दोनों क्षेत्रोंकी अन्तिम एवं श्रद्धावान् और आत्माञ्जनवक्षार-पर्वतोंकी आदिम लम्बाई (१४८२०५७ $\frac{९२}{२१२}$ यो०) है ।।२९२७।।

१४९१५०५ $\frac{१४८}{२१२}$ — ९४४८ $\frac{५६}{२१२}$ = १४८२०५७ $\frac{९२}{२१२}$ यो० ।

---

१. द वक्खारहण ।

दोनों वक्षार-पर्वतोंकी मध्यम लम्बाई—

दुग-णभ-एक्किगि-अड-चउ-एक्कं अंसा सयं च चुलसीदी।
सद्धावदिमायंजण[1] - गिरिम्मि मज्झिल्ल - दीहत्तं ॥२९२८॥

१४८११०२ । १८४/२१२ ।

अर्थ :—दो शून्य, एक, एक आठ, चार और एक, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और एकसौ चौरासी भाग अधिक श्रद्धावान् और आत्माजन पर्वतकी मध्यम लम्बाई (१४८११०२ १८४/२१२ यो०) है ॥२९२८॥

१४८२०५७६ १२/२१२ — ९५४ १२०/२१२ = १४८११०२ १८४/२१२ यो० ।

दोनों पर्वतोंकी अन्तिम तथा दो क्षेत्रोंकी आदिम लम्बाई—

अट्ठ-चउ-एक्क-णभ-अड-चउ-एक्कंसा कमेण चउसट्ठी ।
दोसु गिरीणं अंतं, आदीओ दोण्णि - विजयाणं ॥२९२९॥

१४८०१४८ । ६४/२१२ ।

अर्थ :- आठ, चार, एक, शून्य, आठ, चार और एक, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और चौंसठ भाग अधिक दोनों पर्वतोंकी अन्तिम और सुपद्मा एवं रमणीया नामक दो देशोंकी आदिम लम्बाईका प्रमाण (१४८०१४८ ६४/२१२ योजन) है ॥२९२९॥

१४८११०२ १८४/२१२ — ९५४ १२०/२१२ = १४८०१४८ ६४/२१२ योजन ।

दोनों क्षेत्रोंकी मध्यम लम्बाई—

खं-णभ-सग-णभ-सग-चउ-इगि-अंसा अट्ठ[2] मज्झ-दीहत्तं ।
पत्तेक्क सुपम्माए, [3]रमणिज्जा - णाम - विजयाए ॥२९३०॥

१४७०७०० । ८/२१२ ।

अर्थ :- शून्य, शून्य, सात, शून्य, सात, चार और एक, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और आठ भाग प्रमाण अधिक सुपद्मा तथा रमणीया नामक दो देशोंमेंसे प्रत्येककी मध्यम लम्बाई (१४७०७०० ८/२१२ यो०) है ॥२९३०॥

१४८०१४८ ६४/२१२ — १४४८ ५६/२१२ = १४७०७०० ८/२१२ यो० ।

---

१. द. ब. क. ज. उ. सद्धावदि । २. द. ब. क. ज. उ. अट्ठेव । ३. ब. उ. रमणिणाम ।

दोनों क्षेत्रोंकी अन्तिम और दो विभंग नदियोंकी आदिम लम्बाई—

इगि-पण-दो-इगि-छ-चउ-एक्कं अंसा सयं च चउसट्ठी ।
दो-विजयाणं अंतं, आदिल्लं दो - विभंग - सरियाणं ।।२९३१।।

१४६१२५१ । $\frac{१६४}{२१२}$ ।

अर्थ :—एक, पाँच, दो, एक, छह, चार और एक, इस अंक क्रमसे जो संख्या निर्मित हो उतने योजन और एकसौ चौसठभाग अधिक दोनों क्षेत्रोंकी अन्तिम तथा क्षीरोदा एवं उन्मत्तजला नामक दो विभंग-नदियोंकी आदिम लम्बाई (१४६१२५१$\frac{१६४}{२१२}$ यो०) है ।।२९३१।।

१४७०७०० $\frac{४}{२१२}$ — ९४४८$\frac{५२}{२१२}$=१४६१२५१$\frac{१६४}{२१२}$ यो० ।

दोनों विभग नदियोंकी मध्यम लम्बाई—

तिय-इगि-णभ-इगि-छ-चउ-एक्कं अंसा तहेव अडवीसं ।
मज्झिल्लं खीरोदे[1], उम्मत्त - णइम्मि पत्तेक्कं ।।२९३२।।

१४६१०१३ । $\frac{२८}{२१२}$ ।

अर्थ :—तीन, एक, शून्य, एक, छह, चार और एक, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और अट्ठाईस भाग अधिक क्षीरोदा एवं उन्मत्तजला नदियोमेंसे प्रत्येककी मध्यम लम्बाई (१४६१०१३$\frac{२८}{२१२}$ यो०) है ।।२९३२।।

१४६१२५१$\frac{१६४}{२१२}$ — २३८$\frac{१३६}{२१२}$=१४६१०१३$\frac{२८}{२१२}$ यो० ।

दोनों नदियोंकी अन्तिम और दो देशोंकी आदिम लम्बाई—

चउ-सग-सग-णभ-छक्कं, चउ-एक्कंसा सयं च चउरहियं ।
दोण्णं णईणमंतिम - दोहं [2]आदिल्ल - दोसु विजयाणं ।।२९३३।।

१४६०७७४ । $\frac{१०४}{२१२}$ ।

अर्थ :—चार, सात, सात, शून्य, छह, चार और एक, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और एकसौ चार भाग अधिक दोनों नदियोकी अन्तिम तथा महापद्मा एवं सुरम्या नामक दो देशोंकी आदिम लम्बाई (१४६०७७४$\frac{१०४}{२१२}$ यो०) है ।।२९३३।।

१४६१०१३$\frac{२८}{२१२}$ + २३८$\frac{१३६}{२१२}$=१४६०७७४$\frac{१०४}{२१२}$ यो० ।

---

१. द. क. ज. ठ. खारोदे । २. द. ब. क. ज. उ. प्रादीणो ।

दोनों देशोंकी मध्यम लम्बाई—

छ-दो-तिय-इगि-पण-चउ-एक्कं अंसा तहेव अडदालं।
मज्झिल्लय - वित्थारं, [1]महपम्म - सुरम्म - विजयाए ॥२९३४॥

१४५१३२६ । $\frac{४८}{२१२}$ ।

अर्थ :– छह, दो, तीन, एक, पाँच, चार और एक, इस अंक क्रमसे जो संख्या निर्मित हो उतने योजन और अड़तालीस भाग अधिक महापद्मा और सुरम्या नामक देशका मध्यम विस्तार (लम्बाई १४५१३२६ $\frac{४८}{२१२}$ यो०) है ॥२९३४॥

१४६०७७४ $\frac{२०४}{२१२}$ + ९४४८ $\frac{५६}{२१२}$ = १४५१३२६ $\frac{४८}{२१२}$ यो० ।

दोनों देशोंकी अन्तिम और दो वक्षार-पर्वतोंकी आदिम लम्बाई—

सग-सग-अड-इगि-चउ-चउ-एक्कं अंसा य दु-सय-चउरहियं।
दो - विजयाणं अंतं, आदिल्लं दोसु वक्खारे ॥२९३५॥

१४४१८७७ । $\frac{२०४}{२१२}$ ।

अर्थ :– सात, सात, आठ, एक, चार, चार और एक, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और दोसौ चार भाग अधिक दोनों देशोंकी अन्तिम तथा अञ्जन एवं विजटावान् इन दो वक्षार-पर्वतोंकी आदिम लम्बाई (१४४१८७७ $\frac{२०४}{२१२}$ योजन) है ॥२९३५॥

१४५१३२६ $\frac{४८}{२१२}$ — ९४४८ $\frac{५६}{२१२}$ = १४४१८७७ $\frac{२०४}{२१२}$ यो० ।

दोनों वक्षार-पर्वतोंकी मध्यम लम्बाई—

तिय-दो-णव-णभ-चउ-चउ-एक्कं अंसा य होंति चुलसीदी।
अंजण - विजडावदिए, होदि हु मज्झिल्ल - दीहत्तं ॥२९३६॥

१४४०९२३ । $\frac{८४}{२१२}$ ।

अर्थ :—तीन, दो, नौ, शून्य, चार, चार और एक, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और चौरासी भाग अधिक अञ्जन और विजटावान्-पर्वतकी मध्यम लम्बाई (१४४०९२३ $\frac{८४}{२१२}$ यो०) है ॥२९३६॥

१४४१८७७ $\frac{२०४}{२१२}$ — ९५४ $\frac{१२०}{२१२}$ = १४४०९२३ $\frac{८४}{२१२}$ यो० ।

---

१. द. ब. क. ज. उ. महपम्मएसूपम्मए ।

दोनों वक्षार-पर्वतोंकी अन्तिम और दो देशोंकी आदिम लम्बाई—

अट्ठ-छ-णव-णव-तिय-चउ-एक्कं अंसा छहत्तरेक्क-सयं ।
दो - वक्खार - गिरीणं, अंतं आदी हु दोण्णि-विजयाणं ॥२९३७॥

१४३९९६८ । $\frac{१७६}{२१२}$ ।

अर्थ :—आठ, छह, नौ, नौ, तीन, चार और एक, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और एकसौ छयत्तर भाग अधिक दो वक्षार-पर्वतोंकी अन्तिम तथा रम्या एवं पद्मकावती नामक दो देशोंकी आदिम लम्बाईका प्रमाण (१४३९९६८$\frac{१७६}{२१२}$ यो०) है ॥२९३७॥

१४४०९२३$\frac{८४}{२१२}$ — ९५४$\frac{१२०}{२१२}$ = १४३९९६८$\frac{१७६}{२१२}$ यो० ।

दोनों देशोंकी मध्यम लम्बाई—

णभ-दो-पण-णभ-तिय-चउ-एक्कं अंसा सयं च वीसहियं ।
मज्झिल्लय - दीहत्तं, रम्माए पम्मकावदिए ॥२९३८॥

१४३०५२० । $\frac{१२०}{२१२}$ ।

अर्थ :—शून्य, दो, पांच, शून्य, तीन, चार और एक, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और एकसौ बीस भाग अधिक रम्या एवं पद्मकावती देशकी मध्यम लम्बाई (१४३०५२०$\frac{१२०}{२१२}$ यो०) है ॥२९३८॥

१४३९९६८$\frac{१७६}{२१२}$ — ९४४८$\frac{५६}{२१२}$ = १४३०५२०$\frac{१२०}{२१२}$ यो० ।

दोनों देशोंकी अन्तिम और दो विभंग-नदियोंकी आदिम लम्बाई—

दो-सग-णभ-एक्क-दुगं, चउ - एक्कंसा तहेव चउसट्ठी ।
दो-विजयाणं अंतं, आदिल्लं दो - विभंग - सरियाणं ॥२९३९॥

१४२१०७२ । $\frac{६४}{२१२}$ ।

अर्थ :—दो, सात, शून्य, एक, दो, चार और एक, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और चौंसठ भाग अधिक दोनों देशोंकी अन्तिम तथा मत्तजला एवं सीतोदा नामक दो विभंग नदियोंकी आदिम लम्बाई (१४२१०७२$\frac{६४}{२१२}$ यो०) है ॥२९३९॥

१४३०५२०$\frac{१२०}{२१२}$ — ९४४८$\frac{५६}{२१२}$ = १४२१०७२$\frac{६४}{२१२}$ यो० ।

दोनों नदियोंकी मध्यम लम्बाई –

तिय-तिय-अड-णभ-दो-चउ-एक्कं अंसा सयं च चालहियं ।
मत्तजले सीदोदे, पत्तेक्कं मज्झ - दीहत्तं ॥२६४०॥

१४२०८३३ । १४०/२१२ ।

अर्थ :—तीन, तीन, आठ, शून्य, दो, चार और एक, इस अंक क्रमसे जो संख्या निर्मित हो उतने योजन और एकसौ चालीस भाग अधिक मत्तजला और सीतोदामेंसे प्रत्येककी मध्यम लम्बाई (१४२०८३३ १४०/२१२ यो०) है ॥२६४०॥

१४२१०७२ ४/२१२ — २३८ १३१/२१२ = १४२०८३३ १४०/२१२ यो० ।

दोनों नदियोंकी अन्तिम और दो देशोंकी आदिम लम्बाई—

पण-णव-पण-णभ-दो-चउ-एक्कं अंसा य होंति चत्तारि ।
दो - सरियाणं अंतं, आदिल्लं दोसु विजयाणं ॥२६४१॥

१४२०५९५ । ४/२१२ ।

अर्थ :—पांच, नौ, पाँच, शून्य, दो, चार और एक, इस अक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और चार भाग अधिक दोनों नदियोंकी अन्तिम तथा शंखा एव वप्रकावती नामक दो देशोंकी आदिम लम्बाईका प्रमाण (१४२०५९५ ४/२१२ यो०) है ॥२६४१॥

१४२०८३३ १४०/२१२ — २३८ १३१/२१२ = १४२०५९५ ४/२१२ यो० ।

दोनों देशोंकी मध्यम लम्बाई—

छ-चचउ-इगि-एक्केक्कं, चउरेक्कंसा सयं च सट्ठि-जुदं ।
मज्झिल्लय - दीहत्तं, संखाए वप्पकावदिए ॥२६४२॥

१४१११४६ । १६०/२१२ ।

अर्थ :—छह, चार, एक, एक, एक, चार और एक, इस अक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और एकसौ साठ भाग अधिक शङ्खा एवं वप्रकावत्ती देशकी मध्यम लम्बाई (१४१११४६ १६०/२१२ यो०) है ॥२६४२॥

१४२०५९५ ४/२१२ — ९४४८ ५६/२१२ = १४१११४६ १६०/२१२ यो० ।

दोनों देशोंकी अन्तिम और दो वक्षार-पर्वतोंकी आदिम लम्बाई—

अड-णव-छक्केक्क णभं, चउ-एक्कंसा सयं च चउरहियं ।
दो - विजयाणं अंतं, आदिल्लं दोसु वक्खारे ॥२६४३॥

१४०१६९८ । १०४/२१२ ।

अर्थ :—आठ, नौ, छह, एक, शून्य, चार और एक, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और एकसौ चार भाग अधिक दोनों देशोंकी अन्तिम एवं आशीविष तथा वैश्रवणकूट नामक दो वक्षार-पर्वतोंकी आदिम लम्बाई (१४०१६९८ $\frac{१०४}{२१२}$ यो०) है ।।२९४३।।

१४१११४६ $\frac{११०}{२१२}$ — ९४४८ $\frac{५१}{२१२}$ = १४०१६९८ $\frac{१०४}{२१२}$ यो० ।

दोनों वक्षार-पर्वतोंकी मध्यम लम्बाई—

तिय-चउ-सग-णभ-गयणं, चउरेक्कंसं सयं च छण्णउदी ।
मज्झिमए दीहत्तं, आसीविस - वेसमण - कूडे ।।२९४४।।

१४००७४३ । $\frac{१९६}{२१२}$ ।

अर्थ :—तीन, चार, सात, शून्य, शून्य, चार और एक, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन तथा एक सौ छयानबे भाग अधिक आशीविष और वैश्रवणकूटकी मध्यम लम्बाई (१४००७४३ $\frac{१९६}{२१२}$ यो०) है ।।२९४४।।

१४०१६९८ $\frac{१०४}{२१२}$ — ९५४ $\frac{१२०}{२१२}$ = १४००७४३ $\frac{१९६}{२१२}$ यो० ।

दोनों पर्वतोंकी अन्तिम और दो देशोंकी आदिम लम्बाई—

णव-अड-सग-णव-णव-तिय-एक्कं अंसा छहत्तरी होंति ।
दो - वक्खारे अंतं, आदिल्लं दोसु विजयाणं ।।२९४५।।

१३९९७८९ । $\frac{७६}{२१२}$ ।

अर्थ :—नौ, आठ, सात, नौ, नौ, तीन और एक, इस अंक क्रमसे जो संख्या निर्मित हो उतने योजन और छिहत्तर भाग अधिक दोनों वक्षार-पर्वतोंकी अन्तिम तथा महावप्रा एवं नलिन देशकी आदिम लम्बाई (१३९९७८९ $\frac{७६}{२१२}$ यो०) है ।।२९४५।।

१४००७४३ $\frac{१९६}{२१२}$ — ९५४ $\frac{१२०}{२१२}$ = १३९९७८९ $\frac{७६}{२१२}$ यो० ।

दोनों देशोंकी मध्यम लम्बाई—

इगि-चउ-तिय-णभ-णव-तिय-एक्कं अंसा कमेण वीसं च ।
मज्झिमए दीहत्तं, महवप्पा - णलिण - विजयम्मि ।।२९४६।।

१३९०३४१ । $\frac{४०}{२१२}$ ।

अर्थ :—एक, चार, तीन, शून्य, नौ, तीन और एक, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और बीस भाग अधिक महावप्रा एवं नलिन क्षेत्रकी मध्यम लम्बाई (१३९०३४१ $\frac{२०}{२१२}$ यो०) है ॥२९४६॥

१३९६७८९ $\frac{७१}{२१२}$ — ६४४८ $\frac{५१}{२१२}$ = १३९०३४१ $\frac{२०}{२१२}$ यो० ।

दोनों देशोंकी अन्तिम और दो विभंगा-नदियोंकी आदिम लम्बाई—

दो-णव-अड-णभ-अट्ठ-ति-एक्कं अंसा छहत्तरहिय - सयं ।
दो - विजयाणं अंतं, आदिल्लं दो - विभंग - सरियाणं ॥२९४७॥

१३८०८९२ । $\frac{१७६}{२१२}$ ।

अर्थ :—दो, नौ, आठ, शून्य, आठ, तीन और एक, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और एकसौ छयत्तर भाग अधिक दोनों क्षेत्रोंकी अन्तिम तथा तप्तजला एवं औषध वाहिनी नामक दो विभंगा नदियोंकी आदिम लम्बाई (१३८०८९२ $\frac{१७६}{२१२}$ यो०) है ॥२९४७॥

१३९०३४१ $\frac{२०}{२१२}$ — ६४४८ $\frac{५१}{२१२}$ = १३८०८९२ $\frac{१७६}{२१२}$ यो० ।

दोनों विभंगा-नदियोंकी मध्यम लम्बाई—

चउ-पण-छण्णभ-अड-तिय[1]-एक्कं अंसा य चाल-मज्झिमए ।
दीहत्तं तत्तजले, ओसहवाहीए पत्तेक्कं ॥२९४८॥

१३८०६५४ । $\frac{४०}{२१२}$ ।

अर्थ :—चार, पांच, छह, शून्य, आठ, तीन और एक, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और चालीस भाग अधिक तप्तजला एवं औषधवाहिनी में मे प्रत्येककी मध्यम लम्बाईका प्रमाण (१३८०६५४ $\frac{४०}{२१२}$ यो०) है ॥२९४८॥

१३८०८९२ $\frac{१७६}{२१२}$ — २३८ $\frac{१३६}{२१२}$ = १३८०६५४ $\frac{४०}{२१२}$ योजन ।

दोनों नदियोंकी अन्तिम और दो देशोंकी आदिम लम्बाई—

पण-इगि-चउ-णभ-अड-तिय-एक्का अंसा य सोलसहिय-सयं ।
दो - वेभंग - णईणं, अंतं आदिल्ल दोसु विजयाणं ॥२९४९॥

१३८०४१५ । $\frac{११६}{२१२}$ ।

---

१. द. ब. ज. ठ. अडतिएक्क ।

अर्थ :—पाँच, एक, चार, शून्य, आठ, तीन और एक, इस अंक क्रमसे जो संख्या निर्मित हो उतने योजन और एकसौ सोलह भाग अधिक दोनों विभंग-नदियोंकी अन्तिम और कुमुदा एवं सुवग्रा नामक दो देशोंकी आदिम लम्बाई (१३८०४१५ $\frac{११६}{२१२}$ यो०) है ॥२९४९॥

१३८०६५४ $\frac{४४}{२१२}$ — २३८ $\frac{१४०}{२१२}$ = १३८०४१५ $\frac{११६}{२१२}$ यो० ।

दोनों देशोंकी मध्यम लम्बाई—

सग-छण्णव¹-णभ-सग-तिय-एक्कं अंसा य सट्ठि परिमाणं ।
मज्झिम - पदेस - दीहं, कुमुदाए सुवग्ग² - विजयम्मि ॥२९५०॥

१३७०९६७ । $\frac{६०}{२१२}$ ।

अर्थ :—सात, छह, नौ, शून्य, सात, तीन और एक, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और साठ भाग प्रमाण कुमुदा एवं सुवग्रा क्षेत्रके मध्य-प्रदेशकी लम्बाई (१३७०९६७ $\frac{६०}{२१२}$ यो०) है ॥२९५०॥

१३८०४१५ $\frac{११६}{२१२}$ — ९४४८ $\frac{५६}{२१२}$ = १३७०९६७ $\frac{६०}{२१२}$ यो० ।

दोनों क्षेत्रोंकी अन्तिम और दो वक्षार-पर्वतोंकी आदिम लम्बाई—

णव-एक्क-पंच-एक्कं, छत्तिय - एक्का तहेव चउ-अंसा ।
दो - विजय - दु - वक्खारे, अंतिल्लादिल्ल - दीहत्तं ॥२९५१॥

१३६१५१९ । $\frac{४}{२१२}$ ।

अर्थ :—नौ, एक, पाँच, एक, छह, तीन और एक, इस अंक क्रमसे जो संख्या निर्मित हो उतने योजन और चार भाग अधिक दोनों क्षेत्रों तथा सुखावह एवं त्रिकूट नामक दो वक्षार-पर्वतोंकी क्रमशः अन्तिम और आदिम लम्बाईका प्रमाण (१३६१५१९ $\frac{४}{२१२}$ यो०) है ॥२९५१॥

१३७०९६७ $\frac{६०}{२१२}$ — ९४४८ $\frac{५६}{२१२}$ = १३६१५१९ $\frac{४}{२१२}$ यो० ।

दोनों वक्षार-पर्वतोंकी मध्यम लम्बाई—

चउ-णवक-पंच-णभ-छत्तिय-एक्कंसा तहेव छत्तीसा ।
मज्झिल्लम - दीहत्तं, सुहावहे तह तिकूडे य ॥२९५२॥

१३६०५९४ । $\frac{३६}{२१२}$ ।

---

१. द. ब. छण्णं । २. द. ब. सुवण्ण ।

अर्थ :—चार, छह, पाँच, शून्य, छह, तीन और एक, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और छ्यानबे-भाग अधिक सुखावह एवं त्रिकूटनग नामक वक्षार-पर्वतकी मध्यम लम्बाई (१३६०५६४$\frac{९६}{२१२}$ यो०) है ॥२९५२॥

(१३६१५१९$\frac{४}{२१२}$ — ९५४$\frac{१२०}{२१२}$ = १३६०५६४$\frac{९६}{२१२}$ यो० ।

दोनों पर्वतोंकी अन्तिम और दो देशोंकी आदिम लम्बाई—

णव-णभ-छण्णव-पण-तिय-एक्का अंसाडसीदि-सहिय-सयं ।
दो - वक्खार - दु - विजए, अंतिल्लादिल्ल - दीहत्तं ॥२९५३॥

१३५९६०९ । $\frac{१८८}{२१२}$ ।

अर्थ :—नौ, शून्य, छह, नौ, पाँच, तीन और एक, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और एकसौ अठासी भाग अधिक दोनों वक्षारों तथा सरिता एवं वप्रा नामक दो देशोंकी क्रमशः अन्तिम और आदिम लम्बाईका प्रमाण (१३५९६०९$\frac{१८८}{२१२}$ यो०) है ॥२९५३॥

१३६०५६४$\frac{९६}{२१२}$ — ९५४$\frac{१२०}{२१२}$ = १३५९६०९$\frac{१८८}{२१२}$ यो० ।

दोनों देशोंकी मध्यम लम्बाई—

इगि-छक्क-एक्क-णभ-पण-तिय-एक्कंसा सयं च बत्तीसं ।
सरिदाए[1] वप्प - विजए पत्तेक्कं मज्झ - दीहत्तं ॥२९५४॥

१३५०१६१ । $\frac{१३२}{२१२}$ ।

अर्थ :—एक, छह, एक, शून्य, पाँच, तीन, और एक इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और एकसौ बत्तीस भाग अधिक सरिता एवं वप्रा देशोंमेंसे प्रत्येक की मध्यम लम्बाई (१३५०१६१$\frac{१३२}{२१२}$ यो०) है ॥२९५४॥

१३५९६०९$\frac{१८८}{२१२}$ — ९४४८$\frac{५६}{२१२}$ = १३५०१६१$\frac{१३२}{२१२}$ यो० ।

दोनों देशोंकी अन्तिम और देवारण्य-भूतारण्यकी आदिम लम्बाई—

तिय-इगि-सग-णभ-चउ-तिय-एक्कं अंसा छहत्तरी होंति ।
दो - विजए अंतिल्लं, आदिल्लं देव - भूदरण्णाणं[2] ॥२९५५॥

१३४०७१३ । $\frac{७६}{२१२}$ ।

---

१. द. ब. क. ज. उ. सरिलाए । २. द. ब. क. ज. उ. रण्णाए ।

अर्थ :—तीन, एक, सात, शून्य, चार, तीन और एक, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और छिहत्तर भाग अधिक दोनों क्षेत्रोंकी अन्तिम तथा देवारण्य एवं भूतारण्यकी आदिम लम्बाई (१३४०७१३$\frac{७६}{२१२}$ यो०) है ॥२९५५॥

१३५०१६१$\frac{१३३}{२१२}$ — ९४४८$\frac{५७}{२१२}$ = १३४०७१३$\frac{७६}{२१२}$ यो० ।

देवारण्य-भूतारण्यकी मध्यम लम्बाई—

चउ-तिय-इगि-पण-ति-तियं, एक्कं अंसा सयं च चउ-अहियं ।
भूदा - देवारण्णे, हवेदि मज्झिल्ल - दीहत्तं ॥२९५६॥

१३३५१३४ । $\frac{१०४}{२१२}$ ।

अर्थ :—चार, तीन, एक, पांच, तीन, तीन और एक, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और एकसो चार भाग अधिक देवारण्य एवं भूतारण्यकी मध्यम लम्बाई (१३३५१३४$\frac{१०४}{२१२}$ यो०) है ॥२९५६॥

१३४०७१३$\frac{७६}{२१२}$ — ५५७८$\frac{१८४}{२१२}$ = १३३५१३४$\frac{१०४}{२१२}$ यो० ।

दोनों वनोंकी अन्तिम लम्बाई—

पण-पंच-पंच-णव-दुग-तिय-एक्कंसा सयं च बत्तीसं ।
भूदा - देवारण्णे, पत्तेक्कं अंत - दीहत्तं ॥२९५७॥

१३२९५५५ । $\frac{१३२}{२१२}$ ।

अर्थ :—पांच, पांच, पांच, नौ, दो, तीन और एक, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और एकसौ बत्तीस भाग अधिक भूतारण्य एवं देवारण्यकी अन्तिम लम्बाई (१३२९५५५$\frac{१३२}{२१२}$ यो०) है ॥२९५७॥

१३३५१३४$\frac{१०४}{२१२}$ — ५५७८$\frac{१८४}{२१२}$ = १३२९५५५$\frac{१३२}{२१२}$ यो० ।

इच्छित क्षेत्रोंकी लम्बाईका प्रमाण—

कच्छादिसु विजयाणं, आदिम-मज्झिल्ल-चरिम-दीहत्ते[1] ।
विजयड्ढ - रुंदमवणिय, अद्ध - कदे तस्स दीहत्तं ॥२९५८॥

अर्थ :—कच्छादिक देशोंकी आदिम, मध्यम और अन्तिम लम्बाईमेंसे विजयार्धके विस्तार-को घटाकर शेषको आधा करनेपर उसकी लम्बाई होती है ॥२९५८॥

---

१ द ब. क. ज उ. दीहत्त ।

हिमवान् पर्वतका क्षेत्रफल—

दो-पंचंबर-इगि-दुग-चउ-अड-छत्तिण्णि-तिवय अंसा य ?।
बारस उणवीस - हिदा, हिमवंत - गिरिस्स खेत्तफलं ॥२९५९॥

३३६८४२१०५२ । $\frac{१२}{१९}$ ।

अर्थ :—दो, पाँच, शून्य, एक, दो, चार, आठ, छह, तीन और तीन, इस अंक क्रमसे जो संख्या निर्मित हो उतने योजन और उन्नीससे भाजित बारह भाग प्रमाण हिमवान् पर्वतका क्षेत्रफल (३३६८४२१०५२ $\frac{१२}{१९}$ यो०) है ॥२९५९॥

विशेषार्थ :—पुष्करवरद्वीपमें स्थित हिमवान् पर्वतकी लम्बाई, द्वीप सदृश अर्थात् ८ लाख योजन है और विस्तार ४२१० $\frac{१०}{१९}$ यो० (गा० २८४३ में) कहा गया है। अतः—८००००० × ४२१० $\frac{१०}{१९}$ = ३३६८४२१०५२ $\frac{१२}{१९}$ यो० क्षेत्रफल है।

चोदह पर्वतोंसे रुद्ध क्षेत्रफलका निरूपण—

एदं चउसीदि - हदे, बारस - कुल - पव्वयाण पिंडफलं ।
होदि हु इसुगार-जुदे, चोद्दस - गिरि - रुद्ध - खेत्तफलं ॥२९६०॥

अर्थ :—हिमवान् पर्वतके क्षेत्रफलको चौरासी (८४) से गुणा करनेपर बारह कुल-पर्वतोंका एकत्रित क्षेत्रफल होता है। इसमें इष्वाकार पर्वतोंका क्षेत्रफल भी मिला देनेपर चौदह पर्वतोंसे रुद्ध क्षेत्रफलका प्रमाण होता है ॥२९६०॥

विशेषार्थ :—जम्बूद्वीप सम्बन्धी पर्वतोंकी शलाकाएँ क्रमशः दो, आठ, बत्तीस, बत्तीस, आठ और दो है। जिनका योग (२+८+३२+३२+८+२)=८४ होता है, इसीलिए गाथामें ८४ से गुणा करनेको कहा गया है। यथा—३३६८४२१०५२ $\frac{१२}{१९}$ × ८४ = २८२९४७३६८४२१ $\frac{५}{१९}$ योजन।

इगि-दुग-चउ-अड-छ-तिय-सग-चउ-पण-चउग-अट्ठ-दो कमसो ।
जोयणया एक्कंसो, चोद्दस - गिरि - रुद्ध - परिमाणं ॥२९६१॥

२८४५४७३६८४२१ । $\frac{१}{१९}$ ।

अर्थ :—एक, दो, चार, आठ, छह, तीन, सात, चार, पाँच, चार, आठ, और दो, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन और एक भाग अधिक (२८४५४७३६८४२१ $\frac{१}{१९}$ यो०) चौदह पर्वतोंसे रुद्ध क्षेत्रका क्षेत्रफल है ॥२९६१॥

विशेषार्थ :—२८२९४७३६८४२१ $\frac{१}{१९}$ यो० + १६००००००००० योजन इष्वाकार पर्वतों का क्षेत्रफल = २८४५४७३६८४२१ $\frac{१}{१९}$ यो० पर्वतरुद्ध क्षेत्रफल है।

पुष्करार्धद्वीपका समस्त क्षेत्रफल—

अट्ठ-णव-णभ-चउक्का, सत्तट्ठेक्का य चउ ति-णयणाइं।
छत्तिय - णवाय अंकं, कमेण पोक्खरवरद्ध - खेत्तफलं ॥२९६२॥

९३६०३४१८७४०९८।

अर्थ :—आठ, नौ, शून्य, चार, सात, आठ, एक, चार, तीन, शून्य, छह, तीन और नौ, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने (९३६०३४१८७४०९८) योजन प्रमाण अर्ध-पुष्करवर द्वीपका क्षेत्रफल है ॥२९६२॥

विशेषार्थ :—गाथा २५६१-२५६२ के नियमानुसार—पुष्करार्ध द्वीपकी सूची ४५ लाख यो० और व्यास ८ लाख यो० है। उसका सूक्ष्म क्षेत्रफल इसप्रकार होगा—

$$\sqrt{[(४५००००० \times २) - (८००००० \times २)]^२ \times (\frac{८०००००}{२})^२ \times १०} =$$
९३६०३४१८७४०९८ योजन। यहाँ जो शेष बचे हैं वे छोड़ दिए गये हैं।

पर्वत रहित पुष्करार्धका क्षेत्रफल—

सग-सग-छप्पण-णभ-पण-चउ-णव-सग-पंच-सग-णभ-णवयं।
अंक - कमे जोयणया, होदि फलं तस्स गिरि - रहिदं ॥२९६३॥

९०७५७९४५०५६७७।

अर्थ :—सात, सात, छह, पाँच, शून्य, पाँच, चार, नौ, सात, पाँच, सात, शून्य और नौ, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने (९०७५७९४५०५६७७) योजन प्रमाण पुष्करार्धद्वीपके पर्वत-रहित क्षेत्रका क्षेत्रफल है ॥२९६३॥

९३६०३४१८७४०९८ — २८४५४७३६८४२१ (यहाँके $\frac{१}{१९}$ छोड़ दिए गये हैं)= ९०७५७९४५०५६७७ योजन।

भरतक्षेत्रका क्षेत्रफल—

एदम्मि[1] खेत्तफले, बारस - जुदेहिं दो - सएहिं च ।
पविहत्ते जं लद्धं, तं भरहखिदीए खेत्तफलं ।।२६६४।।

अर्थ :—इस (पर्वत रहित) क्षेत्रफलमें दोसौ बारहका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतना भरतक्षेत्रका क्षेत्रफल होता है ।।२६६४।।

एक्क-चउक्क-चउक्केक्क-पंच-तिय-गयण-एक्क-अट्ठ[2]-दुगा ।
चत्तारि य जोयणया, पणसीदि - सय - कला्ओ तम्माणं ।।२६६५।।

४२८१०३५१४४१ । $\frac{१८५}{२१२}$ ।

अर्थ :—एक, चार, चार, एक, पाँच, तीन, शून्य, एक, आठ, दो और चार, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने (४२८१०३५१४४१$\frac{१८५}{२१२}$) योजन और एकसौ पचासी भाग अधिक उस क्षेत्रफलका प्रमाण है ।।२६६५।।

विशेषार्थ :—९०७५७९४५०५६७७ ÷ २१२ = ४२८१०३५१४४१$\frac{१८५}{२१२}$ वर्ग योजन भरत-क्षेत्रका क्षेत्रफल है ।

जम्बूद्वीपस्थ भरतादि क्षेत्रोंकी शलाकाएँ क्रमशः एक, चार, सोलह, चौसठ, सोलह, चार और एक हैं । इन सबका योग (१ + ४ + १६ + ६४ + १६ + ४ + १) = १०६ प्राप्त हुआ । पुष्कर-वरद्वीपके दो मेरु सम्बन्धी दोनों भागोंका ग्रहण करनेके लिए इन्हें दूना करनेपर (१०६ × २) = २१२ होते हैं, इसीलिए गाथामें २१२ का भाग देनेको कहा गया है ।

शेष क्षेत्रोंका क्षेत्रफल—

भरह - खिदीए गणिदं, पत्तेक्कं चउगुणं विदेहंतं ।
तत्तो कमेण चउगुण - हाणी[3] एरावदं जाव ।।२६६६।।

अर्थ :—भरतक्षेत्रका जो क्षेत्रफल है उससे विदेह-पर्यन्त प्रत्येक क्षेत्रका क्षेत्रफल उत्तरोत्तर चौगुना है । फिर इसके आगे ऐरावतक्षेत्र पर्यन्त क्रमशः चौगुनी हानि होती गई है ।।२६६६।।

---

१. द. ब. क. ज. उ. एदेसिं । २. ब. अड । ३. द. ब. क. ज. उ. हाणि ।

विशेषार्थ :—पुष्करवरद्वीप स्थित प्रत्येक क्षेत्रोंका क्षेत्रफल—

१. भरतक्षेत्र—४२८१०३५१४४१$\frac{१८५}{२१२}$ वर्ग योजन क्षेत्रफल ।
२. हैमवतक्षेत्र—१७१२४१४०५७६७$\frac{१०४}{२१२}$,, ,, ,, ।
३. हरिक्षेत्र—६८४९६५६२३०६९$\frac{२०४}{२१२}$,, ,, ,, ।
४. विदेहक्षेत्र—२७३९८६२४९२२७९$\frac{१८०}{२१२}$,, ,, ,, ।
५. रम्यकक्षेत्र—६८४९६५६२३०६९$\frac{२०४}{२१२}$,, ,, ,, ।
६. हैरण्यवत—१७१२४१४०५७६७$\frac{१०४}{२१२}$,, ,, ,, ।
७. ऐरावतक्षेत्र—४२८१०३५१४४१$\frac{१८५}{२१२}$,, ,, ,, ।

पुष्करार्धके जम्बूद्वीप प्रमाण खण्ड—

जंबूदीव - खिदीए, फलप्पमाणेण पोक्खरवरद्धे ।
खेत्तफलं किज्जंतं, एक्करस - सयाणि चुलसीदी ।।२६६७।।

११८४ ।

अर्थ :—जम्बूद्वीप सम्बन्धी क्षेत्रफलके प्रमाणसे पुष्करार्धद्वीपका क्षेत्रफल करनेपर ग्यारहसौ चौरासी (११८४) खण्ड प्रमाण होते हैं ।।२६६७।।

विशेषार्थ :—पुष्करवरद्वीपके बाह्य सूची व्यास (४५ लाख) के वर्गमेंसे उसीके अभ्यन्तर सूची व्यास (२९ लाख) के वर्गको घटाकर जम्बूद्वीपके व्यासके वर्गका भाग देनेपर ११८४ शलाकाएँ प्राप्त होतीं हैं। अर्थात् पुष्करवर द्वीपके जम्बूद्वीप बराबर ११८४ खण्ड होते हैं। यथा—
($४५००००००^{२}$ — $२९०००००^{२}$) ÷ $१०००००^{२}$=११८४ खण्ड ।

मनुष्योंकी स्थितिका निरूपण—

चेट्ठंति माणुसुत्तर - परियंतं तस्स लंघण - विहीणा ।
मणुवा माणुसखेत्ते, बे - अड्ढाइज्ज - उवहि - दीवेसुं ।।२६६८।।

एवं विण्णासो समत्तो ।

अर्थ :—दो समुद्रों और अढ़ाईद्वीपोंके भीतर मानुषोत्तर पर्वत पर्यन्त मनुष्यक्षेत्रमें ही मनुष्य रहते हैं। इसके आगे वे (उस) मानुषोत्तर पर्वतका उल्लंघन नहीं करते ।।२६६८।।

इसप्रकार विन्यास समाप्त हुआ ।

णभ-सत्त-गयण-अड-णव-एक्कं पज्जत्त-रासि-परिमाणं ।
दो-पण-सग-दुग-छण्णव-सग-पण-इगि-पंच - णव - एक्कं ।।२९७३।।

१९८०७०४०६२८५६६०८४३९८३८५९८७५८४ ।

तिय-पण-दुग-अड-णवयं, छ-प्पण-अट्ठट्ठ-एक्क-दुगमेक्कं ।
इगि-दुग-चउ-णव-पंचय, मणुसिणि - रासिस्स परिमाणं ।।२९७४।।

५९४२११२१८८५६९८२५३१९५१५७९६२७५२ ।

अर्थ :—चार, आठ, पाँच, सात, आठ, नौ, पाँच, आठ तीन आठ, नौ, तीन, चार, आठ, शून्य, छह, छह, पाँच, आठ, दो, छह, शून्य, चार, शून्य, सात, शून्य, आठ नौ और एक, इतने (१९८०७०४०६२८५६६०८४३९८३८५९८७५८४) अंक प्रमाण पर्याप्त मनुष्य राशि तथा दो, पाँच, सात, दो, छह, नौ, सात, पाँच, एक, पाँच, नौ, एक, तीन, पाँच, दो, आठ, नौ, छह, पाँच, आठ, आठ, एक, दो, एक, एक, दो, चार, नौ और पाँच, इतने (५९४२११२१८८५६९८२५३१९५१५७९६२७५२) अंक प्रमाण मनुष्यिणीराशिका प्रमाण है ।।२९७२-२९७४।।

सामण्ण-रासि-मज्झे, पज्जत्तं [1]मणुसिणी पि सोहेज्ज ।
अवसेसं परिमाणं, होदि अपज्जत्त - रासिस्स ।।२९७५।।

१ । २ ।

एवं संखा समत्ता ।।८।।

अर्थ :—सामान्यराशिमेंसे पर्याप्त मनुष्यका और मनुष्यिनीका प्रमाण घटा देनेपर जो शेष रहे, उतना अपर्याप्त मनुष्य राशिका प्रमाण होता है ।।२९७५।।

विशेषार्थ :—अपर्याप्त राशि=सामान्य राशि — (पर्याप्त राशि + मनुष्यिणी)

अपर्याप्त राशि=(ज॰ ३ — १) — (१९८०७०४०६२८५६६०८४३९८३८५९८७५८४+ ५९४२११२१८८५६९८२५३१९५१५७९६२७५२)

नोट :—गाथा २९७५ की संदृष्टि स्पष्ट नहीं हो सकी है ।

इसप्रकार संख्याका कथन समाप्त हुआ ।।८।।

मनुष्योंमें अल्पबहुत्वका निरूपण—

अंतरदीव - मणुस्सा, थोवा ते कुरुसु दससु संखेज्जा ।
तत्तो संखेज्ज - गुणा, हवंति हरि - रम्मगेसु वरिसेसु ।।२९७६।।

---

१. द. ब. क. ज. ठ. मणुसिणि ।

अर्थ :—अन्तर्द्वीपज मनुष्य थोड़े हैं। इनसे संख्यातगुणे मनुष्य दस कुरु-क्षेत्रोंमें और इनसे भी संख्यातगुणे हरिवर्ष एवं रम्यक क्षेत्रोंमें हैं ॥२९७६॥

वरिसे संखेज्जगुणा, [1]हेरण्णवदम्मि हेमवद - वरिसे।
भरहेरावद - वरिसे, संखेज्जगुणा विदेहे य ॥२९७७॥

अर्थ :—हरिवर्ष एवं रम्यकक्षेत्रस्थ मनुष्योंसे संख्यातगुणे मनुष्य हैरण्यवत और हैमवत-क्षेत्रमें हैं तथा इनसे, संख्यातगुणे भरत एवं ऐरावत क्षेत्रमें और इनसे भी संख्यातगुणे विदेह क्षेत्रमें हैं ॥२९७७॥

होंति असंखेज्जगुणा, लद्धिमणुस्साणि ते च सम्मुच्छा।
तत्तो विसेस - अहियं, माणुस - सामण्ण - रासी य ॥२९७८॥

अर्थ :—विदेह क्षेत्रस्थ मनुष्योंसे लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य असंख्यात गुणे है। वे (लब्ध्यपर्याप्त) सम्मूर्च्छन होते हैं। लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंसे विशेष अधिक सामान्य मनुष्यराशि है ॥२९७८॥

पज्जत्ता णिव्वत्तियपज्जत्ता लद्धिया अपज्जत्ता।
सत्तरि[2] - जुत्त - सदज्जा - खंडेसुं णेदरेसु लद्धिणरा ॥२९७९॥

अप्पबहुगं समत्तं ॥९॥

अर्थ :—पर्याप्त, निर्वृत्यपर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्तके भेदसे मनुष्य तीन प्रकारके होते हैं। एकसौ सत्तर आर्यखण्डोंमे ये तीनों प्रकारके मनुष्य होते हैं। अन्य (म्लेच्छादि) खण्डोंमें लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य नहीं होते ॥२९७९॥

अल्पबहुत्वका कथन समाप्त हुआ ॥९॥

मनुष्योंमें गुणस्थानादिकोंका निरूपण—

पण-पण-अज्जाखंडे, भरहेरावदम्मि मिच्छ - गुणठाणं।
अवरे वरम्मि चोद्दस - परियंतं कआइ दीसंति ॥२९८०॥

अर्थ :—भरत एवं ऐरावत क्षेत्रके भीतर पाँच-पाँच आर्यखण्डोंमें जघन्यरूपसे मिथ्यात्व-गुणस्थान और उत्कृष्ट रूपसे कदाचित् चौदह गुणस्थान तक पाये जाते हैं ॥२९८०॥

पंच-विदेहे सट्ठि - समण्णिद - सद - अज्जखंडए अवरे।
छग्गुणठाणे तत्तो, चोद्दस - परियंत दीसंति ॥२९८१॥

अर्थ :—पाँच विदेह क्षेत्रोंके भीतर एकसौ साठ आर्यखण्डोंमें जघन्य-रूपसे छह गुणस्थान और उत्कृष्ट रूपसे चौदह गुणस्थान तक पाये जाते हैं ॥२९८१॥

---

१. द. गुणवदम्मि। २. द. सत्तरिज्जत्तं।

विशेषार्थ :—विदेहमें छह गुणस्थान—पहला, चौथा, पाँचवाँ, छठा, सातवाँ और तेरहवाँ निरन्तर पाए जाते हैं। शेष गुणस्थान सान्तर हैं। अतः जघन्यतः ये छह गुणस्थान ही हमेशा पाए जावेंगे।

सव्वेसुं भोगभुवे, दो गुणठाणाणि सव्व - कालम्मि ।
दीसंति चउ - वियप्पं, सव्व - मिलिच्छम्मि मिच्छत्तं ॥२९८२॥

अर्थ :– सब भोगभूमिजोंमे सदा दो गुणस्थान (मिथ्यात्व और असंयतसम्यग्दृष्टि) तथा (उत्कृष्टरूपसे) चार गुणस्थान रहते हैं। सब म्लेच्छखण्डोमे एक मिथ्यात्व गुणस्थान ही रहता है ॥२९८२॥

विज्जाहर - सेढीए, ति गुणट्ठाणाणि सव्व - कालम्मि ।
पण - गुणठाणा दीसइ, छंडिद - विज्जाण चोद्दसं ठाणं ॥२९८३॥

अर्थ :—विद्याधर श्रेणियोंमें सर्वदा तीन गुणस्थान (मिथ्यात्व असंयत और देशसंयत) तथा (उत्कृष्ट रूपसे) पाँच गुणस्थान होते हैं। विद्याएँ छोड़ देनेपर वहाँ चौदह गुणस्थान भी होते है ॥२९८३॥

पज्जत्तापज्जत्ता, जीवसमासा हवंति ते दोण्णि ।
पज्जत्ति[1] - अपज्जत्ती, छब्भेया सव्व - मणुवाणं ॥२९८४॥

अर्थ :– सब मनुष्योंके पर्याप्त एवं अपर्याप्त दोनो जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ और छहों अपर्याप्तियाँ भी होतीं हैं ॥२९८४॥

दस-पाण-सत्त-पाणा, चउ-सण्णा मणुस-गदि हु पंचिंदी ।
गदि-इंदिय तस-काया, तेरस-जोगा विकुव्व-दुग-रहिया ॥२९८५॥

अर्थ :—सब मनुष्योंके पर्याप्त अवस्थामे दस प्राण और अपर्याप्त अवस्थामें सात प्राण होते हैं। संज्ञाएँ चारों ही होती हैं। चौदह मार्गणाओंमेंसे क्रमशः गतिकी अपेक्षा मनुष्यगति, इन्द्रियकी अपेक्षा पञ्चेन्द्रिय, त्रस-काय और पन्द्रह योगोंमेंसे वैक्रियिक एवं वैक्रियिक मिश्रको छोड़कर शेष तेरह योग होते हैं ॥२९८५॥

ते वेदत्तय - जुत्ता, अवगव - वेदा वि केइ दीसंति ।
सयल - कसाएहिं जुदा, अकसाया होंति केइ णरा ॥२९८६॥

अर्थ :—वे मनुष्य तीनों वेदोंसे युक्त होते हैं। परन्तु कोई मनुष्य (अनिवृत्तिकरणके अवेद-भागसे लेकर) वेदसे रहित भी होते हैं। कषायकी अपेक्षा वे सम्पूर्ण कषायोंसे युक्त होते हैं। परन्तु कोई (ग्यारहवें गुणस्थानसे) कषाय रहित भी होते हैं ॥२९८६॥

---

१. द. ब. क. ज. उ. पज्जत्तियअपज्जत्ती ।

सयलेहिं णाणेहिं, संजम - दंसणेहिं लेस्सलेस्सेहिं ।
भव्वाभव्वत्तेहिं, य छव्विह - सम्मत्त - संजुत्ता ।।२९८७।।

अर्थ : वे मनुष्य, सम्पूर्ण ज्ञानों, संयमों, दर्शनों, लेश्याओं, अलेश्यत्व, भव्यत्व, अभव्यत्व और छह प्रकारके सम्यक्त्व सहित होते हैं ।।२९८७।।

सण्णी हवंति सव्वे, ते आहारा तहा अणाहारा ।
णाणोवजोग - दंसण - उवजोग - जुदा वि ते सव्वे ।।२९८८।।

गुणट्ठाणादी समत्ता ।

अर्थ :—सब मनुष्य संज्ञामार्गणाकी अपेक्षा संज्ञी और आहारमार्गणाकी अपेक्षा आहारक एवं अनाहारक भी होते हैं । वे सब ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग सहित होते हैं ।।२९८८।।

गुणस्थानादिकोंका वर्णन समाप्त हुआ ।

मनुष्योंकी गत्यन्तर-प्राप्ति—

संखेज्जाउवमाणा, मणुवा णर-तिरिय - देव - णिरएसुं ।
सव्वेसुं जायंते, [1]सिद्ध - गदीओ वि पावंति ।।२९८९।।

अर्थ :—संख्यात वर्ष आयु प्रमाणवाले मनुष्य, देव, मनुष्य, तिर्यञ्च और नारकियोंमेंसे सबमें उत्पन्न होते हैं तथा सिद्ध-गति भी प्राप्त करते हैं ।।२९८९।।

ते संखातीदाऊ, जायंते [2]केइ जाव ईसाणं ।
ण हु होंति सलाय - णरा, जम्मम्मि अणंतरे केई ।।२९९०।।

संकमणं गदं ।।१०।।

अर्थ :—असंख्यातायुष्कवाले कितने ही मनुष्य ईशान स्वर्ग तक उत्पन्न होते हैं । किन्तु अनन्तर जन्ममें इनमेंसे कोई भी शलाका-पुरुष नहीं होते हैं ।।२९९०।।

संक्रमणका कथन समाप्त हुआ ।।१०।।

---

१. द. क. ज. सिद्धि । २. ब. ठ. काइ ।

मनुष्यायुका बन्ध—

कोहादि - चउक्काणं, धूली - राईए तह य कट्ठेण ।
गोमुत्त[1] - तणुमलेहिं, [2]छल्लेस्सा मज्झिमंसेहिं ॥२६६१॥

जे जुत्ता णर-तिरिया, सग-सग-जोग्गेहि लेस्स-संजुत्ता ।
णारयदेवा केई णियजोग्ग णराउयं च बंधंति ॥२६६२॥

आउसं बंधणं गदं ॥११॥

अर्थ :—जो मनुष्य एवं तिर्यञ्च क्रोधादिक चार कषायोंके क्रमशः धूलिरेखा, काष्ठ, गोमूत्र तथा शरीरमलरूप भेदों सहित छह लेश्याओंके मध्यम अंशोंसे युक्त हैं वे, तथा अपने-अपने योग्य छह लेश्याओंसे संयुक्त कितने ही नारकी और देव भी अपने-अपने योग्य मनुष्य आयुको बांधते हैं ॥२६६१-२६६२॥

आयुबन्धका कथन समाप्त हुआ ॥११॥

मनुष्योंमें योनियोंका निरूपण—

उप्पत्ती मणुवाणं, गब्भज - सम्मुच्छिमं खु दो - भेदा[4] ।
गब्भुब्भव - जीवाणं, [5]मिस्सं सच्चित्त - जोणीओ ॥२६६३॥

अर्थ :—मनुष्योंका जन्म गर्भ एवं सम्मूर्च्छनके भेदसे दो प्रकारका है । इनमेंसे गर्भजन्मसे उत्पन्न जीवोंके सचित्तादि तीन योनियोंमेंसे मिश्र (सचित्ताचित्त) योनि होती है ॥२६६३॥

सीदं उण्हं मिस्सं, जीवेसुं होंति गब्भ - पभवेसुं ।
ताणं हवंति [6]संवड - जोणीए मिस्स - जोणी[7] य ॥२६६४॥

अर्थ :—गर्भसे उत्पन्न जीवोंके शीत, उष्ण और मिश्र (ये) तीनों ही योनियां होती हैं तथा इन्हीं गर्भज जीवोंके संवृतादिक तीन योनियोंमेंसे मिश्र (संवृतविवृत) योनि होती है ॥२६६४॥

---

१. द. ब. क. ज. उ. गोमुत्ता । २. द. ब क. ज उ. छस्सलेसा । ३ द. ब. क. ज. उ. णियजोगाणराउवं । ४. द. ब. उ. भेदो । ५. द. ब. क. ज. उ. मिस्स सचित्तो । ६. द. सक्कड, ब. क ज. उ. सव्वड । ७. द. ब. क. ज. उ. जोणीए ।

सीदुण्ह-मिस्स-जोणी, सच्चित्ताचित्त-मिस्स-विउडा[1] य ।
सम्मुच्छिम - मणुवाणं, [2]सत्तच्चिय होंति जोणीओ ॥२९९५॥

अर्थ :—सम्मूर्च्छन मनुष्योंके उपर्युक्त सचित्तादिक नौ गुण-योनियोंमेंसे शीत, उष्ण, मिश्र (शीतोष्ण), सचित्त, अचित्त, मिश्र (सचित्ताचित्त) और विवृत ये सात योनियाँ होती हैं ॥२९९५॥

जोणी संखावत्ता, कुम्मुण्णद - बंसपत्त - णामाओ ।
तेसुं संखावत्ता, गब्भेण विवज्जिदा[3] होदि ॥२९९६॥

अर्थ :—शंखावर्त, कूर्मोन्नत और वंशपत्र नामक तीन आकार-योनियाँ होती हैं । इनमेंसे शंखावर्त योनि गर्भसे रहित होती है ॥२९९६॥

कुम्मुण्णद - जोणीए, तित्थयरा चक्कवट्टिणो दुविहा ।
बलदेवा जायंते, सेस - जणा बंसपत्ताए ॥२९९७॥

अर्थ :—कूर्मोन्नत-योनिसे तीर्थंकर, दो प्रकारके चक्रवर्ती (सकलचक्री और अर्धचक्री) और बलदेव तथा वंशपत्र-योनिसे शेष साधारण मनुष्य उत्पन्न होते हैं ॥२९९७॥

एवं सामण्णेसुं, होंति मणुस्साण अट्ठ जोणीओ ।
एदाण[4] विसेसाणि, चोद्दस - लक्खाणि भणिदाणि ॥२९९८॥

जोणि पमाणं गदं ॥१२॥

अर्थ :—इसीप्रकार मनुष्योंकी (सामान्य योनियोंमेंसे) आठ योनियाँ, और (इनके विशेष भेदोंमेंसे) चौदह लाख योनियाँ होती हैं ॥२९९८॥

योनिप्रमाणका निरूपण समाप्त हुआ ॥१२॥

मनुष्योंके सुख-दुःखका निरूपण—

छब्बीस-जुवेक्क-सयं, पमाण - भोगक्खिदीण सुहमेक्कं ।
कम्म - खिदीसु णराणं, हवेदि सोक्खं[5] च दुक्खं च ॥२९९९॥

सुह-दुक्खं[6] गदं ॥१३-१४॥

---

१. द. ब. क. ज. उ. विउला । २. द. ब. क. ज. उ. सच्चित्तय । ३. ब. उ. विवज्जिदो । ४. द. ब. क. ज. उ. एदेण । ५. द. ज. सुक्ख च । ६. द. ब. क. ज. उ. दुक्ख ।

अर्थ :—मनुष्योंको एकसौ छब्बीस भोगभूमियों (३० भोगभूमियोंमें और ९६ कुभोग-भूमियों) में केवल सुख और कर्मभूमियोंमें सुख एवं दुःख दोनों ही होते हैं ।।२९९९।।

सुख-दुःखका वर्णन समाप्त हुआ ।।१३-१४।।

सम्यक्त्व प्राप्तिके कारण—

केइ पडिबोहणेणं, केइ सहावेण तासु भूमीसुं ।
दट्ठूणं सुह-दुक्खं, केइ मणुस्सा बहु-[1]पयारं ।।३०००।।

जादि-भरणेण केई, केइ जिणिदस्स महिम-दंसणदो ।
जिणबिंब-दंसणेणं, उवसम-पहुदीणि केइ [2]गेण्हंति ।।३००१।।

सम्मत्तं गदं ।।१५।।

अर्थ :—उन भूमियोंमें कितने ही मनुष्य प्रतिबोधनसे, कितने ही स्वभावसे, कितने ही बहुतप्रकारके सुख-दुःखको देखकर उत्पन्न हुए जातिस्मरणसे, कितने ही जिनेन्द्रभगवान की कल्याणकादिरूप महिमाके दर्शनसे और कितने ही जिनबिम्बके दर्शनसे औपशमादिक सम्यग्दर्शनको ग्रहण करते हैं ।।३०००-३००१।।

सम्यक्त्वका कथन समाप्त हुआ ।।१५।।

मुक्ति-गमनका अन्तर—

एक्क-समयं जहण्णं, दु-ति[3]-समय-प्पहुदि जाव छम्मासं ।
वर-विरहं मणुव-जगे[4], उवरिं सिज्झंति अड-समए ।।३००२।।

अर्थ :—मनुष्यलोकमें मुक्ति-गमनका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर दो-तीन समयादिसे लेकर छह मास पर्यन्त है। इसके पश्चात् आठ समयोंमें जीव सिद्धिको प्राप्त करते ही हैं ।।३००२।।

मुक्त जीवोंका प्रमाण—

पत्तेक्कं अड-समए, बत्तीसडदाल-सट्ठि-बुयसदरिं ।
चुलसीदी छण्णउदी, दुचरिमम्मि अट्ठ-अहिय-सयं ।।३००३।।

---

१. द. ब. क. ज. उ. पयारा। २. द. गिण्हंति। ३. द. दुतियसमं। ४. द. ब. क. ज. उ. जुवे।

सिज्झंति एक्क - समए, उक्कस्से अवरयम्मि एक्केक्कं ।
मज्झिम - पडिवड्ढीए, चउहत्तरि सव्व - समएसुं ।।३००४।।

अर्थ :– इन आठ समयोंमेंसे प्रत्येकमें क्रमशः उत्कृष्टरूपसे बत्तीस, अड़तालीस, साठ, बहत्तर, चौरासी, छ्यानबै और अन्तिम दो समयोंमें एकसौआठ - एकसौआठ - जीव तथा जघन्य-रूपसे एक-एक सिद्ध होते हैं । मध्यम प्रतिपत्तिसे सब समयोंमे (५९२ ÷ ८ = ७४) चौहत्तर-चौहत्तर जीव सिद्ध होते हैं ।।३००३-३००४।।

तीद - समयाण सव्वं, पण-सय-बाणउदि-रूव-संगुणिदं ।
अड[1]- समयाहिय - छम्मासय - भजिदं णिव्वदा सव्वे ।।३००५।।

अ । ५९२ । मा ६ । स ८ ।

एवं णिउदि-गमण-परिमाणं समत्तं[2] ।।१६।।

अर्थ :—अतीतकालके सर्व समयोंको (५९२) पाँचसौ बानवे रूपोंसे गुणित करके उसमें आठ समय अधिक छह मासोंका भाग देनेपर लब्ध राशि प्रमाण सब निवृत्त अर्थात् मुक्त जीवोंका प्रमाण प्राप्त होता है ।।३००५।।

(अतीतकालके समय × ५९२) ÷ ६ मास ८ समय = मुक्त जीव ।

इसप्रकार सिद्धगतिको प्राप्त होने वालोंके प्रमाणका कथन समाप्त हुआ ।।१६।।

अधिकारान्त मङ्गल—

संसारण्णव[3]-महणं, तिहुवण-भव्वाण [4]पेम्म-पुह-चलणं ।
संदरिसिय सयलट्ठं, सुपासणाहं णमंसामि ।।३००६।।

एवंमाइरिय-परंपरागय[5]-तिलोयपण्णत्तीए मणुव - जग[6]-सरूव-णिरूवण पण्णत्ती णाम चउत्थो महाहियारो समत्तो ।।४।।

अर्थ :—तीनों लोकोंके भव्यजनोंके स्नेह युक्त चरणोंवाले, समस्त पदार्थोंके दर्शक और संसार-समुद्रके मथन-कर्ता सुपार्श्वनाथ स्वामीको मैं नमन करता हूँ ।।३००६।।

इसप्रकार आचार्य-परम्परागत त्रिलोकप्रज्ञप्तिमें मनुष्यलोक स्वरूप निरूपण करने वाला चतुर्थ-महाधिकार समाप्त हुआ ।।

---

१. द. ब. क. ज. उ अडसमयाधिय छम्मासयम्मि भजिदं णिम्मदा । २. द. ब. क. समत्ता । ३. द. ब. क. ज. उ. संसारण्णमहणं । ४. द. ब. क. ज. उ. पेम्मदुहजलणं । ५. ब. क. ज. उ. परंपरायगय । ६. द. ब. क. ज. उ. जगपदावणिणत्ती बलसंपण्णत्ती ।

गाथानुक्रमणिका

गाथा	गाथा सं०
पणवीसजोयणाइं	२२११
पणवीसब्भियरुंदा	११७१
पणवीसब्भहियसयं	८९६
,, ,,	११९६
,, ,,	२०७५
पणवीसब्भहियाणि	१६१६
पणवीससहस्सेहिं	२०४७
पणवीसं दोण्णिसया	३१
पणवीसाहियछस्सय	८६०
,, ,,	८८१
,, ,,	८८७
पणवीसाधियछस्सय	७८२
पणसगदोछत्तियदुग	२७३६
पणसट्ठिसहस्साणि	२८५४
पणसयजोयणरुंदं	१६६२
,, ,,	२०१४
पणसयपमाणगाम	१४११
पणहत्तरिखावाणि	२९
पणिधीए जबुदीवं	२५०९
पणुवीसअधियचणुसय	८३३
पणुवीसजोयणाइं	२२०
पणुवीसजोयणाणि	२१६
पणुवीसजोयणुदओ	११०
पणुवीससया ओही	११५५
पणुवीससहस्साइं	१३०९
,, ,,	१४३६
पणुवीससहस्साणि	१३१२
,, ,,	२१६८
पणुवीसहस्साहिय	५८०
पणुवीसाधियछस्सय	४७७
पणुवीसाहियतिसया	१३१०
,, ,,	१३१३
पणुवीसुत्तरपणसय	५०२
पणुहत्तरिजुदतिसया	९०१
पण्णट्ठिसहस्साणि	१२३४
पण्णब्भहियं च सयं	१३८०
पण्णारसलक्खबक्खुर	१२७५
पण्णरसवासलक्खा	६६३
पण्णरससया वंडा	११९६
पण्णरससहस्साणि	२१
पण्णरसेसु जिणिदा	१२९६
पण्णासमणेसु चरिमो	१४६२
पण्णसयसहस्साणि	१७४१
पण्णाधियपंचसया	२५१२
पण्णारसलक्खाइं	२५६०
,, ,,	२६०३
पण्णारसलक्खाणि	२८६४
पण्णारसेहि अहियं	७३५
पण्णासकोडिलक्खा	५६१
पण्णासकोसउदओ	१८६१
पण्णासकोसउदया	१९४२
पण्णासकोसवासा	१९३९
पण्णासजोयणाइं	२४५
पण्णासजोयणाणि	१८१
,, जोयणाइं	२७४
,, ,,	२००४
पण्णासब्भहियाणि	११६०
पण्णासवणद्धिजुदो	१०२७
पण्णाससहस्साणि	११७७
,, ,,	११८६
पण्णाससहस्साहिय	६०३
,, ,,	१२७६
,, ,,	१२७७
पण्णासाहियछस्सय	४७३
,, ,,	५८३
पण्णाहिय पंचसया	२५२१
पत्ताएथोवेहि	६४८
पत्तेक्क चउसमए	३००३
पत्तेक्कं कोट्ठाए	८७५
पत्तेक्क चउसंखा	७३२
पत्तेक्क जिणमंदिर	१६९४
पत्तेक्कं णयरीणं	२४८०
पत्तेक्कं ते दीवा	२७७०
पत्तेक्कं दुतडादो	२४३२
,, ,,	२४३६
पत्तेक्कं पायाला	२४५६
पत्तेक्कं पुव्वावर	२३१२
पत्तेक्कं सव्वाणं	१९००
पम्मा सुपम्मा महापम्मा	२२३४
परघरदुवारएसुं	१५४६
परचक्कभीदिरहिदो	२२७७
परमाणुस्स णियट्ठिद	२८८
परमाणू य अणंता	५६
परिवेढेदि समुद्दो	२७६२
पलिदोवमट्ठमंसे	४२८
पलिदोवमदसमंसो	५०६
पलिदोवमद्धसमहिय	१२७१
पलिदोवमस्स पादे	१२५८
पल्लद्धे वोलीणे	५७७
पल्लस्स पादमद्धं	१२९०
पवणदिसाए होदि हु	१८५८
पवणंजयविजयगिरी	१३८९
पवणीसाणदिसासुं	१६७८
पवणेण पुण्णियं तं	२४६१
पवराओ वाहिणीओ	३३४
पविसंति मणुवतिरिया	१६३३
पव्वजिदो मल्लिजिणो	६७५
पव्वदविसुद्धपरिही	२८७६
पव्वदसरिच्छणामा	२१०६
पसरइ दाणग्घोसो	६८१
पस्सभुजा तस्स हवे	१७२५
पंच इमे पुरिसवरा	१४६५
पचगयणक्कदुगचउ	२७५२
पंच जिणिंदे वंदंति	१४२६
पंचट्ठपणसहस्सा	११४९
पंचतितिएक्कदुगणभ	२८०२
पंचपुलगाउअंगो-	६२६
पंचमओ वि तिकूडो	२२३७
पच्चमिपदोससमए	१२१४

र